

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितया सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया समलङ्कितं

हिन्दी-गुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्

श्री-राजप्रश्रीयसूत्रम्

Y

(द्वितीयो भागः)

नियोजक

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-

पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

अजीतनिवासी श्रीमान् सेठ सा. चिमनलालजी खिखचन्दजी

जीरावला तत्प्रदत्तद्रव्यसाहाय्येन

अ. भा. श्वे. स्था. जैनशा गोद्वारसमितिप्र. : श्रेष्ठि-

श्री-शान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथम आवृत्ति

प्रति १२००

धीर-स वत्

२४९२

विक्रम स वत्

२०२२

ईस्वीसन

१९६६

मूल्यम् रुं. २०/

भणवातु ठेकाणुं .

श्री. अ. बा. श्री. स्थानकवासी
नेन शाओद्धार समिति,
ठे गरेडियाकुवा रोड, श्रीन वॉज
पासे राजकोट (सौराष्ट्र)

Published by:

Shri Akhil Bharat S. S
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT
(Saurashtra) W Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञा,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्त्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोद्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्द

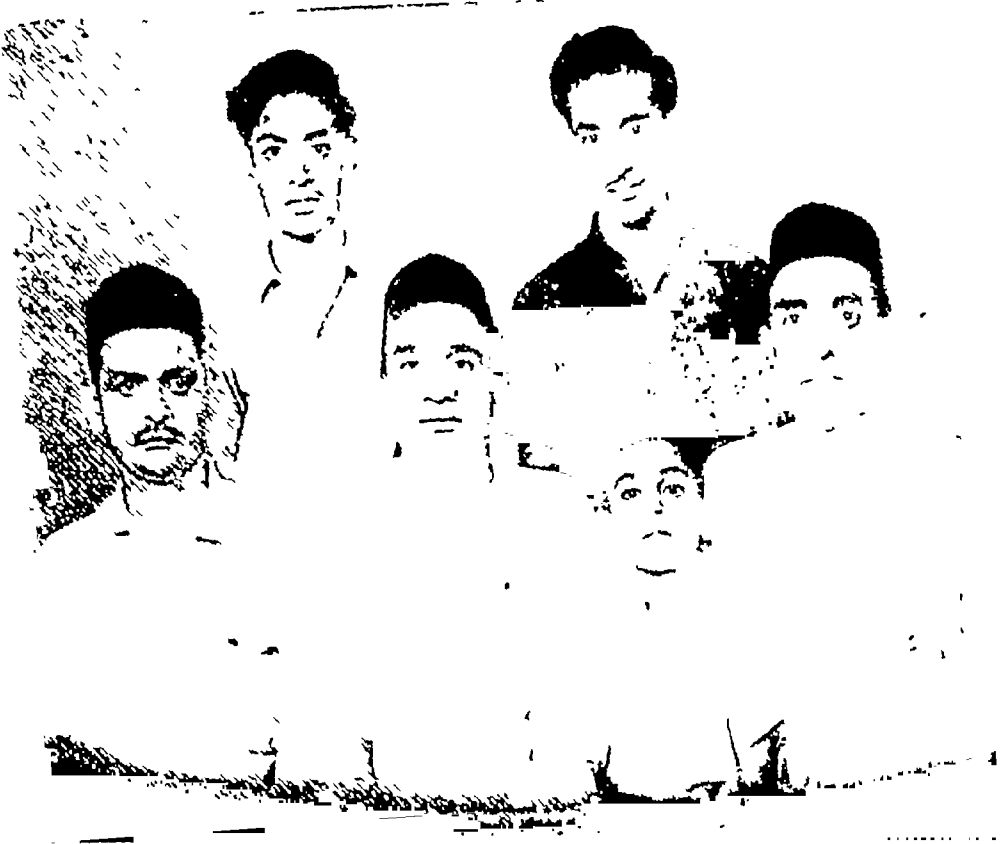


करते अवज्ञा जो हमारीं यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तस्ब कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तस्ब इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूढ्य ३१. २०-००

प्रथम आवृत्ति . प्रत १२००
वीर संवत् . २४६२
विक्रम संवत् २०२२
धसिवीसन १६६६

• मुद्रक :
भादवण मोहनलाल शाह
नीलकमल प्रीन्टरी, धीकाटाशेड
अमडावाड.



श्रीमान् मेठ मा. चीमनलालजी सा. ऋषमचंदजी सा. अजीतवाले ('सपरिवार)

श्रीमान् सेठ साहब चिमनलालजी-रिखचन्दजी 'जीराबलाका' परिचय

भारतीय संस्कृति के निर्माण में ओसवाल जाति का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस जाति की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, श्रमीरता और आत्मबलिदान के कारण भारत के उज्ज्वल इतिहास का निर्माण हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में भी इस जाति ने असाधारण योग प्रदान किया है। उदयपुर, जोधपुर वीकानेर सिरोही, किसनगढ़ आदि रियासतों के इतिहास इस जाति द्वारा प्रदर्शित दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता और वीरता से भरी हुई गाथाओं से ओतप्रोत है। इस जाति के वीरोंने अपने देश समाज और धर्म के प्रति जिस भक्ति का परिचय दिया है वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षर से अंकित है। अपने देश और स्वामी के प्रति वफादार रहनेवाले और उनके लिए सर्वस्व अर्पण करनेवाले व्यक्तियों की नामावली में सर्व प्रथम नाम मामाशाह का आता है। इस जैनमंत्री की त्रिपुल सम्पत्ति की स्थापताने महाराणा प्रताप को नया जीवन प्रदान किया था, और मेवाड के गौरव की रक्षा की थी।

इसी गौरव पूर्ण जाति में श्रीमान् चिमनलालजी एवं रिखचन्दजी का जन्म हुआ। आप प्रसिद्ध दोसी परिवार के हैं। दोसी यह ओसवाल जाति का एक गोत्र है। कहा जाता है कि वि. संवत् ११९७ में विक्रमपुर में सोनागरा राजपूत हरिसेन रहता था। आचार्य श्री जिनदत्तस्वरिने इसे जैन-धर्म का प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाया और दोसी गोत्र की स्थापना की। इस गोत्र के नाम को समृज्जल करने वाले अनेक नररत्न हो गये हैं। दोसी परिवार में श्रीमान् भिवखुजी बड़े प्रसिद्ध हुए। आपने महाराणा राजसिंहजी (प्रथम) का प्रधानपद सम्माला था। आपकी निगरानी में उदयपुर का मशहूर राजसमृद्ध नामक तालाब का काम जारी हुआ एवं पूर्ण हुआ। इस तालाब के बनवाने में १०५०७६०८ रुपये खर्च हुए। इस तालाब का पूर्ण होने पर महाराणाराजसिंहजी ने राजसमृद्ध के उद्घाटन उत्सव के अवसर पर दोशी भिवखुजी को एक हाथी और सिरोपाव प्रदान कर उनका सम्मान बढ़ाया था। दोसी पद्मोजी ने धर्मस्थानों का उद्धार किया था। बादशाह के फरमान

में उल्लेख है। कहने का सारांश यह है कि दोसी परिवार पहले से ही धार्मिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्यों में उदारतापूर्वक तन, मन, धन से सेवा करता आ रहा है। श्रीमान् सेठ चिमनलालजी एवं रिखवचन्दजी सा. को इसी गौरवशाली गोत्र में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन सीधे सादे दोनों भाईयो को देखकर यह कभी अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा कि ये—एक बड़े श्रीमन्त होंगे। तथा श्रीमन्ताई के साथ बड़े दानवीर भी होंगे। मारवाड के इस दानी परिवार की प्रसिद्धि अन्य श्रीमन्तों की तरह चाहे न हो पाइ हो पर सेठ साहय चिमनलालजी एवं रिखवचन्दजी जैन समाज के 'गुदड़ी में छिपेलाळ' है। अपनी सम्पत्ति का उपयोग परोपकारी कार्यों के करने में परम उदार है।

श्रीमान् चिमनलालजी स्टा० के पूर्वजा का राजघराने के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा है। आप के दादा श्रीमान् गुलाबचन्दजी जोधपुर के रूर्मिप रिवाना तहसील के कोठडी नरक गांव में रहते थे। आप ठिकाने के कोठार के काम को सम्भालते थे, रात्रकीय जीम्मेदारी के पद पर रहते हुए भी धार्मिक व सामाजिक जनसेवा के कार्यों में भी पूर्ण सहयोग प्रदान करते रहते थे। आपकी राजघराने में एवं समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। आप 'जीराबला' के उपनाम से प्रसिद्ध थे। आप बड़े मधुरभाषी एवं मिलनसार प्रकृति के उदारचेता सज्जन थे। आपको एक पुत्र हुआ जिसका नाम प्रेमचन्द रखा। प्रेमचन्दजी की उम्र अभी कोई ज्यादा नहीं हुई थी कि पिताजी की मृत्यु हो गई। पिताजी के अचानक स्वर्गवास से इनपर सारे परिवार के निर्वाह की जिम्मेदारी आ पड़ी। ये बड़े बहादूर थे। पिता के परंपरानुसार चलने वाले कुशल व्यापारी थे। इन्होंने अल्प समय में ही पिता की जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करली और कोठार का काम भी सम्भाल लिया वि. सं. १९६४ में इनका शुभलग्न जूनाबा निवासी श्रीमान् सायबलालजी की सुपुत्री खेतुवाई के साथ सम्पन्न हुआ। खेतुवाई एक आदर्श महिला एवं स्ती साध्वी स्त्री हैं। खेतुवाई जैसी आदर्श पत्नी को पाकर श्रीमान् प्रेमचन्दजी बड़े सुखी थे। इनके दो पुत्र हुए श्री चिमनलालजी और रिखवचन्दजी। किन्तु इस सुख को विधाता नहीं देख सका जब चिमनलालजी पांच वर्ष के थे एवं श्री रिखवचन्दजी १॥ डेढ़ वर्ष के थे तब अचानक ही प्रेमचन्दजी साहय का स्वर्गवास हो गया। इनके स्वर्गवास से

सारा परिवार शोक निमग्न हो गया। बालक और परिवार के मदमय विलाव विलाव कर रोने लगे। श्रीमती खेतुवाई पर पति त्रियोग का वज्रपात हुआ। ऐसे भयंकर संकट के समय खेतुवाईने असाधारण धैर्य का परिचय दिया। रोने देने में अपना बहुमूल्य समय नष्ट न कर दोनों बालकों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने का विचार करने लगी। इधर पति के मृत्यु से आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। कोठार के काम से जो थोड़ी बहुत आमदनी होती थी वह भी अब समाप्त हो गई। कर्म की गति बड़ी गहन है। एक आपत्ति का अन्त नहीं हुआ था कि यह दूसरी आपत्ति का आरंभ हो गया। ऐसी विकट स्थिति में भी खेतुवाईने हिम्मत न छोड़ी किन्तु बड़े लाड प्यासे बच्चों का लाइनपालन करने लगी। अपने चन्द्र जैसे आनंदप्रद बच्चों को देख कर अपना सारा दुःख भूल जाती थी। यह अपने का अपने बच्चों के सुनहरे स्वप्न में खोजती थी।

ये दोनों बालक बड़े होते जा रहे थे। माता की ये ही आशा थी। बच्चों का पढ़ना लिखना भी परिस्थिति के अनुकूलतानुरूप होता था। जब श्रीमान् चिमनलालजी दस वर्ष के हुए तब इन्होंने अपने पारिवारिक जीवन का भान हो आया। इन्होंने माता के इस बोझ को हलका करने का विचार किया। कोठड़ी एक छोटा गांव है इसलिये इसमें व्यापार की कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः बालक चिमनलालने बाहर जाकर अर्थ उपार्जन का निश्चय किया। माता की आज्ञा प्राप्त कर दस वर्ष के चिमनलाल जी अपने सम्बन्धियों के साथ व्यापार करने के लिए चल पड़े। ये कर्नाटक के 'हिराकेरी' गांव में पहुंचे। इतनी छोटी उम्र में माता का वात्सल्य को छोड़कर अवेलेही अनजाने प्रदेश में पहुंच जाना कम हिम्मत का काम नहीं है। ये वहां की कन्नड़ी भाषा से अनभिज्ञ थे। बात बात पर झुठकले आती थीं किन्तु इन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी अल्प समय में ही इन्होंने स्थानीय कन्नड़ी भाषा सीख ली। नोकरी से व्यापार में लगे स्व श्रम किया किन्तु भाग्यदेवताने इनका साथ नहीं दिया अन्ततः निराश होकर अपने गांव कोठड़ी चले आये। यहां भी आपने कम परिश्रम नहीं किया। कई तरह के व्यापार करने पर भी आपके पल्ले असफलता ही पड़ी। अशुभ कर्म का अभी उदय था। अन्त में हार थक कर पुनः कर्नाटक के हलगेरी नामक गांव में जाकर कपड़े की दुकान करली। इस दुकान से आपको लाभ नहीं मिला। कमाने के स्थान में आपको लाभ में

नुकसान ही उठाना पडा यहां तक कि आप कर्जदाग हो गये । धन चला गया किन्तु आप में नीति कायम थी । धन से भी आपने नीति को विशेष महत्ता दी । आप को साहूकारों का कर्ज शूल की तरह चंभने लगा । आपने हर परिस्थिति में कर्ज से मुक्त होने का निश्चय किया । कर्ज चुकाने के लिए आपने वहां नोकरी करली । वर्जा चुका देने पर आप फिर से अपने गांव काठडी चले आये ।

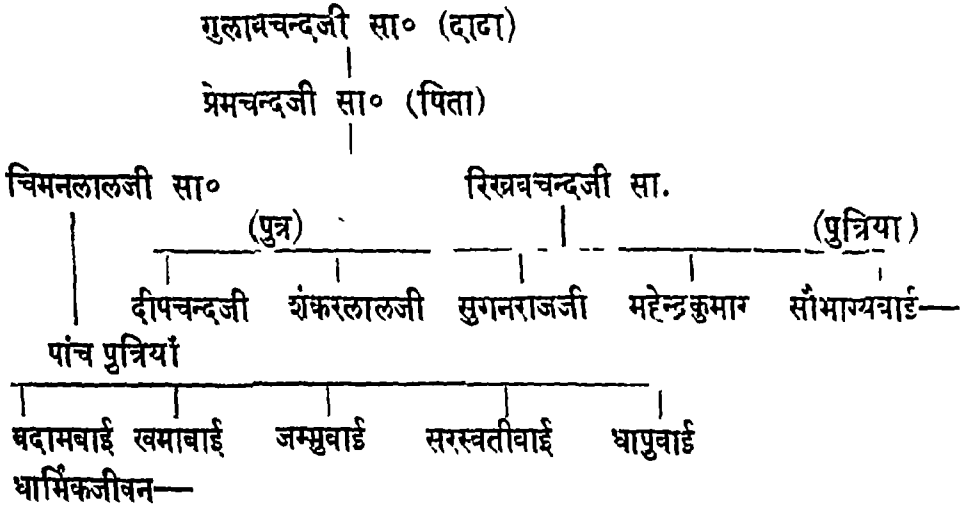
वि. सं. १९८४ में श्री चिमनलालजी का शुभविवाह खण्डपनिवासी हिम्मतलालजी सुराणा की सुपुत्री श्री प्यारवाई के साथ सम्पन्न हुआ । विवाह के बाद वि. सं. १९८८ में आप कमाने के लिए अहमदाबाद पधार गये । आप के साथ आप के छोटे भ्राता रिखवचन्दजी साहव भी चले आये थे प्रारंभ में दोनों माइयोंने दस रुपये प्रतिमास पर नौबरी बरली । धीरे धीरे अपनी योग्यता व अपनी प्रतिभा के बल से दोनों माइयोंने साधारण पूजीसे कपडे की दुकान खोली । आप इस व्यवसाय में साहसपूर्वक अग्रसर हुए, थोड़े ही वर्षों में आप की गणना नगर के प्रतिष्ठित लक्षाधिपति व्यापारियों में एवं प्रमुख व्यक्तियों में होने लगी ।

आप के लघु भ्राता श्रीमान् रिखवचन्दजी का शुभविवाह 'अजित' निवासी श्री अन्नराजजी साहव की सुपुत्री पानवाई के साथ सम्पन्न हुआ । आग दोनों का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी है । आपके घर में सम्प और सम्पत्ति का एकरा आदर है । आप दोनों माइयों का अपसी प्रेम राम लक्ष्मण के प्रेम का स्मरण दिलाता है । परिवार के इस सुखमय जीवन को देखकर श्रीमती खेतुबाई फूली नहीं समाती । ऐसा आनन्द का अवसर संसार की कम माताओं को ही प्राप्त होता है । इस समय खेतुबाई शरीर से (७५) वर्ष की वृद्धा है, किन्तु हृदय से युवा है । अब भी समय समयपर अपने परिवार को अपने जीवन के मुख्य अनुभवों से मार्ग दर्शन कराती हती है । सामायिक प्रतिक्रमण मुनिदर्शन आपके दैनिक जीवन के अंग हैं । आपका प्रायः समय धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत होता है । आपका परिवार इस प्रकार है—

आप के दो पुत्र हैं श्रीमान् चिमनलालजी सा. एवं रिखवचन्दजी सा. श्रीमान् चिमनलालजी साहव की पांच पुत्रियां हैं जिनके नाम ये हैं—१ बदामबाई २ खमाबाई ३ जम्मुबाई ४ सख्तीबाई ५ एवं भापुबाई । श्रीमान्

रिखवचन्दजी माहव के श्री दीपचन्दजी, शंकरलालजी सुगनराजजी एवं महेन्द्रकुमारजी ये चार पुत्र एवं सौभाग्यवाई तथा पुणवाई ये दो पुत्रियां हैं।

इस परिवार का वंश वृक्ष इस प्रकार है—



व्यापारिक जीवन के अतिरिक्त आप मातृद्वय-दोनों भाइयों का सार्वजनिक एवं धार्मिक जीवन विशेष सराहनीय है। आपने सार्वजनिक कार्यों के लिये बहुत अधिक दान दिया है। आपने सर्वसाधारण के लिये समय समय पर अकाल रोग वाद आदि के अवसरो पर भी काफी सहायताएं दी हैं। आपने कई व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देकर धंधे में लगाया है। विद्यार्थियों को आर्थिक सहयोग देकर अपनी विद्याप्रियता का परिचय दिया है। पर्युपणपर्व आदि धार्मिक उत्सव के अवसर पर आसन, पूजनियां माला आदि धर्मोपकरण के साथ साथ अन्य कई उपयोगी वस्तुओं की भी प्रभावना करते रहते हैं। आपने निजी तर्ज से वि.सं. २००४ में दीक्षा भी दिलवाई है।

साहित्यप्रेम—

जैनसाहित्य प्रकाशन कार्य में आपकी बड़ी दिलचस्पी है। कई ग्रन्थों के प्रकाशनों में आपका आर्थिक सहयोग रहा है। आप ने अमी अमी अखिल भारतीय श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धारसमिति राजकोट को दानार्थ (५०००) पांच हजार रुपये प्रदान कर समिति के सन्माननीय सदस्य बने हैं। आपका यह साहित्य प्रेम सराहनीय है। साहित्यशिक्षा के प्रति आप उदार चेताओं का कितना ध्यान है यह उपरोक्त ज्ञान दान बता रहा है।

आपकी दैनिक जीवनचर्या में सामायिक प्रतिक्रमण व्रत, पञ्चव्रतानुदिर्शन आदि आवश्यक अंग हैं। इन कामों में आप कभी प्रमाद नहीं करते। प्रतिवर्ष बाहर जाकर अनुदिर्शन का भी सम्य समय पर लाभ लेते रहते हैं। आपकी उदारता सर्वतोमुखी है। आप अपनी जन्मभूमि कोठड़ी में निजी स्वर्ण से अस्पताल बनाकर सरकार को अर्पण करने की भी उत्कट इच्छा रखते हैं। आपका इस समय निवास मारवाड में अजित गांव जि.जोधपुर में है। आपने वि.सं. २०१३ की साल में कोठड़ी छोड़ दिया था। आपकी धार्मिक भावना इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती रहे यही शुभ कामना है।



આધુનિક બીચીઓ



શેઠશ્રી શાંતિલાલ ભગંદાસભાઈ
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી રામચંદ્રભાઈ વેલચંદ્રભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી ઇગ્નલાલ રામદાસ ભાવસાર-અમદાવાદ.



શેઠશ્રી રામચંદ્રભાઈ રામચંદ્રભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



વચ્ચે બેઠેલા
લાલાજી કિશનચંદ્ર સા. જોહરી
ઉભેલા સુપુત્ર ચિ. મહેતાખચંદ્ર સા. જેન
નાના-અનિલકુમાર જેન (દાયતા)

આદ્યમુરખબીશ્રીઓ



શ્રી વૃજલાલ દુર્લાભજી પારેખ
રાજકોટ.



કોઠારી હરગોવિંદ જયજીભાઈ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી મિત્રીલાલજી લાલચંજી સા. લુણ્ણિયા
તથા શેઠશ્રી જેવંતરાજજી લાલચંજી સા.

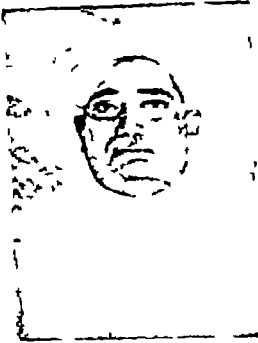


(સ્વ.) શેઠશ્રી ધારશીલાલજી જીવજીલાલ
બારસી.



સ્વ. શ્રીમાન શેઠશ્રી મુકુન્દચંજી સા.
બાલિયા પાલી મારવાડ

આધ્યમુરખ ઓશ્રીઓ



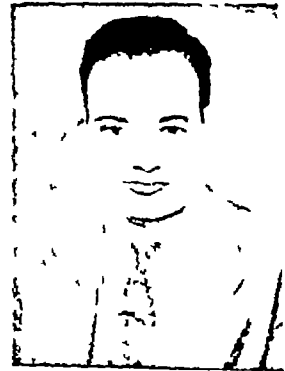
(સ્વ.) શેઠશ્રી હરભય ઢ કાસીદાસ પારિખા
ભાણુવડ.



(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મહેશલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શ્રી વિનોદકુમાર વીરાજી
રાજકુમાર.



(સ્વ.) શેઠશ્રી નિમેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શેઠશ્રી જેસિંગભાઈ પાચાલાલભાઈ
અમદાવાદ.



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ ચાલુકલાલ
અમદાવાદ.

આધ્યમુરખીશ્રીઓ



સ્વ. ગ્રંથી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખલાત.



સ્વ. ગ્રેઠ તારાચંદજી સાહેવ ગેલડા
મદ્રાસ.



- ૧ વચ્ચે બેડેલા માતાભાઈ શ્રીમાન મૂલચંદ
- જવાહીરલાલ અરડિયા
- ૨ બાજુમાં બેડેલા ભાઈ મિશ્રીલાલ અરડિયા
- ૩ ઉભેલા સૌથી નાનાભાઈ પૂનમચંદ અરડિયા



શ્રીમાન શેઠશ્રી
સ્ત્રીમરાજજી સા. ચોરહિયા

राजप्रश्नीय सूत्र भाग दूसरे की
विषयानु णि

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
१	सूर्याभदेव के देवर्द्धि के संबन्ध में गौतमस्वामी का प्रश्न १-४	
२	सूर्याभदेव के ऋद्धि के संबन्ध में भगवान् का उत्तररूप कथनमें सूर्याभदेव के पूर्वभवजीव प्रदेशी राजा का वर्णन... .. ५-३८३	
३	सूर्याभदेव का आगामिभवका वर्णन... .. ३८३-४४९	

॥ सप्त ॥



शुद्धि पत्र

पाठकगण,

सविनय निवेदन है कि शास्त्रों में ग्रुफ और प्रिंटिंग सम्बन्धी कई गलतीयां होना संभवित है, जो सुज्ञ वाचकवृन्द नीरक्षीरन्याय से समझ कर पढलेगे, पर जो शास्त्रीय गलती रह गई है जो देखने में अगर सुज्ञ वाचकजन द्वारा दृष्टिगोचर हुई हैं, इनका शुद्धिपत्र देने में आता है।

सूत्र का नाम	पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
समवायङ्ग सूत्र	१६४	५	रामः खलु ब्रलदेवो द्वादशवर्ष सहस्रा- णि सर्वायुषं	रामः खलु बलदेवो द्वादशवपशतानि सर्वायुषं
”	”	१६	वारह हजार वर्ष	वार सौ वर्ष
”	”	२८	५५२ वर्ष	५५२ वर्ष
ज्ञाताधर्मकथाङ्ग—२६१		१	पहली पंक्ति	‘त्रैमासिकी’ पद छूट गया है
सूत्र भा. २	”		पूरी होने पर	सो ‘त्रैमासिकी’ यह पद बढ़ाके पढ़ें
”	”	११		आठवीं मिश्रु प्रतिमा के अनन्तर ‘प्रथम सात दिनरात प्रमाणवाली नववीं मिश्रु प्र- तिमा’ यह पाठ छूटा है सो ‘नववीं मिश्रु पडिमा’ चर्हा इतना जोड़ के पढ़ें
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा.३,	३९७	१७	प्रवचनसिद्ध	प्रवचनविरुद्ध
”	”	२१	प्रवचनसिद्ध	प्रवचन विरुद्ध
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा. २	१४७	१७	मद्यपान में आसक्त—	निद्राजनक द्रव्य में आसक्त
”	”	२६	मद्यपानभा आसक्त	निद्राजनक द्रव्य भां आसक्त
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा-३	३३४	३	मगवताऽऽवश्यके—	मगवताऽऽनुयोगद्वारे
”	”	१७	आवश्यक सूत्रमें—	अनुयोगद्वारसूत्रमें
”	”	१६	आवश्यक सूत्रभा—	अनुयोगद्वार सूत्रभां

अन्तकृदशास्त्र	२९५	१० दसदस ११	दसअट्ट 'सत्तमवगे नेग्मउःसगा' इतना पाठ छट गया है सो वहां समझ लेवे
आचारङ्गसूत्रभा. २	१२२	८ नेत्तपरिष्णाणा अपरिहीणा फरस परिष्णाणा अपरि- हीणा	नेत्तपरिष्णाणा अपरि- हीणा जीहपरिष्णाणा अप- रिहीणा फरिस परिष्णाणा अपरिहीणा
आचाराङ्गसूत्रभा-२	२८१	१४ निन्यानवे	अट्टानवे
"		२६ न०पालु	अक्षुलु
दशाश्रुतसूत्र	४३०	२० कालकर के प्रवेयक- आदि	कालकरके देवलोकमें से
"		२६ कालकरीने प्रवेयक आदि-	कालकरीने देवलोकभांन
ज्ञाताधर्मक्रियाङ्गसूत्रभा. २	७३०	२१ शुष्थिलक नीत्य (नैन हेरासर)	शुष्थिलक नीत्य (उद्यान अगीचि)
उत्तराध्वयनसूत्रभा. ३	१८०	१-२ ...तृतीय देवलोकै- गतः ततश्चुतो महा- विदेहे केवलिभूत्वा सिद्धिगतिं गमिष्यति	मोक्षं गतः
"	१२, १४, १५	..वे चक्रवतीं तृतीयदेव लोकमें गये वहांसे चक्र महाविदेहमें केवलीहोकर सिद्धि पदको प्राप्त करेंगे	वे चक्रवतीं मोक्ष गये
"	२३-२४....	ते चक्रवतीं भरीने त्रीण देवलोकभां गया अने त्यातु आशुभ्य यु३ं करी त्यानी अवी ने महावि देहभां देवदा धधने सिद्धि पद प्राप्त कर्युं	ते चक्रवतीं मोक्षमा गया
उत्तराध्वयनसूत्रभा. ४	९२	१४ संयमयोगोंका उल्लंघन होता है-	संयम योगों का उल्लंघन नहीं होता है
		२४ संयम योगोंतु उल्लंघन थाय छे	संयम योगोंतु उल्लंघन थतुं नथी

मगवतीसूत्रभा.३	८९९	३ त्रिभागोन	त्रिभागोन
"	"	३-४ पल्योपमं	पल्योपमद्वयं
"	"	१३ तृतीयभागकम एक	तृतीयभाग दो
"	"	पल्योपम की	पल्योपम की
"	"	२८ . . . एक पल्योपम करतां	तृतीय भाग कम के
"	"	त्रिभाग न्यून छे	पल्योपमनी छे
मगवतीसूत्रभा.३	८९९	२६ के पल्योपम करता	तृतीय भाग अधिक
"	"	त्रिभाग अधिक	के पल्योपम
उत्तगध्ययन	४४८	२ ...तपःकृत्वा तृतीय-	तपः कृत्वा तस्मिन्नेव
"	"	भवे मुक्तिं गतः	भवे मुक्तिं गतः ।
"	"	१३ तृतीय भव में मुक्ति	उसी भव में मुक्ति
"	"	लाम किया	लाम किया
"	"	२५ त्रीण भवभा मुक्ति	तेन भवभा मुक्ति
"	"	ना लाल करेव छे	ना लाल करेव छे.
दशाश्रुतस्कन्ध	१७४	२ यतस्तै रूक्मिण्यो	यतस्तैरूक्मिण्यो-
"	"	पुद्गल	नार्धपुद्गल
"	१७४	१२ देशजन पुद्गल	देशजन अर्ध पुद्गल
"	१७४	१२ देशजन पुद्गल	देशजन अर्धपुद्गल

दशाश्रुत स्कन्ध के दसवें अध्ययनमें हिंदी एवं गुजराती में दशों निदानों के रण में जहाँ-जहाँ प्रैवेयक शब्द है वहाँ वहाँ 'सौधर्म' पेसा सुधारकर पढ़ना चाहिए.

राजप्रश्नीयसूत्र भा. २ दूसरेका शुद्धि पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पार्ङ्ग
महं वसि	महं वंसि	१	१२
कर्बटे	कर्बटे	२	२
नेने	नेनी	२	२७
वस्तीभ	वस्तीभां	२	२८
देवज्जूई	देवज्जूई	३	१३
भग्यतामृपगता	भोग्यतामृपगता	४	३
कबट	कर्बटे	४	९
सबन्धिकं	संम्बन्धिकं	४	१७
अमंतेत्ता	आमंतेत्ता	४	२२
जणयए	जणवए	५	१
नयरा	नयरी	५	१
सेयावयाए	सेयविय.ए	५	२
दुप्पयच्चउप्पय मियपपसु	दुप्पयच्चउप्पयमियपसु	५	१२
भगवंतम्	भगवंतम्	५	१५
के शिवामी	केशिस्वामी	६	७
निवासस्थानभूत	निवासस्थानभूत	६	११
चडे	चंडे	८	२४
अ ५६	आ	८	२६
उत्कोच-लांच	उत्कोचन	९	४
उत्कोच-लांच	उत्कोचन	९	४
पटं जइ	पउंजइ	९	१६
बह-वेन	बहुत्वेन	१०	१९
व्यापारतेन	व्यापारस्तेन	११	२
इष्टान्	इष्टान्	१२	३
तस्स ण	तस्स णं	१२	२५
अनुरद्धा	अनुरक्ता	१२	२९
प्रमयुक्ता	प्रेमयुक्ता	१३	७
पुत्त	पुत्ते	१३	७
यावत् शब्द प्रकट	यावत् शब्द यह प्रकट	१३	११
		१४	१३

अ तपुरतु	अंतःपुरतुं	१५	२६
शास्त्रामति	शास्त्रेहामति	१०	१
कर्मण	कर्मण	१०	२६
निश्चयोभ	निश्चयोभां	१७	३१
कार्या में	कार्यों में	१८	१०
कथा	कथा	१८	१७
निश्च कपष्टे	निश्च कपष्टे	१८	२५
सकलार्थनो	सकलार्थनो	१६	२५
आवागप्रयोगः	आयोगप्रयोगः	२०	२
संप्रयुक्तः	संप्रयुक्तः	२०	४
मोज्जनावशिष्ट	मोज्जनावशिष्टे	२०	५
शुश्रूषादि	शुश्रूषादि	२१	१७
अहृष्ट	अहृष्ट	२१	२५
तेण	तेणं	२२	१
समृद्धं	समृद्ध	२२	१८
जितशत्रुं नाम	जितशत्रुर्नाम	२३	२
उत्तरपौरस्त्ये	उत्तरपौरस्त्ये	२३	१०
जियसत्	जियसत्त	२३	१७
जितशत्रु	जितशत्रु	२३	१९
जसा	जैसा	२३	२१
अन्तेवासाक	अन्तेवासीष	२४	१
जियसत्तसुस	जियसत्तसुस	२४	८
सुत्रार्थ—	सुत्रार्थ	२४	१८
जितशत्रोः	जितशत्रोः	२५	२
राजकज्जाणिक	राजकज्जाणिय	२५	२०
वयासा	वयासी	२६	८
पञ्चपिणहृ	पञ्चापिणहृ	२६	१०
महत्तं जाव	महत्तं जाव	२७	८
अन्मितरिया	अन्मितरिया	२७	८
त महत्तं	तं महत्तं	२७	११
चाउग्वंट	चाउग्वंट	२८	१६
अनेत	अनेक	३०	२५
परम सैभनस्थित	परम सौभनस्थित	३२	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंक्ति
कादुम्बक पुरुषान्	कौदुम्बिकपुरुषान्	३३	२
सकङ्कठावतंसकं	सकङ्कटावतंसकं	३३	८
शरशतद्वात्रिंशत्तूण	शरशतद्वात्रिंशत्तण	३३	२०
दोनों और''	दोनों ओर''	३४	३०
स तारणवर युक्त	स तोरणवरयुक्त	३४	१
सा है	ऐसा है	३५	२
थादे	०थादे	३५	१४
दृष्यक्षत दर्वाङ्कुरादीनि	दृष्यक्षतदुर्वाङ्कुरादीनि	३५	२४
आरापण किया	आरोपण किया	६६	२
आयुष दसे	आयुष पदसे	३६	११
यत्रैत्र	यत्रैव	३७	१३
केकयाद्ध	केकयाद्ध	३८	३
जितश	जितशत्रू	३८	१३
जियसत्तस्स	जियसत्तस्स	३८	२१
सावत्याए	जियसत्तस्स	३९	४
० १०६	सावत्थीए	३९	६
स्य	विहरइ स०	३९	१४
श्रावत्स्या	तस्य	४०	१
उपाग ति	श्रावत्स्या	४०	४
भाद	उपागच्छति	४०	४
कुशल प्रश्नादि	आदि	४०	५
सारहि	कुशलप्रश्नादि	४०	६
चाउघंटं	सारहि	४०	८
जिमितभुक्काशराग	चाउघंटं	४०	२१
प्रतोच्छति	जिमितभुक्कोशराग	४१	२९
एषं	प्रतीच्छति	४१	२
टीकाथं	एष	४२	२२
पञ्चविधन्	टीकाथं	४२	२२
जियम	पञ्चविधान्	४२	३१
जेणव	जियमाए	४३	३
	जेणेव	४३	९
		४३	१७

अ तपुरतु	अंत.पुरतु	१५	२६
शास्त्रामति	शास्त्रेहामति	१०	१
कभल	कभल	१०	२६
निश्चयोम	निश्चयोमां	१७	३१
कार्या में	कार्यों में	१८	१०
कथा	कथा	१८	१७
निशंकपक्षे	निशंकपक्षे	१८	२५
सकलार्थानो	सकलार्थानो	१६	२५
आयोगप्रयोगः	आयोगप्रयोगः	२०	२
संप्रयुक्तः	संप्रयुक्तः	२०	४
मोज्जनावशिष्ट	मोज्जनावशिष्टे	२०	५
शुश्रूषादि	शुश्रूषादि	२१	१७
अदृष्ट	अदृष्ट	२१	२५
तेण	तेणं	२२	१
समृद्धं	समृद्ध	२२	१८
जितशत्रुं नर्म	जितशत्रुर्नाम	२३	२
उत्तरपौरस्त्ये	उत्तरपौरस्त्ये	२३	१०
जियसत्	जियसत्त	२३	१७
जितशत्रु	जितशत्रु	२३	१९
जसा	जैसा	२३	२१
अन्तेवासाक	अन्तेवासीव	२४	१
जियसत्तसुस	जियसत्तसुस	२४	८
सुश्रार्थ—	सुश्रार्थ	२४	१८
जितशत्रोः	जितशत्रोः	२५	२
राजकञ्जाणिक	राजकञ्जाणिय	२५	२०
बयासा	बयासी	२६	८
पञ्चपिणह	पञ्चापिणह	२६	१०
महत्त्यं जाव	महत्त्यं जाव	२७	८
अन्मितरिया	अन्मितरिया	२७	८
त महत्त्यं	तं महत्त्यं	२७	११
चाउघंट	चाउघंट	२८	१६
अनेक	अनेक	३०	२५
परम सौभनस्थित	परम सौभनस्थित	३२	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंक्ति
वदाविदएहिं	वंदावंदएहिं	६४	४
करतलपरिगृहीतं	करतलपरिगृहीतं	६४	१०
श्रावत्यां	श्रावस्त्यां	६४	११
देवसुप्रिय !	देवासुप्रिय !	६५	२
व्याख्यातपायमिति	व्याख्यातप्रायमिति	७०	२
सन्व ओ	सन्वाओ	७०	६
दिसि	दिसिं	७०	८
सन्वओ	सन्वाओ	७०	१८
सन्वओ	सन्वाओ	७०	१८
सन्वओ	सन्वाओ	७०	१९
सन्वओ	सन्वाओ	७०	१९
श्रुत्वा	श्रुत्वा	७२	६
अवितहमेय	अवितहमेयं	७३	३
घन्न	घन्नं	७३	८
चत्त सारही	चित्ते सारही	७३	१७
केशिन	केशिनं	७३	२२
गिहिषम्म	गिहिषम्मं	७३	१६
पाव्वयणं	पावयणं	७४	२९
विच्छर्ष	विच्छर्ष	७६	१
शकोमि	शक्मि	७६	३
मै ता	मै तो	७६	१७
सातत शिक्षा	सात शिक्षा	७६	१८
न्देहरारतम्	सन्देहसहितम्	७९	१
एव	एवं	७९	१०
अश्वादिको	अश्वादिको	७९	१९
परिस्थिति	परिस्थिति	८०	१८
प देशाशिक	देशावकाशिक	८१	१३
प्राच्यातपातथी	प्राच्यातिपातथी	८१	२२
धन्छा परारभाषु	धन्छा परिभाषु	८१	२३
अश्वरथस्त व	अश्वरथस्तत्र	८२	१०

ओयसी	ओयंसी	४४	१२
विद्या धानो	विद्याप्रधानो	४५	२
श्रावस्ती गरी	श्रवस्तीनगरी	४५	५
यत्रव	यत्रैव	४५	६
क्षान्तिप्रधान	क्षान्तिप्रधान	४५	९
सत्यप्रधान	सत्यप्रधान	४	१३
सुहृणं	सुह्रेणं	४५	३०
तृको	पैतृको	४६	८
श्रावती	श्रावस्ती	४६	१२
तथा	तथा	४७	७
निरूपटः	निरूपटः	४८	१
वयं	वयं	४९	८
लेपराहित्यं	लेपराहित्यं	५१	७
द्रव्य	द्रव्य	५१	३१
शीत्य छे	शीत्य छे	५१	३२
सिंघाडग	सिंघाडग	५४	६
उदयावस्था	उदयावस्था	५४	२१
क्रोधादिकेने।	क्रोधादिकेने।	५४	२३
महापथपथेषु	महापथपथेषु	५५	१२
जनोत्कलिकेति वा	जनोत्कलिकेति वा	५५	१३
जनोर्मिरिति वा	जनोर्मिरिति वा	५५	१४
सारथिस्तं	सारथिस्तं	५६	१
लोगां के	लोगां के	५६	७
निमित्ते	निमित्ते	५७	२८
महन्निर्महन्नि	महन्निर्महन्नि	५८	१
चतुष्पथ	चतुष्पथ	५९	११
मनुष्यां	मनुष्यो	५९	२०
साथे।	साथे।	५९	२०
इत्यारम्य	इत्यारम्य	६०	१
पञ्जलि	पञ्जलि	६०	१२
गतोग्रेषु	गतोग्रेषु	६१	४

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंक्ति
वदाविदएहिं	वंदावंदएहिं	६४	४
करतलपरिगृहीतं	करतलपरिगृहीतं	६४	१०
श्रावर्त्या	श्रावर्त्यां	६४	११
देवनुप्रिय !	देवानुप्रिय !	६५	२
व्याख्यातपायमिति	व्याख्यातप्रायमिति	७०	२
सव्व ओ	सव्वाओ	७०	६
दिसि	दिसिं	७०	८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
श्रुत्वा	श्रुत्वा	७२	६
अवितहमेय	अवितहमेयं	७३	३
घन्न	घन्नं	७३	८
चत्त सारही	चित्ते सारही	७३	१७
केशिन	केशिनं	७३	२२
गिहिधम्म	गिहिधम्मं	७३	१६
पाव्वयणं	पाव्वयणं	७४	२९
विच्छर्ध	विच्छर्ध	७६	१
अकोमि	अकोमि	७६	३
मैं ता	मैं तो	७६	१७
सातत शिक्ष	सात शिक्षा	७६	१८
न्देहरारतम्	सन्देहसहितम्	७९	१
एष	एषं	७९	१०
अश्वदिको	अश्वदिको	७९	१९
परिस्थिति	परिस्थिति	८०	१८
प देशाशिक	देशावकाशिक	८१	१३
प्राध्यातपातधी	प्राध्यातिपातधी	८१	२२
धम्मो परारभाषु	धम्मो परिभाषु	८१	२३
अश्वरथस्तै व	अश्वरथस्तप्रव	८२	१०

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
गघव्व	गंघव्व	८२	२
अट्टिमजपेमाणु-	अट्टिमिज्जपेमाणु-	८२	१०
अय	अयं	८२	११
पुल्लणेणं	पुंल्लणेणं	८२	१५
जियसत्तणा	जियसत्तुणा	८२	१७
श्रमणापासको	श्रमणोपासको	८३	१
अथुं	अथुं	८३	२६
षावथणाआ	षावयणाओ	८३	२८
निअंथ	निअंथ	८४	२६
परिपुष्णं	परिपुष्णं	८५	१३
फासुएसाणिज्जेणं	फासुएसणिज्जेणं	८५	२७
पौषधोपयासैः	पौषधोपवासैः	८६	१
काङ्क्षारहितः	काङ्क्षारहितः	८८	६
चतुर्दश्यष्टमी पौणमास्यः	चतुर्दश्यष्टमी पौर्णमास्यः	८८	३
पौषघ	पौषघ	९१	१८
मुहूर्सुहुरवलाकयन्	मुहूर्सुहुरवलोकयन्	९२	६
विहरात	विहरति	९२	६
कयाइ	कयाइं	९२	७
सारहा	सारही	९२	११
छत्तणं	छत्तेणं	९२	१६
अ मंते	अहं मंते !	९३	१६
पसिस्स	पपसिस्स	९३	१९
पाउग्गहण	पाउग्गहणं	९४	२०
पुरिसवग्गु	पुरिसवग्गु	९५	५
षहिले	पहिले-	९७	१७
महत्य	महत्यं	९९	५
हता	हंता	९९	१०
अभिगमणिज्ज	अभिगमणिज्जे	९९	१०-११
परिवसति	परिवसंति	९९	१२
महार्यं	महार्यं	१००	२

अढाह	आढाह	१००	७
षयेसिस्स	पएसिस्स	१००	१२
योग	योग्य	१०१	६३
	हंता	१०१	२६
हे चित्से	हे चित्र	१०२	१०
रीसृपों	सरीसृपों	१०२	११
सो सग्गे	सोपसग्गे	१०२	१४
अबिभमनाथ	अबिगमनीय	१०२	२३
	बहूनां द्विपदचतुष्पद—		
	मृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम्	१०४	१
	द्विपदादयः	१०४	१
पक्षसरीसृपाणा	पक्षिसरीसृपाणां	१०४	७
तद्वनप्रवेशरूपार्थः	तद्वनप्रवेशरूपार्थः	१०४	१०
कुमारसमणं	कुमारसमणं	१०४	२०
पज्जुवासिस्सति	पज्जुवासिस्संति	१०४	२३
उचामिष्ठः	अधामिष्ठः	१०४	२८
पीठलगसेज्जासंफ	पीठफलकसेज्जासं	१०५	१
युमकं	युष्माकं	१०५	५
नमंसि यध्यंति	नमंसिद्यंति	१०५	७
प्रतिहारिकेण	प्रातिहारिकेण	१०५	८
त्तुमं	त्तुमं	१०५	१२
त	तत्र	१०६	१२
सम्मानयियन्ति	सम्मानयिष्यन्ति	१०६	२९
खाद्यं खाद्यं	खाद्यं खाद्यं	१०७	३
मज्झ	मज्झ	१०७	१५
थम्रैव	यम्रैव	१०८	६
कुमारमणस्स	कुमारसमणस्स	१०८	२३
केक्याद्धंभां	केक्याद्धंभा	१०८	२६
दुइज्जमाणे	दुइज्जमाणे	११०	६
पडिहारिणं	पाडिहारिणं	११०	२७
इत्यादि	इत्यादि	१११	१

मृगवगम्	मृगवनम्	१११	१३
विणयेणं	विणएणं	१११	२६
नयरि	नयरि	११२	१४
यत्रव	यत्रैव	११५	१
वरतरनी संपउत्तेहिं	वरतरुणी संपउत्तेहिं	११५	१८
गह	गिहे	११५	२४
वरतरणी संपउत्तेहिं	वरतरुणी संपउत्तेहिं	११५	३०
तत्रव	तत्रैव	११६	२
श्रावस्ती	श्रावस्तीं	११६	३
समापात्	समीपात्	११७	१
ससुपविष्टः	ससुपविष्टः	११७	१२
	कामभोगान्	११७	१७
	प्रत्यनुभवन्	११७	१७
सावत्याआ	तावत्यीओ	११८	२
केशीकुमार मणः	केशीकुमारश्रमणः	११८	७
वस्त्या	श्रावस्त्या	११८	८
श्वेताविका	श्वेतविका	११८	९
कंसिकुमारसमणे	केशिकुमारसमणे	११८	२१
डो०४४	डो०४४	११८	२४
कुमार मणो	कुमार श्रमणो	११९	४
व्याख्या	व्याख्या	११९	१८
केशाकुमार श्रमण	केशीकुमारश्रमण	११९	१८
डे०था०६	डे०था०६	११९	२२
श्रुङ्गाटक	श्रुङ्गाटक	१२०	१४
णामं गायं	णामं गोयं	१२१	१४
अवकमंति	अवकमंति	१२१	१४
पूर्वानुपूर्वी	पूर्वानुपूर्वी	१२३	४
जसणं	जस्सणं	१२३	१५
विहरइ	विहरइ	१२३	२९
विउल	विउलं	१२४	९
जुमगेव	जुसागेव	१२४	११

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंक्ति
सज्ज्ञय	सज्ज्ञयं	१२४	१३
प्रा दपीठा	प्रासादपीठा	१२५	२
पण	पग	१२५	१८
इइयभा	इइयभां	१२५	२३
इ४	इ४८	१२५	२४
पडिविसज्जे	पडिविसज्जेइ	१२६	१८
भृगवनोयधान	भृगवनोयधान	१२६	२५
उलं जीवियारिहं	विपुलं जीवियारिहं	१२६	३०
उ सने	उसने	१२७	७
पच्चाप्पिणेह	पच्चप्पिणेह	१२७	१०
घंटोवाले	घंटोवाले	१२७	१४
हियए	हियए	१२७	३०
घटोवाला	घंटोवाला	१२८	१२
इ४८	इ४८	१२८	२०
इय	इयुं	१२६	८
वहुणं	वहूणं	१३०	१३
परमसौमनस्थितः	परमसौमनस्थितः	१३०	१९
बहुगणतरम्	बहुगुणतरम्	१३१	१०
आरामगय वा	आरामगयं वा	१३२	३
त चैव	तं चैव	१३२	८
ना लमइ	नो लमइ	१३२	१२
केवल्लिपन्नत धम्म	केवल्लिपन्नत्तं धम्मं	१३२	२१
केवल्लिपन्नत	केवल्लिपन्नत्तं	१३२	२३
वाद्यस्वाद्येन	स्वाद्यम्बाद्येन	१३५	१
छत्तेण	छत्तेण	१३५	१८
महणं	माहणं	१३५	२१
ण	णं	१३५	२९
आरामगत	आरामगतं	१३६	२
उवस्सगयं	उवस्सगयं	१३६	१९
अधुतासना	अधुतासना	१३६	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
अर्थी	अर्थी	१३७	२७
विजानाहि	विजानीहि	१३८	३
तत्र	तत्र	१३८	५
जीवा जावादि	जीवा जीवादि	१३९	९
पदार्थो	पदार्थो	१३९	१७
श्रमण	श्रमण	१४०	१३
दैवत	दैवतं	१४१	१
माहनेन	माहनेन	१४१	८
उसका	उसकी	१४१	१३
मरणतायै	श्रवणतायै	१४२	१
चित्त	चित्ते	१४३	१२
टीकाथं	टीकाथं -	१४३	२८
चाउग्घटे	चाउग्घंटे	१४४	४५
दिसि	दिसिं	१४४	५
मानेप्याम	मानेप्यामि	१४४	१०
प्रदेशी	प्रदेशी	१४५	११
सारहिं	सारहिं	१४५	१२
धम्मणाइकरवमाणा	धम्मसाइकरवमाणा	१४५	१९
अवश्य	अवश्य	१४७	१९
नि सस्थाने	निवासस्थाने	१४७	२७
एयमाणत्तिय	एवमाणत्तियं	१४८	१-२
ए होउ	एवं होउ	१४८	१२
एत खलु	एतत्खलु	१४९	५
तं एहणं	तं एहणं	१४९	१८
तं आसे	ते आसे	१४९	१८
तं एहणं	तं एहणं	१४९	३०
तं आसे	ते आसे	१४९	३०
रा किं	रात्रिकं	१५३	१०
राि	रात्रिक	१५३	१९
दव्व	दव्वं	१५३	२९

शुद्धप्रावे । ।	शुद्धप्रावेस्थानि	१५४	१६
चि सारथी	चित्र सारथी	१५४	२०
गथे।	गथे।	१५४	३०
ख स	खलु स	१५५	२
अत्रय	अत्रैव	१५५	१०
अज्ज्ञत्थिए	अज्ज्ञत्थिए	१५७	३१
निविणणाणा	निन्विण्णाणा	१५८	२७
निर्विण्णाणं	निन्विण्णाणं	१५८	२७
चि सारथिमेव	चित्रसारथिमेव	१५९	३
मूर्वा	चित्रसारथिमेव	१६२	४
हाता है	हाता है	१६२	८
जा	जो	१६२	१४
भस्तर वाणा	भस्तरवाणा	१६२	२७
करेति	करोति	१६३	६
जढ	जहु	१६४	१६
वय	वये	१६४	२४
पहीसी राया	पएसी राया	१६५	१४
खल	खलु	१६६	२
पुरि	पुरिसं	१६६	१७
अण्ण जवियत्तं	अण्ण जीवियत्तं	१६६	२१
जीत्तं	जीवितं	१६७	३
अन्नजीवितत्वम्	अन्नजीवितत्वं	१६७	११
पच्चियं	परिचयं	१६७	१५
ज्जहं जुपवासद्धि	जहं पञ्जुवासद्धि	१६८	२
केशा	केशी	१६८	५
एसे	एसे	१६८	१४
केसा कुमारसमणे	केसी कुमारसमणे	१६८	१८
प्रासुकैपणीयान्नमात्र विनः	प्रासुकैपणीयान्न मात्र जीविनः	१७०	५
श्रुतज्ञान	श्रुतज्ञान	१७२	१३
प्ररार	प्रकार	१७४	११
केवलवाणे	केवलणाणे	१७४	१८

तथा	तद्यथा	१७५	११
आमिनिवो ज्ञानम्	आमिनिवोधिकज्ञानम्	१७६	४
अ विष्टम्	अङ्गप्रविष्टम्	१७६	५
श्रुतज्ञान विषयक	श्रुतज्ञानविषयकं	१७६	५
प्रज्ञप्तं	प्रज्ञप्तं	१७६	९
मिनिवोधिक ज्ञान	आमिनिवोधिक ज्ञान	१७६	१३
अवधि न	अवधिज्ञान	१७६	१९
क्षायोपशमिद	क्षायोपशमिद	१७६	२६
श्रुतज्ञानम्	श्रुतज्ञानम्	१७७	४
तत्	तत्	१७७	६
एतद्रूपं	एतद्रूपं	१७७	८
उच्यते	उच्यते	१७८	१३
चित्तण	चित्तण	१७८	२७
हेतुः	हेतुः	१७९	२
केलीकुमारभ्रम	केशीकुमारभ्रमण	१८०	१५
मनाऽम्	मनोऽम्	१८५	१
कर मरुच्छि	करमरुच्छि	१८५	५
त	तं	१८६	२२
अघि ए	अघम्मिए	१८६	२२
स्वभ्यापि	स्वभ्यापि	१८७	१०
क्षरार	क्षरीर	१८७	२२
सरीर	सरीरं	१८७	२९
ना	नो	१८८	१३
मनाऽम्	मनोऽम्	१८८	१७
विशेषणावशिष्टो	विशेषण विशिष्टो	१८९	५
खल	खलु	१८९	६
पएत्ति	पएत्ति	१८९	१४
राय	रायं	१८९	१४
एव	एवं	१८९	१४
सूरियकता	सूरियकंता	१८९	१५
तुम	तुमं	१८९	१५

	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
अशुद्ध	शुद्ध		
प्लाय	प्लायं	१८९	१६
च्छित्त	च्छित्तं	१८९	१७
सव्वालंकार भूसिय	सव्वालंकार भूसियं	१८९	१७
तुम	तुमं	१९०	२
पान्यणं	परियणं	१९०	४
त	तं	१९०	६
सम्	सम्मं	१९०	११
ण	णं	१९०	१२
लागं	लोगं	१९१	५
पएसि	पएसिं	१९१	१३
पएसि	पएसिं	१९१	१५
देवि	देविं	१९१	१७
प्रदेशन्	प्रदेशिन्	१९२	४
हं	हं	१९२	१०
हत्यविन्नगं	हत्य भिन्नगं	१९२	२५
व्यपरापय	व्यपरोपयेत्	१९३	१
शक्नोति	शक्नोति	१९४	६
शाप्रमागन्तुं	शीप्रमागन्तुं	१९५	१
शक्नाति	शक्नोति	१९५	१
शक्नाति	शक्नोति	१९६	३
”	”	”	५
तुम सधात्	तुम इम चात्	१९६	१२
सूर्यकाता देवा	सूर्यकान्ता देवी	१९८	१
नि क	निजक	१९९	४
मगर्यामधामिको	नगर्या मधामिको	२००	२
करमरवृत्ति	करमरवृत्ति	२००	३
ना शक्नाति	नो शक्नोति	२००	८
शरारन्वा	शरीरयो	२०१	१
वयासा	वयासी	२०१	५
अह	अहं	२०१	१३

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
आज्वया	अज्विया	२०२	४
सरीर	सरीरं	२०२	६
आगतु	आगतुं	२०२	६
अन्न	अन्नं	२०२	८
ना	नो	२०२	१४
वृत्त	वृत्ति	२०४	१
सा कामवादति	सा कामवादिति	२०६	७
इत्यात्राह	इत्यत्राह	२०८	३
वौच	पौत्र	२०८	७
वृत्ति	वृत्ति	२०८	९
”	”	”	१३
त माद्	तस्मात्	२०९	३
दिव्वेहि	दिव्वेहिं	२१०	१४
कामभोगेहि	कामभोगेहिं	”	१४
”	”	”	१७
अज्ज्ञोववण्णे	अज्ज्ञोववण्णे	२१०	१७
गघे	गंघे	२११	५
ठाणेहि	ठाणेहिं	२११	७
भिगार कड्च्छुय	भिगार कड्च्छुय	२११	१९
धार्मिकी	धार्मिको	२१२	२०
पडिसुणेज्जाति	पडिसुणेज्जासि	२१२	२५
शीघ्रमागन्तम्	शीघ्रमागन्तुम्	२१३	३
विशेषणोसे	विशेषणोसे	२१३	७
देवलाक	देवलोक	२१३	११
हुणोववन्नए	अहुणोववण्णाए	२१३	३०
उहे	उन्हे	२१४	१४
दिव्वेहि	दिव्वेहिं	२१४	१८
शक्काति	शक्कोति	२१५	२
अधुनापपन्नक	अधुनोनोपपन्नक	२१६	२
केश	केशी	२१७	१४

लामं	लोगं	२१७	१७
सधिवालेहिं	संधिवालेहिं	२१९	१२
जीवित	जीवितं	२१९	१४
णग्गए	णिग्गए	२१९	२२
अन्न	अन्नं	२१९	२३
भते	भंते	२२०	१
अउकुमीए	अउकुंभिए	२२०	१
अन्न	अन्नं	"	३
अयामयेन	अयामयेन	२२१	३
वारिक	दौवारिक	२२०	८
किचित्	किञ्चित्	२२२	२
जओ ण	जओ णं	२२२	१२
अवादित्	अवादीत्	२२२	५
रोएज्जा	रोएज्जा	२२२	२२
समपन्नाः	सम्पन्नाः	२२४	३
माहम्बक	माहम्बिक	२२४	१५
प्रवाव	प्रवाल	२२४	१८
पोथब्बु	पोथब्बु	२२४	२७
नाम्भ	नास्ति	२२८	१
काठचत्	किञ्चित्	२२८	१
सुण्डु	सुण्डु	२२८	३
मेरिच	मेरिं च	२२९	२६
से तेणं	से णूणं	२३०	२८
वहया	वहिया	२३०	२८
वा जाई	जाव राई	२३०	३१
अंकुष्ठितगतिः	अंकुष्ठितगतिः	२३१	१६
सहद्दाहि	सहद्दाहि	२३१	२७
सरीर	सरीरं	२३२	१७
ऐ १	ऐसा	२३३	६
भते	भंते !	२३३	११
नीवयाओ	जावियाओ	२३२	१५

तामयस्कुम्भी	तामयस्कुम्भी	२३४	१
कृमि कुम्भी मिव	कृमि कुम्भी मिव	२३४	१
जण्हाणं	जण्हाणं	२३४	३०
पश्यमि	पश्यामि	२३६	४
प्रतज्ञा	प्रतिज्ञा	२३६	१३
सु तिष्ठि	सुप्रतिष्ठिता	२३६	१३
केसिकु रसमणं	केसिकुमारसमणं	२३९	२३
सादृश्यम्	सादृश्यम्	२४१	२४१
अचर्मैष्टक द्रुघण	अचर्मैष्टकद्रुघण	२४३	१६
ता पभू	इंता पभू	२४४	४
अपः जत्तो	अपज्वतत्तो	२४४	८
नायमर्थसः मर्थः	नायमर्थः समर्थः	२४५	३
ोरिच्छरणं	कोरिच्छरण	२४५	२४
जैसे	जैसे	२४६	१३
एग	एगं	२४९	९
प्रज्ञा	प्रज्ञा	२४९	१८
गथी	नथी	२४६	२६
मं	महं	,,	२७
परिह्वत्तए	परिवहित्तए	२५०	३२
जइणं	जइणं	२५१	२४
कथर	कथन	२५१	३०
प्रसु	प्रसुः	२५२	९
जैसा	जैसा	२५२	१७
पएसि	पएसि	२५३	१९
तरुणा	तरुणो	२५५	१
शिल्पोपगतः	शिल्पोपगतः	२५५	१
ना	नो	२५६	२
राजामम्	राजानम्	२५७	२
बाहयायाम्पस्थानशालाया	बाहयायाम्पस्थानशालार्या	२६२	१६
बाहयायाम्पस्थानशालार्या	बाहयायाम्पस्थानशालार्या	२६२	२८
पयास	पयसि	२६३	१७

	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
अशुद्ध	जीवस्स	२६३	२१
जीयस्स	खलु	२६५	२
खल	पएसी	२६६	१
पएसा	एवं	२६६	१
एव	वयासी	२६६	१
वयासा	पदानां	२६८	७
पदाना	अम्हं	२६९	१०
अम्ह	पासइ	२७०	४
पा इ	तंसि	"	९
तसि	एगंते	२७०	११
एगत	संकप्पे	२७०	१३
सकपो	संकप्पं	२७०	१५
संकप्प	झियायमाणं	२७१	१
झियायमाण	तेसि	२७१	१
तेसि	उवएसलद्धे	२७१	१
उवएसलद्धे	खाइमं	२७१	९
खाइम	रायं	२७१	२२
रायं	केचित्	२७२	१
कचित्	वनोपजीविन !	२७२	१
वनापजीविन !	ज्योतिश्च	२७२	२
ज्यातिश्च	ज्योतिर्माज्जनं च	२७२	२
ज्यातिर्माज्जनं च	केइ पुरिसा	२७२	८
केइ पुरिसो	विज्झवेत्ता	२७३	६
विज्झवेत्ता	झियायइ	२७५	१२
झियाइ	बंघइ	२७८	१६
बघइ	करोति	२७९	१
कराति	अरणि	२७९	१
अरणि	और	२७९	७
आर	तएणं	२७९	१४
तएण	"	२७९	२६
"	"		

त्वाणञ्छसि	त्वमिच्छसि	२८०	५
अग्निपात्	अग्निपात्रे	२८२	१६
पारकरं	परिकरं	२८५	१५
पि वेशयति	परिवेशयति	२८६	२
परिपो	परिपदो	२८७	४
मञ्जे	मज्जे	२८७	१५
वर्तव्यावर्तव्यनिर्णायकानां-	कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायकानां	२८८	३
वक्तुम्	वक्तुम्	२८८	९
अवहेलहितुम्	अवहेलयितुम्	२८८	१०
योग्याऽग्नि	योग्योऽस्मि	२८८	१२
भा :	भावः	२८८	१३
जाणाम	जाणामि	२८८	१९
अवस्ज्झ	अवरज्झइ	२८८	१९
पाह्लोमं	पह्लोमं	२८९	१०
वामवामेन	वामं वामेन	२९२	१
अनष्ट	अनिष्ट	२९२	९
स्य	यस्य	२९३	४
ऋषपरिषदि	ऋषि परिषदि	२९३	१९
विरुद्धेनेत्यर्थः	विरुद्धेनेत्यर्थः	२९३	२९
त	तं	२९४	७
अयमे द्रूप	अयमेतद्रूप	२९४	११
यात्	यावत्	२९५	१
काणेन	कारणेन	२९५	३-४
यावच्छे न	यावच्छब्देन	२९६	४
प्रतिलाम प्रतिष्ठोमेन	प्रतिलोम प्रतिष्ठोमेन	२९६	५
मङ्गत्रयाक्त	मङ्गत्रयोक्त	२९९	१३
क्व	किं	३०३	२
पपसा	पपसी	३०३	१६
व्यजने	व्येजते	३०४	३
हस्ताभक्ष्य	हस्ताभक्ष्यत्	३१२	२३
नातिनिष्णाः	नीतिनिष्णाः	३०८	३

युक्तं	कुंथू	३१२	२३
हरती	हस्ती	३१३	१
गिच्छिह्वाइ	गिच्छिह्वाइं	३१४	८
सर	सतर	३१८	१२
कार शालायाः	कार शालायाः	३१९	३
काट शालायाः	कार शालायाः	३१९	७
त	तं	३२१	१
अह	अहं	३२१	१
एव	एवं	३२१	३
मोक्षमामि	मोक्ष्यामि	३२१	७
समासरणं	समोसरणं	३२१	२७
एव	एवं	३२३	४
अइगाढबंधणवद्धे	अइ गाढबंधणवद्धे	३२३	१९
करोत	करंति	३२४	५
तए ण	तए णं	३२५	७
विस्तारवली	विस्तारवली	३२६	१३
पासति	पासंति	३२७	२५
जाघ	जाघ	३२७	२८
सुबहुं	सुबहुं	३२८	८
पडिसुणेति	पडिसुणेति	३२८	१०
तउययारं	तउयमारं	३२८	१३
तत्यण	तत्यणं	३२८	१४
बंध तए	बंधितए	३२८	१५
वहुह	वहुहिं	३२९	३१
ग्रारंम	ग्रारंम	३३०	१०
दासीदासगामहिगवेलकं	दासीदासगोमहिसगवेलकं	३३१	१
प्राथश्चिताः	प्राथश्चिताः	३३१	२
मानु० कान्	मानुष्यकान्	३३१	४
पंचविहे	पंचविहे	३३१	३०
लाह	लोह	३३२	५
उ गच्छाह	उवागच्छाह	३३२	१९

त्वाणञ्छसि	त्वमिच्छसि	२८०	५
अग्निपात्	अग्निपात्रे	२८२	१६
पारकरं	परिकरं	२८५	१५
पि वेशयति	परिवेशयति	२८६	२
परिषो	परिषदो	२८७	४
मङ्गे	मङ्ग्ले	२८७	१५
वर्तव्यावर्तव्यनिर्णायकानां-	कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायकानां	२८८	३
वक्तुम्	वक्तुम्	२८८	९
अवहेलद्वितुम्	अवहेलयितुम्	२८८	१०
योग्याऽग्निम्	योग्योऽस्मि	२८८	१२
भा :	भावः	२८८	१३
जाणाम	जाणामि	२८८	१९
अवस्ज्झ	अवरज्झह	२८८	१९
पादलोमं	पदिलोमं	२८९	१०
वामवामेन	वामं वामेन	२९२	१
अनष्ट	अनिष्ट	२९२	९
स्य	यस्य	२९३	४
ऋपपरिषदि	ऋपि परिषदि	२९३	१९
विरुद्धेनेत्यर्थः	विरुद्धेनेत्यर्थः	२९३	२९
त	तं	२९४	७
अयमे द्रूप	अयमेतद्रूप	२९४	११
यात्	यावत्	२९५	१
कारणेन	कारणेन	२९५	३-४
यावच्छे न	यावच्छब्देन	२९६	४
प्रतिलाम प्रतिष्ठोमेन	प्रतिलोम प्रतिष्ठामेन	२९६	५
मङ्गत्रयाक्त	मङ्गत्रयोक्त	२९९	१३
कि	किं	३०३	२
पपसा	पपसी	३०३	१६
व्यजने	व्यजते	३०४	३
हस्ताभक्षवत्	हस्ताभक्षवत्	३१२	२३
नातिनिपुणाः	नीतिनिपुणाः	३०८	३

शुक्लं	कुंथू	३१२	२३
हरती	हस्ती	३१३	१
णिच्छिह्णं	णिच्छिह्णं	३१४	८
सर	सतर	३१८	१२
कार शालायाः	कार शालायाः	३१९	३
काट शालायाः	कार शालायाः	३१९	७
त	तं	३२१	१
अह	अहं	३२१	१
एव	एवं	३२१	३
मोक्षमामि	मोक्ष्यामि	३२१	७
समासरणं	समोसरणं	३२१	२७
एव	एवं	३२३	४
अहगाढबंधणवद्धे	अह गाढबंधणवद्धे	३२३	१९
करोत	करंति	३२४	५
तए ण	तए णं	३२५	७
विस्तारवली	विस्तारवाली	३२६	१३
पासति	पासंति	३२७	२५
जाध	जाव	३२७	२८
सुषहं	सुवहुं	३२८	८
पडिसुणेति	पडिसुणेति	३२८	१०
तउययारं	तउयमारं	३२८	१३
तत्थण	तत्थणं	३२८	१४
बंध तए	बंधित्तए	३२८	१५
वहुह	बहुहिं	३२९	३१
प्रारंभ	प्रारंभ	३३०	१०
दासीदासगाम्हिगवेलकं	दासीदासगोमहि वेलकं	३३१	१
प्रायश्चित्ताः	प्रायश्चित्ताः	३३१	२
मानुष कान्	मानुष्यकान्	३३१	४
पंचविहे	पंचविहे	३३१	३०
लाह	लोह	३३२	५
उगच्छाइ	उवागच्छइ	३३२	१९

प,थे।	पाम्थे।	३३३	२४
अग्रामिकायाः	अग्रमिकायाः	३३५	३
समीपे	समीपे	३३६	५
सहो हो	सहो हो	३३६	११
वर्णन	वर्णनं	३३७	५
प्रासादावन्तंसमान्	प्रासादावन्तंसमान्	३३७	१२
प्राश्चित्ताः	प्रायश्चित्ताः	३३७	१६
घृतदध्यक्षताः	घृतदध्यक्षताः	३३७	१६
विलास्यमानाः	विलास्यमानाः	३३७	२२
प्रत्यनुभवता	प्रत्यनुभवन्तो	३३७	२३
अल्पमूल्ये	अल्पमूल्ये	३३७	२६
द्वात्रिंशद्द्वैः	द्वात्रिंशद्द्वैः	३३७	३०
तित्मयः	विस्मयः	३३८	२
दुष्टासानम्	दुष्टावसानम्	३३८	५
अहममि	अहममि	३३८	६
तमाद्धेतोः	तमाद्धेतोः	३३८	११
अन्तराक्तः	अनन्तरोक्तः	३३८	१३
त	तं	३३८	१७
इच्छाम	इच्छामि	३३८	१७
देवानुप्रियाणामन्तिके	देवानुप्रियानामन्तिके	३३९	१
णमंसेज्जा	णमंसेज्जा	३३९	९
सत्तर	सत्कार	३३९	१२
प्रयाणामाचार्याणां	प्रयाणामाचार्याणां	३४२	२
जानामि	जानामि	३४२	२
वृत्ति	वृत्ति कल्पयेत्	३४२	५
मदन	मर्दन	३४२	१५
अक्षमयिस्वा	अक्षमयिस्वा	३४२	४
णमंसेज्जा	णमंसेज्जा	३४२	९
सत्तर	सत्कार	३४२	१२
केशीकुमारभ्रमणः	केशीकुमारभ्रमणः	३४४	१
प्रदेशा	प्रदेशी	३४४	१

कीदृशां	कीदृशी	३४४	७
खादिमेन	खादिमेन	३४५	३
केसि	केसिं	३४५	१३
ए	एवं	३४६	१
कनलं	कल्लं	३४६	२५
अंतेउर	अंतेउर	३४८	७
परिणनो	परिणतो	३४९	२
म सि	मनसि	३४९	३
इ थमेव	इत्थमेव	३४९	३
प्रि लोम	प्रतिलोम	३४९	६
व्यारु ।	व्याख्या	३४९	७
श्रे :	श्रेयः	३४९	७
शयन नन्तरं	शयनानन्तरं	३५०	४
ि शुक्र	किशुक्रः	३५०	७
सौमस्थितः	सौमनस्थितः	३५१	१०
वोष्यमिति	वोष्यमिति	३५१	१३
स्वकृत तिकूल	स्वकृत प्रतिकूल	३५१	२२
महातिमहालायां	महाति महालायायां	३५२	११
यङ्ग	सङ्ग	३५२	१५
उपदेय	उपदेश	३५२	२२
सुरिकं प मुहाणं	सुरिकंतप्पमुहाणं	३५२	२८
षणसिराय	षणसिरायं	३५३	२५
पहात्तरेथ	पहारेत्थ	३५३	२५
उवसोमेमाणा	उवसोमेमाणा	३५४	४
हासज्जइ	हसिज्जइ	३५४	७
मदन्द	मदन्त	३५५	२
णद्धसरलाइवा	णद्धसालाइवा	३५५	२२
रमणिज्जे	रमणिज्जे	३५५	२३
वनषण्ढा	वनषण्ढो	३५६	१
ना	नो	३५६	६
ना फल्लिए	नो फल्लिए	३५६	८

णा	णो	३५६	८
उवसोममाणे	उवसोभमाणे	३५६	९
तयाण	तयाणं	३५६	१६
”	”	”	२८
जयाण	जयाणं	३५६	२९
तयाण	तयाणं	३५७	२५
तजा	तया	३५७	२६
पुाव्व	पुञ्चि	३५८	२९
केशाने	केशीने	३५९	९
हरितक । ज्य	हरितकराराज्य	२५९	२५
जनेक	अनेक	३६१	१६
खादिमं	स्त्रादिमं	३६३	१०
अतेउरं च	अंतेउरं च	३६४	८
खल्ल	खल्ल	३६५	२
विमक्त,नि	विमक्तानि	३६६	१
यद्देनारभ्य	यद्दिनारभ्य	३६६	८
अतेउरं	अंतेउरं	३६६	१३
रज्ज	रज्जे	३६६	१६
रायं	राज्यं	३६७	१२
जपमियं	जप्पमियं	३६७	२४
केणि सत्थ	केणविसत्थ	३६७	१९
राज्यभिय	राज्यभियं	३६८	२
सेय	सेयं	३६९	७
विषय	विष	३६९	११
पूर्वसूत्रे	पूर्वसूत्रे	३७०	७
न सब	इन सब	३७०	१७
पडेजागरमाणी	पडिजागरमाणी	३७०	२२
अज्झत्थिए	अज्झत्थिए	३७०	२९
बलं= न्यं	बलं=सैन्यं	३७१	१
घा य थापनगृहम्	घान्यस्थापनगृहम्	३७१	२
विहरते	विहरति	३७१	४

शस्त्र योगेन	शस्त्रप्रयोगेन	३७१	५
मारयिवा	मारयित्वा	३७१	७
स्थापयेत्वा	स्थापयित्वा	३७१	८
कार नया	कास्यन्त्या	३७१	९
कोष	कोषं	३७१	२३
जनपद	जनपदं	३७२	१
आ मगतो	आत्मगतो	३७२	९
पाल तो	पालयतो	३७२	४
सुरियकं । देपी	सुरियकंता देवी	३७३	९
निठुरा	निठुरा	३७४	६
दाहकं ते	दाहकृते	३७४	७
विहह	विहह	३७४	७
दुरघ स	दुरघ्यास	३७४	१५
षाउन्भू ।	षाउन्भूया	३७४	१८
वित्तज्वर परिगयसरीरे	पित्तज्वर परिगयसरीरे	३७४	२०
डुया	कडुया	३७४	१९
ि हरह	विहरह	३७४	२०
करिमश्चित्	कस्मिश्चित्	३७४	२
तस्य	तस्य	३७५	७
नमो थुणं	नमोत्थुणं	३७७	१२
त थ यं	तत्थ गयं	३७७	१४
संपलियंकनिसने	संपलियंक निसन्ने	३७७	२२
व तिण	अंतिण	३७७	३२
त सेव	तस्सेव	३७८	७
प्रा तिपात	प्राणातिपात	३७८	८
उष्	उष्ण	३७८	१७
परिया	परित्याग	३७८	१९
त ह ाणि	तं ह्याणिं	३७८	२१
प्र याख्यान	प्रत्याख्यान	३७९	१२
उ हें	उन्हें	३७९	१२
सतारक	संस्तारक	३७९	२१

सपल्यङ्ग	संपल्यक	८०	१
श न	शब्देन	३८०	३
नमस् ।	नमस्कार	३८०	१६
भवान्	भगवान्	३८०	१६
वे	सर्वे	३८१	३
समत	समस्त	३८१	१२
याव जीव	यावज्जीव	३८१	१७
अतिचा ।:	अतिचारा:	३८३	२
सामाधिक:	सामायिक:	३८३	४
सूर्यामे	सूर्यामे	३८३	४
देव वेन	देवत्वेन	३८३	५
माप्तम्	ममाप्तम्	३८३	६
अधुनपपेन्नक	अधुनोपपन्नक	३८३	१३
भाषाननः पर्याप्त्या	भाषामनः पर्याप्त्या	३८४	१
सूर्यामदेवेन	सूर्यामदेवेन	३८४	८
उपार्जितः	उपार्जितः	३८४	१०
इंदि पञ्चतीए	इंदियपञ्चतीए	३८४	१२
इन्द्रय	इन्द्रिय	३८४	१३
मते	मंते	३८५	१
सेष	से णं	३८५	१८
ण	णं	३८५	२१
सूर्याम स	सूर्यामस्स	३८५	२२
भवन्त	भवन्ति	३८६	१
आयोगप्रयोगसं युक्तानि	आयोगप्रयोगसंप्रयुक्तानि	३८६	३
िच्छदित	विच्छदित	३८६	३
अ मस्मिन्	अन्यतमस्मिन्	३८६	४
कुलणि	कुलाणि	३८६	८
अङ्गाइ	अङ्गाइ	३८६	८
दिताइ	दिताइ	३८६	८
आ योग	आयोग	३८६	१४
चा	चार	३८७	१३

गन्मगयसि	गन्मगयंसि	३८९	३
विहकताणं	विहकंताणं	३८९	६
सुकुमाल पाणयाय	सुकुमालपाणिपाय	३८९	६
पियदंसण	पियदंसणं	३८९	८
दारय	दारयं	३८९	८
मविष त	मविष्यति	३८९	१०
व्यतिक्रातेषु	व्यतिक्रान्तेषु	३८९	११
दरगोसि	दारगंसि	३८९	१५
दारगस	दारगस्स	३८९	१८
दिवसे	दिवसे	३९०	६
त	तं	३९१	१
ामत्तणाइ	मित्तणाइ	३९१	३
मगल	मंगल	३९२	२७
भोयणमंडवसि	भोयणमंडवंसि	३९३	९
करेगे	करेंगे	३९३	१२
परिमृजेमाणा	परिमृजेमाणा	३९३	२७
परमसुइभू ।	परमसुइभूया	३९३	३१
बन्धि परिचनस्य	सम्बन्धिपरिचनस्य	३९४	१
मित्र—ञ्जात	मि —ञ्जाति	३९४	११
त सेव	तस्सेव	३९४	१०
धम्मे	धम्मे	३९४	२५
करिस्सति	करिस्संति	३९५	२७
संप्राप्ते	संप्राप्ते	३९६	४
फिरने	फिर वे	३९६	२०
।यश्चित्तौ	प्रायश्चित्तौ	३९७	१
म आस्वादन्तौ	आस्वादयन्तौ	३९७	१०
आद	आदि	३९७	१५
इ रेके	दूसरे के	३९७	२०
कथयतः	कथयिष्यतः	३९८	८
जिनप्ररूपिते	जिनप्ररूपिते	३९८	१०
दृढ प्रतिज्ञ	दृढप्रतिज्ञस्य	३९८	२१

बेल	वे लोग	३९८	२१
बगृहात्	स्वगृहान्	३९९	२
बढमियाह	बढमियाहिं	४००	२
पदिभ्रजमाणे	परिभ्रजेमाणे	४००	९
परां गज्जमाणे	परंगिज्जमाणे	४००	१२
खीर घाड ए	खीरघाड ए	४००	२३
बर्वरीमः	बर्वरीमिः	४०१	२
बकुशिका मः	बकुशिकाभिः	४०१	२
हे-बहलीहिं	बहलीहिं	४०१	२७
घ कञ्चुकि	घरकञ्चुकि	४०२	२
अधपाहिज्जमाणे	अधयासिज्जमाणे	४०२	२७
रिक्षिप्तः	परिक्षिप्तः	४०३	२
बहुप्रकारामिः	बहुप्रकारामिः	४०३	८
गिरिकंदरमल्लीण	गिरिकंदरमल्लीणे	४०३	२६
युवति मूहः	युवति समूहः	४०४	८
ह ताव्	हस्तात्	४०४	१२
अन्यया	अन्यस्या	४०४	१४
	गिरिकन्दरालीनः	४०५	२
पाडचारे	पडिचारं	४०६	१
वूह	वूहं	४०६	१
दढप्रतिञ्जं	द्रढप्रतिञ्जं	४०६	८
दढपइष्णं	दढपइष्णं	४०६	११
दढप्रतिञ्च	द्रढप्रतिञ्च	४०६	१२
तिहिकरणकूवष	तिहिकरणक्त्त	४०६	२३
नेः	नेष्यतः	४०७	१
दृारकं	दारकं	४०७	१
कणत्तश्च	करणत्तश्च	४०७	२
तएण	तएणं	४०७	८
गणि ँ हाणाओ	गणियप्पहाणाओ	४०७	९
वथुवीहिं	वथुवीहिं	४०७	३०
वथुविज्जं	वथुविज्जं	४०८	१४

दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०९	१६
तयाहि	तथाहि	४१२	८
नगरमानम्	नगरमानम्	४१५	२
दृढ ि ह्यं	दृढप्रतिज्ञं	४१८	२
संमाणेस्संति	सम्माणिस्संति	४१९	२२
"	"	"	३०
।।ञ्चणगमणुपत्ते	जोञ्चणगमणुपत्ते	४२०	२
परिपक्क	परिपक्कं	४२२	३
उम्मुक्कवालभाव	उम्मुक्कवालभाव	४२४	१४
स्वइयं	स्वाइयं	४२५	१७
पञ्चात्पलमिति	पञ्चोत्पलमिति	४२६	३
दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४२६	९
पउमेइवा	पउमेइवा	४२६	२५
मेत्त यते	मोत्त यते	४२७	१
अ गारिर्ता	अत्तगारिर्ता	४२७	२
इय्या ि	इय्या समितो	४२७	२
तगा । ओ	अगाराओ	४२७	९
आजं वसे	आजं वसे	४२७	१७
वद्धित	वद्धित	४२७	१९
मग्गेणं	मग्गेणं	४२७	२९
दृढ कुमार	द्रढकुमार	४२८	१०
मणवयण कायजोगे	मणवयण कायजोगे	४२८	३०
वस्समोगेषु	वस्समोगेषु	४२९	२
भविष्यति	भविष्यति	४२९	४
ना	नो	४२९	४
अ सहस्स		४२९	४
ने पल्लिप्तं	नोपल्लिप्तं	४३०	१
सञ्चआ	सञ्चओ	४३१	४
दृती ।	दृतीया	४३२	८
सवथा	सर्वथा	४३३	२
कायात्सर्ग	कायोत्सर्ग	४३३	२१

कायगुप्तिर्निगद्यते	कायगुप्तिर्निगद्यते	४३३	३३
हांगे	होंगे	४३५	१२
दोर्ना	दोर्ना	४३५	१५
समृपपादके	समृपादके	४३७	२
नहीं	नही	४३९	१७
कुञ्जर	कुञ्जर	४३९	१०
अर्थात् ईष	अर्थात्—कषाय	४३९	१७
निरवसानम्	निरवसानम्	४४०	८
तर्जनाः	तर्जनाः	४४३	३
जस्सद्वाए	जस्सद्वाए	४४३	२१
वेयचेरवासे	वंभचेरवासे	४४३	२२
चरिमेहिं	चरिमेहिं	४४३	३३
आमनः	आत्मनः	४४४	३
कदेगे	कादेगे	४४४	१७
इत्यादिकवचनरूपा	इत्यादि वचनरूपा	४४५	७
यस्य कृते	यस्य कृते	४४६	३
सेव मंते !	सेवं मंते !	४४७	१
माग	मार्ग	४४८	१०

॥ समाप्त ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल
व्रतिविरचितया सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया
समलङ्कृतम्

श्री राजप्रश्रीयसूत्रम्

(द्वितीयो भागः)

गौतमस्वामी पुनः पृच्छति—

मूळ-सूरियाभेण भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्की सा दिव्वा देव
ज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमन्नागया ? पुव्व-
भवे के आसी ? किं नामए वा किं गोत्ते वा ? कयरंसि वा गामंसि वा
नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा
मडंबसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा
सवाहंसि वा संनिवेसंसि वा किवां, दच्चा, कि वा भोच्चा, कि वा
किच्चा, किं वा समायरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माह-
णस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सुच्चा निसम्म
सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविङ्की दिव्वा देवज्जुई लद्धा पत्ता
अभिसमण्णागया ? ॥ सू० १८ ॥

छाया—सूर्याभेण भदन्त । देवेन सा दिव्या देविङ्की सा दिव्या देव-
श्रुतिः कथं लब्धा कथं प्राप्ता कथम् अभिसमन्नागतता ? पूर्वं भवे क आसीत् ?

सूरियाभेण भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्की सा दिव्वा इत्यादि ।
सुत्रार्थ—(सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्की सा दिव्वा
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) हे भदन्ता

सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्की सा दिव्वा इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविङ्की सा दिव्वा
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) ॥ ६६८ ॥

किन्नामको वा ? किं गोत्रो वा ? कनमग्निन् वा ग्रामे वा नगरे वा निगमे वा राजधान्यां वा खेटे वा ऋवटे वा महम्ने वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा आकरे वा आश्रमे वा संवाहे वा सन्निवेशे वा किं वा दत्त्वा, किं वा

सूर्याभदेवने वह दिव्यदेवर्द्धि वह दिव्य देवधुति, कैसे लब्ध की, कैसे प्राप्त की, अर्थात् किस प्रकार से उपाजित की ? किम प्रकार से उपाजित की गई वह उमने अपने आधीन को, और कैसे उसने अपने आधीन होने के बाद उसे अपने भोग के योग्य बनाया ? (पुव्वभवे के आमी ? किना मए वा ? किं गोत्ते वा ? कयरंसि वा गामंसि वा ? नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडसि वा कव्वडंसि वा महंबंसि वा पट्टणंसि वा दोग्गुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संवाहंसि वा) तथा पूर्वभवे में वह किस जाति का था ? क्या इसका नाम था ? गोत्र से वह कौन था ? तथा किस ग्राम में—वृत्तिवेष्टितस्थान में, किस नगर में—अष्टादशकरवर्जितवस्ती में, किसनिगम में—प्रभूततर वणिग्जननिवासस्थान में, किस राजधानी में—राजाके निवास से युक्त स्थान में किस खेट में धूलिप्राकारपरिवेष्टितस्थान में किस ' में झुल्लकप्राकारपरिवेष्टित स्थान में, किस महम्ब में साद्धंकोशद्वयान्तर्ग्रामान्तररहित स्थान में, किस पत्तन में जलमार्गयुक्तस्थान में, वि द्रोणमुख में—जलस्थलमार्गोपेत जननिवास में, किस आकर में—सुवर्णरत्ना

सूर्याभदेवे ते दिव्य देवर्द्धिं ते दिव्य देवधुतिं क्वेणी रीते उपाजितं करीने तेने पोताने अधीन बनावी. अने स्वाधीन भनेही दिव्यदेवर्द्धिं वगेरेने तेणे भोग योग्य क्वेणी रीते बनावी ? (पुव्व भवे के आसी ? किं नामए वा ? किं गोत्ते वा ? कयरंसि गामंसि वा नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडसि वा कव्वडंसि वा महंबंसि वा पट्टणंसि वा दोग्गुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संवाहंसि वा) अने पूर्वभवेमां ते कथं भूतिनेा हुते ? तेत्तं शुं नामं हुत्तं ? तेत्तं गोत्रं शुं हुत्तं ? ते कथा गाममां—वृत्ति वेष्टित स्थानमां, कथा नगरमां—अष्टादशकर जेमां देवमां आवे नहि ते वस्तिमां, कथा निगममां—वणिग्जो देमां वधादे सुंभ्यामां रहेता होय ते नवासस्थानमां, कथं राजधानीमां—राजा जे नगरमां रहेतो हुय अने शासन चलावतो होय ते स्थानमां, कथा जेटमां भाटीनी हीवाल जेने शोभेर भनेही छे तेवी वस्तीमां, कथा कर्णटमां—नानी हीवालथी परिवृत्त स्थानमां, अर्द्धि जाड सुधी हर हर भील्य केअ वस्ती होय नही तेवा स्थानमां कथा पट्टनमां—जलमार्ग युक्त स्थानमां, कथा द्रोणमुखमां जलस्थल मार्गोपेतजन-

भुक्त्वा, किं वा कृत्वा, किं वा समाचर्य कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहणस्य वा अन्तिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य सूर्याग्नेय देवेन सा दिव्यः देवर्द्धिः दिव्या देवर्द्धितः लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वा । ? ॥ सू० ९८ ॥

‘सूर्याग्नेय’ इत्यादि ।

टीका—हे भदन्त ! सूर्याग्नेय देवेन दिव्या=देवसम्बन्धिनी देवर्द्धिः=देवसम्बन्धिनी सातिशयविमानादि ऋद्धिः कथं=केन प्रकारेण लब्धा=

दिक की उत्पत्तिवाले स्थान में, कि आश्रम में—तापसनिवास स्थान में, किस संवाह में—किसानों द्वारा धान्य की रक्षा के निमित्त निर्मित दुर्गभूमिस्थान में, अथवा किस संनिवेश में—समागतसार्थवाहादि के निवासस्थानमें, किं वा दक्षा, किं वा भोक्षा, किं वा विद्या, किं वा समाचरिणा कस्य समणस्स वा तहारूपस्स माहणस्स वा अन्तिके एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं मोच्चा निसम्म सूरियाग्नेयं देवेणं सा दिव्या देवर्द्धिं दीव्या देवर्द्धिं, लब्धा, प्राप्ता, अभिसमण्णागया) अमयदान, सुपात्रदान, करुणादानादिकों में से कौन से दान को देकर, आचाम्ल आदि तर्पों में अथवा अन्य किसी समय में कौन से अरस धिरस आदि आहार को खाकरके, प्रतिक्रमण, प्रमार्जन आदि किस कृत्यको करके अथवा किस प्रकार के शीलादिक का समाचरण करके किस तथारूप श्रमण—निर्ग्रन्थ साधु के, अथवा किस द्वादशव्रतधारी श्रावक के, पास में एक भी तीर्थकर प्रतिपादित पापनिवृत्ति-निरवध वचन सुनकरके एवं उन वचनों को आदेयरूप मानकर हृदय में

निवासमा, कथा आकरमां—सुवचुरल-वगेरे न्याथी नीकणे छ तेवा स्थानमां, कथा आश्रममा—तापस निवास स्थानमां, संवाहमां—धान्यनी रक्षा भाटे जेइतोअे जे स्थान विशेष पर दुर्ग स्थाना करी होय ते वस्तीमां, अथवा कथा संनिवेशमां—सार्थवाहो न्या आचने रहे ते स्थान विशेषेमा, (किंवा दक्षा, किंवा भोक्षा, किंवा विद्या किंवा समाचरिणा कस्य वा तहारूपस्स समणस्स वा माहणस्स वा अन्तिके

उपार्जिता ? कथं=केन प्रकारेण प्राप्ता=उपार्जिता सती स्वायत्ती भूता ! कथं=
 केन हेतुना अभिसमन्वागता अभिमुख्येन सम्=साङ्गत्येन अनु=पश्चात्-
 स्वायत्ती भवनानन्तरम् आगतो=भंग्यतामुपगता ? , तथा-सा दिव्या देव-
 द्युतिः=देवसम्बन्धिनी शरीराभरणादिकान्तः कथं लब्धा ? कथं प्राप्ता ? कथम्
 अभिसमन्वागता ? , तथा-पूर्व भवे=पूर्व जन्मतेन स क=किञ्चिज्ज्ञानीयं आसीत् ?
 किञ्चामको वा स आसीत् ? किं गोत्रः=गोत्रेण वा स क आसीत् ? तथा--
 कतमस्मिन् वा ग्रामे-वृत्तिवेष्टिते नगरे-अष्टादशरुचिर्जिते, निगमे-प्रभूतर
 वणिगुजननिवासस्थाने राजधान्याम्=गङ्गा निवासोपलक्षिते स्थाने वा खेटे-
 धूलिपाकारपरिवेष्टिते, कबटं-शुल्लपाकारपरिवेष्टिते, मडम्ये-सार्द्धक्रोशद्वयान्त
 र्ग्रामान्तररहिते, पत्तने, जलमार्गयुक्ते म्याने, द्रोणमुखे-जलस्थलमार्गोपेते
 जननिवासे. आकरे=सुवर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थाने, आश्रमे तापसनिवासस्थाने,
 संवाहे-कृषीवलैर्धान्यरक्षार्थं निर्मिते दुर्गभूमिस्थाने, सन्निवेशे-समागतसा
 र्थवाहादिनिवासस्थाने, किं वा-अभयदानसुपात्रदानकरुणादानादिकं दत्त्वा,
 किं वा आचामाम्लादितैस्सु अन्यममयेऽपि च अरसविरसादिकं भुत्त्वा,
 किं वा-पौषधप्रतिक्रमणप्रमार्जनादिकं कृत्वा, किं वा-शीलादिकं समाचर्य=
 विधाय, कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य=निश्रान्थमाधो वा माहनस्य=द्वादश-
 व्रतधारिश्चावकस्य वा अन्तिके=ममीपे एकमपि आर्यम्=आर्यसंबन्धिक-
 तीर्थकरप्रतिपादितमित्यर्थः, सुवचनं=पापनिवृत्तिरूपं निरवद्यवचनं शुत्वा=
 आकर्ण्य, निशम्य=तद्वाक्यमादेयत्या इध्वधार्थं सूर्याभेग देवेन सा दिव्या
 देवर्द्धि दिव्या देवद्युतिल्लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वागता ? इति ॥ सू. ९८

मूलम्—“गोयमाइ” समुणै भगवं महावीरे भगवं गोयमं

अमंतेत्ता एव वयासी

एवं खलु गोयमा । तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्वीवे दीवे
 भारहे वासे केयइअद्धे नामे जणवए होत्था, रिद्धित्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं

धारण करके हम सूर्योद्देव ने बह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति उपार्जित
 कि है ? अपने आधीने की है ? और अपने भोग के योग्य बनाई है ? ॥

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० ९८ ॥

आदेवइपथी स्वीकारिने लुद्धयमा धारण करीने सूर्योद्देव ते दिव्य देवर्द्धि दिव्य देव-
 द्युति भेगवी छ ? पोताने आधीन बनावी छ ? अपने पोताना भाई लोग योज्य
 बनावी छ.” टीकार्थ—आने स्पष्ट छ. ॥ ६८ ॥

केय इअद्धे जणयए सेयवियाणोपं नयरा होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा
जाव पडिरूवा । तीसे णं सेयावियाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे
दिसीभाए एत्थणं मिगवणे णाम उज्जाणे होत्था सव्वोउपपु-
प्फफलसमिद्धे रम्मं नंदणं वणणप्पगासे सायलाए सुभसुरभिसीय-
लाए छायाए सव्वओचेव समणुवद्वी पासाईए जाव पडिरूवे । तत्थ
णं सेयवियाए णगरीए पएसी णामं राया होत्था, महया हिमवंत जाव
विहरइ । अधम्मिए अधम्मिट्ठे अंधम्मक्खाई अधम्माणुए अधम्म-
पलोई अधम्मपजणणे अधम्मसीलसमुयायारे अधम्मेण चेव वित्तिं
कप्पेमाणे 'हणछिदभिद'—पवत्तए लोहियपाणी पात्रे चडे रुदे खुद्धे
साहसिए उक्कंचण—वंचण—माया—नियडि—कूड—कवड—साइ संप-
ओगबहूले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निम्मरे निपक्कक्खाणपोसहो-
ववोसे बहूणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपपक्खीसिरिसवाणघायाए वहाए
उच्छेयणयाए अधम्मकेऊ समट्टिए, गुरूणं णो अब्भुद्धेइ, णो विणय
पउंजइ, सयस्स वि यणं जणवयस्स णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेइ।सू९९।

छाया—गौतम ! इति श्रमणो भगवान् महावीरो भगवत्तं गौतमम्
आमन्त्रय एवमवादीत्—

'गोयमाइ' सम्मणे भगव महावीरे भगवं गोयमं आम तेत्ता' इत्यादि ।
सुत्रार्थ—(गोयमाइ सम्मणे भगव महावीरे भगव गोयमं आमंतेत्ता
एवं वयासी) हे गौतम ! इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीरने भग-
वान् गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—(एव खलु गोयमा !

'गोयमाइ' सम्मणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आम तेत्ता' इत्यादि ।
सुत्रार्थ—(गोयमाइ सम्मणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमतेत्ता एवं
वयासी) हे गौतम ! आ प्रभाञ्छे गौतमने संबोधित क्षीने भगवाने तेने आ

एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे-द्वीपे भारते वर्षे केकयाद्धं नाम जनपद आसीत् ऋद्धस्तिमितसमृद्धः । तत्र खलु केकयाद्धं जनपदे श्वेतविका नाम नगरी आसीत्, ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत् प्रतिरूपा ।

तेणं कालेणं तेणं समएण इहेव जम्बूद्वीवे दीवे भारते वासे केयइअद्धे नामे जणवए होत्या) हे गौतम ! मैं इस विषय में तुम से कहता हूँ सो तुम उसे सुनो-बात ऐसी है-इस अवसरिणीकाल के चतुर्थ धारकरूपकाल में और केशि वामी के विहरण के समय में इस जम्बूद्वीप नामके मध्यजम्बूद्वीप म भरतक्षेत्र में केकयाद्धं नामका जनपद-देश था. तात्पर्य कहने का यह है कि केकयदेश का आधाभाग आर्यजनों का निवासस्थानरूप था और आधाभाग अनार्यजनों का निवासस्थानरूप था इस तरह आर्य अनार्य के निवासस्थानभूत होने से केकयदेश को यहां आधे आधेरूप में पृथक् पृथक् जनपद कहा गया है (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिरूवा) यह केकयाद्धं ऋद्ध-नमस्तलम्पर्शी अनेक भवनादिकों से युक्त था, एवं बहुजनसंकुल था, स्तिमित-स्वचक्र परचक्र के मय से रहित था, एवं समृद्ध-धनधान्यादि से परिपूर्ण था यावत् प्रतिरूप था (तत्थण केयइअद्धे जणवए सेयविया णामं णयरी होत्या) उम केकयाद्धं जनपद में श्वेतविका नामकी नगरी थी. (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिरूवा) यह नगरी भी ऋद्ध. स्तिमित और समृद्ध थी. एवं प्रतिरूप-सर्वोत्तम थी (तीसे णं सेयवियाए नयरीए वडिया

प्रभाषे षड्-एवं खलु गौतम । तेण कालेण तेणं समएणं इहेव जम्बूद्वीवे दीवे भारते वासे अद्धे नामे जणवए होत्या) हे गौतम ! आ विषे णे षड् हुं तमने षड् ते तमे सावणे. विगत आ प्रभाषे छे के-आ अवसरिणी कालना चोथा आरक-इप कालमां अने केशिस्वामीना विहरणना समयमां आ जम्बूद्वीप नामना मध्य जम्बूद्वीपमा भरतक्षेत्रमा केकयाद्धं नामे जनपद-देश-होतो तात्पर्यं अे छे के केकय देशना अर्धा भागमा आर्यजनो निवास करता हुत्ता अने अर्धा भागमा अनार्यजनो रहेता हुतां. अेथी ज आर्यो अनार्योना निवासस्थानइप ते केकयप्रदेशने अर्धा अर्धा इपमा लुब्ध लुब्ध जनपदोना नामे सलोचित करवामां आण्ये छे. (रिद्धत्थिमिय-समिद्धा जाव पडिरूवा) आ केकयाद्धं देश ऋद्ध नमस्तलम्पर्शी, धन्यु भवनेो वगेरे-थी युक्त हुतो, अने बहुजन संकुल हुतो, स्तिमित-स्वचक्र परचक्रनी पीकथी रहित हुतो अने समृद्ध धनधान्य वगेरेथी परिपूर्ण हुतो यावत् प्रतिरूप हुतो (तत्थणं केयइअद्धे जणवए सेयविया णामं णयरी होत्या) १ केकयाद्धं जनपदमां श्वेतविका नामे नगरी हुती (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिरूवा) आ नगरी पञ्च ऋद्ध स्तिमित अने समृद्ध हुती अने प्रतिरूप-सर्वोत्तम हुती. (तीसे णं सेयवियाए

तस्या. खलु श्वेतविकाया नगर्या बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु
मृगवनं नाम उद्यानम् आसीत्-सर्वतुंक पुष्पफलसमृद्धं रम्यं नन्दनवनप्रकाश-
मसुरभिशीतलया छायाया सर्वत्र एव समनुबद्ध मासादीयं यावत् प्रति-
रूपम्। तत्र खलु श्वेतविकायां नगर्या प्रदेशी नाम राजा आसीत्-महाहि-
मवन्-यावद् विहरति। अधार्मिकः अधर्मिष्ठः अधर्मरूपातिः अधर्मानुगः

उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं मिगवणे णामं उज्जाणे होत्था) उस श्वेत-
विका नगरो के ईशान कोने में मृगवन नामका उद्यान था (सन्वोउयपुष्प-
फलसमिद्धे रम्मे, नंदनवणप्पगासे सुमं सुरभिमीयन्नाए छायाए मन्वओ चेव
समणुषद्धे पासार्हए जाव पहिरुवे) यह उद्यान छहों ऋतुओं के पुष्पों एवं
फलों से युक्त था. अतः मनोरम था, नन्दनवन के जैसा था. शुभ-सुखावह
होने से अच्छी, एवं सुरभि-मनोज्ञ एवं शीतम्पर्शवाली ऐसी छाया से
सर्वत्र यह समनुबद्ध-युक्त था, मासादीय था यावत् प्रतिरूप था (तत्थ णं
सेयवियाए णगरीए पएसी णामं राया होत्था) उस श्वेतविका नगरी
में प्रदेशी नामका राजा था, (महया हिमवन जाव विहरइ) इसमें
महाहिमवान्, महामलय, मन्दर-(मेरुपर्वत) एवं महेन्द्र के जैसा था
(अधम्मिए, अधम्मिद्धे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए, अधम्मपलोई, अधम्म
पजणणे अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मणेण चेव विस्सि कप्पेमाणे) परन्तु वह
धार्मिक नहीं था अधर्माचारी था, अतिशयरूप से अधर्माचरणशील था,
अतएव अधर्मद्वारा ही यह जगत में प्रसिद्ध हुआ था. अधर्मानुयायी

नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं मिगवणे णाम उज्जाणे
होत्था) ते श्वेतनगरीना धंथानं केषुमां मृगवन नामे उद्यानं इत्तुं. (सन्वो उय
पुष्प. समिद्धे रम्मे, नंदनवणप्पगासे सुमंसुरभिमीयन्नाए छायाए सन्वओ
चेव समणुषद्धे पासार्हए जाव पहिरुवे) आ उद्यानं षड्ऋतुज्योनां पुष्पो तेभश्च
क्षेत्रेणैव समृद्धं इत्तुं. ज्येष्ठी नन्दनवन ज्येष्ठं मनोरम इत्तुं. शुभ-सुखावह होवा महद
आरी, अने सुरभि-मनोरा-अने शीतस्पर्शवाणी छायाथी ते सर्वत्र समणुषद्ध-युक्त
इत्तुं. प्रासादीय इत्तुं. यावत् प्रतिरूप इत्तुं. (तत्थ णं सेयवियाए णगरीए पएसी
णामं राया होत्था) ते श्वेतविका नगरीमां प्रदेशी नामे राजा इतो. (महया हिमवन्त
जाव विहरइ) ज्येष्ठा महाहिमवान्, महामलय, मंदर (मेरुपर्वत) अने महेन्द्र ज्येष्ठ
अण इत्तुं. (अधम्मिए, अधम्मिद्धे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए, अधम्मपलोई,
अधम्मपजणणे, अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मणेण चेव विस्सि कप्पेमाणे)
अथ ते धार्मिक इतो नहि अधर्माचारी इतो, अथ च अधर्माचरक्षुमां प्रवृत्तं रणेनार

अधर्मप्रलोकी अधर्मप्रजननः अधर्मशीलसमुदाचारः अधर्मणैव वृत्तिकल्पयन्
 'त्रहि त्रिन्धि मिन्धि' प्रवर्त्तकः लोहितपाणिः पापः चण्डो रौद्रः क्षुद्रः साहसिकः
 उत्कठचन-वठचन-माया-निकृति-कूटकपटसतिसम्प्रयोगवहुओ निश्शिलो
 निर्द्वतो निर्गुणो निर्मर्यादो निष्प्रत्याख्यानपौषधोपनासो बहूनां द्विपदचतु-

या, अधर्म का ही निरन्तर चिन्तवन क्रिया करता था, प्रजाजनों में भी वह
 केवल प्रकर्षरूप से अपने उपदेशों द्वारा अधर्म को ही भरा करता था,
 उसे ही प्रोत्साहित किया करता था, कूटर कर इसके स्वभाव में अधर्म
 भाव भरा हुआ था, और कार्य भी यह इसी प्रकार के कियो करता था—
 यहातक कि यह अपनी जीविका भी अधर्म से ही चलाया करता था. तथा
 ('हण-छिंद-भिंद'-पवत्तण लोहियपाणी पावे चडे, रुई, खुई, साहसिए. उक चण,
 वंचण. माया-नियहि-कूड-कवडे साइ सपओगवहुले, निस्सीले, निच्चए,
 निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चवखाणपोसहोववासे बहूणं) मारो, काटो, दो टुकडे
 करदो इत्यादि वाक्यों द्वारा जीवो के हिंसादिक कार्यों में अपने आश्रित
 जनों को प्रवृत्तिशील बनाया करता था, इसके हाथ सदा रक्त से भरे
 रहते थे, यह साक्षात् पापका अवतार था, क्यों कि पापकर्म में यह सदा
 परायण बना रहता था, यह बहुत अधिक क्रोधी था, रौद्र-रूप होने
 से भयानक था, तुच्छ बुद्धिवाला होने से क्षुद्र था. सहस्राकर्मकरणशील

होता योही, ते अधर्मीना इपमा न जगतमा प्रसिद्धं यथं गथीं हतो. ते अधर्मा-
 नुयाथीं हतो ते रातदिवस अधर्मं तुं न चित्तं कर्थां करोते हतो प्रजानीं सामे पशु
 ते अधर्माचरन्तरं प्रवृत्तं यवानां उपदेशो आपतो रहतेो हतो ते अधर्माने न
 प्रोत्साहितं करोते रहतेो हतो तेना अशु अशुमा अधर्मं न व्यापकं यथं रक्षी
 हतो तेना गधा कार्ये पशु अधर्माथी प्रेराने यता हता ते पेतानुं बरिषु
 पोषयुं पशु अधर्मा आधारे न करोते हतो तेमं ("हणंछिंद भिंद
 पवत्तण लोहियपाणी पावे चडे, रुई, खुई साहसिए, उक चण, वंचण,
 मायानियहि कूड-कवडे साइ सपओगवहुले, निस्सीले, निच्चए, निग्गुणे, निम्मे
 निप्पच्चवखाणपोसहोववासे बहूणं) मारो, काटो, दो टुकडे करी नापो वगेरे वाक्ये
 वडे ते एवेना हिंसा वगेरे कार्येना पेताना आश्रितानं प्रवृत्तिशीलं सांभतो
 हतो तेना हथी सदा रक्तथी भरआयेला रहतेो हता ते साक्षात् पापनो अवतार
 हतो केमडे ते सदा पाप परायण न रहतेो हतो अपयुं महुं कोधी हतो, रौद्र-
 करुण होवाथी भयानक हतो, तुच्छबुद्धिवाणो होवाथी क्षुद्र हतो, सहस्राकर्मकरणशील

व्यदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणां घाताय वधाय उच्छेदनाय अधर्मकेतुः समुत्थितः,
गुरूणां नो अभ्युत्तिष्ठति नो विनय प्रयुङ्क्ते. रवकस्यापि च जनपदस्य नो
सम्यक् करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति ॥ म० ९९ ॥

होने से अर्थात् विना विचारे कार्य करनेवाला होने से माहसिक था, उत्कोच-
कांच, वंचन-परप्रतारण, माया-परवंचनबुद्धि, निर्कृतिगूढमाया, कूट-गूढमाया
को हंकने के लिये अन्धमाया करना, कपट-वेष माया आदिको बदलना-
विपरीत बना लेना, इन सब का जो सातिसंप्रयोग-प्रकर्षरूप से व्यापार
उस व्यापार से यह व्याप्त था, तथा, निश्शील-शीलवर्जित था, निर्द्वैत-
हिंसादिककुकृत्यरूप पापों से विरति का अभाववाला होने से व्रतरहित था,
निर्गुण-क्षान्त्यादिक गुणों के अभाव से युक्त होने के कारण निर्गुण था,
निर्मर्यादः-मर्यादा रहित था, परस्त्री वर्जनादिरूप मर्यादा से रहित होने के
कारण निर्मर्याद था, प्रत्याख्यान, पौषध और उपवास इनसे रहित था,
तथा अनेक (दुत्पयचउत्पयमिषपसुपवस्त्री सिरिसवाणघायाए बहाए अच्छेय-
णयाए, अधम्मकेऊ समद्विए) द्विपद-मनुष्य वगैरह, चतुष्पद-मृगादि वगैरह
पशु-प्राण की राय वगैरह, सरीसृप-शुजपरिसर्प एवं उरःपरिसर्प-न
सर्प आदि इन सब की हत्या करने, इन्हें मारने में-चोट पकड़चाने
और प्राण रहित करने के लिये अधर्मरूप केतुग्रह के जैसा उत्पन्न
हुआ था, अर्थात् केतुग्रह के उदित होने पर लोक में जिस प्रकार से

होवाथी अटके के वगर विचार्युं धर्म करनार होवाथी-ते साहसिक हतो. उट्कोच-
कांच, वंचन-पर प्रतारण, माया-परवंचन बुद्धि निर्कृति-गूढ माया, कूट-गूढमायाने
बुधवावा भट्टे भीलु माया करवी, कपट वेष बापा वगैरे अहंकी नाभवा, आ अथा
इशुबोनी प्रभ्यता तेमां विद्यमान हती. तथा ते निश्शील-शील वर्जित हतो, निर्द्वैत-
हिंसा वगैरे कुकृत्यरूपपापो तरक्ष प्रवृत्ति राभनार होवाथी ते अत वगरसा हतो,
निर्गुण-क्षान्ति वगैरे शुभो तेमां नहोता तेथी ते निर्गुण हतो, निर्मर्याद-मर्यादा
रहित हतो. परस्त्री वर्जनादिरूप मर्यादाथी रहित होवा अहंका निर्मर्याद हतो. ते
प्रत्याख्यात, पौषध अने उपवास वगर हतो. धष्ठा (दुत्पय चउत्पय मिषपसुपवस्त्री
सिरिसवाणघायाए बहाए अच्छेयणयाए, अधम्मकेऊ समद्विए) द्विपद-
माधुस वगैरे अतुष्पद-मृग वगैरे, पशु-गाय वगैरे, पक्षी-शकटीयो वगैरे, सरीसृप-
शुजपरिसर्प अने उर.परिसर्प-नकुल सर्प वगैरे आ अधाने हसुवाभा, भारवाभा.
अने अनेने समूल नष्ट करवाभा ते अधर्मने प्रत्यक्ष अवतार अने केतुग्रह नेवे
उदित थथे हतो अटके के केतुग्रह न्यारे उदित थाय त्यारे लोकमा नेम धष्ठा

गोयमा !-इति--

टीका--गौतमस्वामिनः प्रश्न श्रुत्वा श्रमणो भगवान् महावीरो भगवन्तं
 गौतमस्वामिनं 'गौतम' इति आमन्त्र्य=सम्बोध्य एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण
 अवादीत्=उक्तवान्-हे गौतम ! एवं खलु त्वम् जानीहि-तस्मिन् काले=अस्या
 श्वसर्षिण्याथतुथारिकलक्षणे काले, तस्मिन् समये केशिस्वामि-विहरणोपलक्षिते
 समये-इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे=मध्यजम्बूद्वीपे भारते वर्षे=भरतक्षेत्रे केकयाद्वे-
 जन्म-जनपदो=देश आसीत् । अत्रेदं बोध्यम्-केकयदेशस्य=अर्द्धम् आसीत्
 कृत्वासास्थानम्, अथ च अनार्यजननिवासस्थानम् । आर्यानार्ययोर्विवासे
 भूतत्वात्-केकयस्य अर्द्धद्वय पृथक्पृथगजनपदत्वेन विवक्षितमिति । सौकेकी
 अर्द्धं जनपदकदस्तिमितसमृद्धः- तत्र-अर्द्धजनमः सर्षिबहुलप्रासादयुक्तो- तत्र
 जनसंकुलश्च, स्तिमितः स्वचक्रपरत्नक्रमयरहितः, समृद्धः=धनवृत्त्यादिपरिपूर्णो
 पदवयस्य, कर्मधारयः । तत्र-खलु; केकयाद्वे-जनपदे-श्वेतविक्राशाः नाम
 आसीत् । तत्र-नगरी-कदस्तिमितसमृद्धा-यावत्-प्रतिरूपान्-यावत्प्रदे-
 पृथक्पृथक्प्रोक्तवन्प्राज्ञगरीवर्णनपर-पदसमूहोऽत्रापि-सौकेकी-प्रतिक्रान्त
 सौकेकी-च, आसीत् । तस्याः-खलु-श्वेतविक्राशाः नगर्या-वर्षिणा-वासाप्रदे-
 सौकेके दिग्भागे-ईशानकोणे अत्र-खलु-मृगवन्तं नाम उद्यानम् आसीत् । तत्र
 तत्र-सर्वं तुंकेपुष्पफलसमृद्धम्=प्रहस्तुसंविधिपुष्पफलसमृद्धम् इत्यर्थः

अनेकविधव- (उपद्रव) होते हैं, उसी प्रकार से इस राजा के शासन की
 पर देशम्, में प्राप्त था (गुरुणां णो अन्मुद्रेण) णो विष्णुय पतुजह
 जगत्सु-विष्णुणं जणव्यसु णो सम्मं करमराविस पवत्तु) कुरते, पु
 अप्पमित्तिदिक्कं एउज्जनीके देसकस्स यत्त उतत्तं अत्तरत्ताने के विष्णु
 -जहो त्थो, होतो फो- (उपद्रव) विषय मी-वह विनयेयुक्त नहीं होकर
 कथा अपने जनपद के कर्षाद्वे-जनपद के प्रजाजनो की एकद्वे के कर
 अलनरूपदि यथायं ह्यी से नहीं करता (ध्या) णो णो णो णो णो णो
 विष्णु (उपद्रवो) यथि छ, तेमो णो अन्मुद्रेण शासनकाणाम् समस्त देशी त्रि
 अने अशातिह वतिवरेषु प्रसरीषु इत् (गुरुणां णो अन्मुद्रेण, णो विष्णु
 पतुजह, सयस्स वि य णं जणव्यसु णो सम्मं करमराविस पवत्तु) भीतीपि

टीका-‘तस्स ण’ इत्यादि—

तस्य=पूर्वोक्तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञ सूर्यकान्ता नाम देवी=राज्ञी आसीत् । सा सूर्यकान्ता देवी सुकुमालपाणिपादा-सुकुमाल=सातिशयकोमल पाणिपादं=हस्तौ पादौ च यस्याः सा तथाभूताऽऽसीत् । सूर्यकान्तायाः सर्वं वर्णनं धारिणीवद् बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह=धारिणीवर्णओ’ इति औपपातिकमृत्रोक्तधारिणीवद् बोध्यम् । सा सूर्यकान्ता देवी प्रदेशिना राज्ञा सादं=सह अनुरद्धा=सातिशयप्रेमयुक्ता अविरक्ता=मातिकूल्यं गतेऽपि पत्यौ स्वयं सदा प्रसन्नवदना सती इष्यन्=अभिलषितान्, शब्दान् रूपाणि यावद्=गन्धान् रसान् स्पर्शांश्चेति पञ्चविधान् मनुष्यान्=मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रत्यनुभ्रन्ती=उपभुञ्जाना विहरति ॥सू० १००॥

मूलम्—तस्स णं पएसिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्त सूरियकंताए देवीए अत्तए सूरियकंते नामं कुमारे होत्था, सुकुमालपाणिपाए जाव पडि-

। मे णं सूरियं ते मारे जुवराया वि होत्था, प सिस्स रन्नो

धारिणीवर्णओ) इसके हाथ पैर आदि अवयव बड़े ही सुकुमार थे. इसका पूर्णवर्णन धारिणी रानी के जैसा ही है. धारिणी का वर्णन औपपातिक सूत्र-में दिया गया है। (पएसिणा रन्नो सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इहे सहे रूवे जाव विहरइ) प्रदेशी राजा के साथ यह सातिशय प्रेम युक्त बने होकर अभिलषित मनुष्य संबंधि कामभोगों को भोगती थी, यदि राजा कभी प्रतिकूल भी हो जाता तो उस समय यह उससे प्रतिकूल नहीं बनती, प्रत्युत सदा प्रसन्नवदन ही रहती, वहां ‘शब्दरूप’ से रूप गंध, रस और स्पर्श के पांच प्रकार के कामभोग गृहीत हुए हैं।

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १०० ॥

तेना हाथपग वगेरे अवयवो अतीव सुकुमार इता राष्ट्रीतुं वर्णनं धारिणी राष्ट्री जेवुं ञ छ औपपातिक सूत्रमां धारिणीतुं वर्णनं करवामां आण्युं छे. (पएसिणा रन्नो सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इहे सहे रूवे जाव विहरइ) प्रदेशी राजानी साथे ते सातिशय प्रेमयुक्त व्ययवहार राणीने अभिलषित मनुष्य संबंधि काम भोगो भोगवती इती मे क्हाय राजा केछ द्विक्स प्रतिकूल थर्ष जतो तो ते तेनी साथे अहङ्कल थधने ञ रहती इती ते सहा प्रसन्न वदन ञ रहती इती. अर्ही “शब्दरूप”थी रूप, गंध, रस अने स्पर्श मे पांच प्रकारना कामभोगोतुं अहङ्क थयुं छे. टीकार्थ स्पष्ट छे ॥१००॥

राजा का जेष्ठ भाइ के जैसां एव' अधिक उमरवाला (चित्ते णामं सारही होत्या) चित्र नार का सारथी था. (अह्णे जाव बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-मेय-उवप्पयाण अत्यसत्थ ईहा मह्विसारए) यह चित्र सारथी आढय-समृद्ध था. यावत् बहुजनों द्वारा भी अपरिभूत था. वहां यावत् शब्द से 'दित्थे वित्थिण्णविउल-सयणासण जाण-इण्णे, बहुधण-बहुजायख्व-रयए, आओगसंपओगसंपउत्ते, विच्छड्डियविउलमत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलयप्पभूए' इसपाठ का संग्रह हुआ है इसका अर्थ इस प्रकार से है- यह चित्र सारथि वीस-तेजस्वी था, इसके बड़े २ अनेक मकान थे, बड़े २ अनेक तल्प (अर्या) थे, बड़े २ अनेक पीठकादिक आसन थे शकटप्रभृति (गाड़ी वगैरह) यान थे, अश्वदिकों से यह सदा आकीर्ण-युक्त बना हुआ था, त्रिपुल धन का-गणिस आदि द्रव्य का, यह स्वामी था. इसके पास त्रिपुल स्वर्ण था, तथा रजत-चांदी थी. आयोगप्रयोग से यह संग्रयुक्त था, द्विगुणादि लाभके लिये रूपया आदि को कर्ज लेने वालों के लिये देना इसका नाम आयोग है, और इसका उपाय चिन्तन करना सो प्रयोग है. अथवा अपने द्रव्य को दाना आदि करने की लिप्सा से अधमण' कर्ज लेने वालों को उसे देना इसका नाम आयोगप्रयोग संग्रयुक्त है. यह चित्र सारथि इस अधिक द्रव्यों

आटाआठ नेवे उभरमां तेना करता वधारे (चित्ते णामं सारही होत्या) चित्र नामे सारथि उते। (अह्णे जाव बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-मेय उवप्पयाण अत्य सत्थ ईहा मह्विसारए) ये चित्र सारथि आढय-समृद्ध-उते। यावत् अनेक दोडोथी अपरिभूत उते, अही यावत् शब्दथी "दित्थे वित्थिण्णविउलसयणासण जाण-वाहणा-इण्णे, बहुधण-बहु जाय-ख्व-रयय, आओगसंपओगसंप लणे, विच्छड्डियविउलमत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलयप्पभूए' आ पाठ अह्णु धञ्जुं छे आने अर्थ आ प्रभाञ्जे छे डे ते चित्र सारथि वीस-तेजस्वी उते, बध्णां मोटा मोटा तेने भकाने उता. मोटीमोटी अनेक शब्धाञ्जे (तएष) उती. पीठके वगेरे मोटा मोटा बध्णा आसने उता. शकट-गाडी वगेरे बध्णां वाहनो उता. उय-बोडाञ्जे-वगेरेथी ते सदा परिवेणित्त रहते उते। त्रिपुल धनने-गच्छिम वगेरे द्रव्यने अे स्वाभी उते। तेनी पासे पुष्कण स्वर्ण उतुं, अने चाही पञ्च उती। आयोग प्रयोगथी अे संग्रयुक्त उते, अमञ्जा लाबनी अपेक्षाअे ने इपिया वगेरे सिक्काञ्जे पीबने व्याञ्जे आपवाना आवे तेने आयोग कहे छे अने अेना माटे ने युक्ति प्रयुक्तआतुं चिंतन करवामा आवे छे तेने प्रयोग कहे छे अथवा तो पौताना धनने अमञ्जु वगेरे करवानी छ'छाथी अधमणुं-कण' लेनारने आपवुं' तेतुं नाम आयोग प्रयोग संग्रयुक्त छे अे चित्र सारथि अधिक द्रव्योपाण'नइप क्रियाभा

शास्त्रोर्मतिविशारदः औत्पत्तिकया वैनयिकया कर्मजया पारिणाभिवया चतुर्विधया बुद्ध्या उपपेतः, प्रदेशिनो राज्ञो बहुषु कार्येषु च कारणेषु च कुटुम्बेषु च मन्त्रेषु च गुह्येषु च रहस्येषु च निश्चयेषु च व्यवहारेषु च आपुच्छणीयाप्रतिपच्छनीयो मेदिः प्रमाणम् आधारआलम्बनभूतश्चभ्रुर्भूतः सर्वस्मृमिकामुलब्धप्रत्ययो द्वितीर्णविचारो राज्यधुराचिन्तकश्चापि आसीत् ॥१०२॥

पार्जनरूप क्रिया में प्रवृत्त था. तथा-विपुल मात्रा में इसके यहा भोजन पान खालेने पर भी बचा रहता था. दाम्नी, दास, गो, महिष एवं गवेलक-मेष ये सब इसके यहां प्रचुरसंख्या में थे. तथा यह चित्र सारथि साम, दंड, भेद और दान इन चार राजनीतियों में अर्थप्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र में एव ईहाप्रधान बुद्धि में, विशारद निपुण था (उत्पत्तियाण, वेणइयाए, पारिणामियाए, चतुर्विहाए बुद्धिए उववेए) औत्पत्तिकी-स्वाभाविक, वैनयिकी, कर्मजा तथा पारिणामिकी अवस्था इन चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त था (पएसिस्म रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य, कुटुम्बेसु य, मंतेसु य, गुह्येसु य, रहस्सेसु य, निच्छएसु य, व्यवहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे) प्रदेशी राजा के अनेक कार्यों में, कार्य संपादक हेतुओं में, कुटुम्ब के विषय में, कर्तव्यनिश्चयार्थ गुप्तमंत्रणाओं में, गुह्यों में-छज्जा से गोपनीय कामों में, रहस्यों में प्रच्छन्नव्यवहारों में, एवं निश्चयों में-पूर्णनिर्णयों में, एव व्यवहारों में-वान्धवादिकों द्वारा समा-चरित लोकविपरीत आदिक्रियाओं के प्रायश्चित्तों में अच्छी तरह से यह

प्रवृत्त होता तेमज्जे अने त्यां पुष्कण भासुमा लोके भोजन-पान करता हुता छत्तांजे भोजन सामग्री भूष पडी रहेती हुती दासी, दास, गाय महिष अने गवेलक-मेष आ भधा अनेत्या प्रचुर संख्यामा हुता अे चित्र सारथि साम, दंड, वेद अने दानआ वारे वार राजनीति-अेमा, अर्थ प्राप्तिना साधनेसु प्रतिपादन कर-नारां शास्त्रोमा अने धडा प्रधान बुद्धिमा विशारद-निपुणहुतो. (उत्पत्तियाए, वेण इयाए, परिणामियाए, चतुर्विहाए बुद्धिए उववेए) औत्पत्तिकी-स्वाभाविक, वैन-यिकी, कर्मज अने पारिणामिकी आ वार प्रकारनी बुद्धिअेथी ते युक्त हुतो. (पएसिस्म रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य, कुटुम्बेसु य, मंतेसु य, गुह्येसु य, रहस्सेसु य, निच्छएसु य, व्यवहारेसु य, आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे) प्रदेशी राजाना अनेक कार्योमा, कार्य संपादक हेतुअेमा, कुटुम्बनी भाषतमा, कर्तव्य निश्चयार्थ गुप्त मंत्रणाअेमा, गुह्योमा-शरभने धीधे गोपनीय कामोमा, रहस्योमा-प्रच्छन्न व्यवहारोमा अने निश्चयोमा पृथुं निष्कथोमा अने व्यवहारोमा, बाधवो वगेरे वडे लोक विपरीत आचरण करवा भदल तेमने प्रायश्चित्त करावनामा, वारे धडीअे

टीका—‘तस्स ण’ इत्यादि—

तस्य खलु पदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठभ्रातृवयस्यः=ज्येष्ठभ्रातृत्वो वय-
म्यकः स्वयं परमादरणीयत्वात् चित्रो नाम=चित्रनामा सारथिः आसीत् । स
चित्रसारथिः आदयः=समृद्धः ‘जाव-यावत्-यावत्पदेन-दित्तं त्रिन्विण्ण
त्रिउल-सयणासण-जाण-वाहणाइणो बहुघण-वट्टजायस्व-रयए आओग-
मपओगमपउत्ते त्रिच्छइय त्रिउलमत्तपाणे बहुदासोदासगोमहिसगवेलय

बार बार पूछा जाता था— शौर्यरूप से पूछा जाता था (मेहीपमाणं आहारे
आलंघणम्पूए, चक्खुम्पूए, सन्वट्टाणसन्वभूमियासु लद्धपच्चए विहण्णवियारे
रज्जधुराचित्तए यावि होत्था) निम्न प्रकार भेद को आश्रित करके वैल
पूमते हैं उसी प्रकार उसे आश्रित करके मंत्रिमंडल मन्त्रकरनेरूप कार्य
में प्रवृत्त होता था. अतः वह मंत्रोरूप था, तथा प्रत्यक्षादिक प्रमाणों की
तरह वह हेयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्तिनिवृत्तिशाली होने के कारण संशय-
रहित होकर पदार्थों का परिच्छेदक था. इसलिये वह प्रमाणरूप था. आधार-
भूतपदार्थों की तरह वह सब को आश्रयदाता था. रज्जु स्त मादिकों की
तरह वह विपत्तिरूप रूप में पतित जनों का उद्धारक होने के कारण
अवलम्बनरूप था. यहाँ यह शंका हो सकती है आधार और अव-
लम्बन में क्या भेद है ! इस का उत्तर कि जिनके सहार से
मनुष्य अपनी उन्नति करता है या स्वरूपावस्थ होता है उसका नाम आधार
है तथा जिसके अवलम्बन से विपत्तियाँ दूर होती है उमका नाम अवल-

म्बेनी साथे मन्त्रणा करवाभा आवती હતી અને સવિશેષ રૂપમા એને પૂછવામાં
આવતુ હતું. (મેહીપમાણ આહારે આલંઘણમ્પૂ. સન્વટ્ટાણસન્વભૂમિયાસુ
લદ્ધપચ્ચए વિહण्णवियारे रज्जधुराचित्तए यावि होत्था) भेदिना आधारे नेम
णणइ इरे छ तेम एने आधार भानीने मन्त्रिमण मन्त्रणा वगेरे कर्थाभा प्रवृत्त
यत्तुं हत्तुं एथी ते मेहीरूप हतो प्रत्यक्षादिक प्रमाणोनी नेम ते हेयोपादेय पदा-
र्थोभा प्रवृत्ति निवृत्तिशाली होवा भइल पदार्थोनी ते निशकपण्णे परिच्छेदक हतो.
एथी ते प्रमाणायेम हतो आधारभूत पदार्थोनी नेम ते सो कर्त्तव्यो आश्रयदाता हतो.
रज्जु स्त मादिकोनी नेम विपत्तिरूप रूपमा पठेवाओत्त रक्षण करनार होवाथी ते
अवलम्बनरूप हतो अही आधार एने अवलम्बनना अर्थे विषेशका उत्पन्न यत्तुं
शक्ये छ के ओओ भन्नेमा सो तस्मात्त छ ? तो स्पष्टीकरण आ प्रमाण्णे छ के नेना
सहारे-आश्रये भाणुस उन्नति करे छ के स्वरूपावस्थ होय छ तेत्तु नाम आधार
छ, तेमए नेना अवलम्बनथी विपत्ति दूर थाय छ

‘पभू’ छाया—दीप्तो विस्तीर्णविपुलशयनामनवानवाहनाकीर्णो बहुधन-
 बहुजातरूप-रजतआयोगसंप्रयोगस प्रयुक्तो विच्छर्दितविपुलभक्तपानो बहु
 दासीदाम गोमहिष गवेलकप्रभृतः इतिसंग्राह्यम्, तत्र-दीप्तः=तेजस्वी विस्तीर्ण
 विपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णः—विस्तीर्णनि=विस्त्वानि विपुलानि
 बहूनि भवनानि=गृहाः, शयनानि=तरुपानि आसनानि=पीठकादीनि, यानानि=
 शकटप्रभृतीनि, वाहनानि=इयादयस्तेराकीर्ण =व्याप्तःममुपेतो वा, बहुधन बहु-
 जानरूपरजत.—बहु=विपुलं धनं=गणिमपभृति यस्य ग बहुधन, बहु=विपुलं
 जानरूपं=सुवर्णं रजतं=रूप्यं च यस्य स बहु जातरूपरजतः=बहुधनश्चासौ
 बहुजातरूप-रजतश्चेत्-बहुधनबहुजातरूपरजतः, तथा आयोगसंप्रयोग-
 संप्रयुक्तः आसमन्ताद् योजन=द्विगुणादिलाभार्थं रूप्यादीनामधमर्णा-

म्वन है। नेत्र जैसे अपने विषयभूत होने योग्य पदार्थों का प्रदर्शक
 होता है उसी प्रकार से यह सब सबके लिये सकलार्थ का प्रदर्शक था यदुक्तम्—
 “मेहिः प्रमाण आधारः, आलम्बनं चक्षुः”

इस बात की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये उपमावाचक भूतशब्द इनके साथ
 जोड़ कर सूत्रकार ने पुनः इनकी इस प्रकार से आवृत्ति की है—यह मेहि
 भूत, प्रमाणभूत, आधारभूत एवं चक्षुभूत था अतःसर्वस्थानों में—सन्धि,
 विग्रह आदिरूप सब जगहों में एवं मन्त्रि-आमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिकाओं
 में यह व्यर्थवादीरूप से माना जाता था और राजा ने भी इसी कारण
 अन्त पुरादि जैसे स्थानों में आने जाने को इसे छूट देरखी थी. इसतरह
 राजा का अतिविश्वास पात्र बना हुआ यह चित्रसारथि सकल राज्यकार्य
 का प्रेक्षक भी बन गया था.

‘नेत्र’ नाम अवलोकन छे नेत्र जेभ पोताने विषयभूत था योज्य पदार्थोना प्रदर्शक
 होय छे तेभजे ते पक्षु सौ भाटे सकलार्थोना प्रदर्शक छेतो.

‘मेहि’—“मेहिः प्रमाण आधारः, आलम्बनं चक्षुः”

जे नेत्र पोताने वधारे स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकारे उपमावाचक ‘भूत’ शब्द जेभने
 देगादीने करी आ शब्दोनी आ प्रमाणे आवृत्ति करी छे—जे मेहिभूत, प्रमाणभूत,
 आधारभूत, अने चक्षुभूत छेतो. जेथी महे-सधि, विग्रह वगेरे रूप मधी ज्योये
 अने मन्त्रि अमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिकोभा ते साथी सहाई आवनार गणतो
 छेतो. जेथी राजोये पक्षु अत पुर जेवा स्थानोभा पक्षु तेने प्रवेशवानी छूट आपी
 दीधी छती राजने अतिविश्वासपात्र भजेथो को अत्रि सारथि आभ समस्त राज्य-
 कार्योना प्रेक्षक पक्षु भनी गयो छेतो

टीका—‘तस्स ण’ इत्यादि—

तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठभ्रातृवयस्यः=ज्येष्ठभ्रातृवयो वय-
स्यकः स्वस्य परमादरणीयत्वात् चित्रो नाम=चित्रनामा सारथिः आसीत् । स
चित्रसारथिः आह्वयः=समृद्धः ‘जाव-यावत्-यावत्पदेन-दित्ते त्रिन्विण्ण-
विउल-सयणासण-जाण-वाहणाइणो बहुभ्रण-वहुजायस्वर-रयए आओग-
मपओगमपउत्ते विच्छइय विउलभत्तपाणे बहुदासोदासगोमहिसगवेलय-

वार वार पूछा जाता था- विशेषरूप से पूछा जाता था (मेहीपमाणं आहारे
आलंबणभूप, चक्रुभूप, सव्वट्टाणसव्वभूमियासु लद्धपच्चण विहणवियारे
रज्जघुराचितए यावि होत्था) निम्न प्रकार मेघ को आश्रित करके बैल
घूमते हैं उसी प्रकार उसे आश्रित करके मंत्रिमंडल मंत्रकरनेरूप कार्य
में प्रवृत्त होता था. अतः वह मंत्रोरूप था, तथा प्रत्यक्षादिक प्रमाणों की
तरह वह हेयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्तिनिवृत्तिशाली होने के कारण संशय-
रहित होकर पदार्थों का परिच्छेदक था. इसलिये वह प्रमाणरूप था. आधार-
भूतपदार्थों की तरह वह सब को आश्रयदाता था. रज्जु स्तम्भादिकों की
तरह वह विपत्तिरूप रूप में पतित जनों का उद्धारक होने के-कारण
अवलम्बनरूप था. यहाँ यह शंका हो सकती है आधार और अव-
लम्बन में क्या भेद है ! इस का उत्तर कि जिसके सहारे हे
मनुष्य अपनी उन्नति करता है या स्वरूपावस्थ होता है उसका नाम आधा
है तथा जिसके अवलम्बन से विपत्तियाँ दूर होती हैं उमका नाम अवल-

ज्येष्ठी साथे भ्रष्टा करवाभा आवती હતી અને સવિશેષ રૂપમા જ્યેષ્ઠ પૂછવા
આવતું હતું (મેહીપમાણં આહારે આલંબણભૂપ, સવ્વટ્ટાણસવ્વભૂમિયા
લદ્ધપચ્ચણ વિહણવિયારે રજ્જઘુરાચિત્તए यावि होत्था) મેહિના આધારે
બળદે છે તેમ જ્યેષ્ઠ આધાર માનીને મત્રિમણ્ડળ મત્રણ વગેરે કાર્યોમા પ્ર-
વૃત્તું હતું એથી તે મેહીરૂપ હતો પ્રત્યક્ષાદિક પ્રમાણોની જેમ તે હેયોપાદેય
ર્થોમા પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિશાલી હોવા બદલ પદાર્થોનો તે નિશ્ચયપણે પરિચ્છેદક હ
એથી તે પ્રમાણરૂપ હતો. આધારભૂત પદાર્થોની જેમ તે સૌ કોઈનો આશ્રયદાતા હ
રજ્જુ સ્તંભાદિકોની જેમ વિપત્તિરૂપ રૂપમા પડેલાઓતું રક્ષણ કરનાર હોવાને
અવલંબનરૂપ હતો અહીં આધાર અને અવલંબનના અર્થ વિષે શંકા ઉત્પન્ન
શકે છે કે જ્યેષ્ઠા બન્નેમાં શો તફાવત છે? તો સ્પષ્ટીકરણ આ પ્રમાણે ‘છે કે
સહારે-આશ્રયે માણસ ઉન્નતિ કરે છે કે સ્વરૂપાવસ્થ હોય છે તેટલું નામ આ
છે, તેમજ જેના અવલંબનથી વિપત્તિ દૂર થાય છે

व्यभूए' छाया—दीप्तो विस्तीर्णविपुलशयनासनानवाहनाकीर्णो बहुधन-
 बहुजातरूप-रजतआयोगसंप्रयोगस प्रयुक्तो विच्छिदितविपुलभक्तपानो बहु
 दासीदास गोमहिष गवेलकप्रभृतः इतिस'ग्राह्यम्, तत्र-दीप्तः=तेजस्वी विस्तीर्ण
 विपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णः-विस्तीर्णानि=विस्तृतानि विपुलानि
 बहूनि भवनानि=गृहाः, शयनानि=तल्पानि आसनानि=पीठकादीनि, यानानि=
 शकटप्रभृतीनि, वाहनानि=हयादयस्तैराकीर्णं=व्याप्तःममुपेतो वा, बहुधन बहु-
 जानरूपरजत-बहु=विपुलं धनं=गणिमपभृति यस्य स बहुधनं, बहु=विपुलं
 जानरूपं=सुवर्णं रजतं=रूप्यं च यस्य स बहु जातरूपरजतः-बहुधनश्चासौ
 बहुजातरूप-रजतश्चेत्-बहुधनबहुजातरूपरजतः, तथा आयोगसंप्रयोग-
 संप्रयुक्तः आसमन्ताद् योजनं=द्विगुणादिलाभाय' रूप्यादीनामधमर्णा-

म्वन है। नेत्र जैसे अपने विषयभूत होने योग्य पदार्थों का पददर्शक
 होता है उसी प्रकार से यह सब सबके लिये सकलार्थ का पददर्शक था यदुक्तम्-
 = "मेधिः प्रमाणं आधारः, आलम्बनं चक्षुः"

इस बात की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये उपमावाचक भूतशब्द इनके साथ
 जोड़ कर सूत्रकार ने पुनः इनकी इस प्रकार से आवृत्ति की है-यह मेधि
 भूत, प्रमाणभूत, आधारभूत एव चक्षुभूत था अतःसर्वस्थानों में-सन्धि,
 विग्रह आदिरूप सब जगहों में एवं मन्त्रि-आमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिकाओं
 में यह यथार्थवादीरूप से माना जाता था और राजा ने भी इसी कारण
 अन्त पुरादि जैसे म्यानों में आने जाने को इसे छूट देरखी थी. इसतरह
 राजा का अतिविश्वास पात्र बना हुआ यह विप्रसारथि सकल राज्यकार्य
 का प्रेक्षक भी बन गया था.

तेजः नाम अवलोकन छे नेत्र जेभ पोताने विषयभूत थवा येज्य पदाशेनो प्रदृशक
 होय छे तेभज ते पक्षु सौ भाटे सकलार्थनो प्रदृशक छतो.

जेभके — "मेधिः प्रमाणं आधारः, आलम्बनं चक्षुः"

ये जे वातने वधारे स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकारे उपमावाचक 'भूत' शब्द जेभने
 वेगादीने क्षी आ शब्दोनी आ प्रभाषे आवृत्ति करी छे-जे मेधिभूत, प्रमाणभूत,
 आधारभूत, अने चक्षुभूत छतो जेथी मधे-सधि, विग्रह वगेरे रूप मधी ज्यज्ये
 अने मन्त्रि आमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिअज्योमा ते साथी सलाह आवावनार गण्यतो
 छतो. जेथी राजेजे पक्षु अत पुर जेवा स्थानोमा पक्षु तेने प्रवेशवानी छूट आपी
 दीधी छती राजने अतिविश्वासपात्र भजेवे को अित्र सारथि आभ समस्त राज-
 कार्यनो प्रेक्षक पक्षु भनी गये छतो

दिभ्यो नियोजनमायोगः, तस्य प्रयोगः-प्र=प्रकर्षेण योचनम्=उपायचिन्तनम्
 आयागप्रयोगः, यद्वा-आयोगेन=द्विगुणादिलिप्सया प्रयोगः=अधमर्णानां सविधे
 द्रव्यस्य वितरणम् आयोगप्रयोगः, म् संप्रयुक्तः=प्रवर्तितो येन, तस्मिन् वा
 संप्रयुक्तः=सलग्नो यः स आयोगप्रयोगसंप्रयुक्तः=द्रव्योपार्जनप्रवृत्त इत्यर्थः,
 तथा-विच्छर्दिं तविपुलभक्तपानः-विच्छर्दिंते वि=विशेषेण छर्दिंते=भोजनानावशिष्टे
 भक्तपाने=भक्तं च पानं च यस्य सः, तथा-बहुदासीदामगोमहिषगवेलक-
 प्रभूतः-दास्यश्च दामाश्च गावश्च महिषाश्च गवेलकाः=उरभ्राश्चेति-दासीदाम-
 गोमहिषगवेलकाः, ब्रह्मः=प्रचुरा दापीदासगोमहिषगवेलका यस्य सः, तथा-
 बहुजनभ्यः=जातिविवक्षयैकवचनं संबन्धसामान्ये षष्ठी, तेन बहुजनैरित्यर्थो
 बोध्यः, अत्र अपीत्यध्याहाराद् बहुजनैरपि अपरिभूतः=पराभव रहितश्चासीत्।
 तथा-स चित्रसारथिः-सामदण्डभेदोपप्रदानार्थं शास्त्रेहामतिविशारदः-तत्र-साम
 =मान्दवं, दण्डो=दमः, भेदो=द्वैधीकरणम्, उपप्रदानं=दानम्-इत्येतासु चतसृषु
 राजनीतिषु तथा-अर्थशास्त्रे=अर्थप्राप्तिसाधनप्रतिपादके शास्त्रे, ईहा-मती ईहा=
 विमर्शस्तत्प्रधाना मतिः=बुद्धिस्तस्यां च विशारदः=निपुणः, तथा औत्पत्ति
 क्या=स्वामाविक्या-अदृष्टाश्रुताननुभूतविषयया स्वतः समुत्पन्नया, वैतयिक्या=
 गुरुसमाराधनसमासशास्त्रार्थसंजनितया कर्मजया=कृषिवाणिज्यादिकर्मसमा-
 सया, पारिणामिक्या=वयःपरिणामजनितया चेति षतुर्विधया=चतुष्प्रकारया
 बुद्ध्या उपपेतो=युक्तश्च आसीत्। तथा-स चित्र सारथि प्रदेशिनो राज्ञो बहुषु
 कार्येषु=कर्तव्येषु प्रयोजनेष्विति यावत्, कारणेषु=कार्यजातसम्पादकहेतुषु
 कुटुम्बेषु=कुटुम्बविषये मन्त्रेषु=कर्तव्यनिश्चयार्थं गुप्तविचारेषु गुह्येषु=लज्जया
 गोपनीयेषु व्यवहारेषु रहस्येषु=रासि=एकान्ते भवा रहस्यास्तेषु प्रच्छन्न-
 व्यवहारेष्विति यावत्, निश्चयेषु=पूर्णनिर्णयेषु, व्यवहारेषु=व्यवहारप्रणव्येषु,
 यद्वा-बान्धवादि समाचरितलोकविपरीतादिक्रिया प्रायश्चित्तेषु च आपच्छनीयः-
 आ=ईषत् सकृत् प्रच्छनीयः=प्रणव्यः, परिप्रच्छनीयः-परि-सर्वतोभावेन असकृत्
 प्रच्छनीयः=प्रणव्यः, तथा स चित्रसारथिः-मेधिः=यथा मेधिमाभित्य गोमण्डलं
 भ्रमति, तथैव तमाभित्य सकल मन्त्रिमण्डल मन्त्रकार्येषु प्रवर्त्तते, अतः स
 मेधिः, तथा-प्रमाणम्=प्रत्यक्षादिप्रमाणवद्भेयोपादेयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपतया संश-
 यराहित्येन पदार्थ परिच्छेदकः, आधारः=आधारवत्प्रथेधामाश्रयभूतः,
 आलम्बनं=रज्जुस्तम्भादिवद् विपत्कूपेपतञ्जनोद्धारकतयाऽवलम्बनम्। ननु-
 आधारालम्बनयोः को भेदः? इति चेत्, यमधिष्ठांय जन उन्नतिं गच्छति
 स्वरूपावस्थो वा रुषति स आधारः, रद्वलम्बनेनच विपदो विनिवर्त्तते

तदालम्बनम्—इति भेदं गृह्णाण । चक्षुः=चक्षते=पश्यन्त्यनेनेति चक्षुः=नेत्रं, तद्वत् सर्वेषां सकलार्थप्रदर्शकः । यदुक्तम्—

“मेधिः प्रमाणम् आधारः आलम्बनं चक्षुः” इति, तदेव स्पष्टप्रतिपत्तये औपम्यत्राचि—भूदशब्दसम्मेलनेन पुनरावर्त्तयति—मेधिभूतः प्रमाणभूतः आधारभूतः आलम्बनभूतः चक्षुर्भूतश्चास्ति : तथा—स चित्रसारथिः सर्वं स्थानसर्वभूमिकासु—सर्वस्थानानि=सन्धिविश्रहादिरूपाणि सकलकार्याणि च सर्वभूमिकाः=मन्त्रमात्यादिस्थानरूपाश्च तासु लब्धः उपलब्धः प्रत्ययः=प्रतीति यथार्थवादितया येन स तथाभूतः, तथा—त्रितीर्णविचारः—त्रितीर्णः=राजा मद्गतः विचारः=विचरणम् अन्तःपुरादिषु सर्वत्र यस्मै स तथा राज्ञोऽन्त विश्वासपात्रमित्यर्थः, तथा—राज्यधुराचिन्तकः=मकलराज्यकार्यप्रेक्षकश्चापि आसीत् ॥सू० १०२॥

इसकी टीका का अर्थ इसी मूलार्थ के साथ कर दिया गया है, फिर भी जिन पदों का अर्थ मूलार्थ में नहीं किया गया है—उनका अर्थ इस प्रकार से है—त्रिमर्शप्रधान मति का नाम ईदामति है. स्वामात्रिकबुद्धि का नाम कि—जो अदृष्ट अननुभूत, अश्रुत आदि पदार्थों को विषय करती है और उनमें स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि है । इसका नाम “हाजिर जवाषी” भी है. गुरुजनों की सेवा शुभपादि करने से प्राप्त शास्त्रार्थ के चिन्तन से जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका नाम वैयक्तिकी बुद्धि है । कृषिवाणिज्य आदिकर्म करते-र जो बुद्धि प्राप्त होती है उमका नाम कर्मजा बुद्धि है । जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका नाम पारिणामिकी बुद्धि है । अर्थात् वयः परिणाम जनित बुद्धि का नाम ही पारिणामिकी बुद्धि है ॥सू० १०२॥

आने टीकार्थ मूलार्थमा ७ स्पष्ट करवामा आव्यो छे. छताये डेटकाड पहोने अर्थ मूलार्थमा स्पष्ट थयो नथी तेमनेो अर्थ स्पष्ट करवामा आवे छे विमर्श प्रधानमतिह नाम ईदामति छे. अदृष्ट, अननुभूत, अश्रुत वगेरे पदार्थेनि विषयभूत भनावनारी अने तेमा पोतानी भेणे ७ उत्पन्न थनारी स्वाभाविक बुद्धिह नाम औत्पत्तिकी बुद्धि छे आने ‘हाजिर जवाषी’ पखु कहे छे गुरुजनेानी सेवा शुभपा वगेरेथी प्राप्त थयेली अने शास्त्रार्थ चिन्तनथी प्राप्त थये वैयक्तिकी कहेवाथ छे कृषि वाणिज्य वगेरे कर्मो करता करता ७ बुद्धि प्राप्त थाय छे तेहु नाम कर्मजा बुद्धि छे आयुष्यनी बुद्धि साथे साथे ७ बुद्धि प्राप्त थाय छे ते पारिणामिकी बुद्धि छे अटेके के वय परिणाम जनित बुद्धिह नाम ७ पारिणामिकी बुद्धि छे ॥सू० १०२॥

मूलम्—तेण कालेणं तेणं समएणं कुणाला नामं जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिहूवा । त्तिसे णं सावत्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्टए नाम चेइए होत्था. पुराणे जाव पासाई ४ । तत्थ णं सावत्थीए नगरीए एए-सिस्स रन्नो अंतेवासी जियसत्तू नाम राया होत्था, महया हिमवत्त जाव विहरेइ ॥ सू० १०३ ॥

छाया—रग्मिन काले तस्मिन् समये कुणाला नाम जनपद आसीत्, ऋत्तिमितमसृद्धः । तत्र त्वलु कुणालाया जनपदे आवस्ती नाम नगरी आसीत् ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत् प्रतिहता । तस्याः त्वलु आवस्त्या नगर्याः बहिरू-

‘तेणं कालेण तेणं समएणं’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तेण कालेण तेणं समएणं) उस काल में—अवसर्गिणी के चौथे आरे में और केशिस्वामी के विहार से उपलक्षित उस समय में (कुणालानाम जणवए होत्था) कुणाला इस नामका देश था (रिद्धत्थिमियसमिद्धे) यह देश ऋद्ध, स्तिमित एव समृद्ध था यावत् प्रतिरूप—सर्वोत्तम था (तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था) उस कुणालादेश में आवस्ती नामकी नगरी थी (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिहूवा) यह नगरी भी ऋद्ध स्तिमित एव समृद्ध थी और यावत् प्रति रूप थी (त्तिसे णं सावत्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्टए नाम चेइए होत्था) उसआवस्ती नगरी के बाहिर में ईशानकोने में

“तेणं कालेणं तेणं समएणं” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तेण कालेण तेणं समएणं) ते क्षणे—अवसर्गिणीना योथा आरामो अने केशिस्वामीना विहारना समये (कुणाला नाम जणवए होत्था) कुणाला नामे देश इतो (रिद्धत्थिमियसमिद्धे) आ देश ऋद्ध स्तिमित अने समृद्ध इतो यावत् प्रतिरूप—सर्वोत्तम इतो (तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नगरी होत्था) ते कुणालदेशमा आवस्ती नामे नगरी इती (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिहूवा) आ नगरी पण्य ऋद्ध स्तिमित अने समृद्ध इती अने यावत् प्रतिरूप इती (त्तिसे णं सावत्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्टए नाम चेइए होत्था) ते आवस्ती नगरीनी पहार ध्यान केषुमा

स्तरपीरस्ये दिग्भागे कोष्ठको नाम चैत्यमासीत्, पुराणं यावत् प्रासादीयम्
 ४। तत्र खलु आवस्त्यां नगर्यां प्रदेशिनो राज्ञोऽन्तेवामी जितशत्रुं नाम
 राजा आसीत् महाहिमवद् विहरति ॥ सू० १०३ ॥

टीका—'तेणं कालेणं' इत्यादि—

तस्मिन् काले=अस्या अवसर्पिण्णाश्रतुर्धारकलक्षणे काले तस्मिन् समये=
 केशिस्वामिविहरणोपलक्षिते समये कुणाला नाम जनपदः=कुणालाभिधो
 आसीत्। स जनपद ऋद्धस्तिमितसमृद्धः आसीत्। तत्र खलु कुणालाया जन-
 पदे आवस्ती नाम नगरी आसीत्। सा नगरी ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यान
 प्रतिरूपा चासीत्। यावत्पदेनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीवर्णनं सर्वं
 संग्राह्यम्। तस्याः खलु आवस्त्या नगर्याः बहिः=प्रदेशे उत्तरपीरस्ये उत्तर
 पूर्वयोरन्तराले दिग्भागे=ईशानकोणे कोष्ठको नाम चैत्यमासीत्, तच्चैत्य
 पुराणं यावत् प्रासादीयं दर्शनीयम् अभिरूपं प्रतिरूपं चासीत्। यावत्प-
 देनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तं सर्वमनुसन्धेयम्। तत्र खलु आवस्त्यां नगर्यां
 प्रदेशिनो राज्ञः अन्तेवासी अन्ते=समीपे वसतीत्येव शीलोऽन्तेवासी=

कोष्ठक नामका चैत्यं था (पुराणे जाव प्रासादीयं) यह चैत्य प्राचीन था
 यावत् प्रासादीय था, दर्शनीय था, अभिरूप था और प्रतिरूप था (तत्थणं
 सावत्थीए नगरीए पएसिस्स रन्नो अत्तेवासी जियसत्तु नाम राया होत्था, महया
 हिमवत जाव विहरइ) उस आवस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी
 जितशत्रु नाम का राजा था, जो महाहिमवान् आदि के जैसा बलवाला था।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है—आवस्ती नामकी नगरी का वर्णन औप-
 पातिक सूत्र में कथित चम्पानगरी के वर्णन जसा है, चैत्य-उद्यान के वर्णन में
 भी औपपातिक सूत्रोक्त वर्णन यहां पर ग्रहण करना चाहिये, अन्तेवासी

कोष्ठक नामे चैत्यं इत्तुं. (पुराणे जाव प्रासादीयं) आ चैत्य प्राचीन इत्तुं यावत्
 प्रासादीय इत्तुं दर्शनीय इत्तुं, अभिरूप इत्तुं अने प्रतिरूप इत्तुं। (तत्थणं सावत्थीए
 नगरीए पएसिस्स रन्नो अत्तेवासी जियसत्तु नाम राया होत्था, महया
 हिमवत जाव विहरइ) ते आवस्ती नगरीमा प्रदेशी राजानो अन्तेवासी जितशत्रु
 नामे राजा इत्तो. ते महाहिमवान् वज्जे वेवे भणवान् इत्तो।

टीकार्थ—आ सूत्रने टीकार्थ स्पष्ट न् छे. औपपातिक सूत्रमां चम्पानगरीत्तुं न्
 प्रभावे वरुणं कत्वाभा आण्युं छे तेभज आवस्ती नगरीत्तुं वरुणं, पथुं समज्जुं
 नेधज्जे. चैत्यत्तुं वरुणं पथुं औपपातिक सूत्रना वरुणंननी नेभ समज्जुं नेधज्जे

शिष्य अन्तेवासाव-अन्तेवामी-सम्यगाज्ञापालक इति भावः, तथा भूतो जितशत्रु राजा आसीत्। स जितशत्रु राजा महाहिमवद्-यावद् विहरति। 'जितशत्रो राज्ञः सर्व' वर्णनमौपपातिकमुत्रोक्तकूणिकराजवद् बाध्यमिति ॥ सू० १०३॥

मूलम्--तएणं से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्घं महरिह विउल रायारिह पाहुड सज्जावेइ सज्जाविंत्ता चित्तं सारहिं महावेइ, सदाविंत्ता एवं वयासी-गच्छ पां चित्ता ! तुम सावन्थि नगरिं जियसत्तस्स रणो इमं महत्थ जाव पाहुडं उवणेहि जाइ तत्थ रायकजाणि य रायकिञ्चाणि य रायनिईओ य रायववहारा य ताईं जियसत्तु ॥ तद्धि सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहित्ति कट्टु विस ज्ञए ॥ सू० १०४ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं महार्थं महार्थं विपुत्रं राजार्हं प्राप्नुत सज्जयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथिं शब्द-

शब्द फ अर्थ शिष्य है वह अन्तेवासी के समान अन्तेवासी या अर्थात् उसकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालक था. जितशत्रु राजा का सर्ववर्णन औपपातिक मुत्रोक्त कूणिक राजाकी तरह से है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० १०३॥

'तएणं से पएसी राया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिह पाहुड सज्जावेइ) एक दिन की बात है कि प्रदेशी राजा ने महार्थ-विपुल प्रयोजनवाला-सातिशयप्रयोजनयुक्त, महार्थ-बहुमूल्य, महार्थ-अतिशोभायुक्त, विपुल-बहुत बड़ा ऐसा राजा के योग्य प्राप्नुत-मेंट

अन्तेवासी शब्दने अर्थ शिष्य छे ते अन्तेवासीनी जेम अन्तेवासी हुतो अट्ठे हे ते-अरस शीते तेनी आज्ञावु पावन करतो हुतो जितशत्रु राजां अधु वव्वं औपपातिक सूत्रोक्त कूणिक राजानी जेम सभज्जुं जेष्ठये ॥ सू० १०३॥

'त एणं से पएसी राया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एण से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुड सज्जावेइ) ते प्रदेशी राजाये अक द्विसे महार्थं विपुल प्रयोजनवाणी-सातिशय प्रयोजन युक्त, महार्थ-बहुमूल्यवाणी, महार्थ अतिशोभायुक्त, विपुल-पुष्कल प्रभाषुमा राजायेना भाटे येज्ज अवी सेट (अभुत) तैयार करी.

यति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छ, खलु चित्र ! त्वं श्रावस्तीं नगरीं जित-
शत्रोः राज इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय, यानि तत्र राजकार्याणि च
राजकृत्यानि च राजनीतयश्च राजव्यवहाराश्च तानि जितशत्रुणा साद्धं स्वय-
मेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणो विहरेति कृत्वा विसर्जितः ॥मू० १०४॥

टीका—'तएणं इत्यादि—

ततः खलु स प्रदेशो राजा अन्यदा कदाचित्=अन्यस्मिन्=कस्मिन्-
श्रित् समये महार्थं-महान्=त्रिपुलः अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा तत्-
सातिशयप्रयोजनयुक्तम् महार्थं=बहुमूल्यं महार्हम्=अतिशोभनं त्रिपुलं=
वृहत् राजईं=नृपयोग्यं प्राभृतम्=उपहारम् सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा
चित्रं सारथिं शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण
अवादीत्-हे चित्र ! त्वं खलु श्रावस्तीं नगरीं गच्छ, तत्र-जितशत्रोः राजः
कृते इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय=प्रापय यानि तत्र=प्रावृत्त्यां राज
कार्याणि=राज्ञो राज्य सम्बन्धीनि कर्त्तव्यानि राजकृत्यानि=राज्ञःस्वविषयाणि
प्रतिदिषसम्बन्धिकर्त्तव्यानि. राजनीतयः=साम-दण्ड-भेदोपप्रदानरूपाः राज-

सजाया (सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सहावेइ) सजाकर फिर उसने चित्र
सारथि को बुलाया (सहावित्ता एव वयासी) बुलाकर उससे ऐसा कहा
(गच्छणं चित्ता ! तुमं सावर्त्थि नयरीं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव
पाहुइ उवणेहि) हे चित्र ! तुम श्रावस्तीनगरी में जाओ वहां जितशत्रु के
छिये यह महाप्रयोजन साधक यावत् भेट दे आओ तथा (जाइं तस्थ राय-
कज्जाण य रायकिष्वाणि य रायनीईओ य रायववहारा य ताइं जियसत्तुणो
सद्धिं सयमेव पच्छुवेक्खमाणे विहराहि चि कट्टु विसज्जिए) जो वहां पर
राजा के राजसंबंधी कर्त्तव्य हैं राजा के अपने प्रतिदिषस के कर्त्तव्य
हो, राजनीति साम, दण्ड, भेद एव उपप्रदानरूप हों एव राजव्यवहार हों

(सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सहावेइ) तैथार क्षीने तेष्से चित्र सारथीने ज्ञेताव्ये
(सहावित्ता एव वयासी) ज्ञेतावीने तेने आ प्रभाण्णे कट्टुं, (गच्छणं चित्ता !
तुमं सावर्त्थि नयरीं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव पाहुइ उवणेहि)
हे चित्र ! तमे श्रावस्तीनगरीमां जवेने अने जितशत्रुने आ महाप्रयोजन साधक
यावत् भेट आपी आवो, तथा (जाइं तस्थ रायकज्जाणि य रायकिष्वाणि य
रायनीईओ य रायववहारा य ताइं जियसत्तुणा सद्धिं सयमेव पच्छुवेक्ख-
माणे विहराहि चि कट्टु विसज्जिए) त्यां रावना राव सारथिं जे कंठं कर्त्तव्ये
होय, राजनीतिने जगती साम, दण्ड, भेद अने उपप्रदान इय-आणतो होय, रावकृत

व्यवहाराः=राजकृतन्यायाश्च भवन्ति, तानि सर्वाणि जितशत्रुणा नृपेण सार्द्धं स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणो=निरीक्षमाणो विहर=निष्ठ इति कृत्वा=इत्युक्त्वा स चित्रसारथिस्तेन विसर्जितः ॥ सू० १०४ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रणणा एवं वुत्ते समाणे हट्ट-जाव पडिसुणेत्ता तं महत्थ जाव पाहुडं गेणहइ, पए-सिस्स रणणो अंतियाधो पडिणिक्खमइ, सेयविया नयरीए मज्झ-मज्झेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेइ, कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासा खिप्पामेय भो देवाणुप्पिया । सच्छत्तं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणहा तएणं ते कोडुंबिय-पुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्तं जाव जुद्धसज्जं चाउ-ग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवे ति, तामाणत्तियं पच्चप्पिणंति । तएणं से चित्ते सारही कोडुंबिय-पुरिसाण अंतिए एयमट्ट जाव हियए णहाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवम्मिय-कवए उप्पालियसरासणपट्टिए पिणद्धगेविज्जविमलवरचिघपट्टे गहिया-उहप्पहरणे तं महत्थं जाव पाहुडं गेणहइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घट आसरहं दुरुहेइ, बट्टुहि पुरिसेहिं सन्नद्ध-जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं

राजकृत न्याय ही, उन सब का जिनशत्रु राजा के साथ निरीक्षण करते रहो. इस प्रकार कहकर चित्रसारथि को उमने विसर्जित कर दिया । टीकार्थ स्पष्ट है ॥सू०१०४॥

न्याय होय ओं अधाद्यं जितशत्रु राजानी पासो रहिनि तमे निरीक्षण करतां रहो, आ प्रभाषे कहीनि तेषु चित्र सारथिने जवानी आशा करी,
आ सूत्रनो टीकार्थ स्पष्ट छे, ॥१०४॥

धरेज्जमोणेणं महया—भडचडगरहपहकरविदपरिक्खत्ते साओ
 गिहाओ णिग्गच्छइ, सेयवियाए नयरीए मज्झ मज्जेणं णिग्गच्छइ,
 सुहेहिं वासेहिं पायरासेहिं नाइविकिट्टेहिं अतरावासेहिं वसमाणे
 वसमाणे केइयदस्स जणवयस्स मज्झ मज्जेणं जेणेव कुणाला जण-
 वए जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, सावत्थीए नयरीए
 मज्झमज्जेणं अणुपविसइ, जेणेव जियसत्तुस्स रण्णे गिहे जेणेव
 बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ, रहं
 ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुडं गिण्हइ, जेणेव अविभ-
 तरिया उवट्टाणसाला जेणेव जियसत्तु राया तेणेव उवागच्छइ, जिय-
 सत्तु राय करयलपरिग्गहिय जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ,
 त महत्थ जाव पाहुडं उवणेइ ॥ सू० १०५ ॥

छाया--ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवमुक्तः सन्
 इष्ट यावत् प्रतिश्रुत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति, प्रदेशिनो राज्ञो
 ऽन्तिकत् प्रतिनिष्कामति, श्वेतत्रिकाया नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वक

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथिने
 जब (पएसिणा रण्णा) प्रदेशी राजाने एवं बुत्ते समाणे) उसने ऐसा कदा-
 तब वह (इष्ट जाव) बहुत प्रसन्न हुआ यावत् (पडिसुणेत्ता तं महत्थं जाव
 पाहुडं गेण्हइ) उसकी आज्ञा के वचनों को स्वीकार करके उस महार्थ-
 साधक यावत्-प्राभृतको लिया (पएसिस्स रण्णे अंतियाओ पडिनिक्खमइ)
 और लेकर-वह प्रदेशी राजा के पास से निकला (सेयविया नयरीए मज्झम-
 ज्जेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) और श्वेतविका नगरी के

सुत्रार्थ—(तएण) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथिने व्यापरे
 (पएसिणा रण्णा) प्रदेशी राजान्ने (एवं बुत्ते समाणे) आ प्रभाण्णे आज्ञा करी त्थारे
 ते (इष्ट जाव) अत्यंत प्रसन्न थये यावत् (पडिसुणेत्ता तं महत्थं) कौष पाहुडं
 गेण्हइ) तेनी आज्ञाना वचनोने स्वीकारी ने तेण्णे ते महार्थसाधक यावत् खेटने एध
 वीथी. (पएसिस्स रण्णे अंतियाओ पडिनिक्खमइ) अने एधने ते प्रदेशी राजानी
 पासैथी एवो थधने अहार नीडण्णे, (सेयविया नयरीए मज्झमज्जेणं जेणेव सए

गृह तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं स्थापयति, कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमत्रापि पुः क्षिपमेव मो देवानु प्रियाः ! सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथ युक्तमेव उपस्थापयत यावत् प्रत्यर्पयत । ततः खड्गं ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव प्रतिश्रुत्य क्षिपमेव सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथयुक्तमेव उपस्थापयन्ति.

बीचों बीच से होता हुआ जहाँ अपना गृह था वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेह) वहाँ आकर के अपने उम महार्थ-महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत को एक तरफ रख दिया (कौटुम्बिक पुरिसे सहावेह) और अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया (सहावित्ता एव वयासी) उनसे ऐसा कहा (खिप्पामेव मो देवाणुप्पिया ! सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह, जाव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही रथ को घोड़ा जोतकर तैयार करके यहाँ ले आओ, उसे चार घटाओं से सज्जित करना. यावत् फिर हमारी इस आज्ञा को हमें वापिस करना—उस पर छत्र भी लगाना यावत् उसे युद्ध के योग्य सज्जित करना. (तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा तदेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेति) चित्र सारथि के इस प्रकार वचन सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत ही जल्दी छत्रयुक्त करके यावत् चार घटोंवाले उस अश्वरथ को तैयार

गिहे तेणेव उवागच्छइ) अने श्वेतविभनगरीनी वन्धे थधने नथा पोतानु धर इतु त्यां गथे। (उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेह) त्या जधने तेथे ते महार्थं साधकं महाप्रयोजन साधक यावत् वेटने अेक तरक भुकीहीधी, (कौटुम्बिकपुरिसे सहावेह) अने पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने गेलाव्या, (सहावित्ता एव वयासी) गेलावीने तेमने कहे, (खिप्पामेव मो देवाणुप्पिया ! सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे घोडा नेतरीने शीघ्र रथ तैयार करो, अने अहीं लावो, रथने चार घटाओथी सज्जित करो यावत् आज्ञा प्रभावे काम पुरुं करीने अमने जबर आये, रथनी उपर छत्र होवु नेथेथे यावत् बधी रीते युद्धना माटे येज्य होय तेम सज्जित करणे, (तएणं कौटुम्बिकपुरिसा तदेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेति) चित्र सारथिना आ प्रभावे वचन सावणीने ते कौटुम्बिक पुरुषोने अेकदम त्वरथी छत्रयुक्त यावत् चार घटोथी सुस-

तामोद्भसिकां प्रत्यर्पयन्ति । ततः त्वलु म चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुपाणाम्
अन्तिके एतमर्थं यावत् हृदयः स्नातः कृतवल्किर्मा कृतकौतुकमद्रलपार्गक्षतः
सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः उत्पीडितशम्भनपट्टिकः निन्द्यप्रैदयविमलवरचिह्नपट्टो
गृहीतायुधप्रहरणस्तन्महार्थं यावत् प्राभृत गृह्णाति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्व
रयस्तत्रैव उपागच्छति, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दरोहति. बहूमिः पुरुषैः सनद्ध-

कर उपस्थित कर दिया (तमाणत्तिः पञ्चप्पिणत्ति) और चित्र सारथि के
पास रथ को तैयार हो जाने को खबर भेज दी. (तएणं से चित्ते सारथी
कोड्डुवियपुरिसाणं अंतिए एयमद्धं सोच्चा जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मो
कयकोउयम गलपायच्छित्ते मन्नद्धवद्धवम्मियकवए, उप्पीलियसरासणपट्टिए,
पिणद्धगेविज्ज, विमलवरचिधपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ)
कौटुम्बिक पुरुषों से की गई खबर को सुनकर वह चित्र सारथि बहुत ही
अधिक आनंदित एवं संतुष्ट चित्त हुआ-उसने उसी समय उठकर स्नान किया.
बलिकर्म (काकआदि को अन्नभाग देनेरूप) किया, कौतुक म गल एव प्राश्चित्त
क्रिये अच्छी तरह से बाधकर कवच पहिरा, प्रत्यंचा बढाकर धनुष को नम्रीभूत
किया, घोवा में हार पहिरा, तथा सुन्दर चित्रों से चिह्नित निर्मल वस्त्र धारण
किये और खड्गादिक आयुधों को साथ में लिए. इस प्रकार से अच्छी
तरह से सज्जित होकर उसने उस महार्थसाधक यावत् प्राभृत को हाथ
में लिया और (जेणेव चाउघट्टे आसरहं तेणेव उवागच्छइ

सञ्जित करीने अश्वरथने उपस्थित कर्था. (तमाणत्तिय पञ्चप्पिणत्ति) अने रथ तैयार
थई ज्वानी भयर चित्र सारथिनी पास पडोयाडी. (तएण से चित्ते सारथी
कोड्डुवियपुरिसाणं अंतिए एयमद्धं सोच्चा जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मो
कयकोउयम गलपायच्छित्ते सन्नद्धवद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए,
पिणद्धगेविज्जविमलवरचिधपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव
पाहुड गेण्हइ) कौटुम्बिक पुरुषोनी काम पूर्ण थई ज्वानी भयर सावणीने ते चित्र
सारथि भूषण आनंदित अने संतुष्ट चित्त थयो. तेष्से तरतण स्नान कथुं, बलि
कर्म कथुं, कौतुक मंगल अने प्राश्चित्त कर्था सरस रीते कसीने कवथ पडेयुं, प्रत्यया
यक्षवीने धनुषने नम्र ज्जान्यु गणाभा हार पडेयो, सुहर सुहर चित्रोथी चिन्हित
निर्मल वस्त्रो धारण कयो. अने पुण्डूण वगेरे आयुधी अने प्रहरणो साथे लीधा आ प्रभासे
सरस रीते सञ्जित थडने तेष्से ते महार्थसाधक यावत् वेटने हाथमा लीधी अने
(जेणेव चाउघट्टे आसरहं तेणेव उवागच्छइ, चाउघट्ट आसरहं दुरुहइ)
अने ते ज्जां चातुर्घण्ट अश्वरथ तैयार हुतो त्या गयो. त्या ज्जडने ते रथ उपर

यावद्-गृहीतायुधपहरणैः सार्द्धं सम्परिवृतः सकोरिष्टमाल्यदान्ना छत्रेण
 ध्रियमाणेन महाभटवटकररथपहकरवृन्दपरिक्षिप्तः स्वाद् गृहाद् निर्गच्छति,
 श्वेतविकाया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, सुखैः वासैः प्रातराशैः नाति-
 विकृष्टैः अन्तरावासैः वसन् वसन् केकयाद्धस्य जनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
 कुणाला जनपदो यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्त्यां

चाउघटं आसरहं दुरुहेह) लेकर जहां वह चातुर्घट
 अश्वरथ तैयार खड़ा था वहाँ पर आया—वहाँ आकरके फिर
 वह रथ पर चढ़ा (बहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं
 संपरिवुडे सकोरिष्टमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भट्टचडगररहपग-
 करविंदपरिखत्ते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ) तत्र सन्नद्ध यावत् गृहीत आयुध
 प्रहरणवाले ऐसे अनेक पुरुषों से घिर गया, छत्रधारी द्वारा ध्रियमाण
 एवं कारण्टपुष्पमाला से विभूषित ऐसा छत्र उसके ऊपर तान दिया गया,
 महाभटों के विस्तृत समूह के वृन्दने उसे आकर घेर लिया। इस प्रकार
 की परिस्थिति से युक्त हुआ वह अपने घर से निकला (सेयवियाणणयरीए
 मज्झमज्जेण णिग्गच्छइ) और निकलकर वह श्वेतविका नगरी के बीचो-
 बीच से होकर चला—(सुहेहिं वासेहिं पयरासेहिं नाइविकिद्धेहिं अंतरावासेहिं
 वसमाणे २ केइयद्धस्स जणवयस्स मज्झमज्जेण जेणेव कुणाला जणवए जेणेव
 सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार घर से निकला हुआ वह
 सुखकर रात्रिनिवासों से, प्रातःकालिकलघु भोजनों से—कलेवाओं से, तथा
 अतिदूर के नहीं ऐसे अन्तरावालों से पडावों से—मध्याह्नकालिक विश्राम-
 स्थानों से जगहर ठहरतार केकयाद्धजनपद के मध्य मध्य से होता हुआ

सवार थये (बहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे
 सकोरिष्टमल्लदामेण छत्तेण धरेज्जमाणेण महया—भट्टचडगररहपगकरविंद
 परिक्खिक्खो साओ गिहाओ णिग्गच्छइ) अथरे सन्नद्ध यावत् जेमना हाथीमा
 आयुधो छे अथे अनेत पुरुषोथी परिवेष्टित थधने तथा डारट पुष्पभाणाथी विभू-
 षित अने छत्रधारी वडे धारणु करेखु छत्र तेनी-ऊपर ताणुवाभा आयुं त्यारे तेने
 महुभाटोना विशाल समूह वृन्दे आवीने प्रविष्ट करी दीधी आभ ते पोताना धरथी
 स्वाना थये. (सुहेहिं वासेहिं पयरासेहिं नाइविकिद्धेहिं अंतरावासेहिं वसमाणे २
 केइयद्धस्स जणवयस्स मज्झमज्जेण जेणेव कुणाला जणवए जेणेव सावत्थी नयरी
 तेणेव उवागच्छइ) आ प्रभाणु धरथी स्वाना थधने ते सुभकर रात्रिनिवासो, प्रात
 क्षालिक लघुभोजने, अति दूर नहिं अटले के नल्लकनल्लकना अन्तसवासो, (सुधामो)
 मध्याह्नकालिक विश्रामो अने स्थान स्थान पर सुकाम करतो ते केकयाद्ध जनपद

नगर्यां मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव जितशत्रो राजागृहं यत्रैव वाया उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगाच्च निगृह्णाति, रथं रथापयति, रथान् प्रत्यचरोहति, तत् महार्थं यावत् प्राप्तं गृह्णाति यत्रैव आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला यत्रैव जितशत्रु राजा तत्रैव उपागच्छति, जितशत्रुं राजान करतलपरिगृहीतं यावत् कृत्वा जयेन विजयेन वर्द्धयति, तन्महार्थं यावत् प्राप्तम् उपनयति ॥ सू० १०५ ॥

जहां कुणाला जनपद-(देश) था, और जहां उरमें श्रावस्ती नगरी थी वहां पर आ पहुँचा, (सावत्थीए नगरीए मञ्ज मञ्जोणं अणुपविमइ, जेणेव जिय सारुस रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) वहां आकर वह ठीक बीचोंबीच से होकर उस श्रावस्ती नगरी में प्रविष्ट हुआ और जेहा जितशत्रु राजा का प्रासाद था, जहा बाह्य उपस्थानशाला था वहां आया (तुरए णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रह ओ पच्चोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुइ गिण्हइ) वहां आकर उसने घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और फिर उस रथ में से वह नीचे उतरा और उसमें से उसने महार्थ साधक उस प्राप्त को लिया (जेणेव अन्धितरिया उवट्टाणसाला, जेणेव जियससू राया, तेणेव उवागच्छइ, जियससू रायं करतलपरिगहिय जाव कट्टे जणं विजणं वद्धावेइ तं महत्थं जाव पाहुइ उवणेइ) और उठाकर जहा आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला थी, जहा जितशत्रु राजा था वहा पर आया. वहा आकर के उसने जितशत्रु राजा को दोनों हाथों को अजलि बनाकर एवं उसे मस्तक पर रखकर जयाविजय शब्दों का उच्चारण करते

मध्यमा यधने न्या कुणाला देश इतो अने तेमा पसु न्या श्रावस्ती नगरी इती त्या पडोअथे (सावत्थीए नगरीए मञ्ज मञ्जोणं अणुपविमइ, जेणेव जियससु-सस रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) त्या पडोअथिने ते ठीक मध्यमार्गथी पसार यधने ते श्रावस्ती नगरीमा प्रविष्ट थथे अने न्या जितशत्रु राजाने प्रासाद (भडेव) इतो, न्या बाह्य उपस्थान शाणा इती त्या अथे. (तुरए णिगिण्हइ रहं ठवेइ, रहओ पच्चोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुइ गिण्हइ) त्या पडोअथिने तेणे वेडाअथेने रेकथा. रथने उणे राअथे अने रथमाथी नीचे इतरिने तेणे ते महार्थ साधक वेट वीधी. (जेणेव अन्धितरिया उवट्टाणसाला, जेणेव जियससू राया, तेणेव उवागच्छइ, जियससू रायं करतलपरिगहियं जाव कट्टे जणं विजणं वद्धावेइ, तं महत्थं जाव पाहुइ उवणेइ) अने' लधने ते न्या आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाणा इती न्या जितशत्रु राजा इतो त्यां अथे त्या अने तेणे जितशत्रु-राजने अने इधेअनी अ नति जनावीने अने तेने

टीका—'तएण से' इत्यदि—

ततः खलु म चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एव=पूर्वोक्तप्रकारेण उक्तः मन् हृष्ट यावत्-यावत्पदेन-हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविसर्पद्वयः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिर आवत्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एव देवस्तथेति आज्ञाया विनयेन वचन प्रतिश्रृणोति—इति संग्राहम् । अस्य वाक्यस्यार्थाऽस्यैव सूत्रस्य पञ्चमसूत्र टीकातोऽवगम्य इति प्रतिश्रुत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति=उपादत्ते, गृहीत्वा प्रदेशिनो राज्ञः अन्निकात्=समोपात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्वेतविकाया नगर्या मध्य-

हृष्ट वधाया, और वधारर उस महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत को उन्हें दिया, अर्थात् राजा को भेट किया ।

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब अपने चित्र सारथि से ऐसा कडा तब हृष्ट हुआ, तुष्ट हुआ एवं चित्त में आनन्दित हुआ-प्रीतियुक्त मनवाला हुआ, परमसौमनस्यित हुआ हर्ष के वश से उसका हृदयहर्षित होने लग गया उसी समय उसने करतलपरिगृहीत, दशनखसंयुक्त एवं शिर पर आवत्तवाली ऐसी अञ्जलि करके "हे देव ! आप जैसे कहते हैं सो मुझे प्रमाण है" इस प्रकार कह कर उनकी आज्ञा को बड़े विनय के साथ स्वीकार किया, हृष्ट तुष्ट आदि पदों का अर्थ इस सूत्र के पांचवे सूत्र की टीका से जानना चाहिये । इस प्रकार अपने स्वामी की आज्ञा स्वीकार करके उसने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत (भेट) को अपने हाथ में ले लिया और लेकर वह प्रदेशी राजा के पास से चला आया और श्वेतविका नगरी के मध्यभाग से होकर अपने घर पर आ गया. वहां आकरके

मस्तके भूङ्गी ते व्यविज्य शन्दोहं उच्यारब्धु करता वधामर्षी आपी अने त्थारपछी ते महाप्रयोजन साधक यावत् भेटने राजनी सामे भूङ्गी-राजने ते भेट अर्पित करी.

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने ज्यारि पोताना चित्र सारथिने आ प्रमाणे कहुं त्थारि हृष्ट, तुष्ट, चित्तमा आन हित अने प्रीतियुक्त मनवाणे थयेवो तथा परमसौमनस्यित थयेवो ते हर्षातिरेकथी अतीव हर्षित थय गयो. तेणे तरत ज करतल परिगृहीत दशनखसंयुक्त अने मस्तक पर अजलि हेरवीने कहु—“हे देव ! जे आप आज्ञा करे छे ते मारा भाटे प्रमाणइय छे आ प्रमाणे कहीने तेणे राजनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी हृष्ट तुष्ट वगेरे पढोनी अर्थ आ सूत्रनी पाव्यमा सूत्रनी टीकाभां स्पष्ट करवाभा आव्यो छे आ रीते पोताना स्वाभीनी आज्ञाने स्वीकारी तेणे महाप्रयोजन साधक यावत् भेटने हाथमा लीधी अने लधने ते प्रदेशी राजा पासथी रूपवतो रब्धो अने श्वेतविकानगरीना मध्यभागमा थधने पोताने घर गयो. त्यां पढोथीने तेणे ते

मध्येन व्यतिव्रजन् यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत् प्राप्तं स्थापयति, स्थापयित्वा कौटुम्बिकपुरुराजान्=भृशपुरुरान् शब्दयति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अगतीत=उक्तान्-भो देवानुप्रियाः! यूयं क्षिप्रमेव=शीघ्रमेव सच्छत्र यावत्-यावत्पदेन-पध्वज सघण्टं सपताकं सतोरणवरं सनन्दिघोषं सकिङ्किणीहेमजात्रपरिक्षिप्तं हैमवतचित्रतिनिशकनकनियुक्तदारुकं सुसंपिनिद्धचक्रमण्डलधु १० कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्माणम् आकीर्णंवरतुरगसुसंपयुक्तं कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिगृहीतं शरशतद्वान्त्रिशतनूणपरिमण्डितं सकङ्कटावतसकं सचापप्रहरणावरणभृतयोषयुद्धसज्जम् इति संग्राह्यम्, अर्थस्त्वेवां पदानां त्रिपण्डितसमुन्नतो द्वितीयाविभक्तिव्यत्ययेना-

उसने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राप्त को रख दिया, रख करके फिर उसने नौकरचाकररूप कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उसने उस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों! आपलोग शीघ्र ही छत्रसहित यावत्-ध्वजासहित, घण्टासहित, पताकासहित, उतमतोरणसहित, नन्दिघोषसहित, किङ्किणीसहित, इत्यादि ६२वें सूत्रोक्त विशेषणों से सहित रखको उपस्थित करो-६२वें सूत्र में उक्त पाठ जो यहां यावत् शब्द से गृहीत हुआ है द्वितीयाविभक्ति का व्यत्यय करके लिया गया है सो इस प्रकार से है—

“सध्वजं, सघण्टं, सपताकं, सतोरणवरं, सनन्दिघोषं, सकिङ्किणी हेमजालपरिक्षिप्तं, हैमवतचित्रतिनिशकनकनियुक्तदारुकं, सुसंपिनिद्धचक्रमण्डलधुराकं, कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्माणम्, आकीर्णंवरतुरगसुसंपयुक्तं कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिगृहीतं, शरशतद्वान्त्रिशतनूणपरिमण्डितं, सकङ्कटावतसकं, सचापप्रहरणावरणभृतयोषयुद्धसज्जम्” इस समस्त पाठका अर्थ

महाप्रयोजन साधक यावत् लेटने भूमी हीथी भूमीने तेबे नोकर-चाकर वगेरे कौटुम्बिक पुरुषोंने बोलाव्या. अने बोलावीने तेमने आ प्रभाबे कहुं-हे देवानुप्रियों! तने सो सत्तरे छत्रयुक्त यावत् ध्वज सहित, घटा सहित वगेरे ६२ भा सूत्रोक्त विशेषणोंथी युक्त रखने उपस्थित करो ६२ भा सूत्रने पाठ के अही यावत् शब्द बडे गृहीत थये छे ते भील विभक्तिने व्यत्यय (व्यतिक्रम) करीने ब्रह्म-कशये छे ते आ प्रभाबे छे—

“सध्वज सघण्टं, सपताकं, सतोरणवरं, सनन्दिघोषं, सकिङ्किणीहेमजालपरिक्षिप्तं, हैमवतचित्रतिनिशकनकनियुक्तदारुकं, सुसंपिनिद्धचक्रमण्डलधुराकं, कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्माणम् आकीर्णंवरतुरगसुसंपयुक्तं, कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिगृहीतं, शरशतद्वान्त्रिशतनूणपरिमण्डितं, सकङ्कटावतसकं, सचापप्रहरणावरणभृतयोषयुद्धसज्जम्” आ पाठने अर्थ आ प्रभाबे छे—

इसप्रकार से है—सध्वज-ध्वजा से युक्त है सघण्ट-दोनो और घण्टासहित है, सपताक-पताका सहित है, सतोरणवरयुक्त-प्रधानतोरण सहित है, सनन्दि-घोष-द्वादशप्रकार के बाजों से युक्त है, सकिङ्किणीहेमजालपरिक्षिप्त-क्षुद्र-घंटिकावाले हेमजाल से परिवेष्टित है, हैमवतचित्रतिनिशकनकनियुक्त दारुक-हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुई तथा विस्मयकारक ऐसी तिनिशवृक्षविशेषकी सुवर्ण शोभित लकड़ी से जो बनाने में आया है, सुसंपिन्द्वचक्रमण्डलधुराक-अच्छी तरह से जिसमें चक्रमण्डल एवं धुरा बांधे गये हैं, कालायस सुकृतनेमियन्त्रकर्मा-उत्तमजाति के कृष्ण लोह से जिसमें नेमियन्त्र कर्मकी रचना की गई है—अर्थात् चक्रान्तभूस्पर्शिभाग की मध्वर्षण से रक्षा करने के लिये अरकों के ऊपर फल कमण्डलरूप आवरण जिसमें लगाया गया है, आकीर्ण वरतुरगसुसंयुक्त-आकीर्णजातिके उत्तम घोड़े जिसमें जुते हैं, कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिगृहीतनिपुणपुरुषों मेंसे चतुरन्मारीद्वारा अच्छी तरह से जो परिगृहीत हो रहा है, शरशतद्वान्निशपूणपरिमंडित-शतसंगव्यक शरों के ३२ संख्यक बाणकोषों से जो परिमण्डित है, सचापशरग्रहरणाऽऽवरण-भृतयोधयुद्धसज्ज-धनुषसाहत बाणों से, कुन्त, तोमर, परशु आदि शास्त्रों से, ए कवच आदि उपकरणों से जो परिपूर्ण है, युद्धकारी योद्धाओं के संग्राम के लिये

सध्वज-ध्वजा सहित है, सघण्ट-दोनो तरङ्ग घण्टायो है, सपताक-पताकासहित है, सतोरणवर युक्त-प्रधान तोरण सहित है, सनन्दिघोष-आर् प्रकरणवाण्योथी युक्त है, सकिङ्किणी हेमजाल परिक्षिप्त-क्षुद्र (नानी), घंटिकावाण्यो हेमजालथी परिवेष्टित है, हैमवत चित्रतिनिशकनकनियुक्त दारुक-हिमालय पर्वत पर उत्पन्न थयेकी, विस्मय कारक तिनिशवृक्ष विशेषनी सुवर्ण मंडित लाकड़ीथी ने तैयार करवाभा आये है सुसंपिन्द्वचक्रमण्डल धुराक नेमा चक्रमण्डल अने धुरायो, सुमण्डल है, कालायस सुकृत नेमियन्त्रकर्मा-उत्तम जातिना कृष्ण लोहथी नेना नेमियन्त्रनी रचना करवाभा आवी है घण्टेके के चक्रको ने भाग चक्रपथ करे है तेने सध्वर्षथी रक्षवा भाटे कृष्ण लोहनी पाटी नेना पर लगाववाभा आवी है आकीर्णवर तुरगसुसंयुक्त-आकीर्ण जातिना उत्तम घोडायो नेमा नेतरैला है, कुशलनरच्छेक सारथि सुसंपरिगृहीत-निपुणपुरुषो भा पण्य अतिनिपुण्य सारथि वडे ने सारी रीते हाकवाभा आवी रथो है,—शरशत द्वान्निशपूणपरिमंडित-सो शरो अने अत्रीश नेटला त्रिभुजाथी ने परिमंडित है, सचापशरग्रहरणाऽऽवरण-भृतयोधयुद्धसज्ज-धनुष साहत बाणों से, कुन्त, तोमर, परशु वगैरे शास्त्रोथी, अने कवच वगैरे उपकरणोथी ने परिपूर्ण है, युद्ध करवाभा

ऽवसेय इति । एवविधं चातुर्घण्ट = चतसृभिर्घण्टाभिः शोभितम् अश्वरथं युक्तमेव = योजितं कृत्वैव उपस्थापयत, यावत् प्रत्यर्पयत = मदीय निर्देशानुसारेण सर्वं प्रकल्प्य मां सूचयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव = यथा चित्र सारथिना समाह्वृतं तथैव तदीयवचनं प्रतिधृत्य = स्वीकृत्य क्षिप्रमेव सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयन्ति, ताम् आज्ञासिकाम् प्रत्यर्पयन्ति = भवन्निदेशानुसारेण सर्वमस्माभिः सम्पादितं - मिति चित्रसारथये निवेदयन्ति । ततः खलु स चित्रसारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणाम् धर्मिके = ममीपे एतमर्थं = रथोऽस्माभिः सज्जीकृतः इत्येतद्वचनम् अथ यावद् हृदयः अत्रेदं समृद्धते, तथाहि - श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविसर्पद्धृदयः इति । अर्थस्त्वेवामुक्त एव, एतादृशः मन् स्नातः = विहितस्नानः कृतबलिकर्मा = स्नाने कृते पशुपत्या-धर्म कृतान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव

जो सज्ज-उद्यतोक्त है, चातुर्घट का अर्थ "चार घटाओं से शोभित" ऐसा है तथा युक्त शब्द का अर्थ "घोड़ों ऐसे जुता हुआ" सा है । जब तुम लोग मेरी आज्ञा के अनुसार सब काम कर लो तो हमे इसकी पीछे शीघ्र ही सूचना दो, इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जैसा कि चित्र सारथि ने उन्हें कार्य करने के लिये आज्ञापित किया था वैसा काम यथा शीघ्र करके उसे सूचना दे दो. "आपकी आज्ञा के अनुसार हमने सब काम कर लिया है", इस प्रकार से दी गई सूचना को सुनकर चित्र सारथि "हृष्ट तुष्ट चित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितः, हर्षवशविसर्पद्धृदयः" इन यावत् पदगृहीत विशेषणों वाला हो गया, इन पदों का अर्थ कहा जा चुका है । उसने स्नान किया, बलिकर्म किया - पशु पत्नी

भाटे के सन्निवृत्त छे, यातुर्घट-अेटवे के चार घटाथी के सुशोभित छे तेभज युक्त अेटवे के जेभा घोडाओ जेतरेवा छे तमे थारे भारी आज्ञा सुज्ज क्काम पुरे करी लो त्थारे भने काम स पूर्य थं ज्वानी ज्जभर आपो. त्थार पछी कौटु-म्बिक पुरेओ ज्जि चित्र सारथिनी आज्ञा प्रभाओ ज्ज शीघ्र काम पुरे करी दीधुं. अनं तेने ज्जभर आपी के-डे देवातुप्रिय । तभारी आज्ञा सुज्ज ज्जधुं काम पुरे थं गथुं छे. आ प्रभाओनी ज्जभर साभानी ज्जि चित्रसारथि " तुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्धृदय." यावत् पठथी गृहीत उक्त विशेषणुथी ते युक्त थं गथो आ पढोने अर्थ पढेवा स्पष्ट करवायां आओ छे. तेओ स्नान धर्मुं बलिकर्म धर्मुं - पशुपक्षि वगेरेने अन्नभाग अर्पित धर्मुं, ह्. स्वप्न वगेरेने नष्ट

प्रायश्चित्तानि-दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद् येन स तथा, तत् कौतुकानि-मपीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थदृध्यक्षतद्वर्णाङ्कुरादीनि । तथा-सन्नद्धवर्मितकवचः-सन्नद्ध शरीरे आरोपणात्. यद्-गाढतरबन्धनेन बन्धनात्, वर्मितम् अङ्गरक्षार्थं सुगृह्यतया परिहितं कवचं येन सः, तथा-उत्पीडितशरासनपट्टिकाः-उत्पीडिता=प्रत्यञ्चारोपणेन नञ्प्रकृता शरासनपट्टिका धनुर्दण्डो येन सः, अथवा-उत्पीडिता=स्कन्धे स्थापिता शरासनपट्टिका=धनु

आदिकों के लिये अन्न का भाग किया, दुःस्वप्न आदिकों को नष्ट करने के लिये अवश्यकरणीय होने से कौरुक मङ्गलरूप प्रायश्चित्त क्रिये मपी तिलक आदिकों का नाम कौतुक, सिद्धार्थ सरसो, दही. अक्षत दूर्वाङ्कुर आदिकों का नाम मंगल है। बाद में उसने सन्नद्ध, यद्, वर्मित कवच को पहिरा, पहिछे उसे शरीर पर आरोपण किया. इसलिये वह कवच सन्नद्ध हुआ, बाद में वह गाढतर बंधन से जकडकर बस दिया गया. इससे बद्ध हुआ, तथा अङ्गरक्षा के निमित्त ही यह धारण किया गया था. अतः वर्मित हुआ "उत्पीडितशरासनपट्टिकाः" से यह प्रकट किया गया है कि वह शरासनपट्टिका-धनुर्दण्ड जब प्रत्यंचा पर आरोपित किया गया तब झुक गया अथवा उत्पीडित शब्द का अर्थ 'कंधे पर रग्वना भी है। तथाच प्रत्यंचा आरोपित की जाने से झुका दिया है, धनुष दण्ड जिसने अथवा स्कन्ध पर आरोपित किया है धनुर्दण्ड जिसने, ऐसा वह चित्रसारथी हो गया तात्पर्य कहनेका यही है कि उस चित्रसारथीने अपने धनुष पर प्रत्यञ्चा आरोपित करछी, अथवा उसे हाथ में न लेकर कंधे पर टांग लिया. अपने कंधे

करवा भाटे अवश्यकरणीय मङ्गलरूप प्रायश्चित्तो कर्त्वा मपीतिलक वगेरेने कौतुक, सिद्धार्थ-सर्षप, दही, अक्षत दूर्वाङ्कुर वगेरेने मङ्गल कहे छे त्यारपछी तेबे सन्नद्ध, वर्मित, वर्मित कवच पहिछे पहिछा ते कवच्यु तेबे शरीर पर आरोपण क्युं. अथी ते कवच सन्नद्ध थ्यु त्यारपछी गाढतर बंधनवडे कसवाभां आव्यु अथी ते बद्ध थ्युं. अने अङ्गरक्ष भाटे होने धारण करवाभां आव्यु छुतु अथी ते वर्मित थ्युं "उत्पीडितशरासनपट्टिकाः" अथी आ रूपट करवाभां आव्युं छे के ते शरासनपट्टिका (धनुषदण्ड) पर अथारे प्रत्यंचा बंधाववाभा आवी ते शरासन पट्टिका नञी गछि छती. अथवा उत्पीडित शब्दने अर्थ 'अभापर भूक्यु' पण थय छे प्रत्यंचा बंधाववाथी तेबे धनुषदण्डने नभावी दीषा छे अथवा अभापर तेबे धनुषदण्ड धारण क्यो छे अवे ते चित्रसारथि शोभावा छाये। मतलब आ छे के ते चित्रसारथिये पोताना धनुष पर प्रत्यंचा बंधावी दीषी छती अथवा ते धनुषने हाथभाथी अभापर बेरवी दीषु

दण्डो येन सः, तथा-पिनद्ध्रैवेगविमलरचिह्नपटः-पिनद्ध्र=परिहित ग्रैवेयं=
 ग्रीवाभूषण विमलरचिह्नपटं, येन सः, तथा-गृहीतायुधप्रहरणः-गृहीतानि
 आयुधानि=घनुपादीनि प्रहरणानि=वर्णादीनि च येन स तथा-धृतशस्त्रास्र
 इत्यर्थः, एवम्भूतः सन् तत् महार्थं यावत् प्राभृत गृह्णाति. गृहीत्वा यत्रैव
 चातुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरो
 हति=आरोहति। ततः सः मन्मद् यावद् गृहीतायुधप्रहरणैः बहुभिः पुरुषैः
 पाद्वे=सह संपरिवृतः=संवेष्टितः सकोरण्टमाल्यदाग्ना=कोरण्टपुष्पमालात्रिभूपितेन-
 छत्रेण धियर्माणेन सह महाभटचटकरप्रकरवृन्दपरक्षिप्तः-महाभटानां ये चटकर
 प्रकराः=विस्तृतसमूहास्तेषां यद् वृन्दं तेन परिक्षिप्तः=परिवेष्टितः मनस्वात्=
 स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति=निस्सरति, नगत्त्यश्वेतविक्राया नगर्या मध्य-
 मध्येन निर्गच्छति। इत्थं निर्गतःससुखैः=सुखकरैःवासैः=रात्रिनिवासैः। पान

में उसने ग्रीवाका आभूषणरूप ग्रैवेय हार पहिरा और सुन्दर २ चित्रों से
 सुशोभित सुन्दर वस्त्र भी पहिरे. घनुष आदिकों को यहाँ आयुध पद से
 और तलवार आदिकों को प्रहरण पद से गृहीत किया गया है. हम तरह
 उसने आयुध और प्रहरणों को अपने साथ ले लिया. इस प्रकार मन
 से तैयार होकर वह प्राभृत को साथ में लेकर के जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ
 था वहाँ पर आया, वहाँ आकर वह उस रथ पर बैठ गया. रथ में बैठने
 ही वह सन्नद्ध रूप यावत् गृहीतायुधप्रहरणवाले अनेक पुरुषों से संपरि-
 वृत हो गया. छत्रधारी पुरुषने उसके ऊपर कोरण्टपुष्पों की मालाओं
 से सुशोभित छत्र तान दिया. इस तरह महासुभटों के विस्तृत समूह के
 वृन्द से परिवेष्टित होकर वह अपने घर से चला. एवं श्वेतविक्रानगरी
 के ठीक मध्यभाग से होता हुआ निकला. कितनेक सुखकरवासो से

हृत् गणामा तेष्वाभूषणरूप ग्रैवेयक-हार पहरेयो हतो अने सुन्दर चित्रैः श्री सुशो-
 बित सुन्दर वस्त्रो पणु-पहेयो हता. धनुष वगेरेने अर्द्धां आयुधपद अने तलवार वगेरेने
 प्रहरणु पहयो अर्द्धां संमर्णनां. आ रीते तेष्वापोताना आयुधो अने प्रहरणोने पोताना
 हाथमा लीधा. आ प्रभाषे अधी रीते तैयार थधने ते बेटने वधने ज्या चातुर्घंठ
 अश्वरथ हतो त्या गंथो त्या जधने ते रथ पर सवार थयो रथ पर सवार थताज
 ते सन्नद्ध थयेता यावत् गृहीतायुध प्रहरणवाणा अनेक पुरुषोथी ते संपरिवृत थंथ
 जथो छत्रधारी पुरुषोथे तेना उपर ऊपर ट पुष्पानी भागाथी सुशोबित छत्र ताणी
 हीधुं. आ प्रभाषे ते महासुभटोना विस्तृत समूहना वृन्दथी परिवेष्टित थधने ते
 पोताना घेरथी रवाना थयो अने श्वेतविक्रानगरीना ठीक मध्यभागमा थधने ते केंद-
 र्वाक सुभकरवासो, रात्रे सुकाम करीने सवारै त्याथी रवाना थती वथते करेवा प्राद

=पातः कालिकलघुमोजनैः, तथा-ना तत्रिकुट्टैः=तिदरैः अन्तरावासैः
 मध्याह्नकालिकविश्रामस्थानैः वसन् वगन् केकयाद्धस्य जनपदस्य मध्यमध्येन
 यत्रैव कुणाला जनपदो यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्त्या
 नगर्यां मध्यमध्येन अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव जितशत्रो राज्ञो गृहं
 यत्रैव बाष्पा उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान्=श्वान् विनियु
 क्ताति=निरुणद्धि, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यवरोहति=श्वतरति तत् महार्थं
 यावत् प्राभृत गृहीत्वा यत्रैव आभ्यन्तरिको उपस्थानशाला, यत्रैव जितश
 राजा तत्रैव उपागच्छति जितशत्रु राजानं कसतलपरिगृहीतं यावत् कृत्वा
 जयेन विजयेन वर्द्धयति, तद् महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनयति=तस्मै
 प्रच्छति ॥सू० १०५॥

राष्ट्रियों में ठहरने से पातराशों से-पात.कालिक लघुमोजनरूप कछेवा
 से तथा बहुत अधिक दूर के नहीं ऐसे मध्याह्नकालिक विश्रामों से युक्त
 हुआ वह जगह २ ठहरता-केकयाद्ध जनपद के पास आगया. उसके
 मध्य मध्य से होकर वह निकला और जहाँ कुणाला जनपद-देश था,
 और उसमें भी जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ आकर वह उसके ठीक
 बीचों बीच से होकर उसमें प्रविष्ट हुआ. प्रविष्ट होकर फिर वह वहाँ
 गया जहाँ जितशत्रु राजा का राजमहल था, और उसमें भी जहाँ बाष्प
 उपस्थानशाला थी. वहाँ पहुँचने ही उसने घोड़ों को खड़ा कर दिया
 और रथ को चलने से रोक दिया बादमें वह उस रथ से नीचे उतरा
 और प्राभृत को साथ लेकर वह आभ्यन्तरिको उपस्थानशाला में जहाँ
 जितशत्रु राजा थे. वहाँ पर पहुँचा, वहाँ पहुँचते ही उसने जितशत्रु राजा
 को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय . प्रणाम किया और जय विनय

शालिक अक्षय्योत्सवो, (नास्ताम्यो) तथा वधारे दूर नहि पक्षु नल्लक नल्लक ज मध्या-
 ह्नकालिक विश्रामो करतो करतो स्थान स्थान पर पडाव नाभतो ते केकयाद्ध जनपदनी नल्लक
 पडोन्त्यो. अने त्थारपथी ते जनपदनी मध्यमां यधने ज्था कुणाला देश इतो अने
 ज्था श्रावस्तीनगरी इती त्या अधने ते ठीक नगरीना मध्यभागांथी ज्थां जितशत्रु
 राजानो राजमहल इतो अने तेभा पक्षु ज्था बाष्प उपस्थानशाला इती त्या
 पडोन्त्यो अने पडोन्त्यता ज तेष्से घोडाओने उभा राग्था अने रथने आगण ज्वाथी
 शोकथो त्थारपथी ते रथमाथी नीचे उतथो अने सेटने लधने आभ्यन्तरिकी उपस्थान
 शालामा ज्था जितशत्रु राजा इतो त्या गथो त्या पडोन्त्यीने तेष्से जितशत्रु
 राजाने अन्ने हाथ जोडीने प्रणाम कर्था अने जयविजय शण्डोहं उन्त्यारक्षु करीने

मूलम्—तएणं मे जियसू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थ जाव पाहुडं पडिच्छइ, चित्ते सारहिं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविस-ज्जेइ, रायमग्गमोगाढं च संवासं दलयइ । तए णं से चित्त सारही विसज्जिए समाणे जियसूस्म अतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवाग-च्छइ, चाउग्घट आसरहं दुरुहइ, सावत्थाए णयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव रायमग्गमोगाढं आवासे तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, पहाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लोइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्प-महग्घाभरणालंक्रियसरीरे जिमियभुत्तुरागए वियणं समाणे पुव्वावरण्हकालसमयंसि गंधवेहि य गाडगेहि य उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे २ उवलोलिज्जमाणे २ इट्ठे सइ-फरिस-रस-रुव-गंधे-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ॥सू० १०६ ॥

छाया—ततः खलु स जितशत्रु राजा चित्रस्य सारथेस्तन्महार्थं यावत् प्राप्तं प्रतीच्छति चित्रं सारथिं सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति,

शब्दों का उच्चारण करते हुए उन्हें वधाई दी. बाद में लाये हुए उस महार्थ आदि विशेषणों वाले प्राप्त को उनके लिये अर्पण क्रिया । सू. १०५।

‘तए णं से जियसूरया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से जियसू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ) तब जितशत्रु राजाने चित्र सारथि से दिये गये महार्थ तेभ्ये वधाभक्षी आपी. त्याश्रथी तेभ्ये महार्थं वगेरे विशेषणोवाणी सेट शब्दने समर्पित करी. ॥१०५॥

‘त एणं से जियसू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से जियसू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ) जितशत्रु राजाने चित्रसारथि वडे अर्पित करायेली महार्थं वगेरे

राजमार्गावगाढ च तस्य आवासं ददाति । ततः खलु स चित्रः सारथिः विसर्जितः मन जितशत्रोः अन्निकात् प्रतिनिष्क्रामति, यत्रैव वाह्या उपस्थानशाला यत्रैव चातुर्घटः अश्वरथस्यैव उपागच्छति चातुर्घटम् अश्वरथं दुरीकति श्रावग्न्या नगर्यां मध्यमध्येन यत्रैव राजमार्गावगाढ आवासस्तत्रैव उपागच्छति, तृगान निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रव्यवरोहति, स्नातः

आदि विशेषणो वाले प्राभृत को जो कि प्रदेशी राजाने प्रेषित किया था. ले लिया (चित्त सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ, पड्विसज्जेइ) फिर कुशलपभ्रादि पूछकर उसका सत्कार किया, आमन आदि देकर उसका स्नान किया और बाद में उसे विसर्जित कर दिया अर्थात् विश्राम करने के निमित्त भेज दिया. (रायमग्गमोगाढ च संवासं दलयइ) उसे राजमार्ग के पास स्थित गृह में ठहराया गया (तए णं से चित्ते साह्ही विसज्जेइ समाणे जियसत्तुस्स अतियाओ पड्विनिकखमइ-जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउगघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) अतः वह चित्र सारथि जितशत्रु राजा द्वारा विसर्जित किया गया होकर उनके पास से चला आया. और जहा वाह्य उपस्थानशाला थी, जहां चातुर्घट अश्वरथ था वहां आकर वह (चाउगघटं आसरहं दुरुहइ) उस चातुर्घट रथ पर सवार हो गया (सावत्थीए णयरीए मज्झ मज्जेणं जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) और श्रावस्ती नगरी के बीचो बीच से होता हुआ जहां राजमार्ग पर स्थित आवास-गृह था वहां पर आया. (तुरए

विशेषणोवाणी केटने-के नेने प्रदेशी राजाने भोक्ती हुती-स्वीकारी दीधी (चित्त सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ, पड्विसज्जेइ) त्यारपछी कुशलता विषे सभाथारे पूछीने तेने सत्कार कथीं आसन वगेरे आपीने तेहु सन्मान कथुं अने त्यारपछी तेने विसर्जित करी दीधा अेटले के विश्राम करवा भाटे भोक्ती दीधा. (रायमग्गमोगाढ च संवासं दलयइ) तेने राजमार्गनी पासैना घरभा उतारे आथे. (तए णं से चित्ते साह्ही विसज्जेइ समाणे जियसत्तुस्स अतियाओ पड्विनिकखमइ-जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउगघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्यारपछी जितशत्रु राजा पासैथी विसर्जित कराथेते ते चित्रसारथी त्याथी रवाना थये अने जया पाद उपस्थानशाला हुती, जया चातुर्घट अश्वरथ हुतो त्या आव्ये त्या आवीने ते (चाउगघटं आसरहं दुरुहइ) चातुर्घट रथ पर सवार थये (सावत्थीए णयरीए मज्झ मज्जेणं जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) अने श्रावस्तीनगरीना मध्यमा थधने जया राजमार्ग पर स्थित आवास-गृह-हुतं

कृतचलिकर्मा कृतकौतुकमद्गलप्रायश्चित्तः शुद्धप्रवेशयानि मद्गल्यानि वस्त्राणि
 पवरपरिहितः अल्पमहर्घाभरणालङ्कृतशरीरो जिमित्तुक्तात्तरागतोऽपि च
 खलु सन् पूर्वापराङ्कालसमये गन्धर्वैश्च नाटकैश्च उपनर्त्यमानः २ उपगीयमान
 उपगीयमान उपलाल्यमानः २ इष्टान् शब्द-स्पर्श-रस-रूपगन्धान् पञ्च-
 विधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥ सू० १०६ ॥

निगिण्दिह, रहं ठवेह, रहाओ पञ्चोरुहइ) वहां आकरके उसने घोड़ोंको
 रोक रथ को खडा किया और फिर रथ से नीचे उतरा (पहाए कय-
 बलिकम्मे, कयकोउपमंगलपायच्छित्तो मृद्रप्पावेसाइ मंगलाइ वत्याइ
 पवरपरिहिण्) बाद में उसने स्नान किया. चलिकर्म-वायसादिकों के लिये
 अन्न का भाग दिया, दुःखस्वप्नों को नाश करने के लिये कौतुक,
 मंगलरूप प्रायश्चित्त किये. बाद में शुद्ध राजसभा में प्रवेश योग्य ऐसे
 माङ्गलिक वस्त्रों को रीति के अनुसार पहिरा (अल्पमहर्घाभरणालङ्किय-
 सरीरे) फिर उमने अल्प भारवाले बहुमूल्य आभरणों से अपने शरीर
 को आलङ्कृत किया और (जिमियस्तुत्तरागए वियणं समाणे) जीमने
 के बाद अर्थात् भोजन करके-फिर वह उपवेशनस्थान में आ गया
 (पुष्पावरणकालसमयसि) वहा दिवस के तृतीय पहर में (गंधर्वेहिं य
 णाहगेहिं य उवणच्चिज्जमाणे, उवणच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे २ उवलाळि-
 ज्जमाणे २) गीतों द्वारा और नाटकों द्वारा बार २ अपना २ विषय सिखा-
 कर, अपना २ विषय सुनाकर बारबार रिहाया गया, बारबार विलास-

त्या गथे (तुरए निगिण्दिह, रहं ठवेह, रहाओ पञ्चोरुहइ) त्या पडोव्हीने तेज
 घोड्यांने उभा राण्या रथ थोळाव्ही. अने त्यारपछी ते रथभाठी नीचे उतर्यो—
 (पहाए कयबलिकम्मे, कयकोउपमंगलपायच्छित्तो मृद्रप्पावेसाइ मंगलाइ
 वत्याइ पवरपरिहिण्) त्यारबाह तेजे स्नान कर्ण-अलिकर्म कर्ण-कागड, वगेरेने
 अन्नभाश आये. दु स्वप्नोत्ते नष्ट करवा भाटे कौतुक-मंगलरूप प्रायश्चित्त कर्ण.
 त्यारपछी शब्दरसभा शोभे जेवा स्वच्छ भागलिक वस्त्रो तेरो धारण कर्ण (अल्प-
 महर्घाभरणालङ्कियसरीरे) त्यारबाह तेजे अल्पभारवाणा, बहुमूल्य आभरणेथी
 पोताना शरीरने शय्यायुं अने (जिमियस्तुत्तरागए वियणं समाणे) स्थ
 पछी जेटवे के बोळन करीने ते उपवेशन स्थान तरक गये. (पुष्पावरणकाल-
 समयसि) त्या दिवसना त्रीण, पडोरभा, (गंधर्वेहिं य णाहगेहिं य उवणच्चिज्ज-
 माणे, उवणच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे-२ उवलाळिज्जमाणे २) त्या गीतो वडे,
 नाटको वडे बारबार पोतानो विषय सिखावेवो पोतानो विषय सभाणावीने प्रसन्न

‘तपणं से’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु स जितशत्रू राजा चित्रस्य सारथिः सकाशात् प्रदेशि-
गजप्रेषिनं तद् महार्थं यावन् प्राभृत पतीच्छति=पृह्णाति, चित्र सारथिं सत्कार
यति-कुशलप्रश्नादिना, सम्मानयति आमनप्रदानेन, ततस्तं प्रतिविमर्जयति=
विश्रामार्थं संप्रेषयति, तथाच=राजमार्गावगाढ=राजमार्गममीपस्थितम् आवासं=
गृह तस्य=तस्मै ददाति । अत्र सम्बन्धसामान्ये पठ्यी । ततः खलु स चित्रः
सारथिः जितशत्रुणा राज्ञा विसर्जितः सन् तस्य जितशत्रू राज्ञः अन्तिकात्
=प्रतिनिष्क्रमति=निर्गच्छति, यत्रैव श्राद्धा उपस्थानशाला, यत्रैव
चातुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं
दूरोहति=अरोहति, श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव राजमार्गावगाढ-आवासः,
तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति=निगृह्णाति, निगृह्य रथं स्थापयति,
स्थापयित्वा रथात् प्रत्यवरोहति=अवतरति । ततः स्नातः=कृतस्नानः कृतघ-
लिकर्मा=स्नानेकृते पशुपक्ष्याद्यर्थं कृतान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः-
कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि=दुःस्वप्नादि विघातार्थमवश्यकरणी-
यत्वाद् येन स तथा, तत्र-कौतुकानि=मपीतिलकानि, मङ्गलानि तु=सिद्धार्थ
सर्पपदध्यक्षतदूर्वाङ्कुरादीनि । तथा=शुद्धभावेऽयानि=राजसमापवेशार्हाणि मङ्ग-
ल्यानि=माङ्गलिकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितः=यथारितीपरिचृतः अल्पमहर्घा-
भरणालङ्कृतशरीर-अल्पानि=स्तोकभाराणि यानि महाघर्षाणि=बहुमूल्यानि आभ-
रणानि तैः अलङ्कृतं=सुशोभितं शरीर यस्य सः, तथा=जिमितशुक्लोत्तरा-
गतः जिमितः=कृतभोजनः, सच्चासौ शुक्लोत्तरागतः=भोजनोत्तरकालम् उपवे-
शनस्थाने समागतश्चेति तथामृतोऽपि च खलु सन् पूर्वापरार्द्धकालसमये
पूर्वाच्चासौ अपराहश्चेति पूर्वापराहः, स एवं कालसमयः=कालोपलक्षितः
समयस्तस्मिन्-दिवसस्य तृतीये महरे गान्धर्वैश्च=गीतैश्च नाटकैश्च उपनत्यै-

युक्त बनाया गया वह चित्र सारथि (इष्टे सह-फरिस-रस=रुद्र-गधे पंचविहे
माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुमधमाणे विहरइ) इष्ट-अमिलपित-शब्द, स्पर्श
रस, रूप गध इन पांच प्रकार के मनुष्यमध संबंधी कामभागों को
अनुभवित करने लगा । टोकार्थ इस्का स्पष्ट है ॥ १०६ ॥

दशयेवो, बारबार विद्यासुष्ठुत बनायेवो ते चित्र सारथि (इष्टे सह-फरिस-रस-
रुद्र-गधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुमधमाणे विहरइ) इष्ट-अमि
लपित-शब्द, स्पर्श, रस, गध आ पांच भागना मनुष्यमध संबंधी काम
भोगोने भोगववा लाये। टीकार्थ—आ सूत्रेनो २५८ छ ॥१०६॥

मानः उपनर्त्यमानः=नृत्तं दृश्यमानो दृश्यमानः उपगीयमानः उपगीयमानः-
गानं श्रान्यमाणः श्रान्यमाणः, अतएव-उपलाल्यमानः२ विलास्यमानः२
दृष्टान्=अभिलषितान् शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान पञ्चविधान् मानुष्यकान्=
मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥सू० १०६॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नाम
कुमारसमणे जाइसंपणणे कुलसंपणणे वलसंपणणे रूवसंपणणे विणय-
संपणणे नाणसंपणणे दंसणसंपणणे चरित्तसंपणणे लज्जासंपणणे ला-
घवसंपणणे लज्जालाघवसंपणणे ओयंसी तेयसी वच्चंसी जससी
जियकोहे जियमाणे जियमा . जियलोहे जियणिदे जिइदिए जिय-
परीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करण-
प्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे
मद्वप्पहाणे लाघवप्पहाणे खंतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे
विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियम-
पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दंसणप्पहाणे चरित्त-
प्पहाणे ओराले चउइसपुठ्ठी चउणाणोवगए पचहिं अणगारसएहिं
सद्धिं सपरिवुडे पुठ्ठाणुपुठ्ठि चरमाणे गामाणुगोमं दूइज्जमाणे सुह-
सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव कोट्टए चेइए तेणेव
उवागच्छइ, सावत्थी नयरीए बहिया कोट्टए चेइए अहापडिरूव
उग्गहं उग्गिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ सू०१०७।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वपत्नीयः केशीनामकुमार-
श्रमणो जातिसम्पन्नः कुलसम्पन्नो बलसम्पन्नो रूपसम्पन्नो विनयस-पन्नो

'तेणं कालेणं तेणं समएणं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय

'तेणं कालेणं तेणं समएणं' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते क्षण्ये (पासा-

ज्ञानसम्पन्नो दर्शनसम्पन्नः चारित्रसम्पन्नो लज्जासम्पन्नो लाघवसम्पन्नो लज्जा
लाघवसम्पन्न ओजस्वी तेजस्वी वर्चस्वी यशस्वी जितक्रोधो जितमानो जित
मायो जितलोभो जितनिद्रो जितेन्द्रियो जितपरीपहो जीविताशामरणभयविप्रमुक्तः
तपःप्रधानो गुणप्रधानः करणप्रधानः चरणप्रधानो निग्रहप्रधानो निश्चयप्रधानः

में (पासावच्चिज्जे) पार्श्वपत्नीय=भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में
स्थित (केसी नाम कुमारसमणे) केशी नामके कुमार श्रमण-जो कि
कुमार अवस्था में ही दीक्षित हुए थे और जो (जाइस पन्ने) जातिस पन्न
थे. (कुलसंपण्णे) कुलसंपन्न थे, (बलसंपण्णे) बल स पन्न थे (रूवसंपन्ने)
रूप संपन्न थे, (विणयसंपन्ने) विनयसंपन्न थे (नाणसपण्णे) ज्ञान
संपन्न थे, (दंसणसपन्ने) दर्शन संपन्न थे (चरित्तसपन्ने) चारित्र
संपन्न थे, (लज्जासंपन्ने) लज्जा स पन्न थे (लाघवसपन्ने) लाघव
संपन्न थे (लज्जा लाघवसपन्ने) लज्जा एवं लाघव से सपन्न थे (ओयसी,
तेयसी, वच्चसी, जसंसी) ओजस्वी थे, तेजस्वी थे, वर्चस्वी थे, यशस्वी थे,
(जियमाणे) जितमान थे (जियमाणे) जितमाय थे (जियलोहे, जियणिहे जिह्दिण)
जित लोभ थे, जितनिद्र थे, जित इन्द्रिय थे. (जियपरीसहे, जीवियासम-
रणमयविप्रमुक्के) जीने की आशा से और मरण के भय से विप्रमुक्त थे
(तवप्पहाणे गुणप्पहाणे) तपप्रधान थे, गुणप्रधान थे (करणप्पहाणे चरणप्पहाणे
निग्रहप्पहाणे, निच्छयप्पहाणे, अज्जवप्पहाणे, महवप्पहाणे, लाघवप्पहाणे

वच्चिज्जे) पार्श्वपत्नीय-भगवान् पार्श्वनाथनी शिष्य परंपरा में स्थित (केसी नाम
कुमारसमणे) केशी नामके कुमार श्रमण के ही कुमार अवस्था में ही दीक्षित तथा
हता-अनेके (जाइस पन्ने) जातिसंपन्न हता (कुलसपण्णे) कुल संपन्न हता.
(बलसंपण्णे) बल स पन्न हता. (रूवसंपण्णे) रूपसंपन्न हता. (विणयसपन्ने)
विनय संपन्न हता (नाणसपण्णे) ज्ञान संपन्न हता (दंसणसपन्ने) दर्शन
संपन्न हता (चरित्तसपण्णे) चारित्र संपन्न हता (लज्जासंपण्णे) लज्जा
संपन्न हता (लाघवसंपण्णे) लाघव संपन्न हता (लज्जालाघवसंपन्ने)
लज्जा अने लाघव संपन्न हता (ओयंसी, तेयसी, वच्चंसी, जसंसी) ओज-
स्वी हता, तेजस्वी हता, वर्चस्वी हता, यशस्वी हता. (जियकोहे) जित क्रोधी हता.
(जियमाणे) जितमान हता (जियमाणे) जितमाय हता (जियलोहे जियणिहे जिह्दिण)
जित लोभ हता, जितनिद्र हता, जितेन्द्रिय हता (जियपरीसहे, जीवियासमरण-
भयविप्रमुक्के) अवधानी आशा अने भयना भयभी विप्रमुक्त हता. (तव-
प्पहाणे गुणप्पहाणे) तप प्रधान हता, शुभ प्रधान हता (करणप्पहाणे, चरणप्प

आर्जवप्रधानो मार्दवप्रधानो लाघवप्रधानः क्षान्तिप्रधानो गुप्तप्रधानो मुक्ति-
प्रधानो विद्या धानो मन्त्रप्रधानो ब्रह्मप्रधानो वेदप्रधानो नयप्रधानो नियम-
प्रधानः सत्यप्रधानः शौचप्रधानो ज्ञानप्रधानो दर्शनप्रधानः चारित्रप्रधानः
उदारः चतुर्दशपूर्वाचतुर्ज्ञानोपगतः पञ्चभिः अनगारशतैः साठ्ठं सपरिवृतः
पूर्वानुपूर्व्या चरन् ग्रामानुग्रामं द्रान् सुवसुखेन विहरन् त्रैव श्रावस्ती गरी
यत्र च कोष्ठकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्तीनगर्यां बहिः कोष्ठके

स्वत्तिप्पहाणे, मुक्तिप्पहाणे, गुत्तिप्पहाणे विज्जप्पहाणे, मंनप्पहाणे, वेय-
प्पहाणे) करणप्रधान ये, चरण प्रधान ये, निग्रह प्रधान ये, निश्चयप्रधान
ये आर्जवप्रधान ये, मार्दव प्रधान ये, लाघवप्रधान ये, क्षान्तिप्रधान ये
मुक्तिप्रधान ये, गुत्तिप्रधान ये, विद्या प्रधान ये, मन्त्रप्रधान ये, ब्रह्मप्रधान
ये, वेद प्रधान ये, (नयप्पहाणे नियमप्पहाणे, सच्चप्पहाणे, सोयप्पहाणे,
नाणप्पहाणे, दंसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे, ओराळे चउहसपुक्खी चउणाणो-
वगए) नयप्रधान ये, नियमप्रधान ये, सत्यप्रधान ये, शौचप्रधान ये, ज्ञान
प्रधान ये, दर्शन प्रधान ये, चारित्र प्रधान ये, उदार ये. चौदह पूर्वके
धारी ये, और मतिज्ञान आदि चार ज्ञान वाले, थे (पंचहिं अणगासरहिं
संपरिवुडे) पांचसौ अनगारों के साथ (पुन्वाणुपुत्ति चरमाणे गामाणुगामं
दृहज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी णयरी, जेणेव कोट्टए
चेइए, तेणेव उवागच्छइ) तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विहार करते हुए,

हाणें, निग्गहप्पहाणें, निच्छयप्पहाणें, अज्जत्तप्पहाणें, महवप्पहाणें, लाघवप्प-
हाणें, स्वत्तिप्पहाणें, मुत्तिप्पहाणें, गुत्तिप्पहाणें, विज्जप्पहाणें, मत्तप्पहाणें
वेयप्पहाणे) करण प्रधान होता, अरथ प्रधान होता, निश्चय प्रधान होता, निश्चय
प्रधान होता, आर्जव प्रधान होता, मार्दव प्रधान होता, लाघव प्रधान होता, क्षान्ति-
प्रधान होता, मुक्ति प्रधान होता, गुप्ति प्रधान होता, विज्य प्रधान होता, मन्त्र प्रधान
होता, ब्रह्म प्रधान होता, वेद प्रधान होता. (नयप्पहाणे, नियमप्पहाणे, सच्चप्पहाणे
सोयप्पहाणे, नाणप्पहाणे, दंसणप्पहाणे, चरित्तप्पहाणे, ओराळे चउहसपुक्खी
चउणाणोवगए) नय प्रधान होता, नियम प्रधान होता, सत्य प्रधान होता, शौच
प्रधान ज्ञान प्रधान होता, दर्शन प्रधान होता, चारित्र प्रधान होता, उदार होता,
चौदपूर्वना धारी होता अने मतिज्ञान वगैरे आर-ज्ञानवाणा होता (पंचहिं अण-
गारसरहिं सदिं सपरिवुडे) पांचसौ अनगारिना साथे (पुन्वाणुपुत्ति चर-
माणे गामाणुगामं दृहज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी णयरी
जेणेव कोट्टए चेइए, तेणेव उवागच्छइ) तीर्थंकर पर परा मुख्य विहार करता करता

चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य सद्यमेन तपसा आत्मानं भावयन्
विहरति ॥ सू० १०७ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि—

तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वपत्नीयः=भगवतः पार्श्वनाथस्य
शिष्यपरम्परायां स्थितः केशीनामकुमारश्रमणः—कुमारश्चासौ श्रमणश्चेति,
कौमार्यावस्थायां प्रव्रजित इत्यर्थः, स कीदृशः ? इत्याह—जातिमत्पन्नः—जातिः=मातृ
पक्षः—तेन सम्पन्नो=युक्तः—उत्तममातृपक्ष सम्पन्न इत्यर्थः, तथा कुलसम्पन्नः—
कुल=पैतृको वंश, तेन सम्पन्नः—उत्तमपितृपक्षसम्पन्न इत्यर्थः, तथा—वल

एक ग्राम से दूसरे ग्राम में होते हुए आनन्द के साथ जहा श्रावस्ती
नगरी थी और जहां कोष्ठक चैत्य था, वहां पर आये. (सावत्थीनघ-
रीए बहिया कोट्टए चेइए अहापडिरुवं उगगहं उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा
अप्पाण भावेमाणे विहरइ) जहां आकर वे श्रावस्ती नगरी के बाहर
प्रदेश में स्थित कोष्ठक चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्तकर संयम
और तपसे आत्मा को भावित करते हुए ठहर गये. ।

टीकार्थ—उस काल और उम समय में पार्श्वपत्नीय भगवान् पार्श्व-
नाथकी शिष्य परपरा में स्थित केशीकुमार श्रमण जिन्होंने कौमार्य—बाल्य
अवस्था में प्रव्रज्या धारण करली थी. तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विहार
करते हुए कोष्ठक चैत्य में आकर ठहरे, ये जाति सम्पन्न थे मातृपक्षका
नाम जाति है, उससे ये युक्त थे अर्थात् उत्तम मातृपक्षवाले थे, पैतृक
वंशका नाम कुल है, उससे भी ये युक्त थे अर्थात् उत्तम पितृपक्षवाले थे विशिष्ट

એક ગામથી બીજે ગામ વિહાર કરતા કરતા આનંદની સાથે જ્યાં શ્રાવસ્તી નગરી હતી
અને જ્યાં કોષ્ઠક ચૈત્ય (ઉદ્યાન) હતું ત્યાં આવ્યા (સાવત્થો નયરીએબહિયા
કોટ્ટેરુ વેઇએ અહાપડિરુવં ઉગગહં ઉગ્ગિણ્હિત્તા સજમેણ તવસા અપ્પાણ
ભાવેમાણે વિહરઇ) ત્યાં જઈને તેઓ શ્રાવસ્તી નગરીની બહાર—કોષ્ઠક ચૈત્યમાં યથા-
પ્રતિરૂપ અવગ્રહ પ્રાપ્ત કરીને સંયમ અને તપથી આત્માને ભાવિત કરતા રોકાયા

૧ ટીકાર્થ—તે કાળે અને તે સમયે પાર્શ્વપત્નીય ભગવાન—પાર્શ્વનાથની શિષ્ય
પરંપરામાં સ્થિત કૈશીકુમાર શ્રમણ—કે જેમણે કૌમાર્ય અવસ્થામાં પ્રવ્રજ્યા ધારણ
કરી હતી. તીર્થંકર પરંપરા મુજબ વિહાર કરતા કરતા કોષ્ઠક ચૈત્યમાં આવીને
રોકાયા એઓ જાતિ સંપન્ન હતા માતૃપક્ષનું નામ જાતિ છે એનાથી એઓ યુક્ત
હતા એટલે કે ઉત્તમમાતૃપક્ષવાળા હતા પૈતૃકવંશનું નામ કુળ છે, એનાથી એઓ
યુક્ત હતા એટલે કે એઓ ઉત્તમપિતૃપક્ષવાળા હતા. વિશિષ્ટ સહનનથી સમુત્થ-

सम्पन्नः—बलं=त्रिशिष्टसहननसमुत्था शक्तिः, तेन सम्पन्नः, रूपसम्पन्नः—
 रूपम्=सर्वोत्कृष्ट शारीरं सौंदर्यं तेन सम्पन्नः, विनयसम्पन्नः—विनयःप्रसिद्धः,
 तेन सम्पन्नः, तथा ज्ञानसम्पन्नः=मत्यादिज्ञानयुक्तः, दर्शनसम्पन्नः=सम्यक्तव-
 युक्तः, चारित्रसम्पन्नः=चारित्र्यं=सयमः तेन सपन्नो=युक्तः, लज्जासम्पन्नः—
 लज्जा=अनुचितानुष्ठानसंवरणात्मिकरूपाः, तथा सम्पन्नः=युक्तः, लाघव-
 सम्पन्नः=लाघवं=द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं, भावतो गौरवत्यागः, ताभ्या सम्पन्नः,
 लज्जालाघवसम्पन्नः=लज्जया लाघवेन च स सततमेव सम्पन्नः। तथ—
 ओजस्वी—ओजः=आत्मिकतेजः, तदस्ति यस्य स तथा, आत्मिकतज
 सम्पन्न इत्यर्थः, तेजस्वी—तेजःशरीरप्रमा, तदगित यस्य तथा अनुपमशरीर-
 प्रमात्रिशिष्ट इत्यर्थः, तथा वर्चस्वी=प्रभाववान्, 'वचस्वी'—इतिच्छायापक्षे-
 प्रशस्तवचनयुक्त इत्यर्थः, तथा—जितक्रोधः=क्रोधजेता, जितमानःमानजेता—

सहनन से समुत्थ शक्ति का नाम बल है, इस बल से ये युक्त थे, सर्वो-
 त्कृष्ट शारीरिक सौन्दर्य का नाम रूप है. इस रूप से ये संपन्न थे, विनय
 संपन्न थे, मत्यादि ज्ञानों से संपन्न थे, सम्यक्तव से युक्त थे, संयमरूप
 चारित्र से युक्त थे, लज्जा से युक्त थे अर्थात् अनुचित काम करने से सदा दूर रहते
 थे. लाघव से युक्त थे, लाघव द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो प्रकार का कहा गया
 है अल्प उपधि रखना यह द्रव्य की अपेक्षा लाघव है तथा गौरव का त्याग करना
 यह भाव की अपेक्षा लाघव है. लज्जा और लाघव इन दोनों से ये युक्त थे. इनमें
 आत्मिक तेज पूर्णरूप से भरा हुआ था अतः ओजस्वी थे. शरीर
 प्रमा का नाम तेज है. यह शारीरिक तेज इनका अनुपम था. इस-
 लिये ये तेजस्वी थे. प्रभाववान् थे इसलिये वर्चस्वी थे अर्थात् प्रशस्तवचन
 से युक्त थे. इसलिये वचस्वी थे. क्रोध के विजेता थे अतः जित क्रोध थे.

शक्तिर्बलं नाम षण्णं छे, आ षण्णथी ओजो युक्तं इति -सर्वोत्कृष्ट शारीरिक सौन्दर्यं
 नाम रूपं छे, आ रूपथी ओजो संपन्नं इति, विनययुक्तं इति, भक्ति वगेरे मानेथी
 संपन्नं इति, सम्यक्तवथी युक्तं इति, संयमरूप चारित्रथी युक्तं इति, लज्जाथी युक्तं
 इति ओटवे द्वे-सावध काममा लज्जा राभता इति -द्रव्य अने भावनी अपेक्षां
 दाधवना ये प्रकारे छे अल्प उपधि राभवां ओ व्यनी अपेक्षांये दाधप छे तेम
 गौरव त्याग ओ भावनी अपेक्षांये दाधप छे लज्जा अने दाधप आ लज्जाथी
 ओजो संपन्नं इति, आत्मिक तेज ओमनाम प्रथुर प्रभावात्मा इति ओधी ओजो
 ओजस्वी इति शरीरप्रमात्तु नाम तेज छे. ओमत्तु आ शारीरिक तेज अनुपमं इत्तु
 ओधी ओ ओजो तेजस्वी इति, प्रभावान् इति ओधी ओ ओजो वर्चस्वी इति, दाधने
 एतन्ना इति ओधी ओजो जित-क्रोधी इति, मानना विजेता इति ओधी जित-

मानापमानयोस्तुल्य इत्यर्थः, जितमाय = सर्वथा निरुपटः, जित शोभः = लोमजेता, जितनिद्राः = वशो कृतानिद्राः, जितेन्द्रियः = निग्रहोत्सुकलेन्द्रियः, जितपरीषहः = परीषहजेता, तथा-जीविताशामरणभयविप्रमुक्तः-जीवितस्य = जीवनस्य या आशा तस्या, तथा-मरणस्य = प्राणवियोगस्य यद् भयंततश्च विप्रमुक्तः = रहितः जीवनमरणयोः समभावयुक्त इत्यर्थः तथा तपःप्रधानः = तपसा प्रधानः = सकलमुनीनां मध्ये प्राधानत्वं प्राप्तः, अथवा-तपः = तपस्या प्रधानं यस्य स महातपस्वीत्यर्थः, गुणप्रधानः-गुणैः = क्षान्त्यादिगुणैः प्रधानः = श्रेष्ठः । 'तपः प्रधानगुणप्रधाने' ति विशेषणद्वयेन तपः पूर्वबद्धकर्मणो निर्जराहेतुत्वेन संयमस्य चाभिनवकर्मणोऽनुपादेहेतुत्वेन मोक्षापायत्वान्मोक्षार्थिभिस्तावद्वय

मान के विजेता थे अतः जितमान थे, तात्पर्य मान अपमान में सम थे सर्वथा निरुपट थे. अतः जितमान थे, लोम के जेता थे अतः जितशोभ थे. निद्रा को वश में कर लिया था इसलिये जितनिद्रा थे. समस्त इन्द्रियों के निग्रहकर्ता थे-इसलिये जितेन्द्रिय थे-परीषहों पर विजय पा लिया था इसलिये जितपरीषह थे, जीने की आशा से एवं मरण के भय से बिल्कुल विप्रमुक्त थे-इसलिये जीवन मरण में समभाव शाली थे. तपसे सकल मुनिजनों में प्रधानता प्राप्त करने के कारण ये तपःप्रधान थे. अथवा तपस्या प्रधान थे. महातपस्वी थे. इसलिये तपः प्रधान थे. क्षान्त्यादिक गुणों से श्रेष्ठ होने के कारण गुणप्रधान थे "तपः प्रधान एवं गुणप्रधान" इन दो विशेषणों से यह सूचित किया गया है कि तप पूर्वबद्ध-कर्मों की निर्जरा का हेतु होता है एवं संयम नवीन कर्मों को अनुपादेयता का हेतु होता है अर्थात् नवीन कर्मों के आगमन

होगा. अर्थात् मान अपमान अपने शोभना भाटे सरभा होता श्रेष्ठो, स पूर्वत लिख्यते होता श्रेष्ठो जितमान होता लोभने लतनार होता श्रेष्ठो जितलोभी होता, श्रेष्ठो निद्रावश करी होती श्रेष्ठो श्रेष्ठो जितानिद्रा होता, अधी, धन्द्रियेने- श्रेष्ठो वशो करी राभी होती श्रेष्ठो श्रेष्ठो जितेन्द्रिय होता, परीषहो पर श्रेष्ठो विजय श्रेष्ठो, होता श्रेष्ठो श्रेष्ठो जित परीषह होता लववानी, आशाथी अने भरखुना श्रेष्ठो, श्रेष्ठो श्रेष्ठो विप्रमुक्त होता श्रेष्ठो लवन भरखुमा श्रेष्ठो समभावशाल होता. सकल मुनिशोभा तपनी अपेक्षाये प्रधान होवाथी श्रेष्ठो तप प्रधान होता, अर्थात् महातपस्वी होता क्षान्त्यादिक श्रेष्ठ श्रेष्ठो युक्त होवा महल श्रेष्ठो श्रेष्ठ प्रधान होता "तप प्रधान अने श्रेष्ठप्रधान" आ-ये विशेषणोथी ये वात सूचित करनामा आवी छे छे तप पूर्वबद्धकर्मोनी निर्जरानो हेतु होय छे अने /

मेयोपांनव्याविति सूचितम् । सामान्यतो गुणप्राधान्यमुक्त्वा सम्प्रति विशेषतस्तदाह-तथाहि-करणप्रधानः-करणं=पिण्डविशुद्ध्यादि मन्तविधम्, तदुक्तम् 'पिण्डविस्तोही (७) समिई (५) भावण (१२) पडिमा (१२) य इ द्वियनिरोहो (५) पडिळेहण (२५) गुत्तोओ (३) अभिगगहो (१) चैव करणं तु ॥१॥ छाया-पिण्डद्विशोधः समिति भावना-प्रतिमा च इन्द्रियनिरोधः । मतिळेखना गुप्तयः अभिग्रहाश्चैव करणं तु ॥ इति ॥

तत्प्रधानं यस्य स तथा, चरणप्रधानः-चरणं=महाव्रतादि मन्तविधम्, तदुक्तम्-- वय (५) समणधम्म (१०) संजम (१७) वेयावच्च (१०) च वंभ-गुत्तोओ (५) गाणाइति। (३) तवं (१२) कोह निग्गहाई (४) चरणमेयं । छाया--द्रतं श्रमणधर्मः संयमो वैयावृत्त्यं च ब्रह्मगुप्तयः । ज्ञानादिविक्रं तपः क्रोध निग्रहादिः चरणमेतत् ॥ इति ॥

तत् प्रधानं यस्य स तथा, निग्रहप्रधानः निग्रहः=असदाचारप्रवृत्तौ निषेधः स प्रधानं यस्य स तथा, निश्चयप्रधानः=निश्चयः=तत्त्वानां निर्णयो विहितानुष्ठानानामवश्यमभ्युपगमो वा, स प्रधानं यस्य स तथा आर्जवप्रधानः=आर्जवं=कृजुता माया-

को रोकनेवाला होता है- इसलिये ये दोनों मोक्ष के उपायभूत होते हैं अत मोक्षार्थियों को इन्हें अवश्य प्राप्त करना चाहिये ।

अब सामान्यरूप से गुणप्रधानता कहकर विशेषरूप से उसका प्रतिपादन करने के लिये कहा गया है-करण प्रधान इत्यादि पिण्डविशुद्ध्यादि सप्त प्रकारका है-कहा भी है 'पिण्डविस्तोही' इत्यादि, इन-गुणों से ये युक्त थे अतः ये करण प्रधान कहे गये हैं । महाव्रतादि रूप चरण ७० प्रकार का कहा गया है-जैसे 'वय' इत्यादि यह चरण इनमें प्रधान था. अतः ये चरण प्रधान थे. असदाचारप्रवृत्ति के निषेध का नाम निग्रह है यह निग्रह इनमें प्रधान था. अतः इन्हें निग्रह प्रधान कहा गया है । तत्त्वों का निर्णय करनेरूप निश्चय अथवा विहित अनुष्ठानों का अवश्य

कर्मोनी अनुपादेयतांनो हेतु होय छ. ओटके हे नवीन कर्मोने शकनार होय छ. ओथी न ओओ। ओन्ने मोक्ष मांटे उपायभूत कहेवाय छ ओथी भुञ्जुद्वोडोने मांटे ओ ओन्ने अवश्य आदरणीय छ.

'इवे सामान्यरूपथी शुभप्रधानतांनो करीने विशेषरूपथी तैतु' प्रतिपादन करवा मांटे कहे छ हे-करणप्रधान इत्यादि पिण्डविशुद्ध वगेरे रूप न करण छ तेना मात प्रकार छ. कहु छ-'पिण्ड विस्तोही' वगेरे आ करण ओभनामा प्रधानरूपे इतु ओथी ओओ। करणप्रधान कहेवाय छ महाव्रतादिप्र यरखना ७० प्रकारे कहेवाय छ. नैभके वय इत्यादि आ यरख पण्य ओभनामा प्रधानरूपे इतु ओथी ओओ। यरख प्रधान इता असदाचारनी प्रवृत्तिना निषेधतु नाम निग्रह छ आ निग्रह ओभनामा प्रधानरूपे इतो ओथी न ओभने निग्रह प्रधान कहेवामा आन्या छ. तत्त्वोना निश्चय मांटे नै निश्चयात्मके दृष्ट वृत्ति अथवा विहित अनुष्ठानोने स्वीकारवाइय नै निश्चयात्मके

निग्रहः, तत्प्रधानं यस्य स तथा, मार्दवप्रधानः—मार्दवं=मृदुता—नम्रता तत्प्रधानं यस्य स तथा, लाघवप्रधानः—लाघवं=लघुता—द्रव्यभावलघुता तत्प्रधानं यस्य स तथा, क्षान्तिप्रधानः—क्षान्तिः=क्रोधनिग्रहः, सा प्रधानं यस्य स तथा, गुप्तिप्रधानः—गुप्तिः=मनोगुप्त्यादिका, सा प्रधान यस्य स तथा, मुक्तिप्रधानः—मुक्तिः=निर्लोभता, सा प्रधानं यस्य स तथा, सर्वथा निर्लोभ इत्यर्थः विद्याप्रधानः—विद्याः=रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिदेवताधिष्ठिताः वर्णानुपूर्वीरूपाः ताः प्रधानानि यस्य स तथा मन्त्रप्रधानः—मन्त्राः—हरिणैगमैत्यादिदेवाधिष्ठिताः ते प्रधानानि यस्य स तथा, ब्रह्मप्रधानः—ब्रह्म=ब्रह्मचर्यं मैथुनविरमणलक्षण

स्वीकार करनेरूप निश्चय इनमें था, इसलिये ये निश्चयप्रधान थे। आर्जव नाम ऋजुता (सरलता) का है और यह माया निग्रहरूप होती है। यह इनकी प्रधान थी. अतः ये आर्जवप्रधान थे मार्दवप्रधान इसलिये थे कि इनमें मृदुता-नम्रता प्रधानरूप से थी. लाघवप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें द्रव्यभावरूप लघुता (हल्कापन) प्रधानरूप से थी क्षान्तिप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें क्रोध को निग्रह करनेरूप परिणति प्रधान थी. गुप्तिप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें मनोगुप्ति वचनगुप्ति, एवं कायगुप्ति ये तीन गुप्तियां प्रधान थी मुक्तिप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें निर्लोभता प्रधानरूप में थी, विद्याप्रधान थे इसलिये थे कि रोहिणी प्रज्ञप्त्यादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याएं इनमें प्रधान थीं मन्त्रप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें हरिणैगमेषी आदि देवाधिष्ठित मन्त्रप्रधान थे, मैथुनविरमणरूप ब्रह्मचर्य का नाम है. अथवा सर्व ही

भाव होय छे अे पक्ष अेभनामा हुतो. अेथी अेअो निश्चयप्रधान हुता. आर्जव ऋजुता (सरलता)नुं नाम छे. अेने मायानिग्रहरूप प्रवृत्ति होय छे अे पक्ष अेभनामा प्रधानरूपे हुती अेथी अेअो आर्जव प्रधान हुता. मार्दव प्रधान अेअो अेटला भाटे हुता छे अेभनामा मृदुता-विनम्रता-प्रधानरूपे हुती अेभनामा द्रव्यभाव लघुता प्रधानरूपे हुती अेथी अेअो लाघवप्रधान हुता क्रोधने निग्रह करवा रूप परिणति अेभनामा प्रधान हुती अेथी अेअो क्षान्ति प्रधान हुता अेभनामा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति अेने कायगुप्ति अे अेअे गुप्तिअो प्रधान हुती अेथी अेअो गुप्तिप्रधान हुता. अेभनामा निर्लोभता प्रधानरूपे हुती अेथी अेअो मुक्तिप्रधान हुता अेभनामा रोहिणी प्रज्ञप्त्यादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याअो प्रधान हुती अेथी अेअो विद्याप्रधान हुता. अेभनामा हरिणैगमेषी वर्गरे देवाधिष्ठित मन्त्रप्रधान हुता अेथी अेअो मन्त्रप्रधान हुता मैथुन विरमणरूप ब्रह्मचर्यनुं नाम ब्रह्म छे अथवा सर्वभूतअे अेअे

मिति सर्वमेव वा कुशलानुष्ठानं, तत्प्रधानं यस्य स तथा, वेदप्रधानः-वेदः=
 आगमः-लौकिक-लोकान्तरकुप्रावचनिकभेदेन त्रिविधः, स प्रधानं यस्य
 स तथा, स्वसमयपरसमयज्ञानसम्पन्न इत्यर्थः, नयप्रधानः-नयाः=नैग-
 मादयःसप्त त एव भेदप्रभेदतः सप्तशतविधाः, ते प्रधानानि यस्य स तथा
 विचित्राभिग्रहधारीत्यर्थः, सत्यप्रधानः-सत्यं=सकलप्राणिनामत्यन्तहितकरं
 वचनम्, तत् प्रधानं यस्य स तथा-हितमितप्रियवचनयुक्त इत्यर्थः, शौच-
 प्रधानः-शौचं=द्रव्यतो लेपरहित्यं भावतो निरवधाचरणं, तत् प्रधानं यस्य स
 तथा, ज्ञानप्रधानः-ज्ञानं=मत्यादिकं तत् प्रधानं यस्य स तथा, दर्शनप्रधानः

कुशल अनुष्ठानों का नाम ब्रह्म है इस ब्रह्मप्रधानता वाले वे थे. इसलिये
 इन्हे ब्रह्मप्रधान कहा गया है। आगम का नाम वेद है. यह लौकिक, लोको-
 त्तर, और कुप्रावचनिक के भेद से तीन प्रकार का है. यह वेद इनमें
 प्रधान था. अतः इन्हे वेदप्रधान कहा गया है। तत्पर्यं यह कि ये स्व-
 समय के और परसमय के ज्ञान से संपन्न थे नैगम, सग्रह आदि जो सात
 नय है ये नय ही भेदप्रभेद की अपेक्षा ७०० हो जाते हैं ये नय इनमें
 प्रधान थे अर्थात् ये बहुत ही सूक्ष्मरूप से नयों के विशेषज्ञता ये इस-
 लिये इन्हे नयप्रधान कहा गया है। अभिग्रहविशेषों का नाम नियम है
 अर्थात् ये विचित्र अभिग्रहों के धारी ये सकलप्राणियों के एकान्तरूप
 से हितकर्ता जो वचन होते है उनका नाम सत्य है इस सत्यप्रधान ये थे
 अर्थात् ये हित, मित, प्रिय वचन बोलते थे। द्रव्य और भाव की अपेक्षा
 से शौच दो प्रकार का है-लेपरहित होना यह द्रव्य की अपेक्षा शौच है

‘धनोक्तं’ नाम धर्म छे ओयो आ धर्म प्रधानताथी युक्त हुता ओथी न ओयो धर्म
 प्रधान कहेवाता हुता, आगमनु नाम वेद लौकिक, लोकान्तर અને कुप्रावचनिक आभ
 ननु प्रकारने छे, आ वेद ओभनामा प्रधान हुता ओथी ओयो वेदप्रधान
 कहेवाता भतक्षण आ छे के ओयो स्वसमयना અને परसमयना ज्ञानथी
 संपन्न हुता, नैगम, सग्रह वगैरे ने सात नयो छे ते नयो
 वेद प्रभेदनी अपेक्षाओ ७०० थछ नथ छे, ओ नय पक्ष ओभनामा प्रधान हुता
 ओटले के ओयो भूषण न नयना सुक्ष्मज्ञाता हुता, ओथी न ओयो नयप्रधान कहेवाथ
 छे, अभिग्रह विशेषण नाम नियम छे, ओटले के ओयो विचित्र अभिग्रहोने
 धारण करनारा हुता, ओकनिष्ठ थधने ने सकल प्राणीओना हित माटे वयने कहेवाथ
 छे ते सत्य छे, ओयो सत्यप्रधान हुता, ओटले के ओयो हित, मित અને प्रिय
 वचन बोलनारा हुता व्य અને भावनी अपेक्षाओ शौचना के प्रकारे छे, लेपरहित
 थणुं ओ द्रव्यनी अपेक्षाओ शौच छे, અને निरवधा आचरणुं कर्तुं ओ भावनी अपे-

दर्शनं=सम्यक्तत्वं, तत्प्रधानं यस्य स तथा, चारित्रप्रधानं-चारित्र=क्रिया,
 तत् प्रधानं यस्य स तथा, उदारः=ऋज्वाशयः, तथात्र-‘घोरे घोरगुणे घोर
 तवस्सी घोरश्च भवेत्वासी, उच्छूडसरीरे’ छाया-घोरो घोरगुणो घोरतप-
 स्वी घोरब्रह्मचर्यवामी उच्छूडशरीरः’ इति संग्राहम्
 तत्र-घोरः=सातिशयदीप्तियुक्तः, घोरगुणः=सर्वोत्कृष्टगुणयुक्तः. घोरतपस्वी=
 कातरजनदुष्करतपःकारकः, घोरब्रह्मचारी=अल्पसत्वाननुष्ठेयब्रह्मचर्य-
 युक्तः, उच्छूडशरीरः-उच्छूडम्=उज्ज्वलतमिव संस्कारपरित्यागात् शरीर
 येन सः, सर्वथा शरीरसंस्कारपरिवर्जित इत्यर्थः। तथा-चतुर्दशपूर्वी-चतु-
 र्दशपूर्वधारकः-तथा-चतुर्ज्ञानोपगतः=मति-श्रुतावधिमानःपर्यवेति ज्ञान-

और निरवध आचरण करना यह भाव की अपेक्षा शौच है, इस प्रकारके शौच प्रधान
 थे,। मत्यादिक ज्ञानों से प्रधान होने के कारण ये ज्ञानप्रधान थे, सम्य-
 क्त्वरूप दर्शन से प्रधान होने के कारण दर्शनप्रधान थे, क्रियारूप चारित्र से
 प्रधान होने के कारण चारित्रप्रधान थे, ऋज्वाशयरूप उदारभाव से प्रधान
 होने के कारण ये उदार थे, यहाँ घोरे’ इत्यादि। सातिशयदीप्ति से युक्त
 होने के कारण ये घोरगुण वाले थे, कातर-कायर जन जिन तपों को नहीं कर
 सकते थे-ऐसे कठिन तपों को करने के कारण ये घोरतपस्वी थे, हीन-
 शक्तिवाले जीव जिस ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते थे, उस ब्रह्म
 चर्यव्रत को ये धारण करते थे, इसलिये घोर ब्रह्मचारी थे, अपने शरीर
 का संस्कार करना इन्होंने छोड़ रखा था इसलिये ये उच्छूडशरीर थे,
 चौदह पूर्व के पूर्णरूप से पाठी थे, इसलिये ये चतुर्दशपूर्व धारकथे. मतिज्ञान,
 श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान इन चार ज्ञानों से सहित थे इस

क्षेत्रे शौचं छे क्षेत्रे शौचप्रधानं होता, मति वगेरे ज्ञानप्रधान होवाथी क्षेत्रे
 ज्ञानप्रधानं होता सम्यक्त्वइयं प्रधानं होवाथी क्षेत्रे दर्शनप्रधानं होता क्रिया इयं
 चारित्र प्रधानं होवाथी क्षेत्रे चारित्र्य प्रधानं होता ऋज्वाशयइयं उदारभावप्रधानं होवाथी
 क्षेत्रे उदार होता अही घोरे वगेरे सातिशय दीप्तिथी युक्त होवा अद्वैत क्षेत्रे
 घोरशुभवाणा होता. कातर होके के तपो आचर्यी शकै नहि ते कठिन तपोत्त. क्षेत्रे
 आचरण करता होता अथी क्षेत्रे घोर तपस्वी होता. दुर्गण एवो के जातना
 ब्रह्मचर्यं पालन करी शकै नहि ते ब्रह्मचर्यव्रतने क्षेत्रे धारण करता होता. अथी
 क्षेत्रे घोर ब्रह्मचारी होता. पोताना शरीरना संस्कारनी अथी क्रियाक्षेत्रे अभ्ये
 सहतर त्याग कर्यो होता अथी क्षेत्रे उच्छूड शरीर होता चौद पूर्वना पूर्णपाठी
 होता अथी क्षेत्रे चतुर्दशपूर्वधारक होता मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मन

चतुष्टययुक्तः। एवविधः मन पञ्चभिरनगारशक्तिः=पञ्चशतसंख्यकैरनगारैः।
 सार्द्धं=सह सपरिवृतः=संवेष्टितः पूर्वानुपूर्वी चरन्=तीर्थंकरपरम्परया विहर-
 माणः। ग्रामानुग्रामम्=एकस्माद् ग्रामाद् ग्रामान्तरं द्रवन्=गच्छन् सुखं सुखेन
 विहरन्, यत्रैव-श्रावस्ती नगरी, यत्रैव कोष्ठक चैत्य, तत्रैव उपागच्छति,
 श्रावस्ती-नगर्यां घट्टिः=श्रावस्ती नगरी घट्टिःप्रदेशे स्थिते कोष्ठके चैत्ये
 यथाप्रतिरूपं=साधुकल्पानुसारम् अवग्रहम्=वनपालाज्ञाम् अवगृह्य=गृहीत्वा
 संयमेन=सप्तदशविधेन तपसा=छादशविधेन च आत्मानं भावयन्=वासयन्
 विहरतीति। इदमत्रबोधयम्-आर्जवादीनां चरणकरणान्तर्गतत्वेऽपि यत्पुन-
 रूपादानं तत् आर्जवादीनां प्राधान्यख्यापनार्थमिति। जितक्रोधत्वादीनाम्
 आर्जवादीनां चायं विशेषो बोध्यः-जितक्रोधादिपदैः उदयावध्याप्राप्तानां

लिये चतुर्ज्ञानोपगत थे, इनके साथ पाँच सौ अनगार थे, अकेले नहीं थे,
 तीर्थंकरपरंपरा के अनुसार ये विहार करने में रत थे-अनः उसी परंपरा
 के अनुसार ये विहार करते, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में बड़े यतना से
 धर्मोपदेश की बरसा करते जहाँ श्रावस्ती नगरी थी. और उममें भी
 जहाँ वह कोष्ठक चैत्य या वहाँ पर आये, वहाँ आकर वे उस नगरी
 के बाहर बने हुए उस कोष्ठक चैत्य में साधुकल्प के अनुसार वनपाल की
 आज्ञा लेकर १७ प्रकार के संयम से और १२ प्रकार के तप से आत्मा
 को वासित करते हुए ठहर गये. यहाँ ऐसा समझना चाहिये-आर्जव
 आदि यद्यपि चरण और करण के अन्तर्गत है-पर भी यहाँ जो स्वतन्त्र
 रूप से उनका उपादान किया गया है-वह उनमें प्रधानता प्रदर्शित करने
 के लिये किया गया है। जितक्रोधस्व आदि में और आर्जव आदि में

पर्यथज्ञान ये आर्य्यार ज्ञानोथी ज्येथो युक्त इता ज्येथी चतुर्ज्ञानोपगत इता. ज्येथेनी
 साधे पायसो अनगार इता. ज्येथो ज्येथो इता नहि तीर्थंकर परंपरो मुच्यते
 विहार करवाभां ज्येथो रत इता. ग्राम ज्येथो तीर्थंकर परंपरा मुच्यते विहार इत्यां
 करता ज्येथो ग्रामथी, जीव ग्राम भूय न निष्ठाथी धर्मोपदेशनी वषां करता करतां न्यां
 श्रावस्ती नगरी इती अने तेमा पक्षु न्या ते कोष्ठक चैत्य इतुं त्या आण्य. त्या
 आवीने ते नगरीनी अहारना ते कोष्ठक चैत्यसा साधु कल्प मुच्यते वनपालनी आज्ञा
 जेणवीने १७ प्रकारना संयमथी अने १२ प्रकारना तपथी. पीताना आत्माने वासित
 करता तेज्यो त्या शैकाथेत्ता आर्जव वगेरेना जे, के यरक्षु अने करणुमां समवेत्त
 थाय, छे छता ज्ये अर्द्धी ज्ये स्वतन्त्रपथी ज्येमत्त अहक्षु करायुं छे ते तेमनामा
 प्रधानता प्रदर्शित करवा माटे न छे तेम समजतुं. जितक्रोधस्व वगेरेमा अने

ક્રોધાદીનાં વિફલીકરણ સૂચિતં, માર્દવપ્રધાનાદિપદૈસ્તેપામુદયનિરોધઃ
 સૂચિતઃ । અથવા-યત-एव जितक्रोधादिः, अत एव-क्षमादिप्रधान इति हेतु
 हेतुमद्भावाद् विशेषो बोध्य इति ; तथा-‘ज्ञानसम्पन्नः’ इत्यादिपदैः ज्ञाना-
 दिमप्यमात्रं सूचितम् । ‘ज्ञानप्रधानः’ इत्यादिपदैस्तु ज्ञानादिप्राधान्यं सूचित-
 मिति ॥ सू० १०७ ॥

मूलम्—तएणं वत्थीए नयरीए सिघाडग—तिय—चउक-
 चधर—चउम्मुह—महापहपहेसु महया जणसदेइ वा जणबृहेइ वा
 जणबोलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुक्कलियाइ वा जणसंनि एइ
 जाव परिसा पवासइ ।

तएणं तस्स चित्तस्स सारहिस्स तं महयाजणसई च जाव
 जणसंनिवाय च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए
 जाव समुप्पजित्था किणं अज्जा सावत्थीए णयरीए इंदमहेइ वा

यह अन्तर है कि जो जितक्रोधादि होता है वह उदयावस्थाप्राप्त क्रोधा-
 विकों को विफल बना देता है, और जो मार्दवप्रधानादि पदों वाला होता
 है वह क्रोधादिकों के उदय का निरोध कर देता है। यही बात सूचित
 करने के लिये इन पदों को मिनर रूप में रखा गया है। जिस कारण
 वह जितक्रोधादि होता है, उसी से वह क्षमादिप्रधान होता है—इस तरह
 हेतुहेतुमद्भाव को लेकर इनमें विशेषता जाननी चाहिये, तथा ‘ज्ञानसंपन्न’
 इत्यादि पदों द्वारा सिर्फ ज्ञानादियुक्तता सूचित की गई है और ‘ज्ञान-
 प्रधान’ इत्यादि पदों द्वारा उनमें प्रधानता प्रकट की गई है ॥ सू. १०७ ॥

આજ્ઞા ધરેમા આ તક્ષવત છે કે જે જિતક્રોધી વગેરે હોય છે તે ઉદયયાવસ્થા
 પ્રાપ્ત ક્રોધાદિકોને અકળ બનાવી મૂકે છે અને જે માર્દવ પ્રધાનાદિપદોવાળા હોય
 છે તે ક્રોધાદિકોના ઉદયનો નિરોધ કરે છે. એ વાતને સૂચિત કરવા માટે જ આ
 પદોનું ‘મિનર મિનર રૂપમા અહણ્ય કરાયું’ છે જેને લઈને તે જિતક્રોધાદિ હોય છે,
 તેને લઈને જ તે ક્ષમાદિપ્રધાન હોય છે. આ મંભાણે હેતુ હેતુમદ્ભાવને લઈને એમ-
 નામાં વિશેષતા બાણવી બેધ્યએ તેમજ “જ્ઞાનસંપન્ન” વગેરે પદો વડે ક્ષત જ્ઞાનાદિ
 મુક્તતા સૂચિત કહવામા આવી છે અને “જ્ઞાનપ્રધાન” વગેરે પદો વડે તેમનામા
 પ્રધાનતા પ્રકટ કરવામા આવી છે ॥૧૦૭॥

खंदमहेइ वा एवं रुदमहेइ मउंदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा नाग-
महेइ वा भूयमहेइ वा जकखमहेइ वा थूममहेइ वा चेइयमहेइ वा
रुव महेइ वा गिरिमहेइ वा दरिमहेइ वा अगडमहेइ वा नईमहेइ
वा रमहेइ वा सागरमहेइ वा, जं णं^मइमे वहवे उग्गा उग्गपुत्ता
भोगा भोगपुत्ता रइन्ना इक्खगा णाया कोरव्वा जहा उववाइए
तहेव अप्पेगइया हयगया जाव अप्पेगइया पायचारविहारेणं महया
महया वंदावंदएहिं निग्गच्छंति ? । एवं सपेहेइ संपेहिन्ता कंचुइज्ज-
पुरिसं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज
सावत्थीए नयरीए इंदमहेइ वा जाव सागरमहेइ वा जेणं इमे वहवे
उग्गा जाव णिग्गच्छंति ॥ सू० १०८ ॥

छाया—ततः खलु आनस्या नगर्याः शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-
चसुसुख-महापथपथेषु महान् जनशब्द इति वा जनव्यूह इति वा जनबाल
इति वा जनकल कल इति वा जनोर्मिरित वा जनात्कलिकेति वा जनसन्निपात
इति वा यावत् परिपत् पयुपास्ते ।

‘तए णं सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (सावत्थीए नयरीए) आवस्ती नगरी के
(सिंघाहग-तिय-चउक-चत्वर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया जणसदेइ वा
जणवूहेइ वा, जणबोलेइ वा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलि-
याइ वा, जणसंनिवाएइ वा, जाव परिसा पज्जुवासइ) शृङ्गाटक में त्रिक में,
चतुष्क में, चत्वर में, चतुसुख में, महापथ में एव पथ में मिलित मनुष्योंका पर-

‘तए णं सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्वात्पथी (सावत्थीए नयरीए) आवस्ती नगरीना (सिं-
घाहग-तिय-चउक-चत्वर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया जणसदेइवा जणु
वूहेइवा, जणबोलेइवा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलियाइ वा,
जणसंनिवाएइ वा जाव परिसा पज्जुवासइ) शृङ्गाटकां, त्रिकेषुमा, चतुष्के
मा, चत्वरमां, चतुसुखेमा, महापथेमा अने पथेमा व्येकत्र थयेवा अने आवस्ती

ततः खलु तस्य चित्रस्य सारधिगत महान्तं जनशब्दं च यावत् जन-
स निपातं च श्रुत्वा च दृष्ट्वा च अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यन,
किं खलु अद्य श्रावम्भ्या नगर्याम् इन्द्रमह इति वा स्कन्दमह इति वा एव
रुद्रमह इति वा मुकुन्दमह इति वा वैश्रवणमह इति वा नागमह इति वा
भूतमह इति वा यक्षमह इति वा स्तूपमह इति वा चैत्यमह इति वा वृक्षमह-

स्परमें आलाप प्रचुररूप से होने लगा और लोक भी इकट्ठे हुंवे थे परस्पर
में अव्यक्तवर्ण वाली ध्वनि भी लोगों के मुख से निकलने लगी, कोलाहल
जैसा मच गया लोगों में अगर भीड़ होने से एक दूसरे का संघर्ष भी
होने लग गया, कहीं मनुष्यों को थोड़ी भीड़ छूटकर खड़ी हो गई,
अन्य अन्य स्थानों से आर कर उनमें मिलने लगे. यावत् परिषदा
उनकी पर्युपासना करने लगी. ।

(तएण तस्म चित्तस्स सारहिस्म त महया जणसहं च जाव जण-
संनिवायं च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयाह्वे अज्जत्थिए जाव समुप्प-
ज्जित्था) इसके बाद उस महान् जनशब्द को यावत् जनसंनिपात को
सुनकर एव देखकर उस चित्र सारधि को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक
यावत् मनोगत विचार उत्पन्न हुआ, (किं णं अज्ज सावत्थीए णरीए इंदमहेइ
वा खदमहेइ वा एव रुदमहेइ वा-मउदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा, नाग-
महेइ वा, भूयमहेइ वा, जखमहेइ वा) क्या आज श्रावस्ती नगरी में

करना लोकेमा परस्पर प्रचुरइपमा आलाप थवा भाउथे-वातालाप प्रारभ थये-
लोके वधारे सध्यामा अेकत्र थवा लाध्या. परस्पर अस्कुट ध्वनिमा पद्य लोकेमा
वातथीत थवा लागी. परिणामे धोधाट नेपुं वातावरण थं गयु. त्या अपार भीड
थवा भाडी अने तेथी अेक भीलंथी स धरित थंने न लोके अवरवर करीशकता
हवा. अेवी परिस्थिति उत्पन्न थं गध. डेटलाक स्थाने पर अेअ भाधसे ठेणाना
आक्षरमा अेकत्र थं गभा. अने भीलं लोके पद्य तेमनी पासे इकाववा लाध्या, यावत्
परिषदा तेमनी पर्युपासना करना लागी.

(त एण तस्स चित्तस्स सारहिस्स त महया जणसहं च जाव जण
संनिवायं च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयाह्वे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था)
आहेणं ते महान् जनशब्दने यावत् जनसंनिपातने सांभणने अने नेधने ते
विनसोरथीने आं नतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत विचार उत्पन्न थये डे
(किं णं अज्ज सावत्थीए णरीए इंदमहेइ वा खदमहेइ वा एव रुदमहेइ वा
मउदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा नागमहेइ वा, भूयमहेइ वा जखमहेइ वा)

इति वा गिरिमह इति वा दरीमह इति वा अवटमह इति वा नदीमह इति वा सरोमह इति वा सागरमह इति वा, यत्खलु इमे ब्रह्म उग्रा उग्रपु भोगा भोगपुत्रा राजन्याः इक्ष्वाकवो ज्ञाताः कौरव्याः यथा औपपातिके तथैव

इन्द्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या रुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या रुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या मुकुन्द को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या वैश्रवण को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या नाग को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या भूतको निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या यक्ष को निमित्त करके उत्सव हो रहा है (धूममहेइ वा, चेइयमहेइ वा, रक्खमहेइ वा, गिरिमहेइ वा, दरिमहेइ वा, अगड्यमहेइ वा, नईमहेइ वा, सरमहेइ वा, सागरमहेइ वा, या किसी स्तूप को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी चैत्य-उद्यान को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी वृक्ष को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी पर्वत को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी गुफा को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी-अवट-कूप को लेकर के उत्सव हो रहा है, या किसी नदी को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी तालाब को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी समुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है? (जे णं इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता, भोगा भोगपुत्ता, राइन्ना, रक्खगा, णाया, कौरव्वा.

- शुं आजे श्रावस्ती नगरीमां धन्द्रना निमित्ते ढोइ उत्सव उज्जाध रथो छे, खंडना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे रुद्रना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे मुकुन्दना निमित्ते ढोइ उत्सव उज्जाध रथो छे, डे वैश्रवणना निमित्ते ढोइ उत्सव उज्जाध रथो छे, डे नाग निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे भूतना निमित्ते ढोइ उत्सव उज्जाध रथो छे डे यक्षना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे. (धूममहेइ वा, चेइयमहेइ वा, रक्खमहेइ वा, गिरिमहेइ वा, दरिमहेइ वा, अगड्यमहेइ वा, नईमहेइ वा, सरमहेइ वा, सागरमहेइ वा) डे ढोइ स्तूपना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे चैत्यना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, वृक्षना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे पर्वतना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे डे गुफाना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे ढोइ-अवटकूपना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे ढोइ नदीना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे तालाबना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे, डे ढोइ समुद्रना निमित्ते उत्सव उज्जाध रथो छे? (जे णं इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता, भोगा भोगपुत्ता, राइन्ना, रक्खगा, णाया, कौरव्वा, जहा

अप्येकके हयगता यावत् अप्येकके पादचार विहारेण महर्द्धिमहर्द्धिद्वं
 वृन्दैर्निर्गच्छन्ति ? , एवं सपेक्षते संपेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुषं शब्दयति, शब्दयति
 श्वमवादीत्—किं खलु देवानुप्रियाः ! अथ श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति
 यावत् सागरमह इति वा, यत्खलु इमे बहव उग्रा यावत् निर्गच्छन्ति? । १०

‘तएण’ इत्यादि—

टीका—ततः खलु श्रावस्त्या नगर्यां शृङ्गाटक—त्रिक—चतुष्क—चत्वर चतुष्ट
 —महापथपथेषु—तत्र—शृङ्गाटक=शृङ्गाटकाकृतिकस्त्रिकोणो मार्गः, त्रिकं=त्रिप

जहा उववाइए तहेव अप्पेगइया हयगया) जो ये बहुत से उग्रवंश के मनु
 उग्रवंश के पुत्र, भोगवंश के मनुष्य, भोगवंश के पुत्र, राजन्यवंश
 मनुष्य, इक्ष्वाकुवंश के मनुष्य, ज्ञातवंश के मनुष्य, कुरुवंश के मनु
 जैसा कि इसके आगे औपपातिक सूत्र में कहा गया है उसके अनु
 कितनेक घोड़ों पर चढ़ कर (जाव अप्पेगइया पायचारविहारेणं महय
 वंदावदएहिं निगच्छंति) यावत् कितनेक पैदल ही भिन्न समूह
 होकर निकल रहे हैं। (एव सपेहेइ) ऐसा उसने विचार किया—(स
 पेहिता कञ्चुइज्जपुरिसं सहावेइ) ऐसा विचार करके उसने कञ्चुकीयपुरुष
 बुलाया (सहाविता एव वयासी) बुलाकर उससे कहा—(किं णं देवानुप्पिय
 अज्ज सावत्थीए नयरीए इदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा जे णं इमे ब
 उगगा, जाव निगच्छंति) हे देवानुप्रिय ! क्या आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्र म
 त्सव है या यावत् सागर महोत्सव है कि जिससे ये उग्रवंश के मनुष्य यावत् जा र

‘उववाइए तहेव अप्पेगइया हयगया) के जेथी धुआ उग्रवंशना पुत्रो, जे
 वंशना भाइसो, भोगवंशना पुत्रो, राजन्यवंशना भाइसो, इक्ष्वाकुवंशना भाइ
 ज्ञातवंशना भाइसो कुरुवंशना भाइसो—पहेला औपपातिक सूत्रमा जे प्रभाणे व
 कश्वाभा आव्यु छि ते सुब्ब इट्ठाक बोअयो परसवार थधने (जाव अप्पेगा
 पायचारविहारेणं महयार वंदावदएहिं निगच्छंति) यावत् इट्ठाक पयाप
 जे बुदा बुदा समूहोमा ज्येअत्र थधने जध रक्षा छि (एव सपेहेइ) आ जत
 तेणे विचार कथी (सपेहिता कञ्चुइज्जपुरिसं सहावेइ) आ प्रभाणे विचार क
 तेणे कञ्चुकीय पुरुषने बोलाव्यो (सहाविता) एव वयासी) बोलावीने तेने
 किं णं देवानुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नयरीए इदमहेइ वा, जाव सा
 महेइ वा जेणं इमे बहवे उगगा, जाव निगच्छंति) हे देवानुप्रिय ! शु
 श्रावस्ती नगरीमा इन्द्रमहोत्सव छि के यावत् सागर महोत्सव छि के जेथी उग्रवं
 भाइसो यावत् जध रक्षा छि ?

यत्र त्रयो मार्गाः सम्मिलन्ति तत् चतुष्कम्=चतुष्पथ यत्र चत्वारो मार्गा मिलि तस्मिन्, चत्वरम्=अनेकमार्गसंगमस्थानम्, चतुर्मुखं=यत्क्षतसृष्वपि दिक्षु पन्थानो निस्सरन्ति तत्, महापथः=राजमार्गः, पन्थाः=सामान्यमार्गः, एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषु तथोक्तेषु, महान्=प्रचुरः जनशब्द इति वा=जनानां परस्परालापारिरूपः, जनव्यूहः=जनबोलः=जनानामव्यक्तवर्णा ध्वनिः, जनकलकलः=जनानां कोलाहलध्वनिः, तत्र-बोलककलयोरयं विशेषः =बोल=अविभाव्यमानवचनविभागः कलकलम्तु विभाव्यमानवचनविभाग इति, जनोर्मिः=जनसम्बाधः, जनोत्कलिका=जनानां लघुतरः सघातः, जनसन्निपातः=जनानाम् अन्योन्यस्थानेभ्य एकत्र मीलनम्. आवत्-पर्यत्=उग्रोपुत्रादिरूपा

टीकार्थ—तब आवस्ती नगरी के श्रृंगटक-सिंघाढे की आकृति जैसे त्रिकोणवाले मार्ग में, त्रिक-तीनमार्ग से मिले हुए मार्ग में, चतुष्पथमें चार मार्गों से मिले हुए मार्ग में, चत्वर में-अनेक मार्गों के संगमवाते स्थान में, चतुर्मुख-जहासे चारों दिशाओं में मार्ग निकलते हैं, ऐसे रास्ते में, महापथ राजमार्ग में, और पथ-सामान्य मार्ग में प्रचुर मात्रा में जनशब्द हुआ, आपस में बातचीत करने की अवाज निकली, जनव्यूह-जनसमुदाय-आकर इकट्ठा होने लगा, जनबोल-मनुष्यों की अव्यक्त वर्णवाली ध्वनि होने लगी, जनकलकल-जनों की कोलाहल रूप ध्वनि होने लगी। बोल में और कलकल में अन्तर इतना ही है, कि बोल में वचनविभाग अविभाव्यमान (अलग) होता है और कलकल में वचनविभाग विभाव्यमान (अव्यक्त ध्वनि) होता है, जनसम्बाधजनों के जमघट्ट में होने वाले पारस्परिकविमर्द का नाम जनोर्मि है तथा मनुष्यों का जो लघुतर सघात है वह जनोत्कलिका है. अन्योन्यस्थानों से आगत

टीकार्थ—त्यारे आवस्ती नगरीना श्रृंगटक-शिंघोरांनी आकृति जेवा त्रिकोणवाणा मार्गभा, त्रिक-त्रिषु मार्गो न्या अेकत्र थाय ते मार्गभां, यतुष्पथभा-चार रस्ताज्यो न्या जोगा भणे ते मार्गभां, चत्वरभा-वषुषु मार्गो न्या अेकत्र थाय ते स्थानभा, चतुर्मुख-न्याथी ज्येभेर रस्ताज्यो जता होय ज्येवा मार्गभा, महापथ-राजमार्गभा अने पथ-सामान्य मार्गभा-भारे जनशब्द थये भाषुसोना घोघाट थये परस्पर वार्तालाप करवाथी शैकलकल थये जनव्यूह-जनसमुदाय-अेकत्र थवा लाज्यो, जनबोल-भाषुसोनी अव्यक्त ध्वनि थवा लाज्यो, जनकलकल-भाषुसोना कलाहलरूप ध्वनि थवा लाज्यो जोलभा अने कलकलभा तक्षवत् आटलो ज छे के जोलभा वचन विभाग अविभाव्यमान होय छे अने कलकलभा वचनविभाग विभाव्यमान होय छे जनसम्बाधजनाना जमघट्टभा थनार परस्परिक विमर्दत्त नाम छे तेज भाषुसोना जे लघुतर सघात छे ते जनोत्कलिका छे जीव वषु स्थानेथी आवेक भाषुसे

पर्युपास्ते । अत्र यावच्छब्देन-‘बहुजणो अन्नमन्नस्स’ इत्यारभ्य ‘अभिमुह्णवि-
णणं पंजलिउड्ढा’ इत्यन्तःसर्वोऽपि पाठ औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीगत
श्री महावीररवामिसमागमनपठितः सर्वोऽप्यत्र वाच्यः, नवरसू-अत्र छत्रा-
दयस्तीर्थकरातिशेषाः न वाच्याः । तथा-‘समणे भगवं महावीरे’ इत्यादि
भगवन्नाम स्थाने ‘पासावच्चिज्जे केसी नाम’ कुमारसमणे जाईसंपणे
इत्यादि वाच्यम् । अत्र ‘जन शब्द इति वा’ इत्यादौ इति शब्दो वाक्या-
लङ्कारे ‘वा’ शब्दः समुच्चये इति ।

‘तए णं तस्स चित्तस्स’ इत्यादि-ततः खलु तस्य चित्रस्य सारथेः
तं महान्तं जनशब्दं च यावत् जनसंनिपातं च श्रुत्वा=आकर्ण्य तं महान्तं

मनुष्यो का जो एक जगह मिलान होता है उसका नाम जनसंनिपात है।
यावत् उग्र, उग्रपुत्र आदि कौ की परिपदाने पर्युपासना की यहाँ यावत् शब्द
से ‘बहुजणो अण्णमण्णस्स’ यहाँ से लेकर ‘अभिमुह्ण विणणं पंजलि
उड्ढा’ यहाँ तक का सब पाठ जो कि औपपातिक सूत्र में ३८ वे सूत्र में
चम्पानगरीगत श्रीमहावीर स्वामी के आगमन के पाठ में लिखा जा चुका
है, ग्रहण किया गया है। उस पाठ गत छत्रादिक जो कि तीर्थकर प्रकृति
अतिशयरूप हैं यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये-तथा ‘समणे भगव-
महावीरे’ इत्यादि भगवन्नाम के स्थान में ‘पासावच्चिज्जे केसी नाम’
कुमार णे जाईसंपणे’ ऐसा पाठ कहना चाहिये, ‘जनशब्द इति वा’
इत्यादिपाठ में आगत इति शब्द वाक्यालंकार में और ‘वा’ शब्द
समुच्चय में आया है ।

‘तए णं तस्स चित्तस्स’ इत्यादि इसके बाद उस चित्र सारथि को उस
अधिक स्थाने जथा अेकत्र थाय छे तेतुं नाम जनसंनिपात छे यावत् उग्र, उग्रपुत्र
वगेरेनी परिषदाअे पर्युपासना करी अही यावत् शब्दथी ‘बहुजणो अण्णमण्णस्स’
अहीथी भाडीने “अभिमुह्ण विणणं पंजलिउड्ढा” सुधीना औपपातिक सूत्रना
३८ भा सूत्र सुज्ज अं पानगरी गत श्री महावीर स्वामीना आगमनपाठभां जे
वधुंन करवाभा आअ्युं छे-ते णधु अही अहथु समज्जु. ते पाठभा जे छत्रादिक-
के जे तीर्थकर प्रकृतिना अतिशयइय छे- तेमजु अहथु अहीं करजु नहि. तेमज्ज
‘समणे भगवं महावीरे’ वगेरे भगवानना नामोनी ज्ज्याअे “पासावच्चिज्जे केसी
नामं कुमारसमणे जाईस पन्ने” आ जतना पाठजु अहथु समज्जु “जन-
शब्द इति वा” वगेरे पाठभा आवेल ‘इति’ शब्द वाक्यालंकारभा अने ‘वा’ शब्द
समुच्चयना इयभा छे

‘तए णं तस्स चित्तस्स’ इत्यादि, त्थारथी ते । अत्र सारथीने ते महान्तं

जनसमुदाय' दृष्ट्वा च अयमेतद्रूपः आध्यात्मिको यावत् समुद्रपथतः=समु-
त्पन्नः। यावच्छब्देन 'चिन्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः'
इति पदसमूहः व्यञ्जीतितममुत्रावद् बोध्यः। अर्धोऽण्येषां तत एव गम्य
इति। सम्प्रति मनोगतसंरूपस्वरूपमाह—'किं ण' इत्यादि। किं खलु 'किम्'
इति वितर्कं, 'खलु' इति वाक्यालङ्कारे, अथ श्रावस्तीनां नगर्याम् ईन्द्रमहः—
इन्द्रः=शक्रः तन्निमित्तो महः=उत्सवः= इति वा, एव, स्कन्दमहः' इत्यारभ्य
'सागरमहः' इत्यन्तानां पदानामपि अर्धोऽणुसन्धेयः। नवरम्-स्कन्दः=कार्ति-

महान् जनशब्द को यावत् जनसंपातको सुन करके और देख करके इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ। यहाँ यावत् शब्द से 'चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत' ये विशेषण संकल्प के ग्रहण किये गये हैं। इनका अर्थ ८३वें सूत्र में स्पष्ट किया गया है। अतः वहाँ से यह जानना चाहिये। 'किं ण' इत्यादि 'किं' शब्द वितर्क में और 'खलु' शब्द वाक्यालंकार में आया है। चित्र सारथी को जो संकल्प उत्पन्न हुआ है वही इन शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है—क्या आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमह है? इन्द्र नाम शक्र का है। इस शक्र को निमित्त करके किया गया मह-उत्सव वह इन्द्रमह है। 'स्कन्दमह' से लेकर 'सागरमह' तक के पदों का अर्थ भी इसी प्रकार से जानना चाहिये। स्कन्द नाम कार्तिकेय

जनशब्दने यावत् जनसंपातने साकण्ठीने अने जेधने आ नतने आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न थये। अह्नी यावत् शब्दथी "चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत" संकल्प भाटे आ विशेषणुं अह्नी समज्जु आ अधानो अर्थ ८३ भा सूत्रभा स्पष्ट करवामा आये छे तेथी निशासुअनेओ त्याथी न्हाणी, लेवु जेधये. "किं ण" थ्यादि "किं" शब्द वितर्कं भाटे अने "खलु" शब्द वाक्यालंकार भाटे प्रयुक्त थये छे चित्रसारथिने जे संकल्प उत्पन्न थये तेज आ [नम शब्दो वडे प्रकट करवामा आये छे के शु आये श्रावस्ती नगरीमा इन्द्रमह छे? इन्द्र शक्रुं नाम छे. आ शक्रना निमित्त उज्ज्वयेत उत्सव इन्द्रमह छे. "स्कन्दमह" थी भाडीने "सागरमह" सुधीना अधा पढानो अर्थ आ प्रभाणु जे न्हाणुवे जेधये. इह

केयः, रुद्रः=शिवः मुकुन्द =नारायणः, वैश्रवणः=कुबेरः, नागो=भवनपतिविशेषः, भूतयक्षौ व्यन्तरविशेषौ, स्तूपः चैत्यस्तूपःशिखर वा, चैत्यं=चिनास्थितं स्मारकचिह्नम्, वृक्षः=अश्वत्थादिः, दरी=गुहा, गिरिः=पर्वतः, अवटः=गर्तः, नदी, सरः=सागराः=समुद्राः। 'इति' शब्दः सर्वत्र स्वरूपनिर्देशपरः. 'वा' शब्दः समुच्चये। ततश्च इन्द्रमहादिषु कश्चिन्महोऽस्ति, यत्खलु इमे षड्वहः उग्राः=भगवता आदिनाथेन आरक्षरूपदस्थापितानां वंशजाताः, उग्रपुत्राः=कुमारावस्थोपेता उग्राएव उग्रपुत्राः, भोगाः=आदिनाथेन गुरुपदे स्थापितानां वंशजाताः, भोगपुत्राः-तेषां पुत्रा एव, राजन्याः=भगवताऽऽदिनाथेन वयस्यपदे स्थापि-

का है. रुद्र नाम महादेव का है मुकुन्द नाम नारायण का है, वैश्रवण नाम कुबेर का है. भवनपतिविशेष का नाम नाग है, भूत और यक्ष ये व्यन्तर विशेष हैं। स्तूप का नाम चैत्य स्तूप अथवा शिखर है. चिनास्थित स्मारक चिह्न का नाम चैत्य है, पीपल वगैरह के झाड़ का नाम वृक्ष है, गिरि नाम पर्वत का है, गुफा का नाम दरी है, अवट का नाम गर्त, नदी, सर-तालाब और सागर ये सब अर्थतः प्रतीत ही हैं। इति शब्द यहां सब जगह स्वरूप-निर्देशपरक है 'वा' शब्द समुच्चय में है। इस तरह से उसने विचार किया कि क्या इन्द्रमहादिकों में से आज कोई मह-उत्सव है कि जिसमें ये अनेक उग्र-भगवान् आदिनाथ द्वाः जिन्हें आरक्षक के पद पर स्थापित किया गया है, उनके वंश के लोग-जा रहे हैं ये अनेक उग्रपुत्र-कुमारावस्थोपेत उग्ररूप उग्रपुत्र जा रहे हैं, ये भोग आदिनाथ भगवान् जिन्हें गुरु के पद पर स्थापित किया उनके वंशके लोग जा रहे हैं, भोगपुत्र-उनके कुमारावस्थापन्न लड़के जा रहे हैं, ये राजन्य-आदिनाथ

कतिङ्केयलु नाम छे रुद्र महादेवलु नाम छे. मुकुन्द लुं नाम छे नारायणलु वैश्रवलु कुबेरलु नाम छे, भवनपति विशेषलु नाम नाग छे भूत अने यक्ष ओओ व्यन्तरविशेष छे. स्तूप नाम चैत्यस्तूप अथवा शिखरलु छे, चिनास्थित स्मारकचिह्नलु नाम चैत्य छे, पीपण वगैरे झाड़लु नाम वृक्ष छे शृक्षलु नाम दरी छे. गिरि पर्वतलु नाम अवट गर्त छे, नदी सर-तलाब अने सागर आ भधाना अथो रूप छे, इति शब्द अही स्वरूप निर्देशपरक छे "वा" शब्द समुच्चय भाटे वपनयो छे आ प्रभाषे विचार कयो छे शु आने इन्द्र महादिकेभाथी कौं भडोत्सव छे ? छे ओथी ओओ षड्वा उग्र-भगवान् आदिनाथ वडे ओमने आरक्षकपदे प्रतिष्ठित करवामा आओया छे तेमना वंशना लोको न्थ रक्षा छे, ओओ षड्वा उग्रपुत्रो-कुमारावस्थापेत उग्ररूप उग्रपुत्रो न्थ रक्षा छे, ओ भोग-आदिनाथ भगवाने ओमने गुरुपदे प्रतिष्ठित कयो छे तेमना वंशना लोको न्थ रक्षा छे, ओ भोगपुत्रो तेमना कुमारावस्थापन्न पुत्रो न्थ रक्षा छे, ओ

तानां व शजाताः, इक्ष्वाकुवशः=इक्ष्वाकुवंशीयानां, ज्ञाताः=ज्ञातवशीयाः, कौरव्याः=कुरुवंशीयानां, 'जहा उववाइए तहेव' इतोऽग्रे 'खत्तिया माहणा' इत्या-
रभ्य 'चंदणोलित्तगायसरीरा' इतिपर्यन्तः सर्वोऽपि पाठ औपपातिकसूत्रोक्त-
श्री महावीरस्वामि वन्दनार्थगतोऽग्रपु । दिवद् विज्ञेयः । अप्येकके हयगताः=
अश्वारूढाः, यावत् अप्येकके गजगताः=गजारूढाः, अप्येकके पादचारविहारेण
महद्भिः=अतिविशालैः इन्द्रवृन्दैः=पृथक् पृथक् समूहभूतैर्निर्गच्छन्ति=निस्त
रन्ति-इति । एवम्=अनेन प्रकारेण संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुषं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एवम् अत्रादीत्=उक्तवान्-किं खलु देवानुमियाः । अद्य
श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा यावत् सागरमह इति वा वर्चते यत्
खलु इमे बहव उग्रा यावद् निर्गच्छन्ति ? इति ॥ सू० १०८॥

ने जिन्हे मित्रपद पर स्थापित किया उनके वंशके लोग जा रहे हैं, ये
इक्ष्वाकुवश के लोग जा रहे हैं, ज्ञातवशीयजन जा रहे हैं, ये कुरुवं-
शीय जन जा रहे हैं, 'जहा उववाइए तहेव' यहां से आगे 'खत्तिया
माहणा' से लेकर 'चंदणोलित्तगायसरीरा' यहां तकका समस्त पाठ जो
कि औपपातिक सूत्र में कहा गया है उस समय, जब कि श्रीमहावीर
स्वामी की वन्दना के लिये उग्र-उग्रपुत्रादि कहे गये हैं यहां ग्रहण करना
चाहिये, इनमें से कितनेक अश्वपर चढ़ कर, कितनेक हाथीपर चढ़ कर और
कितनेक पैदल ही चलकर तथा कितनेक अपना २ विशाल समुदाय बना
कर पृथक् २ रूप से निकल रहे हैं ।

इस प्रकार विचार कर फिर उसने कञ्चुकीयपुरुष द्वारपाल को बुलाया और
बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुमिय ! आज क्या श्रावस्ती नगरी में

राजन्त्ये आदिनाथे जेभने मित्रपदे प्रतिष्ठित कथा छे तेभना व शना लोके ज्छ रक्षा
छे, इक्ष्वाकुवशना लोके ज्छ रक्षा छे, जे ज्ञातवशीय लोके ज्छ रक्षा छे, जे कुरु-
वशीय लोके ज्छ रक्षा छे, 'जहा उववाइए तहेव' अहीथी आगण 'खत्तिया
माहणा' थी भाडीने "चंदणोलित्तगायसरीरा" अही सुधीना समस्त पाठनुं-
के जे औपपातिकसूत्रमा श्री महावीर स्वामीनी वदना माटे उग्र-उग्र पुत्रादि गया
हता-अही अहस्य समज्जु" तेनाथी केटलाक अश्व पर सवार थधने, केटलाक हाथी
पर सवार थधने अने केटलाक पणपाणा ज् यादीने तेमज्ज केटलाक पोटानो विशाण
समुदाय जनावीने लुहा लुहा आकारमा त्या ज्वा नीकणी रक्षा छे

आ प्रभाञ्जे विचार करीने यही तेञ्जे कञ्चुकीय पुरुषने गोलाञ्जे अने गोलावीने
तेने 'आम कञ्जु' के-हे देवानुमिय । शु आने श्रावस्ती नगरीमा धन्द्रमह यावत्

मूलम्—तएणं ते कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स आ-
गमणगहियविणिच्छए चित्त सारहि करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता
एवं वयासी—णो खल्ल देवाणुप्पिया । अज्ज सावत्थिए णयरीए इंदम
हेइ वा जाव सागरमहेइ वा जे णं इमे वहवे जाव वदावदएहिं
निग्गच्छंति, एवं खल्ल भो देवाणुप्पिया । पासावच्चिज्ज केसी नामं
कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ ।
ते णं अज्ज सावत्थीए नयरीए वहवे उग्गा जाव अप्पेगइया वंदण-
वत्तियाए जाव महया महया वंदावंदएहिं णिग्गच्छंति ॥सू० १०९॥

छाया—ततःखल्ल स कञ्चुक्रिपुरुषः केशिनः कुमारश्रमणस्य आग
मनगृहीतविनिश्चयः चित्र सारथिं करतलपरिगृहीत यावत् वर्द्धयित्वा एवमवादीत-
नो खल्ल देवानुप्रिया! अथ श्राव त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा यावत्सा-

इन्द्रमह यावत् सागरमह है ? जो ये बहुत से उग्र, उग्रपुत्र आदि सबके
सब अपने २ घर से निकल कर जा रहे है ? ॥ १०८ ॥

‘तएणं ते कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए ण) इसके बाद उस कञ्चुकी पुरुषने (केसिस्स कुमार-
समण०) केशी कुमारश्रमण के आगमन का गृहीत निश्चयवाला होकर चित्त
सागहिं करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता एव वयासी) चित्रसारथी से बड़े
विनय से दोनों हाथों की अजलि बनाकर और उसे मस्तक पर छुमाकर एवं
जयविजय शब्दों द्वारा उसे बघाई देकर इस प्रकार कहा—(णो खल्ल देवा-

सागरमह छे ? के नेथी अे षधा उअ, उअपुत्र वगेरे सो पोतपोताना बेरथी
नीडणीने अे रद्धा छे ? ॥ १०८ ॥

‘त एणं ते कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स’ इत्यादि.

सूत्रार्थ—(त एण) त्थार पछी ते कञ्चुकी पुरुषे (केसिस्स कुमारसमण०)
केशीकुमार श्रमणुनी आगमननी वात मनभा विचाराने (चित्तं सारहिं करयल
परिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी) चित्र सारथिनी सामे विनअतापूर्वक
अन्ने हाथोनी अे अेदि अनावीने अने तेने मस्तक पर इरेवीने, अने अथविअथ
शुभोवाठे तेअने वधामष्ठी आपीने आ प्रभाषे क्व—(णो खल्ल देवाणुप्पिया-!

गरमह इति वा यत् खलु इमे बहरो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देव नुप्रिय ! पार्श्वीपत्नीयः केशी नाम कुमारश्रमणो जातिसंपन्नो यावत् द्रवन् इहागतो यावत् विहरति । तत्खलु अथ श्रावस्त्यां नगर्यां बहव उग्रा यावत् अप्येकके वृन्दनगृत्तितायै यावत् महद्भिर्महद्भिर्वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति ॥१०९॥

टीका—‘तएण से इत्यादि ततः खलु स कञ्चुकिपुरुषः केशिनः कुमारश्रमणस्य आगमनगृहीतविनिश्चयः—आगमनस्य गृहीतः निश्चयो येन स तथा—ज्ञात केशिकुमारागमनवृत्तान्तः सन् चित्रं सारयि करतलपरिगृहीतं यावद् वर्द्धयित्वा एवम्—भगादीत् हे देवानुप्रिय ! अथ खलु श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमहादि सागरमहान्तेषु रुश्विद महो=उत्सवो नास्ति, यत् खलु इमे उग्रादयो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति । एवं खलु भो देवानुप्रिय ! भवान् जानातु यदथ खलु पार्श्वीपत्नीयः केशीनाम कुमारश्रमणो जातिसम्पन्नो यावत् द्रवन् इह=श्राव-

णुप्रिया ! अज्ज सावत्थीए णयरीए इंदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा “हे देवा नुप्रिय ! आज श्रावस्ती नगरी मे न इन्द्र उत्सव है अथवा यावत् न सागर उत्सव है (जेणं इमे बहवे जाव विंदाविदएहिं निर्गच्छति, एवं खलु भो देवानुप्रिया ! पासावच्चिज्जकेसी नाम कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ) परन्तु जो ये बहूत से उग्र उग्रपुत्रादिक अनेक विशाल समुदायरूप में होकर निकल रहे हैं—सो उसका कारण यह है कि पार्श्वीपत्नीय केशी नाम के कुमारश्रमण जो कि जातिसंपन्न आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में घर्मापदेश करते हुए यहां पधारे हैं यावत्—कोष्ठक कैत्य में विराजते हैं। (तेणं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा, जाव अप्पेगइया वदणवत्तियाए जाव महया महया वदावदएहिं निर्गच्छति)

अज्ज सावत्थीए णयरीए इंदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा) हे देवानुप्रिय ! आज श्रावस्ती नगरीमा न इन्द्र उत्सव छे छे यावत् न सागर उत्सव छे. (जे णं इमे बहवे जाव विंदाविदएहिं निर्गच्छति, एवं खलु भो देवानुप्रिया ! पासावच्चिज्जकेसीनाम कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ) यथे जे आ अथा उग्र उग्रपुत्रादिक वधुा विशाल समुदायना आकारमा जेकर थधने बंध रह्या छे तेहुं कएथु जे छे छे पार्श्वीपत्नीय केशी नामे कुमार श्रमणु छे जे जातिसंपन्न, वगेरे पूर्वोक्त विशेषणोवाणा छे, तीर्थंकर परंपरा सुलभ विहार करता करता जेक गाभधी भीजे गाभधनोपदेश करता अही पधार्था छे. अने यावत् कोष्ठक कैत्यमा तेजोश्री विशले छे. (ते णं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा, जाव अप्पेगइया वदणवत्तियाए जाव महया महया वदा-

स्थायी नगर्याः कोष्ठके चैत्ये आगतो यावद् नत् स्वल्बु अद्य श्रावस्त्यां नगर्यां
बहव उग्रा यावत् इभ्यपुत्रा अप्येकके वन्दनवृत्तितायै वन्दननिमित्त यावद् मह
द्भिर्महद्भिर्वन्दवन्दैर्निर्गच्छन्तीति । सू० १०९ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही कंचुइपुरिसस्स अंतिए एय-
मट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु-जाव-हियए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ-
सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आस-
रहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव सच्छत्तं उवट्टवेति । तएणं से चित्ते सा-
रही णहाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं
मंगलाइं वंत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घामरणालं कियसरीरे जेणेव
चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंट आस-
रहं दुरुहइ, सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भडचड-
गरविंदपरिक्खित्ते सावत्थी नयरीए मज्झं मज्जेण निग्गच्छइ निग्ग-
च्छित्ता जेणेव कोट्टुए चेइए जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्तो केसिकुमारसमणस्स अदूरसामंते तुरए णिगि
णहइ रहं ठवेइ य, ठवित्ता पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव केसि भार-
समणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिक्खुत्तो
आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता
णञ्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिसुहे पंजलिउठ्ठे
विणएणं पज्जुवासइ ॥ सू० ११० ॥

इस कारण आज श्रावस्ती नगरी में अनेक उग्र यावत् इभ्यपुत्रवन्दना
करने के निमित्त यावत् विशालसमुदाय के रूप में होकर निकल रहे हैं । १०९।

वदएहिं णिगच्छति) अथी आणे श्रावस्ती नगरीमाथी भए। उग्र यावत् इभ्य-
पुत्रो वंदना करवा भाटे यावत् विशाल समुदायना रूपमा अकत्र थधने जठ रद्धा छे ॥१०६॥

छाया—तत खलु स चित्रः सारथिः कञ्चुकिपुरुषस्य अन्तिके एतमर्थं भुत्वा निशम्य हृदतुष्ट-यावद् हृदयः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा, एवमथादीत्-सिममेव भो देवानुप्रिया ! चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत यावत्स-च्छत्रम् उपस्थापयन्ति । ततः खलु स चित्रः सारथिः स्नातः कृतबलि-कर्मा कृतकौतुकमङ्गलपायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरप-

‘तएण से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(नएणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ) सोष्वा निसम्म हृदतुष्ट जाव हियए कोट्टु वियपुरिसे सहावेइ) इसके बाद जब कि कञ्चुकी के मुख से इस अर्थ को सुना और उसका हृदय में विचार किया तब हृष्ट यावत् हृदय वाले होकर उस चित्रसारथिने कौटुम्बिकपुरुषों-आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया, (सहावित्ता एव वयामी) बुलाकर उसने ऐमा क्हा (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठ-वेह) हे देवानुप्रियो ! आप लोग चातुर्घट-(चारघंटोवाले) अश्वरथ को घोड़ों से युक्त करके शीघ्र ही उपस्थित करो (जाव सच्छत्तं उवट्ठवेत्ति) अपने स्वामी की इस प्रकार आज्ञा के वचन सुनकर यावत् उत्तम छत्र सहित अश्वरथ को उन्होंने लाकर उपस्थित कर दिया. (नएणं से चित्ते सारही ण्हाए कयबलिकम्मे, कयकोउयमगलपायच्छित्ते) रथ को उपस्थित हुआ जानकर चित्र सारथिने स्नान किया, बलिकर्म किया अर्थात् काक

‘तएणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ’ इत्यादि.

सुत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ) सोष्वा निसम्म हृदतुष्ट जाव हियए कोट्टु वियपुरिसे सहावेइ) न्याये कञ्चुकीना सुभधी आ भधी विगत साभणी त्यादे तेष्से भनभा विन्यार क्थेय्ये अने हृष्ट यावत् हृदयवाणे थधने ते चित्रसारथीये कौटुम्बिक पुरुषोने-आज्ञाकारी पुरुषोने षोढाव्या. (सहावित्ता एव वयासी) षोढावीने तेभने आ प्रभाष्से कट्ठु. (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउघटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह) हे देवानुप्रियो ! आप सो सत्पदे चातुर्घट (चार घंटोवाणा) अश्वरथने सन्निवृत करीने दावो. (जाव सच्छत्तं उवट्ठवेत्ति) पोत्ताना स्वामीनी आ प्रभाष्से आशा साभणीने यावत् तेभष्से उत्तम छत्रसहित अश्वरथ दावीने उपस्थित क्थेय्ये

(तएणं से चित्ते सारही ण्हाए कयबलिकम्मे, कयकोउयमगल-पायच्छित्ते) रथने आवेळो जेधने चित्रसारथीये स्नान क्थुं, बलिकर्म क्थुं अने इ स्वप्पना निवारणार्थं कौतुक, भगवत्प्रप्राथश्चित्तनी विधिषो सपन्न करी. सुद्ध-

रिहितः, अल्पमहार्थाभरणालङ्कृतशरीरे यत्रैव चातुर्घटो अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य चातुर्घटम् अश्वरथ दूरोहति, सकोण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन महाभट-चटकरवृन्दपरिभ्रितः श्रावस्तीनगर्याः मध्यमधयेन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोण्टकं चैत्यं यत्रैव केशिकुमारश्रमणस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य केशिकुमारश्रमणं त्रिकृत्व श्रादक्षिणपदक्षिणं करोति,

आदि को अन्न का भाग दिया एवं दुःस्वप्न को विनाश करने के लिये कौतुक, मगलरूप प्रायश्चित्त क्रिया, (सुदृग्पाषेसाहं मंगलाइं वत्याहं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) बाद में उसने शुद्ध, परिषदा में प्रवेशयोग्य, मांगलिक, वस्त्रों को अच्छी तरह से पहिरा एवं विशिष्ट कीमतवाले तथा अल्प वजनवाले ऐसे आभूषणों से अपने शरीर को अलङ्कृत किया. (जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घटे आसरहं दुरुहइ) बाद में वह जहा चारघंटों वाला अश्वरथ खड़ा था वहाँ पर आया-वहाँ आकर वह उस चातुर्घट अश्वरथ पर बैठ गया (सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं महया भउच्चडगरविंदपरिक्खिस्सो सावत्थीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ) छत्रधारण करने वालेने उसके ऊपर कोरंट-पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र तान दिया, विशाल मटो का समूह उसके आसपास आकर खड़ा हो गया इस प्रकार होकर फिर वह श्रावस्ती नगरी के बीचों बीच से होता हुआ निकला (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए

पाषेसाहं मंगलाइ वत्याह पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरोरे चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्पारभाह तेण्हे सारी रीते शुद्ध, मुनिपरिषदाभा प्रवेशे येअ, मागलिक वस्त्रो धारण्णु कथा तथा षड्हुं किमती अने अल्पभारवाणा आभूषणो पहरेरिने पोताना शरीरने अलङ्कृत कथुं (जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घटे आसरहं दुरुहइ) त्पारभाह न्या त्पार घटोवाणो अश्वरथ इतो त्या गथे त्या अण्णे ते चातुर्घटं रथ पर सवार थये. (सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भउच्चडगरविंदपरिक्खिस्सो सावत्थीए नयरोए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ) छत्र धारण्णु करेनाराअये तेमना उपर केरट पुष्पोनी माणाअ्याथी सुशोभित छत्र ताण्णु विशाल भटोना समूहो आवीने तेनी आसपास योअेर विटणाअं गथ. आ प्रभाण्णे ते श्रावस्तीनी नगरीनी वअये थण्णे नीकअये (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए चेशए

रिहितः, अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरो यत्रैव चातुर्घण्टो अश्वरथस्तत्रैव उपा-
गच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, सकोरिण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण
घ्नियमाणेन महाभट-चटकरन्दपरिक्षिप्तः श्रावस्तीनगर्याः मध्यमध्येन
निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं यत्रैव केशिकुमारश्रमणस्तत्रैव
उपागच्छति, उपागत्य केशिकुमारश्रमणं त्रिकृत्व श्रादक्षिणपदक्षिणं करोति,

आदि को अन्न का भाग दिया एव दुःस्वान को विनाश
करने के लिये कौतुक, मगलरूप प्रायश्चित्त किया, (सुदृप्पावे-
साइं मंगलाइं वत्याइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे जेणेव
चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) बाद मे उसने शुद्ध, परिषदा में
प्रवेशयोग्य, मांगलिक, वस्त्रों को अच्छी तरह से पहिरा एव विशिष्ट कीम-
तवाले तथा अल्प वजनवाले ऐसे आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत
किया. (जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घंटे
आसरह दुरुहइ) बाद में वह जहा चारघंटों वाला अश्वरथ खडा था वहां
पर आया-वहां आकर वह उस चातुर्घट अश्व रथ पर बैठ गया (सको-
रिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भउच्चडगरविंदपरिक्खित्तो साव-
त्थीए मज्झमज्झेण निग्गच्छइ) छत्रधागण करने वालेने उसके ऊपर कोरंट-
गुण्णों की मालाओं से सुशोभित छत्र तान दिया, विशाल मटों का समूह
उसके आसपास आकर खडा हो गया इस प्रकार होमर फिर वह श्रावस्ती
नगरी के बीचों बीच से होता हुआ निकला (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए

प्पावेसाइं मंगलाइं वत्याइं पवरपारेहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरोरे चा-
उग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्यारणाह तेहे सारी रीते शुद्ध, मुनिपरि-
षदाभा प्रवेश योग्य, मांगलिक वस्त्रो धारणु कर्या तथा णहुं क्रिमती अने अल्प-
भारवाणा आबूषणो पहरेने पोताना शरीरने अलंकृत कथुं (जेणेव चाउग्घंटे
आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घंटे आसरह दुरुहइ)
त्यारणाह न्या चार घंटावाणो अधरथ हुतो त्या गथो त्या जधने ते चातुर्घंटे
रथ पर सवार थयो. (सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भउ-
च्चडगरविंदपरिक्खित्तो सावत्थीए नयरोए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ) छत्र
धारणु करनाशे तेभना उपर डारट पुष्पिणी भाणाश्याथी सुशोभित छत्र ताणु
विशाण बटोना समूहो आवीने तेनी आसपास चोभेर विटणाथ गया. आ प्रभाहे
ते श्रावस्तीनी नगरीनी वन्धे थधने नीकथो (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए वेइए

‘तएणं से’ इत्यादि—

टीका—एतत्सूत्रस्थपदानो व्याख्या पूर्व गता, अतइदं व्याख्यातपायमिति। सू. १.१०।

मूलम्—तएणं से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे

महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ, तं जहा—

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,

सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं

तएणं सा महइमहालिया परिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्म

सोच्चा निसम्म जामेव दिस्सि पाउब्भया तामेव दिस्सि पडिगया। सू. १.११।

छाया—ततः खलु स केसिकुमारश्रमणः चित्राय सारथये तस्या महा-
तिमहालयायां परिषदि चातुर्यामं धर्मं प्रगृह्णथयति, तद्यथा—सर्वस्मात् पाणातिपा-
ताद् विरमणम्?, सर्वस्मात् मृपावादाद् विरमणम्, सर्वस्मात् अदत्तादानाद्
विरमणम्, सर्वस्माद्बहिग्गदानाद् विरमणम्। ततः खलु सा महातिम-

‘तएणं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से केसिकुमारसमणे) उसके बाद (केसिकुमारसमणे)

केसिकुमार श्रमणने (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि के लिये

(तीसे महइमहालयाए) उम अति विशाल (परिसाए) परिषदा में (चाउ

ज्जामं धम्म परिकहेइ) चातुर्याम धर्म का (परिकहेइ) परूपण किया—उपदेश

दिया (त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सव्वाओमुसावायाओ वेरमणं,

सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण. सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण)

वे चातुर्याम ये है—१ समस्त पाणातिपात से विरक्त (निवृत्त) होना, २

‘तएणं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण से केसिकुमारसमणे) त्पार पक्षी केसिकुमार श्रमणे

(चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि भाटे (तीसे महइमहालयाए) ते अति विशाल

(परिसाए) परिषदाभा (चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ) चातुर्याम धर्मनी (परिकहेइ)

प्रशुषा करी ओटके के उपदेश द्यो (तं जहा सव्वाओ पाणाइवायाओ

वेरमण, सव्वाओ, मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण,

सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण) ते चातुर्याम धर्मनी विशेष विगत आ प्रभाषे

छे—(१) समस्त पाणातिपातधी विरक्त (निवृत्त) थवुं. (२) समस्त मृपावदधी विर-

हालया परिषत् केशिनः कुमारश्रमणस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निगम्य यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ म्र० १११ ॥

टीका—‘तएणं’ से इत्यादि—ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्राय सारथये=चित्रं सारथिमुद्दिश्य तस्यां महातिमहालयायाम्=अतिविशालायां परिषदि चातुर्यामं चतुर्णाम्=चतुःसंख्यकोनां यामानां=यमा एव यामास्तेपां समाहारश्चतुर्यामं, तदेव चातुर्यामं, तदस्ति यस्मिन् स चातुर्यामन्तं धर्मं परिकथयति=व्याख्याति, तद्यथा—सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं=सकलप्राणिप्राणवियोजनात्तुक्लव्यापारतो विनिवृत्तिः, १, सर्वस्माद् मृपावादाद् विरमणम्=सर्वविधाऽसत्यभाषणाद् विनिवृत्तिः, तथा—सर्वस्मात्

समस्त मृपावाद से विरक्त होना, ३ समस्त अदत्तादान से विरक्त होना और समस्त बहिरादान से विरक्त होना (तएणं सा महइमहालिया परिना केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म इट्टुट्टुं जामेव दिस्सि पाउब्भूया तामेव दिस्सि पडिगया) इस तरह केशिकुमार श्रमण से चातुर्याम धर्मका उपदेश सुनकर और हृदय में उसे धारण कर वह अतिविशाल परिषदा इष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाली होती हुई जहाँ से आई थी वहाँ पर पीछी चली गई

टीकार्थ मूलार्थ के ही अनुरूप है. चातुर्याम धर्मका उपदेश किया—ने इसका तात्पर्य ऐसा है कि चातुर्याम वाले धर्म का उपदेश दिया. सकल प्राणियों के प्राणों को वियोजन (अलग) करने के अनुकूल व्यापार से रहित होना इसका नाम प्राणातिपात विरमण है. इसी तरह समस्त प्रकार के असत्यभाषण करने से दूर रहना—उसका त्याग करना इसका नाम मृपावाद-

कत थवु. (उ) समस्त अदत्तादानथी विरक्त थवु अने समस्त बहिरादानथी विरक्त थवु. (तए णे सा महइमहालिया परिना केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म इट्टुट्टुं जामेव दिस्सि पाउब्भूया तामेव दिस्सि पडिगया) आ प्रभाणु केशिकुमार श्रमणथी आतुर्याम धर्मने उपदेश सावणीने अने हृदयमा तेने धारण करीने ते अति विशाल परिषदा इष्टतुष्ट यावत् हृदयवाणी धर्मने न्याथी आवी हुती त्या करी जाती रही.

टीकार्थ—मूलार्थ प्रभाणु ७ छ आतुर्याम धर्मने उपदेश कथो अट्ठे के आतुर्यामवाणा धर्मने उपदेश कथो सकण प्राण्यिआना. प्राण्युने वियुक्त करनार ७ व्यापार (स्यं) होय छ तेनाथी रहित थवुं अट्ठे के कौध पण्य प्राण्युने कौध. पण्य रीते प्राण्यु वियुक्त न करवुं ते प्राणातिपात विरमण छ आ प्रभाणु ७ समस्त प्रकारना असत्यावरण्युं दूर रहेवुं—असत्यने सर्वथा त्याग करवो. ते मृपावा. विरमण छ

‘तएणं से’ इत्यादि—

टीका—एतत्सूत्रस्थपदानां व्याख्या पूर्व गता, अतइदं व्याख्यातपायमिति। सू. ११०।

मूलम्—तएणं से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे

महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ, तं जहा—
सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं
तएणं सा महइमहालिया परिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्म
सोच्चा निसम्म जामेव दिंसि पाउब्भया तामेव दिंसि पडिगया। सू. १११।

छाया—ततः खलु स्य केसिकुमारश्रमणः चित्राय सारथये तस्यां महा-
तिमहालयायां परिपदि चातुर्यामं धर्मं पङ्क्तिथयति, तद्यथा—सर्वस्मात् पाणातिपा-
ताद् विरमणम्?, सर्वस्मात् मृपावादाद् विरमणम्?, सर्वस्मात् अदत्तादानाद्
विरमणम्?, सर्वस्माद्बहिग्दानाद् विरमणम्?। ततः खलु सा महातिम-

‘तएण से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से केसिकुमारसमणे) इसके बाद (केसिकुमारसमणे)
केसिकुमार श्रमणने (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि के लिये
(तीसे महइमहालयाए) उम अति विशाल (परिसाए) परिषदा में (चाउ
ज्जामं धम्मं परिकहेइ) चातुर्याम धर्म का (परिकहेइ) प्ररूपण किया—उपदेश
दिया (त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सव्वाओमुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण. सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं)
वे चातुर्याम ये हैं—१ समस्त पाणातिपात से विरक्त (निवृत्त) होना, २

‘तएणं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण से केसिकुमारसमणे) त्थार पथी केसिकुमार श्रमणे
(चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि भाटे (तीसे महइमहालयाए) ते अति विशाल
(परिसाए) परिषदाभा (चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ) चातुर्याम धर्मनी (परिकहेइ)
प्रउपस्था करी अटवे के उपदेश थ्यो (तं जहा सव्वाओ पाणाइवायाओ
वेरमण, सव्वाओ, मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमण,
सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं) ते चातुर्याम धर्मनी विशेष विगत आ प्रभावे
छे—(१) समस्त प्राणुतिपातथी विरक्त (निवृत्त) थ्यु. (२) समस्त मृपाव.दथी विर-

हालया परिषत् केशिनः कुमारश्रमणस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ सू० १११ ॥

टीका—‘तएणं’ से इत्यादि—ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्राय सारथये=चित्रं सारथिमृद्दिश्य तस्यां महातिमहालयायाम्=अतिविशालायां परिषदि चातुर्यामं चतुर्णाम्=चतुःसंख्यकानां यामानां=यमा एव यामास्तेपां समाहारश्चातुर्यामं, तदेव चातुर्यामं, तदस्ति यस्मिन् स चातुर्यामस्तं धर्मं परिकथयति=व्याख्याति, तद्यथा—सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं=सकलप्राणिप्राणवियोजनानुकूलव्यापारतो विनिवृत्तिः, सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमणम्=सर्वविधाऽसत्यभाषणाद् विनिवृत्तिः, तथा—सर्वस्मात्

समस्त मृषावाद से विरक्त होना, ३ समस्त अज्ञादान से विरक्त होना और समस्त बहिरादान से विरक्त होना (तएणं सा महइमहालिया परिणा केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टं० जामेव दिस्सि पाउन्मूया तामेव दिस्सि पड्डिगया) इस तरह केशिकुमार श्रमण से चातुर्यामं धर्मका उपदेश सुनकर और हृदय में उसे धारण कर वह अतिविशाल परिषदा दृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाली होती हुई जहाँ से आई थी वहाँ पर पीड़ी चली गई.

टीकार्थ मूलार्थ के ही अनुरूप है. चातुर्यामं धर्मका उपदेश, क्रिया—ये इसका तात्पर्य ऐसा है कि चातुर्यामं वाले धर्म का उपदेश दिया. सकल प्राणियों के प्राणों को वियोजन (अलग) करने के अनुकूल व्यापार से रहित होना इसका नाम प्राणातिपात विरमण है. इसी तरह समस्त प्रकार के असत्यभाषण करने से दूर रहना—उसका त्याग करना इसका नाम मृषावाद-

कतं थवु. (३) समस्त अज्ञादान्ती विरक्तं थवुं अने समस्त बहिरादान्ती विरक्तं थवुं (तए णे सा महइमहालिया परिणा केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टं जामेव दिस्सि पाउन्मूया तामेव दिस्सि पड्डिगया) आ प्रभाञ्जे केशिकुमार श्रमण्ठी चातुर्यामं धर्मो उपदेशे सावणीने अने हृदयभातेने धारण करीने ते अति विशाण परिषदा दृष्टतुष्ट यावत् हृदयवाणी धर्मे ने व्याधी आनी हुती त्या करी जती रही.

टीकार्थ—मूलार्थ प्रभाञ्जे ७ छे. चातुर्यामं धर्मो उपदेशे कथो अट्ठे के चातुर्यामवाणा धर्मो उपदेशे कथो सकण प्राणीओना. प्राणोने विभुक्त करनार जे व्यापार (कार्य) होय छे तेनाथी रहित थवु अट्ठे के कथं पण प्राणीने कथं, पण रीते प्राण्य विभुक्त न करवुं ते प्राणातिपात विरमण छे. आ प्रभाञ्जे ७, समस्त प्रकारना असत्याचरण्ठी दूर रहवुं—असत्यनेो सर्वथा त्याग करवो. ते मृषावा, विरमण छे

अदत्तादानात्=सकलविधाश्रीर्थाद् विरमणम् =विनिवृत्तिः, तथा-सर्वस्माद् बहि-
 रदानाद्=धर्मोपकरणातिरिक्तपरिग्रहोपादानाद् विरमणम् । मैथुनविरमणस्य
 परिग्रहे एवान्तर्भावः, नहि अपरिगृहीता स्त्री परिभुज्यतेऽनो मैथुन-विर-
 मणरूप महाव्रत न पृथगुपात्तमिति । उपलक्षणाद् अगारधर्ममपि परिक-
 थयति । ततः खलु सा महातिमहालया परिपत् केशिनःकुमारश्रमणस्य
 अन्तिके=समीपे धर्मं श्रुत्वा सामान्यतः, निश्चयः=विशेषतो हृद्यवधार्यं यस्या
 एव दिशः प्रादुर्भूता, तामेव दिशं प्रतिगता ॥सू० १११॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए
 धम्मं सोच्चा निसम्म हद्द जाव-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता केसि-
 कुमारसमणं तिवरुत्तो आयाहिणःयाहिणं करेइ वंदइ, नमंसइ,
 वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयापी-स हामि णं भंते ! णिगथ पावयणं,

विरमण है। समस्तप्रकार के अदत्तादान से-वैयर्थ्यकर्म से दूर रहना उसका
 त्याग करना इत्यादि नाम अदत्तादानविरमण है, तथा धर्मोपकरण से अतिरिक्त
 परिग्रह का त्याग करना इसका नाम बहिर्दान विरमण है। मैथुन विर-
 मण को यहाँ व्रत व्रत से व्रत नहीं माना गया है। क्यों कि उसका
 अन्तर्भाव परिग्रह में ही हो जाता है। क्यों कि जो स्त्री भोग के काम
 आती है वह अपरिगृहीत हुई नहीं आती है किन्तु परिगृहीत हुई ही आती
 है। उपलक्षण से उन्होंने आगारधर्म का भी कथन किया इस तरह केशि-
 कुमार श्रमण के पास धर्म का उपदेश सामान्यरूप से सुनकर और उसे
 विशेषरूप से हृदयमें धारण करके वह अतिविशाल परिषदा जहा से आई थी
 वही पर पीछी चली गई ॥ १११ ॥

समस्त प्रकारना अदत्तादानधी-वैयर्थ्यकर्मधी दूर रहेवुं-ते कर्मना त्याग करवो-ते अह-
 तादान विरमणु छे तेभञ्ज धर्मोपकरणातिरिक्त परिग्रहना त्याग ते बहिर्दान विरमणु
 छे मैथुन विरमणुना अर्द्धी स्वतंत्रपणे व्रतइपे निर्देश कथी नथी केभके तेना परि-
 ग्रहमा न अन्तर्भाव कवामा आये छे केभके छे स्त्री भोग माटे आवे छे ते
 अपरिगृहीत थरने नहि पणु परिगृहीतना रूपमा न आवे छे उपलक्षणधी तेओ-
 श्रीओ अगार धर्म छे पणु कथन कथुं छे आ प्रभाणे सामान्यरूपधी केशिकुमार श्रमणु
 पात्तधी धर्मोपदेश सावणाने अने तेने अविशेषरूपमा हृद्यमा धारणु करीने ते अनि-
 विशाण परिषदा नथधी आवी हुती त्या पाछी नती रही ॥१११॥

रोयामि णं भते ! णिगंथं पावयणं, अब्भुट्टेमि णं भंते । निग्गंथं
 पावयणं, एवमेयं भते ! निग्गंथे पावयणे, तहमेयं भते ! निग्गंथे
 पावयणे अविहमेयं निग्गंथे पावयणे, असंदिद्धमेयं भते ! निग्गंथे
 पावयणं, इच्छियमेयं भते ! निग्गंथे पावयणे, पडिच्छियमेयं भते !
 निग्गंथे, पावयणे, इच्छियपडिच्छियमेयं भते ! निग्गंथे पावयणे, ज
 णं तुब्भे वदहत्तिकहुं वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी
 -जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव इब्भा
 इब्भपुत्ता चिच्चा हिरणं चिच्चा सुवणं, एवं धणं धन्नं वल्लाहणं
 कोसं कोट्टागारं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउलं धणकणगरयणमणि-
 मोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जं, विच्छङ्खित्ता विगोवइत्ता
 दाणं दाइत्ता परिभाइत्ता मुंडा भवित्ता अगारोओ अणगारियं पव्व-
 यंति, णो लु अहं ता सचाएमि चिच्चा हिरणं तं चैव जाव पव्व-
 इत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुवइयं सत्तसिक्खा-
 वइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिघज्जित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया-
 मा पडिबंधं करेहि । तएणं मे चित्तं सारहा केसिकुमारसमणस्स
 अंतिए पंचाणुवइयं जाव गिहिधम्मउवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तएणं
 से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता
 जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घंटे आसरहं
 दुहरइ, जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए ॥ सू० ११२ ॥

छाया—ततः खलु न चित्रः सारथिः केशिनः कुमारधर्मणस्य अन्तिके
 धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट यावद्-हृदयः उत्थया उच्छिठति, उत्थाय केशिन

कुमारश्रमणं त्रिकृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणं करोति, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत-श्रद्धामि अल्लु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, प्रत्येमि, खल्लु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, रोचयामि खल्लु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, अभ्युत्तिष्ठे ग्वल्लु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, एवमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, तथैवैतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, अवितथमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, असन्दिग्धमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, इष्टमेतद्

‘तएणं से चित्ते सारही इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारथि (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म) केशीकुमारश्रमण के पास धर्म को सुनकर और उसे हृदय में श्रवणकर (इष्ट जाव हियए) हर्षित हुआ संतुष्ट हुआ यावत् (उट्ठाए उट्ठेइ) अपने आप उठा—(उट्ठित्ता केसिं कुमारसमणं तिवग्गुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ) और उठकर उसने केशिकुमारश्रमण की तीन आदक्षिणप्रदक्षिणा की (वंदइ नमसइ) वन्दना की नमस्कार किया (वन्दित्ता नमसित्ता एवं वयासी) वंदना नमस्कार कर फिर वह इस प्रकार बोला—(सइहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं रोयामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं अब्भुत्तेमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं एवमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं असदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं) हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की श्रद्धा करता हू। हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की प्रतीति करता हू, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अपनी रुचि का

‘त एणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्सार पछी (से चित्ते सारही) वे चित्र सारथि (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म) केशीकुमार श्रमणनी पासैथी धर्म साधणीने अने तेने हृदयमा धारणु करीने (इष्टजाव हियए) हर्षित थये। संतुष्ट थये यावत् (उट्ठाए उट्ठेइ) पातानी भेणे उठे थये (उट्ठित्ता केसिं कुमारसमणं तिवग्गुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ) अने उठे थयने तेणु केशीकुमार श्रमणनी तणु वार आदक्षिणु प्रदक्षिणु करे। (वंदइ नमसइ) वंदना करी नमस्कार थया (वन्दित्ता, नमसित्ता एवं वयासी) वंदनाकरीने ते आ प्रमाणे कहेवा लाये।—(सइहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं रोयामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं अब्भुत्तेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं एवमेयं भंते ! णिग्गंथं पावयणं असदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं) हे भदन्त ! हुं निर्ग्रन्थ प्रवचनमा श्रद्धा राणु छुं हे भदन्त ! हुं निर्ग्रन्थ प्रवचनमा प्रतीति राणु छुं हे भदन्त ! हुं निर्ग्रन्थ प्रवचनने

मदन्त । नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् इष्ट-
प्रतीष्टमेतद् भदन्त । नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् यत् खलु यूयं वदथेति कृत्वा चन्दते
नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—यथा खलु देवाणुप्रियाणाम्
अन्तिके षड्व उग्रा भोगा यावत् इभ्या इभ्यपुत्रास्त्यक्त्वा हिरण्यं त्यक्त्या सुवर्णम्
एवं धनं धान्यं बलं वाहनं कोशं कोष्ठागारं पुरम् अन्तःपुर, त्यक्त्वा

विषय बनाता हूं. हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता
हूं. हे भदन्त ! आप जैसा इस निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रतिपादन करते हैं,
वह वैसाही है. हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है. हे भदन्त !
यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सन्देह रहित है। (इच्छियमेयं मते ! निगमे पावयणे,
पदिच्छियमेयं भते निगमे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट है,—
हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट है। (इच्छियपदिच्छियमेयं मते !
निगमे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्टप्रतीष्ट दोनोंरूप है.
(जं णं तुम्हे वदह, त्ति कट्टु वंदह, नमंसह) जैसा कि आप कहते हैं इस
प्रकार कहकर उसने उसको वन्दना की नमस्कार किया. (वदिता नमसित्ता
एवं वयासी) वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा (जहाणं देवाणु-
प्रियाणं अतिए बहवे उग्रा, भोगा जाव इभ्या इभ्यपुत्ता चिच्चा हिरण्यं,
चिक्त्वा सुवर्णं, एवं धणं धन्नं बलं वाहनं कोसं कोष्ठागारं पुरं अत्ते
उर) आप देवाणुप्रिय के पास जिस प्रकार अनेक उग्र भोग यावत् इभ्य

पोतानी रुचिने विषय बना छुं. हे भदंत ! हे भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचनने स्वीकार छुं.
हे भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचननुं आप श्री ने प्रभाषे प्रतिपादन करी रक्षा छे.
अक्षरथ यथावत् छे. हे भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य छे, हे भदंत ! आ
निर्ग्रन्थ प्रवचन सन्देह रहित छे (इच्छियमेयं मते ! निगमे पावयणे, पदि-
च्छियमेयं मते निगमे पावयणे) हे भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट छे, हे
भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट छे. (इच्छियपदिच्छियमेयं मते ! निगमे
पावयणे) हे भदंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट अने प्रतीष्ट अन्ने छे. (जं णं
तुम्हे वदह, त्ति कट्टु वंदह नमंसह) ने प्रभाषे आपश्री कही रक्षा छे ते प्रभाषे
अ छे आस कहीने तेबे वदना तेमअ नमस्कार करी. (वदिता नमसित्ता एवं-
वयासी) वदना तेमअ नमस्कार करीने तेबे तेआश्रीने आ प्रभाषे कथुं—(जहाणं
देवाणुप्रियाणं अतिए बहवे उग्रा, भोगा जाव इभ्या इभ्यपुत्ता चिच्चा
हिरण्यं. चिक्त्वा सुवर्णं. एवं धणं धन्नं बलं वाहनं कोसं कोष्ठागारं पुरं
अत्तेउर) आप देवाणुप्रियनी पास जेअ उग्र, भोग यावत् इभ्य अने इभ्यपुत्रे

विपुलं धनकनकरत्नमणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसंसारस्वापतेयं विच्छर्धं
विगोप्य दानं दत्त्वा, परिभाज्य मृण्डा भुत्वा अगारात् अनगारितां प्रव-
जन्ति, नो खलु अहं तावत् शक्नोमि त्यक्त्वा हिरण्यं तदेव यावत् प्रव्रजितुम्। अह
खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तिके पञ्चाणुव्रतिकं सप्तशिक्षाव्रतिकं द्वादशविधं
गृहधर्मं प्रतिपत्तुम्। यथासुखं देवानुप्रिय। मा प्रतिबन्ध कुरु। ततः

और इन्हीं पुत्र हिरण्य को छोड़कर, सुवर्ण को छोड़कर एवं धन धान्य,
बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर को (चिन्ना) छोड़कर
(विजलं धनकनगरयणमणिमोक्तियमखमिलपवालरूपनमारसावएजं, विगु-
द्विज्जा, विगोवइत्ता, दाण दाइत्ता) तथा विपुल, धन, कनक, रत्न मौक्तिक
शंख शिलाप्रवाल एवं संसारस्वापतेय को छोड़कर तथा उन सबको
विशाल प्रमाण में दीन दरिद्र आदिकों के लिये विनरित कर (परिभाइत्ता)
पुत्रादिकों में विभक्त (विभाग) कर (मृण्डा भविता अगाराओ अणगारियं पव्वय ति)
बाद में मुडित होकर के अगार अवस्था को धारण करते हैं (नो खलु
अह ता संचाएमि, चिन्ना हिरण्यं तं चेव जाव पव्वइत्तए) वैसा मैं
हिरण्य आदि को छोड़कर दीक्षा धारण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ,
(अहंणं देवाणुप्पियाण अतिए पचाणुव्वइयं, सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं
गिहधम्मं पडिबज्जितए) मैं तो आप देवानुप्रिय के पास पांच अणुव्रत-
वाले एवं साततशिक्षा व्रतवाले इस तरह १२ प्रकार के गृहस्थ धर्म को
धारण कर सकता हूँ। (अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेहि) आप

हिरण्यको त्याग करीने अने धन, धान्य, अण, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर अने
अंतःपुर-स्थवास (चिन्ना) को त्याग करीने (विजलधनकनगरयणमणिमोक्तिय-
सखसिलपवालसंसारसावएजं, विच्छद्विज्जा, विगोवइत्ता, दाणं दाइत्ता
तेमं विपुल धन, कनक, रत्न, मौक्तिक शंख शिला प्रवाल अने संसार स्वापतेय
को त्याग करीने तेमं अणुव्रत पंचाणुव्वइयं दीनदरिद्र वगेरे लोकोने आपीने
(परिभाइत्ता) पुत्रादिकोमां वडेयीने (मृण्डा भविता अगाराओ अणगारियं
पव्वयति) त्थार भाइ मुडित थअने अगार अवस्थाभाथी अनगार अवस्थाने धारण
करे छे (नो खलु अह ता संचाएमि, चिन्ना हिरण्यं तं चेव जाव पव्वइत्तए)
तेमं हूँ हिरण्य वगेरेने त्याग करीने दीक्षा धारण करवाभा असमर्थं छे (अहंणं
देवाणुप्पियाणं अतिए पचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिह-
धम्मं पडिबज्जितए) आपथी पासेथी हूँ तो इतत पांच अनुव्रतवाणा अने
अने सात शिक्षाव्रतवाणा आम १२ प्रकारना गृहस्थ धर्मने स्वीकारी थकु छुं
(अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेहि) आप देवानुप्रियने अ-कार्यमां

खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके पञ्चाणुव्रतिक यावद्
 गृहिधर्मम् उपसम्पद्य खलु विहरति । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशि-
 कुमारश्रमण वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव चातुर्घण्टः अश्व-
 रथस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, गस्या एव
 दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० ११२ ॥

टीका—'त एणं से' इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके=

देवानुप्रिय को जिस प्रकार से सुख ही वैसा करो—परन्तु विलम्ब मत
 करो (तएण से चित्ते सारथी केशिकुमारसमणस्स अन्तिके पञ्चाणुव्वइय
 जाव गिहिधम्मं उवसपज्जित्ताणं विहरइ) इसके बाद उस चित्र सारथि
 ने केशिकुमार श्रमण के पास पाँच अणुव्रतों वाले एवं सात शिक्षाव्रतों
 वाले गृहस्थ धर्मको अगीकार कर लिया (तएण से चित्ते सारथी केशि-
 कुमार समणं वंदइ, नमसइ वंदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घंटे आसरहे
 तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घट आसरह दुरुहइ) इसके बाद उस
 चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमण को वन्दना की नमस्कार किया, वन्दना
 नमस्कार कर उसने जहाँ चातुर्घट अश्वरथ रखा था उस ओर जाने का
 निश्चय किया. वहाँ जाकर वह उस पर चढ़ गया (जामेव दिस्सि पाउ
 व्मूए, तामेव दिस्सि पडिगर) और जिस दिशा से होकर आया था
 उसी दिशा तरफ चला गया।

टीकार्थ—इसके बाद चित्र सारथी केशीकुमार श्रमण के पास

शुभ थाय ते क्खे पथु विक्खण न क्खे. (त एणं से चित्ते सारथी केशिकुमार-
 समणस्स अन्तिके पञ्चाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं उवसपज्जित्ताणं विहरइ)
 त्थार पथी ते चित्र सारथिञ्जे केशिकुमार श्रमणु पासेथी पाथ अल्लुव्रतोवाणा अने
 सात शिक्षाव्रतोवाणा गृहस्थधर्माने स्वीकारी वीथि. (त एणं से चित्ते सारथी
 केशिकुमारसमणं वंदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घंटे आस-
 रहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ) त्थार भाह ते चित्र
 सारथिञ्जे केशिकुमार श्रमणुने वंदना करी, नमस्कार कर्था. वंदना तेमए नमस्कार करीने
 तेणे न्था चातुर्घट अश्वरथ छतो ते तरक्क ववानो निश्चय कर्थे. त्या वधने ते-रथ
 पर सवार थछ गथे. (जामेव दिस्सि पाउव्मूए. तामेव दिस्सि पडिगर) अने
 ते दिशा तरक्क थधने ते आव्थे छतो ते व-दिशा तरक्क पाछे वतो रहो
 टीकार्थ—त्थार भाह चित्रसारथि केशिकुमार श्रमणुनी पासे धर्म सावणीने

ममीपे धर्मं श्रुत्वा सामान्यतः, निश्चयः=विशेषतो हृद्यवधार्यं हृद्ययावद् हृद्यः= हृद्युष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः हर्षवशविसर्पदधृद्यः उत्थया=उत्थानशक्त्या उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिन कुमारश्रमण त्रिकृतः= चारत्रयम् आदक्षिणप्रदक्षिण करोति, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-हे भदन्त ! खलु=निश्चयेन श्रद्धाभिः=इदमेवमेवास्तीति श्रद्धानविषयीकरोमि नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! प्रत्येमि=प्रतीतिविषयीकरोमि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! रोचयामि =रुचिर्विषयीकरोमि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! अभ्युत्तिष्ठे=अभ्युपगच्छामि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! यथा खलु भवद्भिः प्रतिपादितम्, एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, एवमेव, हे भदन्त ! यथा भवन्तः प्रतिपादयन्ति, एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनं तथैव=तथैवमेवास्ति, हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् अत्रितथ=सन्यम् अत एव हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थं प्रव-

धर्मं सुनकर और उसे विशेषरूप से अपने हृदय में धारण कर छुट्ट तृष्ट और चित्त में आनन्द सपन्न हुआ उसके मनमें गाढ़ प्रीति जग गई, वह परम सौमनस्यत हो गया. हृदय अपार हर्ष के कारण उसका हर्षित होने लगा. वह उसी समय खड़ा हुआ, और केशिकुमार श्रमण को उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण पूर्वक वन्दना की नमस्कार किया. वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा-हे भदन्त मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचनको यह ऐसा ही है, इस रूपसे अपनी श्रद्धा का विषय बनाता हूँ, हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थप्रवचन को अपनी प्रतीति में लाता हूँ. हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचनको अपनी रुचि में आकृष्ट करता हूँ और मैं हे भदन्त ! इसे स्वीकार भी करता हूँ। हे भदन्त ! जैसा आपने कहा है यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अत्रितथ-सर्वथा सत्यरूप है,

अने तेने विशेषरूपथी हृद्यभा अवधारित करीने हृद्यतुष्ट थये अने तेहुं चित्त अतीव आनन्दित थयु. तेना मनमा तीव्र प्रीति उत्पन्न थछ. ते परमसौमनस्यत थछ गथे. तेहुं हृद्य अपार हर्षथी तरणोण थछ गथु ते तरतज उबो थये अने केशिकुमार श्रमणनी तेणे आदक्षिण प्रदक्षिणापूर्वक वन्दना करी नमस्कार कर्या वन्दना तेभज नमस्कार करीने पछी तेणे आ प्रभाणे कहुं-“हे भदत ! हु आ निर्ग्रन्थ प्रवचन पर जे जेवु ज छे” आ रूपमा श्रद्धाशील थाछ छु हे भदत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन पर हु सपुण्यपणे प्रतीति धराउ छु हे भदत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचनने हु योतानी रुचि तरक सहज भावे आकृष्ट करे छे अने हे भदत ! आने हु स्वीकारे पणु छु हे भदत ! आपश्रीजे जे प्रभाणे कहु छे ते प्रभाणे ज आ निर्ग्रन्थ प्रवचन छे आ अत्रितथ अथन अत्रितथ-सर्वथा-सत्यरूप छे, जेथी ज जे

चनम्, असन्दिग्धम्= न्देहरहितं खलु भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, तथा-हे भदन्त ! एतत् खलु इष्ट प्रतीष्टम् अभिलषितम् प्रतीष्टम्=आभि-
 म्युख्येन सम्भक् प्रतिपन्नमेतत्, इष्टप्रतीष्टम्=सर्वथाऽतिशयेनाभिलषितं हे
 भदन्त ! नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, यत् खलु युयुवदथ-इति कृत्वा=इत्युक्तत्वा वन्दते
 नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्, हे
 भदन्त ! देवानुप्रियाणाम्=भवताम् अन्तिके=समीपे यथा=येन प्रवारेण खलु
 वृक्ष उग्रा भोगा यावत् इभ्या इभ्यपुत्रा हिरण्यं=रजतम् त्यक्त्वा, एवम्-
 अमुनैवप्रकारेण धनं=रूप्यादि, धान्यं=शाल्यादि, बल=सैन्य, वाहनम्=
 अश्वदिरूपम्, कौशं=प्रसिद्धम्, कोष्ठागारं=धान्यगृहं, पुरं=नगरम्, अन्तःपुर=
 स्त्रीनिवासभूतस्थान च त्यक्त्वा, तथा=विपुल=प्रचुर धनवनकरत्नमणि
 मौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसत्सारस्वापतेयं, -तत्र धन=रूप्यादिकनकं=घटितमघ-

इसीलिये यह सन्देह रहित है। इष्ट है और प्रतीष्ट है अर्थात् इसे भग्यजीवों
 ने अपने जीवनमें उतारा है. अतः यह सर्वथा अतिशयरूप से अभिलषित
 सिद्ध हुआ है ऐसा कह कर उस चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमण की
 भक्ति के वशवर्ती होकर पुनः वन्दना की नमस्कार किया. और फिर
 उसने उनसे ऐसा कहा-हे भदन्त ! आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार
 से अनेक उग्रोंने उग्रपुत्रोंने भोगोंने यावत् इभ्योंने एव इभ्यपुत्रोंने हिरण्य-
 रजत को-छोड़कर, सुवर्ण को छोड़कर, इसी प्रकार, से धन-रूप्यादिकों को,
 धान्य-शाल्यादिकों को, बल-सैन्य को वाहन-अश्वदिकों को, कौश को, कोष्ठागार-
 धान्यगृह को, पुर नगर को, अन्तःपुर स्त्रीनिवास भूतस्थानको, छोड़कर, तथा विपुल
 प्रचुर धन रूप्यादिकों को कनक घटित अघटित (घड़ा हुआ और बिना घड़ा)

संकेत रहित छे छोट छे अने प्रतीष्ट छे. अटले के बव्य लुवेअये आने पोताना
 लुवनभा उत्तार्थुं छे अथी न् अये सर्वथा अतिशयइपथी अभिलषित सिद्ध थथुं
 छे" आ प्रभाषे कहीने ते चित्र सारथिअे बकितवथ थधने केशिकुमार श्रमणनी
 करी वन्दना करी तेभने नमस्कार कथां अने पछी तेखे तेअेश्रीने आ प्रभाषे कथुं-
 "हे भदत ! आप देवानुप्रिय पासैथी नेभ वषा उग्रोअे, उग्रपुत्रोअे भोगोअे यावत्
 धनोअे अने धन्यपुत्रोअे हिरण्य-सुवर्णने त्यलने, रजत-याहीने त्यलने, आ
 प्रभाषे धन-इभ्या वगेरेने, धान्य-शालि वगेरेने, बल-सैन्यने, वाहन-अथ वगेरेने
 कौशने कोष्ठागार-धान्यगृहने, पुर-नगरने, अन्तःपुर-रषुवासने त्यलने तेभण विपुल
 प्रचुर धन इभ्य वगेरेने कनक-घटित अघटित अने प्रकारना सुवर्णने, ककेतन गेरे

टित चेति द्विविधं सुवर्णम्, रत्न कर्केतनादिकम्, मणिः=पद्मरागादिकरूपः, मौक्तिकं=मुक्ताफल, शङ्खः-रत्नविशेषः, शिलाप्रवालः=विद्रुमः, सत्सार-स्वापतेय सद्=पितृपितामहादिपरम्परारूपेण विद्यमान सारं=प्रधानं यत्, स्वापतेयं=मणिरत्नादिकं द्रव्यं तत् एतेषां समाहारस्तत्, -घनधान्यादि सत्सार-स्वापतेयान्त सर्वं विच्छर्द्यं=भावतः परित्यज्य, विगोप्य=तानि सर्वाणि प्रकटी-कृत्य दान दत्त्वो=दीनदरिद्रादिभ्यो वितीर्य, परिभाज्य=पुत्रादिषु विभज्य, मुण्डा भूत्वा अगारात् अन्गारितां प्रव्रजन्ति=दीक्षां गृह्णन्ति, नो खलु भदन्त ! अहं यावत् शक्नोमि=समर्थोऽस्मि त्यक्त्वा हिरण्य, तदेव यावत्=सुवर्णा-दिकं सर्वं त्यक्त्वा-इत्यर्थः, प्रव्रजितुम्=दीक्षां ग्रहीतुम् । अहं खलु देवानुमिषाणाम् अन्तिके=समीपे पञ्चाणुव्रतिक-पञ्च=पञ्चसख्यकानि अनुव्रतानि=स्थूलात् प्राणातिपाताद् विरमणम् १, स्थूलाद् मृषावादाद् विरमणम् २, स्थूलात्

दोनों प्रकार के सुवर्ण को, कर्केतनादिक रत्नको, पद्मरागादिकरूप मणियों को, मुक्ताफलो को, रत्नविशेषरूप शङ्खको, शिलाप्रवालविद्रुम को, सत्-पिता पिता-मह आदिकों की परम्परारूप से विद्यमान सारप्रधान मणिरत्नादिकरूप स्वाप-तेय को, भावतः छोड़ करके, तथा प्रत्यक्षरूप में इन सबको दीन दरि-द्रादिकों को दान देकर, एव पुत्रादिकों में इन्हे विभक्त करके अर्थात् पुत्रा-दिकों को घन आदिका भाग देकर मुद्धित होकर अगारावस्था से परे हो दीक्षा धारण करते हैं, मैं इस प्रकार की- परिस्थिति से युक्त हो कर-अर्थात् सुवर्णादिक सब का परित्याग कर भागवती दीक्षा धारण करने में अपने आपको शक्ति संपन्न नहीं मान रहा हूँ-असमर्थमान रहा हूँ अतः आप देवानुमिष के पास मैं आवक व्रतों को धारण करना चाहता हूँ-बल्क ऐसी ही इस समय मुझ में शक्ति है. अर्थात्-१स्थूल प्राणातिपात

रत्नने, पद्मराग वगेरे रूप भक्षिओने, मुक्ताश्लोने रत्न विशेष शङ्खने, शिलाप्रवाल-विद्रुमने सत्-पिता पितामह वगेरेनी परंपराधी विद्यमान सार प्रधान-भक्षिरत्न वगेरे रूप स्वापतेयने, भावात् (अन्तरनी धृच्छाधी न) त्यज्जने तेभन प्रत्यक्षरूपमां दीन दरिद्र वगेरेने दानमा आपनि अने पुत्रादिहेतामा विभाजित करिने अटवे हे पुत्रादिहेने धन वगेरेना भाग आपिने भुंजित थधने-अगारावस्थाधी पर अेवी भाग-वती दीक्षा धारण करे छे. हुं पेतानी जतने आनी परिस्थितिथी भुक्त थधने अटवे हे अथर्व वगेरे अधी वस्तुओनो त्याग करिने भागवती दीक्षा धारण करवामा हुं असमर्थता अनुभवनी रह्यो छु अेथी आप देवानुमिष पासैथी हुं आवक व्रताने धारण करवा धरु छु छु अथवा मारामा आटवी न शकित छे. अटवे हे नेमा (१) स्थूल

अदत्तादानाद् विरमणम् ३, रउदारमनोरः ४, ईच्छापरिमाणः ५, इति पञ्चा-
णुव्रतानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्, तथा-सप्तशिक्षाव्रतिक-स-
प्तशिक्षाव्रतानि यस्मिन् दिग्ब्रनम्. १ उपभोगपरिभोगपरिमाणम् २, अनर्थदण्डविर-
मणम् ३, सामायिकम् ४, देशावकाशिकम् ५, पौषधोपवासः ६,
अतिथिसंविभागः, ७ इति सप्तशिक्षाव्रतानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्,
इत्येव द्वादशविध गृह्णधर्मं प्रतिपत्तुं=स्वीकृतुं शक्नोमि । इत्थ
चित्रसारथैर्वचन श्रुत्वा केशिकुमारश्रमणः प्राह-हे देवानुप्रिय ।
यथा ते सुख भवेत्तथा कुरु, अत्र अवश्यकर्तव्ये कार्ये प्रतिबन्ध=विलम्ब
मा कुरु-इति ! ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके
पञ्चाणुव्रतिक यावद् गृह्णधर्मम् उपसन्पद्य=स्वीकृत्य विहरति । ततः खलु

से विरमण, २ स्थूलमृषावाद् से विरमण, ३ स्थूलअदत्तादान से विरमण,
४ स्वदारसंतोष, और ५ ईच्छापरिमाण ये पांच अणुव्रत हैं जिसमें ऐसे तथा
१ दिग्ब्रन, २ उपभोगपरिभोगपरिमाण, ३ अनर्थदण्डविरमण, ४ सामायिक, ५ देशा-
शिक, ६ पौषधोपवास, ७ अतिथि स विभाग, एवं ये सात शिक्षाव्रत हैं जिसमें
ऐसे गृह्णधर्म को स्वीकार करने की मुझ में शक्ति है इसलिए इसे ही मैं
धारण करना चाहता हूँ-इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आनन्द
श्रावक के प्रकरण में देखना चाहिये । इस प्रकार चित्र सारथि के वचन-
कथन को सुनकर के केशिश्रमणने उससे कहा-हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें
सुख हो-वैसा करो परन्तु इस अवश्यकर्तव्य कार्य में ढील मत करो इस
प्रकार केशिकुमारश्रमण का हितविधायक वचन सुनकर चित्र सारथिने
उनके पास पांच अणुव्रतोंवाले एवं सात शिक्षाव्रतों वाले गृह्णधर्म को स्वीकार

प्राणुव्रतपातथी विरमण्यु, (२) स्थूल मृषावाद्थी विरमण्यु (३) स्थूल अदत्तादानथी विरमण्यु
(४) ईच्छा परारमण्यु आ याथे अणुव्रतो तेमथ (५) दिग्ब्रत, (६) उपभोग परि-
भोगपरिमाण्यु, (७) सामायिक (८) देशावकाशिक (९) पौषधोपवास, (१०) अतिथि-
संविभाग अने (११) अनर्थ दंड विरमण्यु आ सात शिक्षाव्रतो छे जेवा गृह्णधर्मने
स्वीकारवा भाटे हूँ तैयार छ आतु विशेष वचन औपपातिक सूत्रना आनन्द
श्रावक प्रकरणमा करवामा आण्यु छे आ प्रमाण्यु चित्रसारथीत कथन सांभानीने
केशिकुमार श्रमण्यु तेने कण्यु-‘हे देवानुप्रिय । तमने जेमा सुप्र थाय तेम करे पण्यु
आ आवश्यक कर्तव्यमा हवे वार करे नहि’ आ प्रमाण्यु केशिकुमार श्रमण्युतुं हित
विधायक वचन सांभानीने चित्र सारथिजे तेजोश्री याथेथी याथे अणुव्रतोवाणां तेमने
सातशिक्षा मतवाणा गृह्णधर्मना स्वीकारी दीधि त्पारणा चित्रसारथिजे तेकेशिकुमार

स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमण वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथ स्तैव प्राधारयद्=निश्चयमकरोद् गमनाय=गन्तुमिति । च गत्वा चातुर्घण्टम् अश्वरथ दूरोहति, दूरुह्य यस्यादिशः प्रादुर्भूतः, तामेव दिशं प्रतिगत इति ॥सू० ११२॥

मूलम्--तएणं से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगय-
जीवाजीवे उवलद्धपुणपावे आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंध
मोक्खकुकुसले असहिजे देवासुरणागजक्खरक्खमकिन्नरकिंपुरिसगरुल
गधव्वमहोरगाईहि देवगहेहिं निग्गथाओ पावयणाओ जणइक्कमणि
जे, निग्गंथे पावयणे णिस्सकिए णिक्खिए णि व्वतिगिच्छे लद्धट्टे
गहियट्टे पुच्छियट्टे अहिगयट्टे विणिच्छियट्टे अट्ठिमजपेमाणुरागरत्ते
'अयमाउसो ! णिग्गंथे पावयणे अट्टे, अयं परमट्टे, सेसे अणट्टे'
ऊंसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियतंतेउरप्पवेसे चाउइसट्टमुद्धट्टपुण-
मासिणासु पडिपुणं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे णिग्गंथे फासु-
एसणिजेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पीठफलगसेज्जासथारेणं वत्थ-
पडिग्गहक्कवलपायपुच्छणेणं ओसहभेसजेणं पडिलाभेमाणे, बट्टुहिं-
सीलव्वयगुणवेरमणपोसहोववासेहिय अप्पाणं भावेमाणे जाइं
तत्थ रायकज्जाणि य जाव राजववहाराणि य ताइ जियसत्तणा
रण्णा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ॥सू०११३॥

कर लिया. इसके बाद चित्रसारथिने उन केशिकुमारश्रमण को वन्दना की=
नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके फिर वह जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ
रखा हुआ था वहाँ पर आया वहाँ आकर वह उसपर बैठ गया और इस
प्रकार यह जहाँ से आया था वहीं से होकर वापिस चला गया ॥ सू. ११२ ॥

श्रमणणी वदना करी नमस्कार कर्या, वन्दना नमस्कार करीने पछी ते ज्ज्या चातुर्घ ४
अध.थ हुतो त्या गथे त्या पडोच्छीने ते तेभा जेस्सी गथे ज्जने ज्जा प्रभाजे ते
ज्ज्यांथी ज्ज्यांथी हुतो त्या ज यात्रो जतो रथो ॥सू० ११२॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः श्रमणोपासको जातः अभिगत जीवाजीव उरलब्धपुण्यपाप आस्रवसंवरनिजंराक्रियाऽधिकरणबन्धमोक्षकृतलः असाहाय्यो देवासुरनागयक्षराक्षसकिन्नरकिम्पूरुपगणदृग्गन्धर्वमहोरगादिभिः देवगणैः निर्ग्रन्थात् प्रवचनात् अनतिक्रमणीयः, निर्ग्रन्थे प्रवचने निश्चिन्तो निष्काङ्क्षितो निर्विचिन्तितो लब्धार्थो गृहीतार्थः पृष्टार्थः अधि-

‘तएणं से चित्ते सारहो’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही समणोवासए जाए) अथ वह चित्र सारथि श्रमणोपासक हो गया। (अहिगय जीवाजीवे, उवलद्धपुण्यपापे, आस्रवसंवरनिज्जरक्रियाहिगरणबंधमोक्षकृतलसे) जीव और अजीव तत्त्व के वह ज्ञाता बन गये, पुण्य एव पाप के स्वरूप को जानने लगे, आस्रव, संवर, निजंरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष इनमें कुशल हो गये। अर्थात् इनके स्वरूप का उसे बोध हो गया। (असहिज्जे) कुतीर्थिकों के कुतर्क के खण्डन में पर की सहायता की अपेक्षा वाला नहीं रहा (देवासुरनागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधम्महोरगाईहिं देवगहेहिं निग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गथे पावयणे निस्सक्किए) देवों से असुरों से नागों से, यक्षों से राक्षसों से, किंपूरुओं से, गरुडों से, गंधर्वों से, महोरगों से—इन सब देवगणों से—वह निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा आदि से, अनतिक्रमणीय हो गया अर्थात् ये सब देवगण भी उसे निर्गन्थप्रवचन से थोड़ा सा भी विचलित करने के लिये समर्थ नहीं हो सके। वह (निग्गथे पाव-

‘तए णं से चित्ते सारहो’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए ण से चित्ते सारही समणोवासए जाए) उवे चित्र सारथि श्रमणोपासक थय गथे इतो (अहिगयजीवाजीवे, उवलद्धपुण्यपापे, आस्रवसंवरनिज्जरक्रियाहिगरणबंधमोक्षकृतलसे) एव अने अए। तत्त्वने ते ज्ञाता थय गथे। पुष्य अने पापना स्वइपने ते ज्ञेषुवा वा थे। आस्रव, संवर, निजंरा, क्रिया, अधिकरण, बंध अने मोक्षमा ते कुथण थय गथे अट्ठे के आ भधाना स्वइपत्तु ज्ञान तेने थय गथुं (असहिज्जे) कुतीर्थिकाना कुतर्कना भंजनमां तेने जित्ती महदनी अपेक्षा न रकी (देवासुरनागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधम्महोरगाईहिं देवगहेहिं निग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गथे पावयणे निस्सक्किए) देवथी, असुरेथी, नागेथी, यक्षेथी राक्षसेथी किन्नरेथी किंपुषेथी गरुडेथी गंधर्वेथी महोरगेथी—आ भधा देवगथेथी ते निग्रन्थ प्रवचन पर अती श्रद्धाने लीने—अनति-मत्थीय थय गथे अट्ठे के आ भधा देवगथे पत्तु तेने निग्रन्थ प्रवचन परथी जसत्थे विचक्षित रकी

गनार्थो विनिश्चितार्थः अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्त - 'इदम् आयुष्मन् ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम् अर्थः, अयं परमार्थः, ओषध्म अनर्थः' उच्छ्रित-स्फाटिकः अया वृक्षद्वारः प्रीतिकरान्तःपुरगृहप्रवेशः चतुर्दश्यष्टम्युष्टिपौर्णमासीषु प्रतिपूर्णं

यणे गिरस क्रिए) ऐसा निर्ग्रन्थप्रवचन में निःशकितगुण से युक्त हो गया (गिकं खिए) अन्यमत की काक्षा उमके चित्त में थोड़ी सी भी नहीं रही ऐसा निःकांसितगुण वाला वह हो गया. (गिबिबिगिच्छे, लद्धट्टे, गहियट्टे, पुच्छियट्टे, अहियगट्टे, विगिच्छियट्टे, अट्टिमिजपेमाणुरागरत्ते) फलके प्रति संदेह उसका जाता रहा ऐसा वह निर्दिचिकित्स गुण-सपन्न हो गया. इसी कारण उसने गुर्वादिकों में यथार्थ निर्ग्रन्थप्रवचन का अर्थ प्राप्त कर लिया, और इसी कारण वह पराभिप्राय के ग्रहण से अवधारित (निश्चित) अर्थतत्त्ववाला बन गया. पृष्ठार्थ हो गया. निर्णीतार्थ हो गया, अधिगतार्थ हो गया, विनिश्चितार्थ हो गया, तथा उसकी अस्थि और मज्जा ये दोनों निर्ग्रन्थ प्रवचनविषयक प्रेमरूपी रंजन द्रव्य से खूब रग गये. अर्थात् रग रग में उसके निर्ग्रन्थप्रवचन का अनुराग भर गया (अयमाउसो ! निगगथे पावयणे अट्टे अयं परमट्टे, सेसं अणट्टे, ऊसियफलिहे, अवंगुयदुवारे, चियत्त तेउरपरप्पवेसे) हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही वास्तविक अर्थ से युक्त है क्योंकि यह मोक्ष का हेतु है. यही परमार्थ है क्योंकि कि जीवों का

शक्या नहि. ते (निगगथे पावयणे गिरस क्रिए) आ प्रभाण्णे निग्रन्थ प्रवचनमा निःशकित शुष्पयुक्त थध गथे (गिकं खिए) तेना भनमां णीण भत भाटे णीरे धन्धा शेष न रही आ प्रभाण्णे ते निष्काक्षित शुष्पयुक्त थध गथे (गिबिबिगिच्छे लद्धट्टे, गहियट्टे, पुच्छियट्टे, अहियगट्टे, विगिच्छियट्टे, अट्टिमिजपेमाणुरागरत्ते) क्षण प्रत्ये तेना भनमा संदेह रह्यो नहि, आ प्रभाण्णे ते निर्दिचिकित्स शुष्प संपन्न थध गथे. अथी न तेण्णे गुइ वगेरे पासैथी यथार्थं निग्रन्थ प्रवचनो अर्थं णाण्णी ढीधो इतो अथी न ते पराभिप्रायना अहसुथी अवधारित अर्थं तत्त्ववाणो थध गथे, पुष्ठार्थं थध गथे निर्णीतार्थं थध गथे. अधिगतार्थं थध गथे, विनिश्चितार्थं थध गथे अन्ते तेना अस्थि अन्ते मज्जा अन्ते निग्रन्थ प्रवचन विषयक प्रेमरूपी रंजन द्रव्यथी पूषण रजित थध गया अट्टेके के तेना शरीरना अण्णुअे अण्णुमा निग्रन्थ प्रवचन प्रत्येनी प्रीति व्याप्त थध गध. (अयमाउसो ! निगगथे पावयणे अट्टे अयं परमट्टे, सेसं अणट्टे, ऊसियफलिहे, अवंगुयदुवारे, चियत्त तेउरपरप्पवेसे) हे आयुष्मन् ! आ निग्रन्थ प्रवचन न वास्तविक अर्थ युक्त छे केभके अे मोक्ष भटे हेतुरूप ठहेवाय छे अेन परमार्थ छे केभके लोवाटं

पौषधं सम्भक्त अनुपालयन् भ्रमणान् निर्ग्रन्थान् प्रासुकपणीयेन अशनपान-
खादिम-स्वादिमेन पीठ--फलक शय्या-संस्तारेण वस्त्र--प्रतिग्रह-कमलपाद-
मोच्छनेन औषधभैषज्येन प्रतिलाभयन् बहुभिः शीघ्रतगुणविरमणपौष-

प्रयोजन इसीसे सिद्ध होता है. इसके अतिरिक्त अन्यतीर्थिक कुपचरनादिक
कृतिप्रापक होने से अनर्थरूप हैं, इस तरह से वह अपने पुत्रादिकों को
शिक्षा देने लगा. निर्ग्रन्थप्रवचन को प्रतिपत्ति से उसका अन्तःकरण
असद्विचारों से रहित हो जाने के कारण स्फटिक की तरह निर्मल हो
गया, भिक्षुक आदिकों का भिक्षाके निमित्त गृह में प्रवेग सरलता से हो
जावे इस ख्याल से वह अपने गृहप्रवेग द्वार को मृदा अर्गला से रहित
रखने लगा अर्थात् दानादि के लिये खुले दरवाजे रखे। राजा के अन्तः
पुर में भी उसका प्रवेश शंका रहित होने से प्रीति का जनक बन गया.
अर्थात् अतिधार्मिक होने से वह परी सहोदर (भाई) बन कर रहने लग गया.
(चाउहसद्व, मुद्दिपुष्पमासिणीसु पडिपुष्पं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे
निर्गन्धे फामुएसाणिज्जेणं असणपाणस्त्राइम-साइमेण पीठफलमसेज्जासंथारेण
वत्थपरिगह
कंबलपायपुच्छणेणं ओसहमेसज्जेणं पडिलामेमाणे)
चतुर्दशी अष्टमी, उद्दिष्ट अभावस्था एवं पूर्णिमा इन चार तिथियों में अहोरात्र
पौषध का पालन करता हुआ, तथा प्रासुक पषणीय-अचित्त और साधुजन
को करवनीय ऐसे अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चतुर्विध आहार से,

प्रयोजन जेना वडे व सिद्ध थाय छे. भाडीना यथा-अन्यतीर्थिक कुपचरन वगेरे
कृति प्रापक होवा भदल अनर्थ रूप छे आ प्रभावे ते पोताना पुत्रो वगेरेने
उपदेश आपवा लाये, निर्ग्रन्थ प्रवचननी प्रतिपत्तिथी तहुं हृद्य असद्व विचारथी
रहित थध गधुं इतुं ओटका भाटे स्फटिकनी जेम निर्मण थध गधुं इतुं. भिक्षुक
वगेरे शिक्षा भाटे आवे त्यारे सज्जतापूर्वक धरमां तेजो प्रवेश भेजनी शके ते भाटे
ते पोताना धरतु भारहुं पुहुहु व राभवा लाये। राजाना राजभदेलमा पण तेना
प्रवेश नि शंकपण्णु थवा लाये। ओटके के ते अतिधार्मिक थध गये। इतो ज्येथी ते
परमी सोहोदर जनीने रहेवा लाये। (चाउहसद्व, मुद्दिपुष्पमासिणीसु पडि-
पुष्पं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे निर्गन्धे फामुएसाणिज्जेणं
असणपाणस्त्राइमसाइमेणं पीठफलमसेज्जासंथारेण वत्थपरिगह
कंबलपायपुच्छणेणं ओसहमेसज्जेणं पडिलामेमाणे)
चतुर्दशी अष्टमी, उद्दिष्ट अभावस्था एवं पूर्णिमा जे आरेशार तिथिजेना द्विक्से
अहोरात्र सुधी पौषधतु पालन करतो इतो तेमज प्रासुक पषणीय अचित्त जेने
साधुजन भाटे करवनीय जेवा अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चतुर्विध आहारथी

धोपयासैः आन्मान भावयन् यानि तत्र राजकार्याणि च यावत् राजव्यवहाराश्च
तानि जितशृणुः राज्ञा सार्द्धं स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणः प्रत्युत्प्रेक्षमाणो
पिरहति ॥ सू० ११३ ॥

टीका—‘तएण’ से’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिःश्रमणोपासको जातः सन् अभिगत-जीवा-
जीवः-अभिगतां=सम्यक् अवगतौ=ज्ञातौ जीवाजीवी=जीवनस्वप्न अजीवतस्वप्नं
च येन स तथा-जीवतश्चाजीवतस्वप्नविषयःसकलज्ञानसम्पन्नः, उपलब्धपुण्य-

पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक से, वस्त्र पात्र कम्बल, पादप्रोच्छन, से,
(चरण को साफ करने का वस्त्रविशेष) एवं औषध भैषज्य से श्रमण
निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ (बहूहिं सीलव्ययगुणवेरमणपोसहोव-
वासेहिं य अप्पाण भावेमाणे जाहं तत्थ राजकज्जाणि य जाव राजववहाराणि य ताहं जिजसत्तुणा रणा सद्धिं समयमेव पच्छुवे
क्खमाणेर विहरहं) एवं अनेक शीलव्रतों, गुणव्रतों, मिथ्यात्व से निर्वर्तन,
मह्यालुपान और पीषधों से आत्मा को भावित करता हुआ वह जितने
भी उस श्रावस्ती नगरी में राजकार्य थे यावत् जितने वहाँ राजव्यवहार थे
उन सब का जितशत्रु राजा के साथ वारंवार अवलोकन करता हुआ रहने लगा।

टीकार्थ—गृहधर्म के पालन करने से वह चित्र सारथि श्रमणोपासक
बन गया जीव-अजीव तस्व चित्रक सकलज्ञान से वह सम्पन्न हो गया.

पीठ इलक, शय्या सस्तारकथी वस्त्र पात्र, कंबल, पाद प्रोच्छनथी अने औषध भेषज्यथी
श्रमण निर्ग्रन्थोने प्रतिलाभित करते (बहूहिं सीलव्ययगुणवेरमणपोसहोव-
वासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे जाहं तत्थ राजकज्जाणि य जाव राजवव-
हाराणि य ताहं जिजसत्तुणा रणा सद्धिं समयमेव पच्छुवेक्खमाणेर विहरहं)
अने अनेक शीलव्रतो, शुच्यवतो, मिथ्यात्वथी निर्वर्तन, प्रत्याप्यात अने पीषधीवडे
पीताना आत्माने भावित करते ते श्रावस्ती नगरीना सर्व राजकार्योत्तु संयासन
करतो जितशत्रु राजाना साथे रहिने वारवार राजकार्योत्तु अवलोकन करते पीताना
दिवसे पसार करवा लाये.

टीकार्थ—गृहधर्मना पालनथी ते चित्रसारथि श्रमणोपासक थछं गये. एवं,
अलव तत्त्व विषयक सकल ज्ञानथी ते सपन्न थछं गये. पुष्य अने पापना यथा-

पापः-उपलब्धे=याथातथेन विज्ञाने पुण्यपापे=पुण्यलक्षणं पापलक्षणं च येन स तथा-पुण्यपापयोः यथास्थितस्वरूपज्ञायकः, तथा-आसन्नसंवर-निर्जरा क्रियाऽधिकरणबन्धमोक्षकुशलः-तत्र-आसन्नः=प्राणान्तिपातादिः, संवरः=प्राणान्तिपातविरमणादिः, निर्जरा=कर्मणां देहातो निर्जरणं, क्रिया=कायिकयादिरूपा, अधिकरणम्, खड्गादिभ्यम्, बन्धः=कर्मपुद्गलजीवप्रदेशयोः दुग्धकलवत् एकीभावाः, मोक्षः=जीघमप्रदेशेभ्यः सर्वात्मना कर्मणामपगमनम्, एतेषामितरेतरघोगहनः, तेषु कुशलः=चतुरः-आसन्नानिस्वरूपामिह-इत्यर्थः, तथा-असाहाय्यः=नास्ति साहाय्यं=सहायता यस्य स तथा-कुतीर्थिककृतकखण्डने परसाहायानपेक्ष इति भावः, रागा-द्रुमासुरनागयक्षराजमकिन्नरकिम्पुरुषगणकण्ठगन्धर्वमहोरगादिभिः=तत्र-देवाः=वैमानिकाः, असुराः-असुरकुमाराः, नागाः=नागकुमाराः असुरा नागाः, एते उभये भवनपतयः, यक्षाः,

पुण्य और पाप के यथास्थित स्वरूप का वह ज्ञान हो गया। तथा प्राणान्तिपातादिरूप आसन्न, प्राणान्तिपातादिविरमणरूप संवर, कर्मों का एकदेश से क्षय होनेरूप निर्जरा, कायिकी आदिरूप क्रिया खड्गादिरूप अधिकरण, दुग्धकल की तरह कर्मपुद्गलों का और जीवप्रदेशों का एक क्षेत्रावगारूप बन्ध, जीवप्रदेशों से सर्वात्मना कर्मों का अपगमरूप मोक्ष इन सब में वह चतुर बन गया, अर्थात् जीव आदि के स्वरूप का वह अभिज्ञ हो गया, कुतीर्थिकजनो के कृतक खण्डन में वह किमी की भी सहायता नहीं लेता ऐसा समझदार हो गया, तथा जिनभवचन के प्रति-उसकी ऐसी अगाध श्रद्धा बढ़ गई कि जिससे वह देव, असुर, नाग, यक्ष राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष आदिकों द्वारा भी उससे किञ्चित् भी चलायमान नहीं किया जासका। वैमानिक देव यहाँ देवपद से असुरकुमार जाति के भवनपति असुरकुमारपद

वास्थित स्वउपने ते गच्छुवा लाग्ये तेभ्य प्राणान्तिपात वगेरे व्यास्रव, प्राणान्तिपातादि विरमणरूप संवर, कर्मोना ओकदेशथी क्षय यवा इय निर्जरा, कायिकी वगेरे इय क्रिया अद्रुग वगेरे इय अधिकरण, दुग्धकलनी नेम कर्मपुद्गलोत्तु अने एव प्रदेशोत्तु ओकक्षेत्रावगारूप बन्ध, एव प्रदेशोदी सर्वात्मना कर्मोनु अपगमनरूप मोक्ष आ यधामां ते यतुर इतो ओटले के व्यास्रव वगेरेना स्वउपनेो ते गच्छुकार थर्ष गयो इतो ते ओवेो यतुर थर्ष गयो इतो के कुतीर्थिकाना कृतकखण्डनमा ते कोधनी यषु महद वेतो नइतो तेभ्य जिनभवचन प्रथे तेना भनमां ओपी अगाध श्रद्धा जामी गध इती के जेथी ते देव, असुर, नाग, यक्ष, राक्षस किन्नर, किम्पुरुष वगेरे वडे ते जराओ विखलित करी शकथ तेम नइतो। वैमानिक देव आदी देवपदथी, असुरकुमार जतिना भवनपति असुरकुमार पदथी, नागकुमार जतिना भवन-

राक्षसाः, किन्नराः किम्पुरुषाः, एते चत्वारोऽव्यन्तरविशेषाः, गरुडाः=गरुड-
 ध्वजाः सुपर्णकुमाराः भवनपतिविशेषाः, गन्धर्वा महोरगाश्च व्यन्तरविशेषाः,
 तत्पभृतिभिरपि देवगणैः नैर्ग्रन्थात् प्रवचनात् अनतिक्रमणीयः=अचालनीयः
 निर्ग्रन्थप्रवचनात् चालयितुं देवादयोऽसमर्था इति भावः । तथा-निर्ग्रन्थे
 प्रवचने निशङ्कितं=अन्यदर्शनापेक्षया श्रेष्ठमिदं न वेति शङ्कारहितः, अत
 एव-निष्काङ्क्षितः=काङ्क्षारहितः-परमतकाङ्क्षारहितः निर्विचिकित्सः-फलं
 प्रति सम्देहरहितः, अत एव-लब्धार्थः-लब्धः=पासः अर्थो गुर्वादीना सका-
 शाद् येन स तथा-उपलब्धपदार्थ इत्यर्थः, गृहीतार्थः-गृहीतः=स्वीकृतोऽर्थो
 येन स तथा-पराभिप्रायप्रहणतोऽवधारितार्थतत्त्व इत्यर्थः, पृष्ठार्थः-पृष्ठोऽर्थो

से, नागकुमार जाति के भवनपति देव नाग शब्द से, तथा यक्ष, राक्षस,
 किन्नर, एवं किंपुरुष इन पदों से व्यन्तर जाति के इस २ नामके देव
 गृहीत हुए हैं। गरुड शब्द से गरुडध्वजवाले सुपर्णकुमार जो कि भवन-
 पति जाति के देव विशेष हैं। गृहीत हुए हैं। गन्धर्व और महोरग ये
 व्यन्तरविशेष हैं। उसके मनमें ऐसी शंका कि यह निर्ग्रन्थप्रवचन अन्य
 दर्शनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है की नहीं है कभी नहीं उत्पन्न हुई इसलिये
 यह उसके प्रति निःशंकित था। परमत की कांक्षा का अभाव इसके चित्त
 में सर्वथा हो गया था-इसलिये यह निष्काङ्क्षित था, फल के प्रति सन्देह
 से ग्रह रहित था। इसलिये निर्विचिकित्स था। इसी कारण इसने गुर्वादिकों
 के पास से प्रवचनगदित अर्थ को अच्छी तरह से जान लिया था। इसलिये
 यह लब्धार्थ था, उसे अच्छी तरह से स्वीकार कर लिया था। इसलिये
 ये गृहीतार्थ था। संवेद्युक्त स्थल में परस्पर प्रश्न करने से वह अर्थ

पतिदेव नाग शब्दही तेमज् यक्ष, राक्षस, किन्नर अने किंपुरुष आ पदोधी व्यन्तर
 जातिना हेवोह् अक्षय्य थयु छे गरुड शब्दही गरुडध्वजवाणा सुपर्णकुमार-के जेवो
 भवनपति जातिना देव विशेष छे तेह् अक्षय्य थयु छे गधर्व अने महोरग अने
 व्यन्तरविशेष छे ते चित्रसारथिना मनमा निर्ग्रन्थ प्रवचनने लभने जेवी कौषिक
 द्विसे शका उत्पन्न थय नहोती के आ निर्ग्रन्थ प्रवचन पीला दर्शनो करता श्रेष्ठ
 छे के केम ? जेथी ते ते प्रति निशंकित हुतो परमत प्रत्ये तेना मनमा लार्थि
 कांक्षा उत्पन्न थय नहोती जेथी ते निष्काङ्क्षित हुतो ह्य प्रत्ये ते सन्देह रहित हुतो।
 जेथी ते निर्विचिकित्स हुतो तेजे शुरु वगेरे पासोधी प्रवचन वगेरे अर्थने सानी
 पेटे लक्ष्मी लीधां हुता जेथी ते लब्धार्थ हुतो ते अर्थने तेजे सारी पेटे स्वीकार
 करी लीधा हुने। जेथी ते गृहीतार्थ हुतो साशयिक स्थण विषे परस्पर प्रश्नो कर-

येन स तथा-सांशयिकस्थत्र परस्परं प्रश्नकरणेन निर्णीतार्थः, अधिगतार्थः-
 अधिगतः=सर्वथा उपलब्धः अर्थो येन स तथा-सर्वप्रकारेणोपलब्धार्थः, अत
 एव-विनिश्चितार्थः-वि=विशेषेण निश्चितः=निर्णीतोऽर्थो येन स तथा-ज्ञात-
 वास्तविकार्थ इत्यर्थः, त ग-अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्तः-अस्थिमज्जे मसिद्धे
 ते प्रेमानुरागेण-निर्ग्रन्थप्रवचनविषयकं यत् प्रेम तद्रूपो योऽनुरागो=रञ्जन-
 द्रव्यं तेन रक्ते ह्य रक्ते यस्य स तथाभूतः सन् "हे आयुष्मन् ! इत्
 नैर्ग्रन्थं प्रवचनमेव अर्थ=वास्तविकार्थयुक्तः-मोक्षहेतुत्वात्, शेषम्=हतो
 भिक्षम् अन्यतीर्थि रूकृप्रावनादिरूप अनर्थः-कुगतिप्रापकत्वात्"-इत्येव
 पुत्रादिरूपमुशासत्, तथा उच्छ्रितस्फाटिकः-स्फाटिकमिव स्फाटिकम् अन्तः
 करणम्, उच्छ्रितम्=उद्गतस्फाटिक यस्य स तथा-निर्ग्रन्थप्रवचन
 प्रतिपत्त्या, असद्विचारशून्यत्वात्स्फाटिकवन्निर्मलान्तःकरण इत्यर्थः, अथवा-
 'उच्छ्रितपरिघः' इति छाया, एतत्पक्षेः उच्छ्रितः=तत्स्थानादपनीय ऊर्ध्वी

का निर्णेता बन गया था, इसलिये पृष्ठार्थ था, सर्वप्रकार से अर्थ को
 ग्रहण करने वाला बन गया था, इसलिये-ये लब्धार्थ था, वास्तविक अर्थ का
 ज्ञाता बन गया था, इसलिये ये, विनिश्चयार्थ था, निर्ग्रन्थप्रवचनविषयक प्रेम-
 उसकी रोमर में समा गया था, इसलिये ये अस्थिमज्जाप्रेमानुराग रक्त था, वह
 अपने पुत्र-पौत्रादिकों से यही कहना था कि हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ
 प्रवचन ही मोक्ष हेतु होने से वास्तविक अर्थ से युक्त है अन्य कुवादियों के
 प्रवचन ऐसे नहीं है, क्यों कि वे कुगति के प्राप्त कराने वाले हैं, निर्ग्रन्थप्रवचन
 की प्रतिपत्ति से उसका हृदय स्फटि णि के जैसा निर्मल हो गया था
 'उसियफलिहे' की छाया जय 'उच्छ्रितपरिघः' ऐसी की जाती है तब
 इसका अ. ऐसा होता है कि इसने घरके द्वार के किचाड़ों में,

वाथी ते अर्थना निर्णयता भनी गयो हतो अर्थी ते पृष्ठार्थ हतो, ते सर्व रीते
 अर्थने ग्रहण करनार भनी गयो हतो, अर्थी ते लब्धार्थ हतो, ते वास्तविक अर्थना
 ज्ञाता थथ गयो हतो अर्थी ते विनिश्चयार्थ हतो, निर्ग्रन्थ प्रवचन विषयक प्रेम
 तेना अल्लुअे अल्लुआ रभी गयो हतो, अर्थी ते अस्थिमज्जाप्रेमानुरागी हतो, ते
 पोताना पुत्र पौत्र वगेरेने आ प्रभावे व कहेतो हतो के हे आयुष्मन् ! आ
 निर्ग्रन्थ प्रवचन व मोक्षना हेतु होवा, अहल वास्तविक अर्थथी युक्त छे, पीला कुवादि-
 योना प्रवचनो आवा नथी, कारणके ते कुगति तरङ्ग दोरनारा छे, निर्ग्रन्थ प्रवचननी
 प्रतिपत्तिथी तेहं हृदय स्फटिकमणि जेम निर्मल थथ गयुं हतुं, 'उसीयफलिहे'
 नी छाया न्यारे 'उच्छ्रितपरिघः', आ प्रभावे करवाभां आवे छे त्यारे तेना अर्थ
 आ प्रभावे होथ छे के तेणे गृहप्रवेशद्वारना कमाठोभां अर्गवा भूकवाना स्थाननी

કૃતો ન તુ તિરશ્ચીનઃ કૃતઃ પરિષ્ઠા=અર્ગલા યેન મ તથા
 'મિશ્ણુકાદીનાં સૌકર્યેણ મિશ્ણાર્થ'ગૃહે પ્રવેશો ભવતુ ઇતિ હેતોઃ કપાટ-
 પશ્ચાદ્ગાદપનીતાર્ગલ હત્યર્થઃ । અથવા-ઉચ્છિન્નતઃ=અપગતઃ પરિષ્ઠા=અર્ગલા
 ગૃહદ્વારે યસ્યાસૌ તથા-ઐતાર્યાધિક્યાદતિશયદાનદાતૃત્વાદ્ મિશ્ણુકપ્રવેશાર્થ-
 મનર્ગલિતગૃહદ્વાર હત્યર્થઃ । एतावदेव न किन्तु अप्रावृतद्वारः=मिश्रुकादि-
 પ્રવેશાર્થ કપાટાનામપિ પશ્ચાત્કરણાત્ સર્વથા સમુદ્ઘાટિતદ્વારહત્યર્થઃ । यद्वा-
 સમ્યગ્દર્શનલાભે સતિ કૃતશ્ચિદપિ પાશ્વણ્ડિકાદ્ મયાભાવેન શોભનમાર્ગપરિ-
 ગ્રહેણ ચ સર્વદા સમુદ્ઘાટિતશિરાસ્તિઞ્ઠતોતિ માત્રઃ, તા-પીતિકાગતઃપુ-

અર્ગલા કો उसके रखने के स्थान से ऊपर ऊर दिया था, तिरछा नहीं किया
 था. अर्थात् प्रवेशद्वार के किबाड़ों में इसने अर्गला नहीं लगाई किन्तु वह
 ऊँची ही रही सो उसका कारण यह था मिश्रुक आदि जनों का प्रवेश
 घर में मिश्रुका के निमित्त सरलता पूर्वक होता रहे। अथवा उच्छिन्न शब्द
 का अर्थ 'इसने अर्गला बिलकुल नहीं लगाई' ऐसा भी होता है क्यों
 कि यह उदारता वाला था, तथा अतिशय दान देने वाला था. इसलिये मिश्रुका-
 दिकों के प्रवेश के लिये इसने अपने घर-के द्वार को अर्गला से
 रहित ही कर दिया था उतना ही नहीं किन्तु उसने गृह द्वारके
 कपाटों को खुलाकर दिया इसीलिये वह 'अप्रावृतद्वारः' ऐसा कहा है
 अर्थात् वह सर्वथा समुद्धाटित द्वार वाला प्रकट किया है। अर्थात् दान पुण्य-
 के लिये उनके घरके द्वार सदा खुले थे यद्वा—सम्यग्दर्शन के
 लाभ होने पर किसी भी पालण्डिक से उसे मय नहीं था सो हमसे

ઉપરજ રાખી. ત્રાસી મૂકી ન હતી એટલે કે પ્રવેશદ્વારના કામઠામાં તેણે
 સાકળ લગાડી ન હતી પણ તેને ઉચી જ રાખી હતી એની પાછળ આ હેતુ છે
 કે મિશ્રુક વગેરે મિશ્રુક માટે આવે ત્યારે સહેલાઈથી ઘરમાં પ્રવેશી શકે.
 અથવા ઉચ્છિન્ન શબ્દનો અર્થ આ પ્રમાણે પણ થાય છે કે તેણે
 અર્ગલા લગાડી જ નહોતી. તે કદાર તેમજ અતિશય દાનદાતા હતો એથી મિશ્રુક
 વગેરેના પ્રવેશ માટે પોતાના ઘરને તેણે અર્ગલા વગર જ રાખ્યું હતું. આ
 પ્રમાણે અર્થ કરતાં આપણે એમ કહી શકીએ કે તેણે અર્ગલાને તેના
 સ્થાન પરથી ઊંચી પણ નહોતી કરી એટલા માટે 'અપ્રાવૃત્તદ્વારઃ' પદથી
 સૂત્રકારે તેને સર્વથા સમુદ્ઘાટિતદ્વારવાળો પ્રકટ કર્યો છે અને સમ્યગ્દર્શનના લાભ
 વી હવે કાંઈ પણ પાપડિકથી તે કમલીત નહોતો થતો એથી અને શોભનમાર્ગના

गृहप्रवेशः=प्रीतिकरः प्रीत्युत्पादकः अन्तःपुरगृहे=राज्ञोऽन्तःपुरे प्रवेशो=यस्य स तथा, प्रीतिकरोऽतिधार्मिकतया सर्वज्ञानाशङ्कनीय इति भावः, तथा- चतुर्दश्याष्टम्युद्दिष्टर्षणभासीषु तत्र-चतुर्दश्याष्टमीर्षणमास्यः प्रसिद्धाः, 'उद्दिष्टम् इत्यमावास्या, एतासु चतसृष्वपि तिथिषु प्रतिपूर्णं=सकलम्-अहोरात्र पौषध सम्यक् अनुपालयम्, तथा-प्रासुकैषणीयेन=अचित्तेन साधुजनकल्पनीयेन च अशनपानखादिमस्वादिभेन=अशनादिचतुर्विधेनादारेण पीठफलकशय्यासस्तार-केण, वस्त्रप्रतिग्रहकम्बलपादप्रोच्छनेन-तत्र-वस्त्रं=वसनं, प्रतिग्रहः=भक्त-पानादिपात्रं, कम्बलः-मसिद्धः, पादप्रोच्छनं=पादप्रोच्छनार्थं वस्त्रम्, एतेषां समाहारः, तेन. तथा-औषधभैषज्येन=औषधम्=एकद्रव्यनिष्पादितं, भैषज्यम्=अनेकद्रव्यनिष्पादितम्, उभयोः समाहारस्तेन च श्रमणान् निर्ग्रन्थान् प्रतिलम्बयन् प्रतिलम्बयन्, तथा-बहुभिः=अनेकसंख्यकैः शीलव्रतगुण-विरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैः तत्र-शीलव्रतानि=स्थूलप्राणातिपातविरमणा-

और शोभनमार्ग के परिग्रह से वह सर्वदा समुद्राटित गिरवाला घना रहता था अर्थात् स्वधर्ममिमान वाला है-तथा वह प्रीतिकरान्तःपुरगृहप्रवेश वाला था, अर्थात् राजा के अन्तःपुररूप घर में इसका प्रवेश प्रीत्युत्पादक था अर्थात् यह अतिधार्मिक था इसलिये प्रीतिकर सर्वज्ञ अनाशङ्कनीय था तथा चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या और पूर्णिमा इन चारों पर्वतिथियों में यह अहोरात्र का पौषध करता था प्रासुकैषणीय-अचित्त एवं साधुजन कल्पनीय ऐसे अशनपान आदिरूप चार प्रकार के आहार-से, पीठ, फलक, शय्या एवं सस्तारक से. वस्त्र, प्रतिग्रह-भक्तपानादिपात्र, कम्बल, एवं पादप्रोच्छनार्थ व से, एकद्रव्यनिष्पादित औषध से तथा अनेक द्रव्य निष्पादित भैषज्य से यह श्रमणनिर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता था, इस तरह अनेकसंख्यक शीलव्रतों से-स्थूलप्राणा-तिपातविरमण आदिकों से, दिग्ब्रत आदिरूप गुणव्रतों से, मिथ्यास्व-

परिग्रहधी ३ सर्वदा समुद्राटित गिरवाणे यधने रहेतो हतो. ते प्रीतिकरान्तः-पुरगृहप्रवेशवाणे हतो अेटवे के शानना रघुवासमां तेना प्रवेश प्रीत्युत्पादक हतो अेटवे के ते अतिधार्मिक हतो अेधी प्रीतिकर अने सर्वज्ञ अनाशङ्कनीय हतो. चतुर्दशी वगेरे आरे आर पर्वतिथिओमां ते अहोरात्र पौषध करतो हतो प्रासुक अेषणीय अचित्त अने साधुजन कल्पनीय अेवा अशनपान वगेरे इप आर प्रकारना आहारथी पीठ, फलक, शय्या, अने संस्तारकथी वस्त्र, प्रतिग्रह-भक्तपान वगेरे पात्र, कम्बल अने पादप्रोच्छनार्थ वस्त्रथी अेके द्रव्य निष्पादिन भैषज्यथी ते श्रमण निर्ग्रन्थेने प्रतिलाभित करतो हतो. आ भभाणे धक्षां शीलव्रतोधी-स्थूल प्राणातिपात विरमण वगेरेधी, दिग्ब्रत वगेरे शुभ्रवतोधी, मिथ्यास्व निवर्तनइप विरमणधी,

दीनि पञ्च, गुणाः=गुणव्रतानि-दिग्रतादीनि, विरमणं=मिथ्यात्वा निवृत्तं नम्, प्रत्याख्यानं=पूर्वदिनेषु हरितकायादीनां परित्यागः, पौषधोपवासः=चतुर्दश्यादिपर्वतिथिषु आहारत्यागः, एषामितरेतरयोगद्वन्द्वः. तैश्च आत्मानं भावयन्=वासयन्, यानि सप्त=श्रावस्थां नगर्यां राजकार्याणि च यावद् राजव्यवहाराश्च तानि सर्वाणि जितशत्रुणा राज्ञा स्वाद्धं स्वयमेव प्रत्युपेक्षमाणः प्रत्युपेक्षमाणः=मुहुर्मुहुर्हरवलाकयन्-विहरान् ॥सू० ११३॥

मूलम्—तएणं से जियसत्तू राया अण्णयां कयाइ महत्थं जाव

पाहुड सज्जेइ, सज्जित्ता चित्तं सारहिं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी गच्छहि णं तुमं चित्ता ! मेयं वियान् यरिं, पएां सस्त रन्नो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि, मम पाउग्गहणं जहा भणियं अविहमसं-दिद्धं वयणं विन्नवेहित्तिकट्टु विसज्जिए । तएणं से चित्ते सारहा जियसत्तुणा रन्ना विसज्जिए समाणे त महत्थं जाव गिण्हइ, जिय-सत्तुस्स रण्णो अंतियोओ पडिणिकखमइ, सावत्थीए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, जेणेव रा ग्गमोगाढे आवासे, तेणेव उवाग-च्छइ, तं महत्थं जाव ठवेइ, णहाए जाव सरीरे सकोरिटमह्छदामेणं छत्तणं धरिज्जमाणेणं महया भडचडगरविदपरिक्खित्ते पायचारबिहारेण महया पुरिसवग्गुरापपरिक्खित्ते र मग्गमोगाढाओ आवासाओ निग्गच्छइ, सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, जेणेव कोट्टुए

निवृत्तं नम् रूप विरमणं से, पूर्वदिनों में हरितकायादिकों के परित्याग से, चतुर्दश्यादिपर्वतिथियों में आहारत्याग से आत्मा को वासित करता हुआ वह श्रीवस्ती नगरी में श्रितने भी राजकार्य थे यावत्-राजव्यवहार थे उन्मुख का जितशत्रु राजा के साथ स्वतः बार बार निरीक्षण करता हुआ रहने लगा ॥सू० ११३॥

पूर्वदिनों दिवसोंमें हरितकाय नगरीना परित्यागथी, चतुर्दशी वगैरे तिथियोंमें आहार त्यागथी आत्मान वासित करती, ते श्रीवस्ती नगरीमा नेटवा राजकार्यो हुती थावत् राजव्यवहार हता ते जितशत्रु निरयन्तु राजनी, साथे शोते, बारबार निरीक्षण करतो रहेवा हाथो ॥सू०-११३॥

चेइए जेणेव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिकुमारसमणस्स
 अंतए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टु जाव उट्टाए जाव एवं वयासी—
 एवं खलु अ भंते ! जियसत्तुणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव
 उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए, तं गच्छामि णं अह भंते ! सेयंविद्य
 नयरि । पासादीया णं भंते ! सेयंविद्या णयरी, एवं दरिसणिज्जा
 णं भंते ! सेयंविद्या णयरी, अभिरूवा णं भंते ! सेयंविद्या णयरी
 पडिरूवा णं भंते ! सेयंविद्या णयरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे
 सेयंविद्यं णयरि ॥सू० ११४॥

छाया—ततः खलु स जितशत्रू राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्
 मोभृत सज्जयति, चित्र सारथिं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् गच्छ
 खलु त्व चित्र ! श्वेतविका नगरीम्. प्रदेशिनो राज्ञ इदं महार्थं यावत्
 प्राभृतम् उपनय, मम पादग्रहण यथा भणितम् अचितयम् असन्दिग्धम्, वचन

‘तएणं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से) इसके बाद उम (जियसत्तू राया) जितशत्रु राजाने
 (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (महत्थं जाव पाहुइं सज्जेइ) महाप
 योजनसाधक यावत् प्राभृत को सजाया, (सज्जित्ता चित्तं सारथिं सहावेइ)
 सजाकर फिर उसने चित्र सारथि को बुलाया. (सहावित्ता एवं वयासी)
 बुलाकर उससे ऐसा कहा—(गच्छहि ण तुमं चित्ता । सेयं विद्या नयरिं पए
 एसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव पाहुइं उवणेहि) हे चित्र ! तुम् जाओ और
 श्वेताधिका नगरी में प्रदेशी राजा के पास इस महाप्रयोजन साधक यावत्

‘तएणं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से) तार पछी ते (जियसत्तू राया) जितशत्रु राजाने (अन्नया
 कयाइ) डोड ओड वधते (महत्थं जाव पाहुइं सज्जेइ) महाप्रयोजन साधक
 यावत् बेट (प्राभृत) तैयर की (सज्जित्ता चित्तं सारथिं सहावेइ) तैयार करीने
 तेले चित्र सारथीने बोलावये (सहावित्ता एवं वयासी) बोलावैने तेले आ प्रमाणे कहुं
 (गच्छहि ण तुमं चित्ता । सेयं विद्या नयरिं पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव
 पाहुइं उवणेहि) हे चित्र ! तमे श्वेतविका नगरीमे प्रदेशी राजा के पास

विज्ञापयेति कृत्वा विसर्जितः । ततः खलु स चित्रः सारथिर्जितशत्रुणा राज्ञा विमर्जित सन् तत् महार्थं यावद् गृह्णाति, जितशत्रो राज्ञोऽन्तिकत् प्रतिनिष्क्रामति, श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निगच्छति, यत्रैव राजमार्गं मवगाढ आवासः, तत्रैव उपागच्छति, तन्महार्थं यावत् स्थापयति, स्नातो यावच्छरीरः सकोरण्टमाल्यदाग्ना छत्रेण ध्रियमाणेन महाभटचटकरवृन्दपरि-
श्रितः पादचारविहारेण महापुरुषवागुरापरिक्षिप्तो राजमार्गमवगाढान् आवा

प्राभृत को ले जाओ (मम पाउगगहण जहा भणियं अविहमस दिद्ध वयणं विन्नवेहि त्तिकट्टु विमज्जिए) और उनसे मेरा प्रणाम कहो, तथा मेरी और से यथोक्त अविनय असंदिग्ध वचन कहो, इस प्रकार कह कर उसे विसर्जित कर दिया. (तएणं से चित्तो सारही जियसट्टुणा रण्णा विसज्जिए समाणे त महत्थं जाव गिण्हइ-जियसट्टुस्स रण्णो अंतियाओ-पडिनिक्खमइ) इसके बाद जितशत्रु राजा द्वारा विमर्जित किये गये चित्र सारथि ने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत को उठा लिया और जितशत्रु राजा के पास से चला आया. (सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्झेणं निगगच्छइ) एवं श्रावस्ती नगरी के ठीक बीचों बीच के मार्ग से होकर निकला (जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) निकलकर वह जहां राजमार्ग पर स्थित आवासस्थान था, वहां पर आया (त महत्थं जाव ठवेइ) वहां आकरके उसने उस प्राभृत को एक ओर रख दिया. (ण्हाए जाव सरीरे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तणं धरिज्जमाणेणं महया भटचट्टगरविंद-

महाप्रयोजन साधक यावत् वेट वट्ठं ज्ञेयो.) (मम पाउगगहण जहा भणियं अविहमस दिद्ध वयणं विन्नवेहित्तिकट्टु विसज्जिए) अने तेभने भारा प्रभुभ कहेथे। अने भासवती यथोक्त अविनय असंदिग्ध वचन कहेथे। (त्तिकट्टु विसज्जिए) आ प्रभावे कहीने तेने त्याथी ज्ञानी आज्ञा कथी. (तएणं से चित्तो सारही जिय सट्टुणा रण्णा विसज्जिए समाणे त महत्थं जाव गिण्हइ जियसट्टुस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ) त्यारपणी जितशत्रु राजा पासेथी आज्ञापित थधने ते चित्र सारथीअने ते महाप्रयोजन साधक यावत् वेटने वट्ठं वीधी अने जितशत्रु राजा पासेथी आवतो रथो (सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्झेणं निगगच्छइ) अने श्रावस्ती नगरीना अशेअशे मध्यभागंथी थधने (जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) ते ज्थां शब्भागं पर पोताट्टुं निवासस्थान इत्तु त्यां आये। (तं महत्थं ठवेइ) त्या आवीने तेणे ते वेटने अेक वरुक् भूही वीधी (ण्हाए सरीरे सकोरिं दामे णं छत्तणं धरिज्जमाणे णं महया महया

सान् निर्गच्छति, श्रावस्त्या नगर्या मध्य मध्येन निर्गच्छति
यत्रैव कोष्टक. चैत्यं यत्रैव केशी कुमारश्रमणः तत्रैव
उपागच्छति, केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके यमं श्रुत्वा हृष्ट यावत् उत्थया
यावदेवमवादीन-एवं खलु अहं भदन्त ! जितश्रेणा राज्ञा प्रदर्शिते राज्ञे

परिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरमसगुरापरिक्लिप्ते रायमगमोगाहाओ
आवासाओ निर्गच्छद्) स्नान क्रिया यावत् बहुमूल्यवेश एव अलम्भावाले
आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किया, पश्चात् छत्रधारी द्वारा ताने
पये एवं कोरंटपुष्पों की माला से विभूषित ऐसे छत्र से युक्त हुआ वह
चित्र सारथि विशाल भटों के विस्तृत समूह से युक्त होकर उस राजमार्ग
स्थित आवास से पैदल ही निकला साथ में विशाल जनमेदिनी भी थी
(सावस्थीए नयरीए मङ्गल मङ्गलेण निर्गच्छद्) इन सब से घिरा वह चित्र
सारथि श्रावस्ती नगरीके बीचों बीच मार्ग से होकर चला (जेणेव कोष्टक
वेष्टए जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छद्) चलतेर वह वहा पहुंचा जहां
कोष्टक चैत्य और उसमें भी जहा केशिकुमारश्रमण थे (केशिकुमार-
समणस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म इद्वुद्व जाव उट्टाए एवं वयासी
वहां पहुंचकर उसने केशिकुमार श्रमण से धर्मका उपदेश सुना और उसे
हृदय में धारण किया सुनकर और हृदय में धारण कर वह आनंद से
पफुल्लित बन गया, और संतुष्ट चित्त हो गया यावत् उसका हृदय प्रमोद से

अहं बहगरविदपरिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरिस वगुरायरिक्लिप्ते
रायमगमोगाहाओ आवासाओ निर्गच्छद्) स्नान कथुं यावत् बहु किंभतवाणा अने
अल्पभारवाणां आभूषणो वडे तेष्णे पोताना शरीरने अलंकृत कथुं. त्यारपछी कोरंट
पुष्प वडे शोभतुं छत्र छत्रधारीयो वडे तेना उपर ताणुवाभां आवुं. आ प्रभाणुं ते
चित्र सारथि विशाल भटोना समुदायथी परिवेष्टित थयने ते राजमार्गपर-स्थित
आवास स्थानथी पगपाणां च स्वाना थयो. तेनी साथे विशाल मानवसमूह पणु हुतो.
(सावस्थीए नयरीए मङ्गल मङ्गलेण निर्गच्छद्) आ सबथी वीटणाथेवे. ते
सारथि श्रावस्ती नगरीना मध्यभाग पर थयने नीकण्ये. (जेणेव कोष्टक वेष्टए
जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छद्) नीकणीने ते न्या कोष्टक चैत्य
हुतुं अने तेमा पणु न्या केशिकुमार श्रमणु हुता त्या पडोअ्ये (केशिकुमार-
समणस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म इद्वुद्व जाव उट्टाए जाव एवं वयासी)
त्या पडोअ्येने तेष्णे केशिकुमार श्रमणु पासोथी धर्मोपदेश साभण्ये अने तेने हृदयमा
धारणु कथ्ये. धर्मोपदेश साभणीने अने हृदयमा धारणु करीने ते आनंदविभार थय
गथे अने संतुष्ट चित्तवाणे थय गथे. यावत् तेह हृदय प्रसन्नताथी उभराउ गथ

इदं महार्थं यावत् उपनय इति कृत्वा विसर्जितः तद् गच्छामि खलु अहं भदन्त ! श्वेतविकां नगरीम् । प्रामादीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी एवं दर्शनीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, अभिरूपा खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, प्रतिरूपा खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, ममवमारत खलु भदन्त ! युयं श्वेतविकां नगरीम् ॥श्रु० ११४॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—

ततः खलु म जितशत्रु राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्-यावत् तपदेन ‘महार्थं महाहं विपुलं राजाहं’ इति स ग्रहते अर्थस्त्वेषां पूर्ववद्

मत्त होकर खल्लने लगा यावत् वह स्वतः उठा और उठकर यावत् उसने इस प्रकार कहा—(एवं खलु अहं मते ! जियसत्तुणा पपसिस्स रन्नो इम महत्थं जाव उचणेहि ति कहुं विसज्जिए तं गच्छामि ण अहं मते ! सेयं वियं नयरिं) हे भदन्त ! मुझे जितशत्रु राजाने ‘प्रदेशी राजा के पास है चित्र ! तुम इस महापयोजन साधक यावत् प्राभृत को ले जाओ’ ऐसा कह कर विरजित किया है सो हे भदन्त ! मैं श्वेतांबिका नगरी को जा रहा हूँ (पासाईया णं मंते ! सेयं विया नयरी, एव दरिसणिज्जाणं मंते ! सेयं विया नयरी, अभिरूवाणं मते ! सेयं विया नयरी, पडिरूवाणं मंते ! सेयं विया णयरी, समोसरह णं मते ! तुन्मे सेयं विय नयरिं) हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रामादीया है—हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी दर्शनीया है, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी अभिरूप है, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रतिरूपा है अतः हे भदन्त ! आप उस श्वेतांबिका नगरी में पधारें ।

यावत् ते अते उद्ये थये अने उद्ये थधने यावत् तेद्ये आ प्रभाद्ये कहुं—(एवं खलु अहं मते ! जियसत्तुणा पपसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव उचणेहि ति कहुं विसज्जिए तं गच्छामि ण अहं मते ! सेयं वियं नयरिं) हे भदन्त ! अने जितशत्रु राजाने प्रदेशी राजानी पाथे आभ कहुंनि अथा आत्ता करी छे छे छे अत्र तमे आ महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृतने प्रदेशीराज पासे बंध आवे’ तो हे भदन्त ! हे श्वेतांबिका नगरी तस्स जेधं रद्धो छे. (पासाईया णं मंते ! सेयं विया नयरी एवं दरिसणिज्जाणं मंते ! सेयं विया नयरी, अभिरूवाणं मते ! सेयं विया नगरी, पडिरूवाणं मते ! सेयं विया णयरी, समोसरह णं मते ! तुन्मे सेयं वियं नगरिं) हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी अभिरूपा छे, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रतिरूपा छे. भाटे हे भदन्त ! तमे श्वेतांबिका नगरीमां पधारें ।

बोध्य इति, एतादृशं मज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथिं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत=उक्तवान्-त्वं खलु हे
चित्र ! श्वेतविकां नगरीं गच्छ, प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं महार्थं यावत्
प्राभृतम् उपनय=प्रापय, मम=मत्कर्तृक पादग्रहणं=प्रणामं यथा भणित=यथो-
क्तम्-अवितथम्=यथार्थम् असंदिग्धम्=सुस्पष्टं वचनं च विज्ञापय=निवेदय,
इति कृत्वा=इत्युक्त्वा विसर्जितः । तत् खलु स चित्रः सारथिः जितशत्रुणा
राज्ञा विसर्जितः=प्रदेशिराजसमीपे गन्तुम् आगतः सन् महार्थं यावत्=महा-
र्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति जितशत्रो राज्ञः अन्तिकात्=समीपात्
प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्त्या नगर्यां मध्यमध्येन निर्गच्छति,
निर्गत्य यत्रैव राजमार्गमवगाढः=राजमार्गस्थित आवासः=प्रासादः तत्रैव उपा-
गच्छति, तत् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं स्थापयति,
स्थापयित्वा स्नातो यावच्छरीरः-‘यावच्छरीर’-पदेन-‘कृतवलिकर्मा कृतकौतुक-
मङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घामरणाळकृत’ इति संगृह्यते, अर्थस्त्वेवार्थं
पूर्ववद् बोध्यः, तथा-सकोरष्टमाल्यदान्ना छत्रेण ध्रियमाणेन युक्तः महा-
भटचटकरवृन्दपरिषिप्तो महापुरुषवागुरापारिषिप्तश्च सन् राजमार्गमवगाढात्
आवासात् निर्गच्छति । ‘सकोरष्ट’-इत्यादि-पदानामर्थः पूर्ववद् बोध्यः ।
ततः श्रावस्त्या नगर्यां मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं

टीकार्थं—इस सूत्र का मूलार्थ के ही अनुरूप है,—नवरं—‘महत्स्य जाव पाहुड’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘महत्स्य’, महाहं, विपुलं, राजाहं’ इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों का अर्थ यथास्थान लिखा जा चुका है—अतः वैसा ही समझना चाहिये, ‘ह्लाए जाव सरीरे’ में जो यावत् पद आया है—उससे ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घामरणाळकृत’ इन पूर्वोक्त पदों का संग्रह हुआ है, इनका अर्थ पहिले के जैसा ही जानना चाहिये, ‘इडु जाव’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘तुष्टचिदानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौ-

टीकार्थं—आ सूत्रेण टीकार्थं प्रमाद्ये ७ छे, “नवरं महत्स्य जाव पाहुड”
भा ७ यावत् पद छे तेथी ‘महत्स्य’ ‘महाहं’, ‘विपुलं’ ‘राजाहं’” आ पदोना संश्रद्ध
थये छे आ पदोना अर्थ यथास्थाने स्पष्ट करवाभा आये छे, “ह्लाए जाव सरीरे”
भा ७ यावत् पद तेथी ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहा-
र्घामरणाळकृत’ आ पदोना संश्रद्ध थये छे, आ पदोना अर्थ पहिलानी जेभ ७
समज्जवे लोछये, ‘इडु जाव’ भा ७ यावत् पद छे तेथी “तुष्टचिदानन्दितः,

इदं महार्थं यावत् उपनय इति कृत्वा विसर्जितः तद् गच्छामि खलु अहं
भदन्त ! श्वेतविकां नगरीम् । प्रासादीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी
एवं दक्षिणीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, अभिरूपा खलु भदन्त !
श्वेतविका नगरी, पतिरूपा खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, पमवमरत खलु
भदन्त ! यूयं श्वेतविकां नगरीम् ॥श्रु० ११४॥

टीका—‘तएण’ से’ इत्यादि—

ततः खलु म जितशत्रू राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्—याव
त्पदेन ‘महार्थं’ महाहं विपुलं राजाहंम्’ इति सग्रहते अर्थस्त्वेपां पूर्ववद्

મત્ત ઠોકર લછલને લગા યાવત્ ત્વહ સ્વતઃ ઊઠા ઔર ઊઠકર યાવત્ ડસને
इस प्रकार कहा—(एवं खलु अहं मंते ! जियसत्तिणा पएसिस्स रन्नो इमं
महत्थं जाव उवणेहि ति कट्टु विसञ्जिए तं गच्छामि णं अहं मंते ! सेयं-
वियं नयरिं) हे भदन्त ! सुद्धो जितशत्रु राजाने ‘प्रदेशी राजा के पास हे
चित्र ! तुम इस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत को ले जाओ’ ऐसा
कह कर विसर्जित किया है सो हे भदन्त ! मैं श्वेतांविका नगरी को जा
रहा हूँ (पासाईया ण मंते ! सेयंविया नयरी, एवं दरिसणिज्जाणं मंते !
सेयंविया नयरी, अभिरूवाणं मंते ! सेयंविया नयरी, पडिरूवाणं मंते !
सेयंविया णयरी, समोसरह णं मंते ! तुन्मे सेयं विय नयरिं) हे भदन्त ! श्वेतांविका
नगरी प्रासादीया है—हे भदन्त ! श्वेतांविका नगरी दक्षिणीया है, हे भदन्त !
श्वेतांविका नगरी अभिरूप है, हे भदन्त ! श्वेतांविका नगरी पतिरूपा है
: हे भदन्त ! आप उस श्वेतांविका नगरी में पधारें ।

યાવત્ તે ભતે ઉભે થયે અને ઉભે થઈને યાવત્ તેણે આ પ્રમાણે કહ્યું—(एवं खलु
अहं मंते ! जियसत्तिणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव उवणेहि ति कट्टु
विसञ्जिए तं गच्छामिण अहं मंते ! सेयं वियं नयरिं) हे भदंत ! भने (जितशत्रु
राजाने प्रदेशी राजानी पाधे आभ कट्टीने जवा आशा करी छे के छे चित्र तमे आ
महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृतने प्रदेशीराज पासे लध लवो’ तो हे भदंत !
‘हुं श्वेतांविका नगरी तरक्ष लेध रथो छुं. (पासाईया णं मंते ! सेयंविया नयरी
एवं दरिसणिज्जा णं मंते ! सेयंविया नयरी, अभिरूवाणं मंते ! सेयंविया
नगरी, पडिरूवाणं मंते ! सेयंविया णयरी, समोसरह णं मंते ! तुन्मे
मेयं वियं नगरिं) हे भदंत ! श्वेतांविका नगरी अभिरूपा छे, हे भदंत ! श्वेता-
ंविका नगरी प्रतिज्ञा छे. माटे हे भदंत ! तमे श्वेतांविका नगरीमां पधारो.

बोध्य इति, एतादृशं सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथिं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत=उक्तवान्--त्वं खलु हे
चित्र ! श्वेतविकां नगरीं गच्छ, प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं महार्थं यावत्
प्राभृतम् उपनय=प्रापय, मम=मत्कर्तृकं पादग्रहणं=प्रणामं यथा भणित=यथो-
क्तम्-अवितथम्=यथार्थम् असंदिग्धम्=सुस्पष्टं वचनं च विज्ञापय=निवेदय,
इति कृत्वा=इत्युक्त्वा विसर्जितः । तत खलु स चित्रः सारथिः जितञ्जुणा
राज्ञा विसर्जितः=प्रदेशिराजसमीपे गन्तुम् आह्वतः सन् महार्थं यावत्=महा-
र्थस्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति जितशत्रो राज्ञः अन्तिकात्=समीपात्
प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति,
निर्गत्य यत्रैव राजमार्गमवगाढः=राजमार्गस्थितवा वासः=प्रासादः तत्रैव उपा-
गच्छति, तत् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं स्थापयति,
स्थापयित्वा स्नातो यावच्छरीरः-‘यावच्छरीर’-पदेन ‘कृतवलिकर्मा कृतकौतुक-
मगलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घाभरणालंकृतशरीरः’ इति संशुद्ध्यते, अर्थस्त्वेर्वा
पूर्ववद् बोध्यः, तथा-सकोरण्टमाल्यदान्ना छत्रेण ध्रियमाणेन युक्तः महा-
भटचक्ररवन्दपरिसिप्तो महापुरुषवागुरापरिसिप्तश्च सन् राजमार्गमवगाढात्
आवासात् निर्गच्छति । ‘सकोरण्ट’-इत्यादि-पदानामर्थः पूर्ववद् बोध्यः ।
ततः श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं

टीकार्थं--इस सूत्र का मूलार्थ के ही अनुरूप है,--नवरं-‘महत्तयं जाव पाहुह’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘महत्तयं, महार्हं, विपुलं, राजार्हं’ इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों का अर्थ यथास्थान लिखा जा चुका है--अतः वैसा ही समझना चाहिये, ‘हाए जाव सरीरे’ में जो यावत् पद आया है--उससे ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकम गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्घाभरणालंकृत’ इन पूर्वोक्त पदों का संग्रह हुआ है, इनका अर्थ पहिले के जैसा ही जानना चाहिये, इदं जाव’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘तुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौ-

टीकार्थं--आ सूत्रेण टीकार्थं प्रभाष्ये ७ छे, “नवरं महत्तयं जाव पाहुह”
भा ७ यावत् पद छे तेथी ‘महत्तयं’ ‘महार्हं’, ‘विपुलं’ ‘राजाहं’” आ पदोने संग्रह
थये छे आ पदोने अर्थ यथास्थाने स्पष्ट करवाभा आये छे, ‘हाए जाव सरीरे’
भा ७ यावत् पद तेथी ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकम गलप्रायश्चित्तः अल्पमहा-
र्घाभरणालंकृत’ आ पदोने संग्रह थये छे, आ पदोने अर्थ पहिलानी जेभ ७
समजवे आयेजे, “इदं जाव’ भा ७ यावत् पद छे तेथी “तुष्टचित्तानन्दितः,

यत्रैव केशीकुमारश्रमणस्तत्रैव उपागच्छति, केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके
 =समीपे धर्मं श्रुत्वा=सामान्यत आकर्ष्य. निशम्य=‘वशोपनो हृद्यवधार्य हृष्टः
 यावत्-हृष्टतृष्टचित्तानन्तःप्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो-हर्षवशविशर्षद्वयः अर्थ
 स्त्वेषां पूर्ववद् धोऽयः, उत्थया=उत्थानशक्त्या यावत् यावत्पदेन-‘उत्तिष्ठति, उत्थाय
 केशिन कुमारश्रमणं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, वन्दते न नमस्यति, वन्दित्वा
 नमस्यित्वा’-इति मग्राह्यम्, एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-
 ‘एव खलु अहं भदन्त ! जितशत्रुणा राज्ञा’ ‘प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं
 महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशोषणविशिष्टं प्राभृतम् उपनय’ इति कृत्वा=
 हृत्युत्तवा विसर्जितः । तत्=तस्मात् कारणात् खलु भदन्त ! गच्छाम्यह
 श्वेतविकां नगरीम् । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु प्रासादीया=दर्शक-
 जनानां मनःप्रमोदजनिकाऽस्ति ! एवम्=तथा हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी
 खलु दर्शनीया=प्रोक्षणीयाऽस्ति । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु अभि-
 रूपा=सर्वकालरमणीयाऽस्ति । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु प्रति-
 रूपा=सर्वोत्तमाऽस्ति । अतो हे भदन्त ! यूयं श्वेतविकां नगरीं समवसरत=
 आगच्छत-इति ॥ सू० ११४ ॥

मनस्यितो, हर्षवशविसर्षद्वहृदयः’ इन पदों का संग्रह हुआ है इनका अर्थ
 षहिछे जैसा ही जानना चाहिये, ‘उद्घाए जाव’ में आगत यावत्पद से उचि-
 षठति, उत्थाय केशिन कुमारश्रमणं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिण-करोति,
 वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा’ इस पाठ का संग्रह हुआ है।
 दर्शकजनों के मन में प्रमोदजनक है यह प्रासादीय शब्द का अर्थ है।
 देखने योग्य है. यह दर्शनीय शब्द का अर्थ है-सर्वकाल रमणीय है वह
 अभिरूप शब्द का अर्थ है-सर्वोत्तम है यह प्रतिरूप शब्द का अर्थ है। सू० ११४।

प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितो, हर्षवश विसर्षद्वहृदयः’ आ पदोने। संग्रह
 थये छ आ पदोने। अर्थ पहेलानी जेभज समजवे। जेधजे ‘उद्घाए जाव’ मां
 जे यावत् पद आवेलु छ तेथी ‘उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिन कुमारश्रमणं त्रिकृत्व
 आदक्षिण प्रदक्षिणं करोति वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा’ आ पाठने।
 संग्रह थये छ दर्शक भाटे जे प्रमोदजनक छ-जेवे प्रासादीय शब्दने अर्थ थाय छ
 दर्शनीय शब्दने अर्थ छ. जेवा थोअ. अभिरूप शब्दने अर्थ थाय छ जे सर्व-
 क्षण रमणीय छ ते प्रतिरूप शब्दने अर्थ सर्वोत्तम थाय छ ॥सू० ११४॥

मूलम्—तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एवं
 बुत्ते समाणे चित्तस्स प्पारहिस्स एयमट्ठं णो आढाड्ढ णो परिजाणाड्ढ
 तुसिणीए संचिट्ठइ । तएण से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं दो-
 च्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते । जियसत्तुणा रण्णा
 पएसिस्स रण्णो इमं महत्थ जाव विसज्जिए, तं चेव जाव समो-
 सरह णं भंते ! तुब्भे सेयंवियं णयरिं । तएणं से केसीकुमारसमणे
 चित्तेण सारहिणा दोच्चंपि तच्चंपि एव बुत्ते समाणे चित्तं सारहिं
 एव वयासी—चित्ता । से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्हो
 भासे जाव पडिरूवे । से णूणं चित्ता ! से वणसंडे बहूणं दुपयच्च-
 उप्पयमियपसुपक्खीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ? हता ! अभिग-
 मणिज्ज । तंसि च णं चित्ता ! वणसंडंसि बह्वे भिल्लूगा नाम
 पावसउणा परिवसत्ति, जेणं तेसिं बहूण दुपयच्चउप्पयमियपसु-
 पक्खिसरीसिवाणं ठियाणं चेव संससोणियं आहारैति । से णूणं
 चित्ता ! से वणसंडे तेसिं णं बहूणं दुपय जाव सरीसिवाणं अभि-
 गमणिज्जे ? णो इणट्ठे समट्ठे ! कम्हा ? भंते ! सोवसग्गे । एवामेव
 चित्ता ! तुज्झंपि सेयंवियाए णयरीए पएसी नामं राया परिवसइ,
 अहम्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तइ । तं कहंणं अहं
 चित्ता ! सेयंवियाए नयरीए समोसरिस्साभि ? ॥सू० ११५॥

छाया—ततःखलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना एवमुक्तः
 सन चित्रस्य सारथेरेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।
 ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि

एवमवादीत्-एवं खलु अहं भदन्त ! जितशत्रुणा राज्ञा प्रदेशिनो राज-
इदं महार्थं यावद् दिसर्जितः, तदेव यावत् स्मवसरत खलु भदन्त! यूयं श्वेत-
विकां नगरीम् । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना द्वितीय-

‘तएण से केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण) इसके बाद (से केसीकुमारसमणे) उन केशिकुमार
श्रमणसे जब चित्र सारथी ने ऐसा कहा—नव (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र
सारथी का (एयमट्ठं णो अढाह, णो परिजाणाह, तुसिणीए स चिट्ठह) इस
अर्थको आदर नहीं दिया, उसे विचार का विषय नहीं बनाया. किन्तु
चुपचाप ही रहे (तएण से चित्ते सारही केसिकुमारसमण दोच्च पि तच्च पि
एवं वयासी) इसके बाद चित्र सारथीने पुनःदुबारा भी और विचारा भी
उन केशिकुमारश्रमण से ऐसा ही कहा कि (एव खलु अहं भते ! जिय-
सत्तुणा रण्णा पयेसिस्स रणो इमं महत्थं जाव विसज्जिए तं चेवं जाव
समोसरह णं भते ! तुब्भे सेयवियं नयरिं) हे भदन्त ! जितशत्रु राजा
के द्वारा मैं ऐसा कहा गया हूँ कि हे चित्र ! तुम इस महार्थादि विशेष-
णों वाले प्राप्त (भेट) को लेकर प्रदेशीराजा के पास जाओ सो मैं वहाँ जा
रहा हूँ—वह श्वेतांबिका नगरी दर्शनीय आदि विशेषणों वाली है अतः वहाँ
पधारे (तएण से केसीकुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्च पि तच्च पि एव

‘त एणं से केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एण) त्पार पछी (से केसीकुमारसमणे) ते केशिकुमार
श्रमणने न्यारे चित्रसारथीये आ प्रभाण्णे कळु त्पारे (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र
सारथिना (एयमट्ठं णो अढाह, णो परिजाणाह, तुसिणीए स चिट्ठह) आ अर्थने
आदर आण्णे नहि तेना कथन पर केळ पळु नतनेो विचार कर्यो नहि, तेआ आ
अधुं सावणीने भोन न रद्ध. (तएण से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं
दोच्च पि तच्च पि एव वयासी) त्पार आह चित्र सारथीये थील वधत अने
थील वधत पळु केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे न कळु के (एव खलु अहं भते !
जियसत्तुणा रण्णा पयसिस्स रणो इमं महत्थं जाव विसज्जिए तं चेवं
जाव समोसरह णं भते ! तुब्भे सेयवियं नयरिं) हे भदन्त ! जितशत्रु
राज्याने अने आ प्रभाण्णे कळु छे के हे चित्र ! तमे आ महार्थादि विशेषणोवाणी
केटने लधने प्रदेशी राजानी पासो लवे. जेथी हु त्या नळ रद्धोछ ते श्वेतांबिका
नगरी दर्शनीय वगेरे विशेषणोवाणी छे तेथी तमे पळु त्या वधारे. (त एणं से
केसिकुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्च पि तच्च पि एवंवुत्ते समाणे

मपि तृतीयमपि एवमुक्तः सन् चित्र सारथिम् एवमत्रादीत्-चित्र ! स यथा-
 नामको वनषण्डः स्यात् कृष्णः कृष्णावभासो यावत्परतिरूपः । अथ नून चित्र !
 स वनषण्डो बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम् अभिगमनीयः ?
 इन्त ! अभिगमनीयः । तस्मिंश्च खलु चित्र ! वनषण्डे बहवो भिल्लका नाम
 णपशाकृनिकाः परिवसन्ति । ये खलु बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरी
 सृपाणां स्थितानामेव मांसशोणितम् आहारयन्ति । अथ नूनं चित्र ! स

बुद्धो समाणे चितं सारहिं एवं वयामी) तव इस प्रकार दुनारा तिवारा भी चित्र
 सारथी केद्वारा विनन्ति किये जानेपर केशिकुमार श्रमणने उन चित्र सारथी से
 ऐसा कहा (चित्ता ! से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्होभासे जाव
 पडिरूवे) हे चित्र ! जैसे कोई एक वनषण्ड हो और वह कृष्ण-कृष्ण वर्णवाला
 हो, तथा कृष्ण जैसा दिखता हो (से णूणं चित्ता से वणसंडे बहूणं दुप-
 यचउप्पयमियपसुपवस्वीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे) तो हे चित्रो ! कहो वह
 अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु पक्षी और सरीसृप सर्प इन सबके गमन के योग्य
 होता है न ? (हृता अभिगमणिज्जे) हाँ भदन्त ! वह इनके गमन क
 योग्य होता है. (तस्मिंश्च णं चित्ता वणसंडसि बह्वे भिल्लगा पावसउणा
 परिवसन्ति) यदि उस वनषण्ड में हे चित्र ! अनेक पापिष्ठ भील लोग जो
 कि पारधी होते है रहते हैं (जे ण तेसिं बहूणं दुपयचउप्पयमियप-
 सुपविवस्वीसरीसिवाणं ठियाणं चैव मससोणियं आहारति) जो कि बहा रहे हुए
 उन बहूण से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के मांस शोणित

चितं सारहिं एवं वयासी) त्वारे ते प्रभाषे भील वषण्डे अने त्रील वषण्डे
 षण्डेही चित्रसारथिनी वात्ता साकणीने तेने आ प्रभाषे षण्डे (चित्ता ! से जहानामए
 वणसंडए सिया वण्हे किण्होभासे जाव पडिरूवे) हे चित्र ! अथ षण्डे वन-
 षण्डे होय अने ते वृष्यवर्ष्यवाणो होय, तेमए वृष्य वर्ष्यो वागतो होय (से णूणं
 चित्ता से वणसंडे बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपवस्वीसरीसिवाणं अभि-
 गमणिज्जे) तो हे चित्र ! षण्डे ते वन वष्या द्विपदो, चतुष्पदो, मृगो, पशुव्ये
 पक्षीव्यो अने सरीसृपो आ लधाना माटे गमन करवा येअ्य होय के नहि ?
 अभिगमणिज्जे) हाँ भदन्त ! ते तेमना माटे गमन येअ्य गच्छाय छे. (तस्मिंश्च
 णं चित्ता वणसंडसि बह्वे भिल्लगा पावसउणा परिवसन्ति) अने ते वनषण्डमा
 हे चित्र ! जे वष्या पापिष्ठ शिक्षारी भीलो रहेता होय (जे णं तेसिं बहूणं दुपय
 चउप्पयमियपसुपविवस्वीसरीसिवाणं ठियाणं चैव मससोणियं आहारति)
 अने तेज्यो त्या रहेनारा ते वष्या द्विपदो, चतुष्पदो, मृगो, पशुव्यो अने सरीसृपोना

वनषण्डस्तेषां खलु बहूनां द्विपद् यावत्-सरोमृपाणाप् अभिगमनीयः ? नो
अयमर्थः समर्थः । कस्मात् ? भदन्त ! सोपमर्ग ? एवमेव चित्र ! युष्मा-
कमपि श्वेतविकायां नगर्यां प्रदेशी नाम राजा परिव्रसति, अघार्मिको
यावत्, नो सम्यक्करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति । तत् कथं खलु अहं चित्र !
श्वेतविकाया नगर्यां समवसरिष्यामि ॥सू० ? १५॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—

ततः खलु स केशीकुमारभ्रमणः चित्रेण स्मारयिना एवम्=उक्त-
प्रकारेण उक्तः सन चित्रस्य सारथेः पतमर्थं=‘यूय श्वेतविकायां नगर्यां

का आहार करते हों, क्या ऐसी स्थिति में (से गूणं चित्ता ! से वण-
संढे तेसि बहूण दुपय जाव सरीसिघाण अभिगमणिज्जे ? हे चित्रे ! वह
वनषण्ड उन अनेक द्विपद् यावत्-रीसुपो के लिये अभिगमनीय हो सकता
है ? (णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह उनके लिये अभि-
गमनीय नहीं हो सकता है। (कम्हा) हे चित्र ! वह उनके लिये अभिग-
मनीय-प्रवेश के योग्य-क्यों नहीं हो सकता है ? (सोवसग्गे) क्यों कि हे
भदन्त ! वह वनषण्ड विघ्नसहित है। (एवामेव चित्ता ! तुज्झपि सेयवियाए
णयरीये पएसी नाम राया परिव्रसन्, अहम्मि ए जाव णो सम्मं कर्भरवृत्तिं
पवत्सइ—त क्कं चित्ता सेयवियाए नयरीए समोसरिस्सामि) इसी तरह से
हे चित्र ! तुम्हारे लिये श्वेतविका नगरी में प्रदेशी राजा रहता है वह
अघार्मिक है यावत् प्रजाजनों से कर-टेक्सलेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन
पोषण नहीं करता है। तो हे चित्र ! उस श्वेतविका नगरी में हम लोग कैसे आवे

भाम अने शोषितानो आहार करता होय तो शुं अेवी परिस्थितिमा (से गूण
चित्ता ! से वणसंढे तेसिं बहूण दुपय जाव सरिसिघाणं अभिगमणिज्जे ?)
हे चित्र ! ते वनषण्ड ते वण्डा द्विपदो यावत् सरिसुपो भाटे अभिगमनीय अर्थात्
विश्रब्धु करवा योग्य-कही शक्य ? (णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! अेवी स्थिति-
मा ते तेमना भाटे अभिगमनीय थं शक्ये तेम नथी (कम्हा) हे चित्र ! ते तेमना
भाटे अभिगमनीय-विश्रब्धु करवा योग्य-कम नथी ? (सोवसग्गे) कमके हे भदन्त !
ते वनषण्ड विघ्न सहित छे, (एवामेव चित्ता ! तुज्झपि सेयवियाए णयरीए
पएसीनाम राया परिव्रसइ, अहम्मि ए जाव णो सम्मं कर्भरवृत्तिं पवत्सइ
त्तं क्कं अहं चित्ता सेयवियाए नयरीए समोसरिस्सामि) आ प्रभाण्णे
अं हे चित्र ! तमारे भाटे श्वेतविका नगरीमा प्रदेशीराजं रहं छे ते अघार्मिक
छे यावत् प्रण पासेथी कर-टेक्स लधने पणु तेमत्तं पालन-रक्षणु सारी रीते करतो
नथी तो अेवी स्थितिमा हे श्वेतविका नगरीमा केवी रीते अं शक्यं छु ?

समवसरत'—इत्थ रूपम् अर्थम् नो आद्रियते=नो आदरविषयत्वेन हट्टिकरोति.
 अतएव--नो परिजानाति=विचारविषयत्वेन एतमर्थं न स्वीकरोति, नत
 एव तूष्णीकः=अवलम्बितमौनभावः सन् सन्तिष्ठते। ततः खलु स चित्रः
 सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि द्वित्रिवारम् एवम् अवादीत्
 -एवं खलु अह भदन्त । जितशत्रुणा राज्ञा-इत्यादि-समवसरत खलु भदन्त !
 यूयं श्वेतविकां नगरीम् इत्यन्तम् । वाक्यं पूर्वस्तत्रे गतम्-अयार्थस्तत एव
 बोध्यः-इति । ततः खलु केशीकुमारश्रमण. चित्रेण सारथिना द्वितीय-
 मपि तृतीयमपि=द्विदृत्वोऽपि त्रिकृत्वोऽपि एवमुक्तः सन् चित्रं सारथिम-
 एवं=षड्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-स यथानामको वनपण्डः स्यात्,
 कृष्णः=कृष्णवर्णः कृष्णावभासः-कृष्ण इव अवभासते न तु वस्तुतः कृष्ण-
 एव । यावत्-यावत्पदेन-नीलो नीलावभासो हरितो हरितावभासः शीतः
 शीतावभासः स्निग्धः स्निग्धावभासः तीव्रः तीव्रावभासः कृष्णः कृष्णच्छायो
 नीलो नीलच्छायो हरितो हरितच्छायः शीतः शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः
 तीव्रः तीव्रच्छायः एतत्प्रतिरुद्धच्छायो रभ्यो महामेघनिकुरम्भभूतः प्रासादीयो
 दर्शनीयः अमिरूपः' इति संग्राह्यम् । तथा-प्रतिरुपः। अर्थस्त्वेषामौपातिक-
 मूत्रस्यास्मत्कृतायां पोयूषवर्षिणीटीकायामवलोकनीयः। अथ नूनं चित्रं वनपण्डो

टीकार्थं इसका इस मूलार्थ के जैसा ही है-नवर- किण्होभासे जाव पडिरुवे'में आया हुआ यावत् पद से यहा 'नीलो, नीलावभासो, हरितो, हरितावभासः, शीतः, शीतावभासः स्निग्ध स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्रावभासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः, शीतः, शीतच्छायः, स्निग्ध. स्निग्धच्छायः. तीव्रः, तीव्रच्छायः, घन कटितकटच्छायो, रभ्यो, महामेघनिकुरम्भभूतः प्रासादीयो, दर्शनीयः अमिरूपः' यह पाठ संगृहीत हुआ है। इन पदों का अर्थ औपपातिकमूत्र की पोयूषवर्षिणी टीका में हमने स्पष्ट किया है अतः वहीं से जान लेना

टीकार्थं—आने। भूत्वाथं प्रभाषे ७ छे 'नवरं' 'किण्होभासे जाव पडिरुवे'
 भा ७ यावत् यह आवेक्षु छे तेथी अही "नीलो, नीलावभासो, हरितो,
 हरितावभासः, शीतः शीतावभासः, स्निग्धः, स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्राव
 भासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः, शीतः,
 शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः, तीव्रः तीव्रच्छायः, घनकटितकटच्छायो, रभ्यो,
 महामेघनिकुरम्भभूतः प्रासादीयो, दर्शनीयः, अमिरूपः"आ पाठने सग्रह थयो छे.
 भा पाठने अर्थ अने 'औपपातिक सूत्र'नी पोयूषवर्षिणी टीकाभा स्पष्ट कर्थो छे

बहूनां द्विद्वि चतुष्टयगण्य पञ्चिरोट्टागार द्विद्विद्विः पाण्ड्याख्यानाः, तेषाम् अभिगमनीयः=गन्तुं योग्यो भवेत्?, इत्थं केशिकुमारश्रमणस्य वचनं श्रुत्वा चित्रः प्राह-हन्त! अभिगमनीयः=गन्तुं योग्यो भवेत्स वनषण्ड इति पुनः केशिकुमारश्रमणः पृच्छति-हे चित्र! तस्मिन्= पूर्वोक्ते च खलु वनषण्डे बहवो भिल्लकाः=भिल्लजातीयः 'नाम' इति संभावनायां पापशाकुनिकाः= पापिष्ठाः व्याधाः परिव्रसन्ति, ये खलु तेषां बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशु-पक्षवतोसृगणां स्थितानामेव मामशोणितं=मांसानि शोणितानि च आहारयन्ति=मुञ्जते। अथ नूनं चित्र! स वनषण्डः तेषां खलु बहूनां द्विपद-यावत् सरोसृपाणाम् सर्पाणाम् अभिगमनीयो भवेत्? चित्रः प्राह-त्ययमर्थः=द्विपदादीनां तदनपवेशरूपाऽर्थः नो ममर्थः=न योग्यः, स वनषण्डस्तेषां प्रवेष्टुं न योग्य इति भावः। केशी पृच्छति-रुस्मात्=रुस्मात् कारणात् स वनषण्डः प्रवेष्टुं न योग्यः? चित्रः प्राह-हे भदन्त! स वनषण्डः=विघ्नसहितः। ततः केशी प्राह-हे चित्र! यथा स वनषण्डस्तेषां द्विपदादीनां प्रवेष्टुं न योग्यः, एवमेव= अनेन प्रकारेणैव श्वेतविका नगर्याणि प्रवेष्टुं न योग्या। तत्र श्वेतविकायां नगर्यां युष्माकं प्रदेशो नाम राजा परिव्रसति, अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति। यावत्पदेन-अधर्मिष्ठः अधर्मानुगः' इत्यादि पदानि संग्राह्याणि, तानि च-एकशतमक्षत्रे विलोकनीयानि। अर्थोऽपि तत्रैव विलोकनीयः। तत् कथं खलु अहं चित्र! श्वेतविकायां नगर्यां समवसरि-त्यामि=आगमिष्यामि? ॥ सू० ११५ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिं कुगारसमणं एवं वयासी किं णं भते! तुब्भ पणसिणा रन्ना कायव्वं? अत्थि णं भते! सेय-वियाए नगरीए अन्ने बहवे ईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिइयो जे णं देवाणुप्पियं वंदिस्संति जाव पज्जुवासिस्सति विउलं असणं पाणं

चाहिये, 'अहम्मिए जाव' में आया हुआ यावत् पदसे 'अधर्मिष्ठः अधर्मानुगः' इत्यादि पदों का संग्रह किया गया है। इन पदोंका अर्थ १०१ सूत्र में लिखा गया है ॥ सू० ११५ ॥

अथी निशासुओओ त्याथी अर्थं अथी देवो, ओष्ठम्। "अहम्मिए जाव" भा ७ यावत् पद छ तेथी "अधर्मिष्ठः, अधर्मानुगः" वगेरे पढोने स अर्थ थये छ। आ पढोने अर्थ १०१भा सूत्रभा स्पष्ट क्त्वाभा आओये छ ॥११५॥

खाइमं साइमं पांडलाभरसाते, पाडिहारिणं पीठलगसेजासंफ-
थारणं उवनिमतिस्संति । तएणं से केसीकुन्नारसमणे चित्तं सारहिं
एवं वयासी अविआइं चित्ता । जाणिस्सानो ॥ सू० ११६ ॥

छाया—ततः खलु स चित्तः सारथिः केशिन कुमारश्रमणमेवमवा-
दीत—किं खलु मदन्त ! युष्माक प्रदेशिना राज्ञा कर्त्तव्यम् ? सन्नि खलु
मदन्त ! श्वेतविकायां नगर्याम् अन्ये बहव ईश्वरतलवर—यावत्सार्थवाहमभु-
तयां, ये खलु देवानुपि वन्दिष्यन्ति नगस्यिष्यन्ति यावत् पयुंपासिष्य
न्ते, विपुलम् अशनं पानं स्वाद्य रवाद्यं प्रतिलम्भयिष्यन्ति, प्रतिहारिकेण पीठ

'तएणं से चित्ते सारही' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण) इसके बाद (से चित्ते सारही केशिकुमारसमणं एवं
वयासी) उस चित्र सारथिने केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(किं णं
मत्ते) 'तुम्हें परसिणा रन्ना कायव्व' हे मदन्त ! आपको प्रदेशी राजा
से क्या तात्पर्य है (सेय त्रियाए नयरीए अन्ने बहवे ईसरतलवर जाव सत्यवाहएण-
भिईओ जे ण देवाणुप्पियं वदिस्सति णमसिस्सति जाव पज्जुवामिस्सति,
विउलं असणं पणं खाइमं साइमं पडिलामिस्सति) श्वेतांबिका नगरी में
और भी बहुत से ईश्वर तलवर यावत् सार्थवाह आदि हैं जो आप देवानुप्रिय को
बन्दना करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् पयुंपासना करेंगे एवं विपुल, अशन
से पान से खादिम से और स्वादिम से आप को प्रतिलाभित करेंगे ।
(प्रतिहारेणं पीठफलगसेज्जास थारणं उवनिम तिस्सति) एवं समर्पणीयं

'तए ण से चित्ते सारही' इत्यादि.

सूत्रार्थ—(तए ण) त्थार पथी (से चित्ते सारही केशि कुमारसमणं एवं
वयासी) ते चित्र सारथिणे केशिकुमार श्रमणुने आ प्रभावे कलु के (किं णं मत्ते !
तुम्हें परसिणा रन्ना कायव्व) हे मदन्त ! आपश्रीने प्रदेशी राजा सार्थ शी
निश्चत छ ? (सेय त्रियाए नयरीए अन्ने बहवे ईसरतलवरजाव सत् ।
एणमिईओ जे ण देवाणुप्पियं वदिस्सति णमसिस्सति जाव पज्जुवामि-
स्संति विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलामिस्सति) श्वेतांबिका
नगरीमा थीला बध्ता ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाहा वगेरे छ के ओ आप देवानु-
प्रियने बहन करेथे नमस्कार करेथे यावत् पयुंपासना करेथे. अने विपुल अशनथी,
पानथी, भादीमथी अने स्वादिमथी आपश्रीने प्रतिलाभित करेथे. (प्रतिहारेणं पीठ-
फलगसेज्जासंधारणं उवनिमतिस्सति) अने समर्पणीय पीठ इसके शब्दा

तएणं ते उज्जाणपालगा चित्तेणं शारहणा एवं वुत्ता समाणा हह-
जाव हिययो करयलपरिगहिय जात्र एव वयासी-तहत्ति
णाए विणएण वयणं पडिसुणंति ॥सू० ११७॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं वन्दते नम
स्यति केशिनः कुमारश्रमणाय अन्तिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति,
यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव राजमार्गमवगाढः आवासस्तत्रैव उपागच्छति,
कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमत्रादीन्-क्षिप्रमेव भो देवानु
प्रियाः ! चातुर्घण्टम् अश्वरथ युक्तमेव उपस्थापयत, यत्राश्वेतविकाया-

(‘तएण) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथीने (केसि
मारसमण वंदह नममह) केशीकुमार श्रमण को चन्दना की और नमस्कार
किया (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतियाओ कोठ्टयाओ वेहयाओ पडिनिक्खमह)
पश्चात् में वह केशीकुमार श्रमण के पास से और उस कोष्ठक चैत्य से चला
आया. (जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवा-
गच्छह) आकर वह जहाँ श्रावस्ती नगरी थी एवं उसमें जिस तरफ राज-
मार्गपर स्थित आवास था वहा पर आया. (कोड्डु विघपुरिसे सदावेह) वहाँ
आकर के उसने कौटुम्बिक-आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया (सदावित्ता एवं
वयासी) बुलाकर उनसे ऐसा कहा-(खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! चाउग्घंटं
आसरहं जुत्तामेव उवह्वेह) हे देवानुप्रियों ! तुम लोग शीघ्र चार घंटों-
घांछे अश्वरथ को तैयार करके ले आओ.(जहा सेयंविचाए णयरीए निग्गच्छह,

त एणं से चित्ते । सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एण) त्सार पक्षी (से चित्ते सारही) ते चित्रसारथीञ्चे
(केसिकुमारसमण वंदह नममह) केशीकुमार श्रमणने वदत तेमज्ज नमस्कार कथी-
(केसिस्स कुमारसमणस्स अंतियाओ-कोठ्टयाओ वेहयाओ पडिनिक्खमह) त्सार
पक्षी ते केशीकुमार श्रमण पालेथी अने ते कोष्ठक चैत्यमाथी अकार आवी गथे.
(जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छह)
आगिने ते न्या श्रावस्ती नगरी इती अने तेमा पक्षु न्या राजमार्ग पर स्थित
निवासस्थान इत्तु त्या आन्थे (कोड्डु विघपुरिसे सदावेह) त्या पक्षीञ्चिने तेणे
कौटुम्बिक पुरुषोने-आज्ञाकारी पुरुषोने बोलाव्या (सदावित्ता एवं वयासी) बोला-
वीने तेभने आ प्रभाण्णे कञ्चु (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं
जुत्तामेव उवह्वेह) हे देवानुप्रियो ! तमे दोढे सत्तरे चार घंटोञ्चोथी युक्त

नगर्यां निर्गच्छति तत्रैव यावत् रत्नना कुणालाजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
केकयाद्धं यत्रैव श्वेताविका नगरी यत्रैव गृगानम् उद्यानं तत्रैव उपाग-
गच्छति, उद्यानपालकान् क्षब्दयति. शब्दयित्वा एवमवनादीत्-यदा खलु देवा-
नुप्रियाः । पार्श्वोपत्यीयः केशीनामद्रुमाग्द्वयः पूर्वोत्तुपूर्व्यां चरन् ग्रामा-
नुग्रामं द्रवन् इहागच्छेन्. तदा खलु गृय देवानुप्रियाः । केशिकुमारश्रमणं

तत्रैव जात्र वसमाणे कुणाला जणवरस मज्झमज्झेण जेणेव केइयअद्धे
जेणेव सेयंविया णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उपागच्छइ) यहाँ
से आगे चित्र सारथी जिस प्रकार श्वेताविका नगरी से निकल कर कुणाला
जनपद (देश) में स्थित श्रावस्ती नगरी आता, उसी प्रकार तब श्रावस्ती नगरी
से भी निकलकर केकयाद्धं जनपद में स्थित श्वेताविका नगरी में पहुंचा.
इसलिये यहाँ पर पूर्वकी तरह से ही समग्र पाठ समृद्धीत करना चाहिये.
इसी बात को सूचित करने के लिये 'जहा सेयवियाण णयरीए णिगगच्छइ'
इत्यादि यह पाठ कहा गया है. अर्थात् वह चित्रसारथि जिस प्रकार से
श्वेताविका नगरी से निकलता है, उसी प्रकार से यावत् मार्ग में पडाव डालना
हुआ वह कुणाला जनपद के मध्यमध्य से होता हुआ जहाँ केकयाद्धं था
और जहाँ श्वेताविका नगरी थी और उस में भी जहाँ गृगवन नाम का
उद्यान था वहाँ आया (उज्जाणपालए सदावेइ) वहाँ आकर के उसने उद्या-
नपालों को बुलाया. (सदावित्ता एव वयासी) वहाँ आकर के उसने ऐसा
कहा—(जया ण देवानुत्पिया । पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुब्बा

अर्थ तैयार करीने लावे. (जहा सेयवियाण णयरीए णिगगच्छइ, तत्रैव जात्र
वसमाणे कुणाला जणवरस मज्झमज्झेण जेणेव केइय अद्धे जेणेव
सेयंविया णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उपागच्छइ) अर्थात् ते
चित्रसारथी पहुँचा जेभ ते श्वेताविकानगरीथी नीकर्णाने कुष्वादा जनपदमा स्थित
श्रावस्ती नगरीमा आओये इतो, तेमए ते श्रावस्ती नगरीथी अडार नीकर्णाने केकयाद्धं
जनपदमां स्थित श्वेताविका नगरीमा पहुँचओये अडी ते प्रभाण्णे ए वषुंन समए
वेसुं ओधओये ओ वातने अनाववा माटे ए 'जहा सेयवियाण णयरीए णिगगच्छइ'
वगेरे पाठने उल्लेख करवामा आओये छे अटवे के ते चित्र सारथि जेभ श्वेता-
विका नगरीथी नीकर्णे छे, ते प्रभाण्णे ए थावत् सुग्राम करतो ते कुष्वादा जनपदमा
ओकम मध्यमा पसार यधने जथा केकयाद्धंमा श्वेताविका नगरी इती अदि तेमां
पथु जथा गृगवन नामे उद्यान इतु त्या आओये (उज्जाणपालए सदावेइ) त्यां
आवीने तेण्णे उद्यान पाठने ओकाओये (सदावित्ता एव वयासी) ओकावीने ए
प्रभाण्णे षण्णुं. (जया ण देवानुत्पिया । पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे

बन्धुव' नमस्यत, बन्दिष्वा नमस्यिष्वा यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अनुज्ञापयत, प्रातिहारिकेण पीठ-फलक-यावत् उपनिमन्त्रयत, एतामोद्भक्तिकां च प्रमेव प्रत्यर्पयत-। ततः खलु ते उद्यानपालकाः चित्रेण सारथिणा एवमुक्ताः सन्तो दृष्टवृष्ट यावद्दयाः करतलपरिगृहीतं यावत् एवमवादीत-त त्रि, आज्ञाया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति ॥ सू० ११७ ॥

विष्व चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा. तयाणं तुज्जे देवाणुप्पिया! केसिकुमारसमणं वंदिज्जह) हे देवानुप्रियो। पार्श्वनाथ भगवान् परपरा में विचरने वाले केशी नामके कुमारश्रमण पूर्वसाधु परम्परा के सार विचरते हुए तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहाँ पर पधारे, तब तुम हे देवानुप्रियो ! केशिकुमार श्रमण को बन्दना करना (नमंसिज्जाह) स्कार करना. (वंदिता नमंसिता अहापडिक्खं उग्गहं

णेज्जाह) वंदना नमस्कार कर फिर तुम उन्हें साधुकरवानुसार बसति में निब करने के लिये आज्ञा दे देना (पडिहारिएणं पीठफलक जाव उबनिमंतिज्जाह) और समर्पणीय पीठफलक आदि जैसा. वे चाहे वैसा तुम उन्हें देने की प्रार्थना करना. (एयमाणस्सियं खिण्णामेव पक्खप्पिणेज्जाह) बाद मेरी इस आज्ञा को जब पीछे शीघ्र छोटाना-अर्थात् जब केशिकुमार श्रमण आ जावे-तब तुम उनके आगमनादि के वृत्तान्त की हमें शीघ्र ही खबर देना. (तएणं ते उज्जाणपालगा चित्रेणं सारथिणा एवं बुत्ता । इह जाव हियया करयलपरिग्गहियं जाव एवं वयासी-तडिति

पुग्गणुपुग्गि चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा, तयाणं तुज्जे देवाणुप्पिया! केसिकुमारसमणं वंदिज्जह) हे देवानुप्रियो। पार्श्वनाथ भगवान् परपरां विचरन्तुं करन्ता केशी नामे श्रमणु पूर्वसाधु परंपरा सुग्गणु विचरन्तुं करन्ता तेभं अहेकं जाभंभीभीअं जाभगां विहार करन्तां करन्तां अही पधारे त्थारे हे देवानुप्रियो। तमे सो केशिकुमार श्रमणुने वंदनं करन्ते. (नमंसिज्जाह) नमस्कार करन्ते. (वंदिता नमंसिता अहापडिक्खं उग्गहं अणुज्जाणे ह) वंदना तेभं नमस्कार करिने तमे तेभने साधु कथ्यात्तुभार बसतीमां निवास करन्तानी आसा आप्थे. (पडिहारिएणं पीठफलक जाव उव निमंतिज्जाह) अने समर्पणीय पीठफलक वजरे ने वस्तुनी तेव्वाशी भागशी कहे ते वस्तु तमे तेभने नअपखे समर्पित करन्ते (एयमाणस्सियं खिण्णामेव पक्खप्पिणेज्जाह) अने न्यारे आ धुं थं नय त्थारे तमे भने केशिकुमार श्रमणुनी अही पधारवानी भयर आप्थे (तएणं ते उज्जाणपालगा चित्रेणं सारथिणा एवंबुत्ता समाणा इहत्तु जाव हियया करयलपरिग्गहियं जाव

टीका—'तएण' से' इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं
 वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा केशिनः कुमारश्रमणस्य भन्तिकीत्
 समीपात्, तदनुकोष्ठकाच्चैत्याच्च प्रतिनिष्कामति=निस्सरति, प्रतिनिष्काम्य
 यत्रैव आवस्ती नगरी यत्रैव च राजमार्गमत्रगाढः आवासः, तत्रैव उपा-
 गच्छति, उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान्=भृत्यान् शब्दयति, शब्दयित्वा एव-
 मवादीत्—भो देवानुमियाः ! चातुर्घण्टं=चतुर्घण्टविभूषितम् अश्वरथं युक्त-
 मेव=योजिताश्वमेव उपस्थापयत=उपस्थितं कुरुत । इतोऽग्रे यथाश्वे तविकाया
 नगर्यां निरसृत्य चित्रः सारथिः कुणाला जनपदे आवस्त्यां नगर्यां ग. 1.;
 तथैव स आवस्त्या नगर्यां अपि निरसृत्य केकयादं जनपदे श्वेतविकायां
 नगर्यां च गतः । अतोऽत्र पूर्ववदेव समग्रः पाठः संप्राप्तः । अगुमेवार्थसूच-
 यितुमाह—'यथा श्वेतविकाया नगर्यां निर्गच्छति, तथैव यावत् वसन् कुणा-
 लाजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव केकयादं यत्रैव श्वेतविका नगरी यत्रैव
 सुगवम् उद्यानं तत्रैव उपागच्छतीति । तत्र सुगवने उद्याने उपागत्य स
 उद्यानपालकात् शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—भो देवानु-
 मियाः ! यदा स्व पार्श्वीपत्नीयः=पार्श्वनाभतीर्यंकरपरम्परायां संजातः
 केशी नाम कुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्व्यां=पूर्वसाधुपरम्परायां चान्=वि-
 ग्रामानुग्रामम्=एकस्माद् ग्रामादनन्तरस्थितं ग्रामं द्रवम=क्रमेण गत्
 इह=श्वेतविकायां नगर्यां आगच्छेत्=आयात्, तदा खलु यूयं देवानुमियाः
 केशिकुमारश्रमणं वन्द्यं नमस्यत वन्दित्वा नमस्यित्वा, यथाप्रतिरूपं=
 साधुकल्पानुसारम् अवग्रहं=वसतौ निवासाथं भाज्ञां अनुज्ञापयत=अर्पयत,

आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेति) चित्र सारथी के द्वारा इस प्रकार कहे गये थे
 उद्यानपाल हृष्टतुष्ट यावत् हृद्य ह्रुप और दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय
 के साथ यावत् इस प्रकार से बोले—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा हमें प्रमाण
 है अर्थात् आपने कहा है हम वैसा ही करेंगे इस प्रकार अपनी ओर से स्वीकृति
 के वचन कहकर उन्होंने चित्र सारथी की आज्ञा के वचनों को स्वीकार कर लिया।

एव वयासो—तर्हाए आणाए विणयेणं वयणं पडिसुणेति) चित्रसारथीवडे आ
 प्रभावे आज्ञापित थयेदा ते उद्यानपालके हृष्ट-सुष्ट यावत् हृद्यवाणा थया अने
 अन्ने हाथ जेडीने विनम्रतापूर्वक आ प्रभावे कहेवा दाया के हे स्वामिन् ! आप
 श्रीनी आज्ञा भासा भाटे प्रभावेइप छे. जेटवे के आपथीये ने प्रभावे आज्ञा करी
 छे अने यथा सभय तेभज आथरीशुं. आ प्रभावे पीताना तरक्षी स्वीकृतिनां
 वयने कहीने तेभजे चित्रसारथिनी आज्ञाने स्वीकारी तीधी.

तथा-प्रतिहारिकेण=पुनः स्वमर्षणीयेन पीठफलक यावत्=पीठफलकशर्या
 स'स्वारकेण उपनिमन्त्रयत. प्रातिहारिकं पीठफलकादिकं यथा न गृह्णीयात्
 तथा तं केशिकुमारश्रमण प्रार्थयतेत्यर्थः। एव कृत्वा एताम् आङ्गसिकां
 क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत=केशिकुमारश्रमणस्य आगमनादित्तान्त मन्त्रं क्षिप्रमेव
 सूचयतेति। ततः खलु ते उद्यानपालकाः चित्रेण सारथिना एवमुक्ताः
 सन्तः हृष्टतुष्टयावर्द्धयाः=हृष्टतुष्टचित्तानन्दिताः प्रीतिमनसाः परमसौमनस्यिताः
 हर्षवशादिसर्पवर्द्धयाः, करतलपरिगृहीत यावत्-यावत्पदेन-'दशनखं शिर
 आवर्त्तं मस्तके अजलिं कृत्वा' इति सग्राह्यम्, हृष्टतुष्टेत्यादिपदानां कर-
 तलेत्यादिपदानां चार्थः पूर्ववद् बोध्यः, एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=
 उक्तवान्-तथेति=हे देवालुप्रिये। यथा गृह्यमाज्ञापयन्ति तथैव समाचरिष्यामः
 इति। एव स्वीयारवचनसुक्त्वा ते उद्यानपालकास्तरय चित्रसारथेः आज्ञाया
 वचनं चिनयेन प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकृर्वान्ति-इति ॥सू० ११७॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही जेणेव सेयंबिया गयरी तेणेव
 उवागच्छइ, सेयवियं नयरीं मज्झमज्जेणं अणुपविसइ, जेणेव पण-
 सिस्स रणो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ,
 तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, त महत्थं जाव
 गेण्हइ, जेणेव पयसी राया तेणेव उवागच्छइ, पणसिं रायं करयल-

टीकार्थं मूलार्थं के अनुल्लप ही है, नवरं 'हृष्टतुष्ट जाव हियया' में
 जो यावत् पद आया है उससे यहाँ 'हृष्टतुष्टचित्तानन्दिताः, प्रीति मनसाः,
 परमसौमनस्यिताः, हर्षवशादिसर्पवर्द्धयाः' यह पाठ गृहीत हुआ है, तथा
 'करतलपरिगृहीत' के यावत्पद से 'दशनखं शिर आवर्त्तं मस्तके अजलिं
 कृत्वा' इस पाठ का ग्रहण हुआ है, इन पाठों के पदों का पहिले अर्थ
 कहे हुवे अर्थ के अनुस्तर ही है ॥ ११७ ॥

टीकार्थं—आ सूत्रेणो मूलार्थं प्रभाषे न्ने 'नवरं' "हृष्टतुष्ट जाव हियया"
 भा-ने यावत् पद-आवेत्तु छे, तेथी "हृष्टतुष्टचित्तानन्दिताः, प्रीतिमनसाः
 परमसौमनस्यिताः, हर्षवशादिसर्पवर्द्धयाः" आ पाठेणो संअह्थे छे. तेभन्
 "करतलपरिगृहीत" ना यावत् पदथी "दशनखं शिर आवर्त्तं मस्तके अजलिं
 कृत्वा" आ पाठेण अह्थे थयुं छे आ पाठेणो पदोणो अर्थ पडेता न्ने प्रभाषे
 स्यत्तं क्खवाभा आव्थे छे ते प्रभाषे न्ने अह्थे समन्वेणो जेधन्थे ॥सू० ११७॥

जाव वद्धापेत्ता तं महत्थं जाव उवणेइ । तएण से पएसी राया
चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ, चित्तं सारहिं सकारेइ
सम्माणेइ पडविसज्जेइ । तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा
विसज्जिए समाणे हट्टुजाव हियए पएसिस्स रन्नो अंतियाओ पडि-
णिकखमइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटं
आसरहं दूरुहइ, सेयंविद्याए नयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे
तेणेव उवागच्छइ, तुरगे णिगिण्हइ, रह ठवेइ, रहाओ प गेरुहइ,
पहाए जाव उट्ठि पएसायवरगए फुट्टमाणेहिं सुइंगमत्थएहिं वत्ती-
सइवद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेह उवणच्चिज्जमाणे उवगा-
इज्ज णे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्धपरिस जाव विहरइ ॥सू० ११८॥

छाया-ततः खलु स चित्राः सारथिः यत्रैव श्वेतांविका नगरी तत्रैव उपागच्छति,
श्वेतांविकां नगरीं मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव प्रदेशिनः राज्ञः गृहं यत्रैव च ।
उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्य-

‘तएणं ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही जेणेव सेयंविद्या नयरी
तेणेव उवागच्छइ) वह चित्र सारथि जहां श्वेतांविका नगरी थी—वहां गया
(सेयंविद्या नयरीं मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ) वह उस नगरी में बीचों
बीच के मार्ग से होकर प्रविष्ट हुआ (जेणेव पएसिस्स रण्णा गिहे जेणेव
बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) प्रविष्ट होकर वह
वहां गया जहां कि प्रदेशी राजा का घरथा और जहां
प्रदेशी राजा की बाह्य उपस्थानशाला थी (तुरगे निगिण्हइ) वहां पहुंच

‘त एण ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्वात् पठ्ठी (से चित्ते सारही जेणेव सेयंविद्या नयरी तेणेव
उवागच्छइ) ते चित्र सारथि न्यां श्वेतांभिन्ननगरी इती त्या गथे। (सेयंविद्या नयरीं
मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ) ते ते नगरीना मध्यभागेथी यधने प्रविष्ट थथे।
(जेणेव पएसिस्स रण्णा गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्टाण साला तेणेव उवागच्छइ)
प्रविष्ट थधने ते त्या गथे न्या प्रदेशी राजात् घर इत्तु अने न्या प्रदेशी राजानी याव

बरोहति, तद् महार्थं यावद् शृणाति, यत्रैव प्रदेशी राजा तत्रैव उपागच्छति, प्रदेशिन राजानं करनञ्च यावद् वद्धयित्वा तन्महार्थं यावद् उपनयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेस्तन्महार्थं यावत् प्रतीच्छति चित्रं सारथिं सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ! ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा विसर्जितः सन्न हृष्ट यावद् हृद्यः प्रदेशिनो राज्ञः

कर उसने घोड़ों को रोका (रहं ठवेह्) और रथ को खड़ा किया। (रहाओ पबोरुहइ) फिर वह उस रथ से नीचे उतरा (तं महत्थं जाव गेण्हइ) नीचे उतर कर उसने उस महार्थं आदि विशेषणों वाले प्राभृत को हाथ में लिया (जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ) और जहाँ प्रदेशी राजा था वहाँ गया (पएसीराय करयल जाव वद्धावेसा तं महत्थं जाव उवणेइ) वहाँ जाकर के उसने प्रदेशी राजा को दोनों हाथों की अंजलि बनाकर एवं उसे भक्तकपर से झुमाकर नमस्कार किया और जयविजय शब्दों का उच्चारण करते हुए उसे बधाई देकर फिर उसने उसके समक्ष लाने हुए पारितोषिक-शेट अर्पण किया (तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ) प्रदेशी राजासे चित्र सारथी के उस महार्थं आदि विशेषणों वाले प्राभृत को अंगीकार कर लिया (चित्त सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ पडिविसज्जेइ) और चित्र सारथी का सत्कार किया एवं सम्मान किया, बाद में उसे विसर्जित कर दिया, (तएणं से चित्रे सारही

उपस्थान शाणा इती (तुरगे निगिण्हइ) त्या पडेअंथीने तेबु शेआम्भेने उभा राभ्या। (रहं ठवेह्) अने रथने शेआवांथे (रहाओ पबोरुहइ) त्थार पधी ते रथभा नीचे उतरथे, (तं महत्थं जाव गेण्हइ) नीचे उतरने तेबु ते महार्थं वगेरे विशेषणवाणी शेट पोताना हाथमा लीधी (जेणेव राया तेणेव उवागच्छइ) अने ज्या प्रदेशी राजा उतो त्या गथे (पएसी राय करयल जाव वद्धावेसा तं महत्थं जाव उवणेइ) त्या अधने तेबु प्रदेशी राजाने अने हाथेनी अंजलि अनावीने तेने भक्तक पर हेरवने नमस्कार कथा अने जयविजय शब्दोद्गम आशु करीने तेने वधाभङ्गी आपी त्थार पधी तेबु पोतानी साथे लावेदी शेटने राजाने अर्पित करी, (तए ण से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ) प्रदेशी राजासे चित्रसारथिनी ते महार्थं वगेरे विशेषणवाणी शेटने स्वीकारी लीधी, (चित्त सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ पडिविसज्जेइ) अने चित्रसारथिनी सत्कार तेमज्ज सम्मान करीने पधी तेने त्यांथी विसर्जित कथे, (तए णं से चित्रे सारही पएणिणा रण्णा विसज्जिए समाणे इह जाव

अन्विकात् प्रतिनिष्क्रामति, गत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, श्वेतविकाया नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् गत्य-
 षरोहति, स्नातो यावत् उपरि प्रासादरगतः स्फुटजिर्षदक्षमस्तकैर्द्वीत्रिशन्वी-
 द्दकैर्नाटकैर्वरतरणीसंपपुक्तैः उपनर्त्यमानः उपगायमानः उपलाल्यमान इष्टान्
 शब्दस्पर्श-यावद् विहरति ॥ सू० ११८ ॥

पसिणा रणा विसर्जित समाणे ऋद्ध जाव हियए पपमिस्स रन्नो अंति-
 याओ पड्डिनिवस्वमइ जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इम प्रकार
 प्रदेशी राजा द्वारा विसर्जित किया गया वह चित्र सारथि दृष्ट यावत्
 हृदय बाला होकर प्रदेशी राजा के पास से चला थाया और जहां चातुर्घट
 अश्वरथ या वहां पर आ गया (चाउग्घट आसरहं दुरुहइ, सेयं वियाए
 नयरीए मज्झमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) वहां आकर वह
 उस चार घटेवाले अश्वरथ पर सवार हो गया और श्वेतायिका नगरी
 के ठीक मध्यमार्ग से होता हुआ अपने भवन की ओर चल दिया, (तुरगे
 णिगिण्हइ, रह ठवेइ रह्हाओ पञ्चोरुहइ, ष्हाए जाव उट्ठि पामायवरगए)
 वहां आकर के उसने घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, फिर रथ
 से नीचे उतरा, स्नान किया यावत् उत्तम प्रासाद के उपरिभाग में जाकर बैठ
 गया, (फुट्टमाणेहिं मुहं गमत्थएहिं वत्तीसइ च्छएहिं वरतरणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्ज-
 माणेरे उवणाइज्जमाणेरे उवल्लच्छिज्जमाणेरे इट्ठे सइ फरिस्स जाव विहरइ) वहां पर

हियए पपमिस्स रन्नो अंति याओ पड्डिनिवस्वमइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे
 तेणेव उवागच्छइ) आ प्रभाण्डे प्रदेशी राजा वडे विसर्जित करयेवे। ते चित्र-
 सारथि दृष्ट यावत् हृदयवाणी धधने प्रदेशी राजानी पासोथी आवतो रहो अने न्यां
 चातुर्घट अश्वरथ डतो त्यां आव्यो। (चाउग्घट आसरहं दुरुहइ, सेयं वियाए नय-
 रीए मज्झमज्झेणं जेणेव सए गइ तेणेव उवागच्छइ) त्या आवीने ते चातुर्घटवाणी
 अश्वरथ पर सवार थयो अने श्वेतायिका नगरीना ठीक मध्य मार्गमाथी पसार
 धधने पोताना भवन तरइ स्वाना थयो। (तुरगे णिगिण्हइ, रह ठवेइ, रह्हाओ पञ्चोरुहइ
 ष्हाए जाव उट्ठि पामायवरगए) त्या आवीने तेण्डे धोआण्योने उभा राण्य्या, रथ
 धोआण्यो अने त्यारपछी रथमाथी नीचे उतर्यो। स्नान क्युं यावत् उत्तम प्रासादना
 उपरिभागमां अने जेसी जयो। (फुट्टमाणेहिं मुहं गमत्थएहिं वत्तीसइ च्छएहिं नाइएहिं
 वरतरणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणेरे उवणाइज्जमाणेरे उवल्लच्छिज्जमाणेरे इट्ठे सइ

टीका—‘तएणं’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिः यत्रैव श्वेतविकानगरी तत्रैव उपागच्छति, श्वेतविकां नगरीं मध्यमध्येन=अनिश्चयमध्यदेशस्थितमार्गेण आवस्तीं नगरीम् अनुपविशति, यत्रैव चाह्ला उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान्=अश्वान् निगृह्णाति=निरुणद्धि, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यवरोहति=अवतरति, तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव प्रदेशी राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य प्रदेशिनं राजानं करतलं यावत्= करतलपरिगृहीतं दशनम् शिर आवर्त्तं मस्तके अठ्जलिं कृत्वा वद्धं यति, वद्धं यित्वा तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतम् उपनयति= प्रदेशिने राज्ञे समर्पयति। ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेः सकाशात् तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतम् प्रनीच्छति= गृह्णाति, चित्रं सारथिं मत्कारयति=आसनप्रदानादिना, सम्मानयति=वस्त्राभूषणादिप्रदानेन, ततः प्रतिप्रिसर्जयति=गन्तुमादिशति। ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा विवर्जितः सन् हृष्ट-यावद् हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः

रहते हुए यह वज्रते हुए मुदङ्गी की ध्वनिपूर्वक ३२ पात्रों द्वारा अभिनीत किये नाटक को धारदार देवकर और गानों को सुनकर एव ललितकलाओं द्वारा हर्षित होकर अभिलषित शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध इन पाँच प्रकार के कायभोगों को भोगते हुए अपने समय को निकालने लगा।

टीकार्थं मूलार्थं के ही अनुरूप है परन्तु जहाँ पर विशेषता है वह इस प्रकार से है—आसनप्रदान आदि द्वारा प्रदेशी राजाने उस चित्र सारथि का संस्कार किया, एवं वस्त्राभूषण आदि प्रदान द्वारा उसका सम्मान किया, विसर्जित किया का तात्पर्य है, जाने के लिये आह्ला दिया. ‘हृष्ट जात्र हियए’ में आगत इस यावत्पद से हृष्ट तुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितः, हर्षवश-

फरिस जात्र विहरह) त्या रहीं तेणे भृङ्गोनी ध्वनि साथे उर पात्रे द्वाश अभिनीत करायेला नाटकने वारंवार नेधने अने गीतो साधणीने अने लक्षितोवडे हर्षित यधने अभिलषित शब्द, स्पर्श, रूप, रसगंध आ पाच प्रकारना कायभोगोने बोगतो घेताना समथने पसार करवा लाग्ये।

टीकार्थं—आ सूत्रने मूलार्थं प्रमाणे ७ छे पद्य न्या विशेषता छे ते आ प्रमाणे छे आसन वगेरे आपीने प्रदेशी राजाये ते चित्रसारथिने संस्कार कर्ये अने वस्त्राभूषण आपीने तेसुं सम्मान कर्युं विसर्जित शब्दने अर्थ छे नवा भाटे आला आपी ‘हृष्ट जात्र हियए’ सा आवेला यावत् पदथी “हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः

मूलम्--तएणं से केसीकुमारसमणे अणया कयाइ पाडिहारियं पीठफलकसेजासंथारगं पच्चप्पिणइ । सावत्थाओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केइअद्धे जणवए, जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, अहा पडिरुवं उग्गहं उग्गिण्ह संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥सू० ११९॥

छाया-ततः खलु स केशीकुमार भ्रमणः अन्यदा कदाचित् प्रातिहारिक पीठफलक शय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयति । तत्रस्था नगरी कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति पठच्चभिरनगारशतैर्यावत् विहरन् यत्रैव केकयाद् जनपदः यत्रैव श्वेताधिका

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं केसीकुमारसमणे अणया कयाइ पाडिहारियं पीठफलकसेजासंथारगं पच्चप्पिणइ) इसके बाद केशीकुमारभ्रमणने किसी एक समय अर्पणीय पीठफलकशय्यासंस्तारक को वापिस कर दिया अर्थात् जहाँ वे कोष्ठक चैत्य-उद्यान में उहरे हुए थे—वहाँ के पुरुषों को उन्होंने संभला दिया. (सावत्थीओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद वे भ्रावस्ती नगरी से एव कोष्ठकचैत्य से निकले (पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केइअद्धे जणवए जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) पाँच सौ अनगार इनके साथ थे. अतः उनके साथ तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विश्वरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं केसीकुमारसमणे अणया कयाइ पाडिहारियं पीठफलकसेजासंथारगं पच्चप्पिणइ) त्थारपथी केशीकुमार भ्रमणुं केषं वपते अर्धशुभ्रं पोडकक शय्या सस्काकने पाछा आपी हीधा ओट्ठे के तेओश्री ने कोठक चैत्यमा मुकाम धर्यो इतो. त्यांना श्वेताणने ते वस्तुओ आपी हीधी. (सावत्थीओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ) त्थारपथी ते केशीकुमार भ्रमणुं ते भ्रावस्ती नगरीथी अने कोठक चैत्यमाथी नीकल्या ओट्ठे के विहार कर्था. (पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केइअद्धे जणवए जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) पाचसो अनगार तेओश्रीनी साथे इता आभ तेओश्री आ अधानी साथे तीर्थंकर परंपरा

नगरी यत्रैव मृगवनमुद्यान तत्रैव उपागच्छाते, यथाप्रतिरूपमवग्रहमवग्रहस्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति ॥ सू० ११९ ॥

टीका--'तएगं' केसी इत्यादि--व्याख्या निगदसिद्धा नवरम्-केशी कुमार' मणो मृगवनोद्यानस्थितस्य कर्म्यचित्त पुरुषस्य स्तोककालिकमवग्रहमवग्रहस्य विष्ठिति । वनपालावग्रहादीनामग्रे वक्ष्यमाणत्वात् ॥ सू० ११९ ॥

मूलम्--तएणं सेयं ब्रियाए नयरीए सिंघाडग० महया जणसहेइ वा० परिसा निग्गच्छइ । तएणं ते उज्जाणपालगा इभीसे कहाए लद्धट्टा समाणा हट्टुट्टु जाव हियया जेणेव केसी मारसमणे तेणेव उवागच्छंति केसिं मारसमणं वंदंति नमंसति हापडिरूवं उग्गहं अणुजाणीति, पाडिहारिणं जाव रएणं उवनिमंतंति णामं गोयं पुच्छंति ओधारेति एगं तं वक्कमंति अन्नमन्नं एवं वयासी-जस्स णं देवाणु-

विहार करते हुए क्रमशः वहां आये जहां के कयाद् जनपद-देश था, उसमें भी जहां वह श्वेतांबिका नगरी थी और उसमें भी जहां वह मृगवन नाम का उद्यान था (भद्रापडिरूवं उग्गहं उगिगिणिसा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) वहां आकर वे यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्त--करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

व्याख्या स्पष्ट है-नवरम्-केशीकुमारश्रमण मृगवनोद्यानस्थित किसी पुरुष की कुछ समयतक ठहरने के लिये आशा प्राप्त कर ठहर गये, वन पाल एवं अवग्रहादिकों के विषय में सूत्रकार आगे कथन करेंगे ॥ सू० ११९ ॥

शुश्रूष विचरञ्च कर्तां ओकं गाभथी जीणे गाभ विहार कर्तां अट्टकमे न्यां कैक्याद् जनपद-देश विशेष इतो अने तेमा पञ्च न्यां श्वेतांबिका नगरी इती अने तेमा पञ्च न्या मृगवन नामे उद्यान इतं, त्यां पडोअ्या. (भद्रापडिरूवं उग्गहं उगिगिणिसा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) त्या पडोअ्याने तेओशीओ तथा प्रतिरूप अवग्रह प्राप्त करीने संयम अने तपशी पोताना आत्माने भावित करता विचरञ्च करवा लाअ्या.

आ सूत्रेना टीकार्थं स्पष्ट छे 'नवरम्' केशीकुमार श्रमण मृगवन उद्यान पालकनी पासैथी रहैवानी आशा जेणवीने त्यां शिधाछ गया, वनपाल अने अवग्रह वगेरेनी भावतमा सूत्रकार इवे पछी कहेथे ॥ सू० ११९ ॥

पिया । चित्ते सारही दंसणं कंखेइ, दंसणं पत्थेइ, दसणं पीहेइ,
 दसणं अभिलनेइ. जस्स णं णामगोयस्सवि सवणयाए हट्टुट्टु
 जाव हियए भवइ से णं एस केसीकुमारसमणे पुठ्वाणुपुठ्ठि चरमाणे
 गामाणुगाम दूइज्जमाणे इहमागए इहसंपत्ते इह समोसढे इहेव सेयवियाए
 णय रीए वहिया उज्जाणे अहापडिरूवं जाव विहरइ, त गच्छामो णं
 देवाणुपिया ! चित्तस्स सारहिस्स एयगट्ठं निवेदेमो पियं से भवउ ।
 अपणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, जेणेव सेयविया णयरी,
 जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवाग-
 च्छंति, चित्तं सारहिं करयल-जाव वद्धावेति, एवं वयासी-जस्स णं
 देवाणुपिया । दंसणं कंखंति जाव अभिलसंति, जस्स णं णामगो-
 यस्सवि सवणयाए हट्टु जाव भवंति, से णं अयं केसीकुमारसमणे पुठ्वा-
 णुपुठ्ठि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे
 समोसढे जाव विहरइ ॥ सू० १२० ॥

छाया—ततः खलु श्वेतविकायां नगर्या भृगाटकं महान् जनसंघं
 इति षा० परिपद् निर्गच्छति । ततः खलु ते उज्जानपालका अस्याः कथाया

‘तएण सेयवियाए नयरीए’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण सेयवियाए नयरीए सिंघाडगं महया जणसहेइ षा०
 परिस्ता निग्गच्छइ) इसके बाद श्वेताविका नगरी में शृगाटक आदि मार्गों
 के ऊपर उपस्थित हुई अपार जनमेदिनी में परस्पर बातचीत आदि हुई.
 परिपदा निकली (तएण ते उज्जानपालगा इमीसे कहाए लद्धा समाणा

‘त एण’ सेय वियाए नयरीए’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण सेय वियाए नयरीए सिंघाडगं महया जणसहेइवा०
 परिस्ता निग्गच्छइ) त्थार पछी श्वेताविका नगरीमा शृगाटक वगेरे भागे पर
 ओक्कत्र थथेत्ता मानवसमाजमा परस्पर वातचीत वगेरे आरंभ थर्थ परिषदा नीक्कणी
 (त एण ते उज्जानपालगा इमीसे कहाए लद्धा समाणा हट्टुट्टु जाव हियया

लब्धार्थाः सन्तः हृष्टतुष्ट यावद् हृदया यत्रैः केशीकुमारश्रमणः तत्रैव
 उपागच्छन्ति केशिनं कुमारश्रमण वन्दन्ति नमसन्ति यथामतिरूपमवप्रद-
 मनुजानन्ति, प्रातिहारिकेण यावत् संस्तारकेण उपनिमन्त्रयन्ति, नामगोत्र
 पृच्छन्ति, अवधारयन्ति, एकान्तमयकामन्ति, अन्योन्यमेवमवादिपुः-पय
 खलु देवानुप्रियाः? चित्रः सारथिः दर्शनं माङ्गते, दर्शनं प्रार्थयति, दर्शनं
 स्पृहयति, दर्शनमभिलपति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्टतुष्ट-

हृष्टतुष्ट जाव ह्यियया जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति) इसके बाद वे
 उद्यानपाल जब उम वात से निश्चितप्रातिवाले हो गये. तब हृष्ट तुष्ट यावत्
 हृदयवाले होते हुए वे जहा केशीकुमारश्रमण थे-वहाँ पर आये. (केशि-
 कुमारश्रमण वदंति, नमसन्ति, अहापद्धिख्वं उगह अणुजाणति) वहाँ आकर
 उन्होंने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार- किया एवं यथारूप अवग्रह
 आत्मा उन्होंने दिया. (पाह्निहारिणं जात्र संधारणं उवनिमन्तति) तथा
 समर्पणोय (प्रातिहारिक) यावत् सस्तारक आदि से उन्हें उपनिमन्त्रित
 किया. (नाम गोयं पुच्छंति ओधारंति, एगंतं अवकमति, अन्नमन्न एव वयामी)
 नामगोत्र पूछा। उसे हृदय में धारणकिया। फिर वे एकान्त में गये और वहाँ जाकर
 उन्होंने आपस में इस प्रकार से बातचीत की (जस्सणं देवाणुप्पिया। चित्ते
 सारही दसणं कखेइ दसणं पीहेइ, दसणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो ! जिनके
 दर्शन चित्र सारथि चाहता है, जिनके दर्शन की वह प्रार्थना करता है,
 जिनके दर्शन की वह स्पृहा रखता है, जिनके दर्शन की वह अभिजाधावाञ्छा

जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति) त्पार पछी ते उद्यानवाले ज्यारे
 आ जणतमा निश्चित भतिवाणा तथा त्पारे तेज्जे हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणा थधने
 ज्यार केशीकुमार श्रमण हुता त्या आव्या (केशिं कुमारसमणं वदंति, नमसंति,
 अहापद्धिख्वं उगह अणुजाणति) त्या आवीने तेभज्जे केशीकुमार श्रमणने
 वदना करी नमस्कार कर्या-अने यथा कल्पनीय वस्तुज्जे तेज्जेश्रीने आपी. (पाह्निहा
 रिणं जात्र संधारणं उवनिमन्तति) तेभज्ज समर्पणीय यावत् सस्तारक
 वगेरे अर्पाने तेज्जेश्रीने उपनिमन्त्रित कर्या (नाम गोयं पुच्छंति ओधारंति,
 एगतं अवकमति, अन्नमन्न एव वयामी) नाम-गोत्र पूछ्यां अने तेने
 हृदयमा धारणु कर्या. त्यारपछी ते सर्वे ज्जेकतमा गया त्या जधने तेभज्जे परस्पर
 आ प्रभाज्जे वातचीत करी के (जस्सणं देवाणुप्पिया ! चित्ते सारही दसणं
 कखेइ, दसणं परेइ, दसणं पीहेइ, दसणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो !
 चित्रसारथी ज्जेज्जेश्रीना दर्शनेनी-धम्मा धरावे छे, ज्जेज्जेश्रीना दर्शनेना आटे तेज्जे
 प्रार्थना करे छे, ज्जेज्जेश्रीना दर्शनेनी ते स्पृहा धरावे छे, ज्जेज्जेश्रीना दर्शनेनी

यावद्दृढयो भवति स खलु एष केशीकुमारश्रमणः पूर्वनुपूर्वी चरन् ग्रामानु-
ग्रामं द्रवन् इहागतः, इहसंप्राप्तः, इह समवसृतः, इहैव श्वेतविकाया नगर्या
बहिर्मृगवने उद्याने यथाप्रतिरूपं यावद् विहरति, तद् गच्छामः खलु देवा-
नुप्रियाः ! चित्रस्य सारथेः एतमर्थं प्रियं निवेदयामः, प्रियं तस्य भवतु ।
अन्योन्यस्यान्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, यत्रैव श्वेतविका नगरी यत्रैव चित्रस्य

है. (जस्स णं णामगोयस्स वि. सवणयाए हट्टतुट्ठ जाव हिणए भवड) तथा
जिनके नामगोत्र के भी श्रवण से जो हट्टतुट्ट यावत् दृढयवाला होता है
(से णं एस केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुण्वि चरमाणे गामाणुगामं इहज्जमाणे
इहमागए) वे ये केशीकुमारश्रमण तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विचरते
हुए एव एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहां आये हैं ।
(इह सपत्ते) यहा प्राप्त हुए हैं । (इहसमोसठे) यहा समवसृत हुए हैं ।
(इहेव सेयं वियाए णयरीए बहिया उज्जाणे अहापडिख्व जाव विहरइ)
इसां श्वेतांबिका नगरी के बाहर उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्तकर
यावत् विराजते हैं । (तं गच्छामो ण देवाणुप्पिया । चित्तस्स सारहिस्स
एयमट्ठ पियं निवेदेमो पियं से भवउ) तो हे देवानुप्रियों ! चले और
चित्र सारथि के इस प्रिय अर्थ का उनसे निवेदन करे, हमारा यह निवे-
दन उन्हें बड़ा ही प्रिय लगेगा (अण्णमण्णस्स अत्तिए एयमट्ठ पडिसुणे ति)

ते अभिधाया राणे छे. (जस्मण णामगोयस्स वि सवणयाए हट्टतुट्ठ जाव हिणए
भवइ) तेभञ्ज (अ)श्रीना नाम गोत्रना श्रवणुथी ञ् ञे हट्ट-तुट्ट यावत् दृढयवाणे।
अथ अथ छे. (से णं एस केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुण्वि चरमाणे गामाणु-
गामं इहज्जमाणे इहमागए) तेज्जेश्री केशीकुमार श्रमणु तीर्थंकर पर परा
मुञ्ज विचरणु करता अने अेक गाभथी भीने गाभ विहार करता अही पधायी छे.
(इह स पत्ते) अही प्राप्त तथा छे (इह समोसठे) अही समवसृत तथा छे
(इहेव सेयं वियाए णयरीए बहिया उज्जाणे अहापडिख्व जाव विहरइ)
आ श्वेतांबिका नगरीनी अहारना उद्यानमा यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्त करीने यावत्
विराजे छे (तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया । चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठ पियं
निवेदेमो पियं से भवउ) त्यारे हे देवानुप्रियो ! आपणे चित्र सारथिनी पासे
अथने आ प्रिय अभाथार विषे तेभने अणर आपीअे अभाारी आ अणर तेभने
अण्ण गभसे. (अण्णमण्णस्स अत्तिए एयमट्ठ पडिसुणे ति) आ अभाणे तेज्जो
अधा परस्पर अेक भीलानी वातने अेकमत अथने स्वीकारी वे छे त्यार पछी (नेत्तेज

सारथेगृहं यत्रैव चित्रः सारथिस्तत्रैवोपागच्छन्ति चित्रं सारथिं करतल-
यावद् वद्धं गन्ति, एवमवादिषुः—एस्य च्वत्रु देवानुप्रियाः दर्शनं काङ्क्षन्ति,
यावत्—अमिलषन्ति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्ट यावद् भवन्ति
म खल्वयं केशीकुमारश्रमणः पूर्वांनुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् इद्वैव
उद्याने मृगवने समवसृतः यावद् विहरति ॥ सू० १२० ॥

टीका—'तएणं सेयवियाए' इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥ मृ. १२० ॥

इस प्रकार की बातचीत को वे स्वीकार कर लेते हैं। बाद में (जेणेव सेयं विया
णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवागच्छंति)
वे जहाँ श्वेतांबिका नगरी थी और उसमें भी जहाँ चित्र सारथि का गृह
था एवं वहाँ पर भी जहाँ चित्र सारथी था वहाँ पर आये (चित्तं सारहिं कर-
यल जाव वद्धावे'ति, एव' वयासी) वहाँ आकर के उन्होंने चित्र सारथि के
प्रति बड़े विनय के साथ अपने दोनों हाथों की अजलि बनाकर उसे
मस्तक पर से घुमाते हुए नमस्कार किया। तथा जयविजय शब्दों का
उच्चारण कर उसे बधाई दी और फिर ऐसा कहा—'जस्स णं देवाणुप्पिया !
दसण क'खंति, जाव अमिलसंति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए
हृष्ट जाव भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुंवि चरमाणे गामा-
नुग्रामं दृज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसडे जाव विहरइ' हे देवानुप्रिया!
आप जिसके दर्शन की चाहना रखते हैं, यावत् अमिलावा रखते हैं तथा
जिसके नामगोत्र के भी श्रवण से भी आप हृष्टतुष्ट यावत् हृदय वाले
हो जाते हैं वे ये केशीकुमारश्रमण पूर्वांनुपूर्वीं से विश्वरते हुए, एक ग्राम से

सेय विया णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव
उवागच्छंति) तेज्जे अथां श्वेतांबिका नगरी इती अने तेमा पखु अथां चित्रसारथी
इती त्या गया (चित्तं सारहिं करयल जाव वद्धावे'ति, एव' वयासी) त्या पड्डोच्छीने
तेमण्णे चित्रसारथिने षड्ढुण्ण नम्रपण्णे अन्ने इथोणी अ'वदि अनाचीने अने तेने
मस्तक पर इस्वीने नमस्कार कर्था तेमण्ण अथविअथ शब्देहोत्तं उच्चारणु करीने तेने
वधामण्णी आपी. अने पछी तेने आ प्रमाणे कड्डु. (जस्सणं देवाणुप्पिया ! दंसण
क'खंति, जाव अमिलसति, जस्स ण नामगोयस्स वि सवणयाए हृष्ट जाव
भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुंवि चरमाणे गामानुग्राम
दृज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसडे जाव विहरइ' हे देवानुप्रिया !
तमे जेज्जेअश्रीना दर्शनेनी धन्था धरावता इता, यावत् अमिलावा राभता इता।
तेमण्ण जेज्जेअश्रीना नामगोत्रना श्रवणु भात्रथी अ तमे हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणा

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही तेसि उज्जाणपालणाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु जाव आसणाओ अब्भुट्टेइ पायपीढाओ पच्चो-
रुहइ, पाउयाओ ओमुयइ, एगलाडियं उत्तरासंगं करेइ, अंजलिम-
उलियग्गहत्थे—केचिकुमारसमणाभिमुहे सत्तट्टुपयाइं अ गुगच्छइ, का-
यलपरिग्गहियं सिरसावत्तं सत्थए अंजलिकट्टु एवं वयासी-नमोऽत्थुणं
अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थुणं केस्सिस्स कुमारसमणस्स मम
धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए,
पासउ मे तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ नमंसइ, ते उज्जाणपोलए विउ-
लेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ विउल जीवियारिहं
पीइदाणं दलयइ पडिविसज्जेइ । कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, एवं वयासी
—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेह
जाव पच्चप्पिणह । तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्त
सज्झय जाव उवट्टुवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तएणंसे वित्ते सारही
कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु जाव हियए
पहाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव चाउग्घंटे जाव दुरुहित्ता
सकोरंट० महया भडचडगर० तं चेव जाव पञ्जुवासइधम्मकहा ।सु.१२१।

दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहाँ मृगवन नामके उद्यान में आये हुए
है यावत् तप और संयम से आत्माको भावित करते हुए ठहरे है।

इसकी व्याख्या मूलार्थ के जैसी ही है ॥ १२० ॥

यथं लब्धो छे तेज्योश्री केशीकुमारश्रमण्य पूर्वानुपूर्वीथी विचारण्य करता अथ गामथी
धीले गाम विहार करतां अही' मृगवन नामना उद्यानमां पधारेखा छे यावत् तप
अने स्रथमथी पोताना आत्माने भावित करता विराणे छे

आ सुत्रनी व्याख्या मूलार्थ प्रभावे ७ छे ॥१२०॥

छाया--ततः ग्वन्तु म चित्रः मार्गधिः तेषामुद्यानपालकानामन्तिके एत
मर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टं तुष्टं यावद् आसनाद् अश्रुत्तिष्ठति प्रागादपीठा
स्पत्यवरोहति पादुके अवसुञ्चति एकशाटिकमुत्तरासगं करोति अञ्जलिमु-
कुलिताग्रहस्तः केशिकुमारश्रमणाभिमुखः सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति कन्तल
परिगृहीतं सिरसावत् मन्केऽञ्जलिं कृत्वा पश्मवादीत्-नमोऽस्तु ग्वन्तु

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही नेपि उज्जाणपालगाण अन्तिण
एयमट्टं) इसके बाद वह चित्र सारथि उन उद्यानपालकों के पास में इन
मर्थं नो-वृत्तान्त को (सोच्चा निसम्म हट्टुट्ट जाव आमणाओ अब्भट्टेऽ)
गुनकर एवं उसे हृदय में धारण कर बहुत अधिक हृष्ट एवं संतुष्ट
चित्त हुआ यावत् वह अपने आमन से उठा, (पायपीठाओ पञ्चोरुहट्ट)
और पादपीठ-(चरण रखने का आसन) के उपर पग रखकर वह नीचे उनगा
(पाउयाओ ओमुघट्ट) पादुकाएं उसने उतार दी (एगसाहिय उत्तरासगं करेऽ)
एकशाटिक उतरासगं - क्रिया । (अञ्जलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमारमणा
मिहे सत्तहपयाडं अणुगच्छड) फिर उसने अपने दोनों हाथों को जोड़कर
अञ्जलिरूप में परिवर्तित किया और केशीकुमारश्रमण के अभिमुख होकर
अर्थात् जिस ओर केशीकुमार श्रमण विराजमान थे उस ओर सात आठ
पण तक आगे जाकर (करयलपरिग्गहियं सिरसावत् मत्थए अञ्जलिं कट्टु
एवं वयासी) वहाँ जाकर उसने अपने दोनों हाथों की बड़े विनय के साथ

‘तएण से चित्ते सारहो’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) से चित्ते सारही तेषि उज्जाणपालगाण अन्तिण
एयमट्टं) त्थार पछी ते चित्तसारथि ते उद्यानपालकानां मुख्थी आ अर्थने वृत्तातन
(सोच्चा निसम्म हट्टुट्ट जाव आमणाओ अब्भट्टेऽ) सामणानि अने तेने हृदयमा
धादणुधरीनेपूणञ्ज हृष्ट अने संतुष्ट चित्तवाणोत्थयो यावत् ते पोताना आसन परथी उलोत्थयो
(पायपीठाओ पञ्चोरुहट्ट)अने पादपीठ(पग भूक्वाटु आसन विशेष)पर पग भूक्कीने नीचे उथां
(पाउयाओ ओमुघट्ट)अने पगमा पडेरेवी पावडीओ उतारी दीधी (एगसाहिय उत्तर-
रासगं करेऽ) एकशाटिक उत्तरासगं कथो (अञ्जलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमार
समणाभिमुहे सत्तहपयाडं अणुगच्छट्ट) त्थार पछी तेण्णे पोताना अने हृदये
जेडीने अञ्जलि बनावी अने केशीकुमारश्रमणनी सामे मुख्थीने अट्टेवे के के
दिशा तरक्क केशीकुमार श्रमण विराजमान हुता ते तरक्क सात आठ पण सुधी सामे
गया (करयलपरिग्गहियं सिरसावत् मत्थए अञ्जलिं कट्टु एवं वयासी)

अर्हद्भयो यावत्-सम्प्राप्तेभ्यः, नमोऽस्तु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माचार्याय धर्मोपदेशकाय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतमिहगतः पश्यतु मे तत्रगत इहगतम्. इति कृत्वा वन्दने नमस्वति, तान् उद्यानपालकान् विपुलेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करोति संमानयति विपुल जीवितार्हं प्रीतिदानं ददाति प्रतिविसर्जयति। कौडुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, एवमवादीत्-

अत्रलि बनाई और उसे मस्तक पर से तीन बार छुनाकर इस प्रकार पाठ पढ़ने लगा—(नमोऽस्त्युगं अरहंतागं जाव संपत्ताणं, नमोऽस्त्युणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदांमि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए) अर्हन्त भगवन्तों को नमस्कार हो यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए हैं. मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक केशीकुमारश्रमण को नमस्कार हो. यहां रहा हुआ मैं यहां पर भृगवनोद्यान में विराजमान आपको नमस्कार करता हूँ। (पासउ में तत्थगए इहगयं त्तिकहुं वंदइ नमंसइ) वहां रहे हुए वे भगवान् यहां रहे हुए मुझे देखें इस प्रकार कहकर उसने वन्दना की, नमस्कार किया, (ने उज्जाणपालए विउलेणं वत्थगधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ) इस तरह परोक्षविनय करके फिर उसने उन उद्यानपालकों का विपुल वस्त्र गंध मालाए अलंकारों से सत्कार किया (मम्माणेइ) सम्मान किया (विउल जीवियारिहं पीइदाण दलयइ) और अन्त में उनके लिये विपुल मात्रा में जीविकायोग्य प्रीतिदान दिया (पडिविमउसेइ) फिर त्या जेने तेणे पोताना जेने दुथेनी जण नअपणे अज्जि जेनावी जेने तेने मस्तक पर त्रसु वधत इरवीने आ प्रभाणे ते पाठउं उच्चारणु करवा जाये— (नमोऽस्त्युणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽस्त्युणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स वंदांमि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए) अर्हन्त भगवन्तोंने भारा नमस्कार छे के जेओश्रीओ यावत् सिद्धिगति नामकस्थानने प्राप्त क्युं छे. भारा धर्मोचार्य धर्मोपदेशक केशीकुमारश्रमणने नमस्कार छे अहीथी जे हुं त्या भृगवनोयद्यामा विराजमान आपश्रीने नमस्कार कर्ं छु (पासउ में तत्थगए इहगयं त्तिकहुं वंदइ नमंसइ) त्या विराजमान ते भगवान् अही विद्यमान भने जेणे आ प्रभाणे कहीने तेणे वंदना करी नमस्कार क्यो. (ने उज्जाणपालए विउलेणं वत्थगधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ) आ प्रभाणे परोक्ष विनय करीने तेणे ते उद्यानपालकानो विपुल वस्त्र, गंध, माल्याओ जेने अलंकारो वउ सत्कार क्यो. (सम्माणेइ) सम्मान क्युं. (विउल जीवियारिहं पीइदाण दलयइ) जेने छवटे तेभने विपुल मात्रामा अविद्या योग्य प्रीतिदान आप्यु. (पडिविमउसेइ)

क्षिप्रमेव भो देवानुपियाः ! चतुर्घण्टमश्वरथ युक्तमेव उपस्थापयन् यावत्
मर्त्यर्पयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् क्षिप्रमेव सच्छन्न
सञ्चजं यावत् उपस्थापयित्वा तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स
चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट यावद्
हृदयः स्नातः कृन्बलिङ्गमा यावत्-शरीरः यत्रैव चातुर्घण्टो यावद् दूरुह्य सको
रण्० महता भटनटकर० तदेव यावत् पर्युपास्ते धर्मकथा ॥मृ० १२१ ॥

विसर्जित कर दिया (कोट्टु धियपुरिसे सहावेह्) तदनन्तर मने अपने आज्ञा-
कारी सेवकों को बुलाया (सहावित्ता एव वयामी) बुलाकर उनमें ऐसा कहा
(क्षिप्पामेव भो देवानुपिया ! चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह् जाव
पञ्चपिणह्) हे देवानुपियो ! तुम लोग शीघ्र ही चार घटों वाले अश्वरथ
को घोडाओ से युक्त करके उपस्थित करो, यावत् फिर हमें इसकी खबर
दो (तएणं ते कोट्टु धियपुरिसा जाव क्षिप्पामेव सच्छन्नं सज्जयं जाव उव-
ट्टवित्ता तमाणत्तियं पञ्चपिणत्ति) इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत्
बहुत ही शीघ्र छत्र एव च्चजा से युक्त करके उस चार घटोंवाले अश्व
रथ को घोडाओं से युक्त कर उपस्थित कर दिया और पीछे इस खथा
को उसके पास दिया. (तएणं से चित्ते सारथी कोट्टु धियपुरिसाण
अतिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मै जाव
सरीरे चाउग्घटे आसरहे जाव दुरुहिस्ता सकोरंट० महया भट्टवट्टगर०
तं चैव जाव पज्जुवासह धम्मकहा) तब उस चित्र सारथिने कौटुम्बिक

त्यार पछी तेभने विसर्जित कथा. (कोट्टु धियपुरिसे सहावेह्) त्यार भाड तेष्से
पोताना आज्ञाकारी सेवकोंने भोलाव्या (सहावित्ता एव वयामी) भोलावीने तेभने
आ प्रभाषे कहे. (क्षिप्पामेव भो देवानुपिया ! चाउग्घट आसरहं जुत्तामेव
उवट्टवेह् जाव पञ्चपिणह्) हे देवानुपियो ! तभे दोके सत्तरे त्यार घटोवाणा
अश्वरथने घोडाओथी सञ्चज करीने अही उपस्थित करो, यावत् पछी अमने ण्णर
आपो. (तएणं से कोट्टु धियपुरिसा जाव क्षिप्पामेव सच्छन्नं सज्जयं जाव
उवट्टवित्ता तमाणत्तियं पञ्चपिणत्ति) त्यार पछी ते कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत्
शीघ्र छत्र अने च्चजाथी सुसज्जित करीने ते त्यार घटोवाणा अश्वरथने घोडाओथी
युक्त करीने उपस्थित करीने अने तेनी ण्णर पञ्च तेनी पासे पडोवादी दीधी.
(तएणं से चित्ते सारथी कोट्टु धियपुरिसाण अतिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म
हट्टतुट्ट जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मै जाव सरीरे चाउग्घटे आसरहे
जाव दुरुहिस्ता सकोरंट० महया भट्टवट्टगर० तं चैव जाव पज्जुवासह
धम्मकहा) ते चित्र सारथिने कौटुम्बिक पुरुषोंना सुअथी अर्थध त्यार थध वचानी

'तएणं से चित्ते' इत्यादि ।—व्याख्या निगदमिद्वा । नवरम्-चित्र
मारथिगमनवर्गनपेकाडशाधि कशननममृधे, त्रिलोकनोपम् ॥ १२१ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणस्स अंतिए
धम्म सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुं तहेव वयासी-एवं खल्ल भंते । अम्ह
पएसी राया अधम्मिए जात्र सयस्स त्रिणं जणवयस्स नो मम्मं कर-
भरवित्ति पवत्तेइ, तं जइणं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रणो धम्ममाइ-
म्भवेज्जा बद्दुगुणतरं खल्ल होज्जा पएसिस्स रणो तेसिणं च बहूणं दुपय
चउप्पयमियपसुपक्खिसारिसावाणं, तेसिं च बहूणं समणमाहण-

पुरुषों के मुख से अश्वरथ के तैयार हो जाने की घान मृनकर और
उसे हृदय में धारण कर हृष्टतुष्ट यावत् हृदय होते हुए स्नान किया,
बालिकर्म-अर्थात्-काकुरादि पक्षियों के लिये अन्न का भाग दिया यावत्
बहुमूल्य अल्पमारवाले आभूषणों से अलंकृत शरीर होकर जहा चार घटों-
वाला अश्वरथ या वहाँ गया. यावत् उस पर वह बैठ गया. उसके बैठते
ही छत्रधारीने उस पर कोरष्ठपुष्पों की माला से युक्त छत्र तान दिया,
विशाल भटों की भीड़ आकर उसके दोनों ओर उपस्थित हो गई. वहाँ
पहिले का श्वशिशु ओर सब कथन करना चाहिये, यावत् उसने केशि-
कुमारश्रमण की पशुपासना को केशिकुमारश्रमणने धर्मोपदेश दिया ।

टीकार्थ—उमकी व्याख्या स्पष्ट है । नवर-चित्रसारथी के गमन का
वर्णन १११वे सूत्र में देखना चाहिये ॥ सू. १२१ ॥

वात आवाणीने अने हृदयमा धारण करीने उच्छ्र-तुष्ट यावत् हृदयवाणो धरने स्नान
कथुं पक्षिकर्म अटके के काण्डा वगेरे पक्षीओने भाटे अन्न काग अर्पित कथुं
यावत् बहुमूल्य अल्पमारवाणा आभूषणोथी पोताना शरीरने अलंकृत कथुं अने
त्यार पछी ते तथा आरध टोवाणो अश्वरथ इतो त्या आओ यावत् तेमा जेसी गये।
ने जेठो त्यारे छत्रधारीओके करे ट पुपेनी भाजाथी युक्त छत्र तेनी छपर ताप्यु.
ते वपते विशाल योद्धाओनी भीड तेनी आसयास आवीने अकेठी थध गछ अड्डी
पडेवानी जेमअ अथु कथन समञ्जु जेठओ यावत् तेने केशिकुमारश्रमणनी पशु-
पासना करी, केशिकुमारश्रमणो धर्मोपदेश आप्ये।

टीकार्थ—आ सूत्रनो स्पष्ट अ नवर-चित्रसारथीतु गमनतु वचन १११ भा
सूत्र प्रमाणे समञ्जु जेठओ ॥ १२१ ॥

भिक्षुयाणं तं जह्णं देवाणुप्पिया! पएसिस्सं बहुगुणत्तरं होज्जा,
सयस्सं त्रिणं जणवयस्सं ॥ सू. १२२ ॥

छाया—ततः खलु भ चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्यान्तिके
धर्मं श्रुत्वा निश्चयं हृष्टतुष्टं तथैव एवमवादीत्—एव खलु भदन्त! अस्माकं
प्रदेशी राजा अधार्मिकः यावत् स्वकर्म्याणि खलु जनपदस्य नो सम्यक्
करमरवृत्तिं प्रवर्त्तयति नद् यदि खलु देवानु प्रेय ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममा-
ख्यायात् (तदा) बहुगुणतरं खलु भवेत्, प्रदेशिनो राज्ञस्तेषां च बहूनां
द्विपद्मगुणदमृगपशुरक्षित्रीहराणां, तेषां च बहूनां श्रमणमाहनभिक्षुका-

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथिने
(केसिस्व कुमारसमणस्स) केशीकुमारश्रमण के (अतिए) पास धम्मं सोच्चा
निसम्मं हृष्टतुष्टं तद्देवएवं वयासी) धर्मका उपदेश सुनकर और उसे हृदय में
धारण कर हृष्टतुष्टचित्तवाला हुआ एव आनन्द से विभोर होकर प्रीतिमनवाला
हुआ. इस तरह परमसौमनस्यित होकर वह घोला (एव खलु भते! अम्हं
पएसी राया अहम्मिए जाव सयस्सं त्रिणं जणवयस्सं नो सम्मं करमरवित्तिं
पवत्तेइ) हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है यावत् वह अपने
देशके प्राप्त कर से मरणपोषणरूप व्यवहार को ठीक तरह से नहीं चलाता है—
(तं जह्णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्सं रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणत्तरं होज्जा,
पएसिस्सं रण्णो तेषिं च बहूणं दुपयचउप्पयभियपसुपक्खिसरीसवाणं) तो

‘तए ण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पही (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथीञ्चे
(केसिस्सं कुमारसमणस्सं) केशीकुमार श्रमणनी (अतिए) पासैथी (धम्मं) सोच्चा
निसम्मं हृष्टतुष्टं तद्देव एव वयासी) धर्म विषे उपदेश आंभणीने अने तेन
उदयमा धारणु करीने हृष्ट-तुष्ट चित्तवाणे थये अने आनन्दित थण्णे प्रीतिशुक्तमनवाणे
थये. आ प्रभाण्णे परमसौमनास्थित थण्णे ते भाएथे. (एवं खलु भते ! अम्हं
पएमी राया अहम्मिए जाव सयस्सं त्रिणं जणवयस्सं नो सम्मं करमर-
वित्तिं पवत्तेइ) हे भदन्त ! हमारे प्रदेशी राजा अधार्मिक है यावत् ते पेतान्ना
देशना बोडे। पासैथी कर भेणवीने पणु प्रणत्तं भरणु-पोषणु-तेमव रक्षणु करतो नथी.
(तं जह्णं देवाणुप्पिया! पएसिस्सं रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणत्तरं होज्जा,
पएसिस्सं रण्णो तेषिं च बहूणं दुपयचउप्पयभियपसुपक्खिसरीसवाणं)

ણામ્ । તદ્ યદિ યલુ દેવાનુપ્રિય ! પ્રદેશનો વહુગુણનર ભવેત્, સ્વક-
સ્યાપિ ચ યલુ જનપદસ્ય ॥ મ્ ૧૨૨ ॥

ટીકા—‘તદ્ ણં સે ચિત્તે’ इत्यादि—ततः=तदनन्तरं यत् तद् म चित्रः
सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके=समीपे धर्मं जिनोक्तं सुत्वा=कर्णं
गोचरीकृत्य निशम्य=ईश्वरधार्यं हृष्टतुष्टं तथैव=पूर्ववदेव हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः
प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः हर्षवशाविसर्पदृहृदयः, इति सम्राह्यम् ।
अर्थस्तु पूर्व गतः । एवमवादीत्—किमवादीत् ? इत्याह—एव यत् हे भद्रं
अस्माकं प्रदेशी राजा अधार्मिकः यावत्—यावत्पदेन—अधर्मिष्ठादीनि सर्वाणि-
विशेषणानि एकशततममूत्रोक्तानि सम्राह्याणि, एषामर्थोऽपि तत्रैव विद्ये-

यदि आप हे देवानुप्रिय ! उस प्रदेशी राजा को जिनपरूपित धर्म का उप-
देश देवे तो वह उस प्रदेशी राजा के लिये और परलोक में बहुत गुण-
कारी होगा, तथा अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी एवं सरीसृप-
सर्प आदिकों का हितवह होगा (तेसिं च बहूण समणमाहणमिक्खु-
याण) और उन अनेक श्रमण माहण, भिक्षुओं के लिये बहुत ही अधिक
लाभदायक होगा (तं जइ ण देवानुप्पिया ! परसिस्स बहूगुणतरं होज्जा,
सयस्स चि य णं जणवयस्स) यदि वह धर्मों देश प्रदेशी राजा का हित-
कारक हो जाता है तो उसका जनपद—देश का इससे बड़ा भद्र होगा ।

ટીકાર્થે इसका स्पष्ट है । ‘इद्वृत्तु तद्देव एव वयासी’ में ‘तथैव’ पद
से ‘हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यतः, हर्षवशाविसर्पदृहृदयः’
इस पाठ का ग्रहण हुआ है, इन पदों का अर्थ पहिले लिखा जा चुका है।
‘अहम्मि ए जाव’ में आगत पद से ‘अधर्मिष्ठ’ आदिक विशेषणों का ग्रहण

ને આપ દેવાનુપ્રિય તે પ્રદેશી રાજાને જિન પ્રરૂપિત ધર્મને ઉપદેશ આપે તો તે
પ્રદેશી રાજાને આ લોક અને પરલોક અતીવ ગુણકારી થાય અને ઘણા દ્વિપદ, ચતુ
ષ્પદ, મુગ, પશુ, પક્ષી અને સરીસૃપ એટલે કે સાપ વગેરેના માટે પણ હિતાવહ થાય
(તેસિં ચ બહૂણ સમણમાહણમિક્કુયાણ, અને તે ઘણા શ્રમણ માહણ્ય ભિક્ષુકોના માટે
પણ અતીવ હિતાવહ કાર્ય થાય (તં જઈ ણ દેવાનુપ્પિયા ! પરસિસ્સ બહુગુણતરં
હોજ્જા, સયસ્સ ચિ ય ણં જણવયસ્સ) ને આપને ધર્મોપદેશ પ્રદેશી રાજા પોતાના
જીવનમાં ઉતારે તો તેનું પોતાનું અને તેના જનપદ—દેશનું પણ તેનાથી ઘણું કલ્યાણ થાય તેમ છે
આ સૂત્રને ટીકાર્થે સ્પષ્ટ જ છે “इद्वृत्तु तद्देव वयासी ‘भा’ तथैव”
પદથી “हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः, हर्षवशा-
विसर्पदृहृदयः” આપાકને સમજ થયે છે આ સર્વ પદોને અર્થ પહેલાં સ્પષ્ટ
કરવામાં આવ્યો છે “अहम्मि ए जाव” માં આવેલ યાવત્ પદથી ‘अधर्मिष्ठः’

कनीयः, स स्वकस्यापि जनपदस्य=देशस्य करेभरवृत्ति-करेण भरः-भरण-पोषणं, तद्विपां वृत्ति=व्यवहारं नो सम्यक् प्रवर्त्तयति, तद् यदि खलु हे देशानुप्रिय। प्रदेशिने राज्ञे भवान् धर्मं जिनप्ररूपितम् आख्यायात्-कथयेत् तदा प्रदेशिनो राज्ञः बहुगुणतरम्-इहलोकपरलोकसफलीकरणलक्षणं दयादानादिरूपं वाऽत्यन्तगुणं भवेत् ! तथा बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम्-तत्र-द्विपदा =दासीदासादयः चतुष्पदाः ये मृगाः=आरण्याः, पशवः=ग्राम्या गोमहिषादयः, सरीसृपाः=सुजपरिसर्पाः-गोधादयः उरःपरिसर्पाश्च सर्पादयः, तेषां बहुगुणतरं=पालनरक्षणरूपं भवेत् तथा-श्रमणमाहनमिक्षुकाणाम्-तत्र-श्रमणाः=शाक्यादयः, माः=नाः=ब्राह्मणाः, भिक्षुकाः=भिक्षुजीविनः तेषां च बहुगुणतरम्=भिक्षालाभरक्षणादिरूपमतिशयगुणं भवेत्। तत् यदि खलु भदन्त ! प्रदेशिनो राज्ञो बहुगुणतरं भवेत् तदा तस्य स्वकस्यापि जनपदस्य=देशस्य बहुगुणतरं योगक्षेमलक्षणं भवेदिति ॥ सू० १२२ ॥

हुआ है। ये सब विशेषण १०१ सूत्र में कहे जा चुके हैं। वहीं पर उनका अर्थ भी लिखा गया है। 'बहुगुणतरम्' का तात्पर्य उस प्रदेशी राजा को इस लोक एवं परलोक को सफल करनेरूप बहुगुण वाला अथवा दयादानादिरूप अत्यन्तगुणवाला होगा। दासीदास आदि द्विपद से, मृगादि चतुष्पद से, ग्राम्य गोमहिष आदि पशुपद से, सुजपरिसर्प गोधादिक, एवं उरःपरिसर्प सर्पादिक, सरीसृप पद से गृहीत हुए हैं। इन द्विपदादिकों का पालन रक्षणरूप बहुतरगुणवाला वह धर्मोपदेश होगा। शाक्यादिक श्रमण शब्द से ब्राह्मण माहन शब्द से, तथा भिक्षुजीवी भिक्षु रूपा से लिये गये हैं। इन सबके लिये भिक्षालाभ एवं संरक्षणादिरूप अतिशय गुणवाला वह धर्मोपदेश होगा ॥ सू. १२२ ॥

वगेरे विशेषणोत्तुं अहंशु सभञ्जु जेष्ठे आ अथा विशेषणो १०१ मा सूत्रमा आवेता छे. येनो अर्थ पशु ते सूत्रम. ज स्पष्ट करवाभा आव्ये छे. 'बहुगुणतरम्' नो अर्थ आ प्रमाणे छे के ते धर्मोपदेश ते प्रदेशी राजना भाटे आ लोकने तेभञ्ज परलोकने सक्षण अनाववा रूप अहुशुषुवाणे। थये अथवा तो हथा हान वगेरे रूप अत्यंत शुषुवाणे थये. द्विपदथी दासी दास वगेरे चतुष्पदथी मृग वगेरे, पशुपदथी ग्राम्य गोमहिष वगेरे, सरिसृप पदथी सुजपरिसर्प गोधादिक अने उरपरिसर्प-सर्पादिकतु 'सरीसृपा पदथी अहंशु थयु छे आ द्विपद वगेरेना भाटे पालन रक्षणरूप अहुतर शुषुवाणे ते धर्मोपदेश थये श्रमण शब्दथी शाक्य वगेरे, माहन शब्दथी ब्राह्मण तेभञ्ज भिक्षुपदथी भिक्षालावीतु अहंशु करवाभा आव्यु छे आ सर्वना भाटे संरक्षण तेभञ्ज भिक्षु दास वगेरेथी अधर्मोपदेश अतिशय शुषुवाणे थये. ॥सू० १२२॥

मूलम्—तएणं से केसीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी-
 एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा,
 सवणयाए, तं जहा— आरामगय वा उज्जाणगयं वा समणं वा
 माहणं वा णो अभिगच्छइ णो वंदइ णो णमंसइ णो सक्कारेइ णो
 सम्माणेइ णो कह्माणं मगलं देवय चेइयं पज्जुवासेइ, नो अट्टाइं
 हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छेइ, एएणं ठाणेणं चित्ता !
 जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए । (१) उवस्सयगय
 समणं वा तं चेव जाव एएणवि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं
 धम्मं नो लभइ सवणयाए । (२) गोयरग्गय समणं वा माहणं
 वा नो जाव पज्जुवासइ, नो विउलेणं असण्.पाणखाइमसाइमेणं पडि-
 लाभइ० नो अट्टाइं जाव पुच्छइं, एएणं ठाणेणं चित्ता । जीवे केवलि-
 पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए । (३) जत्थ वि णं समणेणं वा
 माहणेणं वा सद्धिं अभिसमागच्छइ तत्थवि ण हत्थेण वा वत्थेण
 वा छत्तेण वा अप्पाण आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्टाइं जाव पुच्छइ,
 एएणवि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं णो
 लभइ सवणयाए, (४) एएहिं च णं चित्ता ! चउहिं
 ठाणेहिं जीवे नो लभइ केवलिपन्नत्तं धम्मं सवणयाए ।
 चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं लभइ सवण-
 याए, तं जहा—(१) आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं
 वा वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ अट्टाइं जाव पुच्छइ, एएण ठाणेण
 चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए । एवं [२] उव-
 स्सगयं० [३] गोयरग्गयं समणं वा जाव पज्जुवासइ, विउलेणं जाव

पडिलाभेइ अट्टाई जाव पुच्छइ, एएण त्रि० (४) जत्थ वि य णं समणेण वा० अभिसमागच्छइ तत्थवि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ, एएणत्रि ठाणेणं चित्ता । जाव केवल्लिपन्नत धम्मं लभइ सवणयाए । तुज्झं च णं चित्ता । एएसी राया आरामगयं वा तंचेव संव्वं भाणियव्व आइएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ तं कहं णं चित्ता! एएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खिस्सामो? ॥सू०१२३॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्र सारथिम् एवमवादीत्-एवं खलु चतुर्भिः स्थानैः चित्र ! जीवः केवल्लिपन्नत धम्मं नो लभने श्रवणतयै, तद्यथा-(१) आरामगत वा उद्यानगत वा श्रमणं वा माहून् वा नो अभिगच्छति, नो वन्दते, नो नमस्यति, नो सत्करोति, नो सम्मानयति, नो कल्याण मङ्गलं देवतं चैत्यं पथुपास्ते, अर्गान् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि पृच्छति

‘तए णं से केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ- (तए णं से) इसके बाद (केसीकुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणने (चित्तं सारहिं) चित्र सारथि से (एवं वयासी) ऐसा रुहा- (एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नतं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र ! जीव चार कारणों से केवल्लिपन्नत धम्म को सुन नहीं सकता है। (त जहा- आरामगय वा उज्जाणगय वा, समणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, कल्लाण मंगल देवय चेइयं पज्जुवासेइ) जैसे-आराम में आये हुए या उद्यान में आये हुए श्रमण के वा माहण के

‘तए णं से केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ — (तए णं) त्थार पछी (केसीकुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणे चित्तं सारहिं चित्रसारथिने (एवं वयासी) आ प्रभाण्णे षड्ढुं (एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नत धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र ! एव त्थार कारणेणो लीधे केवली प्रश्न धर्मत्वं श्रमणु इरी शकतो नथी. (तं जहा- आरामगयं वा उज्जाणगय वा, समणं वा माहणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लाणं मंगलं देवय चेइयं पज्जुवासेइ) जैसे-आराम में आये हुए या उद्यान में आये हुए श्रमण के वा माहण के

एतेन स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभते श्रवणतयै । (२)
उपाश्रयगतं श्रमणं वा तदेव यावत् पतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवःकेवलि
प्रज्ञप्त धर्मं नो लभते श्रवणतयै । (३) गोचराप्रगत श्रमणं वा माहन वा

सन्धुग्व सत्कार आदि करने के निमित्त जो नहीं जाता है, मधुर वचनों से जो सुखशातादि प्रश्नपूर्वक उनकी स्तुति नहीं करता है, उनके समक्ष अपने मस्तरु को जो नहीं झुकाता है, अभ्युत्थानादि द्वारा जो उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि के देने से जो उनका सम्मान नहीं करता है, तथा कल्याणस्वरूप, मंगलस्वरूप धर्मदेवस्वरूप मानकर एवं विशिष्टज्ञान वाला मानकर जो उनकी पर्युपासना नहीं करता है, (नो अट्टाह, हेऊह, पसिणाह, वारणाह, वागरणाह पुच्छेह) अर्थ को-जीवाजीवादिक पदार्थों को, हेतुओं को-अन्यथातृपत्तिरूप साधनों को, प्रश्नों को, कारणों को, व्याकरणों को, नहीं पूछता है, (एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए) इस कारण से हे चित्र ! जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है। यह प्रथम कारण है। (१) (उवस्सययं समणं वा तं चेव, जाव एएणं वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए) उपाश्रय में आये हुए श्रमण के सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके समक्ष नहीं जाता है यावत् उनसे व्याकरणों को नहीं पूछता है, ऐसा जीव इस द्वितीय कारण से भी केवल प्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है। (२)

सामे जे सत्कार वगेरे करवा भाटे जेतो नथी, मधुर वचनोथी सुखशातादि प्रश्नपूर्वक तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी सामे पोनातुं मस्तक नञ् भावे नभावेतो नथी, अभ्युत्थान वगेरे वडे जे तेमने सत्कारतो नथी, वसति वगेरेआपीने तेमनु सम्मान करतो नथी तेमज् कल्याण स्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप भानीने अने विशिष्टज्ञान सपन्न भानीने जे तेमनी पर्युपासना करतो नथी (नो अट्टाह, हेऊह, पसिणाह, वारणाह वागरणाह, पुच्छेह) अर्थोने-एव अएव वगेरे पढाथोने, हेतुओने अन्यथातृपत्तिरूप साधनोने, प्रश्नोने कारखोने, व्याकरणोने पूछतो नथी, (एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए) हे चित्र ! आ कारखोने कीधे जे एव केवल प्रज्ञप्त धर्मतुं श्रवण करी शकतो नथी. आ पडेहुं कारख छे (१) (उवस्सययं समणं वा तं चेव, जाव एएणं वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए) उपाश्रयमा पधारेवा श्रमण के माहणोने सत्कार वगेरे करवा भाटे जे तेमनी सामे जेतो नथी यावत् तेमने व्याकरणो विषे प्रश्न करतो नथी. आ ज्ञाततो एव आ पीण कारखथी पखु केवलप्रज्ञप्त धर्मतुं

नो यान् पयुपास्ते नो विपुलेन अजनपानवाद्यसाधनं प्रतिलम्बयान्
 नो अर्गन् यावन् पृच्छति, गतेन म्यनेन विप्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त
 धर्मं नो लभते श्रवणतायै । (४) यत्रापि खलु श्रमणेन
 वा माहनेन वा साहज्यं अभिपनागच्छति, तत्रापि खलु हृत्तेन वा वस्त्रेण
 वा छत्रेण वा आत्मानमावृत्य तिष्ठति, नो अर्गन् यावन् पृच्छति एतेना-
 पि स्थानेन विप्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभते श्रवणताय, एतश्च खलु
 चित्र ! चतुर्भिः स्थानैर्जीवः नो लभते केवलप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतायै ॥

(गोयरगगय' समणं वा माहणं वा नो जाव पञ्जुवासइ, नो विउल्लेण
 असणपाणम्भाडमसाइयेणं पहिलामइ० नो अट्टाड जाव पुच्छइ
 एए ण ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं ने लभइ सवणयाए)
 गोचरं के लिये-भिक्षा के लिये-गाँव में आये हुए श्रमण के या माहण
 का जो स्पर्कार आदि करने के निमित्त उनके समक्ष नहीं जाता है, यावत्
 उनकी पर्युपासना नहीं करता है, तथा विपुल अशन, पान, स्वाध, स्वाधरूप चार
 प्रकार के आहार द्वारा जो उन्हें पतिशामिन नहीं करता है, और जो
 अर्थ से लेकर व्याकरणक उनसे नहीं पूछना है वह जीव है चित्र ! इस
 तृतीय कारण से भी केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है (३)
 (जत्थ वि णं समणेणं वा साहणेण वा सद्धिं अभिममागच्छइ, तत्थ वि ण
 हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तण वा, अप्पाण आवरित्ता विट्ठइ, नो अट्टाड जाव
 पुच्छइ, एए ण वि० ठाणेण विस्त ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए एएहिं
 च णं चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवलपन्नत्तं धम्मं मणयाए)ःसी

श्रवणु करी शक्तो नथी. (२) (गोयरगगय समणं वा माहणं वा नो जाव पञ्जुवा-
 सइ, नो विउल्लेणं असणपाणम्भाडमसाइयेणं पहिलामइ० नो अट्टाड जाव
 पुच्छइ एए ण ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवल पन्नत्तं धम्मं लभइ
 सवणयाए) गोचरं भाटे-भिक्षा भाटे गाभमा आवेत्ता श्रमणु के माहणु वगेरेने
 सत्कार वगेरे करवा भाटे के तेमनी सामे जतो नथी, यावत् तेमनी पयुपासना करतो
 नथी, तेमन् विपुल अशन, पान, आध, स्वाधरूप चार प्रकारना आहारवडे के तेमने
 प्रतिलाभित करतो नथी अने के अर्थथी भाडीने व्याकरण सुधीना यथा विषयेना
 भाषतमा तेमने प्रश्नो पूछतो नथी हे चित्र ! ते एव आ त्रीण कारणवडे पथु
 केवल प्रज्ञप्त धर्मं श्रवणु करी शक्तो नथी (३) (जत्थ वि णं समणेणं वा
 साहणेणं वा सद्धिं अभिममागच्छइ, तत्थ वि णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण
 वा, अप्पाणं आवरित्ता विट्ठइ, नो अट्टाड जाव पुच्छइ, एए ण वि ठाणेणं
 चित्ता ! जीवः केवलपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए एएहिं च णं चित्ता !
 चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवल पन्नत्तं धम्मं सवणयाए) आ प्रभाषे

चतुर्मिः म्यानैः चित्र । जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्मं लभते श्रवणतायै, तद्यथा
(१) आरामगत वा उद्यानगतं वा श्रमणं वा माहनं वा वन्दते नमस्यति यावत्
पर्युपास्ते, अर्थान् यावत् पृच्छति, एतेन स्थानेन चित्र । जीवः केवलप्रज्ञप्त
धर्मं लभते श्रवणतायै, एव (२) उपाश्रयगतम् । (३) गोचराग्रगत श्रवणं वा

प्रकार जो श्रमण अथवा माहन के माथ सगत हो जाता है वहा पर भी यह श्रमण
अथवा माहन सुक्ष्मे पहिचान न लेइस हेतु से जो अपने आपको हाथसे
वा वस्त्र से या छत्र से आवृत कर लेता है एव उनसे प्रश्नादि कुछभी
नहीं पूछता है हे चित्र ! इस चतुर्थ कारण से भी जीव केवलप्रज्ञप्त
धर्म को सुन नहीं पाता है (४) इस प्रकार हे चित्र ! ये चार कारण है कि
जिनकी वजह से यह जीव केवली भगवान् द्वारा कहे गये धर्म को सुन नहीं
पाता (चउहि ठाणेहि चित्ता ! जीवे केवलप्रज्ञप्तं धम्मं लभइ सवणयाए)
हे चित्र ! चार कारणो से जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है (तं जहा-
आरामगतं वा उज्जागगतं वा समणं वा माहनं वा वंदइ, नमसइ जाव
पज्जुवासइ) ये चार कारण इस प्रकार से है-आरामगत या उद्यानगत
श्रमण को या माहन को जो वदना करता है नमस्कार करता है, यावत्
उनकी पर्युपासना करता है (अट्ठाइ जाव पुच्छइ) अर्थो को यावत् पूछता है
(एएण ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलप्रज्ञप्तं धम्मं लभइ सवणयाए) इस
कारण को लेकर हे चित्र ! वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता (१)
है, एव (उवस्सगय ०) इसी प्रकार जो जीव उपाश्रयो में आये हुए श्रमण

ने श्रमणु के भाइणुनी साथे आवी जाता ते श्रमणु के भाइणु तेने ओणणी वे नडि
ते माटे ने पोतानी जतने हाथवडे, के वस्त्र वडे के छत्रवडे छुपावी वे छे अने
तेमने प्रश्न गेरे कथ पूछतो नथी हे चित्र ! आ सोथा कारणथी पणु एव केवलि
प्रज्ञप्त धर्मनु श्रवणु करी शकतो नथी (४) आ प्रभाणु हे चित्र ! आ यार कारणोने
वीधि ७ एव केवलीभगवान वडे कहेला धर्मं तुं श्रवणु करी शकतो नथी. (चउहि
ठाणेहि चित्ता ! जीवे केवलप्रज्ञप्त धम्मं लभइ सवणयाए) हेचित्र ! यार
कारणोथी एव केवलि-प्रज्ञप्त धर्मं तुं श्रवणु करी शकं छे (तं जहा--आरामगतं वा
उज्जागगतं वा समणं वा माहनं वा, वंदइ, नमसइ जाव पज्जुवासइ) ते
यार कारणो आ प्रभाणु छे-आराममा पधारेला के उद्यानमा पधारेला श्रमणुने के
भाइणुने ने वंदन करे छे नमस्कार करे छे, यावत् तेमनी पर्युपासना करे छे. (अट्ठाइ
जाव पुच्छइ) अर्थोने यावत् पूछे छे. (एएण ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलि
प्रज्ञप्तं धम्मं लभइ सवणयाए) आ कारणुने वीधि हे चित्र ! ते एव केवलि प्रज्ञप्त

यावत् पर्युपास्ते, विपुलेन यावत् प्रतिलम्भयति, अर्थान् यावत् पृच्छति, एतेनापि, (४) यत्रापि च खलु श्रमणेन वा० अभिसमागच्छति तत्रापि च खलु नो हस्तेन वा यावत् आवृत्य तिष्ठति, एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मलभते श्रवणायै, ना च खलु चित्र ! प्रदेशी राजा आरामगत वा तदेव सर्वं भणितव्यम् आदिमेन गमकेन यावद् आत्मानमावृत्य तिष्ठति, तत्कथं खलु चित्र ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यास्यामः ? ॥ मृ० १२३ ॥

से या माहण से उनको वन्दना करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, पर्युपासना करता हुआ अर्थों को यावत् पूछता है, ऐसा जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (२) (गोयरगगय समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेणं जाव पहिलामेइ, अट्टाडं जाव पुच्छइ, एएण वि०) इसी प्रकार जो जीव गोचरीगतश्रमण की या माहण को यावत् पर्युपासना करता है, विपुल आहार से उन्हे प्रतिगमित करना है, उनसे अर्थों को यावत् पूछता है—वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (३) (जत्थ वि य णं समणेण वा० अभिसमागच्छइ, तत्थ वि य ण णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) जहाँ पर भी श्रमण या माहण के साथ संगत होता है वहा पर जो जीव अपने आप को हाथ से यावत् आवृत्य छुगाता नहीं है ऐसा वह जीव इस चतुर्थ कारण को लेकर केवलप्रज्ञप्त जिनधर्म का श्रवण कर सकता है (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पपसी राया आरामगय वा तं चेव सब्ब माणियब्ब आइल्लएण गमएणं जाव अत्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ तं कइं ण चित्ता !

धर्मत्वं अवबुद्धीं शक्ये (१) अथ प्रभाषे (उत्तमस्यगयं०) आ प्रभाषे के एव उपाश्रयोभा आवेदा श्रमणोने के माहणोने वन्दन करते, नमस्कार करते, पर्युपासना करते, अर्थान् यावत् पूछे, अथो एव केवलप्रज्ञप्त धर्मत्वं, अवबुद्धीं शक्ये (२) (गोयरगगयं समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेणं जाव पहिलामेइ, अट्टाइ जाव पुच्छइ, एएण वि०) आ प्रभाषे के एव गोचरी भाटे नीकणोवा श्रमणोने के माहणोनी यावत् प्रयुपासना करे विपुल आहारथी तेमने प्रतिवाचित करे छे, तेमने अथी विषे यावत् पूछे ते एव केवलप्रज्ञप्त धर्मत्वं अवबुद्धीं शक्ये (३) (जत्थ वि य णं समणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थ वि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) श्रमण के महाबु गये त्या भणे के एव तेओश्रीनेनेधने पोतानी अतने पोतानी हथी वडे यावत् आवृत्य करते नथी अथो ते एव आ योथा अरबुने वीधि केवलि प्रज्ञप्त जिनधर्मत्वं अवबुद्धीं शक्ये (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पपसी राया आरामगयं वा तं चेव सब्ब माणियब्ब आइल्लएणं गमएणं जाव

टीका—‘तएण केसी’ इत्यादि—

ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण
 अवादीत्=उक्तवान्-हे चित्र ! एवं खलु त्व विजानाहि, च चतुर्भिःस्थानैः
 =कारणैः जीवःकेवलिप्रज्ञप्तं=तीर्थकुटुपदिष्ट धर्मं श्रवणतार्दै=श्रोतु नो लभते=
 नो प्राप्नोति, तद्यथा-आरामगतम्-आरामः=विविधपुष्पजात्युपशोभितः, तत्र
 गतं=प्राप्तं वा, उद्यानगतम्-उद्यानं=पुष्पफलोपेतवृक्षोपशोभितं बहुजनसेव्यम्
 उद्यानिकास्यानं=तत्र गतं=प्राप्तं वा श्रमण साधुं वा माहनं=त्राधारितं
 धावकं वा नो अभिगच्छति=सत्काराद्यर्थं नो अभिसुखं याति, नो वन्दते=

परसिस्स रन्तो धम्ममाहक्खिस्सामो) हे चित्र ! तुम्हारा प्रदेशीराजा
 आराम आदिगत श्रमण के या माहन के न सन्मुख आता है यावत न
 उनकी पर्युपासना करता है, इत्यादि प्रथम गम से लेकर वह
 चौथे गम तक युक्त बना हुआ है तो फिर मैं उसके लिये किस प्रकार
 से केवलिप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश दूँ !

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने चित्र सारथीसे जो कुछ कहा है वह
 इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है-इसमें यह समझाया गया है कि कौन
 जीव किन २ कारणों से केवलिप्रज्ञप्त धर्म सुन सकता है और कौन जीव
 किन २ ही कारणों से उसे नहीं सुन सकता है. केवलिप्रज्ञप्त धर्म की अप्राप्ति
 में प्रथम कारण यह है कि श्रमण या माहन-१२ व्रतों का पालनकर्ता-
 गृहस्थ जब किसी उद्यान में-विविध पुष्पों से या फलों से युक्त वृक्षों
 से शोभित से अनेकजनसेव्य बगीचे में या आराम में-विविध प्रकार की

अप्पार्ण आवरेत्ता विट्ठह तं कहं ण चित्ता । परसिस्स रन्तो धम्ममाह
 विस्सामो) हे चित्र ! तभारे प्रदेशी राज आराम के उद्यानमा आवेत्ता श्रमण
 के माहणुनी सामे सत्कारवा जतो नथी यावत तेमनी पर्युपासना पणु करतो नथी
 अने आ प्रभाणु ते प्रथम गमथी भांडीने चोथा जमथी युक्त अनेत्तो छे तो पछी
 हुं तेने केवलिप्रज्ञप्तधर्मनो उपदेश केवी शीते आपुं ?

टीकार्थ—केशीकुमार श्रमणने चित्रसारथीने जे कछ कछु छे ते आ सूत्र वडे स्पष्ट
 करवामा आणुं छे आ सूत्रवडे आ प्रभाणु समबलववामा आणुं छे के कथे एव
 शा शा करणोने हीधे केवलिप्रज्ञप्त धर्महु श्रवणु करी शके छे अने कथे एव शा
 शा करणोथी तेहुं श्रवणु करी शकतो नथी. केवलिप्रज्ञप्त धर्मनी अप्राप्तिमा पहेलु
 कोरणु अने जताववामा आणुं छे के श्रमण के माहणु-१२ व्रतोहु पालन कर-र
 गृहस्थ-अथारे जमे ते उद्यानमा-विविध पुष्पोथी के वृक्षोथी युक्त वृक्षोथी शोभित
 अनेक जनसेव्य बगीचामा के आराममा-अनेक जतनी पुष्प जतिओथी युक्त

मधुरवचनैः सुखशातादिप्रश्नपूर्वकं नो स्तोति, नो नमस्यति=नतमस्तको न भवति, नो सत्कारयति=अभ्युत्थादिना, नो सम्मानयति=वसत्यादिप्रदानेन, 'कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्' तत्र-कल्याणं=कल्याणस्वरूपम्, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, दैवतं=धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं-चितिः=विशिष्टज्ञानं, तथायुक्तं विशिष्टज्ञानवन्तं मन्वा नो पर्युपास्ते=नो सेवते. अर्थान् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि नो पृच्छति । तत्र-अर्थान् जीवाजीवादिपदार्थान्, हेतून्=अथवानुपपत्तिरूपान्, जीवा देवादिगतिं कथं प्राप्नुवन्ति-इति स्वरूपान्. आत्मना सह कर्मणः कथं सम्बन्धो जायते ? इति रूपान् वा, प्रश्नान्=संग्रहानोदार्थं जीवाजावादिस्वरूपप्रच्छनवेपथुना, कारणानि='जीवस्य ज्ञानादि त्रयं केन कारणेनोत्पद्यते ?' इत्यादिरूपाणि, यद्वा-चतुर्गतिलक्षणसंसारभ्रमणं

पुष्पजाति से युक्त स्थान मे आया हुआ हो, तब उस समय जो जीव उनकी सत्कृति निमित्त उनके सामने नहीं जाता है, मधुर वचनों से उनकी सुखसाता नहीं पूछता है, उनको स्तुति नहीं करता है, उनके पास नतमस्तक नहीं होता है, अभ्युत्थान आदि क्रिया से उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि प्रदान द्वारा कल्याणस्वरूप, मङ्गलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप, एवं विशिष्ट ज्ञानयुक्त उन्हें मानकर जो उनकी सेवा नहीं करता है उनसे अर्थों को-जीवाजीवादि पदार्थों को, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतु को, जैसे कि जीव देवादिगति में कैसे जाते है अथवा-आत्माके साथ कर्मों का संबंध होता है ऐसे हेतु को.-प्रश्नों को-पंश्यादिकों को दूर करने के लिये जीव अजीव आदि के स्वरूप को पूछनेरूप प्रश्नों को जीवको ज्ञानादित्रय किस कारण से उत्पन्न होते है इत्यादिरूप कारणों को. अथवा चतुर्गतिरूप संसारभ्रमण क्रिय कारण से होता है? इत्यादिरूप कारणों को, पृष्ठक-जीवादिक के स्वरूप में

स्थान-भा आवेदा होय, त्वादे ते समये जे एव तेमना सत्कार भाटे तेमनी साथे जतो नथी, मधुर वचनो वडे तेमनी सुख शाता पछतो नथी, तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी साथे नभ्रभावे भस्तक नभावतो नथी अभ्युत्थान वगेरे कियथी तेमनो सत्कार करतो नथी, वसति वगेरे आपीने तेमने कल्याण स्वरूप, मङ्गलस्वरूप, धर्म-देवस्वरूप, अने विशिष्ट ज्ञानयुक्त मानीने जे तेमनी सेवा करतो नथी, तेमने अर्थोने एवाएवादि पदार्थोने, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतुने, जेभडे एव देवादि गति देवी रीते भेजवे छे के आत्मानी साथे कर्मोना संबंध होय छे जेवा हेतुने, प्रश्नने-संशय-वगेरेने दूर करवा भाटे एव अएव वगेरेना स्वरूपने लक्षणा प्राप्तना प्रश्नोने ज्ञानादित्रय एवने देवी रीते प्राप्त थाय छे वगेरे रूप धारणेने, अथवा तो चतुर्गति

टीका—‘तएण केसी’ इत्यादि—

ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं स्मरथिम् एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण
 अवादीत्=उक्तवान्-हे चित्र ! एवं खलु त्वं विजानाहि, एतं चतुर्भिःस्थानैः
 =कारणैः जीवःकेवलप्रज्ञप्तं=तीर्थकृद्वृषदिष्ट धर्मं श्रवणतादै=श्रोतुं नो लभते=
 नो प्राप्नोति, तद्यथा-आरामगतम्-आरामः=त्रिविधपुष्पजात्युपशोभितः, एतं
 गतं=प्राप्तं वा, उद्यानगतम्-उद्यानं=पुष्पफलोपेतवृक्षोपशोभितं बहुजनसेच्यम्
 उद्यानिकास्थानं=तत्र गतं=प्राप्तं वा श्रमणं साधुं वा माह्वनं=त्राधारितं
 भावकं वा नो अभिगच्छति=सत्काराद्यर्थं नो अभिमुखं याति, नो वन्दते=

परसिस्स रन्नो धम्ममाह्विस्सामो) हे चित्र ! तुम्हारा प्रदेशी राजा
 आराम आदिगत श्रमण के या माह्वण के न सन्मुख आता है यावत् न
 उनकी पर्युपासना करता है, इत्यादि प्रथम गम से लेकर वह
 चौथे गम तक युक्त बना हुआ है तो फिर मैं उसके लिये किस प्रकार
 से केवलप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश दूँ ।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने चित्र स्मरथीसे जो कुछ कहा है वह
 इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है-इसमें यह समझाया गया है कि कौन
 जीव किन २ कारणों से केवलप्रज्ञप्त धर्म सुन सकता है और कौन जीव
 किन २ ही कारणों से उसे नहीं सुन सकता है. केवलप्रज्ञप्त धर्म की अप्राप्ति
 में प्रथम कारण यह है कि श्रमण या माह्वण-१२ व्रतों का पालनकर्ता-
 गृहस्थ जब किसी उद्यान में-त्रिविध पुष्पों से या फलों से युक्त वृक्षों
 से शोभित २ से अनेकजनसेच्य बगीचे में या आराम में-त्रिविध प्रकार की

अप्पार्षा आवरेत्ता विट्ठह तं कर्हं णं चित्ता । परसिस्स रन्नो धम्ममाह्व
 विस्सामो) हे चित्र ! तमारे प्रदेशी राजा आराम के उद्यानमा आवेत्ता श्रमण
 के माह्वणनी सामे सत्कारवा जतो नथी यावत् तेमनी पर्युपासना पणु करतो नथी
 अने आ प्रभाणु ते प्रथम गमथी मांडीने योथा जमथी युक्त भनेवो छे तो पछी
 हुं तेने केवलप्रज्ञप्तधर्मनो उपदेश देवी रीते आपुं ?

टीकार्थ—केशीकुमार श्रमणु चित्रस्मरथीने जे कथ कळु छे ते आ सूत्र वडे स्पष्ट
 करवामां आणुं छे. आ सूत्रवडे आ प्रभाणु समनववामा आणुं छे के कथे एव
 था था करणुने वीधि केवलप्रज्ञप्त धर्महु श्रवणु करी शके छे अने कथे एव था
 था करणुथी तेहुं श्रवणु करी शकतो नथी. केवलप्रज्ञप्त धर्मनी अप्राप्तिमा पहेल
 करणु जे पताववामां आणु छे के श्रमणु के माह्वण-१२ व्रतोहु पालन कर-
 गृहस्थ-ज्यादे गमे ते उद्यानमा-त्रिविध पुष्पोथी के वृक्षोथी युक्त वृक्षोथी शोभित
 अनेक जनसेच्य बगीचामा के आराममा-अनेक जतनी पुष्प कतिज्योथी युक्त

मधुरवचनैः सुखशातादिप्रश्नपूर्वक नो स्तोति, नो नमस्यति=नतमस्तको न भवति, नो सत्कारयति=अभ्युत्थादिना, नो सम्मानयति=वसत्यादिप्रदानेन, 'कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्' तत्र-कल्याण=कल्याणस्वरूपम्, .मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, दैवतं=धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं-चितिः=विशिष्टज्ञानं, तयायुक्तं विशिष्टज्ञानवन्तं मन्वा नो पर्युपास्ते=नो सेवते, अर्थात् हेतून प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि नो पृच्छति । तत्र-अर्थान् जीवाजीवादिपदार्थान्, हेतून्=अन्यथानुपपत्तिरूपान्, जीवा देशादिगतिं कथं पाप्नुवन्ति-इति स्वरूपान्. आत्मना सह कर्मणः कथं सम्बन्धो जायते? इति रूपान् वा, प्रश्नान्=संशयानोदार्थं जीवाजात्रादिसरूपप्रच्छन्नेपयाम, कारणानि='जीवस्य ज्ञानादि त्रयं केन कारणेनोत्पद्यते?' इत्यादिरूपाणि, यद्वा-'चतुर्गतिरक्षणसंसारभ्रमणं

पुष्पजाति से युक्त स्थान में आया हुआ हो, तब उस समय जो जीव उनकी सत्कृति निमित्त उनके सामने नहीं जाता है, मधुर वचनों से उनकी सुखसाता नहीं पूछता है, उनको स्तुति नहीं करता है, उनके पास नतमस्तक नहीं होता है, अभ्युत्थान आदि क्रिया से उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि प्रदान द्वारा कल्याणस्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप, एवं विशिष्ट ज्ञानयुक्त उन्हें मानकर जो उनकी सेवा नहीं करता है उनसे अर्थों को-जीवाजीवादि पदार्थों को, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतु को, जैसे कि जीव देशादिगति में कैसे जाते है अथवा-आत्माके साथ कर्मों का संबंध होता है ऐसे हेतु को.-प्रश्नों को-पंशयादियों को दूर करने के लिये जीव अजीब आदि के स्वरूप को पूछनेरूप प्रश्नों को जीवको ज्ञानादित्रय किस कारण से उत्पन्न होते हैं इत्यादिरूप कारणों को, अथवा चतुर्गतिरूप संसारभ्रमण किम कारण से होता है? इत्यादिरूप कारणों को, पृष्टक-जीवादिक के स्वरूप में

स्थान-भा आवेदा होय, त्पारे ते समये जे एव तेमना सत्कार भाटे तेमनी सामे जतो नथी, मधुर वचनो वडे तेमनी सुख शाता पूछतो नथी, तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी सामे नम्रबावे मस्तक नभावतो नथी अभ्युत्थान वगेरे क्थियाथी तेमनो सत्कार करतो नथी, वसति वगेरे आपीने तेमने कल्याण स्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्म-देवस्वरूप, अने विशिष्ट ज्ञानयुक्त भानीने जे तेमनी सेवा करतो नथी, तेमने अर्थाने एवाएवादि पदार्थाने, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतुने, जेभके एव हेवादि गति केवी रीते भणवे छे के आत्मानी साथे कर्मोना संबंध होय छे जेवा हेतुने, प्रश्नने-संशय-वगेरेने इर करवा भाटे एव अएव वगेरेना स्वरूपने आशुवा भाषतना प्रश्नोने ज्ञानादित्रय एवने केवी रीते प्राप्त थाय छे वगेरे रूप करबोने, अथवा तो यतुभंति

केन कारणेन भवति' इत्यादि रूपाणि, व्याकरणानि=पृष्ठस्य जीवादिस्वरूपस्य उत्तरतया प्रश्नान्तरकरणरूपाणि, तानि नो पृच्छति-एतेन स्थानेन=कारणेन चित्र । जीवः केवलिप्रज्ञप्त धर्मं श्रवणतायै=श्रोतुं नो लभते-इति प्रथमं तथा नम् १। द्वितीयमाह-उपाश्रयगतम्-उपाश्रयो=वसतिः, तत्र गत श्रमण वा, इतो ऽग्रे-‘माहनं वा’ इत्यारभ्य ‘व्याकरणानि पृच्छति’ इत्यन्तः सकलोऽपि पूर्वोक्तः पाठो ग्राह्यः अमृमेवार्थं सूचयितुमाह-त चेव जाव’ इति । हे चित्र ! एतेनाऽपि स्थानेन=कारणेन जीवः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतायै=श्रोतुं नो लभते इति द्वितीयं स्थानम् २। तृतीयमाह-गोचराग्रगतं=मिक्षार्थं ग्रामाभ्यन्तरे प्रविष्ट श्रमणं वा माहनं वा नो ‘यावत्’ यावत्पदेन-‘अभिगच्छति, नो वन्दते, नो

प्राप्त किये गये उत्तर में पुनः प्रश्नान्तर करनेरूप व्याकरणों को, नहीं पूछता है, इस कारण से जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है-इस प्रकार से यह प्रथम स्थान का निरूपण है। द्वितीयस्थान का कारण निरूपण इस प्रकार है-उपाश्रय-में जाकर श्रमण को, अथवा माहन को, जो जीव प्राप्त करके यावत् व्याकरणों को नहीं पूछता है, हे चित्र ! इस कारण से भी जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं पाता है, यहां ‘त चेव यावत्’ पद से ‘माहनं वा’ यहां से लेकर ‘व्याकरणानि पृच्छति’ वहां तक का सम्पूर्ण पाठ ग्रहण किया गया है। इसी अर्थ की सूचना ‘त चेव जाव’ पद से दी गई है। तृतीयस्थान इस प्रकार से है-श्रमण या माहन मिक्षा के लिये ग्राम के भीतर आया हो, परन्तु जो जीव उनके समक्ष नहीं जाता है, उनको वन्दना नहीं करता है उन्हें नमस्कार नहीं करता है, उनका

इय स सारभ्रमणु शा कारणुथी होय छे वगेरे इय कारणेने, पृष्ठ लवादिङ्गनां स्वइय विषे जे उत्तर आपवामा आवे ते विषे करी सामे प्रश्नोत्तर करवा इय व्याकरणेने पूछतो नथी, आ कारणुथी लव डेवलि प्रज्ञप्त धर्मंतु श्रवणु करी शकतो नथी आ प्रभाषे आ प्रथमस्थानंतुं निइपणु छे द्वितीयस्थानना कारणुतु निइपणु आ प्रभाषे छे, उपाश्रयमा जधने श्रमणुने के माहणुने प्राप्त करीने जे लव यावत् व्याकरणेने पूछतो नथी, हे चित्र ! आ कारणुथी पणु लव डेवलिप्रज्ञप्त धर्मंतुं श्रवणु करी शकतो नथी अर्हो ‘त चेव यावत्’ पदथी ‘माहनं वा’ अर्होथी भाडीने ‘व्याकरणानि पृच्छति’ अर्हो सुधीने सपूर्ण पाठ ग्रहणु करवामा आण्ये छे जेअ अर्थने ‘त चेव जाव’ पदथी सूचित करवामां आण्ये छे तृतीय स्थान आ प्रभाषे छे-श्रमणु के माहणु गोचरी भाटे-मिक्षा भाटे-ग्राममा आवेला होय जेवी पस्ति स्थितिमां जे लव तेमनी सामे जतो नथी, तेमने वदन करतो नथी तेमने नमस्कार

नमस्यति, नो सत्कारयति, नो म मानयति, नो कल्याण मङ्गल दैत चैन्यम्, इति संग्राहम्, पर्युपास्ते, तथा-विपुलेन=प्रचुरेण अशनपानग्वाद्यस्वाद्येन=अशनादिना चतुर्विधेनाहारेण ना प्रतिलभयति-अशनादिकं श्रमणाय माहनाय वा नो ददाति, अर्थात् यावत्-यावत्पदेन-हेतून् प्रश्नान कारणानि व्याकरणानि' इति संग्राह्यम् नो पृच्छति । एतेन=उपर्युक्तेन कारणेन हे चित्र । जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतयै=श्रोतु नो लभते-इति तृतीयं स्थानम् ३। चतुर्थस्थानमाह-प्रवारि=स्मिन् कस्मिंश्चदपि स्थाने खलु श्रमणेन=साधुना वा महात्तेन=द्वादशव्रतधारिणा वा सङ्गै=सह अभिसमागच्छति=सगतो भवति, तत्रापि खलु 'अथ श्रमणो वा माहनो वा मां न परिचिनुयात्' इति हेतः आत्मानं=स्व हस्तेन वा वस्त्रेण वा छत्रेण वा आगत्य=आच्छाद्य विष्टति नो अर्थात् यावत् पृच्छति । एतेनापि स्थानेन=कारणेन चित्र ! जीवः

सत्कार और सम्मान नहीं करता है, तथा कल्याणरूप, मंगलरूप, धर्मदेवरूप मानकर तथा विशिष्टज्ञानयुक्त मानकर उनको सेवा नहीं करता है, तथा विपुल-प्रचुर-अशन, पान खाद्य, स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार से उन्हें प्रतिलाभित नहीं करता है, अर्थात् श्रमण के लिये माहन के लिये जो चतुर्विध आहार नहीं देता है, एव अर्थों को, हेतु को, प्रश्नों को, कारणों को तथा व्याकरणों को उनसे नहीं पूछना है इस उपर्युक्त कारण से हे चित्र ! जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन सकता है। चतुर्थस्थान इस प्रकार से है-चाहे जिस किसी भी स्थान में साधु या माहन-१२ व्रतधारी श्रावक के साथ सगत हो जावे-परन्तु वहाँ पर भी वह जीव अपने आपको हाथ से, या वस्त्र से, या छत्र से, ढंक लेता है इस खयाल से कि महाराज मुझे पहिचान न ले और न उनसे अर्थादिकों

करतो नहीं, तेमहु सम्मान अने सत्कार करतो नहीं तेमज तेमहु कल्याणरूप मंगलरूप, धर्मदेव स्वरूप मानने तथा विशिष्ट ज्ञानयुक्त मानने तेमनी सेवा करतो नहीं तेमज विपुलप्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार वडे तेमने प्रतिलाभित करतो नहीं अेटवे ३ अमजुने के माहजुने जे चतुर्विध आहार आपतो नहीं तथा अर्थोने, हेतुकोने प्रश्नोने कारणोने तथा व्याकरणोने तेमने पूछतो नहीं आ उक्त कारणो ही हे चित्र । एव केवलप्रज्ञप्त धर्महुं अवलु करी शकतो नहीं चतुर्थ स्थान आ प्रमाद्ये छि-गमे ते स्थाने साधु के माहन-१२ व्रतधारी श्रावक भणे त्यारे जे एव पितानी जतने महाराज अमने जोणपी हे नहि तेवा विचारथी हाथवडे, के वस्त्रवडे, के छत्रवडे संताडी हे छे अने तेमने अर्थादिको विषे पलु पूछतो नहीं

केवलप्रज्ञप्त धर्म मणतायै=श्रोतुं न लभते-इति चतुर्थ स्थानम् ४। सम्प्र-
त्युपमंहरन्नाह-एतैश्चतुर्भिः स्थानैः खलु चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्म-
श्रवणतायै=श्रोतुं न लभते-इति ।

इत्थं केवलप्रज्ञप्तस्य धर्मस्यालामे चतुर्विध कारणमुक्तत्वात्प्रति तल्लामे
चतुर्विध कारणमाह—'चउर्हि' इत्यादि ।

हे चित्र ! चतुर्भिः स्थानैः=कारणैः जीवः केवलप्रज्ञप्तां धर्म श्रवण-
तायै=श्रोतुं लभते, तद्यथा—'आरामगतं वा' इत्यादि । केवलप्रज्ञप्तधर्मालामे
यानि चत्वारि स्थानानि प्रोक्तानि, तान्येवात्र तद्वेपरोत्थेन विज्ञेयानीति ।

को पूछता है—तो ऐसा जीव इस कारण से भी केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन
नहीं पाता है. अब केशीकुमारश्रमण उपसंहार करते हुए कहते हैं कि हे
चित्र ! जीवको धर्मलाम होने में ये चार कारण बाधक हैं। इनके होने
से जीव को केवलप्रज्ञप्त धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

इस तरह केवलप्रज्ञप्त धर्म के अलाम में चतुर्विध कारण कहकर
अब केशीकुमारश्रमण उसका लाम होने में चार कारणों का कथन करते
हैं 'चउर्हि ठाणेहि' हे चित्र ! चार कारणों से जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को
सुनता है अर्थात् केवलप्रज्ञप्त धर्म के अलाम में जो चार कारण प्रकट
किये गये हैं, वे ही चार कारण विपरीतरूप से आवरित होने पर जीव
के लिये धर्मलाम के कारण हो जाते हैं यही बात '१ आरामगत वा उज्जा-
णगतं वा' इत्यादि चार सूत्रपाठ द्वारा प्रकटकिया है।

तो आ लवने लव पक्षु आ कारखुथी केवलप्रज्ञप्त धर्मतुं श्रवणु करी शकते
नथी हवे केशीकुमार श्रमणु उपसंहार करता कहे छे के छे चित्र ! लवने धर्मलामनी
प्राप्तिमा आ चार कारखो विधनइधे नडे छे. आ सर्वथी लवने केवलप्रज्ञप्त धर्मनी
प्राप्ति थती नथी

आ प्रभाणु केवलप्रज्ञप्त धर्मना अलाम सभधी चार कारखोतुं विवेचन
करीने हवे केशीकुमार श्रमणु केवलप्रज्ञप्त धर्मना लाम माटे ने चार कारखो छे तेमनुं
कथन करता कहे छे—'चउर्हि ठाणेहि' हे चित्र ! चार कारखोथी लव केवलप्रज्ञप्त
धर्मतुं श्रवणु करे छे. ओःके के केवलप्रज्ञप्त धर्मना अलाममा ने चार कारखो
भताववामा आऽयां छे, तेच चारेचारे कारखो विपरीत रूपमा आचरवामा आवे तो
तेल चार कारखो धर्मलाम माटे उपयोगी थथ नथ छे. ओऽवात् "१ आरामगत
वा उज्जाणगतं वा" वगैरे चार सूत्रो वडे प्रकट करवामा आवी छे.

इत्थं केवलप्रज्ञप्तधर्मालाभालाभयोः कारणान्युत्तवा सम्प्रति वैवलप्रज्ञप्त-
धर्मालाभे यानि कारणानि सन्ति तद्विशिष्ट एव प्रदेशी राजाऽस्ति स कथ
मया धर्मआख्येयः? इति केशिकुमारश्रमणश्चित्रं सारथिमाह— तुज्झं च
ण चित्ता! पएसी राया' इत्यादि। हे चित्र! तत्र=त्वदीयश्च खलु प्रदेशी
राजा आरामगतं वा, 'तं चेव सत्त्वं भाणियन्वं आइल्लएण गमएणं जाव अप्पाणं
आवरेत्ता चिद्धः' इति पाठेन तदेव सर्वगमकजात भणितव्यम् केन गमकेन?
इत्याह—'आइल्लएणं' इति आदिमेन गमकेन=अगलापकेन 'उज्जाणगयं वा'
उद्यानगतं वा, इत्याश्रय 'अप्पां आवरेत्ता चिद्ध' आन्मानमावृत्य विष्ठति, इति
पर्यन्त भणितव्यम्। एव त्रिषःस्वदीयः प्रदेशी राजाऽस्ति, तत्कथं=केन प्र-
कारेण खलु चित्र! एव विधाय त्वदीयाय प्रदेशिने राज्ञे वय धर्मम् आख्या-
स्यामः=उपदेक्ष्याम इति ॥ सू० १२३ ॥

मूलम्—तएणं से चित्त सारही केसिकुमारसमण' एवं वयासी एवं खलु-
भंते! अणया कयाइ कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया, ते
मए पएसिस्स रणो अन्नया, चेव उवणीया तं एणं खलु भंते! कार-
णेणं अहं पएसिं रायं देवाणुप्पियाणं अतिए हव्वमाणेस्सामि, तं मा णं
देवाणुप्पिया! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह,

इस तरह धर्मअप्राप्ति और धर्मप्राप्ति के कारणों को कहकर अब
केशीकुमारश्रमण चित्र सारथी के प्रति यह प्रकट कर रहे हैं कि प्रदेशी
राजा केवलप्रज्ञप्त धर्म के अप्राप्ति के कारणों से विशिष्ट है अतः मैं
उसे किस प्रकार से धर्म का उपदेश दूँ. यही बात केशीकुमारश्रमण
श्वित्र सारथि से यहाँ से आगे कहते हैं. 'तुज्झं च ण चित्ता। पएसी
राया' इत्यादि मूलार्थ में टीका के अनुसार ही इस सब पाठका अर्थ
लिख ही दिया गया है। अतः पुनः यहाँ नहीं लिखा है ॥सू० १२३॥

આ રીતે ધર્મ અપ્રાપ્તિ અને ધર્મ પ્રાપ્તિના કારણોનું સ્પષ્ટીકરણ કરીને હવે
કેશીકુમાર શ્રમણ ચિત્રસારથીની સામે આ વાત કહે છે કે-પ્રદેશી રાજા કેવલ પ્રજ્ઞપ્ત
ધર્મના અપ્રાપ્તિના કારણોથી યુક્ત છે. એથી હું તેને કેવી રીતે ધર્મનો ઉપદેશ કરૂં.
એજ વાત કેશીકુમારશ્રમણ ચિત્રસારથીને આ પ્રમાણે કહે છે—“તુજ્ઝ” ચ ણ ચિત્તા!
પપ્પસી રાયા” વગેરે મૂલ્યાર્થભાજ ટીકાઈ પ્રમાણે, જ આ બધાનું વિસ્તૃત વર્ણન કરવા-
ના આંબુ છે. એથી અહીં ફરી અર્થ લખવામા આંચો નથી. ॥સુ ૧૨૩॥

अगिला एण भंते ! तुब्भे पएसिस्सरणो धम्ममाइक्खेज्जाह, छंदेण भंते ! तुब्भे पएसिस्सरणो धम्ममाइक्खेज्जाह । तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी आवीयाइ चित्ता ! जागिहसामो । तएणं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वंदइ नमसइ जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घट आसरह दुरूहइ, जामेव दि० पाउब्भए तामेव दिस्सि पडिगए ॥ सू० १२४ ॥

छाया-ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्-एव खलु भदन्त ! अन्यदा कदाचित् काम्बोजैः चत्वारः अश्वः उपनयमुपनीताः ते मया प्रदेशिने राज्ञे अन्यदैव उपनीताः, तद् एतेन खलु भदन्त ! कारणेन अहं प्रदेशिनं राजानं देवानुप्रियाणामन्तिके हृद्यमानेष्याम । तत मा खलु देवानुप्रियाः ! यूय प्रदेशिने राज्ञे धर्मसारुयान्तो ग्लायत, अग्लानाः

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) इमके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारथि (केशिकुमारसमणं एव वयासी) केशो कुमारश्रमण से ऐसा बोला (एण खलु भंते ! अण्णया कयाइ कंबोएहिं चत्तारि आपा उवणय उवणीया) हे भदन्त ! किसी एक समय काम्बोजदेशवासियों ने चार घोड़े भेट रूप में भेजे थे (ते मए पएसिस्सरणो अण्णयाचेव उवणीया) उसे मैंने प्रदेशी राजा के समक्ष भेट में उन्ही दिन दे दिया (तएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पस्सिं रायं देवानुप्रियाण अतिए हव्वमाणेस्सामि) अतः इस कारण से हे भदन्त ! मैं प्रदेशी राजाको आप देवानुप्रिय के पास बहुत ही शीघ्र

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथिजे (केशिकुमारसमणं एव वयासी) केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाषे चिन्ती उरुत्ता उरुत्ता—(एव खलु भंते ! अण्णया कयाइ कंबोएहिं चत्तारि आपा उवणय उवणीया) हे भदन्त ! केशी अहं वधते उरुत्ता देशवासीओजे थार घोडाओ प्रदेशी राजाने भेट भेड्ढया उरुत्ता (ते मए पएसिस्सरणो अण्णयाचेव उवणीया) ते घोडाओने भे प्रदेशी राजा सामे भेटउपमा अर्पित करी दीधा छे. (तएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पस्सिं रायं देवानुप्रियाण अतिए हव्वमाणेस्सामि) अथी हे भदन्त ! प्रदेशी राजाने आप देवानुप्रियनी पासे न्हदी व उपस्थित छे .

खलु भदन्त ! गृयं प्रदेशिने राजे धर्ममाख्यात, छन्देन भदन्त ! गृयं प्रदेशिने राजे धर्ममाख्यात । ततः खलु म केशीकुमारश्रमणः चित्र सारथिमेवमवादीत्—अपि च चित्र ! जास्यामः । ततः खलु म चित्रः सारथिः केशिनकुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, यत्रैव चानुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैवो

लाजंगा (त मा णं देवाणुप्पिया ! तुव्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह) तो आप हे देवानुप्रिय ! प्रदेशी राजा को जिनोक्त धर्म का उपदेश करते समय ग्लानि मत करना (अगिलाए णं भंते ! तुव्भे पएसिस्स धम्ममाइक्खेज्जाह) प्रत्युत अग्लानिभाव से ही हे भदन्त ! आप प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश करना (छदेणं भंते ! तुव्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह) तथा आप अपनी इच्छा के अनुसार ही हे भदन्त ! प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश देना. उसकी इच्छा के अनुसार नहीं (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब उन केशीकुमारश्रमणने चित्र सारथि से ऐसा कहा—(अवियाइ चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! अबसर आने पर देखा जावेगा. आप के कथनानुसार उसे धर्मोपदेश देने का मेरा भाव तो है। (तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वडइ, नमसइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इसके अनन्तर चित्र सारथिने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया, और फिर वह जहाँ चार घंटोंवाला अश्वरथ था वहाँ पर आया

(त मा ण देवाणुप्पिया ! तुव्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाए ज्जाह) तो हे देवानुप्रिय ! आपश्री ते प्रदेशी राजने जिनोक्त धर्मने उपदेश करता ग्लानि अनुभवथे नहि (अगिलाए ण भंते ! तुव्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खेज्जाह) परंतु हे भदत ! आपश्री ते प्रदेशी राजने अग्लानिभावथी न धर्मोपदेश करथे। (छ देण भंते ! तुव्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह) तेभन हे भदत ! आपश्री पोतानी धम्म सुब्भ न प्रदेशी राजने धर्मोपदेश करथे। तेनी धम्म प्रभाषे नहि (तए ण से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) त्पारे ते केशीकुमार श्रमण्णे ते चित्रसारथिने आ प्रभाषे कब्बुं (अवियाइ चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! उचित अवसर आवथे त्पारे जेधं वधथुं तमे कब्बे थे। ते सुब्भ मारी पब्बु तेभने उपदेश करवानी भावना छे न. (तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वडइ, नमसइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्पार पछी चित्रसारथिने केशीकुमारश्रमण्णे वन्दना करी नमस्कार कर्यां अने पछी ते चार घंटोथी युक्त अश्वरथ हुतो. त्यां आण्ये। (चाउग्घटं

पागच्छति, चातुर्घण्टमश्वरथ दूरोहति, यामेव दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० १२४ ॥

टीका—‘दृष्टं’ से चित्ते’ इत्यादि—ततः खलु न चित्रः सारथिः केशि कुमारश्चमणमेवमवादात्—एवं खलु हे भदन्त ! अन्यदा कदाचित् = कर्मिश्चित् काले काम्बोजैः = काम्बोजदेशवासिभिः चत्वारः = चतुःसंख्यकाः अश्वः उपनय = प्राभृतम् उपनीताः = प्रापिताः, प्राभृतत्वेन दत्ता ह्यर्थः, ते मया अन्यदैव = तस्मिन्नेव काले प्रदेशिने राज्ञे उपनीताः तदेतेन कारणेन खलु हे भदन्त ! अहं प्रदेशिन राजान देवानुप्रियाणां = भवताम् अन्तिके = समीपे ह्ययं = शीघ्रम् आनेष्यामि, तत्—तदा हे देवानुप्रियाः ! प्रदेशिने राज्ञे धर्म = जिनोक्तम् आख्यान्तः = कथयन्तः सन्तो यूय मा ग्लायत = ग्लानिं मा भजत, एतावदेव न प्रत्युत छन्देन = स्वकीयाभिप्रायेण यथेच्छमित्यर्थः हे भदन्त ! यूय प्रदेशिने राज्ञे धर्मम् आख्यान = कथयत । ततः चित्रसारथेः कथना-

(चातुर्घट आसरह दुरुहह, जामेव दिशि पाउम्भूए तामेव दिशि पडिगए) वहल आकर वह उस चारघटों वाले अश्वरथपर सवार हो गया और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

टीकार्थ—चित्र सारथिने केशीकुमारश्चमण से ऐसा कहा—हे भदन्त ! किसी एक समय मेरे पास काम्बोजदेशवासियों द्वारा भेजे गये ४ घोड़े प्रदेशी राजा के लिये भेटरूप में आये थे सो मैंने उसी दिन वे घोड़े प्रदेशी राजाके लिये शिसित कर दिये. इस तरह हमारी उनकी परस्पर में प्रीति है. इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप उसे जिनप्रतिपादित धर्म का उपदेश देवे मैं उसे आपके पास शीघ्र ही ले आऊंगा, उपदेश देने में आप किसी भी प्रकार का संकोच न करें. अपनी इच्छा के अनुसार धर्म

आसरह दुरुहह जामेव दिशि पाउम्भूए तामेव दिशि पडिगए) त्या पडोळीने ते पोताना चार घटोवाणा अश्वरथ पर सवार थळ गये अने ते दिशा तरक्षी ते आवेळ हुने तेज दिशा तरक्ष पाछा जतो रहो

टीकार्थ —चित्रसारथिजे केशीकुमारश्चमणने आ प्रभाणे कहुं—हे भदत ! कोण कोण वपने मारी पासे कोण देशवासीज्योको राजने बोटमा आपवा माटे बोडोको भोडल्या हुता तेज दिवसे ते बोडोकोने प्रदेशी राजने मे अर्पित करी हीधा आभ तेमनी कमारी साथे मित्रता छ ज्येथी ज हु धम्हु छु के आपथ्री तेमने जिन प्रतिपादित धर्मने उपदेश करे. तेमने हु आपथ्रीनी पासे जवही बावीश उपदेश आपवामा आपथ्री पोतानी धम्हा मुज्ज धर्मनी वातो प्रदेशी राजने सबाणावणे

नन्तरं खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एव=रक्ष्यमाणप्रकारेण
 अवादीत्=अकथयत्—‘अविआइ’ अपि च हे चित्र । ज्ञास्यामः=अत्रगमिष्यामः
 यथावसरं करिष्याम इत्यर्थः, त्वत्कथनानुसारेण करणस्य मम भावो वर्धत
 इत्याशयः । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वदन्ते नमस्यति
 चातुर्घण्टाभरथसमीपे समागत्याश्वरथमारोहति, यामेवदिशं समाश्रित्य प्रादु-
 र्भूतः=समागतः तामेवदिशं प्रतिगतः=प्रस्थितः ॥ मू० १२४ ॥

मूलम्—तएणं मे चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्ल-
 प्पलकमलकोमल्लुम्मिलियम्मि अहांपंडुरे पभाए कयनियमावस्सए
 सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ,
 जेणेव पएसिस्स रत्तो गिहे जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ,
 पर्पास रायं करयल्ल—जाव कट्ठु जएणं विज्जएणं वद्धावेइ, एवंवयासी-
 एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया
 ते य मए देवाणुप्पियाणं अण्णया चैव विणइया, तं एएणं सामी !
 ते आसे आइड्डिंए पासइ । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं
 वयासी—गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! तेहिं चैव चउहिं आसेहिं आसरहे
 जुत्तामेव उवट्टुवेहि जाव पच्चप्पिणाहि । तएणं से चित्ते सारही पए-

की बातें उसे सुनावें. चित्र सारथि का इस प्रकार कथन सुनकर केशी-
 कुमारश्रमणने उससे ऐसा कहा—चित्र ! समय आने पर देखा जावेगा. मेरा
 भाव अयक्षय ऐसा हुआ है कि मैं उसे जित्नेन्द्रप्रतिपादित धर्म का उपदेश
 करूँ । केशीकुमारश्रमण की इस प्रकार की भावना जानकर चित्र सारथिने उनको
 वन्दनादिकिये और फिर अपने रथ पर मवार होकर अपने स्थान पर
 वापिस हो गया, ॥ मू० १२४ ॥

चित्रसारथिस्तु आ प्रभाषे कथन साधनीने केशीकुमार श्रमण्णे तेने आभ कल्लु के डे
 चित्र । उचित अवसर आवसे त्तारे नेध लधंशु . भारी जेवी धम्मा छे के डे तेने
 जिनेद्र प्रतिपादित धर्मने उपदेश करे केशीकुमार श्रमण्ण्य आ नतनी भावना
 लक्ष्मीने चित्रसारथिजे तेमने वन्दन कर्था अने त्तारपछी पोटाना रथ पर सवार थधने
 पोताना नि ।सस्थाने पाछा आवतो रह्यो ॥ मू १२४ ॥

सिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु जाव-हियाए उवट्टुवेइ एयमाण-
त्तिय पञ्चप्पिणइ । तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अंतिए
एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु-जाव अप्पमहग्घाभरणाळंकियसरीरे
साओ गिहाओ णिग्गच्छइ, जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव
उवागच्छइ, चाउग्घटं आसरहं दूरुहइ, सेयवियाए नयगीए मज्झं-
मज्झेणं णिग्गच्छइ । तएणं से चित्ते सारही तं रह णेगाइ जोयणाइ
उब्भामेइ । तएणं से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रह्वाएण य
परिकिलंते समाणे चित्तं सारहि एवं वयासी-चित्ता ! परिकिलंते मे
सरीरे परावत्तेहि रह । तएणं से चित्ते सारही रह परावत्तेइ जेणेव
मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, पएसि राय एव वयासी-ए स णं
सामी ! मियवणे उज्जाणे एत्थणं आसणं समं किलामं सम्मं अवणेमो ।
तएणं से पएसी राया चित्तं सारहि एवं वयासी-ए होउचित्ता । १२५।

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः कल्य प्रादुष्प्रभाताया रजन्यां
फुल्लोत्फुल्लकमलकोमलोन्मीलिते अथाऽऽपाण्डुरे प्रभाते कृतनयमावश्यके सहस्र

‘तए ण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण) इमके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्रसारथि
(कल पाठप्पभायाए रयणीए) दूसरे दिन जब कि प्रातःकाल के रूप में
बदल गई और (फुल्लप्पलकमल कोमलुम्मिलियम्मि अथापण्डुरे प्रभाए कयनि-
यमावस्सए) कमल विकसित हो चुके तथा नियम और आवश्यक कृत्य
जिसमें लोग कर चुके थे ऐसा पीतधवल प्रभात जब हो गया (सहस्स

‘तए ण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्रसारथि- (कल
पाठप्पभायाए रयणीए) थील दिवसे न्थारे रात्री प्रातःकालेना इपमा परिचुत थध
गध अने (फुल्लप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अथापण्डुरे प्रभाए कयनियमाव-
स्सए) इमणेा विहास पात्था तेमज्ज नियम अने आवश्यक कृत्यो नेमा दोडेा वडे
पूरा करवाभा आब्बा. ओपुं पीतधवल प्रभात न्थारे थधु (सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे

रश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति स्वाद् गृहाद् निर्गच्छति, यत्रैव प्रदेशिनो राज्ञो गृहं यत्रैव प्रदेशी राजा तत्रैवोपागच्छति प्रदेशिनं राजानं करतल-यावत् कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयति, एवमवादीत्-एव खलु देवानुप्रियाणा कम्बोजेषु चत्वारोऽश्वा उपनयम् उपनीता, ते च मया देवानुप्रियेभ्यः अन्यदा-चैव विनयिताः तद् एत खलु स्वामिन् ! तान् अश्वान् आत्मद्विकान् पश्यत । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिम् एवमवादीत्-गच्छ खलु

रस्सिमि दिणयरे तेयसा जलते साओ गिहाओ गिगगच्छइ) एव सहस्रकि-रणो वाला सूर्य जब अपने तेज से चमकने लगा-अपने घर से निकला (जेणेव पएसिस्स रणो गिहे जेणेव पएसी राया, तेणेव उवागच्छइ) निकल कर वह वहां गया जहां प्रदेशी राजा का गृह था और उसमें भी जहां वह प्रदेशी राजा था (पएसिराय करयल जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ) वहां जाकर उसने प्रदेशी राजा को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय के साथ प्रणाम किया और जय विजय शब्दों का उच्चारण करते हुए उसे वधाई दी (एवं वयासी) वधाई देकर फिर उसने उससे ऐसा कहा— (एवं खलु देवानुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आपा उवणयं उवणीया) कम्बोजदेशवासियोंने चार घोड़े मेटरूप में आप देवानुप्रिय के लिये भेजे थे (ते य मए देवानुप्पियाणं अण्णया चैव विणइया) उन्हें मैंने आपके लिये विनीत उमी दिन बना दिया है। अर्थात् शिक्षित कर दिया है। (तं एह णं सामी तं आसे आइहिं पामइ) अतः आप वधाई और स्वकीयप्रशस्तगति आदि

तेयसा जलते साओ गिहाओ गिगगच्छइ) अने सहस्र किरणोवाणो सूर्य ज्यारे पोताना तेज्ज्जी प्रकाशित था। दाया, पोताना धरेथी नीकण्ठो, (जेणेव पएसिस्स रणो गिहे जेणेव पएसी राया, तेणेव उवागच्छइ) नीकण्ठिने ते ज्ज्या प्रदेशी राजा गृह इत्तु अने तेमा पण्णु ज्ज्या ते प्रदेशी राजा इतो त्या गथो, (पएसि रायं करयल जाव कट्टु जएणं विजएण वद्धावेइ) त्या ज्जधने तेण्णे प्रदेशी राजा ने अन्ने हाथ जोडीने नम्रतापूर्वक प्रणाम कया अने जयविजयना शब्दोत्तु उच्चारण करीने तेने वधाभण्णी आपी, (एव वयासी) वधाभण्णी आपी तेण्णे तेने आ प्रभाण्णे कण्ठं (एवं खलु देवानुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आपा उवणयं उवणीया) कम्बोज देशना नागरिकोणे आप देवानुप्रिय माटे चार घोडाओ बेट इपम भोडक्याछे (ते य मए देवानुप्पियाणं अण्णया चैव विणइया) ते घोडाओने भे तेज निवसे आपश्रीना माटे ज्योच्च शिक्षित बनावी हीदा छे (त एह णं सामी तं आसे आइहिं पामइ) ज्येथी आप वधाई अने स्वकीय प्रशस्त गति वगेरे शकितओ।

त्व चित्र ! तैरेव चतुर्भिरश्वैः अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापय यावत् प्रत्यर्पय । ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवमुक्तःमन् हृष्ट तृष्ट-यावत् हृदय उपस्थापयन्ति, एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेरन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट तृष्ट-यावद् अल्प-महाघाभरणालङ्कृतशरीरः स्वाद् शृङ्गाद् निर्गच्छति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथ

शक्ति रो युक्त हृष्ट इन्हें देखिये। (तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब उस प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से ऐसा कहा— (गच्छहि ण तुम चित्ता ! तेहिं चैव चउहिं आसेहिं आसरहं जुतामेव उवट्टवेहिं जाव पच्चप्पिणाहि) हे चित्र ! तुम जाओ और उन्ही कम्बोज से प्राप्त हुए चारो घोडों से युक्त करके अश्वरथ को तैयार कर ले आओ। और उम बात की मुझे पीछे खबर दो (तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ट जाव हियए उवट्टवेह् एयमाणत्तिर पच्चप्पिणह्) इम प्रकार से प्रदेशी राजा द्वारा कहा गया वह चित्र सारथि बड़ा ही हृष्टतृष्ट यावत् हृदयवाला हुआ और उसने चार घोडों से युक्त करके अश्वरथ को उपस्थित कर दिया, बाद में प्रदेशी राजा को इसका निवेदन किया (तएणं से पएसी राया चित्तम्म सारहिस्स अत्तिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव अप्पमहग्घाभरणा लंकिगसरिरे साओ गिहाओ णिगगच्छह्) इसके बाद प्रदेशी राजा चित्र

थी युक्त थयेदा ते धोराओएतु निरीक्षथु करे। (तएणं से पएसी राया चित्ता सारहिं एवं वयासी) त्पारे ते प्रदेशी राजाओ चित्रसारथिने आ प्रभाओे क्खु (गच्छहि ण तुम चित्ता ! तेहिं चैव चउहिं आसेहिं आसरहं जुतामेव उवट्टवेहिं जाव पच्चप्पिणाहि) हे चित्र ! तसे लओओे अने ते क्खोओेदेथना नाग-रिडोथी प्राप्त थयेदा आरेयार बोडओओेने रथमा लोडीने ते अश्वरथ अहीं उपस्थित करे। अने ते पछी भने आ वातनी भभर आपो। (तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ट जाव हियए उवट्टवेह् एयमाण-त्तिय पच्चप्पिणह्) आ प्रभाओे प्रदेशी राजा वडे आजापित थयेदा ते चित्रसारथि भूभओे हट्टतुट्ट हृदयवाओे थये अने तेओे आरेयार बोडओओेथी सओेओे करिने अश्वरथ त्या राजनी सेवामा उपस्थित कर्ये अने त्पार पत्री तेनी भभर राजनी पासे पडोआडी (तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अत्तिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट जाव अप्पमहग्घाभरणा लंकिगसरिरे साओ गिहाओे णिगगच्छह्) त्पारपछी प्रदेशी राजा चित्र सारथिनी अश्वरथ उपस्थित थधे वान्नी

स्तत्रोपोगच्छति. चातुर्घण्टमश्वरथ दूरोर्हति, श्वेतविकाया नगर्या मध्य-
मध्येन निर्गच्छति । ततः खलुः स चित्रः सारथिस्त रथ नैकानि योजनानि
उद्घामयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उद्वेगेन च तृष्णया च रथज्ञानेन च
परिक्लान्तः सन् चित्रं सारथिमेवमवादीत्-चित्र ! परिक्लान्तं मे शरीरं, पग-

सारथि की अश्वरथ के तैयार हो जाने की बात को सुनकर और उसे
हृदय में धारण कर बड़ा ही अधिक द्रुपित एवं तुष्ट चित्त हुआ. उसने उसी
समय अपने शरीर पर बहुमूल्य अल्पभार वाले आभूषणों को धारण किया
शीघ्र ही वह फिर अपने घर से बाहर निकला (जेणामेव चाउग्वटं आस-
रहे तेणेव उवागच्छह) बाहर निकल कर वह वहाँ पर आया कि
जहाँ पर वह चार घटों वाला अश्वरथ तैयार किया गया खड़ा था (चाउग्वटं
आसरह दुरुहह, सेयवियाए मज्जमज्जेण णिग्गच्छह) वहाँ आकर वह
चार घटों वाले उस रथ पर बैठ गया. फिर वह श्वेताविका नगरी के
ठोक मध्यमार्ग से होकर निकला (तएणं से चित्ते सारही त रह णेगाइ
जोयणाइ उवामेह) बाद में उस चित्र-सारथिने उस रथको अनेक योजनो
तक बहुत तेज चाल से चलाया. (तएण से पएमी राया उण्हेण य
तण्हाए य रहवाएण य परिकिल्लते समाणे चित्त सारहि एवं वयामी) इस
कारण वह प्रदेशी राजा आतप से, प्यास से और रथगत्युद्धव प्रायु से
खिन्न हो गया, अतः उसने चित्र सारथि से ऐसा कहा-(चित्ता ! परिकि

वात भावणीने अने तेने लुहयमा धारण करीने शुभ्र मज्ज दुर्षित अने तुष्ट चित्तवाणे थये।
तेषु तेज क्षणु पोताना शरीर पर अहुभूय तेभज अल्पभारवाणा आभूषणु धारणु
क्या अने जल्दी ते पोताना भेदतथी अहार नीकण्ये (जेणामेव चाउग्वटं आस-
रहे तेणेव उवागच्छह) अहार नीकणीने ते त्या आण्ये के जथा यार घटवाणे
अश्वरथ सुसज्ज थर्धने उबो हतो. (चाउग्वटं आसरह दुरुहह, सेयवियाए
नयरीए मज्जं मज्जेण णिग्गच्छह) त्या पडोथीने ते यार घटोवाणा ते अश्वरथ
पर जेसी गये अने त्यारपछी ते श्वेताविका नगरीना ठीक मध्यवाणा राजमार्ग पर
थर्धने नीकण्ये (तएणं से चित्ते सारही त रह णेगाइ जोयणाइ उवामेह)
त्यारपछी ते चित्रसारथिने ते रथने धणु थैजने सुधी अहुज तीव्रवेगथी यलाण्ये।
(तएण से पएमी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएणय परिकिल्लते समाणे
चित्त सारहि एवं वयामी) तेथी ते प्रदेशी राजा तापथी, तरसथी अने रथनी
तीव्रगतिने वीधि सामेथी अथडाता पचनथी भिन्न थर्ध गये। जेथी तेषु चित्र
सारथिने आ प्रभाणु श्रु (चित्ता ! परिकिल्लंते मे शरीरे परावसुहि, रह)

वर्त्तय रथम् । तत्र खलु स चित्रः सारथिः रथं परावर्त्तयति, यत्रैव मृग-
श्नमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—एष खलु स्वामिन्
मृगवनमुद्यान, अत्र खलु अश्वानां श्रमं क्लामं सम्यग् अपनयामः । ततः

खलु स प्रदेशी राजा चित्र सारथिमेवमवादीत्—एवं भवतु चित्र । ॥मू०१२५॥

टीका—‘त एणं से चित्ते’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः
कल्पे=आगामिनिदिवसे प्रादुर्भवभावाया=प्रादुः—प्रकाशित प्रभातं यस्यां,
तस्यां रजन्यां=रात्रौ सत्याम्, निशावसाने इत्यर्थः, अथ=पुनःफुल्लोत्पलकमल-

लते मे सरीरे परावर्त्तेहि रह) हे चित्र ! मेरा शरीर थक रहा है, अतः तुम
रथ को वापिस लौटा लो (तएण से चित्ते सारथी रहं परावर्त्तेइ, जेणेव
मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) तब उस चित्र सारथिने रथको लौटा लिया
और जहाँ मृगवन नामका उद्यान था उस ओर चल दिया (पएसिं रायं एव
वयासी) वहाँ पहुँच कर उसने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा (एसण सामी मियवणे
उज्जाणे एत्थ ण आसाणं सम क्लाम सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् !
यह मृगवन नामका उद्यान है यहाँ ठहरकर घोड़ों को श्रम को और ग्लानि
को मैं अच्छी तरह से दूर किये लेता हू । (तएणं से पएसिं राया
चित्त सारहिं एव वयासी) तब वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि से इस
प्रकार बोला (एव होउ चित्ता) हे चित्र ! भले तुम ऐसा करो ।

टीकार्थ—इसके बाद दूसरे दिन चित्र सारथि प्रातः काल होते ही
रात्रिकी समाप्ति होते ही—अपने घर से निकला ऐसा संबध यहाँ लगाना
चाहिये. जब यह घर से निकला उस समयतक कमल विरसित हो चुके

हे चित्र ! भाइ शरीर श्रमयुक्त थक गयुं छ, अथी तमे रथने पाछे वाणी ले
(त एण से चित्ते) सारथी रह परावर्त्तेइ, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव
उवागच्छइ) त्वारे ते चित्र सारथिणे रथने पाछे वाणी लीधे अने अथा मृगवन
नामे उद्यान हतु ते तरकरथने हकथे. (पएसिं राय एव वयासी) त्वा पडोअीने
तेणे प्रदेशी राजने आम कहु (एसण सामी मियवणे—उज्जाणे एत्थ ण
आसाणं सम क्लाम सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् ! आ मृगवन नामे उद्यान
छ अहीं शकथने हू घोडाअेना थकने अने भिन्नताने सारी रीते मटाडी लठ छ.
(त एण से पएसिं राया चित्तं सारहिं एव वयासी) त्वारे प्रदेशी राजने
चित्र सारथिने आ प्रभाणे कहु (एव होउ चित्ता) हे चित्र ! साइ तमे भले आम करे.

टीकार्थ—त्यारपछी भीष्म द्विवसे रात्री पुरी थता तेभज सवार थता न चित्र
सारथि पोताना घेरथी नीकथे अवेो अर्थ अहीं करवेो धटे छ ते ज्यारे पोताना

कोमलोन्मीलिते-फुल्लोन्पल = विक्रमिनकमलं, कमलो-हरिणविशेषश्च तयोः
कोमल = मृदु उन्मीलनम्-कमलदलाना विक्रमन हरिणनेत्राणामुन्मेषणं च
यस्मिन्, कमलविकसनसमये हरिणनेत्रोन्मीलनसमये वेत्यर्थः तथाभूते आपा
ण्डुरे-शा=समन्तात् पाण्डुरे=पीतधवलै, तथा-कृतनिश्चयमावश्यकै=नियमाः=
सचिन्तादित्यागरूपाश्चतुर्दशगण इत्यक्षाः,

उक्तञ्च-“सचिन्तं १ दन्व २ विगडे ३-वागह ४ तत्रोल ५ वन्ध ६ कुसुमे सु ७ ।
वाहन ८ सयण ९ त्रिलेखण १०-चंभ ११ दिग्भि १२ ण्हाण १३ भक्ते सु १४ ॥ १ ।
छाया--सचिन्तं १ दन्व २ विकृत्यु ३ पान ४-ताम्बूल ५ वन्ध ६ कुसुमे सु ७ । वाहन ८
शयन ९ त्रिलेखण १० ब्रह्म ११ दिक् १२ स्नान १३ भक्ते पु १४ ॥ इति,
आवश्यक = प्रतिक्रमणं तच्चोह रां कां, तयोः समाहारे नियमावश्यकं, कृतं =
विहितं नियमावश्यकं यस्मिन् तत्सरिम्न तादृशे प्रभाते = पातः काले तथा-
सहस्ररश्मौ = सहस्रकिरणसंपन्ने दिनकरे = प्रये तेजसा ज्वलति = दीप्यमाने सति
स्वात् = स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति, यत्रैव प्रदेशिनो राज्ञो गृहं = भवनं
यत्रैव च प्रदेशी राजा भवति तत्रैव उपागच्छति = समागच्छति, प्रदेशिनं
रा नं करतल-यावत्-करतलपरिगृहीत शिरभावत् मन्तकेऽङ्गलिं कृत्वा
जयेन विजयेन वद्धंयति, वद्धंयित्वा एवमवादीत्-एव खलु देवानुप्रियेभ्यः =

ये अथवा कमल और हरिणविशेषों के नेत्र निद्रा विगत हो जाने के कारण
उ च्चुके थे, प्रभात का रंग पीत धवल हो चुका था लोगोंने-धार्मिक जनताने
१४ नियमों ले लिया था. और रािक प्रतिक्रमण भी कर
दि गया. वे १४ नियमों इस प्रकार से हैं-‘सचिन्तं दन्व’ इत्यादि ।

तथा सहस्रकिरण संपन्न सूर्य भी अपने तेज से दीप्यमान हो चुका था. घर से
निकलकर वह प्रदेशी राजा के पास पहुँचा. वहाँ पहुँच कर उसने प्रदेशी राजा
को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया, उन्हें वधाई दी और फिर ऐसा
कहा आप देवानुप्रिय के लिये जो कम्बोजवासियोंने चार घोड़े मेंटरूप

धरथी नीकथो ते वपते कभणो विकसित थर्ध सूक्यां इता. अथवा कभल इरिषु (भुग)
विशेषना नेत्रो निद्रा रहित थर्ध ज्वाथी उघडी सूक्या इता. प्रसातनो वष्यं पीतधवल
थर्ध सूक्यो इतो. लोकोज्ये-धार्मिक भाष्यसोअ्ये-१४ नियमोने धारष्य करी लीधा इता
अने रात्रिक प्रतिक्रमष्य पष्य करी लीधु इतुं. ते १४ नियमो आ प्रभाष्ये छ.

‘सचिन्तं दन्व’ इत्यादि.

तेभ्यः सहस्रकिरण संपन्न सूर्यं पष्य योताना तेज्ज्वाली देदीप्यमान थर्ध सूक्यो
इतो धरथी नीकथीने सारथि प्रदेशी राजाना पासो गये त्या पक्षोथीने तेषु प्रदेशी
राजने अने इथ जे.ने नमस्कार कर्था तेभने वधाभष्यी आपी अने पक्षी आ प्रभाष्ये

भवद्भयः काम्बोजैश्वरवारोऽश्वा उपनयमुपनीताः=प्राभृतत्वेन समानीताः ते च मया देवानुप्रियेभ्यः=भवतां कृते अन्यदैव=तदैव विनयिताः=विनय प्रापिताः शिक्षिताः, तत्र=तस्मात्कारणात् एत आगच्छत तान् आत्मर्द्धिकान्=स्वकीय-प्रशस्तगत्यादिशक्तिसम्पन्नान् अश्वान् पश्यत । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं चित्र ! तैरेव काम्बोजप्राप्तैश्चतुर्भिरश्वैः युक्तमेव=सज्जितमेव अश्वरथम् उपस्थापय यावत् प्रत्यर्पय, यावच्छब्देन उपस्थाप्य एतामाङ्गलिकां मम प्रत्यर्पय । ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राजा एवम्=अनेन सज्जितरथोपस्थापनरूपेण प्रकारेण उक्तः=कथितः दृष्टुष्ट यावद्दृष्टयः, यावच्छब्देन-दृष्टुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्दृष्टयःसन् उपस्थापयति=तैश्चतुर्भिरैवाश्वैर्युक्तमेवाश्वरथमुपस्थित करोति एतां=राजोक्ताम् आङ्गलिकाम्=आङ्गां प्रत्यर्पयति =युक्त एव रथो मयाऽऽनीतः' इति सूचयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेः अन्तिके=समीपे-युक्तरथोपस्थापनरूपम् अर्थं=वाक्यं श्रुत्वा कर्णगोचरीकृत्य, निश्चयः=हृद्यवधार्य दृष्टुष्ट यावत्-यावच्छब्देन-दृष्टुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविसर्पद्दृष्टयःसन्तः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धभावेऽपि माङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रथरपरिहितः, इति सङ्गीत्यम्, अल्पमहाघाभरणालङ्कृतशरीरः एषामर्थस्तु प्रायुक्त एव, एतादृशः सन् स्वात्=स्वकीयाद् गृहाद् भवनात् निर्गच्छति=निस्सरति ।

में मेजे थे उन्हें मैंने उसी दिन आपके लिये सुशिक्षित कर दिया है. अतः आप आ करके उन्हें देव लेबे' इस प्रकार चि सारथी के कथन को सुनकर प्रदेशी राजाने उससे कहा-तुम शीघ्र ही उन्हें रथ में जोतकर-यहाँ ले आओ चित्र सारथीने ऐसा ही किया. जब रथ तैयार हो जाने का वृत्तान्त प्रदेशी राजा को ज्ञात हुआ तब आकर वह उसमें बैठ गया उसके बैठते ही चित्र सारथीने उस रथ को श्वेतांविका नगरी के मध्यमार्ग से

कष्ट के आप देवानुप्रिय माटे कठोरदेशना नागरिकेअये ने चार घोडाओ कोटुपुमां मोकस्था हता तेमने तेज दिवसे आपथ्री माटे सुशिक्षित करी दीधा छे. अथी-आप पधारीने तेमनुं निरीक्षषु करी लो आ प्रभाणे चित्रसारथिनु कथन साबणीने प्रदेशी राजाअये तेने कष्टुं के तमे सत्यरे ते घोडाओने रथमा न्नेतरीने अच्छी उपस्थित करे. चित्र सारथिअये ते प्रभाणेज कामपुइ कथुं न्यारे रथ तैयार थधं नवानी पभर-रामनी पासे पहोआडवामा आवी त्तारे ते राजा ते रथमा जेसी गथे राजा न्यारे संवार थधं

ततः खलु स चित्रः सारथिगत रथ नैकानि=अनेकानि ब्रह्मिनि योजनानि उद्भ्रा
मयति=शीघ्रगता धावयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उष्णेन=भातपेन
च तृष्णया=पिपासया रथवातेन=रथगत्युद्भवेन वायुना च परिक्लिन्तः=खिन्नः
सन् चित्रं सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! परिक्लिन्तः=खिन्नं मे-मम शरीरम्
अतो रथं परावर्त्तय=निवर्त्तय । ततः खलु स चित्रः सारथिः रथ परावर्त्त
यति, यत्रैव मृगवनमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-
एतत् खलु स्वामिन ! मृगवनमुद्यानमस्ति, अत्र=अस्मिन्नुद्याने स्थित्वा श्रुत्वा-
नुं भ्रमं=खेदं क्लमं=ग्लानिं च सम्यक्=समीचीनतया अपनयामः=दूरीकुर्मः।
ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! एव भवतु=
यथा त्वया कथितं तथैव भवतु अन्यं तिष्ठाम इति भावः ॥सू० १२५॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे जेणेव
केसिस्स मारसमणस्स अदूरतामंते तेणेव उवागच्छइ, तुरए
णिगिणहइ रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तुरए मोएइ, पएंसि रायं एवं

हीकर चलाया. जब नगरी से वह रथ बाहर हो गया तब उसने कई
योजनों तक उस रथको इतने अधिकरूप से चलाया कि प्रदेशी राजा परिक्राम्त
हो गया, (थकगया) आलस्य, से तप गया और पिपासा की वेदना से व्या
कुल हो उठा। तब सारथि से उसने उसी समय रथको लौटाने केलिये कहा.
सारथिने आज्ञानुसार रथ को लौटा लिया और मृगवन उद्यान, की ओर
छे चला। वहां पहुच कर सारथिने घोड़ों को विश्रान्ति देने के निमित्त
रथ खडा कर लिया और प्रदेशी राजा से वहां ठहर कर घोड़ों को मार्गजन्य प
रिश्रमको दूर करने की बात कही प्रदेशी राजाने बातको मानलिया ॥सू. १२५॥

गया त्यारे चित्र सारथिये ते रथने प्रवेताम्बिका नगरीनी मध्यभागभाथी थधने
डाक्यो आ प्रभाण्णे ते रथ ज्यारे प्रवेताम्बिका नगरीथी अहार नीकणी गथे त्यारे
षष्ठा येण्णे सुधी ते रथने तीम वेगथी अक्षाव्ये के ळेथी ते प्रदेशी राजा परिक्रमात थध
गथे, तापथी तपी गथे अने तरसनी वेदनाथी व्याकुण थध गथे राजाये सार-
थिने तरत ज रथ पाछे वाणवानो आदेश आभ्ये. सारथिये राजानी आशा प्रभाण्णे
रथने पाछे वाणी दीधी अने मृगवन उद्याननी तरक ते रथने लध गथे त्या
पड्ढायीने सारथिये घोडाज्योने विश्रान्त आपवा भाटे रथ ने उव्ये राण्यो अने
प्रदेशी राजाने त्या देशाधने घोडाज्योना रस्ताना थाकने इर करवानी वात करी.
प्रदेशी राजाये पणु तेनी वात भानी दीधी, ॥सू. १२५॥

वयासी एह णं सामी ! आसाणं सम किलामं सम्मं अवणेमो ! तएणं
 से पएसी राया र्हाओ पञ्चोरुहड, चित्तेण सारहिणा सद्धिं आसाणं
 समं किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ, जत्थ केसिकुमारसमणं महइ-
 महालियाए परिसाए मज्झगयं महया सद्धेणं धम्ममाइक्खमाणं सि-
 त्तो इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था—जड्ढा खलु भो ! जड्ढं
 पज्जुवासंति, मुंडा खलु भो ! मुंडं पज्जुवासंति, मूढा खलु भो ! मूढं
 पज्जुवासंति, अपंडिया खलु भो अपंडियं पज्जुवासंति, निव्विण्णाणा
 खलु भो ! निव्विण्णाणं पज्जुवासंति, से केसणं एस पुरिसे जड्ढ 'हे
 ठे अपंडिए निव्विण्णाणे सिरीए हिरीए उवगए उत्तप्पसरीरे,
 एस णं पुरिसे किमाहारमाहारेइ ? किं परिणामेइ ? किं आयइ ?
 किं पियइ ? किं दलइ ? किं पयच्छइ ? जं णं एस एमहालियाए
 मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सद्धेणं बूयाइ ? एवं सपेहेइ,
 चित्तं सारहिं एदं वयासी—चित्ता ! जड्ढा खलु भो ! जड्ढं पज्जुवासंति
 जाव बूयाइ, साए वि णं उज्जाणभूमीए नो संचाएमि सम्मं
 पकामं पवियरित्तए ॥ सू० १२६ ॥

छाया-ततः खलु सचित्रः सारथिः यत्रैव मृगवनमुद्यानं यत्रैव केशिनः
 कुमारसमणस्य अदूरसामन्त तत्रैवोपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रयं

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि—

सूत्रार्थ—(तए ण से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे जेणेव केसिस्स
 कुमारसमणस्स अदूरसाम ते तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद वह चित्रसारथि
 उस मृगवन उद्यान में स्थित केशिकुमारसमण के अदूर सामन्त स्थान पर

‘त एणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एण से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे, जेणेव
 केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसाम ते तेणेव उवागच्छइ) त्थार पथी ते
 चित्र सारथि ते मृगवन उद्यानमा स्थित केशिकुमारसमणानी पासि स्थाने लल गयो.

स्थापयति. रथात् प्रत्यवरोद्धि, तुरगान् मोचयति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-
अत्र खलु स्वामिन् ! अश्वानां श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयामः । ततः
खलु स प्रदेशी राजा रथात् प्रत्यवरोद्धति, चित्रेण सारथिना सार्धम् अश्वानां
श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयन् पश्यति यत्र केशिकुमारश्रमण महातिमहालययाः
परिषदो मध्यगतं महता शब्देन धर्ममाख्यान्तं दृष्ट्वा अयमेतद्रूप
आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत-जडाः खलु भो ! जड पर्युपासते, मृष्टाः

रथको लेकर गया (तुरए गिगिण्डइ) वहा पहुचते ही उसने घोड़ों को
रोक लिया (रहं ठवेइ) और रथको खडा कर दिया (रहाओ पञ्चोरुइइ)
रथ के खडे हो जाने पर वह रथ से नीचे उतरा (तुरए मोएइ) नीचे
उतर कर घोड़ों को रथ से खोल दिया (पएसि राय एवं वयासी) फिर
उसने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-(एइ णं समं किलामं सम्मं अवणेमो)
हे स्वामिन् ! रथ खडा हो चुका है आप उतर आइये, मैं यहाँ पर घोड़ों
के श्रम को एवं उनकी मानसिक ग्लानि को ठीक तरह से दूर करूँ
(तए णं से पएसी राया रहाओ पञ्चोरुइइ) सारथि के इस कथन से वह
प्रदेशी राजा रथ से नीचे उतरा (चित्तेण सारहिणासद्धिं आसाणं समं किलामं
सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतर कर उसने चित्र सारथि के साथ वहाँ
घोड़ों का श्रम एवं क्लम (धकावट) अच्छी तरह से दूर करते हुए, एवं विश्राम
करते हुए उस ओर देखा (जत्थ केशिकुमारसमणं महइमहालियाए परि
साए मज्झगयं महया सहेणं धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए

(तुरए गिगिण्डइ) त्या पहोच्यता ज तेष्से धोअओने उभा राभ्या. (रहं ठवेइ)
अने रथने थोआओ. (रहाओ पञ्चोरुइइ) रथ जथारे उलो रही गथे त्यारे ते
रथमांथी नीचे उतथे. (तुरए मोएइ) नीचे उतरीने धोअओने रथमांथी मुक्त थ्यां.
(पएसि रायं एवं वयासी) त्थार पथी तेष्से प्रदेशी राजने आ प्रभाषे कहुं-
(एइ णं सामी ! आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् ! रथ
उलो थरं थुथे छ. आप नीचे उतरे हु अही धोअओना श्रमने अने तेमनी
मानसिक आनि ने सारी रीते इर करी छ (तए णं से पएसी राया रहाओ पञ्चोरुइइ)
सारथिना आ कथनथी ते प्रदेशी राज रथमांथी नीचे उतथे (चित्तेण सारहिणा
सद्धिं आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतरीने तेष्से चित्रसार-
थिनी साथे त्या धोअओना श्रम अने क्लम सारी रीते इर करतां तेमज्झ विश्राम
क्यता ते तस्स जेथुं (जत्थ केशिकुमारसमणं महइमहालियाए परि साए मज्झ-
गयं महया सहेणं धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए जावं

खलु भो ! मुण्डं पर्युपासते, मूढाः खलु भो ! मूढ पर्युपासते, अपण्डिताः
खलु भो ! अपण्डित पर्युपासते, निर्विज्ञानाः खलु भो ! निर्विज्ञान पर्यु
पासते, स कीदृशः खलु एष पुरुषो जहो मुण्डो मूढोऽपण्डितो निर्विज्ञानः
श्रियो हिया उपगतः उत्तमशरीरः, एष खलु पुरुषः कमाहारमाहारयति ?

(जाय समुपज्जित्था) कि जिस और एक बहुत बड़ी परिपदा के बीच में
बैठे हुए केशीकुमारश्रमण जोर २ से धर्म का व्याख्यान कर रहे थे इस
प्रकार से उन्हें देखकर उसको इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत्
मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ (जह्वा खलु भो ! जहं पज्जुवासति, मुंडा
खलु भो मुंडं पज्जुवासति) अरे ! जो जन जह होते हैं वे जहकी सेवा
करते हैं और जो जन मुंड होते हैं, वे मुण्ड की सेवा करते हैं (मूढा
खलु भो मूढं पज्जुवासति) तथा जो जन मूढ होते हैं, वे मूढ की
सेवा करते हैं। (अपण्डिया खलु भो अपण्डियं पज्जुवासति) जो अपण्डित
होते हैं वे अपण्डित जन की सेवा करते हैं, (निविण्णाणा खलु भो निवि-
ण्णाणं पज्जुवासति) जो विशिष्टज्ञान से रहित होते हैं, वे विशिष्टज्ञान से
रहित की सेवा करते हैं। (से कंस ण एस पुरिसे जडे, मु डे, मूढे, अपण्डिय
निविण्णाणे सिरीए हिरीए अवगए उत्तप्पसरीरे) परन्तु यह कैसा पुरुष है
जो जह, मुंड, मूढ, अपण्डित, निर्विज्ञान होता हुआ भी श्री से और
ही से युक्त है (उत्तप्पसरीरे) शरीर की कान्ति से सपन्न है। (एस णं
पुरिसे किमाहारमाहारेइ) यह पुरुष क्या किस प्रकार का आहार करता है ?

(समुपज्जित्था) કે જે તરફ એક વિશાળ પરિપદાની વચ્ચે બેઠેલા કેશીકુમારશ્રમણ
બહુ મોટા સ્વરે ધર્મનું વ્યાખ્યાન કરી રહ્યા હતા આ પ્રમાણે તેમને બોધને તેને
આ બોલને આધ્યાત્મિક યાવત મનોગત સંકલ્પ ઉત્પન્ન થયો કે (જહ્વાં **खलु**
भो ! જહ્વં પજ્જુવાસતિ. મુંડા **खलु भो** મુંડં પજ્જુવાસતિ) અરે ! જે લોકો
જહ હોય છે, તેઓ જહને સેવે છે અને જે લોકો મુંડ હોય છે. તેઓ મુંડની સેવા
કરે છે (મૂઢા **खलु भो** મૂઢ પજ્જુવાસતિ) તેમજ જે લોકો મૂઢ હોય છે તેઓ
મૂઢની સેવા કરે છે (અપણ્ડિયા **खलु भो** અપણ્ડિય પજ્જુવાસતિ) જેઓ અપ-
ણ્ડિત હોય છે તેઓ અપણ્ડિતોને સેવે છે (નિવિણ્ણાણા **खलु भो !** નિર્વિણ્ણાણ
પજ્જુવાસતિ) જેઓ વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી રહિત છે, તે વિશિષ્ટ જ્ઞાન રહિતને સેવે છે.
(સે કંસ ણં એસ પુરિસે જહ્વે, મુ ડે, મૂઢે, અપણ્ડિય. નિવિણ્ણાણે, સિરીએ
હિરીએ ઉવગએ ઉત્તપ્પસરીરે) પણ આ કેવો પુરુષ છે કે જે જહ, મુંડ, મૂઢ,
અપણ્ડિત, નિર્વિજ્ઞાન હોવા છતાં શ્રી તેમજ હી થી યુક્ત છે. (ઉત્તપ્પસરીરે)
શરીરની કાંતિથી સંપન્ન છે (એસ ણ પુરિસે કિમાહારમાહારેइ) આ પુરુષ કંઈ

किं परिणमयति ? किं खादति ? किं भिषति ? किं ददाति ? किं प्रयच्छति ?
 यत् खलु एष एतावन्महालयाय मनुष्यपरिषदो मध्यगतो महता शब्देन
 ब्रवीति ? एष संप्रोक्ष्यते, च सारथिमेवमवादीत्-चित्र ! जडाः खलु
 भो ! जड पर्युपासते यावद् ब्रवीति, स्वात्यामपि खलु उद्यानभूमौ नो
 शक्नोमि सम्यक् प्रकारं प्रविचरितुम् ॥सू० १२६॥

टीका—'तएण' से चित्ते' इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिर्यत्रैव मृगवनं=मृगवननामकमुद्यान यत्रैव
 केशिनं क्रुमारश्चमणस्य अदूरसामन्तं=नातिदूरनातिसमीपरूपं स्थल तत्रनोप-

(किं परिणामेऽ) किस प्रकार से खाये हुए भोजन को परिणामाता है ?
 (किं खायइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ) कैसी रुचिर वस्तु को यह
 खाता है ? किस प्रकार की रुचिर वस्तु का यह पान करता है ? यह
 लोगों के लिये क्या देता है ? क्या विशेषरूप से यह उन्हें वितरित करता
 है ? (जं ण एस ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सहेण
 बूयाइ) जो यह पुरुष इतनी बड़ी विशाल मनुष्य परिषदा के बीच में
 बैठ कर बड़े जोर से बोल रहा है ? (एवं संपेहेइ) ऐसा उसने विचार
 किया—(चित्तं सारहिं एवं वयासी) इस प्रकार विचार करके फिर उसने
 चित्र सारथि से ऐसा कहा—(चित्ता ! जड्हा खलु भो जड्हा पज्जुवासति,
 जाव बूयाइ, साए वि य णं उज्जाणभूमीए नो सम्मं पकामं पवियरित्तए) हे
 चित्र ! जड जड की पर्युपासना करते हैं यावत् यह बड़े जोर से बोल रहा है मैं अपनी
 भी उस उद्यानभूमि में इच्छानुसार अच्छी तरह से घूम नहीं पा रहा हूँ ।

जातना आहार करे छ ? (किं परिणामेऽ) केवीरिते पायेला भोजनने परिष्कृभावे छ ?
 (किं खायइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ) कंध जातनी इयिनी वस्तुने
 आ आहार करे छ ? कंध जातनी इयिनी वस्तुत्वं आ पान करे छ ? बोकेने आ
 शु आपे छ ? विशेषइयथी आ शु बोकेना माटे वितरित करे छ ? (जं ण एस
 ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सहेण बूयाइ) ने के आ
 पुरुष आटवी भोटी बोके परिषदानी वच्ये मेरीने अहु भोटा साहे बोले छ ? (एवं
 सपेहेइ) आ प्रभाबे तेबे विचार कथे (चित्तं सारहिं एवं वयासी) आभ
 विचार करीने पछी तेबे चित्र सारथिने आ प्रभाबे कथु (चित्ता ! जड्हा खलु भो
 जड्हा पज्जुवासति, जाव बूयाइ, साए वि य णं उज्जाणभूमीए नो सम्मं
 पमि सम्म पकाम पवियरित्तए) हे चित्र ! जड जडने सेवे छयावत् आ अहु भोटा साहे
 बोली च्छो छ हुपोते पथु आ उद्यानभूमिमा स्वस्थतापूर्वक सारी रीते डरी डरी शकतो नथी,

गच्छति. तुरगान्=अश्वान् मोचयति=रथात् पृथक् गेति, प्रदेशान् राजान-
मेवमवादीत्-हे स्वामिन् ! एत=आगच्छत अत्र अश्वानां=हयानां श्रम=मार्गं
जन्यं शारीर खेदं क्लेशं=मानसिक ग्लानिं च सम्यक्=किञ्चित्कालवस्थानेन
समीचीनतया अपनयामः=दूरीकृतम् । ततः=पूर्वोक्तनिश्चयानन्तरं स प्रदेशी
राजा रथात् प्रत्यवरोहति=अवतरति, शिष्टेण सारथिना साद्धं तत्राश्वानां स्व-
स्य च श्रमं बलम् च सम्यग् अपनयन्=दूरीकुर्वन् विश्राम्यन् सन् पश्यति यत्र
केशिकुमारश्रमणं महातिमहालयः=अतिमहत्याः, परिषदा मध्यगतं=मध्य-
स्थितं महता शब्देन=उच्चस्वरेण धर्मं=जिनप्रणीतम् आख्यान्तं=वक्ष्यन्तम्
दृष्ट्वा च अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणप्रकारकः आध्यात्मिकः=आत्मगतोऽङ्कुरश्च

टीकायं—इसके बाद वह चित्र सारथि मृगवन नामके उद्यान में
पहुँचकर केशीकुमारश्रमण से अधिष्ठित प्रदेश के पास पहुँचा. वह प्रदेश
केशीकुमारश्रमण से न अधिक दूर था, और न अधिक पास ही था.
पहुँचकर उसने घोड़ों को खड़ा किया। और रथ को रोक दिया. तथा
प्रदेशी राजा से ऐसा कहा हे स्वामिन् ! आइये, यहाँ हमलोग घोड़ों के
मार्गजन्य शारीरिक खेद को एवं मानसिक ग्लानि को कुछ कालतक ठहर
कर अच्छी तरह से दूर करले। पूर्वोक्त निश्चय के अनन्तर प्रदेशीराजा
रथ से नीचे उतरा और चित्र सारथि के साथ वहाँ घोड़ों की एवं निजकी
यकान्त को तथा क्लेश-मानसिक ग्लानि को-अच्छी तरह से दूर करता
हुआ, तथा विश्राम करता हुआ इधर उधर देखने लगा-देखते-देखते उसकी
दृष्टि वहाँ पहुँची जहाँ केशिकुमारश्रमण अतिमहती (विशाल) परिषदा के
बीच बैठे हुए उच्चस्वर से जिनप्रणीत धर्म की प्ररूपणा कर रहे थे. उन्हें

टीकायं—त्यारपछी ते चित्र सारथि मृगवन नामे उद्यानमां पडो'नीने केशी-
कुमार श्रमणु न्या विराजमान हुता तेनी पासे पडो'न्ये। ते स्थानं केशीकुमार श्रम-
णुधी वधारे हर पणु नहि तेमज वधारे नष्टक पणु-नहि हुतु त्या पडो'नीने तेणे
बाडाओने उवा राप्या अने रथने थोवाओये. तेमज प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कथुं
हे हे स्वामिन् ! वधारे, अही आपणे थोडा समय सुधी शोकाधने बाडाओना भागं
जन्यं शारीरिक भेदने अने मानसिक ग्लानिने सारी रीते दूर करवा यत्न करीये आ
प्रभाणे विचार करीने ते प्रदेशी राजा रथ पश्ची नीचे उतर्यो अने चित्र सारथिनी
साथे त्या बाडाओना अने पोताना थाकने तेमज क्लेश-मानसिक ग्लानि-ने सारी
रीते दूर करता तथा विश्राम करता आभतेम नेवा बाओये नेता नेत तेमनी नजर
अति विशाल परिषदानी वर्ये ठेसीने थोटा साडेते परिषदने जिनप्रणीत धर्मनी

जहोऽयमितिरूपः यावच्छब्देन-‘चिन्तितः=कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः’ इति स ग्राह्यम्, तत्र-चिन्तितः=पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारः ‘मुण्डोऽय-’मितिलक्षणो द्विपत्रित इव, कल्पितः=स एव विचारः ‘मुण्डोऽय’-मिति रूपः पल्लवितइव, प्रार्थितः, स एवेष्टरूपेण स्वीकृतः ‘निश्चयेनायमपण्डितः इतिरूपः पुष्पितइव मनोगतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः ‘सत्थयं निर्विज्ञानः’ इतिलक्षणः फलितइव समुदपघत=समुत्पन्नः। तदेव दर्शयति-‘जह्वा’ इत्यादि,

देखकर इसके मन में इस प्रकार का संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ, ‘यहां यावत् पद से संकल्प के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, मनोगत ये विशेषण गृहीत हुए हैं। इनकी सार्थकता इस प्रकार से है, यह विचार उमकी आत्मा में पहिले अंकुर के रूप में जमा, अतः वह आध्यात्मिक हुआ बाद में वह पुनः पुनः स्मरणरूप होने के कारण चिन्तितरूप हो गया अर्थात् यह मुंड है यह मूढ है इस तरह बार-बार स्मृति में आने के कारण यह विचार द्विपत्रित अंकुर की तरह चिन्तितरूप बन गया-पुनः वही विचार यह मुण्डित ही है, और कोई नहीं है इसरूप से निश्चयापन्न होने के कारण पल्लवित हुए अंकुर की तरह प्रार्थित हो गया। ‘अग्रमपण्डित एव निश्चयेन’ फिर ऐसा निश्चय हो जाने से कि यह नियमतः अपण्डित ही है (पण्डित नहीं है) यह विचार पुष्पित अंकुर की तरह दृष्टरूप से स्वीकृत हो जाने के कारण पुष्पित हो गया। बाद में ‘यह विज्ञान रहित है’ इसरूप से मनमें दृढरूप से निश्चित हो जाने के कारण मनोगत हो गया। तात्पर्य कहने का

प्रश्नार्था करता ते केशिङ्गभारभ्रमण पर पडी। तेमने जेधने तेमना मनमा आ जातने। स कल्प-विचार-उद्भवयो। अही यावत् पहली संकल्पना आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत आ अथा विशेषणो अरुण्य करवामा आल्यां छे. आ अथा विशेषणो नी सार्थकता आ प्रमाणे समज्यो. आ विचार तेना आत्माभां पहेलां अंकुरना रूपमां जन्म्यो. तेथी ते आध्यात्मिक थयो. त्यारपडी ते वारवार स्मरणरूप होवा अहल चिन्तित रूप थध गयो. ओटले के आ मुंड छे, आ मूढ छे आ प्रमाणे वारवार स्मृतिमा आववाथी आ विचार द्विपत्रित अंकुरनी जेम चिन्तितरूप थध गयो पडी तेज विचार आ मुण्डित न छे अन्य नहि, आ प्रमाणे निश्चयापन्न होवा अहल पल्लवित थयेला अंकुरनी जेम प्रार्थित थध गयो. “अग्रमपण्डित एव निश्चयेन” त्यार पडी आ जातने निश्चय थध जवाथी आ नियमत, अपण्डित न छे आ विचार पुष्पित अंकुरनी जेम थध रूपमा स्वीकृत थध जवा अहल पुष्पित थध गयो. त्यार आद ‘आ विज्ञान रहित छे’ आ प्रमाणे मनमां दृढरूपमा निश्चित थध जवाथी आ

जडाः=अलसा उद्योगवर्जितत्वात्, यद्वा-जडा इति विवेकविकलाः कर्त्त-
व्या कर्त्तव्यज्ञानराहित्यात् जडम्=जडपुरुषमेव पर्युपासते=सेवन्ते । तथा-
मूढा=एतादृशा एव अनावृतमस्तकाः निर्लज्जा इत्यर्थ , न एव मूढं=मूढित-
मस्तकमेव पर्युपासते । तथा-मूढाः=पूर्वा हेयोपादेयज्ञानशून्या एव मूढ=
सदसत्रिवेकविकलमेव पर्युपासते। अपण्डिताः=व्यावहारिकबुद्धिविकलास्तत्त्व-
ज्ञानरहितत्वात्, त एव अपण्डितं=तत्त्वज्ञानशून्यमेव पर्युपासते । निर्विज्ञानाः=

यह है कि यहा पर विचार के इन विशेषणोंने विचार की आगेर पुष्टि
होती हुई प्रकट की है। जिस प्रकार अंकुर पहिले जमता है बाद में वह
पत्रित होता है. फिर पुष्पित होता है और अन्त में फलित होता है इसी
प्रकार से यहां उसका विचार आगेर अधिकर पुष्ट हाता गया इसी बात
को 'जड्वा' आदिपदों द्वारा प्रकट किया गया है-उद्योगवर्जित होने से जो
जड-अलस होते हैं अथवा तो कर्त्तव्याकर्त्तव्यरूप विवेक से रहित होने
के कारण विवेक विकल है वे ही इस जड पुरुष की उपासना-सेवा करते है, तथा
जो इसी जैसे मूढ-अनावृत खुले मस्तक वाले-निर्लज्ज हैं, वे ही इस मूढित-
मस्तकवाले इसकी सेवा करते हैं, तथा जो हेयोपादेय ज्ञान से शून्य
मूढ जन है वे ही इस अच्छे बुरे के ज्ञान से विकल हुए इसकी सेवा
करते हैं। तत्त्वज्ञान रहित होने के कारण जो व्यावहारिक बुद्धि से विकल
है, वेही इस तत्त्वज्ञान शून्य इस अपण्डित की सेवा करते है, तथा बुद्धि
हीन होने से जो विशिष्टज्ञान से रहित है वेही इस सद्बोधरहित को

भनोगत यद्य ज्यो. तात्पर्यं अे छे के अही' विचारना आ विशेषज्ञोथी अतुक्मे
ते पछीना विचारानी युष्टि न् बाय छे. जेम अंकुर पहिला जामे छे. त्थारपछी ते
पत्रित थाय छे, पछी पुष्पित थाय छे अने छेवटे क्षिति थाय छे तेमन् अही' पद्य
तेना विचार अतुक्मे अधिकाधिक पुष्ट न् थतो बाय छे आ वातने 'जड्वा'
वगेरि पढे वडे प्रकट करवामा आवी छे उद्योग रहित होवा पहल जे नड-आणसु-
होय छे अथवा तो जे कर्त्तव्याकर्त्तव्यरूप विवेकथी रहित होवा पहल विवेक विकल
छे, ते न् आ नड पुरुषनी उपासना-सेवा करे छे. तेमन् जेज्यो जेना जेवा न्
मुंड-अनावृत मस्तकवाणा-निर्लज्ज छे ते न् आ मुंडित मस्तरवाणाज्योनी सेवा
करे छे तेमन् जेज्यो हेयोपादेयना ज्ञानथी रहित मूढ जन छे ते न् आ विवेक-
रहित पुरुषने सेवे छे तत्त्वज्ञानरहित होवाथी जे व्यावहारिक बुद्धिथी विकल छे,
ते न् आ तत्त्वज्ञान शून्य अण्डितने सेवे छे. तेमन् बुद्धिहीन होवाथी जे विशिष्ट-
ज्ञानथी रहित छे तेज्यो न् आ सद्बोध रहित पुरुषनी सेवा करे छे. आ कर्त्तव्यतानी

विशिष्टज्ञ नरहिनाः बुद्धिहीनस्त्वात्, त एव निर्विज्ञान = सद्बोधरहितमेव पशु-
पासते । स एष कीदृशः पुरुषः यो जडो मुण्डो मूढोऽपण्डितो निर्विज्ञानोऽपि
श्रिया = महतिमहालयपरिषदादिशोभया, ह्रिया = लज्जया-कुचेष्टावर्जनरूपया
उपगतः = संपन्नः तथा-उत्तमशरीरः = शरीरकान्त्या दीप्यमानो वर्तते इति
किं कारणम् ? कारणं चिन्तयति-एष खलु पुरुषः कं = किम्प्रकारम् आहार =
भोजनम् आहारयति = करं नि ? किं = केन प्रकारेण भुक्तं भोजनं परिणमयति =
परिणामं प्रापयति ? किं = कीदृशं रुचिरं वस्तु खादति ? किं = कोदृशं रुचिरं
प्रपणकादिकं पिबति ?, किं ददाति एभ्यो लोकेभ्यः, किं प्रयच्छति = विशेषेण
ददाति यत् = यस्मात्कारणात् खलु एष पुरुषः एतावन्महालयायाः = महत्याः
मनुष्यपरिषदो मध्यगतः = मध्योपविष्टः सन् महता शब्देन = उच्चैः स्वरेण व्रवीति =
वदति ? । एव = पूर्वोक्तप्रकारेण स प्रोक्षने = विचारयति, चित्र सारयिमेवमत्रा-

सेवा करते है यह कैसा पुरुष है ? जो जड, मुण्ड, मूढ़, अपण्डित एवं निर्वि-
ज्ञान हुआ भी महतिमहालय परिषदा-याने विशालसभा में शोभा से
एवं कुचेष्टावर्जनरूप लज्जा से संपन्न बना हुआ है। एवं शरीरकी कान्ति से
देदीप्यमान हो रहा है। इससे कारण क्या है ? क्या यह इस प्रकार के
आहारको करता है जो इसके शरीर में ऐसी कान्ति प्रदान करता है-
यही बात वह 'क आहारं आहारयति' इत्यादि पदों द्वारा विचार करता
है यह किस प्रकार के आहारको करता है ? तथा किस प्रकार से भुक्त भोजन को
यह परिणमाता है ? यह कैसी रुचिर वस्तु खाता है ? अगर कैसे रुचिरपान को यह पीता
है ? यह इन लोको के लिये क्या दे रहा है ? क्या विशेषरूप से यह इन्हे प्रदान
कर रहा है ? जो यह इस बड़ी भारी मनुष्य परिषदा के बीच में बैठा
हुआ बड़े जोर से बोल रहा है। इस प्रकार से उसने विचार किया-

व्यक्ति छे के के जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित अने निर्विज्ञान होवा छता पशु महति-
महालय परिषदा अटठवे के विशाण सभाभा शोभाथी अने कुचेष्टा वर्जनरूप लज्जार्थ
भुक्त यथेदा छे तेमज्ज शरीरकान्त्यी दीप्यमान थथ रह्यो छे, आहुं शुं क्वाप्यु छे ?
शुं ते आ जातनो आहार करे छे के के अने शरीरभरि अनेवा कति उत्पन्न करे
छे अने वात ते 'क आहारं आहारयति' वगेरे पढे पठे अवावे छे. आ कथं
जातनो आहार अहंशु करे छे ? तेमज्ज कथं जातना भुक्त बोधनने आ परिशुभावे छे ?
आ कथं जातनी रुचिर वस्तुनो आहार करे छे ? केवा रुचिर पानपदार्थाने आ पीवे
छे ? आ पुरुष आ अधाने शुं आपी रह्यो छे. ? विशेषरूपथी आ अधा अेकत्र
थथेदा होकेने आ शुं आपी रह्यो छे ? के के आ अहुं भोटी विशाण परिषदानी
वन्धे जेसीने अहुं भोटा वरथी जेवी रह्यो छे आ प्रभाषे तेखे विचार कर्यो त्पार-

જઢાઃ=અલસા ઉદ્યોગવર્જિતત્વાત્, યદ્વા-જઢા ઇતિ વિવેકવિકલાઃ કર્ત્તા-
 વ્યાકર્ત્તાન્યજ્ઞાનરાહિત્યાત્ જઢમ્=જઢપુરુષમેન પર્યુપામતે=સેવન્તે । તથા-
 મુષ્ટા=પ્રતાદૃશા એવ અનાવૃતમસ્તકાઃ નિર્લજ્જા ડન્યર્થ , ન એવ મુષ્ટં=મુષ્ટિત-
 મસ્તકમેન પર્યુપાસતે । તથા-મૂઢાઃ=મૂર્ધ્વા હેયોપાદેયજ્ઞાનશૂન્યા એવ મૂઢ=
 સદસચ્ચિવેકવિકલમેન પર્યુપામતે । અપણ્ડિતાઃ=વ્યાવહારિકબુદ્ધિવિકલામ્નત્ત્વ-
 જ્ઞાનરહિતત્વાત્, ત એવ અપણ્ડિતં=તત્ત્વજ્ઞાનશૂન્યમેન પર્યુપાસતે । નિર્વિજ્ઞાનાઃ=

યહ હૈ કિ યહા પર વિચાર કે ઇન વિશેષણોને વિચાર કી આગેર પુષ્ટિ
 હોતી હુઈ પ્રકટ કીં હૈ । જિસ પ્રકાર અકુર પહિલે જમતા હૈ વાદ મેં વહ
 પત્રિત હોતા હૈ, ફિર પુષ્પિત હોતા હૈ ઓર અન્ત મેં ફલિત હોતા હૈ ઇસી
 પ્રકાર સે યહા ઉસકા વિચાર આગેર અધિકર પુષ્ટ હાતા ગયા ઇસી ઘાત
 કો 'જઠ્ઠા' આદિપદોં દ્વારા પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ-ઉદ્યોગવર્જિત હોને સે જો
 જઢ-અલસ હોતે હૈં અથવા તો કર્તાવ્યાકર્તાવ્યરૂપ વિવેક સે રહિત હોને
 કે કારણ (વિવેક વિકલ હૈ વે હી ઇસ જઢ પુરુષ કી ઉપાસના-સેવા કરતે હૈં, તથા
 જો ઇસી જૈસે મુષ્ટ-અનાવૃત રુલ્લે મસ્તક વાલે-નિર્લજ્જ હૈ, વે હાં ઇસ મુષ્ટિત-
 મસ્તકવાલે ઇસકી સેવા કરતે હૈં, તથા જો હેયોપાદેય જ્ઞાન સે શૂન્ય
 મૂઢ જન હૈ વે હી ઇસ અચ્છે વુરે કે જ્ઞાન સે વિકલ હુપ ઇમકી સેવા
 કરતે હૈં । તત્ત્વજ્ઞાન રહિત હોને કે કારણ જો વ્યવહારિક બુદ્ધિ સે વિકલ
 હૈ, વેહી ઇસ તત્ત્વજ્ઞાન શૂન્ય ઇસ અપણ્ડિત કી સેવા કરતે હૈ, તથા બુદ્ધિ
 હીન હોને સે જો વિશિષ્ટજ્ઞાન સે રહિત હૈ વેહી ઇસ સદ્બોધરહિત કો

મનોગત થઈ ગયો. તાત્પર્ય એ છે કે અહીં વિચારના આ વિશેષણોથી અનુક્રમે
 તે પછીના વિચારોની યુષ્ટિ જ થાય છે. જેમ અકુર પહેલા જામે છે. ત્યારપછી તે
 પત્રિત થાય છે, પછી પુષ્પિત થાય છે અને છેવટે ફલિત થાય છે તેમજ અહીં પણ
 તેનો વિચાર અનુક્રમે અધિકાધિક પુષ્ટ જ થતો જાય છે આ વાતને 'જઠ્ઠા'
 વગેરે પદો વડે પ્રકટ કરવામા આવી છે ઉદ્યોગ રહિત હોવા બદલ જે જડ-આળસુ-
 હોય છે અથવા તો જે કર્તાવ્યાકર્તાવ્યરૂપ વિવેકથી રહિત હોવા બદલ વિવેક વિકલ
 છે, તે જ આ જડ પુરુષની ઉપાસના-સેવા કરે છે. તેમજ જેઓ એના જેવા જ
 મુઢ-અનાવૃત મસ્તકવાળા-નિર્લજ્જ છે તે જ આ મુડિત મસ્તરવાળાઓની સેવા
 કરે છે તેમજ જેઓ હેયોપાદેયના જ્ઞાનથી રહિત મૂઢ જન છે તે જ આ વિવેક-
 રહિત પુરુષને સેવે છે તત્ત્વજ્ઞાનરહિત હોવાથી જે વ્યાવહારિક બુદ્ધિથી વિકલ છે,
 તે જ આ તત્ત્વજ્ઞાન શૂન્ય અપણ્ડિતને સેવે છે. તેમજ બુદ્ધિહીન હોવાથી જે વિશિષ્ટ-
 જ્ઞાનથી રહિત છે તેઓજ આ સદ્બોધ રહિત પુરુષની સેવા કરે છે. આ કઈ જાતની

विशिष्टज्ञ नरहिताः बुद्धिहीनत्वात्, त एव निर्विज्ञान=सद्व्योधरहितमेव पर्यु-
पासते । स एष कीदृशः पुरुषः यो जडो मुण्डो मूढोऽपण्डितो निर्विज्ञानोऽपि
श्रिया==महातिमहालयपरिषदादिशोभया, द्विया=छजया-कृत्वेष्टावर्जनरूपया
उपगतः=संपन्न. तथा-उत्सृष्टशरीरः=शरीरकान्त्या दीप्यमानो वर्त्तते इति
किं कारणम् ? कारणं चिन्तयति-एष खलु पुरुषः कं=किम्प्रकारम् आहार =
भोजनम् आहारयति=करं नि ? किं=केन प्रकारेण सुक्तं भोजनं परिणमयति=
परिणामं प्रापयति ? किं=कीदृशं रुचिरं वस्तु खादति ? किं=कोदृशं रुचिरं
मप णकादिकं पिबति?, किं ददाति एभ्यो लोकेभ्यः, किं प्रयच्छति=विशेषेण
ददाति यत्=यस्मात्कारणात् खलु एष पुरुषः एतावन्महालायायाः=महत्याः
मनुष्यपरिषदो मध्यगतः=मध्योपविष्टः सन् महता शब्देन=उच्चैः शब्देन ब्रवीति=
वदति ? । एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण संप्रोक्षने=विचारयति, चित्र सारयिमेवमवा-

सेवा करते है यह कैसा पुरुष है ? जो जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित एवं निर्वि-
ज्ञान हुआ भी महानिमहालय परिषदा-याने विशालसभा मे शांभा से
एवं कुश्चेष्टावर्जनरूप लज्जा से संपन्न बना हुआ है। एवं शरीरकी कान्ति से
देदीप्यमान हो रहा है. इसमें कारण क्या है ? क्या यह इस प्रकार के
आहारको करता है जो इसके शरीर मे ऐसी कान्ति प्रदान करता है-
यही बात वह 'क आहारं आहारयति' इत्यादि पदों द्वारा विचार करता
है यह किस प्रकार के आहारको करता है ? तथा किस प्रकार से सुक्त भोजन को
यह परिणमाता है ? यह कैसी रुचिर वस्तु खाता है ? अगर कैसे रुचिरपान को यह पीता
है ? यह इन लोको के लिए क्या दे रहा है ? क्या विशेषरूप से यह इन्हें प्रदान
कर रहा है ? जो यह इस वही भारी मनुष्य परिषदा के बीच में बैठा
हुआ बड़े जोर से बोल रहा है। इस प्रकार से उसने विचार किया-

अज्ञितं छे के के जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित अने निर्विज्ञान होवा छता पण्डु महति-
महालय परिषदा अटके के विशाल सभाभा शोभाथी अने कुश्चेष्टा वर्जनरूप लज्जा
युक्त थयेकी छे तेमन् शरीरकान्तिथी दीप्यमान थध रखे छे, आतुं शु कारण्णु छे ?
शु ते आ बातने आहार करे छे के के अने अने शरीरभूषी अने की कान्ति उत्पन्न करे
छे अने वात ते 'क आहारं आहारयति' वगेरे पढे पडे गतावे छे. अ कथं
आतने आहार अहंछु करे छे ? तेमन् कथं आतना सुक्त भोजनने आ परिषुभावे छे ?
आ कथं आतनी रुचिर वस्तुने आहार करे छे ? केवा रुचिर पानपदार्थने आ पीवे
छे ? आ पुरम् आ अधाने शु आपी रखे छे ? विशेषरूपथी आ अथा अकेत्र
थयेकी लोकेने आ शुं आपी रखे छे ? के के आ अहुं मोटी विशाल परिषदानी
वच्चे असीने अहुं मोटा रवरथी ओली रखे छे आ प्रभावे तेबु विचार करीं त्पार-

दीप्त-प्रकटमवदत्-चित्र । जडाः खलु जडं पथुपासते, यावत्-यावच्छब्देन-पूर्वोक्तं सर्वं ग्राह्यम्, त्रवीति=उच्चस्वरेण वदति येन कारणेनाह स्वस्यामपि=स्वकीयायामपि उद्यानभूमौ सम्यक्=सम्यक्प्रकारेण प्रकामम्-अतिशयं । प्रविचरितुं=मचरितुं नो शक्नोमि=न समर्थो भवामि ॥ सू० १२६ ॥

मूलम्—तएणं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी—एसणं सामी । पासावच्चिजे केसा नामं कुमारसमणे जाइसंपण्णे जाव चउनाणोवगए अधोऽवहिए अण्णजीविए । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—आहोहियं णं वयासि चित्ता ! अण्णजीवियत्तं णं वयासि चित्ता ! ? हंता ! सामी ! आहोहियं णं वयामि अण्णजीवियत्तं णं वयामि । अभिगमणिज्जे ण चित्ता ! एस पुरिसे ? हता ! सामी ! अभिगमणिज्जे । अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ? हंता ! सामी ! अभिगच्छामो ॥ सू० १२७ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिराजमेवमादीत-एष खलु स्वामिन् । पार्श्वपत्नीयः केशो नाम कुमारश्रमणः जानिसंपन्नः यावत् चतु-

वाद में वह चित्र सारथि से प्रकटरूप में इस तरह से कहने लगा-चित्र ! जह जह की उपासना करते है इत्यादि यहां यावत् शब्द से पूर्वोक्त सब कथन जो यह जोर से इस मनुष्य परिपदा के बीच में बोल रहा है यहां तक का ग्रहण हुआ है। इसी कारण मैं अपनी भी इस उद्यानभूमि में ठीक तरह से घूम नहीं पा रहा हूं ॥ सू० १२६ ॥

‘तएणं से चित्तं सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) तत्र

पक्षी-ते प्रकटप्रभा चित्र, सारथिने आ प्रभाञ्छे कहेवा लाग्ये ठे ठे चित्र । ७३ ७३नी उपासना करे छे वगेरे, अही यावत् शब्दही पूर्वोक्त पक्षी कथन-ठे ७३ आ मोटा साठे मनुष्य परिपदांनी वर जोखी रथं छे, अही सुधीत अक्षय करपुं ओछये ओथी ७ हुं आ सारी ७ उद्यान भूमिमा सारी-ते डरीक्षरी शक्ते नथी ॥ सू. १२६ ॥

‘तए णं से चित्तं सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) तत्रे

ज्ञानोपगतः अधोऽवधिकः आन्नजीवितः । ततः खलु म प्रदेशी राजा चित्र
सारथिमेवमवादीत्—अधोऽवधिक्यं खलु वदस्मि चित्र ! अन्नजीवितत्वा खलु

उस चित्र सारथिने प्रदेशी राजा से कहा—(ए मणं सामा ! पामावच्चिज्जे
केमी नामं कुमारमणणे जाडमणणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन !
ये पुरोर्त्ती वेशीकुमारश्रमण हे । जो कि पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा में
उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने कुमारवस्था में ही मंगम ग्रहण किया है इम-
लिये इन्हे कुमारश्रमण कहा गया है। ये जातिसंपन्न है, यावत् कुलसंपन्न
है, इत्यादि पूर्व में कहे गये विशेषणों वाले है। इन विशेषणों
का अर्थ वहाँ पर लिखा जा चुका है. अतः यहाँ पर पुनः
नहीं लिखा है। ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान
के अधिपति है—चार ज्ञान के धारी हैं (अधोऽवहिए अणजीविए) इनका
जो अवधिज्ञान है वह परमावधि से किञ्चिन् ही न्यून है। इनका जीवन
प्रासुक्यवर्णनीय अन्नपान से है. अर्थात् ये प्रासुक्यवर्णनीय ही आहार लेते
हैं, उद्दगमादि दोष से दूषित आहार नहीं लेते हैं। (तए णं से पपीसी
राया चित्तं सारहिं एव वयासी) तब प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से
ऐसा कहा—(आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीविगतं णं वयासी चित्ता ?)
हे चित्र ! जो तुम ऐसा कहते हो कि इनका अवधिज्ञान परमावधि से

चित्र सारथिके प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे कहु (ए सणं सामी ! पामावच्चिज्जे
केसी नामं कुमारमणणे जाडसम्पणणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन् । आ
आपणी आने देशीकुमार श्रमणु छे. हे जेज्यो पार्श्वनाथनी शिष्यपरपरामा उत्पन्न
थया छे. जेभजे कुमारवस्थाभा व समय अहणु कर्ये छे जेथी व जेभने कुमार-
श्रमणु कहेवामां आव्या छे जेज्यो जातिसंपन्न छे, यावत् कुलसंपन्न छे, वगेरे
पहेला कहेवायेदां विशेषणोथी सुकन छे आ जधा विशेषणोना अर्थ पहेला स्पष्ट
करवामा आव्ये छे. तेथी अहीं करी कहेवामा आव्ये नथी, जेज्यो मतिज्ञान, श्रुत-
ज्ञान, अप्रविज्ञान, अने मन पर्यवज्ञानना अधिपति छे, आर ज्ञानधारी छे.
(अधोऽवहिए अणजीविए) जेभनु जे अवधिज्ञान छे ते परभावधिथी थोडु व कम
छे. जेभनु एवन प्रासुक्यवर्णनीय अन्नपानथी छे, जेटके के. जेज्यो प्रासुक्यवर्णनीय
आहार अहणु करे छे उद्दगम वगेरे दोषोथी दूषित आहार जेज्यो अहणु करता नथी
तए ण से पपीसी राया चित्तं सारहिं एव वयासी) तयारे प्रदेशी राजाने
चित्र सारथिने आ, प्रभाषे कहु, (आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीवि-
गतं वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जे-तमे आ प्रभाषे कहे छे हे जेभनु अव-
धिज्ञान परभावधि करता थोडु व अल्प छे तेभज जेज्यो प्रासुक्यवर्णनीय आहार

दीत्-प्रकटमवदत्-चित्र । जडाः खलु जडं पयुंपासते, यावत्-यावच्छब्देन-पूर्वोक्तं सर्वं ग्राह्यम्, व्रवीति=उच्चस्वरेण व्रदति येन कारणेनाह स्वस्यामपि=स्वकीयायामपि उद्यानभूमौ सम्यक्=सम्यक्प्रकारेण प्रकामम्-अतिशयं । प्रविचरितुं=मचरितुं नो शक्नोमि=न समर्थो भवामि ॥सू० १२६॥

मूलम्—तएणं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी—एसणं सामी । पासावच्चिजे केसा नामं कुमारसमणे जाइसंपणणे जाव चउ-नाणोवगए अधोऽवहिण् अण्णजीविण् । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—आहोहियं णं वयासि चित्ता ! अण्णजीवियत्तं णं वयासि चित्ता ! ? हंता ! सामी ! आहोहियं णं वयामि अण्णजीवियत्तं णं वयामि । अभिगमणिज्जे ण चित्ता ! एस पुरिसे ? हता ! सामी ! अभिगमणिज्जे । अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ? हंता ! सामी ! अभिगच्छामो ॥सू० १२७॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-एष खलु स्वामिन् । पार्श्वपत्नीयः केशो नामकुमारश्रमणः जानिसंपन्नः यावत् चतु-

षाद में वह चित्र सारथि से प्रकटरूप में इस तरह से कहने लगा-चित्र ! जड़ जड़ की उपासना करते हैं इत्यादि यहां यावत् शब्द से पूर्वोक्त सब कथन जो यह जोर से इस मनुष्य परिपदा के बीच में बोल रहा है यहां तक का ग्रहण हुआ है। इसी कारण मैं अपनी भी इस उद्यानभूमि में ठीक तरह से घूम नहीं पा रहा हूं ॥सू० १२६॥

‘तएणं से चित्तं सारही’ इत्यादि ।

सुप्रार्थं—(तएणं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) तच्च

पक्षी-ते प्रकटइममा चित्रं सारथिने आ प्रभाषे कहेवा लाओ। के हे चित्र ! जड जडनी उपासना करे, छे वगेरे, अही यावत् शकथी पूर्वोक्त पक्षी कथन-के ने आ मोटा साडे मनुष्य परिपदांनी वर पोली रहं छे, अही सुधीउ अहण्ण करवुं नोछ्ये ओथी न हुं आ मारी/न उद्यान भूमिमा सारी शीते हरीक्षरी शकतो नथी ॥सू० १२६॥

‘तएणं से चित्तं सारही’ इत्यादि ।

सुप्रार्थं—(तएणं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) त्यादे

ज्ञानोपगतः अधोऽवधिः आन्नजीवितः । ततः खलु म प्रदेशी राजा चित्र
सारथिमेवमवादीत-अधोऽवधिक्य खलु वदमि चित्र ! अन्नजीवितत्त खलु

उस चित्र सारथिने प्रदेशी राजा से कहा—(गमणं सामा ! पाम्नावच्चिज्जे
केसी नामं कुमारमणे जाइमपणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन !
ये पुरोर्त्ती केशीकुमारश्रमण है । जो कि पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा में
उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने कुमारावस्था में ही मगम ग्रहण किया है इम-
लिये इन्हे कुमारश्रमण कहा गया है। ये जातिसंपन्न हैं, यावत् कुलसंपन्न
है, इत्यादि प्रश्न में कहे गये विशेषणों वाले है। इन विशेषणों
का अर्थ वहाँ पर लिखा जा चुका है। अतः यहां पर पुनः
नहीं लिखा है। ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान
के अधिपति हैं—चार ज्ञान के धारी हैं (अधोऽवधिं अण्णजीविणं) इनका
जो अवधिज्ञान है वह परमावधि से क्रिञ्चिन ही न्यून है। इनका जीवन
प्रासुक, एषणीय अन्नपान से है, अर्थात् ये प्रासुक एषणीय ही आहार लेते
है, उद्गमादि दोष से दूषित आहार नहीं लेते हैं। (तए णं से पढीसी
राया चित्तं सारहिं एषं वयासी) तब प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से
ऐसा कहा—(आहोहिंयं णं वयासी चित्ता ! अण्णजीविणं णं वयासी चित्ता ?)
हे चित्र ! जो तू ऐसा कहते हो कि इनका अवधिज्ञान परमावधि से

चित्र सारथिने प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे क्खुं (ए सणं सामी ! पाम्नावच्चिज्जे
केसी नामं कुमारमणे जाइमपणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन् ! आ
आपणी सामे केशीकुमार श्रमणु छे, हे जेज्यो पार्श्वनाथनी शिष्यपरपरमा उत्पन्न
थया छे, जेअखे कुमारावस्थाया ज सयम अरुणु कथे छे जेथी ज जेअने कुमार-
श्रमणु कहेवाया आल्या छे जेज्यो अतिसंपन्न छे, यावत् कुलसंपन्न छे, वगेरे
पहेला कहेवायेला विशेषणुथी सुकन छे, आ अथा विशेषणुनो अर्थ पहेला स्पष्ट
करवाया आये छे, तेथी अही करी कहेवाया आये नथी, जेज्यो मतिज्ञान, श्रुत-
ज्ञान, अप्रधिज्ञान, अने मन पर्यवज्ञानना अधिपति छे, आर ज्ञानधारी छे,
(अधोऽवधिं अण्णजीविणं) जेअनु जे अवधिज्ञान छे ते परमावधिथी थोडुं ज कम
छे जेअनु एवन प्रासुक एषणीय अन्नपानथी छे, जेटले हे जे ज्यो प्रासुक एषणीय
आहार अरुणु करे छे उद्गम वगेरे दोषोथी दूषित आहार, जेज्यो अरुणु करता नथी
तए ण से पपसी राया चित्तं सारहिं एषं वयासी) तयारे प्रदेशी राजजे
चित्र सारथिने आ प्रभाषे क्खुं, (आहोहिंयं णं वयासी चित्ता ! अण्णजीवि
णं वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जे तमे आ प्रभाषे कहे छे हे जेअनु अव-
धिज्ञान परमावधि करता थोडुं ज अल्प छे तेअ जेज्यो प्रासुक एषणीय

दीत्-प्रकटमवदत्-चित्र । जडाः खलु जडं पयुंपासते, यावत्-यावच्छब्देन-पूर्वोक्तं सर्वं ग्राह्यम्, ब्रवीति=उच्चस्वरेण वदति येन कारणेनाहं स्वस्यामपि=स्वकीयायामपि उद्यानभूमौ सम्यक्=सम्यक्प्रकारेण प्रकामम्-अतिशयं । प्रविचरितुं=मचरितुं नो शक्नोमि=न समर्थो भवामि ॥ सू० १२६ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही पएसिरायं एवं वयासी-एसणं सामी । पासावच्चिजे केसा नामं कुमारसमणे जाइसंपणणे जाव चउ-नाणोवगए अधोऽवहिण् अण्णजीविण् । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी-आहोहियं णं वयासि चित्ता ! अण्णजीवियत्तं णं वयासि चित्ता ! ? हंता ! सामी ! आहोहियं णं वयामि अण्णजीवियत्तं णं वयामि । अभिगमणिज्जे ण चित्ता ! एस पुरिसे ? हता ! सामी ! अभिगमणिज्जे । अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ? हंता ! सामी ! अभिगच्छामो ॥ सू० १२७ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-एष खलु स्वामिन् । पार्श्वीपत्यीयः केशीनामकुमारश्रमणः जानिसंपन्नः यावत् चतु-

बाद में वह चित्र सारथि से प्रकटरूप में इस तरह से कटने लगा-चित्र ! जड़ जड़ की उपासना करते हैं इत्यादि यहाँ यावत् शब्द से पूर्वोक्त सब कथन जो यह जोर से इस मनुष्य परिषदा के बीच में बोल रहा है यहाँ तक का ग्रहण हुआ है। इसी कारण मैं अपनी भी इस उद्यानभूमि में ठीक तरह से घूम नहीं पा रहा हूँ ॥ सू० १२६ ॥

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से चित्ते सारही पएसिरायं एवं वयासी) तव

पछी ते प्रकटइयमा चित्रं सारथिने आ प्रमाणे कहेवा दाज्ये के हे चित्र । ७३ ७३नी उपासना करे, छे, एगेरे, अहीं यावत् शब्दथी पूर्वोक्त पक्षं कथन-के ने आ मोटा साठे मनुष्य परिषदानी वत् गोदी रक्षे छे, अही सुधीसु अहंथु करवुं नेधंथे ज्येथी ७ हुं आ सारी ७- उद्यान भूमिमा सारी तीते डरीक्षरी शक्तो नथी ॥ सू. १२६ ॥

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से चित्ते सारही पएसिरायं एवं वयासी) त्वारे

अर्थोऽपि तत एव बोध्यः । चतुर्भानोपगतः=मत्यादिज्ञानचतुष्टयसंपन्नः
 अधोऽवधिकः=अधः=परमावधेरधोवर्ती अर्थाधर्माय म तथा- परमावधेः विश्व
 कृप्यावधियुक्तः अन्नजीवित =अन्नेन=मासुकैगणीयाज्ञमात्रेण जीति तं=जीवनं
 यस्य स तथा । तथा-‘अन्यजीवित’ इति वा छाया तत्र-अन्यस्मै न तु
 स्वस्मै सर्वविरतितन्वात् जीवनमरणाशसाविप्रमुक्तत्वाद्वा जीवित=जीवन
 यस्य स तथा, तादृशो वर्तते । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्र सारथि-
 मेवमवादीत-हे चित्र ! अस्य मुनेस्त्वम् आधोऽवधिकम्=अधोऽवधित्व वदसि=
 सत्यं कथयसि? तथा-अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितन्त्र वाऽऽस्मिन्ने’ हे चित्र !
 त्वं मत्स्य कथयसि ? । इति पृच्छानन्तर चित्र ! सारथिः प्राह-हे स्वामिन !
 ‘हन्त’ इति स्वीकारे ‘हे’ इति भाषायाम्, अस्य मुनेःहम् आधोऽवधिकम्
 खलु वदामि सत्यं कथयामि, तथा अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्व वा वदामि=
 मत्स्यं कथयामि।पुनः प्रदेशी राजा प्राह-हे चित्र ! एष पुरुषः किम् अस्माकम्
 अभिगमनीयः=परिचययोग्योऽस्ति ? हन्त हे स्वामिन ! एष मुनिः अभि-
 गमनीयोऽस्ति। पुनःप्रदेशी राजापृच्छति एवं तर्हि हे चित्र ! एत पुरुषं वयम्
 अभिगच्छाम । अनेन सह परिचयं करवाम ? । चित्रः सारथिः प्राह-हन्त हे
 स्वामिन ! अभिगच्छाम=अनेन सह वयं परिचयं करवाम ॥श्रु० १२७॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव
 केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूर-
 सामंते ठिच्चा एवं वयासी-तुब्भे णं भंते ! आहोहिया अण्ण-
 जीविषा ? । तएणं केसीकुमारसमणे पएसि रायं एवं वयासा-
 पएसी । से जहाणामए अंकवाणियाइवा संखवाणियाइवा दत्त-
 वाणियाइवा सुंके भसिउकामा णो सम्म पंथ पुच्छति, एवामेव
 पएसी । तुब्भेवि विणयं भंसेउकामो नो सम्भं पुच्छसि, से पूणं तव

और दूसरा अर्थ ‘अन्यजीवित’ इस छायापत्र में ऐसा होता है कि
 सर्वविरतियुक्त होने से अथवा जीवन मरण की आशंका से रहित होने
 से इनका जीवन दूसरों के लिये ही है अपने लिये नहीं ॥श्रु १२७॥

अर्थ ‘अन्यजीवित’ आ ‘छायापत्र’मा आ प्रभावे थाय छे. हे सर्वविरतियुक्त होवाथी
 अथवा एवनभरभुनी अशंकाथी रहित होवाथी अथवा ‘एवन जीवनकोना भाटे
 छे पोताना भाटे नहि. ॥ श्रु. १२७ ॥

दसि चित्र ! ? । हन्त स्वामिन् ! आधोऽवधिक्य खलु वदामि अन्नजीवि
त्त्व खलु वदामि । अभिगमनीयः खलु चित्र ! एष पुरुषः ? हन्त ! स्वामिन् !
अभिगमनीयः । अभिगच्छाम खलु चित्र ! वय एत पुरुषम् ? हन्त ! स्ता
मिन् । अभिगच्छामः ॥ मृ० १०७ ॥

टीका—‘तएणं से चित्ते’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेहि
राजमेवमवादीत्—हे स्वामिन् ! एषः=अथ—पुरोवर्त्ती पार्श्वपत्नीयः=पार्श्वस्वामि
श्रेष्ठ्यपरम्परासंजातः केशी नाम कुमारश्रमणः=कुमारश्चात्मौ श्रमणश्च कुमार-
श्रमणः कुमारावस्थायामेव गृहीतसंयमः, कीदृशोऽयमित्याह-जातिसंपन्नः यावत्
यावच्छब्देन ‘कुलसंपन्नः’ इत्यादि विशेषणा न सर्वाणि पूर्वसूत्रोक्तानि संग्राह्याणि

किंचित् ही न्यून है तथा ये प्रासुक एषणीय ही आहार लेते है सो क्या
यह ध्यान तुम सत्य कहते हो ? (हंता सामी ! आहोहियं णं वयामि, अण्णजी-
वियत्तं ण वयामी) हां, स्वामिन् ! मैं सत्य कहता हूं कि इनका अवधि-
ज्ञान परमावधि से किंचित् न्यून है और ये प्रासुक एषणीय ही आहार
लेते है। (अभिगमणिज्जे ण चित्ता ! एस पुरिसे) तो हे चित्र ! यह पुरुष
अभिगमनीय है, अर्थात् परिचय करने के योग्य है (हता सामी ! ‘अभि-
गमणिज्जे) हां स्वामिन् । ये आपके लिये अभिगमनीय है अर्थात् परि-
चय करने के योग्य है । (अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्ह एय पुरिसे)
तो हे चित्र ! मैं इनके साथ परिचय करलू ? (हता सामी ! अभिगच्छामो)
हां स्वामिन् ! आप इनके साथ परिचय करें ।

इसका टीकार्थ इस मूलार्थ के जैसा ही है। केवल विशेषता अण्ण
ज वियत्त’ पद में है, इसका अर्थ तो मूलार्थ में लिखा जा चुका है—

अहं धरे छे तो शु आवात साथी छे ? (हता सामी ! आहोहियं ण वयामि
अण्णजीवियत्तं ण वयामी) हां स्वामिन् ! हुं साथी वात कहुं छु अमह
अवधिज्ञान परमावधि करता थोडु कम छे अने अयो प्रासुक एषणीय आहार
अहं धरे छे, (अभिगमणिज्जे ण चित्ता ! एस पुरिसे) तो हे चित्र ! आ पुरुष
अभिगमनीय छे अटके के अण्णभाषु करवा योग्य छे, (हंता सामी ! अभिगमणिज्जे)
हां स्वामिन् ! अयो आपना भाटे अभिगमनीय छे अटके के अण्णभाषु करवा योग्य छे,
अभिगच्छामो ण चित्ता ! अम्ह एय पुरिसे) तो हे चित्र ! हुं अमनी साथे अण्णभाषु करु ?
(हता सामी अभिगच्छामो) हां स्वामिन् ! तमे अमनी साथे अण्णभाषु करी दो,

आ सूत्रो टीकार्थ मूलार्थ प्रमाणे न छे, विशेषता शब्द ‘अण्णजीवियत्तं’
पदभा छे आने अके अर्थ तो मूलार्थभा न लभवाभा आल्ये छे अने वल्लि

अधोऽपि एव बोध्यः । चतुर्ज्ञानोपगतः=मत्यादिज्ञानचतुष्टयसंपन्नः
 अधोऽवधिकः=अधः=परमावधेरधोवर्ती अर्वाधर्थाय म तथा--परमावधेः विश्व
 श्रुत्यावधियुक्तः अन्नजीवित=अन्नेन=प्रासुकैपणीयाज्ञमानेण जीवितं=जीवन
 यस्य स तथा । तथा-'अन्यजीवित' इति वा छाया तत्र-अन्यस्मै न तु
 स्वस्मै सर्वविरतितन्वात् जीवनमरणाशसाविप्रमुक्तत्वाद्वा जीवितं=जीवन
 यस्य स तथा, तादृशो वक्तै ! ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्र सारथि-
 मेवमवादीत-हे चित्र ! अस्य मुनेस्त्वम् अधोऽवधिवदस्म=अधोऽवधित्व वदसि=
 मत्स्यं कथयसि? तथा-अन्नजीवितत्वम् अन्यजीविनन्व वाऽस्यमुने । हे चित्र !
 त्व मत्स्यं कथयसि? इति पृच्छानन्तर चित्र ! सारथिः प्राह-हे स्वामिन !
 'हन्त' इति स्वीकारे 'हँ' इति भाषायाम्, अत्रय मुनेःहम् आधोऽवधिवद्य
 खलु वदाभि सत्यं कथयामि, तथा अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्व वा वदामि=
 मत्स्यं कथयामि। पुनः प्रदेशी राजा प्राह-हे चित्र! एष पुरुषः किम् अस्माकम्
 अभिगमनीयः=परिचययोग्योऽस्ति? हन्त हे स्वामिन ! एष मुनिः अभि-
 गमनीयोऽस्ति। पुनःप्रदेशी राजापृच्छति एवं तर्हि हे चित्र! एत पुरुषं वयम्
 अभिगच्छाम । अनेन सह परिचयं करवाम ? चित्रः सारथिः प्राह-हन्त हे
 स्वामिन् ! अभिगच्छाम=अनेन सह वयं परिचयं करवाम ॥सू० १२७॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव
 केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूर-
 सामंते ठिच्चा एव वयासी-तुब्भे णं भंते । आहोहिया अण्ण-
 जीविषा ? । तएणं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासा-
 पएसी । से जहाणामए अंकवाणियाइवा संखवाणियाइवा दत्-
 णियाइवा सुंक भसिउकामा णो सम्मं पथ पुच्छति, एवामेव
 पएसी । तुब्भेवि विणयं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि, से णूणं तव

और दूसरा अर्थ 'अन्यजोवित' इस छायापक्ष में ऐसा होता है कि
 सर्वविरतियुक्त होने से अथवा जीवन मरण की आशंका से रहित होने
 से इनका जीवन दूसरों के लिये ही है अपने लिये नहीं ॥सू. १२७॥

अर्थ 'अन्यजीवित' आ 'छायापक्ष'मा आ प्रभाषे थाय छे. हे सर्वविरतियुक्त होवाथी
 अथवा एवमभरक्षुनी अशंसाथी रहित होवाथी अथवा एतन्. श्रीलक्ष्मणा भाटे
 ७ छे पोताना भाटे नहि. ॥ सू. १२७ ॥

पएसी ! मम पासित्ता अयमेयाख्खे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-
जडा खलु भो ! ज्जड जुपवासति जाव पवियरित्तए से णूणं पएसी !
अट्टे सामत्थे ? ह ता ! अत्थि ॥सू० १२८॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रेण सारथिना सार्धं यत्रैव
केशो कुमारश्रमणः तत्रैव उवागच्छति. केशिनः कुमारश्रमणस्य अदूरमा-
मन्ते स्थित्वा एवमवादीत्—युय खलु मदन्त ! अधोऽवधिकाः अन्नजी-
विताः १। ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्—प्रदे-
शिन् ! तद्यथा नाम—अङ्कवणिज इति वा शङ्खवणिज इति वा दन्तवणिज-

‘तए ण से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धि इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) हमके बाद (से पएसी राया चित्तेण सारहिणा
सद्धि) वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि के साथ (जेणेव केसिकुमारसमणे
तेणेव उवागच्छइ) जहा केशिकुमारश्रमण थे वहा पर गया (केसिस्स कुमा-
रसमणस्स अदूरसामते टिष्ठा एव वयासी) वहां जाकर वह केशिकुमार
श्रमण से ‘‘से स्थान पर खडा रह गया कि जो स्थान न उनसे अधिक
दूर था और न अधिक पास था। वहीं से खड़े रहने उनसे ऐसा कहा—
(तुम्हे णं मंते ! आहोहिया अण्णजीविआ) हे मदन्त ! आपका ज्ञान—व-
धिज्ञान परमावधि से किंचित् न्यून है, और आप प्रासुक एषणीय ही
आहार करते है ? (तए णं केसिकुमारसमणे पएसिं रायं एव वयासी)
तब केशो कुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा— परपी ! से नडा
णामए अकटाणि ॥ड वा, दंतवणिजाइ वा, सुंकां भसित्तं कामा णो ममं

‘तए णं से पएसी राया चित्तेणे सारहिणा सद्धि’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्सारथी (से) पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धि)
ते प्रदेशी राजा चित्र सारथीनी साथे (जेणेव केसि कुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ)
न्या केशिकुमार श्रमण उता त्या गया. (केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसाम ते
टिष्ठा एव वयासी) त्या अन्धने ते केशिकुमार श्रमणथी अवा स्थाने उवा रखा
इ ते स्थान तेभनाथी वधारे दूर पणु नहि इत्तु अने वधारे नल्लक पणु नहि इत्तुं
त्या उवा उवा अ तेणे तेभने आ प्रभाणे क्खुं (तुम्हे णं मंते ! आहोहिया
अण्णजीविआ) हे मदन्त ! आपतुं ज्ञान—परमावधि करता थोडुं कम छे ? अन्धने
आप प्रासुक एषणीय आहार अ अल्लु करे छे ? (तए णं केसिकुमारसमणे
पएसिं राय एव वयासी) त्थारे केशिकुमार श्रमणने प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे क्खुं

इति वा, शुक्लं भ्रंशयितुकामा नो सम्यक् पन्थात् पुच्छन्ति, एवमेव प्रदेक्षिन् । त्वमपि विनयं भ्रंशयितुकाभा नो सम्यक् पृच्छसि, अध नूनं तत्र प्रदेक्षिन् । मां हृष्ट्वा अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् तदुदपद्यत-जडाः ख भो ! जडं पर्युपासते यावत् प्रविचरितुं स नूनं प्रदेक्षिन् । अर्थः समर्थः इति । अस्ति ॥ सू० १२८ ॥

पयं पुच्छंति) हे प्रदेक्षिन् ! जैसे अंकरत्न के व्यापारी, अथवा शंखरत्न के व्यापारी, या दन्त के व्यापारी,—अर्थात् जब शुभ भी होता है इसलिये उसको रत्न कहा है, राजदेय भाग को नहीं लेने की इच्छा वाले होकर जाने के अच्छे मार्ग को नहीं पूछते हैं (एवमेव परसी तुम्हें विषयं भ्रंशयितुकामो नो सम्यं पुच्छसि) इसी प्रकार से हे प्रदेक्षिन् ! विनयरूप प्रतिपत्ति को नहीं करने की कामना वाले बने हुए तुमने भी यह अच्छे रूप से नहीं पूछा है, (से पूणं तत्र परसी मम पासित्ता अयमेवारूढे अष्टमित्यए जाव समुपपञ्जित्या) हे प्रदेक्षिन् ! मुझे देखकर तुम्हें इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प हुआ है (ज खलु भो ! जडुं पञ्जुवासति जाव पविचरित्तए) जड पुरुष जड पुरुषकी पर्युपासना करते हैं यावत् मैं अपनी भी इस उद्यान भूमि में अच्छी तरह से धूम नहीं पा रहा हूँ (से पूणं परसी ! अहं समत्थे ?) हे प्रदेक्षिन् ! कहां मैं ठीक कहां रहूँ न? (इंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कह रहे हैं

(परसी ! से जहाणामए अंक्वाणियाह वा, संखवाणियाह वा, दंतवाणियाह वा, सुंक् मसिउंकामा णो सम्यं पयं पुच्छंति) हे प्रदेक्षिन् ! जैसे अंकरत्नवा वडेपारी, डे शंखरत्नवा वडेपारी डे दन्तवा वडेपारी (शंभ शुभ पद्य गलुथ छे तेथी अडीं तेने रत्नइपे उक्केअवामा आन्थे छे) संखर आपवानी छच्छा न भरावता त्याथी नवाना सारा भागी भाटे पूछपरछ करता नथी (एवामेव परसी तुम्हें विं विषयं भ्रंशयितुकामो नो सम्यं पुच्छसि) आ प्रभाणु हे प्रदेक्षिन् ! विनयइय प्रतिपत्तिने न आचरता तयोअे पद्य आ वा शिष्टभावथी-नअताथी-पूछी नथी, (से पूणं तत्र परसी मम पासित्ता अयमेवारूढे अष्टमित्यए जाव समुपपञ्जित्या) हे प्रदेक्षिन् ! अने छेअने तमने आ प्रभाणुने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थये छे डे (जडुं खलु भो ! जडुं पञ्जुवासति जाव पविचरित्तए) जड पुरुषे जडने सेवे छे यावत् हुं आ मारी ये आनी उद्यान भूमिअं पद्य सारी रीते आरामथी इरी थयते नथी, (से पूणं परसी ! अहं समत्थे ?) हे प्रदेक्षिन् ! कहां हुं पराअर कहुं छुं ने ? (इंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कह रहे हैं

पएसी । मम पासित्ता अयमेयाखुत्ते अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था-
जडा खलु भो ! जड जुपवासति जाव पवियरित्तए से णूणं पएसी !
अट्टे समत्थे ? हंता ! अत्थि ॥सू० १२८॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रेण सारथिना साथं यत्रैव
केशो कुमारश्रमणः तत्रैव उवागच्छति. केशिनः कुमारश्रमणस्य अदूरमा-
मन्ते स्थित्वा एवमवादीत्—युप खलु भद्रन्त ! अधोऽवधिकाः अन्नजी-
विताः ? । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्—प्रदे-
शिन् ! तद्यथा नाम—अङ्कवणिज इति वा शङ्खवणिज इति वा दन्तवणिज-

‘तए ण से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धि इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) हमके बाद (से पएसी राया चित्तेण सारहिणा
सद्धि) वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि के साथ (जेणेव केसिकुमारसमणे
तेणेव उवागच्छइ) जहा केशिकुमारश्रमण थे वहा पर गया (केसिस्स कुमा-
रसमणस्स अदूरसामते टिष्ठा एव वयासी) वहां जाकर वह केशिकुमार
श्रमण से ‘‘से स्थान पर खडा रह गया कि जो स्थान न उनसे अधिक
दूर था और न अधिक पास था। वहीं से खड़े इमने उनसे ऐसा कहा—
(तुम्हे णं मंते ! आहोहिया अण्णजीविता) हे भद्रन्त ! आपका ज्ञान—व-
धिज्ञान परमावधि से किंचित् न्यून है, और आप प्रासुक एषणीय ही
आहार करते है ? (तए णं केसिकुमारसमणे पएसिं रायं एव वयासी)
तत्र केशो कुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा— पएसी ! से तदा
णामए अकाणि ॥ड वा, दंतवणिजाइ वा, सुंक्क भमिउं कामा णो मध्वं

‘तए णं से पएसी राया चित्तेणे सारहिणा सद्धि’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए ण) त्थारपणी (से) पएसी राया चित्तेणे सारहिणा सद्धि)
ते प्रदेशी राजा चित्र सारथिनी साथे (जेणेव केसि कुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ)
न्या केशिकुमार श्रमण हुता त्या गया. (केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसाम ते
‘टिष्ठा एव वयासी) त्या अछने ते केशिकुमार श्रमणथी जेवा स्थाने उवा रथा
हे जे स्थान तेमनाथी वधारे इर पखु नहि हुतु अने वधारे नल्लक पखु नहि हुतुं
त्या उवा उवा अ तेजे तेमने आ प्रभाजे पखु (तुम्हे ण मंते ! आहोहिया
अण्णजीविता) हे भद्रन्त ! आपतुं ज्ञान—परमावधि करता थोडुं कम छे ? अछने
आप आसुक्क अेषणीय आहार अ अहसु करे छे ? (तए ण केसिकुमारसमणे
पएसिं राय एव वयासी) त्थारे केशिकुमार श्रमणे ‘प्रदेशी राजने आ प्रभाजे कहुं

मूलम्—तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी
मे केणं भंते। तुज्झं नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयारूवं
अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं जाणह पासह ? तएणं से केसी
कुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी—एवं खलु पएसि ! अम्हं सम-
णाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते, तं जहा—आभिणिबोहिय-
णाणे१ सुयणाणे२ ओहिणाणे३ मणपज्जवमाणे४ केवलणाणे५ ५ ।
से किं तं आभिणिबोहियणाणे ? आभिणिबोहियणाणे चउट्ठिवहे पणत्ते,
तं जहा—उग्गहे ? ईहा२ अवाए३ धारणा४ । से किं तं उग्गहे ? उग्गहे
दुविहे पणत्ते, जहा नंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणिबो-
हियणाणे । से किं तं सुयणाणे ? सुयणाणे दुविहे पणत्ते—अंगपविट्ठं
च अंगबाहिरियं च, सव्वं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ । ओहिणाणं
भवपच्चइयंखाओवसमिय जहा नंदीए मणपज्जवणाणे दुविहे पणत्ते,
तं जहा—उज्जुमई य विउलमई य, तहेव केवलणाणं सव्व भाणि-
यव्व । तत्थ णं जे से आभिणिबोहिणाणे, से णं मम अत्थि । तत्थ णं
जे से सुयणाणे से वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से ओहिणाणे से
वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से मणपज्जवणाणे से वि य मम
अत्थि । तत्थ णं जे से केवलणाणे से णं मम नत्थि, से णं अरि-
हंताणं भगवताणं । इच्चेएणं पएसी । अह तव चउट्ठिवहेणं छाउ-
मत्थिएणं णाणेणं इमेयारूवं अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं
जाणाभि—पासामि ॥ सू. १२९ ॥

टीका—‘तपण से पणसी’ इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशो राजा
 चित्रेण सारथिना सार्धं यत्रैव केगीकुमारश्रमणस्तत्रैवोपागच्छति=समाग-
 च्छति, केशिनःकुमारश्रमणस्य अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे स्थित्वा
 अनुपविश्यैव एवमवादीत्-यूयं खलु हे भदन्त अधोऽवधिक्ताः-अधोऽव-
 धिसम्पन्नाः ? अन्नजीविताः-प्राप्तुकैपणीयान्नमात्रं विनः अन्यजीविनो वा?
 ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-हे प्रदेशिन !
 तद्यथा ऽति दृष्टान्ते, नामेति वाक्यालङ्कारे, अङ्कुरविजः=अङ्कुरान्नव्यापा-
 रिणः ‘इति’ वाक्यालङ्कारे ‘वा’ समुच्चये, गङ्गुविजः=गङ्गुरान्नव्यापारिणः,
 दन्तविजः=हस्तिदन्तव्यापारिणः उपलक्षणात्सर्वरत्नव्यापारिणः श्रुत्कं=
 राजदेयं मागं भ्रंशयितुकामाः=अदातुकामाः नो सम्यक्=समीचीनतया
 पन्थानं=गम्यमार्गं पृच्छन्ति, एवमेव=अन्यैव रीत्या हे प्रदेशिन ! त्वमपि
 विनय=प्रतिपत्तिरूपं भ्रंशयितुकामाः=भ्रंशुकाम नो सम्यक् पृच्छति । अथ=
 वाक्यारम्भे नूनं=निश्चयेन हे प्रदेशिन ! तत्र मां दृष्ट्वा अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमा-
 णमकारकः आध्यात्मिकः आत्मगतं यावत् कल्पितः प्रार्थित, चिन्तितः
 मनोगतः=मनः-स्थितः संकल्पः=विचारः समुपद्यत=सम्युत्पन्नः, तदेव दर्श-
 यति-जडाःखलु मो ! जडं पर्युपास्ते यावत् प्रविचरितम्, यावत्पदसंग्राह्यः
 सर्वोऽपि पाठः पूर्वगतः, स तदर्थश्च तत एवावलोकनीयः । हे प्रदेशिन !
 सोऽर्थः=मदुक्तस्त्वद्दृग्गतविचाररूपोऽर्थः नूनं=निश्चितं समर्थो=वास्तविको
 वर्तते ? प्रदेशी राजा प्राह—हन्त ! अस्ति=अथमर्थः समर्थाऽस्ति सत्य
 मस्तीति भावः ॥ सू० १२८ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है. यहाँ ‘इति’ शब्द वाक्यालङ्कार में और ‘वा’
 शब्द समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तथा ‘तद् यथा’ पद दृष्टान्त में
 आया है। उपलक्षण से यहाँ समस्त रत्न व्यापारी को ग्रहण करना चाहिये. यावत्
 पद से संकल्प के कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित और मनोगत ये विशेषण
 ग्रहण किये गये हैं। तथा—‘पञ्जुवासति जाव’ के यावत् पद से पूर्वगत
 समस्त पाठ ग्रहीत हुआ है। यह पाठ १२६वे सूत्र में प्रकट किया गया है। सू १२८।

टीकार्थ—आ सूत्रेना टीकार्थं स्पष्टं न छि अहो ‘इति’ शब्दं वाक्यालं-
 कारभा अने ‘वा’ शब्दं समुच्चय अर्थभा वपि येल छि. तेमज ‘तद् यथा’ पदं
 दृष्टान्तभां आवेन छि उपलक्षणं थी अहो अथा रत्नना वेपारीओनु अहंषु
 समज्जु नेधंओ यावत् पदथी संकल्पना कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित अने मनोगत
 ओ विशेषणो अहंषु करवा नेधंओ ‘पञ्जुवासति जाव’ ना यावत् पदथी पूर्वगत
 समस्त पाठं अहंषु समज्जु नेधंओ आ पाठ १२६मा सूत्रभां आपेल छि ॥सू १२८॥

मूलम्—तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी
मे केणं भंते। तुज्झं नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयारूढं
अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं जाणह पासह ? तएणं से केसी
मारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—एवं खलु पएसि ! अग्गं सम-
णाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते, तं जहा—आभिणिबोहिय-
णाणे१ सुयणाणे२ ओहिणाणे३ मणपज्जवमाणे४ केवलणाणे५ ५ ।
से किं तं आभिणिबोहियणाणे ? आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे पणत्ते,
तं जहा—उग्गहे ? ईहा२ अवाए३ धारणा४ । से किं तं उग्गहे ? उग्गहे
दुविहे पणत्ते, जहा नंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणिबो-
हियणाणे । से किं तं सुयणाणे ? सुयणाणे दुविहे पणत्ते—अंगपविट्ठं
च अंगबाहिरियं च, सब्बं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ । ओहिणाणं
भवपच्चइयंखाओवसमियं जहा नंदीए मणपज्जवनाणे दुविहे पणत्ते,
तं जहा—उज्जुमई य विउलमई य, तहेव केवलनाणं सब्ब भाणि-
यव्वं । तत्थ णं जे से आभिणिबोहिनाणे, से णं मम अत्थि । तत्थ णं
जे से सुयणाणे से वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से ओहिणाणे से
वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य मम
अत्थि । तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं मम नत्थि, से णं अरि-
हताणं भगवताणं । इच्चेएणं पएसी ! अह तव चउव्विहेणं छाउ-
मत्थिएणं णाणेणं इमेयारूढं अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं
जाणाभि—पासामि ॥ सू. १२९ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—तर्किकं खलु भदन्त ! युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा, येन यूयं मम एतद्रूपम् आध्यात्मिकं यावत् संकल्पं समुत्पन्नं जानीथ पश्यथ ? ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानं एवमवादीत् एवं खलु प्रदेशिन ! अस्माकं श्रमणानां निग्नन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं प्रशस्तम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानम् १, अतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३, मनःपर्यवज्ञानम् ४, केवलज्ञानम् ५ । अथ किं तद् आभिनिबोधिकज्ञानम् ? आभिनिबोधिकज्ञानं

‘तए णं से पएसी राया’ इति’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी) पुनः उस प्रदेशी राजानं केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(से केण भंते ! तुज्झे, नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अब्भत्थियं जाव संकल्पं समुत्पण जाणह पामह ?) हे भदन्त ! ऐसा आपका वह कौनसा ज्ञान अथवा दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस उत्पन्न हुए आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना है, और देखा है (तए णं से केमी कुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) तब केशीकुमार श्रमणने उस प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(एवं खलु पएसी अम्हं समणाणं णिग्गथाण पंचविहे नाणे पणत्ते तं जहा—आभिनिबोधियनाणे, सुयनाणे, ओहिनानाणे, मणपज्जवनाणे केवलणाणे) हे प्रदेशिन ! हम श्रमण निग्नन्थों के मत में पांच प्रकार के ज्ञान कहे गये हैं जैसे आभिनिबोधिकज्ञान,—मतिज्ञान, अतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान (से किं तं आभिनि-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी) श्री ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाञ्जे कञ्चुं के (से केण भंते ! तुज्झे नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अब्भत्थियं जाव संकल्पं समुत्पण जाणह पासह ?) हे भदन्त ! आपना पाससे अब्बुं कथं जततु ज्ञानं के दर्शनं छे के जेनावडे आप भाराभा उत्पन्न थयेस आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्पने लक्ष्मी गया छे, अने जेध गया छे (तए णं से केमीकुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) तब केशीकुमार श्रमणने ते प्रदेशी राजाने आ प्रभाञ्जे कञ्चुं—(एवं खलु पएसी ! अम्हं समणाणं णिग्गथाण पंचविहे नाणे पणत्ते तं जहा—आभिनिबोधियनाणे, सुयनाणे, ओहिनानाणे, मणपज्जवनाणे, केवलणाणे) हे प्रदेशिन ! अमारा श्रमण निग्नन्थाना मतमा पाय अकारना ज्ञानं कहेवामा आव्यां

चतुर्विधं प्रज्ञप्त, तद्यथा-अवग्रहः ? १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४।
अय कोऽर्त्ता अवग्रहः अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नन्धां यावत् सैपा
धारणा, तदेतद्, आभिनिबोधिकज्ञानम्। अथ किं तत् श्रुतज्ञानम्? श्रुतज्ञानं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टं च अङ्गबाह्यं च, सर्वं भणितव्यं यावत्-
दृष्टिवादः। अवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं यथा नन्धाम् (नं. पृ.

बोधियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिबोधिकज्ञान का क्या स्वरूप है ? (आभिनि-
बोधियनाणे चउन्विहे पण्णत्ते) हे प्रदेशिन् ! आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार
का कहा गया है। (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जैसे-
अवग्रह. ईहा, अवाय और धारणा। (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
ज्ञान का क्या स्वरूप है। (जहानंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिनि
बोधियनाणे) अवग्रह से लेकर धारणापर्यन्त सब विवेचन नन्दीसूत्र में
कहा गया है, इस प्रकार वह आभिनिबोधिकज्ञान का स्वरूप है। (से किं
तं सुयनाणे) हे भदन्त ! श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है ? (सुयनाणे दुविहे-
पण्णत्ते) हे प्रदेशिन् ! श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा-
अगपविट्ठं च अंगबाहिरियं च) जैसे-अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य (सत्त्वं भाणि
यत्त्वं जाव दिट्ठिवाओ) इन दोनों श्रुतज्ञानों का वर्णन भी नन्दिमूत्र में कहा गया
है अतः दृष्टिवाद तक श्रुतज्ञान का समस्त वर्णन वहां से देखना चाहिये,
(ओहिनाण मयपच्चइयं त्वओवसमियं जहा नदीए) अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक

छे. जेभके आभिनिबोधिकज्ञान, भूतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवधान अने केवलज्ञान.
(से किं तं आभिनिबोधियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिबोधिकज्ञानत्वं स्वरूप केवुं
छे ? (आभिनिबोधियनाणे चउन्विहे पण्णत्ते) हे प्रदेशिन् ! आभिनिबोधिकज्ञान
चार प्रकारत्वं कहेवाय छे (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जेभके
अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३, अने धारणा ४, (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
ज्ञानत्वं स्वरूप केवुं छे ? (उग्गहे दुविहे पण्णत्ते) हे प्रदेशिन्, अवग्रह ज्ञान के प्रकार
त्वं कहेवाय छे. (जहा नदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिनिबोधियनाणे)
अवग्रहत्थी भाडीने धारणा सुधीतु समस्त विवेचन नन्दीसूत्रमां स्पष्ट करवाभां
आन्थु छे. आ प्रभाणे आ आभिनिबोधिकज्ञानत्वं स्वरूप छे ? (से किं तं सुयनाणे)
हे भदन्त ! श्रुतज्ञानत्वं स्वरूप केवुं छे ? (सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते) हे प्रदेशिन् !
श्रुतज्ञान के प्रकारत्वं छे (तं जहा अगपविट्ठं च अंगबाहिरियं च) जेभके अंग
प्रविष्ट अंगबाह्य. (सत्त्वं भाणियत्त्वं जाव दिट्ठिवाओ) आ अन्ने श्रुतज्ञानोत्तु वरुणं
पञ्च नन्दिमूत्रमा करवाभा आन्थुं छे तेथी दृष्टिवाद सुधी श्रुतज्ञानत्वं अथु वरुणं
त्याथी अ लोणी केवु जेधन्ने. (ओहिनाणभवपच्चइयं त्वओवसमियं जहा नदीए)

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत—
 दीत—तर्हि खलु भदन्त ! युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा, येन युयं मम
 एतद्रूपम् आध्यात्मिकं यावत् संकल्पं समुत्पन्नं जानीथ पश्यथ ? ततः
 खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानं एवमवादीत एव खलु पदे-
 शिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं प्रशप्तम्, तद्यथा—
 आमिनिबोधिकज्ञानम् १, अतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३, मनःपर्यवज्ञानम् ४,
 केवलज्ञानम् ५ । अथ किं तद् आमिनिबोधिकज्ञानम् ? आमिनिबोधिकज्ञानं

‘तए णं से पएसी राया’ इति’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केषिं कुमारसमणं एवं वयासी)
 पुनः उस प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(से केण
 मंते ! तुज्झे, नाणे वा दसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अज्झ
 त्थियं जाव सक्कपं समुत्पणं जाणह पामह ?) हे भदन्त ! ऐसा आपका
 वह कौनसा ज्ञान अथवा दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस
 उत्पन्न हुए आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना है, और देखा है
 (तए णं से केमी कुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) तब केशीकुमार
 श्रमणने उस प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(एवं खलु पएसी अम्हं सम-
 णाणं णिरग्गथाणं पंचविहे नाणे पण्णसे तं जहा—आमिणिबोडियनाणे, सुय-
 नाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे देवलणाणे) हे प्रदेशिन ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों
 के मत में पांच प्रकार के ज्ञान कहे गये हैं जैसे आमिनिबोधिकज्ञान,—मतिज्ञान
 भूतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान (से किं तं आमिणि-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केषिं कुमारसमणं एवं वयासी) इसी
 ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाञ्जे कञ्चुं के (से केण मंते ! तुज्झे
 नाणे वा दसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अज्झत्थियं जाव संकल्पं
 समुत्पणं जाणह पासह ?) हे भदन्त ! आपना पासे येवुं कथं जातं ज्ञानं के
 दर्शनं छे के केनावडे आप भासामा उत्पन्न थयेल आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्पने
 लक्ष्णी गया छे. अने जेथ गया छे. (तए णं से केसीकुमारसमणे पएसिं
 राय एव वयासी) तब केशीकुमार श्रमणने ते प्रदेशी राजाने आ प्रभाञ्जे कञ्चुं-
 (एवं खलु पएसी ! अम्हं समणाणं णिरग्गथाणं पंचविहे नाणे पण्णसे तं
 जहा—आमिणिबोडियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलणाणे)
 हे प्रदेशिन ! हमारा श्रमण निर्ग्रन्थानां मतमा पाथ भकारना ज्ञानं कहेवासा आव्हा

चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अवग्रहः ? १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४।
 अय कोऽसौ अवग्रहः अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा न-धां यावत् सैषा
 धारणा, तदेतद्, आभिनिबोधिविज्ञानम् । अय किं तत् श्रुतज्ञानम् श्रुतज्ञानं
 द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टं च अङ्गवाहय च, सर्वं भणितव्यं यावत्-
 दृष्टिवादः। अवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं यथा नन्द्याम् (नं. पृ.

बोहियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिबोधिविज्ञान का क्या स्वरूप है ? (आभिनि-
 बोहियनाणे चउच्चिहे पणत्तो) हे प्रदेशिन् ! आभिनिबोधिविज्ञान चार प्रकार
 का कहा गया है। (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जैसे-
 अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
 ज्ञान का क्या स्वरूप है। (जहानदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिनि
 बोहियनाणे) अवग्रह से छेकर धारणापर्यन्त सब विवेचन नन्दीसूत्र में
 कहा गया है, इस प्रकार वह आभिनिबोधिविज्ञान का स्वरूप है। (से किं
 तं सुयनाणे) हे भदन्त ! श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है ? (सुयनाणे दुविहे-
 पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा-
 अंगप्रविष्टं च अंगवाहिरियं च) जैसे-अंगप्रविष्ट और अंगवाह्य (सन्व आणि
 यव्वं जाव दिट्ठिवाओ) इन दोनों श्रुतज्ञानों का वर्णन भी नन्दीसूत्र में कहा गया
 है अतः दृष्टिवाद तक श्रुतज्ञान का समस्त वर्णन वहा से देखना चाहिये,
 (ओहिनाण भवपच्छइय जओवसमियं जहा नदीए) अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक

छे, जेभके आभिनिबोधिविज्ञान, भित्तज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, भवप्रत्ययज्ञान अने केवलज्ञान.
 (से किं त आभिनिबोधियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिबोधिविज्ञानतुं स्वइयं हेतुं
 छे ? (आभिनिबोधियनाणे चउच्चिहे पणत्तो) हे प्रदेशिन् ! आभिनिबोधिविज्ञान
 चार प्रकारतुं कहेवाय छे (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जेभके
 अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३, अने धारणा ४, (से किं त उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
 ज्ञानतुं स्वइयं हेतुं छे ? (उग्गहे दुविहे पणत्तो) हे प्रदेशिन् ! अवग्रह ज्ञान के प्रकार
 तुं कहेवाय छे (जहा नदीए जाव से त धारणा, से तं आभिनिबोधियनाणे)
 अवग्रहधी भाडीने धारणा सुधीनु समस्त विवेचन नन्दीसूत्रमां स्पष्ट करवाभां
 आन्थु छे, आ प्रभाणे आ आभिनिबोधिविज्ञानतुं स्वइयं छे ? (से किं त सुयनाणे)
 हे भदन्त ! श्रुतज्ञानतुं स्वइयं हेतुं छे ? (सुयनाणे दुविहे पणत्तो) हे प्रदेशिन् !
 श्रुतज्ञान के प्रकारतुं छे (तं जहा अंगप्रविष्टं च अंगवाहिरियं च) जेभके अंग
 प्रविष्ट अंगवाह्य, (सन्व आणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ) आ अने श्रुतज्ञानोत्तं वल्लुं न
 पणु नन्दिस्सत्रमा कव्वाभा आन्थुं छे तेथी दृष्टिवाद सुधी श्रुतज्ञानतुं अणुं वल्लुं न
 त्याथी अ भाणी हेतु जेभके. (ओहिनाणभवपच्छइय जओवसमियं जहा नदीए)

૧૬૮ પં. ૪) । મનઃપર્યવજ્ઞાન દ્વિવિધં મજ્જન્ત, તથા-ઋજુમતિશ્ચ વિપુલ મતિશ્ચ તથૈવ કેવલજ્ઞાન મર્વં મળિનવ્યમ્ । તત્ર સ્વલુ યત્તાત્ આભિનિબોધિ- કજ્ઞાન તત્સ્વલુ મગાસ્તિ? । તત્ર સ્વલુ યત્તાત્ શ્રુતજ્ઞાન તદપિ ચ મમાસ્તિ ૨ । તત્ર સ્વલુ યત્તાત્ અવધિજ્ઞાન તદપિ ચ મમાસ્તિ ૩ । તત્ર-સ્વલુ યત્તાત્ મનઃપર્યવજ્ઞાન તદપિ ચ મમાસ્તિ ૪ । તત્ર સ્વલુ યત્તાત્ કેવલજ્ઞાન તત્ સ્વલુ મમ નાસ્તિ, તત્ સ્વલુ અર્હતા મગવનામ્ । હત્યેતેન પ્રદેશિન્ ' અહ તવ ચતુર્વિધેન છાધસ્થિકેન જ્ઞાનેન પ્તમેતર્કપમ્ આત્મિક યાવત્ સંકલ્પં સમ્પત્પન્ન જાનામિ પશ્યામિ । સુ૦ ૧૨૯ ॥

ઔર ક્ષાયોપશમિક્કે ભેદ સે દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ । ઇસકા મી વર્ણન નન્દીસૂત્ર મે કિયા ગયા હૈ (મળપજ્જવનાણે દુવિહે પળ્ણત્તે) મનઃપર્યવ જ્ઞાન દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ (ત જહા-ઉજ્જુમર્દય. વિઝલમર્દય)-ઋજુ- મતિ ઔર વિપુલમતિ, (તહેવ કેવલનાણ સવ્વ માણિયવ્વ) ઇસી પ્રકાર કેવલજ્ઞાન કા વર્ણન મી યહાં પર કરના ચાહિયે (તત્થ ણ જે સે આભિ- ણિવોહિયનાણે સે ણં મમ અત્થિ) ઇન પાંચ જ્ઞાનોં મેં સે મુક્કે મતિજ્ઞાન રૂપ આભિનિબોધિકજ્ઞાન હૈ । (તત્થ ણ જે સે સુયનાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) શ્રુતજ્ઞાન મી હૈ (ઓહિયનાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) અવધિજ્ઞાન મી હૈ । (તત્થ ણ જે સે મળપજ્જવનાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) ઔર મુક્કે મનઃ પર્યવજ્ઞાન મી હૈ । (તત્થ ણ જે સે કેવલનાણે સે ણં મમ નત્થિ) કેવલ જ્ઞાન મુક્કે નહીં હૈ (સે ણં અરિહંતાણં મગવંતાણં) યહ કેવલજ્ઞાન અર્હન્ત મગવન્તોં કૈ હોતા હૈ (ઇચ્છેણ પપ્પસી ! અહ તવ ચઉવિવહેણ છાઉ-

અવધિજ્ઞાન ભવપ્રત્યયિક અને ક્ષાયોપશમિક્કના બેદથી જે પ્રકારતુ કહેવાય છે આતું વર્ણન પણ નન્દીસૂત્રમા કરવામા આભ્યુ છે. (મળપજ્જવનાણે, દુવિહે પળ્ણત્તે) મન પર્યવજ્ઞાન જે પ્રકારતુ કહેવાય છે (ત જહા ઉજ્જુમર્દય વિઝલમર્દય) જેમકે ઋજુમતિ અને વિપુલમતિ (તહેવ કેવલનાણ સવ્વ માણિયવ્વ) આ પ્રમાણે જે કેવલજ્ઞાનતુ વર્ણન પણ કરવું બેધાયે (તત્થ ણ જે સે આભિનિબોધિયનાણે સે ણ મમ અત્થિ) આ પાત્ર જ્ઞાનોમાથી મને મતિજ્ઞાનરૂપ આભિનિબોધિકજ્ઞાન છે. (તત્થ ણ જે સે સુયનાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) શ્રુતજ્ઞાન પણ છે. (ઓહિય નાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) અવધિજ્ઞાન પણ છે (તત્થ ણ જે સે મળપજ્જવ નાણે સે તિ ચ મમ અત્થિ) અને મન પર્યવજ્ઞાન પણ છે (તત્થ ણ જે સે કેવલનાણે સે ણં મમ નત્થિ) પરતુ મને કેવલજ્ઞાન નથી (સે ણં અરિહંતાણં મગવંતાણં, આ કેવલજ્ઞાન અર્હન્ત મગવન્તોને કોય છે (ઇચ્છેણ પપ્પસી ! અહ તવ ચઉવિવહેણ છઉમત્થિપ્પણ ણાણેણ ઇમેયાલ્લ અજ્ઞાનિય જાવ સકપ્પ

टीका—‘तल्लण से पपसी’ इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशो राजा
 केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्-तन् जिम्=तोदृशं खलु हे भद्रन् !
 युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा अस्ति येन ज्ञानेन वा दर्शनेन वा यूयं मम
 एतद्रूपं=पूर्वोक्तप्रकारम् आध्यात्मिकम्=आत्मगतत्रिणारम् यावत् संकल्पम्,
 यावच्छब्देन-चिन्तितं, कल्पितं, प्रार्थितं मनोगतम्, इति संग्राह्यम्, संकल्पं=समु
 त्पन्नं=समुद्भूतं जानीथ=ज्ञानत्रिपयीकुरुथ पश्यथ=दर्शनत्रिपयीकुरुथ। ततः=प्रदेशि
 राजमश्रानन्तरं खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—
 एवं खलु हे प्रदेशिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्गन्थानां पठवविधं ज्ञानं
 पशप्तं, तद्यथा—आमिनिबोधिकज्ञानम् ? श्रुतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३,
 मनःपर्यवज्ञानम् ४, केवलज्ञानम् ५। तत्र—आमिनिबोधिकज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,
 न या—अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४। अथ कोऽसौ अवग्रहः !

त्यिएणं णाणेणं इमेयाख्वं अङ्कस्थियं जाव संकप्प समुत्पण्णं जाणामि पासामि)
 इस तरह से हे प्रदेशिन मैंने इन छाक्षस्थिक चतुर्विधज्ञान के द्वारा तुम्हारे
 इस प्रकार के समुत्पन्न हुए इस संकल्प को जान लिया है और देख लिया है।

टीकार्थ—इसके बाद प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार
 कहा—हे भद्रन् ? आपका ज्ञान दर्शन किस प्रकार का है कि जिससे आपने
 मेरे उत्पन्न हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित
 एवं मनोगत इस संकल्प को जान लिया है, और देख लिया है ? इस
 प्रकार के प्रदेशी राजा के पूछने पर केशीकुमारश्रमणने उससे ऐसा
 कहा—हे प्रदेशिन ! श्रमणनिर्गन्थों का ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है,
 आमिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, और
 केवलज्ञान ५. इनमें आमिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा के

समुत्पण्ण जाणामि पासामि) आ प्रभाणु हे प्रदेशिन ! मे' आ छाक्षस्थिक आर
 प्रकारना ज्ञानो वडे तमारामा समुत्पन्न थयेस संकल्पं णण्णी लं धोः छे अने जेधदीधो छे.

टीकार्थ—त्यारपछी प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमणने आ प्रभाणु कहुं के हे
 भद्रन् ! आपहु ज्ञानदर्शन कथं जलत्तु छे के जेथी आपे मारामा उत्पन्न थयेस
 आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित अने मनोगत आ संकल्पं णण्णी गया छे
 अने जेध गया छे ? आ प्रभाणु प्रदेशी राजाना अश्रनेने सावणीने केशीकुमार श्रमणु
 तेमने आ रीते कहुं के ‘हे’ प्रदेशिन ! श्रमणु निअथेओ ज्ञान पाच प्रकारतु कहेवाय
 छे आमिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, अने केवलज्ञान
 ५, आमा आमिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा जेहेथी आर

इति प्रश्ने आह-अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नन्द्यां यावत् सैषा धारणा= अवग्रहादारभ्य धारणापर्यन्तं सर्वमाभिनिबोधिकज्ञानविवरणं नन्दीसूत्रे विलोकनीयम् । अर्थस्तु नन्दीसूत्रस्य मत्कृतज्ञानचन्द्रिका टीकातो बोध्यः । तदेतद् आभिनिबोधिकज्ञानम् । अथ किं तत् श्रुतज्ञानम् ? श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गबाह्यं च सर्वं श्रुतज्ञानविषयक सर्वं विवरणं भणितव्यं= नन्दीसूत्रोक्तमेवात्र पठितव्यं, यावत्-दृष्टिवादः=दृष्टिवादविवरणपर्यन्तमित्तिर । अवधिज्ञानं-भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं चेति द्विविधं, यथा नन्द्यां=नन्दीसूत्रे यथाकथितं तथैव सर्वं विज्ञेयम् । अर्थोऽपि तत्रैव मत्कृतज्ञानचन्द्रिकाटीकायामवशोकनीयः३। मनःपर्यवज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-

मेद से चार प्रकार का कहा गया है. अवग्रह का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में केशिकुमारश्रमण ने कहा कि अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह के मेद से अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है. नन्दीसूत्र में अवग्रह से लेकर धारणा तकका पूर्णविषय 'आभिनिबोधिकज्ञान के विवरणप्रकरण में बहुत ही सुंदर ढंग से स्पष्ट किया गया है। नन्दीसूत्र के ऊपर हमने ज्ञानचन्द्रिका नाम की टीका लिखी है उसमें यह सब विषय स्पष्ट रूप से समझाया गया है. अतःविशेष जिज्ञासु इस विषय को वहां से देख लेंगे। श्रुतज्ञान भी अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य के मेद से दो प्रकार का कहा गया है. इस विषय का भी स्पष्टीकरण नन्दीसूत्र में किया जा चुका है। भवप्रत्ययिक अवधि और क्षायोपशमिकअवधि इस प्रकार से अवधिज्ञान दो तरह का कहा गया है। इनका भी वर्णन वहीं पर किया गया है। संज्ञु-

પ્રકારતું કહેવાય છે. અવગ્રહતું સ્વરૂપ કેવું છે? આ બાબતના પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કૈશિકુમાર શ્રમણે કહ્યું કે અર્થાવગ્રહ અને વ્યંજનાવગ્રહના લેક્ષ્યી અવગ્રહના બે પ્રકાર કહેવાય છે, નન્દીસૂત્રમાં અવગ્રહથી માંડીને ધારણ સુધીની સપૂર્ણ વિગત આભિનિબોધિકજ્ઞાનના વિવરણ પ્રકરણમાં ખૂબજ સારી રીતે રજૂ કરવામાં આવી છે. નન્દીસૂત્રની અભાષ્યે 'જ્ઞાનચન્દ્રિકા' નામે ટીકા લખી છે તેમાં આ બધી બાબતોતું સવિસ્તાર સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આપ્યું છે. તેથી વિશેષ જિજ્ઞાસુ સજ્જનો ત્યાંથીજ વાચવા યત્ન કરે, શ્રુતજ્ઞાન પણ અંગ પ્રવિષ્ટ અને અંગ બાહ્યના લેક્ષ્યી બે પ્રકારતું કહેવાય છે. આ બાબતતું સ્પષ્ટીકરણ પણ નન્દીસૂત્રમાં કરવામાં આપ્યું છે. ભવ પ્રત્યયિક અવધિ અને ક્ષાયોપશમિક અવધિ આ પ્રમાણે અવધિજ્ઞાન બે પ્રકારતું કહેવાય છે. આ વિષેતું વર્ણન પણ ત્યાંજ કરવામાં આપ્યું છે. ઋણુમતિ અને વિપુલમતિના લેક્ષ્યી મનઃ પર્યવજ્ઞાન બે પ્રકારતું કહેવાય છે આ વિષેતું સમસ્ત વિવરણ નન્દીસૂત્રમાંથી બાહ્યી

ऋजुमतिश्च । विपुलमतिश्च । अस्यापि सर्वं विवरणं नन्दीसूत्रे दृष्टव्यम् ।
 तथैव=नन्दीसूत्रोक्तप्रकारैव केवलज्ञानं=केवलज्ञानविवरणं सर्वं भणितव्यम् ।
 तत्र=तेषु पञ्चसु ज्ञानेषु खलु यत्तद् आमिनिबोधिकज्ञानं तत् खलु ममास्ति ।
 एवं श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानम्, मनःपर्यवज्ञानं ४ चेति ज्ञान-
 चतुष्टयं ममास्ति । तत्र=तेषु पञ्चसु ज्ञानेषु यत्तद् केवलज्ञानं तत् मम नाम्नि=
 न विद्यते तत्=केवलज्ञानं खलु अहंतां भगवतां भवति नान्येषामिति । इत्ये-
 तन्न=पूर्वोक्तेन कारणेन हे प्रदेशिन् ! राजन् ! अहं चतुर्विधेन=चतुष्प्रकारकेण-
 छायास्थिकेन=छायास्थिसम्बन्धिना ज्ञानेन तव एतम् एतत्पदं=त्वदन्तःकरणस्थम्-
 आध्यात्मिकं यावत् संकल्पं=मनोगतं संकल्पं सगुत्पन्नं जानामि पश्यामि सू. १२९।

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी-

हं णं भंते ! इहं उवविसामि ? पएसी ! साए उज्जाणभूमीए तुमंसी
 चेव जाणए, तए णं से पयसी राया चित्ते णं सारहिणा सद्धि केसि-
 ण मणस्स अदूरसामंते उवविसइ, केसिकुमारसमणं एवं
 वयासी तुब्भे णं भंते ! समणाणं णिगंथाणं एसा सण्णा एसा पइ-
 ण्णा एसा दिट्ठी एसा रुई एस हेऊ एस उवएसे संकप्पे एसा

मति और विपुलमति के भेद से मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया
 है। इसका समस्त विवरण नन्दीसूत्र से जानने योग्य है। इसी प्रकार
 केवलज्ञान विषयक समस्त कथन भी वहीं से जानना चाहिये। इन प्रदर्शित पांच
 ज्ञानों में से पहले चारज्ञान प्राप्त हैं, आमिनिबोधिकज्ञान, धृतज्ञान, अवधि-
 ज्ञान, एवं मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान पहले नहीं है। यह ज्ञान अहन्त भग-
 वन्तों को ही होता है। अतः हे प्रदेशिन् ! मैं इन चार छायास्थिक ज्ञान
 से उत्पन्न हुए इस तुम्हारे अन्तःकरणस्थ आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प
 को जान गया हूँ और देख चुका हूँ ॥ सू० १२९ ॥

हेतुं जेठं आ प्रभावे उवलज्ञान विषयक समस्त कथन पण्य त्याथी न् लब्धि हेतुं
 जेठं उपर न्युवेत्त पांच जानोभाथी भने यार जान प्राप्त थयेत्त छे. अमिनि-
 बोधिकज्ञान, (मतिज्ञान) श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मनःपर्यवज्ञान भने उवलज्ञान
 प्राप्त थयेत्त नथी. आ ज्ञान अहंतां लगव तोने न् लोय छे. ज्येथी हे प्रदेशिन् ।
 हे आ यार छायास्थिक ज्ञानथी उत्पन्न थयेत्त तभारा आ अन्तःकरणस्थ आध्यात्मिक
 यावत् मनोगत संकल्पने लब्धि गयो छुं अने जेठं गयो छु. ॥ सू. १२६ ॥

तुला एस भाणे एस पमाणे एस समोसरणे जहा अण्णो जीवो-
अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं? तएणं केसीकुमारसमणे पएसिं
रायं एवं वयासी- पएसी! अम्हं समणाणं णिग्गंथाणं एसा
सण्णा जाव एस समोसरणे जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं
णो तं जीवो तं सरीरं ॥ सू० १३० ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
अहं खलु भदन्त ! इह उपविशामि ? प्रदेशिन ? एतस्या उद्यानभूमिस्तवमसि
एव ज्ञायकः, ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रेण सारयिना सार्द्धं केशिनः
कुमारश्रमणस्य अदूरसामन्ते उपविशति, केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—युष्माकं

‘तए ण से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी) इसके
बा केशीकुमारश्रमण से उस प्रदेशी राजाने ऐसा कहा (अहं णं भंते!
इहं उवाचिसामि) हे भदन्त ! मैं इस स्थान में बैठ जाऊ ? (पएसी ! साए
उज्जाणभूमिए तुमंसि चैव जाणए) तब केशीकुमार श्रमणने उससे कहा
हे प्रदेशिन ! इस उद्यानभूमि के तुम हो ज्ञायक हो—अर्थात् उपवेशन के
विषय में या अनुपवेशन के विषय में मैं क्या कहूँ—यह तो स्वयं ही
जानो । (तए णं से पएसी राया चित्रेणं सारहिणा सार्द्धं केसिस्स कुमार
समणस्स अदूरसामन्ते उवचिसइ) इसके बाद वह प्रदेशी राजा चित्र सारयि
के साथ केशीकुमारश्रमण के समीप—न अधिक दूर और न अधिक

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी)
त्यारपणी देशीकुमारश्रमणने ते प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे कथं—(अहं णं भंते !
इहं उवचिसामि) हे भदन्त ! मैं इस स्थाने बैठूँ ? (पएसी ! साए उज्जाण
भूमिए तुमंसि चैव जाणए) तब देशीकुमारश्रमणने ते राजाने आ प्रभाषे
कथं हे प्रदेशिन ! आ उद्यानभूमिना तमे न ज पक छे ओरुवे के उपवेशन भाटे
के अनुपवेशन भाटे मारे तमने कहेवुं ते अभास साधुकएपथी भहार छे जेथी ते
भाटे तमे पोतेज विचारी वे। (तए णं से पएसी राया चित्रेणं सारहिणा
सार्द्धं केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामन्ते उवचिसइ) त्यारपणी ते प्रदेशी
राज चित्रसारयिनी साथे केशिकुमारश्रमणनी पासे—वधारे इर पथु नहि-
तेमज वधारे नलक पथु नहि—जेवा स्थाने जेसी गये (केसिकुमारसमण एव

खलु भदन्त ! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः
 एषा रुचिः एष हेतुः एष उपदेशः एष सङ्कल्पः एषा तुला एतत् मानम् एतत्
 समवसरणम् यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः तत् शरी-
 रम् ? ततः खलु केशीकुमारश्चमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-प्रदेशिन्
 अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावत् एतत् समवसरणं यथा-
 अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३० ॥

पास के स्थान में बैठ गया (केसिकुमारसमणं एवं वयासी) और केशि
 कुमारश्रमण से इस प्रकार बोला-(तुम्हे णं भंते ! समणाणं निग्गंथाणं एसा
 सण्णा एसा पइण्णा एसा दिट्ठी, एसा रुई एस हेऊ) हे भदन्त ! आप
 श्रमण निर्ग्रन्थों की यह संज्ञा है, यह प्रतिज्ञा है, (पदार्थ के स्वरूपका
 निश्चय ज्ञानरूप) यह दृष्टि है, यह रुचि है, यह हेतु है (एस उवएसे एस
 संकल्पे एसा तुला, एस माणे, एस पमाणे. एस समोसरणे) यह उपदेश
 है, यह संकल्प है, यह तुला है, यह मान है, यह प्रमाण है, यह समव-
 सरण है (जहा अण्णो जीवो, अण्णं सरीरं) कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है,
 (णो तं जीवो तं सरीरं) न जीव शरीररूप है. और न शरीर जीवरूप है। (तए
 णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एषं वयासी) तब केशी कुमारश्रमणने प्रदेशी
 राजा से ऐसा कहा-(पएसी ? अम्हं समणाणं निग्गंथाणं एसा सण्णा जाव
 एस समवसरणे जहा अण्णो जीवो. अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं)

एयासी) अने केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाषे षड्धुं-(तुम्हे णं भंते ! समणाणं
 निग्गंथाण एसा सण्णा एसा पइण्णा एसा दिट्ठी, एसा रुई, एस हेऊ)
 हे भदन्त ! आप श्रमण निर्ग्रन्थानी आ संज्ञा छे, आ प्रतिज्ञा छे, आ दृष्टि छे,
 आ रुचि छे, आ हेतु छे, (एस उवएसे, एस संकल्पे एसा तुला, एस माणे.
 एस पमाणे, एस समोसरणे) आ उपदेश छे, आ संकल्प छे, आ तुला छे, आ
 भाषु छे, आ प्रभाषु छे, आ समवसरणु छे (जहा अण्णो जीवो, अण्ण सरीरं,
 णो त जीवो, त सरीरं) के एव अने शरीर बुहाबुहा छे. न एव शरीर रूप
 छे अने न शरीर एवरूप छे. (तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं 'रायं' एवं
 वयासी) तब केशिकुमार श्रमणने प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे षड्धुं के (पएसी ! अम्हं
 समणाणं निग्गंथाण एसा सण्णा जाव एस समवसरणे जहा अण्णो जीवो
 अण्णं सरीरं, णो त जीवो तं सरीरं) हे प्रदेशिन् ! श्रमण निर्ग्रन्थानी आ

ટીકા-- 'તળ ણં સે વળમી રાયા' ઢ્વત્તદી-તતઃ સ્વલુ સ પ્રદેશી-રાજા કેશિન કુમારશ્રમણં ંવમ્-અનુપદ વક્ષ્યમાળં' વચનમ્ અવાદીત્-હે ભદન્ત! અહ સ્વલુ ઢ્વહ-અસ્મિન સ્થાને ઉપવિશામિ ? તતઃ કેશીકુમાર-શ્રમણ આહ-હે પ્રદેશિન ! ંતમ્યાઃ ઉઘાનશ્રમેઃ ત્વમેવ ત્રાયકઃ અસિ ંવા ઉઘાનમૂમિસ્તવનિશ્ચતા, નામ્માકમુપવેશનઃનુપવેશનવિપયે વક્તું કલ્પતે, ત્વમેવ જાનાસીતિ ભાવઃ। તતઃ સ્વલુ સ પ્રદેશી રાજા ચિત્રેણ સારથિના સાર્દ-કેશિનઃ કુમારશ્રમણસ્ય અદરગામન્તે નાતિદરે નાતિસમીપે ઉપવિશતિ, ઉપ-વિશ્ય સ કેશિકુમારશ્રમણમ ંવમ્-અનુપદ' વક્ષ્યમાળ વચનમ્ અવાદીત્-હે ભદન્ત ! યુષ્માકં સ્વલુ શ્રમણાનાં નિર્ગન્થાનામ્, ંવા હ્યં સંજ્ઞા- ય-જ્ઞાનમ્ અસ્તિ ંવમગ્નેઽપિ ક્રિયા, ંવા પ્રતિજ્ઞા-નિશ્ચયરૂપા સ્વીકારઃ, ંવા દૃષ્ટિઃ-દર્શન-સ્વતત્ત્વમ્, ંવા ઋચિઃ-શ્રદ્ધાપૂર્વકોઽમિલાષઃ, ંવા હેતુઃ-

હે પ્રદેશિન હમ શ્રમણ નિર્ગન્થોં કો યહ સંજ્ઞા હે, યાવત્ યહ સમવસરણ હે કિ જીવ મિન્ન હં ઔર શરીરમિન્ન હે, જીવ શરીરરૂપ નહીં હે ઔર શરીર જીવરૂપ નહીં હે।

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ' કે જૈસા હીં હં પરન્તુ ભાવાર્થ' ઢ્વસકા ઢ્વસ પ્રસંગમેં સે હૈ-કેશી કુમારશ્રમ કી ંવ પ્રદેશી રાજા કી વાતચીત કે ઢ્વસ પ્રસંગ મેં જશ પ્રદેશી રાજાને અપને ચૈઠને કી વાત પૂછી તશ ઢ્વસમેં અપની અનુ મતિ દેના સાધુકલ્પ કે અનુક્રલ નહીં હૈ, અર્થાત્ તુમ ચૈઠો-ઉઠો ઢ્વત્યાદિ કહના સાધુઓં કો કલ્પના નહીં હોને સે અયોગ્ય પ્રકટ કિયે, તશ પ્રદેશી રાજા ચિત્ર સારથિ કેં સાથ વહાં ચૈઠ ગયા, ફિર ડસને કેશી કુમારશ્રમણ સે ંસા પૂછા કિ હે ભદન્ત ! આપ કી ંસી જો સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા હૈ. ંસી આપકી તત્ત્વનિશ્ચયરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા હૈ, ંસી આપકી દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ-

સ જ્ઞા છે, યાવત્ ં સમવસરણ છે કે ંવ અને શરીર બુઢાંબુઢા છે ંવ શરીર રૂપ નથી અને શરીર ંવરૂપ નથી।

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ' પ્રમાણે ં છે પણુ ભાવાર્થ' આ સુબળ છે. કેશીકુમાર શ્રમણ અને પ્રદેશી રાજાના વાર્તાલાપમા બ્યારે પ્રદેશી રાજાએ કેશીકુમાર શ્રમણને ત્યા ંસ-વાની વાત પૂછી ત્યારે રીતે કહેણુ તે અમારા સાધુકલ્પથી બહાર છે બેથી તે બાબતમા તમોસ્વય નિશ્ચય કરો તેમ કહી તેમની ઢ્વચ્છા પર ં છાડી ત્યાર પછી પ્રદેશી રાજા પોતાના ઉચિત સ્થાન પર ચિત્રસારથિની પાસે ંસી ગયો અને ત્યા ંસીને કેશીકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહુ કે હે ભદત ! આપની બે આ બાતની સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સ જ્ઞા છે, તત્ત્વ-નિશ્ચયરૂપ બે પ્રતિજ્ઞા છે, દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ સ્વતત્ત્વ

सर्वस्यापि दर्शनप्रतिपाद्यार्थस्य-एतत्कारणम्-युष्माकं दर्शनम्, एष उपदेशः-
 शिक्षावचनम् एष संकल्पः-सर्वदैव भवतां तास्विकोऽध्यवसायः, एषा तुला-
 तुल्येव तव स्वीकारः, तत्र तुलासादृश्यं च मेयपदार्थपरिच्छेदकत्वेन, एवम्
 एतत् मानम्-प्रस्थादिमानसदृशास्तवस्वीकारः, मानसादृश्यमपि मेयपदार्थ
 परिच्छेदकत्वेन, एतत् प्रमाणप्रत्यक्षादिप्रमाणसदृशस्तव स्वीकारः, प्रत्यक्षादि
 सादृश्यं च स्वीकारे दृष्टेष्टाभिरोधित्वेन, यथा प्रत्यक्षादिप्रमाणं दृष्टेष्टं न
 विरुद्धि तथा तवस्वीकारोऽपि । एतत् समवसरणं-घहूनामेकत्रमिलनम्
 तद्वत् तव स्वीकारः, यथा समवसरणे बहवो जना आगत्य मिलन्ति तथैव
 तव स्वीकारे सर्वाणि तत्त्वानि समाविशन्ति तत्स्वीकारस्वरूपमाह-यथा अन्यो
 जीवः अन्यत् शरीरमिति-जीवः-उपयोगलक्षणः, अन्यः-शरीराद् भिन्नोऽस्ति,
 एवं शरीरम् अन्यत्-जीवाद्भिन्नमस्ति, इत्येव जीवशरीरयोः पार्थक्यमन्वय-

स्वतत्त्व है, ऐसी जो आपकी अद्वापूर्वक अभिलापरूप रुचि है, ऐसा जो दर्शन
 प्रतिपाद्य समस्त भी अर्थका आपका दर्शन कारणरूप हेतु है, ऐसा जो आपका
 शिक्षा वचनरूप उपदेश है, ऐसा जो आपका संकल्प है. सर्वदा आपका
 तास्विक अध्यवसाय है, तुला के जैसी मेयपदार्थ की परिच्छेदक होने से
 ऐसी जो आपकी मान्यता है, प्रस्थादिमान के जैसी आपकी ऐसी जो
 स्वीकृति-दृष्टप्रारणा है, आपका ऐसा जो दृष्ट-प्रत्यक्ष एवं दृष्ट अनुमान
 से अविरोधी होने के कारण प्रत्यक्षादि प्रमाण स्वरूप जैसा मन्तव्य है,
 आपकी ऐसी जो कथनी, समवसरणरूप है (अर्थात् समवसरण में जैसे
 अनेक जन आकर के मिलते हैं उसी प्रकार से तुम्हारे स्वीकाररूप सिद्धान्त
 में समस्तत्व अन्तर्हित हो जाते है, अतः यह समवसरणरूप है) कि-
 उपयोगलक्षणवाला जीव अन्य है-शरीर से भिन्न है-भिन्न स्वरूपवाला

छे, अद्वापूर्वक अभिलाष रुचि छे, दर्शनप्रतिपाद्य समस्त अर्थतुं आपतुं दर्शन
 कारणरूप हेतु छे, शिक्षा वाचनरूप उपदेश छे, संकल्प छे, सर्वदा तास्विक अध्यवसाय छे,
 तुलानी जेभ मेयपदार्थनी परिच्छेदक होवाथी जेवीज आपनी मान्यता छे, प्रस्था-
 मान जेवी आपनी दृष्टप्रारणा छे, दृष्टप्रत्यक्ष अने दृष्ट अनुमानथी अविरोधवासी)
 अद्वैत प्रत्यक्ष जेगे प्रमाणरूप आपतुं मंतव्य छे, आपनी जेवी जेनरूप गं मते ।
 सदृश्य छे (जेटले के समवसरणुमा जेभ घण्टा बौद्धि आनीने जेकत्र त। जे आप
 तमारा स्वीकाररूप सिद्धान्तमा अथा तत्त्वो अतर्हित अथ अथ छे (वैज्या, शरीर)
 अरूप छे) के उपयोग लक्षणवालो एव अन्य छे. शरीर करना (रूप) एव शरीररूप

ટીકા-- 'તળ ણં સે પગમી રાગા' ઢ્વયાદિ--તતઃ સ્વલુ સ પ્રદેશી-
રાજા કેશિનં કુમારશ્રમણં ઇવમ્-અનુપદં વક્ષ્યમાળ વચનમ્ અવાદીત્--
હે ભદન્ત! અહં સ્વલુ ઢ્વહ-અસ્મિન સ્થાને ઉપવિશામિ? તતઃ કેશીકુમાર-
શ્રમણ આહ-હે પ્રદેશિન! ણતમ્યાઃ ઉધાનમ્ભ્રમેઃ ત્વમેવ જ્ઞાયકઃ અસિ ઇષા
ઉધાનમૂમિસ્તનર્નિશ્ચિતા, નામ્માકમૃપવેશનાનુપવેશનવિપયે વક્તું કલ્પતે, ત્વમેવ
જ્ઞાનાસીતિ માઘઃ। તતઃ સ્વલુ સ પ્રદેશી રાજા વિષ્ણેણ સારથિના સાર્દ્ધ-
કેશિનઃ કુમારશ્રમણસ્ય અદરસામન્તે-નાતિદરે નાતિસમીપે ઉપવિશતિ, ઉપ-
વિશ્ય સ કેશિકુમારશ્રમણમ્ ઇવમ્-અનુપદં વક્ષ્યમાળ વચનમ્ અવાદીત્-હે
ભદન્ત! યુષ્માકં સ્વલુ શ્રમણાનાં નિર્ગ્રન્થાનામ્, ઇષા ઇયં સંજ્ઞા- ય-
જ્ઞાનમ્ અસ્તિ ઇવમગ્રેડપિ ક્રિયા, ઇષા પ્રતિજ્ઞા-નિશ્ચયરૂપા સ્વીકારઃ, ઇષા
દૃષ્ટિઃ-દર્શન-સ્વતસ્વમ્, ઇષા ઋચિઃ-શ્રદ્ધાપૂર્વકોડમિલાપઃ, ઇષા હેતુઃ-

હે પ્રદેશિન હમ શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોં કો ઘહ સંજ્ઞા હે, યાવત્ ઘહ સમવસરણ હે કિ જીવ
મિન્ન હે ઓર શરીરમિન્ન હે, જોવ શરીરરૂપ નહીં હે ઓર શરીર જીવરૂપ નહીં હે।

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ કો જૈસા હી હે પરન્તુ ભાષાર્થ ડ્વસકા ડ્વસ પ્રસંગમેં
સે હે--કેશી કુમારશ્રમ કી ઇવ પ્રદેશી રાજા કી વાતચીત કો ડ્વસ પ્રસંગ
મેં જવ પ્રદેશી રાજાને અપને બૈઠને કી વાત પૂછી તવ ડ્વસમેં અપની અનુ
મતિ દેના સાધુકલ્પ કો અનુક્રલ નહીં હે, અર્થાત્ તુમ બૈઠો-ઉઠો ડ્વત્યાદિ
કહના સાધુઓં કો કલ્પના નહીં હોને સે અયોગ્ય પ્રકૃટ કિચે, તવ પ્રદેશી રાજા
વિષ્ણ સારથિ કો સાથ અહાં બૈઠ ગયા, ફિર ડ્વસને કેશી કુમારશ્રમણ
સે ઇસા પૂછા કિ હે ભદન્ત! આપ કી ઇસી જો સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા હે.
ઇસી આપકી તત્ત્વનિશ્ચયરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા હે, ઇસી આપકી દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ-

સ જ્ઞા છે, યાવત્ જ્ઞા સમવસરણ છે કે જ્ઞવ અને શરીર જુહાબુહા છે. જ્ઞવ શરીર
રૂપ નથી અને શરીર જ્ઞવરૂપ નથી.

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે પણ ભાવાર્થ આ મુજબ છે. કેશીકુમાર શ્રમણ
અને પ્રદેશી રાજાના વાર્તાલાપમા જ્યારે પ્રદેશી રાજાએ કેશીકુમાર શ્રમણને ત્યાં યેસ-
વાની વાત પૂછી ત્યારે રીતે કહેલુ તે અમારા સાધુકલ્પથી બહાર છે જેથી તે
બાબતમા તમોસ્વયં નિર્ણય કરો તેમ કહી તેમની ઇચ્છા પર જ છોડી ત્યાર
પછી પ્રદેશી રાજા પોતાના ઉચિત સ્થાન પર ચિત્રસારથિની પાસે યેસી ગયો અને
ત્યા યેસીને કેશીકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહુ કે હે ભદત! આપની જે આ
બાતની સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સ જ્ઞા છે, તત્ત્વ-નિશ્ચયરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે, દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ સ્વતત્ત્વ

सर्वस्यापि दर्शनप्रतिपाद्यार्थस्य-एतत्कारणम्-युष्माकं दर्शनम्, एष उपदेशः-
शिक्षावचनम् एष सकल्पः-सर्वदैव भवतां-तात्त्विकोऽध्यवसायः, एषा तुला-
तुल्येव तव स्वीकारः, तत्र तुलासादृश्यं च मेघपदार्थपरिच्छेदकत्वेन, एवम्
एतत् मानम्-प्रस्थादिमानसदृशस्तवस्वीकारः, मानसादृश्यमपि मेघपदार्थ
परिच्छेदकत्वेन, एतत् प्रमाणप्रत्यक्षादिप्रमाणसदृशस्तव स्वीकारः, प्रत्यक्षादि
सादृश्यं च स्वीकारे दृष्टेष्टानिरोधित्वेन, यथा प्रत्यक्षादिप्रमाणं दृष्टेष्टं न
विरुणद्धि तथा तवस्वीकारोऽपि । एतत् समवसरणं-बहूनामेकत्रमिलनम्
तद्वत् तव स्वीकारः, यथा समवसरणे बहवो जना आगत्य मिलन्ति तथैव
तव स्वीकारे सर्वाणि तत्त्वानि समाविशन्ति तत्स्वीकारस्वरूपमाह-यथा अन्यो
जीवः अन्यत् शरीरमिति-जीवः-उपयोगलक्षणः, अन्यः-शरीराद् भिन्नोऽस्ति,
एवं शरीरम् अन्यत्-जीवाद्भिन्नमस्ति, इत्येव जीवशरीरयोः पार्थक्यमन्वय-

स्वतत्त्व है, ऐसी जो आपकी अद्वापूर्वक अभिलापरूप रुचि है, ऐसा जो दर्शन
प्रतिपाद्य समस्त भी अर्थका आपका दर्शन कारणरूप हेतु है, ऐसा जो आपका
शिक्षा वचनरूप उपदेश है, ऐसा जो आपका संकल्प है. सर्वदा आपका
तात्त्विक अध्यवसाय है, तुला के जैसी मेघपदार्थ की परिच्छेदक होने से
ऐसी जो आपकी मान्यता है, प्रस्थादिमान के जैसी आपकी ऐसी जो
स्वीकृति-दृढधारणा है, आपका ऐसा जो दृष्ट-प्रत्यक्ष एवं इष्ट अनुमान
से अविरोधी होने के कारण प्रत्यक्षादि प्रमाण स्वरूप जैसा मन्तव्य है,
आपकी ऐसी जो कथनी समवसरणरूप है (अर्थात् समवसरण में जैसे
अनेक जन आकर के मिलते हैं उसी प्रकार से तुम्हारे स्वीकाररूप सिद्धान्त
में समस्ततत्त्व अन्तर्हित हो जाते हैं, अतः यह समवसरणरूप है) कि-
उपयोगलक्षणवाला जीव अन्य है-शरीर से भिन्न है-भिन्न स्वरूपवाला

छे, अद्वापूर्वक अभिलाष रुचि छे, दर्शनप्रतिपाद्य समस्त अर्थतुं आपतु दर्शन
कारणरूप हेतु छे, शिक्षा वाचनरूप उपदेश छे, संकल्प छे, सर्वदा तात्त्विक अध्यवसाय छे,
तुलानी जेभ मेघपदार्थनी परिच्छेदक होवाथी जेवीज आपनी मान्यता छे, प्रस्था-
मान जेवी आपनी दृढधारणा छे, दृष्टप्रत्यक्ष अने इष्ट अहमानथी अविरोधिसासी
पदव प्रत्यक्ष वगेरे प्रमाणरूप आपतुं संतोक्य छे, आपनी जेवी जेनहू णं मते ।
सदृश्य छे (जेठले छे समवसरणुमा जेभ वषुा लोको आवीने जेकन्त । जे आप
तमारा स्वीकाररूप सिद्धान्तमा जथा तत्त्वो अतर्हित थथ जय छे (वा अणं, शरीर)
सरणु छे.) छे उपयोग लक्षणवाणे एव अन्य छे. शरीर करना थुं एव, शरीररूप

मुखेनोक्त्वा व्यतिरेकमुखेन तदेवाऽऽह-‘णो त’ इत्यादि-तत्=शरीरं जीवो न जीवश्च शरीरं न, ‘णो त’ इति वाक्ये उभावपि तच्छब्दावव्ययम् । ततः खलु केशीकुमारश्चमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावद् एतत् समवसरणं यथा अन्यो जीवः अन्यत् शरीरं, नो तत् जीवो नो स शरीरम् ॥मृ० १३०॥

मूलम्—तए णं से पएसी राजा केसिं कुमारसमणं एवं वयासी-जइ णं भंते ! तुब्भं समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव समो-सरणे-जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं णो तं जीवो तं सरीर, एवं खलु ममं अज्जए होत्था, इहेव जंबूदीवे दीवे सेयवियाए णयरीए अधम्मिए जाव सयस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरविच्चि पवत्तेइ, से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पावं कम्म कलिकल्लुसं सम-ज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उव-वण्णे । तस्स णं अज्जगस्स अह णत्तुए होत्था-इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए, बहुमए रयणकरंडगसमाणे जीवि उंस्सविए हिययणंदणिज्जे-उंवरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणायाए, किमंग

है और शरीर उससे भिन्न है (यह अन्वयमुख से कथन है) । शरीर जीव-रूप नहीं है (यह व्यतिरेकमुख से कथन है) सो यह सत्य है न ? इस प्रकार प्रदेशी राजा के कृत्न इस प्रश्न को सुनकर केशीकुमारश्चमणने उससे कहा-हां, प्रदेशिन् । हम श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी ही संज्ञा यावत् सम-वसरण है कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है इस प्रकार से दोनों में सर्वथा पृथक्ता है। मृ. १३०।

गणो छे अने शरीर तेनाथी बुडु छे (आ अन्वयमुखी कथन छे) शरीर लवइय पाअव शरीरइय नथी (आ व्यतिरेक मुखी कथन छे) तो आ भु सत्य छे ? आअतमा 'प्रदेशी राजना प्रश्नने सावर्णने केशीकुमार श्रमणु तेने कहुं के हा प्रहे-पछी प्रदेशी नेवा श्रमणु निर्ग्रन्थेनी जेवी न संज्ञा यावत् समवसरणु छे के त्या भेसीने अने शरीर बुडु छे. लव शरीरइय नथी अने शरीर लवइय नथी नतनी सन्ध'ने साव बुद्ध बुद्ध छे ॥ सू० १३० ॥

पुण पासाणयाए ? तं जइ णं से । अज्जए णं मम आगतुं वएज्जा-
 एव खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए
 अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तोम, तएणं अहं सुबहुं
 पाव कम्म कलिकल्लस समज्जिणित्ता नरएसु उववण्णे तं माणं
 नत्तुया ! तुमपि भवाहि अधम्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं
 तेहि, माणं तुमपि एव चेव सुबहुं पावकम्म जाव उववज्जिहिसि,
 तं जइ णं से अज्जए मम आगतुं वएज्जा तो णं अहं सइहेज्जा पत्ति-
 एज्जा रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो तं जीवो णो तं सरीरं,
 जम्हा णं से अज्जए मम आगतु नो एव वयासी तम्हा सुपइट्ठिया
 मम पइन्ना समणाउसो ! जहा तज्जीवो तं सरीरं ॥ सू० १३१ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनुं कुमारश्रमणमेवमवादीत् यदि खलु
 भदन्तः युष्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानामेषा सज्ञा यावत् समवसरणं यथा—अन्यो
 जीवः अन्यत् शरीरम् न तत् जीवः स शरीरम् एवं खलु मम आर्यकोऽभवत्, इहेव

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि—

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केशिकुमार-समणं एवं वयासी)
 तव अस प्रदेशीराजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(जइ णं मंते !
 तुमं समणाणं निर्गंथाणं एसा सण्णा जाव समोसरणे) हे भदन्त ! यदि
 आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् समवसरण है कि (अण्णो
 जीवो अण्णं सरीरं) जीव अन्य है और शरीर अन्व है (णो तं जीवो तं

‘त एणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं से पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी)
 त्वारे ते प्रदेशी राजान्ये केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाष्ये कलुं के (जइ णं मंते ।
 तुमं समणाणं निर्गंथाणं एसा सण्णा जाव समोसरणे) हे भदन्त ! ने आप
 जेवा श्रमण निर्ग्रन्थानां ज्येवी सज्ञा यावत् समवसरणं छे के (अण्णो जीवो अण्णं सरीरं)
 एवं अन्य छे अने शरीर अन्य छे (णो तं जीवो तं सरीरं) एवं, शरीरइय

जम्बूद्वीपे द्वीपे श्वेतविकायां नगर्याम् अधार्मिकः यावत् स्वकस्यापि च खलु जनपदस्य नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयत्, स खलु युष्माक वक्तव्यतया सुबहु पाप कर्म कलिकलुषं समज्जिणिसा कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु नरकेषु नैरयिकतया उपपन्नः । तस्य खलु आर्यकस्य अहं नप्तृकः अभवम्, इष्टः

शरीर) जीव शरीररूप नहीं है। शरीर जीवरूप नहीं हैं, (एवं खलु मम अज्जिए होत्था-इहेव जंबूद्वीपे दीपे सेयं वियाए णयरीए अधम्मिए जाव सयरस वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) तो इस बातको यदि मेरे पितामह आकर के पुष्ट करें-सुप्त से कहे-तो मैं आपके इस कथन पर विश्वास कर सकता हूँ ऐसा संबन्ध यहां लगाना चाहिये, इसी को वह इस आगे के सूत्रपाठ से प्रदर्शित करता है-वह कहता है कि इसी जम्बूद्वीप नामके द्वीप में स्थित इस श्वेतांबिका नगरी में मेरे पितामह-शुदा थे, वे अधार्मिक थे, यावत् अरने प्रजाजनों का देवम लेका भी उनका पोषण अच्छी तरह से नहीं करते थे, (से णं तुळ्ळं वत्तव्वयाए बहू पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणिसा कालमासे कालं किञ्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे) वे आप के कथनानुसार बहुत पापी थे, अतिमलिन बहुत से पापकर्मों का उपात्तन करके वे कालमास में काल करके किसी एक नरक में नैरयिक की पर्याय से उत हुए हैं। (तस्स

नथी, शरीर लुपइय नथी, (एवं खलु मम अज्जिए होत्था इहेव जंबूद्वीपे दीपे सेयं वियाए णयरीए अधम्मिए जाव सयरस वि य णं जणवयस्स नो सम्मं मवृत्तिं पवत्तेइ) तो आ बात को भाश पितामह आनीने भने कहे तो हूँ आपना कथन पर विश्वास भूही शुकं तेम धुं, ओवो सुभंध अहीं लगाववो ओधओ, ओव बातने ते आ सूत्रपाठवठे प्रदर्शित करतां कहे ओ के आओ जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां स्थित श्वेतांबिका नगरीमां भाश पितामह उता, तेओ अधार्मिक उता यावत् पिताना अज्जिणे पासेथी कर वत्तु करीने पखु तेमत्तु ससस रीते वारखु पोषखु तेमओ रक्षखु करता न उता, (से णं तुळ्ळं वत्तव्वयाए सुबहु पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणिसा कालमासे कालं किञ्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे) आपश्रीना कथन भुञ्ज तेओ भहुं मोटा पापी उता अतिमलिन धुवां पापकर्मोतु उपात्तन करीने तेओ कालमासमा काल करीने कथं ओक नरकमां नैरयिकनी पर्यायमा जन्म पात्था छे, (तस्स णं अज्जगरस अहं णत्तुए होत्था, इं कुंते

कान्तः प्रियः मनोज्ञः मन्नाऽमः स्थैर्यः विश्वासकः संमतः बहुमतः अनुमतः
रत्नकरण्डकसमानः जीवितोऽमविकः हृदयानन्दिजननः, उदम्बरपुष्पमिव दुर्लभः
श्रवणतया किमत्र पुनः दर्शनतया ? तद् यत्र खलु स आर्थकः मम आग-
त्य वदेत्-एवं खलु नत्तु ! अहं तव आर्थकोऽभवम्, इहैव श्वेताचिकायां
नगर्याम् अघार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्, ततः खलु

णं अज्जगम्म अहं णपिए होत्था, इहे कंते पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे
वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंढगममाणे जीविउस्सविए) उन अर्थक का
मैं पौत्र हूं मैं उन्हें अभिलषित था. कान्त था, प्रिय था, मनोज्ञ था मनो-
गम्य था, स्थैर्यरूप था, विश्वासपात्र था, सन्मानपात्र था, प्रचुर मानपात्र
था, हृदयप्रिय था, रत्नकरण्डक के जैसा था, जीवन के उत्सवरूप था.
(हियण दिज्जणणे उंवरपुष्फं विव दुल्लभे मवणयाए, किम गणुण पामणयाए)
उनके हृदय के आनन्द जनक था, उदम्बरपुष्प के समान मैं उन्हें सुनने के
लिये दुर्लभ था-देखनेकी बात तो क्या कहनो (तं जइ णं से अज्जए
णं ममं आगतुं वएज्जा) तो यदि वे आर्थक आकर के मुझसे ऐसा कहे
(एव खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहेव सेयंविआए नयरीए
अघम्मिए जाव नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारा
आर्थक-पितामह था, इसी श्वेताचिका नगरी में अघार्मिक बना हुआ मैं
अच्छो तरह से प्रजाजन से प्राप्त टेकम से उनका पोषण नहीं करता था.

पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंढगममाणे
जीविउस्सविए) ते आर्थकनो हूं पौत्र छुं हु तेमना भाटे अभिलषित हतो, क्षात
हतो, प्रिय हतो, मनोज्ञ हतो. मनोगम्य हतो, स्थैर्यरूप हतो, विश्वासपात्र हतो,
सन्मानपात्र हतो, प्रचुर मानपात्र हतो, हृदयप्रिय हतो, रत्न करंढक जैसा हतो,
जीवनना उत्सवरूप हतो (हियण दिज्जणणे उंवरपुष्फं विव दुल्लभे मवणयाए
किमंग पुण पासणयाए) तेमना हृदयने आनन्द आपनारी हतो कभराना पुष्पनी
जैसा हूं तेमना भाटे जेवानी बात तो हर रही. साधनवा भाटे पथ्य दुर्लभ हतो
(तं जइ णं से अज्जए णं ममं आगतुं वएज्जा) तो हवे जे ते आर्थक आवीने
मने आम कहे के (एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहेव सेयंविआए
नयरीए अघम्मिए जाव नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! हूं तमारे
आर्थक-पितामह हतो. आज श्वेताचिका नगरीमा अघार्मिक थयने प्रजाजनो पासेशी
कर पसुव करीने पथ्य तेमहं रक्षषु-पोषषु वगेरे करतो न हतो. (तए णं अहं

अहं सुबहु पापं कर्म कलिकलुसं ममज्जिणित्ता नरएसु उचवण्णे,
 नप्तुकं। न्यमापं भव अघर्मिकः यावद् नो सम्यक् करमवृत्तिं पवत्तंय,
 मा खलु त्वमपि एवमेव सुबहु पापकर्म यावद् उपपत्त्यसे, तद् यदि खलु
 म आर्यः मम आगत्य वदेन-ततः खलु अहं श्रद्धयापु प्रतीयापु रोचयेयं,
 यथा-अन्तो जीवः अन्यत् शरो म् नो तत् जीवः म शरीरम्, यस्मात् खलु स

(तए णं अहं सुबहु पापं कर्म कलिकलुसं ममज्जिणित्ता नरएसु उचवण्णे)
 अतः मने बहुत अधिक अतिकल्प पापों का संचय किया था-और इससे
 मैं नरको में से किसी एक नरक में नारक की पर्याय से उत्पन्न हुआ हूँ
 (तं मा णं नत्तुया ! तुमपि भवाहि अघर्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं
 पवत्तोहिं) इसलिये हे पोत्र ! तुम अधार्मिक मत होना, और प्रजाजनों से
 प्राप्त देकम से उनके पोषण में अस्वभावान मत रहना प्रत्युत उससे
 उनका पोषण अच्छी तरह से करना (मा णं तुमं पि एव चेव सुबहुं
 पावकम्मं जाव उचवज्जिणित्तिं) नहीं तो तुम भी इसी तरह से बहुत अधिक
 पाप कर्म का यावत् उपाजन करोगे, इसलिये ऐसे पापकर्मों का उपाजन
 मेरे द्वारा न हो इस तरह मे (तं जइ ण से अज्जए ममं आगतुं वएज्जा)
 यदि वे आर्यक आरुके सुझे समझावे (ता णं अहं सदहेज्जा पत्तिज्जा
 रौएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं) तो मैं
 आपके इस कथन पर विश्वास करूँ और उसे अपनी प्रतीति का विषय
 बनाऊँ. तथा अपना रुचि के भितर उसे उतारूँ (जहा अन्नो जीवो, अन्नं

सुबहु पापं कर्म कलिकलुसं ममज्जिणित्ता नरएसु उचवण्णे) ऐथी भं
 धष्सा अतिकलुथ पापोनो सय्यं कथो छि अने ऐथी व नरभोमांथी केअंकेक नरकभा
 नारकना पर्यायभा उत्पन्न थयो छुं (तं मा णं नत्तुया ! तुमपि भवाहि अघर्मिए
 जाव णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तोहिं) भाटे हे पोत्र ! तमे अधार्मिक थयो
 नहि अने प्रन्नवने पासेथी कर वसल कगीने तेभना पोषणना कामभा व स्वावधान
 रहेथो नहि पष्ण तेमतु सरस रीते पोषण करथो (मा णं तुमं पि एव चेव
 सुबहु पावकम्मं जाव उचवज्जिणित्तिं) नहितर तमे पष्ण भारी नेम व धष्सा
 वधारे पापकर्मं यावत् उपाजन करथो. आ प्रभाणे आ जतना पापकर्मोनु उपाजन
 भारा वडे थाय नहि तेम (तं जइ णं से अज्जए मम आगतुं वएज्जा) तेथी ते
 आर्यक आवीने भने समन्वे (तो णं अहं सदहेज्जा पत्तिज्जा, रौएज्जा,
 जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं) तो हु आपना अ
 कथन पर विश्वास करी थकु अने तेने भारी प्रतीतिने तेम व रुचिने विषय बनावी

आर्यकः मम आगत्य ना एवमवादीत्, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मम प्रतिज्ञा श्रम-
णाऽऽयुष्मन् ! यथा तज्जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३१ ॥

टोका--त एणं से पणमी' इत्यादि--=ततः खलु म प्रदेशी राजा
केचिन्नं कुमारश्रमगम् एवम् अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्--हे नन्दन !
यदि चेत् खलु युष्माकं श्रमणाना निग्रन्त्यासाम एषा संज्ञा यावत् सम-सरणं
यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरं नो तत् जीवः स शरीरम्, एतं-वक्ष्यमाण-
स्वरूपः खलु मम आर्यकः-पितामहः असवत्, दृष्ट्व-आस्मन्नव जम्बुद्वीपे-
द्वीपे श्वेतिकाया नगर्याम् अधार्मिकः धर्माचरणवर्जितः यावत्--यावत्-
त्वदेव-अधर्मिष्ठ इत्यादीनां पदानां मूढ एकशततममवाद् द्वाभ्यः अर्थो-
ऽपि तत्रैव । स्वकस्याप-स्वस्यापि च खलु जनपदस्य-दशस्य क्रमभरवृत्तिं
कारेण स्वग्राह्यमागग्रहणेन यो भरः-पजानां भरणं=पोषणं तद्वथा या वृत्तस्ता
सम्पक्-सुगृहीत्या नो प्रावर्तयत्-अत्र मूले 'पत्रनेह' इत्यार्षेण्वाद् भूतार्थे
वर्तमाननिर्देशः । सः-पूर्वोक्तः आर्यकः खलु युष्माकं वक्तव्यतया=मतेन
सुबहु-प्रचुर कलिकलुपम्-अतिमलिनं पापं कर्म समज्यं-समुपाज्यं कालमासे-
कालं कृत्वा, अन्यतरेषु-अन्यतमेषु नरकेषु नैराधिकतया-नाशकतया उपपन्नः-
समुत्पन्नः । तस्य खलु आर्यकस्य अहं नप्तुकः=गौरवः अश्वत्सु, कीदृशोऽहम-

सगरं, गो तं जीवो तं शरीरं) कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीवशरीर-
रूप नहीं है, शरीर जीवरूप नहीं है। (जम्हा णं से अज्जए ममं नो एवं
तम्हा सुपहट्टिया मम पडन्ना समणाउसा ! जहा तज्जीवो तं शरीरं) परन्तु
जिम कारण से आर्यकने आकरके मुझसे ऐसा कहा नहीं है, इस
कारण से हे श्रमण ! आयुष्मन् ! मेरी यह प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित-सुस्थिर है
कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है.

टीकार्थ--मूलार्थ के अनुरूप ही है. परन्तु जो विशेषता है वह इस
प्रकार से है-प्रदेशी राजाने जो अपने को इष्टादि विशेषणों वाला प्रकट
क्रिया है सो उमका कारण यह है कि वह आर्यक को अभिलषित था

शुक्र तेम छ. (जहा अन्नो जीवो, अन्न शरीर, गो तं जीवो, त शरीरं)
हे एव अन्य छ अने शरीर अन्य छ, एव शरीररूप नहीं. (जम्हा णं से अज्जए
मम आगतुं नो एवं वयामी, तम्हा सुपहट्टिया मम पडन्ना समणाउसा !
जहा तज्जीवो तं शरीरं) परन्तु वे कारणने लीधे आर्यके आवीने भने आ प्रभाषे
कल्लु नहीं तेथी न हे श्रमण ! आयुष्मन् ! भारी आ प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित-सुस्थिर-छ
हे वे एव छ तेव शरीर छ अने वे शरीर छ ते न एव छ.
टीकार्थ--मूलार्थ प्रभाषे न छ. परन्तु विशेषता आटली न छ हे प्रदेशी
राजाने वे पेताने छट वगेरे विशेषणोवाणो भताव्यो छ. तो तेत्तुं कारण्ये छ हे

भवमित्याह—इष्टः—अभिलषितः, कान्त.—व मनीयस्वात्, प्रियः—प्रेमपात्रत्वात्, मनोज्ञः—मनसा सम्यगपेक्ष्यतया ज्ञातत्वात्, मनोऽमः—मनोगम्यः, अतिप्रियत्वेन मनस्यवस्थितत्वात्, स्थैर्यं—स्थिरतागुणसम्पन्नः, वैश्वसिकः—विश्वासपात्रम् संमतः—संमानपात्रम्, यद्गमतः—प्रचुरमानपात्रम्, अनुमतः—हृदयप्रियः तदाङ्गाराधकत्वात्. रत्नकरण्डकसमानः—रत्नाना—कर्केतनादीना यत् करण्डकं तत्समानः—रत्नकरण्डक—तुल्यत्वं चात्रात्यन्तापेक्षत्वेन द्योध्यम्. जीवितोत्सविकः—जीवितस्य—जीवनस्य य उत्सवः—उत्सविकः=उत्सवरूपः, नच नच हर्षजनकत्वात् हृदयानन्दजननः—हृदयानन्दकारकः, उदुम्बरपुष्पमिव—उदुम्बरपुष्पं यथा दुर्लभं तथाऽहमपि श्रवणतया—श्रवणेन, अङ्ग ! हे मुने ! किं पुनः दर्शनतया—दर्शनेन अपि तु दर्शनेनात्यन्तदुर्लभोऽहमित्यर्थः, तत्—तस्मात् यदि—चेत् खलु स आर्यकः मम आगत्य वदेत् कथयेत्—वथनीयस्वरूपमाह—एवं खलु नृपृक्त !—हे पौत्र ! अहं तव आर्यकः=पितामहः अभवम्, इहैव—अस्यामेव श्वेताचिकाया नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्—अत्रापि मूढे 'पवत्सेमि' इत्यार्षत्वाद् भूतार्थे वर्त्तमाननिर्देशः । ततः—तस्मा-

इसलिये इष्ट था, कमनीय—सुंदर होने से कान्त था, प्रेमपात्र होने से प्रिय था, मनसे उसे अच्छी तरह से अपेक्षरूप से जाना था इसलिये मनोज्ञ था, अतिप्रिय होने के कारण मनमें अवस्थित था. इसलिये वह मनोऽम था, मनोगम्य था. स्थिरतागुण से संपन्न था—अतः स्थैर्यरूप था विश्वासपात्र होने से वैश्वसिक था, सन्मानपात्र होने से संमत था. प्रचुररूप में मानपात्र, होने से प्रचुर मानपात्ररूप था. उसकी आज्ञा का आराधक होने से अनुमत—हृदय प्रिय था अत्यन्त अपेक्षित होने से रत्नकरण्डक के समान था नवर हर्षजनक होने से उत्सविक उत्सवरूप था, इसीलिये हृदयाह्लादक था. मूल में 'पवत्सेमि' ऐसा जो वर्तमानरूप से निर्देश हुआ है

ते आर्यकने अभिलषित હતો—એથી ઇષ્ટ હતો, કમનીય હોવાથી કાન્ત હતો, પ્રેમપાત્ર હોવાથી પ્રિય હતો, મને, તેને સારી રીતે અપેક્ષરૂપથી બાંધી લીધા હતો એથી તે મનોજ્ઞ હતો, અતિપ્રિય હોવાથી તે મનમાં અવસ્થિત હતો એથી તે મનોઽમ હતો—મનોગમ્ય હતો. સ્થિરતાના શુભથી સંપન્ન હતો. એથી સ્થૈર્યરૂપ હતો, વિશ્વાસપાત્ર હોવાથી વૈશ્વસિક હતો, સન્માનપાત્ર હોવાથી સંમત હતો, પ્રચુરરૂપમાં માનપાત્ર હોવાથી પ્રચુરમાનપાત્ર રૂપ હતો. તેની આજ્ઞાને માનનાર હોવાથી અનુમત—હૃદયપ્રિય હતો, અત્યંત અપેક્ષ હોવાથી રત્નકર ડકની જેમ હતો નવનવીન હર્ષજનક હોવાથી ઉત્સવિક—ઉત્સવરૂપ હતો—એથી જ તે હૃદયાહ્લાદક હતો, મૂળમાં 'પવત્સેમિ' એવો જે

कारणात्—खलु अहं सुबहु—अत्यन्तं कृत्तिकलुपम्=अतिमलिनं पापं कर्म
समर्ज्ये=समष्टुपार्ज्यं नरकेषु उपपन्नः—नारकतयोत्पन्नोऽभवम्, तत—तस्मात्कार-
णात् नत्तृका!—हे पौत्र ! त्वमपि तथा मा भव, अधार्मिको यावत् नो सम्यक्
करभरवृत्तिं प्रवर्त्तय—निषेधार्थकपदद्वयं प्रकृतार्थं दृश्यतीति त्वमवश्यमेव
धार्मिकादि विशेषणावशिष्टो भूत्वा स्वकस्य जनपदस्य करभरवृत्तिं सम्यक्
प्रवर्त्तयेति भावः । मा खलु त्वमपि एवमेव—अहमिव सुबहु—पापकर्म यावत्
यावच्छब्देन-समष्टुपार्ज्यं—नरकेषु नैरयिकतया इति संग्राह्यम्, उत्पत्स्यसे मा
उत्थेया इत्यर्थः, तत्—तस्मात् कारणाद्—यदि—चेत् खलु आर्यको मम
आगत्य वदेत्—रुथयेत्, ततः—नदा खलु अहं श्रद्धयाम्—भवद्वचने श्रद्धां कुर्याम्
प्रतीयां—विशेषतो विश्वस्याम्, रोचेयं रुचिं विषयीकुर्याम् यथा अन्यो जीवो
ऽन्यच्छरारम् नो तत् जीवः स शरीरम्-इति। यस्मात् हेतोः खलु सः पूर्वोक्तः आर्य
कः ममागत्य नो-न एवं पूर्वोक्तप्रकारेण अवादीत्—हे श्रमणायुष्मन् ! तस्माद्
हेतोः मम प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठिता—सुस्थिरा यथा तत् जीवः स शरीरम् इति ॥ सू. १३१ ॥

मूलम्—तएणं केसीकुमारसमणे पएसी राय एव वयासी—अत्थि
णं पएसी ! तव सूरियकता णाम देवी ? हंता अत्थि, जइ णं तुम
पएसी त सूरियकतं देविं णहाय कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपाय-
च्छित्तं सव्वालंकारभूसिय केणइ पुरिसेण णहाएणं जाव सव्वालं-
कारणसिएण सद्धिं इट्ठे सव्वफरित्तसरूवे गंधे पंचविहे माणुस्सए
कामभोगे पच्चणुब्भवमाणिं पासिज्जासे तस्स णं तुमं पएसी । पुरिस-
स्स क डडं निवत्तेज्जासि ? अहंण भंते ! तं पुरिसं हत्थच्छिण्णगं

वह आर्थ होने से भूत अर्थ में हुआ है 'त माण ननुया । तुमपि' इत्यादि
सुत्र में आगत दो निषेधार्थक पद प्रकृत अर्थ की पुष्टि करते हैं अर्थात्
तुम अवश्य ही धार्मिक आदि विशेषणों वाले होकर अपने जनपद की
करभरवृत्ति को अच्छी तरह से चलाओ—यह अर्थ पुष्ट होता है ॥ सू. १३१ ॥

वर्तमानरूपमा निर्देशं यथेव छे ते आर्थं होवाथी भूत अर्थमा च यथेव छे आभ
समञ्जसुः. 'तं माण ननुया ! तुमपि' वगेरेसत्रमा आवेला वे निषेधार्थकपदो प्रकृत
अर्थने च पोषे छे. ओटले के तमे अवश्यमेव धार्मिकवगेरे विशेषणोथी संपन्न थधनि पोताना
जनपदनी करभरवृत्तिने सारी रीते थलावो—आ अर्थं पुष्ट थाय छे. ॥ सू. १३१ ॥

भवमित्याह-इष्टः-अभिलषितः, कान्त.-वचनीयत्वात्, प्रियः-प्रेमपात्रत्वात्, मनोज्ञः-मनसा सम्यग्गपेक्ष्यतया ज्ञातत्वात्, मनोऽमः-मनोगम्यः, अतिप्रियत्वेन मनस्यवस्थितत्वात्, स्थैर्यं-स्थिरतागुणसम्पन्नः, वैश्वसिकः-विश्वासपात्रम् संमतः-संमानपात्रम्, बहूमतः-प्रचुरमानपात्रम्, अनुमतः-हृदयप्रियः तदाज्ञाराधकत्वात्. रत्नकरण्डकसमानः-रत्नानां-कर्केतनादीना यत् करण्डकं तत्समानः-रत्नकरण्डक-तुल्यत्वं चात्रात्यन्तापेक्षत्वेन बोध्यम्. जीवितोत्सविकः-जीवितस्य-जीवनरथ य उत्सवः-उत्सविकः=उत्सवरूपः, नव नव हर्षजनकत्वात् हृदयानन्दजननः-हृदयानन्दकारकः, उदुम्बरपुष्पमिव-उदुम्बरपुष्प यथा दुर्लभं तथाऽहर्माप श्रवणतया-श्रवणेन, अङ्ग ! हे मुने ! किं पुनः दर्शनतया-दर्शनेन अपि तु दर्शनेनात्यन्तदुर्लभोऽहमित्यर्थः, तत्-तस्मात् यदि-चेत् खलु स आर्यकः मम आगत्य वदेत् कथयेत्-वचनीयस्वरूपमाह-एवं खलु नष्टक !-हे पौत्र ! अहं तव आर्यकः=पितामहः अभवम्, इहैव-अस्यामेव श्वेतांशिकाया नगर्याम् अधार्मिको याचत् नां सम्यक् करभरवृत्तिं प्रवर्तयन्-अत्रापि सूत्रे 'पवत्तेमि' इत्यार्षत्त्वाद् भूतार्थे वर्तमाननिर्देशः । ततः-तस्मा-

इसलिये इष्ट था, कमनीय-सुंदर होने से कान्त था, प्रेमपात्र होने से प्रिय था, मनसे उसे अच्छी तरह से अपेक्षरूप से जाना था इसलिये मनोज्ञ था, अतिप्रिय होने के कारण मनमें अवस्थित था. इसलिये वह मनोऽम था, मनोगम्य था. स्थिरतागुण से संपन्न था-अतः स्थैर्यरूप था विश्वासपात्र होने से वैश्वसिक था, सन्मानपात्र होने से संमत था. प्रचुररूप में मानपात्र, होने से प्रचुर मानपात्ररूप था. उसकी आज्ञा का आराधक होने से अनुमत-हृदय प्रिय था अत्यन्त अपेक्षित होने से रत्नकरण्डक के समान था नवर हर्षजनक होने से उत्सविक उत्सवरूप था, इसीलिये हृदयाह्लादक था. मूल में 'पवत्तेमि' ऐसा जो वर्तमानरूप से निर्देश हुआ है

ते आर्यकने अभिलषित इतो-अथी इष्ट इतो, कमनीय होवाथी कान्त इतो, प्रेमपात्र होवाथी प्रिय इतो, मने, तेने सारी रीते अपेक्ष्यइपथी लक्ष्मी हीषी इतो अथी ते मनोज्ञ इतो, अतिप्रिय होवाथी ते मनसा अवस्थित इतो अथी ते मनोऽम इतो-मनोगम्य इतो. स्थिरताना शुलुथी सपन्न इतो. अथी स्थैर्यइप इतो, विश्वासपात्र होवाथी वैश्वसिक इतो, सन्मानपात्र होवाथी संमत इतो, प्रचुरइपमा मानपात्र होवाथी प्रचुरमानपात्र इप इतो. तेनी आज्ञाने माननार होवाथी अनुमत-हृदयप्रिय इतो, अत्यंत अपेक्ष्य होवाथी रत्नकरंडकनी जेम इतो नवनवीन हर्षजनक होवाथी उत्सविक-उत्सवइप इतो-अथी ज ते हृदयाह्लादक इतो, मूलमा 'पवत्तेमि' अथी जे

त्कारणात्-खलु अहं सुबहु-अन्यन्तं कल्पिकलुपम्=अतिमलिनं पापं कर्म
समर्ज्य=समुपाज्यं नरकेषु उपपन्नः-नारकतयोत्पन्नोऽभवम्. तत-तस्मात्कार-
णात् नप्तुक!-हे पौत्र ! त्वमपि तथा मा भव. अधार्मिको यावत् नो सम्यक्
करभरवृत्तिं प्रवर्त्तय-निषेधार्थकपदद्वयं प्रकृतार्थं दृढयतीति त्वमवश्यमेव
धार्मिकादिनिशेषणावशिष्टो भूत्वा स्वकस्य जनपदस्य करभरवृत्तिं सम्यक्
प्रवर्त्तयेति भावः । मा खन् त्वमपि एवमेव-अहमिव सुबहु-पापकर्म यावत्
यावच्छब्देन-समुपाज्यं-नरकेषु नैरयिकतया इति संग्राह्यम्, उत्पत्स्यसे मा
उत्थेया इत्यर्थः, तत्-तस्मात् कारणाद्-यदि-चेत् खलु आर्यको मम
आगत्य वदेन्-रुपयेत्, ततः-तदा खलु अहं श्रद्धयाम्-भववचने श्रद्धां कुर्याम्
प्रतीयां-विशेषतो विश्वस्याम्, रोचेयं रुचिं विषयीकुर्याम् यथा अन्यो जीवो
ऽन्यच्छरारम् नो तत्र ज्जीवः स शरीरम्-इति। यस्मात् हेतोः खलु सः पूर्वोक्तः आर्य-
कः ममागत्य नो-न एवं पूर्वोक्तप्रकारेण अवादीत्-हे श्रमणायुष्मन् ! तस्माद्
हेतोः मम प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठिता-सुस्थिरा यथा तत्र ज्जीवः स शरीरम् इति ॥ सू. १३१ ॥

मूलम्—तएणं केसीकुमारसमणे पर्णस राय एव वयासी-अत्थि
णं पएमी ! तव सूरियकता णाम देवी ? हंता अत्थि, जइ णं तुम
पएसी त सूरियकंतं देविं णहाय कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपाय-
च्छित्तं संवाळंकारभूसिय केणइ पुरिसेण णहाएणं जाव संवाळ-
कारभूसिएण सद्धिं इट्ठे सद्धफरित्तसरूवे गंधे पंचविहे माणुस्सए
कामभोगे पच्चणुब्भवमाणिं पासिज्जासि तस्स णं तुमं पएसी । पुरिस-
स्स क डंडं निवत्तेज्जासि ? अहंण भत्ते ! तं पुरिसं हत्थच्छिण्णगं

यह आर्थ होने से भूत अर्थ में हुआ है 'त माण नत्तुया । तुमं पि' इत्यादि
सुत्र में आगत दो निषेधार्थक पद प्रकृत अर्थ की पुष्टि करते हैं अर्थात्
तुम अवश्य ही धार्मिक आदि विशेषणों वाले होकर अपने जनपद की
करभरवृत्ति को अच्छी तरह से चलाओ-यह अर्थ पुष्ट होता है ॥ सू. १३१ ॥

वर्तमानइपमा निर्देश थयेव छे ते आर्षं होवाथी भूत अर्थमां व थयेव छे आभ
समणुः. 'त' माण नत्तुया ! तुम पि' वगेरे सुत्रमा आवेवा छे निषेधार्थकपदो प्रकृत
अर्थने व पोषे छे. ओटले के तमे अवश्यमेव धार्मिक वगेरे विशेषणोथी संपन्न थधने पोताना
जनपदनी करभरवृत्तिने सारी रीते चलावो-आ अर्थ पुष्ट थाय छे ॥ सू. १३१ ॥

वा सूलाङ्ग वा सूलभित्तगं वा पायच्छिन्नग वा एगाहञ्च कूडाहञ्च
 जीवियाओ ववरोवएजा । अहं णं पएसी से पुरिसे तुम एवं वदेजा-
 मा ताव मं सामी । सुहुत्तग हत्थच्छिण्णगं वा जाव जीवियाओ
 ववरोवोह जाव ताव अहं भित्तणाङ्गियगसयणसंवाधिपोरयणं एवं
 वयामि एव खल्ल देवाणुप्पिया । पावाइ कम्माइ समायरेत्ता इमेया-
 रूव आवड पाविज्जामि, त मा ण देवाणुप्पिया । तुब्भेवि केइ
 पावाइ कम्माइ समायरइ, मा णं भे वि एवं चेव आवड पावेज्जाहि
 य जहा णं अहं, तस्स ण तुमं पएसी । पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं
 पडिसुणेज्जासि ? णो इणुत्ते समट्ठे, कम्हा णं ? जम्हा ण भते ! अक्-
 राही णं से पुरिसे, एवामेव पएसी । तववि अज्जए होत्था इहेव
 सेयवियाए णयरोए अधम्मिए जाव णो सम्म वरभरविन्ते पत्तेइ,
 से णं अम्हं वत्तव्वयाए सुवहु जाव उदवन्नो, तस्स ण अज्जगस्स
 तुमं णत्तए होत्था इट्ठे कते जाव पासणयाए, से ण इच्चइ माणुसं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं रुचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।
 चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववणए नरएसु नेरइए इच्छेइ माणुस
 लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ-१ अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणु-
 स्सं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं रुचाएइ । २। अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए नरयपालेहिं भुज्जो भुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ
 माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ । ३। अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि

आनजिन्नसि इच्छइ माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए नो चैव णं
 सचाएइ हव्वमागच्छित्तए । १। एव निरयाउंसि अबखीणे. अचेइए,
 अणिज्जिणे इच्छेज्जा माणुस्सां लोग हव्वमागच्छित्तए नो चैव णं
 संचाएइ । इत्थेएहिं चउहिं ठाणेहं पएसी । अट्टुणोववन्ने नरएसु
 नेरइएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चैव णं
 संचाएइ । तं सव्वहाहि णं पएसी । जहा—अन्नो जीवो अन्न सरीरं
 नो त जीवो तं सरीरं ॥सू० १३२॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत् अस्मि
 खलु प्रदेशिन् ! तत्र सूर्यकान्ता नाम देवी ? हन्त अस्मि, यदि खलु त्व
 प्रदेशिन् ! तां सूर्यकान्तां देवीं भ्रान्ता कृतकालिकर्मा कृतकौतुकमद्गला
 याश्चत्ता मर्वालङ्कारभूषिता केनोपि पुरुषेण स्नातेन यावत् सर्वालङ्कारभूष
 तेन सार्द्धं दृष्टान् शब्दस्पर्शरमहपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् काम-

‘तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण केसीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमारश्रमणने
 (पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(अत्थि णं पएसी)।
 तव सूर्यकान्ता नाम देवी ? हे प्रदेशिन् तुम्हारी सूर्यकान्ता नामकी देवी है ?
 (इ ता, अत्थि) हां भदन्त ! है (जइ णं तुम पएसी) । तं सूरियकत्तं देविं
 ष्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयम गलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूसियं केणइ
 पुरिसेणं ष्हाएणं. जाव सव्वालंकारभूसिएणं सद्धिं इत्थे सद्धफरिसरसखुवे गंधे
 पंचविहे माणुसए कामभोगे पञ्चणुभवमार्णिं पासिज्जासि) यदि हे प्रदेशिन्!

‘तए ण केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण केसीकुमारसमणे) त्यारपछी केशीकुमार श्रमणे (पएसीं
 रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा ने आ प्रभाणे कथ्ये. (अत्थि णं पएसी) । तव
 सूरियकान्ता नाम देवी ?) हे प्रदेशिन् ! तवारी सूर्यकान्ता नामे देवी छे ?
 (इ ता, अत्थि) हां भदन्त ! छे. (जइणं तुम पएसी) । तं सूरियकत्तं देविं
 ष्हायं कयवलिकम्मं कयकोउयम गलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूसियं
 केणइ पुरिसेणं ष्हाएणं, जाव सव्वालंकारभूसिएणं सद्धिं इत्थे सद्धफरि-
 सरसखुवगंधं पंचविहे माणुसए कामभोगे पञ्चणुभवमार्णिं पासिज्जासि) तो हे

भोगान् प्रत्यनुभवन्तीं पश्येः (तदा) तस्य खलु त्वं प्रदेक्षिन् ! कं दण्डं
निरन्तरेः ? अहं खलु भद्रम् ! तं पुरुषं हस्तच्छिन्नकं वा शूलभिननं वा
शूलभिननकं वा पादच्छिन्नकं वा एकाऽऽपातं कूटाघातं जीविताद् व्यप-
रोपयेयम् अथ खलु प्रदेक्षण ! स पुरुषः त्वाम् एव वदेत् मा यावत्

तुम स्नान, कृतबलिर्मा—(काक आदि को अन्नादिका भाग देनेवा उस
देवीओं कि जिमने कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त कर लिया है, और ममस्त
अच्छकारों से जो विभूषित बनो हुई है किमी भी स्नान यावत् सर्वाङ्कार-
विभूषित परपुरुष के साथ छु शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच
प्रकार के मनुष्यमय संबंधी कामभोगों का अनुभव करती हुई देवलो तो
(नम्म ण तुमं पप्पी ! पुरिसस्म कं दंडं निव्वुत्तेज्जासि ?) तो हे पदे-
शिन ! तुम उम पुरुष के लिये क्या-कसा दण्ड दों ? (अहं णं मंते ! तं
पुरिसं हत्थविण्णं वा मूलाङ्गं वा मूलभिननं वा पायच्छिन्नं वा एगा-
हच्च कूडाहच्च जीवियाओ वररोवेज्जा) तब प्रदेशी राजाने कहा—हे
भद्रन्त ! मैं उम पुरुष का ऐसा दंड दू कि जिससे उसके दोनों हाथ काट
लिये जावे, या उसे शूली पर चढ़ा दिया जावे, या उसके दोनों पग
काट लिये जावे, या एक ही प्रहार में उमका प्राण छे लिया जावे, वा
किसी पर्वत शिखर पर उसे चढाकर चढ़ा उसे धकेल दिया जावे. कि
जिमसे वह अपने जीवन से रहित हो बैठे। (अहं णं पप्पी ! से पुरिसे

प्रदेक्षिन् । तमे जेष्से स्नात, कृत बलिर्मा—काक आदि वगैरने अन्न भाग आये छे अत्री
ते देवीने के जेष्से कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करी लीधा छे. अने ममस्त अलं-
कारेथी जे विभूषित थछ गयेली छे अने जमे ते स्नान यावत् सर्वाङ्कारविभूषित
परपुरुषनी साथे छु शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध आ पांच प्रकारना मनुष्यमय
संबंधी कामभोगो भोगवती जेध हो ते (नम्म णं तुमं पप्पी ! पुरिसस्म कं
दंडं निव्वुत्तेज्जासि ?) तो हे प्रदेक्षिन् । तमे ते पुरुषने कछ जातनी शिक्षा करयो ?
(अहं णं मंते ! तं पुरिसं हत्थविण्णं वा मूलाङ्गं वा मूलभिननं वा पायच्छि-
न्नं वा एगाहच्च कूडाहच्च जीवियाओ वररोवेज्जा) त्वारे प्रदेशी राजजे
कछुं हे कहत । हुं ते पुरुषने आ जातनी शिक्षा करीश के जेष्सी तेना अन्ने छाथी
कापी देवामा आवे के तेने शूली पर चढाववामा आवे के तेना अन्ने पगो कापी
नाभवामा आवे के जेक जे धामा तेने भारी नाभवामा आवे अगर पर्वतशिखर
पर लछ जेध तेने त्याथी नीचे ईंधी देवामा आवे के जेष्सी परिष्ठाते ते अत्यु पाये.

स्वामिन! मुहूर्तक हस्तच्छिन्नरुं वा यावत् जाविताद् व्यपगपय यावत्
 नाचद् अहं मित्र ज्ञाति-निजक स्वजनसम्बन्धिपरिजनम् एवं वदामि-एव
 खलु देवानुप्रिया! पापानि कर्माणि समाचर्य इमाभेनद्रूपाम् आपत्तिं प्राप्नोमि,
 मत्-मा खलु देवानुप्रियाः! युगमपि केचित् पापानि कर्वाण समाचरत, मा
 खलु युगमपि एवमेव आपत्तिं प्राप्नुत यथा खलु अहं, तस्य खलु त्वं प्रदे-

तुमं एवं वदामि-मा ताव मे सामी! मुहूर्तगं हस्तच्छिन्नगं वा जीवियाओ
 ववरोवेहि जाव ताव अहं मित्रणाहणियगमयणसंबंधिपरियणं एवं वयाम्नी)
 इस प्रकार से प्रदेशी राजा का कथन सुनकर केशीश्रमणने उसमे ऐसा
 कहा-हे प्रतीक्षन! यदि वह तुमसे ऐसा कहे-हे स्वामिन! आप थोड़ी
 देर तक ठहरिये. मेरे हाथ पैर न काटिये यावत् मुझे जीवन से गहिन न
 कीजिये, तब तक मैं मित्र, माता आदि ति, स्वपुत्रादिक निजक, पितृव्यादि
 वजन स्वशुर आदिक सम्बन्धिजन, दासी दास आदि परिजन, इन सब
 मे ऐसा कह दू कि (एव खलु देवानुप्रिया! पावाइं कम्माइं समायरेत्ता
 इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो! मैं पापकर्मों को समाचरित करके
 इस प्रकार की आपत्ति को पा रहा हूं (तं मा णं देवानुप्रिया! तुवमे
 वि केइं पावाइं कम्माइं समायरइं) इसलिये हे देवानुप्रियो! आप लोग कोई
 भी पापकर्म मत करना कि (मा णं मे वि एवं वेव आवइं पावेज्जाहि
 य जहा णं अइं) जिससे तुमको भी ऐसी आपत्ति म पडना पड़े, जैसा

(अहं णं पएसी! से पुरिमे तुमं वदेज्जा मा ताव मे सामी! मुहूर्तगं हस्त-
 च्छिन्नगं वा जाव जीवियाओ ववरोवेहि जाव ताव अहं मित्रणाहणियग-
 मयणसंबंधिपरियणं एवं वयाम्नी) आ प्रभाषे प्रदेशी राजानुं कथेनं सांभगीने
 केशीश्रमणं श्रमणे तेभने कहुं के हे प्रदेशिन! जे तभने आ प्रभाषे कहे के स्वामिन्!
 आप थोड़ी वधत थोड़ी लव. मारा हाथपग हापो नदि यावत् भने एवम रहित
 पणु भनवो नहि. हुं मित्र, माता, पिता वगेरे ज्ञाति, स्वपुत्रादिक निजक पितृ-
 व्यादि स्वजन, स्वशुर वगेरे सम्बन्धिजन, दासदासी वगेरे परिजन आ अधाने
 आ प्रभाषे कहे कहे के (एवं खलु देवानुप्रिया! पावाइं कम्माइं समा-
 यरेत्ता इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो! हुं पापकर्मों को समाचर
 करिने आ जतनी शिक्षा लोगनी रहो हुं. (तं मा णं देवानुप्रिया!
 तुवमे वि केइं पावाइं कम्माइं समायरइं) कधी के देवानुप्रियो तसे कौनपणु
 जतनु पापकर्म आचरता नहि. (मा णं मे वि एवं वेव आवइं पावेज्जाहि
 य जहा णं अइं) कधी तभने आ जतनी शिक्षा लोगवनी पडे के कधी हुं लोगनी रहो हुं

शिन! पुरुषस्य क्षममि एतमर्थं प्रतिशुणुयाः?, नायमर्थः समर्थ, कम्पात् खलु?, यस्मात् खलु भदन्त! अपराधी खलु स पुरुषः, एवमेव प्रदे शन्! तर्थापि आर्थकोऽभवत् इहैव श्वेतविकायां नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयत्, स खलु मम वक्तव्यतया सुबहु यावत् उपपन्नः, तस्य खलु आर्थकस्य त्वं नष्टकोऽभवः, इष्टः क्रान्तः यत् इदं दर्शनतया, स खलु इच्छति मनुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तु नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम्, चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन्! अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिक

किं मे पढ गया हूं। (तस्स णं तुमं पएसी! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि?) तो हे प्रदेशिन्! तुम क्या उस पुरुष की बात का थोड़ी सी भी देर के लिये स्वीकार कर लोगे? (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त! यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उसकी यह बात स्वीकार नहीं की जावेगी (जम्हा) क्यों कि (णं स मत्ते! अवरही णं से पुरिसे) हे भदन्त! वह पुरुष अपराधी है। (एवामेव पएसी! तव वि अज्जए हात्था) तो इसी तरह से हे प्रदेशिन्! तुम्हारे भी आर्थक हुए है। (एवामेव इहेव सेयं बियाए णयरीए अधम्मिण णो, सम्म करभरवृत्तिं पवत्तेइ) उन्होंने इस श्वेतांबिका नगरी में अपना जीवन अधार्मिक बनाया है, तथा प्रजाजन से प्राप्त टैक्स से उनका उन्होंने अच्छी तरह से पालनपोषण नहीं किया है। (से णं अम्ह वत्तव्वाए सुबहु जाव उवन्नो) हम तरह मेरी वक्तव्यता के अनुसार वे अनेक अतिमालिन पाप कर्मों का अर्जन करके यावत् किमो एक नरक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (तस्स णं अज्जगस्स तुमं णसुए हात्था, इहे कत्ते जाव पासणयाए) उन्हीं आर्थक के तुम इष्ट क्रान्त (तस्स णं तुमं पएसी! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि?) तो हे प्रदेशिन्! श्रुं तमे ते पुरुषनी वातने थोडा वगत भाटे पणु स्वीकारी वेशो? (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त! आ अर्थ समर्थ नहीं अटके के तेनी आ वात् स्वीकारवाभा आवशे नहि. (जम्हा) केभके (णं से मत्ते! अवरही णं से पुरिसे) हे भदन्त! ते पुरुष अपराधी छे. (एवामेव पएसी! तव वि अज्जए हात्था) तो आ प्रभावे ज हे प्रदेशिन् तभारा भाटे पणु आर्थक तथा छे. (एवामेव इहेव सेयं बियाए णयरीए अधम्मिण णो सम्म करभरवृत्तिं पवत्तेइ) तेभणु पोत्तातुं एवम श्वेतांबिका नगरीया अधार्मिक रीते पत्तार कथुं छे तेमज्ज प्रणज्जेना पासेथी कर वसुव करीने पणु तेमत्तं सारी पेठे पोपणु कथुं नथी. (से णं अम्ह वत्तव्वाए सुबहु जाव उवन्नो) आ प्रभावे भारा कथन सुज्ज तेमणु वसु पापकरोत्तुं अज्जन करीने यावत् कोठ अके नरकया नाशकनी पर्यायथी जन्म पात्था छे. (तस्स णं अज्जगस्स तुमं णसुए हात्था, इहे कत्ते जाव पासणयाए)

इच्छति मानुष्यं लाक. शीघ्रमागन्तु नैव खलु शक्नोति-१ अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिकः स खलु तत्र महद्भूता वेदनां वेदयन् इच्छेत् मानुष्यं लोक शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । २ अधुनोपपन्नको नरकेषु नैरयिका नरकपालैः भूयो भूयः समधिष्ठीयमानः इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं

आदि विशेषणों वाले पौत्र हो (मे ण इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए णो खेव णं संचाएइ, हव्वमागच्छित्तए) वे तुम्हारे आर्थक ! यद्यपि हम
मनुष्यलोक में वहाँ से जल्दी से जल्दी आना चाहते हैं, परन्तु वे वहाँ से आने
के लिये असमर्थ है। (चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्नए नरएसु नेर-
इए इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए णो खेव णं संचाएइ) क्यों की
हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणों को लेकर मनुष्यलोक में
शीघ्र आने की इच्छा करता हुआ भी वह वहाँ से शीघ्र नहीं आ सकता
है। (१ अहुणोववन्नए, नरएसु नेरइए-से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदेमाणे
इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए णो खेव णं संचाएइ) वे चार
कारण हम प्रकार से हैं—अधुनोपपन्नक नैरयिक नरकों में बहुत
बड़ी वेदना का अनुभव करता है, अतः वह चाहता है कि मैं मनुष्य-
लोक में उत्पन्न हो जाऊँ—परन्तु वह वहाँ से निकलने में सर्वथा अपमर्थ
होता है—वहाँ नहीं आ सकता है ? (२ अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए नर-
य-

तेषु आर्थकना तमे एह कात वगेरे विगेषणोवाणा पौत्र छ। (सें णं इच्छइ माणुसं
लाग हव्वमागच्छित्तए णो खेव णं संचाएइ, हव्वमागच्छित्तए) तभारा ते
आर्थकं जे के मनुष्यलोकमा त्याथी बलहीमा बलही आववा एउछे छ, परंतु तेओ
त्याथी आववाभा असमर्थ छ (चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्नए नरएसु
नेरइए, इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए णो खेव णं संचाएइ) केभके हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणों के लिये मनुष्यलोकमा बलही
आववानी एउछा धरावे छ छताओ ते त्याथी बलही आवी शक्ते नथी (१ अहुणो-
ववन्नए, नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा
माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो खेव णं संचाएइ) ते चार कारणों आ
प्रमाणे छ. अधुनोपपन्नक नैरयिक नरकोंमें तीव्र वेदनाने अनुभवे छ ओथी ते एउछे
छ के हुं मनुष्यलोकमा जन्म पासु परंतु ते त्याथी नीकणवाभा सर्वथा असमर्थ
होय छ, अही ते आवी शक्ते नथी ? (२ अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए नर-
यपालेहिं सुज्जो सुज्जो समहिद्विज्जमाणे इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमाग-

नैव खलु शक्नोति । ३ अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिकः निरयवेदनीये कर्मणि
अक्षीणे अवेदिते अनिर्णिणे इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु
शक्नोति । ४ एवम् अधुनोपपन्नको नरकेषु नैरयिको निरयाऽऽयुषि कर्मणि
अक्षीणे अवेदिते अनिर्णिणं इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु
शक्नोति 'शाघ्रमागन्तुम्' इत्येतैश्चतुर्भिः म्यानैः प्रदेशिनः । अधुनोपपन्नकः

पालेहिं भुज्जो भुज्जो समाह्वित्त्वमाणं इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ) अधुनोपपन्न नारक नरकों में परमाधार्मिकरूप
नरकपालों द्वारा बार बार आक्रम्यमाण होता हुआ यह चाहता है कि मैं
मनुष्यलोक में शीघ्र उत्पन्न हो जाऊं, परन्तु वह मनुष्यलोकमें शीघ्र उत्पन्न
नहीं होसकता है २ (३अहुणोवचनए नरएसु नेरइए निरयवेयणिजंस्सि कम्मंसि
अवक्खीणंसि अवेइयंसि अनिज्जिज्जंस्सि इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ हव्वमागच्छि-
त्तए) अधुनोपपन्नक नारक नरक में नरक-
भोग्य अशातवेदनीय कर्म के अक्षीण होने पर, अननुभूत होने पर एव
अनिर्णिणं नाश होने पर, मनुष्यलोक में आनेका अभिलषी होता हुआ भी
नहीं आ सकता है ३ (४ एवं नेरयाउंसि अवक्खीणे अवेइए अणिज्जिणणे-
इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ) इमी प्रकार
चौथा कारण यह है कि उसके नरकसष घी आयु क्षीण नहीं हुआ है, उसका
वेदन नहीं हो चुका है, तथा नारक आयु की निर्जरा भी नहीं हुई है इसी
कारण से वह मनुष्यलोक में आने को इच्छा करता हुआ भी नहीं आ सकता है। (इच्चे-

च्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ) अधुनोपपन्नक नारक नारकमा परमाधार्मिकरूप
नरकपालों वडे वारं वार आक्रम्यमाण यधने ते येम एत्थे छे के हुं मनुष्यलोकमा अउत्थी
उत्पन्न था ३ परंतु ते मनुष्यलोकमा अउत्थी उत्पन्न यधं शक्तो नथी, २. (३अहुणो-
वचनए नरएसु नेरइए निरयवेयणिजंस्सि कम्मंसि अवक्खीणंसि अवेइयंसि
अनिज्जिज्जंस्सि इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ हव्वमागच्छि-
त्तए) अधुनोपपन्नक नारक नरकमा शोच्य अशात वेदनीय कर्मअक्षीण
होवाथी अननुभूत होवाथी अने अनिल्लुं होवाथी मनुष्यलोकमा आववानी अविवाया
शये छे छताये ते त्याथी मुक्त यधं शक्तो नथी, अने (४ एव नेरयाउंसी
अवक्खीणे अवेइए अणिज्जिणणे इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छि-
त्तए नो चेष णं संचाएइ) आ प्रमाणे अ शोथुं कएथुं आ प्रमाणे छे के नरकस णंधी
तेत्तं आशु क्षीणुं यथुं नथी, तेत्तं वेदन यथुं नथी अन्व नारक आयुनी (नल्लंश-
पथुं यधं नथी येथी अ ते मनुष्यलोकमा आववानी एत्थं धरावे छे छताये आवी

नरकेषु नैरगिकः इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तु नैव स्वलु शक्नोति ।
तत् श्रद्धेहि ग्वलु प्रदेशिन् । यथा—अन्यो जीव अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः स
शरीरम् ॥ मृ. १३२ ॥

टीका—‘तए षां केशीकुमारसमणे’ इत्यादि—ततः—तदनन्तरम्, ग्वलु
केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं गजानमेवमवादीत—हे प्रदेशिन ! तव सूर्यकान्ता-
नाम देवी=गङ्गा अस्ति ग्वलु !, ततः प्रदेशी राजोत्तरयति—हन्त !’ इति

एहिं चउर्ह ठाणेहि पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु नेरइएसु नेरइए
इच्छइ माणुमं लोणं हवमागच्छिस्तए नो चैव ण संचाएइ) इम प्रकार
इन चार कारणों से हे प्रदेशिन ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोक में शीघ्र
जाने का अमिलाषी होता हुआ भी वह वहां से शीघ्र मनुष्य लोक में
नहीं आ सकता है। (तं सहहाहि णं पएसी ! जहा ‘अन्नो जीवो अन्नं
सरीरं’ नो तं जीवो तं सरीरं) इमल्लिये हे प्रदेशिन ! तुम -स घात पर
अवश्य विश्वास करो, कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है ।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से जो कहा वह इस सूत्र
का प्रकट किया गया है। इसमें जीव भिन्न है और शरीरभिन्न है इम
घातको उसके आर्यक—(पितामह दादा) नरक से आकर उसे क्यों नहीं
समझाते हैं इस घात का उत्तर उसे समझाया गया है। उससे केशी-
कुमारश्रमणने कहा हे प्रदेशिन ! तुम्हारी जो सूर्यकान्ता देवी है उससे
यदि कोई मनुष्य उसी के जैसे विशेषणों वाला बन कर मनोऽनुकूल शब्द

शकतो नथी. (इच्चेएहि चउह ठाणेहि पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु नेर
इएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोणं हवमागच्छिस्तए नो चैव णं संचाएइ)
आ प्रभाषे आ थारे थार धारणेथी हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोकमां
बलही आववानी ध्वंशा सभतो होय छता ये त्याथी बलही मनुष्यलोकमां आवी
शकतो नथी (तं सहहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो
तं सरीरं) येथी हे प्रदेशिन ! तमे आ वात पर अवश्य विश्वास करो हे एव
भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे.

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजाने जे कंथ कहु छे ते अधुं आ सूत्र
वडे प्रकट करवामां आओयुं छे. आमा एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे जे वातने
तेना आर्थक (पितामह—दादा) नरकमांथी आवीने केम समभवता नथी जे वात आ प्रभाषे
तेने समभववामां आवी छे. केशीकुमारश्रमणने कहुं के हे प्रदेशिन् ! तंभारी
जे सूर्यकान्तादेवी छे तेनी साथे जे केध भाषुस तेना जेवा विशेषणेथी शुकत थधने

स्वीकारे अस्मिन्-विद्यते मम मूर्खता ता दत्ता । ततः केशीकुमारश्रमण-
 आह-यदि-चेन् खलु त्वं पदेशी राजा तां-पूर्वोक्तां मयंकान्तां देवीं
 स्नाता-कृतस्नाना, कृतबलिकर्माणं-कृतत्रायमादि निमित्तान्नमागा, कृत-
 यौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता-कृतमपापुष्पं निलकादि मङ्गलाथपापशोधनक्रियां, सर्वा-
 लङ्कारभूषिता-सकलाङ्गोपाङ्गाभरणालङ्कृता केनापि केनचित् पुरुषेण सार्द्धं,
 कीदृशेन ? इत्याह-स्नातेन ? इत्याह-स्नातेन यावत्-यावत्पदेन-कृतबलि-
 कर्मणा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तेन' इत्येषां सङ्ग्रहः, तथा सर्वालङ्कारभूषितेन
 सार्द्धं इष्टान्=मनोऽनुकूलान् शब्द-स्पर्श-रसरूप-गन्धान्, पठर्वावधान्-पठच-
 प्रकारान् मनुष्यकान्-मानुष्यनोक्तमवान् कामभोगान्-पूर्वोक्तान् शब्दादीन्द्रिय-
 विषयान् प्रत्यनुभवन्तोऽपि-अनुभवविषयीकुर्वतीम् पश्येथ, तस्मिन्नवमरे हे प्रदे-
 शिन् । त्वं तस्य-पूर्वोक्तस्य खलु कं-कीदृशं दण्डं निग्रहं निर्धर्तयः-कुर्याः ? ।
 ततः प्रदेशिराज आह-हे भदन्त ! अहं खलु तं-कृतनादशदुराचारं पुरुषं
 इस्मच्छिन्नक-हस्तौ छिन्नौ यस्य तादृशं वा-अथवा शूलातिगं शूलारोपितं वा
 भिन्नकं-शूलेन भिन्नः शूलभिन्नः स एव शूलभिन्नकस्तम्, वा-अथवा पाद-
 छिन्नक-छिन्नौ पादौ यस्य तम् वा अथवा एकाऽऽघातम् एकः-सकृत् आघातः-
 प्रहागं यस्मिन्, तम्, कूटाऽऽघात-कूटेन-पर्वतश्च स्वरेण तदुपरिसमारोपणद्वारा
 पातनेन आघातः-वधो यस्य तं तथा, जीविनात्-व्यपरोपयेयं-त्रियोजयेयम्,
 जावरहितं कुर्यामित्यथेः, इति प्रदेशिराजनिवेदनानन्तरं पुनः केशीश्रमण-
 पृच्छति-अथ खलु हे प्रदेशिन ! यदि सः पुरुषः त्वाम् एवम् अनुपदं
 वक्ष्यमाणं वचनं वदेत्-कथयेत्-तथाहि-मे-मां त्वे स्वामिन् ! यावत्-मित्रा-
 स्पर्श-रस-रूप गन्धादि पाञ्च प्रकारके मनुष्यभव मषधो कामभोगो को
 भोगे और तुम इस बान को देखलो तो उस अस्तर मे तुम उस पुरुष के
 लिये क्या दण्ड दो ? तब पदेशी राजाने कहा-हे भदन्त ! ऐसे दुराचारी
 पुरुष को मैं अङ्गमङ्ग का यावत् जीवरहित होने का दण्ड दू ठीक है-
 इस पर यदि वह पुनः तुम से ऐसा निवेदन करे कि हे स्वामिन् ! थोड़ी
 देर आप मुझे इस दण्ड से रहित कर दीजिये इतने में मैं अपने मित्रा-

रमण्यु करे भनेऽहं कृत शब्द स्पर्श रस रूप गंध वगैरे पाञ्च प्रकारना मनुष्य-
 संबन्धी कामभोगो भोगवे अने तमे आ अधुं करता जेथ हो तो ते वधते तमे ते
 पुरुषने शी शिक्षा करी ? त्वारे प्रदेशी राजाने कहे के हे भदन्त ! जेवा दुराचारी पुरुषने
 हुं अगल गनी यावत् मित्राण्य करी भङ्गवानी शिक्षा आयुं ते जेअ कहेवाय. जेना
 यही ते करी तमने जेवी रीते विनंती करे के हे स्वामिन् ! जेअ वधत भाटे भने
 रण आपो के जेथी हुं (मित्र वगैरे स्वजनाने आभ कं के हे देवात्प्रियो तमाशमाथी

दीन् प्रति वक्ष्यमाण विषयनिवेदनसमयावधिमुहूर्तमुहूर्तमात्रं मां हस्त-
 च्छिन्नकं वा यावत्-यात्रन्पदेनोपयुक्तपदानां संग्रहा बोध्यः, तदर्थश्चोपयुक्त
 एव, जीवितान् मा व्यपरोपय-न विगोजय, मा मारयेत्यर्थः यावत्-यत्समय
 पर्यन्तं 'तावत्' इति वाच्यालङ्कारे, अह मित्र-ज्ञाति-नि-क-स्वजन-सम्बन्धि
 परिजनं मित्राणि-सुहृदः, जानयः-मातापितृभ्रात्रादयः, निजकाः-स्वपुत्रादयः
 स्वजनाः-पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः-श्वशुरादयः, परिजनाः-दासी दासादयः,
 एषां समाहारो मित्र-ज्ञाति-निजक स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं, तत्तथा, एवम्
 अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनं वदामि-कथयामि, यथा-हे देवानुप्रियाः! यूयम्
 एवं-वक्ष्यमाणं शृणुन-अहं पापानि कर्माणि समाचर्य-कृत्वा इमां-एतन्पा-
 प्रदेशीराजोपनीयमाना कुमारण्या ज्ञानाद् व्यपरोपणीयत्वरूपाम् आपत्तिम्-
 आपदं प्राप्नोमि-प्राप्तोऽऽस्मि, तत्-तन्मात्कारणात्-पापकर्माणामापत्तिप्राप
 कर्त्वादेतोः, हे देवानुप्रियाः! यूयमपि-मदीयमित्रादयः केचित्-केऽपि पापानि
 कर्माणि मा समाचरत-न प्रकुरुत 'मेवि' इति यूयमपि एवमेव=अनेनैव-
 प्रकारेण आपत्ते मा प्राप्नुत-यथा खलु अहम् इति। तस्य खलु त्वम् एतं=
 तत्कथनरूपम् अर्थं हे प्रदेशिन्! प्रतिशृणुयाः-स्वीकुर्याः? प्रदेशी कथयति-
 अयम्-अनन्तराक्तोऽर्थः नो समर्थः-न युज्यते, कस्मात् खलु न समर्थः?
 इति जिज्ञासायामाह-'यस्मात्' इत्यादि-हे मन्त! यस्मात् खलु स पुरुषः
 मे-मम अपराधी वर्तते' इति हेतोः अयमर्थो न समर्थः, केशीकुमारश्रमणः

दिजनों से ऐसा कह कू कि हे देवानुप्रियो! तुम लोगों में से कोई
 भी जन ऐसा पापकर्म नहीं करना-नहीं तो मेरी जैसी आपत्ति को भोगना
 पड़ेगा तो क्या हे प्रदेशिन्! तुम उसकी इस बातको मान लोगे। यदि
 कहां कि नहीं तो इस पर पुनः यही पूछा जा सकता है कि क्यों नहीं?
 तुम सकते हो? इसके उत्तर में वह अपराधी है। तो इसी प्रकार से हे
 प्रदेशिन्! तुम्हारे जो व्यापक (दादा) हे वे भी अनेक मलिन पापकर्मों को कमाकर
 यहाँ से नरक में नारक की-पर्याय से उत्पन्न हुए हैं-अतः जब तक वे-
 वहाँ की पूरी स्थिति को नहीं भोग लेते हैं-तबतक वे अपनी इच्छा

कैशंपुष्य ऐतुं पापकर्म करेथो नहि नहि तर भारा जेवी शिक्षा योगवर्षी पडथे तो
 थुं हे प्रदेशिन् तमे तेनी आ वात स्वीकारी वेशो? इवे जे तमे आभ कथो हे
 नहि, तो जेनां पर इनी तमने पूछवामां आवे डे डेम नहि? जेना-उत्तरमा तमे
 कथेथो डे ते अपराधी छे, तो आ प्रभाण्डे डे प्रदेशिन् प्रभाश जे आर्थक छे
 तेजो जषु धया पापकर्मोनु-अनन्तरिने अहीथी नरकमा नरकनी
 पर्यायथी जन्म पाग्था छे जेथी जथा सुधी तेजो त्यानी सपूषं प्र-म-

प्राह-हे पदेशिन ! एवमेव-अननैव प्रकारेण तत्रापि आर्यकाऽभवत्, पिना-
महो कीदृशोऽभवत् ? इत्याह-स च इहैव-श्चेत्त्रिकाया नगर्यामभार्मिको
यावत्तो सम्यक् करभरवर्तित यावत्तयत् । सः-नवार्थकः खलु मम वक्त-
व्यतया-कथनानुसारेण सुबहु यावत्-यावत्तादेन-“पां कर्म माणातिपातादिकं
ममज्यं नरकेषु” इत्येषां पदानां सङ्ग्रहः उत्पन्नः सम्पन्नः” तस्य-पूर्वोक्तस्य
भार्मिकस्य खलु त्वं नत्तुः पौत्रोऽभवत् । कीदृशः ? इति जिज्ञासाया-
माह-इष्टः कान्ता यावद् दर्शनतया । सः-नरकपूरपन्नः खलु सम्प्रति
मानुष्यं लोकं हव्य-शीघ्रमागन्तुमिच्छति, परन्तु स शीघ्रमागन्तुं नो शक्नोति ।
कृतो न इति जिज्ञासाया शृणु-हे पदेशिन ! चतुर्मिः स्थानैः-कारणैः,
अधुनोपपन्नः-मत्कालोत्पन्नो नरकेषु-नरकमध्ये, नैरग्यिकः नारकः मानुष्यं
लोकं शीघ्रमागन्तुमिच्छति परन्तु शीघ्रं आगन्तुं नो शक्नोति-तानि चत्वारि
स्थानान्येषाम्-अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरग्यिकः सः खलु तत्र-नरकेषु, मह-
द्भूता-महतीं वेदानां वेदयन्-अनुभवत् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुमिच्छति
परन्तु आगन्तुं नैव शक्नोति ? अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरग्यिको नरकपालैः-
परमाभार्मिकैर्देवैर्भूयोभयः-पुनःपुनः समषिष्टीयमानः-आक्रम्यमाणः सन्
इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोति २ । तृतीयं स्थानमाह-‘अधु-
नोपपन्नो नरकेषु नैरग्यिकः, निरयवेदनाये नरकभागे अशातवेदनीये कर्मणि
अक्षीणे-क्षयप्राप्ते अवेदिते-अनुभूते, अनिर्जिणे’-नाशमप्राप्ते च सति
इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोत्यागन्तुम् ३ । अनेन प्रकारेण निर-
यायुषि-नरकसम्बन्धिनि आयुःकर्मणि अक्षीणेऽवेदितेऽनिर्जिणे’-निर्जराम-
प्राप्ते च सति, इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोति ४ । इत्येतैः-
अनन्तराक्तैश्चतुर्मिः स्थानैः हे पदेशिन ! अधुनोपपन्न इत्यादीनां विवरणं
प्राग्वत् । तत्-नम्मात्कारणात् हे पदेशिन ! त्वं अद्देहि-मद्वचने विश्वमिहि-
खलु, यथा-‘अन्गो जीवः, अन्गन शरीरम्, नो स जीवः-तत् शरीरम्’

के अनुसार यहाँ नहीं आ सकते हैं, क्यों कि नारक जीवों को यहाँ आने
में चार कारण बाधक हैं जो मूलार्थ में प्रकट किये जा चुके हैं। इसलिये
हे पदेशिन ! तुम मेरे इस वचन पर कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न
है, जीव शरीररूप नहीं है, और शरीर जीव रूप नहीं है विश्वास लो,

स्थितिने लोगवी देशे नहि त्या सुधी तेजो पीतानी छ्छो सुल्ले अहाँ आषी
शक्ये नहि देअके नारकलयेने अहाँ आववा भाटे यार शरयो भाधक छे । के
भूलाक्षीआ अताववाभा आग्या छे । ओधी हे पदेशिन ! तजे भाश आ पयन पर-के
एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे, एव शरीररूप नथी, अने शरीर एवरेप नथी,

इति । यदि जीव-शरीरयोर्भेदो न स्यात्तदा पूर्वोक्तकारणचतुष्टयेन नरक-
मोगं कः कुर्यात् ? शरीरस्य तु मनुष्यलोक एव नष्टत्वात्, शरीरभिन्नत्वे
तु जीवस्य शरीरनाशेऽपि नन्वादुक्तहेतुचतुष्टयेन नरकमोगं कर्तुं जीवः
शक्यो भवति ॥ सू० १३२ ॥

मूलम्—तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासा-
अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेण नो उवा-
गच्छइ । एवं खलु भंते ! मम अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नय-
रीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगय जीवा०
सव्वो वण्णओ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ, सा णं तुज्झं वत्तव्वयाए
सुबहु पुन्नोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अपणयरेसु
देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा, तीसेणं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था इहे
कंते जाव पासणयाए, तं जइ णं सा अज्जिगा मम आगंतुं एवं वएज्जा-
एवं, खलु नत्तुआ ! अहं तव अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए
नयरीए धम्मिया जाव वित्त कप्पेमाणी समणोवासिया जाव विह-

यदि जीव और शरीर में भेद नहीं होता तो पूर्वोक्त कारण चतुष्टय में
नरक भोग कौन करे? वयो कि शरीर तो मनुष्यलोक में ही नष्ट हो जाता
है उसके नष्ट होने पर तदभिन्न जीव भी नष्ट हो जावेगा। परन्तु जब शरीर
से भिन्न जीव को माना जाता है तो शरीर के नाश होने पर भी जीव
का सद्भाव रहता ही है। अतः उक्त हेतु चतुष्टय से नरकभोग करने के लिये जीव समर्थ
होता है। इस प्रकार से यह टीका का भाव लिखा गया है ॥ सू. १३२ ॥

विधासु शणो न्ने एव अने शरीरमा विन्नता न होत तो पूर्वोक्त कारण चतुष्टयमा
नरकभोग करे केसि ? केसि शरीर तो मनुष्य लोकमा न नष्ट थय नय छे, तेना नाश
पछी तद्भिन्न एव पणु नष्ट थय न नथे न. पर तु न्यारे शरीर करत्तां विन्न
एवने मानवामा आवे छे तो शरीरना विनाश पछी पणु एवनेना सद्भाव रहेन
छे उक्त हेतु चतुष्टयथी नरकभोग भाटे एव समर्थ होय छे. आ प्रभावे आ टीका
ना भाव लपवामा आव्यो छे. ॥सू. १३२॥

रामि, । तए णं अह सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं
 किञ्चा देवलोएसु उववण्णा, तं तुमंपि णत्तुया ! भवाहि धम्मिए
 जाव विहरोहि, तएण तुमंपि एवं चेव सुबहु पुण्णोवचयं समज्जि-
 णित्ता जाव उववज्जिहिसि, त जइ णं आज्जया मम आगतुं एवं
 वएज्जा तो णं अह सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा अण्णो जीवो
 अण्णं सरीरं, णो तं जावो तं सरीरं, जम्हा सा अज्जिया मम आगतुं
 णो एव वयासी तम्हा सुपइट्टिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं
 सरीरं नो अन्नो जीवो अन्न सरीरं ॥ सू० १३३ ॥

छाया—ततः खलु म प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
 अस्ति खलु मदंत ! एषा प्रज्ञातउपमाः, अनेन पुनः कारणेन नो उवागच्छति,

‘तएणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से पएसी राया केसि कुमारसमणं
 एवं वयासी) उस प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से इस प्रकार कहा-
 (अस्थि णं मंतंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ)
 हे भदन्त ! जीव और शरीर को भिन्न प्रकट करने में ‘मेरे आर्यक—(पिता-
 मह) इस कारण से नहीं आते हैं’ यहाँ त क के सन्दर्भ से जो आपने उपमा दी है,
 सो यह उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है। यह वास्तविकी उपमा नहीं है) तो भी मैं यह
 मान लेता हूँ कि मेरे पितामह—आर्यक आपके द्वारा प्रदर्शित कारणों की
 वजह से यहाँ नहीं आते हैं—सो भले न जाये परन्तु (एवं खलु मंतंते !

‘त एणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पछी (से पएसी राया केसि कुमारसमणं
 एवं वयासी) ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाषे कल्लु—अस्थि णं
 मंतंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ) हे भदंत !
 एव अने शरीरने भिन्न प्रकट करवामा ‘भारा आर्यक (पितामह) आ कारणने एधि
 आवता ण्णथी” अही अधीना संदरं एगी ने कथं पयु तमे उपमा इपमा कल्लु छे
 तो ते कल्लुमा प्रज्ञात-दृष्टान्त छे, आ वास्तविकी उपमा नथी, छता अे हुं तभारी
 आ वात क्वीक्षरी एठं के भाश पितामह आर्यक तभारा वडे प्रदर्शित कारणने
 एधि न अही आनी शकता नथी, तो तेअो भवे न आवे, परंतु (एवं खलु मंतंते !

एवं खलु भदंत ! मम आर्थिकाऽमत्र, इहैव श्वेतविकार्या नगर्यां धार्मिकी
यावद् वृत्तिं कल्पयमाना श्रमणोपासिका अभिगतजीवा० सर्वो वर्णकः यावद्
आत्मानं भावयन्ती विहरति, सा खलु तत्र वक्तव्यतया सुबहुं पुण्योपचयं
समर्ज्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोपपन्ना, तस्याः
खलु आर्थिकायाः अहं नष्टकोऽभवम्, इष्टः कान्तः यावद् दर्शनतया, तद्
यदि खलु साऽऽर्थिका मम आगत्य एवं वदेत्—एवं खलु नष्टक ! अहं

मम अज्जिया होत्था इहेव सेय विद्याए नयरीए धम्मिया जाव विष्णु कप्पे-
माणी समणोवासिया अभिगत जीवा० सन्वओ वण्णओ जाव अप्प भावे-
माणी विहरइ) हे भदन्त ! मेरी जो आर्थिका—(दादी) हुई है, वह तो इस
श्वेताशिका नगरी में धार्मिक थी यावत् धर्म से ही अपनी जी यात्रा
चलानी थी, श्रमणोपासिका थी, जीवअजीव तत्त्व के स्वरूप को जानती
थी, इत्यादि सर्व वर्णन यहां पर करना चाहिये. यावत् वह आत्मा को
भवित करती हुई अपने समय को व्यतीत करती थी (सा णं तुज्झ वत्त-
व्याए सुबहुं पुण्योपचयं ममज्जिणिस्सा कालं किञ्चा अण्णयरेसु देवलोएसु
देवत्ताए उववन्ना) वह आपके क्रमानुसार बहुत अधिक पुण्य का उपचय
करके कालमास में काल कर देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव
की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (तीसे णं अज्जियाए अहं नष्टे होत्था)
में उसका पौत्र हुआ हूँ (इहं कंते जाव पासणयाए) मैं उमके
लिये इष्टअभिलषित. कान्त या यावत् दर्शन के लिये भी दुर्लभ था.

मम अज्जिया होत्था इहेव सेय विद्याए नयरीए धम्मिया जाव विष्णु
कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगतजीवा० सन्वओ वण्णओ जाव अप्पाण
भावेमाणी विहरइ) हे भदन्त ! मेरी जो आर्थिका (दादी) थी, जो तो आ
श्वेताशिका नगरी में धार्मिक होती यावत् धर्म से ही अपनी जीवन
पसार करती हुई. तेजो श्रमणोपासिका होता, जो अल्पव्यय स्वयंसेवा
होता. वगैरे बहुत बहुत अही समय देवों को देती. तेजो पोताना आत्माने भावित
करता पोताने समय पसार करता होता. (सा णं तुज्झ वत्त व्याए सुबहुं पुण्यो-
पचयसमज्जिणिस्सा कालं किञ्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ना)
तेजो आपना कथन सुनने भूषण पुण्य सचय करीने काल मासमां काल करीने
देवलोकाभायी काल को देवलोका देवनी पर्यायमा जन्म पाया छे. (तीसे णं
अज्जियाए अहं नष्टे होत्था) तेमने हूँ पौत्र थये छे. (इहं कंते जाव
पासणयाए) हूँ तेमना माटे छोट, अभिलषित, कान्त होता यावत् दर्शन माटे पण्य

तव आर्थिकाऽभवत्, इहैव श्वेतविकार्या नगर्या धार्मिकी यावत् दृष्टं कल्पयमाना श्रमणोपासिका यावद् विहरामि । ततः खलु अहं सुबहुं पुण्योपचयं समज्यं कालमासे कालं कृत्वा देवल्लोकेषु उपपन्ना, तत् त्वमपि नष्टकम् । भव धार्मिकः यावद् विहर, ततः खलु त्वमपि एवमेव सुबहुं

(तं जह्णं सा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा) वह यदि आर्थिका (दादी) मुझ से आकरके ऐसा कहे (एवं खलु नष्टुया ! अहं तव अज्जिया होन्था, इहेव सेयं वियाए नयरीए धम्मिया जाव विस्सि कप्पेमाणी ममणोवासियां जाव विहरामि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी। इसी श्वेतांबिका नगरी में मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई यावत् अपनी जीवनयात्रा चलाती थी, जीव अजीव तत्त्व के स्वरूप को ज्ञाता थी, तथा तप और संयम से अपनी आत्माको भावित करती हुई अपने समय को व्यतीत किया करती थी। (तए णं अहं सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किञ्चा, देवल्लोकेषु उववण्णा) इस तरह मैंने बहुत अधिक पुण्य का संचय किया और संचय करके जब मैं मरण के भवसर पर मरी तो देवल्लोकों में से किसी एक देवल्लोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई हूँ (तं तुमपि नष्टुया ! भवाहि धम्मिए जाव विहराहि) इसलिये हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक जीवन व्यतीत करो और धर्मानुग आदि विशेषणों वाले बनो ! तथा धर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करने हुए यावत् श्रमणोपासक

दुर्लभ होते। (तं जह्णं सा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा) ते आर्थिका (दादी) ने भने आनीने आभ कहे के (एवं खलु नष्टुया ! अहं तव अज्जिया होन्था, इहेव सेयं वियाए नयरीए धम्मिया जाव विस्सि कप्पेमाणी ममणोवासियां जाव विहरामि) हे पौत्र ! हे तुम्हारी पितामही होती अब श्वेतांबिका नगरीमें धार्मिक जीवन पसार करती यावत् पोतानी जीवनयात्रा चलाती होती हूँ, श्रमणोपासिका होती, एव अएव तत्त्वना स्वइपने लक्ष्मी होती तेमए तप अने संयमथी पोताना आत्मने भावित करती पोतानो समय पसार करती होती। (तए णं अहं सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किञ्चा, देवल्लोकेषु उववण्णा) ओ रीते में धर्मा पुण्यनो संयम करी अने संयम करीने लयारे हूँ भरखु हाणे मरी तयारे देवल्लोकेमाथी केअ अब देवल्लोकमा देवनी पर्याय लभ पायी छं। (तं तुमपि नष्टुया ! भवाहि धम्मिए जाव विहराहि) अथी ए हे पौत्र ! तमे पक्षु धार्मिक जीवन पसार करे अने धर्मानुग वगेरे विशेषणथी सपन्नं भनो। तेमए धर्मथी ए पोतानी जीवनयात्रा आगण धपावता यावत्

पुण्योपचयं समज्यं यावद् उपपत्स्यसे, तद् यदि ग्वलु आर्थिका मम
आगत्य एवं वदेत्, तदा ग्वलु अह अह-यान् प्रतीयां रोचयेथ यथा-
अन्यो जीवः, अन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवस्तच्छरीरम् । यस्मात् माऽऽर्थिका
ममाऽऽगत्य नो एवमवादीत, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः
स्सच्छरीरम्, नो अन्यो जीवः, अन्यच्छरीरम् ॥सू० १३३॥

बनो. (तए णं तुमपि एव चेव सुबहु पुण्योवचयं सममज्जिणित्ता जाव
उववज्जिणित्ति) इस तरह करके तुम भां मेरो ही तरह से पुण्य का उप-
चय करके यावत् देवलोका मे किमी एक देवलोक में देव की पर्याय से
उत्पन्न हो जाओगे. (त जइणं अज्जिया मम आगतुं एवं वएज्जा, तो
ण अहं सद्देज्जा, पत्तिएज्जा, रोइज्जा. जहा अणो जीवो, अणं सरीरं
णो त जीवो तं सरीरं) इम त-ह से हे मदन! वह आर्थिका आकर
के मुझ से ऐसा कहे तो मैं तुम्हारे इस कथन पर कि जीव अन्य है
और शरीर अन्य है तथा-जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जोवरूप नहीं
है विश्वास कर सकता हूं प्रतीति कर सकता हूं और उसे अपनी रुच का
विषय बना सकता हूं। (जम्हा सा अज्जिया मम आगतुं णो एवं
वयासी-तम्हा सुपइट्ठिया-मे पइण्णा-जहा त जीवो अन्नं सरीरं) परन्तु
जिस कारण से वह आर्थिका मुझ से आकर के ऐसा कहती नहीं है.
यतः इस कारण से मेरा-यह मन्तव्य है कि जीव है वही शरीर है जीव
शरीर से भिन्न नहीं है और शरीर जीव से भिन्न नहीं है सुस्थिर है अर्थात् सत्य है।

श्रमणोपासक थाणे। (तए णं तुमपि एव चेव सुबहु पुण्योवचयं समज्जि-
णित्ता जाव उववज्जिणित्ति) आ प्रभाण्णे तमे पब्बुं भारी नेमज्ज पुण्योपचय देवनी
पथयथी जन्म पामथो. (त जइणं अज्जिया मम आगतुं एवं वएज्जा तो णं
अहं सद्देज्जा. पत्तिएज्जा, जहा अणो जीवो, अणं सरीरं णो त
जीवो तं सरीरं) आ प्रभाण्णे हे मदन! ते आर्थिका आवीने अने आम कडे
तो हूँ तुम्हारा आ इथन पर के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे तेमज्ज एव
शरीररूप नथी अने शरीर एवउप नथी-विश्वास करी शुकुं छुं प्रतीति करी शुकुं
छुं अने तेने पोतानी रुचिने गभतो विषय बनावी शुकुं छुं. (जम्हा सा अज्जिया
मम आगतुं णो एवं वयासी-तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा-जहा त जीवो
तं सरीरं नो अन्नो जीवो अन्न सरीरं) परन्तु जे कारणने वीधे ते आर्थिका अने
आवीने आ प्रभाण्णे कहेला नथी ते कारणथी जे मारु आ जगतुं मन्तव्य छे के
जे एव छे ते जे शरीर छे एव शरीरथी भिन्न नथी अने शरीर एवथी भिन्न
नथी आ वात सुस्थिर छे-सत्य छे

टीका—'तएण से एएमा' इत्यादि—

ततः—तदन्तरं, स प्रदेशो राजा केशिनं कुमारश्रमणम्, एवम्—अनुपदं वक्ष्यमाण वचनम्, अवादीन्—हे भदन्त ! जीवशरीरयोर्मे दें अनेन पुनः कारणेन नो उपागच्छति)—इत्यन्तमन्दर्भेण या उपमा भवता दत्ता, एषा खलु प्रजात = बुद्धेऽपिशेषात्—बुद्धिविशेषज्ञया उपमा=दृष्टान्तः अस्ति, नत्विद्यं वास्तविको उपमाऽस्ति, तथापि मन्ये यन्मत्पितामहो भवदुक्तकारणैर्नोपागच्छति। परन्तु हे भदन्त ! मम-आर्थिका-पितामही खलु एवं=वक्ष्यमाणप्रकारा अभवत्—साक्षात्सवादि जिज्ञासायामाह—इहैवेत्यादि—इहैव-अस्यामेव श्वेताषिकायां नगर्याम् मा कीदृशी ? इत्यत्राह—धार्मिकीत्यादि—धार्मिकी—धर्माचरणशीला, यावत्—यावत्पदेन "धर्मानुगा, धर्मिष्ठा धर्माख्यायिनी धर्मप्रलोकिनी धर्मप्ररञ्जना धर्मसमुदाचारा धर्मेणैव" इत्येषां संग्रहः, तत्र-धर्मानुगा धर्मम् अनुगच्छति अनुसरति या सा तथा, धर्मिष्ठा=धर्मप्रिया, धर्माख्यायिनी=धर्मप्रतिपादिका, धर्मप्रलोकिनी=धर्म-

टीकार्थ—इमके बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐमा कहा—हे भदन्त ! जीव और शरीर की निम्नता प्रदर्शित करने के निमित्त जो आपने उपमा दी है, वह तो केवल आपकी बुद्धि से जन्य एक दृष्टान्त-मात्र है. यह उपमा-दृष्टान्त सत्यार्थकोटि में नहीं आ सकती है। फिर भी आपके कथनानुसार यह मान लेता हूँ कि मेरे आर्थिक प्रदर्शित चार कारणों के कारण यहाँ नहीं आ सकते हैं। सो वे न आवें—परन्तु मेरी जो दादी थी—जो कि इसी श्वेताषिका नगरी में रहती थी, और धार्मिक-धर्माचरण शील थी यावत् जो धर्मानुगधर्म का अनुसरण करने वाली थी, धर्मिष्ठा-धर्मप्रिया थी. धर्माख्यायिनी-धर्म का उपदेश देनेवाली थी, धर्म-

टीकार्थ—त्यारपछी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने या प्रभावे कहुं के के कहंत। एव अने शरीरनी निम्नता प्रदर्शित करता ने तमे उपमा आपी छे ते तो कहुत तमारी बुद्धिथी कल्पित करेद अेक दृष्टान्त मात्र न छे अेथी तमारी या उपमा दृष्टान्त-सत्यार्थ कोटिमां आवी शके तेम नथी. छताये तमारा कहुवा सुजण या वात भानी लछि छु के मारा आर्थिक तमे कहेला या र कारणेने लीधे अहुं आवी शकता नथी तो लवे ते न आवे परतु मारा ने कही हुता-के नेओ या श्वेताषिका नगरीमा रहेता हुता, अने धार्मिक-धर्माचरणशील हुता यावत् ने धर्मानुगा-धर्मने अनुसरनारा हुता, धर्मिष्ठा-धर्मप्रिय हुता, धर्माख्यायिनी-धर्मने का

दर्शनी, धर्मप्रवृज्जना=धर्मानुरागिणी, धर्मसमुदाचारा=धार्मिकसदाचारसंपन्ना,
 धर्मेणैव=जिनोक्तधर्मेणैव वृत्ति=जीवनयात्रां, कल्पयमाना कुर्वाणा, पुनःसा
 कीदृशी ? इति जिज्ञासायागाह—“अभिगतजीवाऽजीवे”-त्यादि-सर्वः वर्णकः—
 वर्णनकारकपदसमूहो बोध्यः, यावद् आत्मानं भावयमाना व्यहरत । अत्रत्य
 यावत्पदेन—‘अभिगतजीवाजीवा’ इत्यादि सर्वोऽपि पाठश्चतुर्दशाधिकैक-
 शततमध्वत्रतः स्त्रीत्वनिर्देशेन बोध्यः । अर्धोऽपि तत्रत एव विज्ञेयः । सा=
 अनन्नरोक्ता आर्गिका पितामही खलु तत्र वक्तव्यतया त्वमतेन सुवहसु-
 अतिप्रचुरं, पुण्योपचयं—पुण्यकर्मसमूहं समज्यसमुपाज्यं कालमासे काल

प्रलोकिनी थी, धर्मप्रवृज्जना—धर्मानुरागवाली थी, धर्मसमुदाचारा—धार्मिक
 सदाचार से संपन्न थी. और जिनाक्तधर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करने
 वाली थी. तथा जीव और अजीव तत्त्व के स्वरूप की ज्ञाता थी. अभि-
 गतजीवाजीवा’ इत्यादिरूप से वर्णन करने वाला पदसमूह और यहा
 यावत्पद से गृहीत पदसमूह ११४ वे सूत्र मे वर्णित हुआ है, सो उसे
 यहा स्त्रीलिङ्ग की विभक्ति लगाकर ग्रहण कर कहना चाहिये तथा इन
 पदों का अर्थ भी वहां से जानना चाहिये. ऐसी वह आर्गिका—पितामही—
 दादी आपके मन्तव्यानुसार अतिप्रचुर पुण्य का उपचय करके कालमास
 में जब मरी तब वह अनेकविध देवलोकों में देव की पर्याय से उत्पन्न
 हुई है. उस आर्गिका का मैं पौत्र हूं, जो धर्म उसको बहुत अधिक दृष्ट यावत्
 कान्त था. यावत् पदसे वहां १३२ वे सूत्र में प्रोक्त इस विषय के विशेषणगृहीत
 हुए है। ये विशेषण वहा उसके पितामह के प्रकरण दिये गये हैं।

देष करनारा हुता, धर्मप्रलोकिनी—धर्मदर्शनी हुता, धर्मप्रवृज्जना—धर्मानुरागवाली हुता.
 धर्मसमुदाचारा—धार्मिक सदाचार संपन्न हुता अने जिनोक्त धर्म प्रमाप्ते न पोतामृ
 एव न पसार करता है । तेभन एव अने अएव तत्त्वना स्वइपने बाधुनारा हुता
 ‘अभिगत जीवाजीवा’ एव अने अने अएव वगेरे इपमा वधुन करनार पद समूह
 अने अही यावत्पदधी गृहीत पद समूह ११४मे सूत्रमा वर्णित थयेल छे. अही
 तेने स्त्रीदिगनी विभक्ति लगानीने अर्थ करवे. जेधजे तेभन आ पढोने अर्थ पद्य
 त्याथी न बाधुी हेवे. जेधजे. जेवी ते आर्गिका दादी तमारा मन्तव्य सुणन अति-
 प्रत्युर पुष्यने सन्धय करीने दादाभासमां ज्यारे भरषु पाभ्या त्यारे ते धषु देवलोकांमा
 देवनी पर्यायथी नन्म पाभ्या छे. ते आर्गिकने हुं पौत्र हूं तेभने धर्म. पूषन
 धष्ट यावत् कान्त हुतो यावत् पदधी अही १३२मा सूत्रमा प्रोक्त आ विषयना
 विशेषणे। गृहीत थया आ विशेषणे। त्या तेना दादाना प्रकरणमां

कृत्वा अन्यतरेषु-अनेकविधेषु देवलैः पुत्रैः। अथ वलोके देवतया देवत्वेन उपपन्नाः, तस्याः खलु आर्यिकायाः अहं नत्कः-पौत्रः अभवम्, कीदृशः? इत्यान्नाऽऽह-इष्टःकान्तः यावत्-दर्शनतया, अत्र यावत्पदेन द्वात्रिंशदुत्तर शतैरुक्तमसूत्रे एतात्पितामहवत्-इत्यारूपः सर्वोऽपि पाठः संग्राह्यः। व्याख्यापि तत्रैव विलोकनीया।

तत्-तस्मात् यदि खलु मा-पूर्वोक्ता आर्यिका मम आगत्य-एवम्-अनुपमं वक्ष्यमाणं वचन, अदे-कथयेद-नत्क ! हे पौत्र ! एवं खलु-वक्ष्यमाणप्रकारक गृणु-ग्रह तत्र आर्यिकाऽभवत् कुत्र ! इत्यान्नाऽऽह-इष्टैव-अस्यामेव श्वेताखिकायां नगरी धार्मिकी, यावत्-धर्मणैव वृत्ति कल्पयमाना श्रमणोपासिका-श्राविका यावत्-व्यहम् । ततः-तस्मात्कारणात् सुबहु-प्रचुरतरं पुण्योपचयं समव्ययं कालमासे काल कृत्वा देवलोकेषु उपपन्ना, त-तस्मात्कारणात् नत्क !-हे पौत्र ! त्वमपि धार्मिकी यावत्-धर्मानुगादि विशेषणविरहितो भव, तथा धर्मणैव वृत्ति कल्पमानः अभिगत जीवार्जीवादि विशेषणविरहितः श्रावको भूत्वा भव । तत-तादृशाचरणेन खलु त्वमपि

अतः वहाँ से इन्हें और इनके अर्थ को जानना चाहिये, ऐसी वह मेरी आर्यिका-दादी आकरके मुझ से ऐसा यदि कहे कि हे नत्क-पौत्र ! मैं इसी श्वेताखिका नगरी में तेरी दादी थी, और धार्मिक यावत् धर्म से ही अपनी जीवन यात्रा चलानेवाली थी, श्रमणोपासिका-श्राविका थी, इत्यादि मैंने प्रचुरतर पुण्य का उपार्जन कर कालमाम में जब मरण किया-तो मैं देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई हूँ, इसलिये हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक यावत् धर्मानुग आदि विशेषणों वाले बनो, तदा धर्म से ही अपनी जीवनयात्रा का निर्वहण करते हुए जीव और अजीव तत्त्व के स्वरूप के ज्ञाता बनो और सच्चे अर्थ में श्रावक बन-

आवेदा छे तेथी जिशासुओओ त्थाथी न् अण्णु लेवा नेधओ, ओवा मारा आर्यिका दादी आवीने भने ने आ प्रभाण्णु क्खे के के पौत्र ! हुं आ श्वेताखिका नगरीमा तारी दादी हती अने धार्मिक यावत् धर्मानुगथी न् पोतानी एवनयात्रा पसार करती हती, हु श्रमणोपासिका-श्राविका हती वगेरे प्रचुरतर पुण्यनु उपाजन करीने अलमासमा न्यारे मृत्यु पाभी त्तारे देवलोकाथी क्खे ओक देवलोका मा देवनी पर्यायथी न् न्मा पाभीछु तेथी हे पौत्र ! तमे पण्णु धार्मिक यावत् धर्मानुग वगेरे विशेषणो वाणा तेमअ धर्मथी न् पोतातु एवन पसार करता एव अने अएव तत्त्वना स्वप्पने न्णुनारा थाओ, अने साया अण्णुमा श्रावक थधने पोताना एवनने सक्खण पनावो, ने तमे आ प्रभाण्णु धार्मिक आचरणयुक्त अन्त करणुवाणा थाओ तो तमे

मूल्य—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं व सी-जइ
 णं तुमं पएसी ! णहायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायचि
 उल्लपडसाडंगं भिगारकंडु च्छुयहरथगयं देवकुलमणुपविसमाणं केइ
 य पुरीसे वच्चयरंसि ठि । एवं वदेज्जा एह ताव सामी । इह सुह-
 त्तगं आसयह वा चिट्ठह वा निसीयह वा तुयट्टह वा, तस्स णं तुमं
 पएसी ! पुरिसस्स णमवि एयमट्टं पडिसुणज्जामि ? णो इणट्टे
 समट्टे । कम्महा ? भंते ! असुई असुइसामंते । एवामेव पएसी ! तववि
 अज्जिवा होत्था इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरइ, सा
 णं अम्मं वत्तव्वयाए सुबहु जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुमं
 णट्टे होन्था इट्टे जाव किमंगपुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ
 माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

चऊहिं ठाणेहि पएसी । अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु इच्छेज्जा
 माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ-अहुणोववण्णे
 देवे देवलोएसु दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए गिच्छे गढिए अज्झो-
 ववण्णे से णं माणुसे लोगे नो आढाइ नो परिज्जाणाइ मे णं
 इच्छिज्जा माणुसं नो चेव णं संचाएइ । अहुणोववण्णए देवे देव-
 लोए दिव्वेहिं कामभोगेहि मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे, तस्स णं
 माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ दिव्वे पेम्मे संकंते भवइ, से णं
 इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव संचाएइ (२) अहु-
 णो ण्णे देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे,
 णं एवं भवइ-इयाणि गच्छं मुहुत्तणं गच्छं तेणं कालेणं इट्ठ

अप्पाउया णरा कालधम्मणा संजुत्ता भवंति, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्व गच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ।३। अट्टुणोववण्णे देवे
 दिव्वेहिं ।व अज्झोववण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गंधे पडिकूले
 पडिलोमे यावि भवइ, उट्ठं पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए
 सुभे माणुस्सए गधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ।४। इच्चेएहिं चउहिं
 णेहिं पएसी! ट्टुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्व गच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तं
 सब्हाहि णं तुमं पएसी। जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं
 जीवो तं सरीरं २ ॥सू० १३४॥

छाया—तत्र: खलु केशीकुमारश्रमण पदेशिनं (तजानमेवमवादीत यदि
 खलु त्वं प्रदेशिन् ! रानां कृतबलिकर्माणं कृतमौतुकमङ्गल-प्रायश्चित्तम्
 आद्रं पटशाटक भृङ्गारकटुच्छुक्कहस्तगत देवकुलमनुपविशन्तं कोऽपि पुरुषो

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केशी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रम-
 णने (परसि रायं) प्रदेशी रानो से (एव वयासी) ऐसा कहा—(जइणं तुमं
 पएसी! ण्हाय कयवलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपहमाडगं) हे
 प्रदेशिन् ! जिस समय तुम कृतस्नान होकर, कृतबलिकर्मा होकर,—वायसादिकों
 के लिये कृत अन्नविभागवाले होकर, कृत मपीतिलकादि मागलिक प्राय-
 श्चित्त विधि वाले होकर, जलसिक्तवस्त्रशाटरयुक्त होकर (मिगारकटुच्छु-
 कहत्यगयं) एवं भृङ्गार कटुच्छुक्क हस्तगत होकर (देशकुलमनुपविसमाणं)

‘तए ण केशी कुमारसमणे’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्पारच्छो (केशी कुमारसमणे) केशीकुमारसमणे (परसि रायं)
 प्रदेशी रानने (एवं वयासी) आ प्रभाषे क्खं (जइणं तुमं पएसी! ण्हायं
 कयवलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपहसाडगं) हे प्रदेशिन्
 ने वभते तमे स्नान करीने, बलिकर्मा—ओट्ठे हे कडगड वगेदेने अन्नभाग आपीने
 २०१ विषय वगेदे ३५ भागलिक प्रायश्चित्त विधि पताथीने पाष्ठावडे पणसेणधातवञ्ज

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-जइ
 णं तुमं पएसी ! णहायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलप चि
 उल्लपडसाडगं भिगारकंडु च्छुयहत्थगयं देवकुलमणुपविसमाणं केइ
 य पुरीसे वच्चघरंसि ठि । एवं वदेज्जा एह ताव सामी ! इह मुह-
 त्तगं आसयह वा चिट्ठह वा निसीयह वा तुयट्टह वा, तस्स णं तुमं
 पएसी ! पुरिसस्त णमवि एयमट्टं पडिसुणज्जामि ? णो इणट्टे
 समट्टे । कम्हा ? भंते ! असुई असुइसामंते । एवामेव पएसी ! तववि
 अज्जिना होत्था इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरइ, सा
 णं अम्हं वत्तवयाए सुबहु जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुमं
 णट्टे होत्था इट्टे जाव किमंगपुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ
 माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

चऊहि ठाणेहि पएसी । अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु इच्छेज्जा
 माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ-अहुणोववण्णे
 देवे देवलोएसु दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए गिच्छे गडिए अज्ज्ञो-
 ववण्णे से णं माणुसे लोगे नो आढाइ नो परिज्जाणाइ मे णं
 इच्छिज्जा माणुसं नो चेव णं संचाएइ ? अहुणोववण्णए देवे देव-
 लोए दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए जाव अज्ज्ञोववण्णे, तस्स णं
 माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ दिव्वे पेम्मे संकंते भवइ, से णं
 इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव संचाएइ (२) अहु-
 णोववण्णे देवे दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए जाव अज्ज्ञोववण्णे,
 णं एवं भवइ-इ णि गच्छं मुहुत्तणं गच्छं तेणं कालेणं इट्ठ

अप्पाउया णरा कालधम्मणा संजुत्ता भवंति, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्व गच्छित्तए णो चेत्र णं संचाएइ।३। अहुणोववणणे देवे
 दिव्वेहिं ।व अज्झोववणणे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गंधे पडिकूले
 पडिलोमे यावि भवइ, उहुं पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए
 असुभे माणुस्सए गधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेत्र णं संचाएइ।४। इच्चेएहिं चउहिं
 णेहिं पपसी ! अहुणोववणणे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्व गच्छित्तए णो चेत्र णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तं
 सवहाहिं णं तुमं पपसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं
 जीवो तं सरीरं २ ॥सू० १३४॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमण प्रदेशिनं (तजानमेवमवादीत यदि
 खलु त्वं प्रदेशिन् ! एनातं कृतबलिकर्माणं कृतकौतुकमङ्गल-प्रायश्चित्तम्
 आर्द्रपटशाटक भृङ्गारकटुच्छुक्रहस्तगत देवकुलमनुपविशन्तं कोऽपि पुरुषो

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण) इसके बाद (केशी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रम-
 णणे (पपसि रायं) प्रदेशी रानो से (एवं वयासी) ऐसा कथा—(जइणं तुमं
 पपसी ! ण्हायं कयवलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपडसाडगं) हे
 प्रदेशिन् ! जिस समय तुम कृतरान होकर, कृतबलिकर्मा होकर,—वायसादिकों
 के लिये कृत अन्नविमागवाले होकर, कृत मपीतिलकादि मागलिक प्राय-
 श्चित्त विधि वाले होकर, जलसिक्तब्रह्मशाटकयुक्त होकर (मंगारकटुच्छु-
 क्रहस्तगत) एवं भृङ्गार कटुच्छुक्र हस्तगत होकर (देवकुलमनुपविशमाणं)

‘तए ण केशी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए ण) त्पारपछी (केशी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणे (पपसि रायं)
 प्रदेशी रानने (एवं वयासी) आ प्रभाषे ध्वं (जइणं तुमं पपसी ! ण्हायं
 कयवलिकम्मं, कयकोउयमंगलपायच्छित्तं उल्लपडसाडगं) हे प्रदेशिन्
 ने वभते तसे नान करीने, बलिकर्मा—अटके के कागडा वगेरेने अन्न भाग आपीने
 २०१ िसक वगेरे इय भागलिक प्रायश्चित्त विधि पतापीने पाणीवडे पणवेणःधीतवस

वचो गृहे स्थित्वा एव वदेत्—एत तावत् स्वामिन् ! इह मुहुर्तिकम् आस्व ॥
 वा तिष्ठत वा निषीदत वा त्वंग्वर्त्तयत वा, तस्य खलु त्वं प्रदेशिन !
 पुरुषस्य क्षणमपि एतमर्थं प्रतिशृणुयाः ? नो अयमर्थः समर्थः । कस्मात् ?
 भदन्त ! अशुचिं अशुचिसाम्भन्तम् । एवमेव प्रदेशिन ! तद्यापि आर्यिवा
 ऽभवत् इहैव श्वेतविकायां नगर्या धार्मिकी यावत् व्यहरत् सा खलु अस्माकं

यक्षायतन मे घुसर रहे हो, उस समय (केइ य पुरिसे) तुम से कोई पुरुष
 (बखधरंसी ठिच्चा एवं वपज्जा) विंगठागृह मे स्थित होकर ऐसी कहे (एह
 ताव सामी, ! इह मुहुत्तगं आसयह, वा चिट्टह वा निमीयह वा, तुयट्टह वा)
 हे स्वामिन् ! आप आइये और एक मुहुर्त्तमात्र समयतक यहाँ बैठिये,
 अथवा ठहरिये, मुखपूर्वक रहिये लोटये (तस्मिं णं तुम पपसी ! पुरिस-
 सस खणमवि एयमट्टं पट्टिसुणेज्जासि) हे प्रदेशिन ! तुम उस पुरुष की
 उस बात को एक क्षण के लिये भी स्वीकार कर लोगे क्या ? (णो इणट्टे
 समट्टे हे भदन्त ! उस समर्थ उस पुरुष की यह बात स्वीकार योग्य
 नहीं हो सकती है (कम्हा) हे प्रदेशिन ! किस कारण से उस पुरुष की
 वह बात स्वीकार योग्य नहीं हो सकती है ? (भते ! असुई असुइ
 सामंते) हे भदन्त ! क्यों कि वह स्थान अपवित्र है और सब तरफ
 से अपवित्र वस्तु से युक्त है । (एवामेव पपसी ! तव वि अज्जिया होत्या,
 इहेव, सेय विद्याए णयरीए भम्मिया जाव विहरइ) इसी प्रकार से हे

शुक्त यधने (पिंगारकडुल्लयहत्यगयं) अने अगार तेम अट्टयुक्त अथमा
 यधने (देवकुलमणुपविसमाणं) यक्षायतन (व्यतरायतन)मा प्रवेशता होय ते समये
 (केइणपुरिसे) तमने केअ भासुस (बखधरंसी ठिच्चा एवं वपज्जा) अणइमा
 र्हीने अा प्रभासे कहे (एह ताव सामी ! इह मुहुत्तगं आसयह, वा चिट्टह वा
 निमीयह वा, तुयट्टह वा) हे स्वामिन् ! तमे आवो अने इकत् अेक सुद्धं अेट्ठा
 समय सुधी अही जेसो के उभा रहे, सुणेशे रहे, के आराम करे, (तस्मिं णं तुमं
 पपसी ! पुरिससस खणमवि एयमट्टं पट्टिसुणेज्जासि) तो हे प्रदेशिन ! तमे ते
 भासुसनी ते वातने थोअ वणत भाटे पबु स्वीकारथो ? (णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त !
 ते वधते ते भासुसनी अा वात स्वीकारवामा आवथे नहिं. (कम्हा) हे प्रदेशिन !
 था कारथुथी ते भासुसनी ते वात तमारामा स्वीकार्यं थथे नहिं ? (भंते ! असुई
 असुइ सामंते) हे भदन्त ! केभके ते स्थान अपवित्र छे अने अथि ते अपवित्र
 वस्तुअोथी युक्त छे. (एवामेव पपसी ! तव वि अज्जिया होत्या, इहेव सेयं-
 विद्याए णयरीए भम्मिया जाव विहरइ) अा प्रभासे अ हे प्रदेशिन अा थेंतां-

वक्तव्यतया सुबहुं यावत् उपपन्ना तस्याः खलु आर्यिकायाः त्व नप्तुकोऽभवः इष्टः यावत् किमद् ! पुनर्दर्शितया ? सा खलु इच्छह मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं, नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम् ।

चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन ! अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । अधुनोपपन्नो देवो देव-

प्रदेशिन ! इस श्वेताशिका नगरी में तुम्हारी आर्यिका-दादी भी धार्मिक यावत् धर्मानुसारादि विशेषणों से त्रिजिष्ट इष्ट है (सा णं अहं वत्तव्याए सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुमं णत्तए होत्था इष्टे जाव किमंग पुणपासणयाए) वह हमारी वक्तव्यता के अनुसार-मान्यता के अनुसार अनिश्चय बहुत अधिक पुण्य का उपार्जन करके और कालमाम में काल करके देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हो गई है। उस आर्यिका-दादी के तुम पौत्र हुए हो, जो उसे तुम इष्ट कान्त आदि विशेषणों वाले थे, और उद्गुम्बर पुष्प के समान उसे सुनने के लिये उस समय तुम दुर्लभ थे, फिर तुम्हारे देखने की बात ही क्या कहनी, (सा णं इच्छह माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए णोचेव ण संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) वह आर्यिका-दादी मनुष्यलोक में आनेकी इच्छा तो करती है, परन्तु आ नहीं सकती है। इसमें चार कारण हैं जो इस प्रकार से हैं—(चज्जहि ठाणेहिं पपसी अहुणोववन्नए देवे देवलोरएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ)

(भिक्षा नगरीमा तभारा आर्यिका दादी पक्षु धार्मिकी यावत् धर्मानुसारादि विशेषणेषु वाणा थया छे. (सा णं अहं वत्तव्याए सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाए तुमं णत्तए होत्था इष्टे जाव किमंगपुणपासणयाए) ते तभारी वक्तव्यता सुबहु-मान्यता सुबहु अतिशय पुष्येत्तं उपार्जन करीने कावमास्रमा काव करीने देवलोकाभाथी केह पक्षु ज्येक देवलोकाभा देवनी पर्यायथी जन्म पाव्या छे ते आर्यिका-दादीना तमे पौत्र छे, तमे तेना माटे इष्ट कान्त वगेरे विशेषणेषुवाणा हुवा अने उद्गुम्बर पुष्पनी जेभ तमे तेना माटे अवसुदुर्लभ हुवा, तो पछी तभारी जेवानी तो याव अ शी कव्वी. (सा णं इच्छह माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) ते आर्यिका दादी मनुष्यलोकाभां आववानी इच्छा तो राभे छे, पक्षु आवी शकता नथी. आना चार कारणे छे ते आ प्रभासे छे. (चज्जहि ठाणेहिं पपसी अहुणोववन्नए देवे देवलोरएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ) हे प्रदेशिन ! ते चार कारणे

लोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यद्दृष्ट्वा तः अध्युपपन्नः स खलु मानुषान् भोगान् नो आद्रिपते नो प जाति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोमं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यावत् अध्युपपन्नः, तस्य खलु मानुष्यं प्रेम

हे प्रदेक्षिन ! वे चार कारण ऐसे हैं । एक जिनके कारण से अधुनोपपन्नक देव देवलोक में तत्कालोत्पन्न देवमनुष्यलोक में शीघ्र आना चाहता है, परन्तु वह नहीं आसक्त है सा उममें प्रथम कारण ऐसा है—(अहुणोववर्ण देवे देवलोकसु दिव्ये हि कामभोगे हि मुच्छिण गिद्धे गदिए अज्जोववर्णे से माणुसे लोमे णा आढाइ, नो परजाणाइ) अधुनोपपन्नक देव देवलोकों में दिव्यकामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है, यद्द-विषयोपमान की अभिलाषा से ग्रस्त हो जाता है, ग्रथित-विषयों में आसक्त हो जाता है, अध्युपपन्न-उनमें अत्यन्त आसक्त हो जाता है । अतः वह मनुष्यलोक संबंधी शब्दादिक विषयों की आदर की दृष्टि से नहीं देखता है, उनकी अपेक्षा नहीं करता है और न उहे जानने की ही इच्छा करता है (सेणं इच्छेज्जा माणुमं नो वेव ण सच्चाएइ ?) ऐ वह देव किमा प्रकार मनुष्यलोक में आनेकी इच्छा करे तो भी देवभोगों की आसक्ति से वह यहाँ नहीं आना चाहता है । (अहुणोववर्ण देवे देवलोकसु दिव्ये हि कामभोगे हि मुच्छिण जाव अज्जोववर्णे) अधुनोपपन्न देव देवलोक

आ प्रभाषे छे के जेने दीधि अधुनोपपन्नक देव देवलोकमाथी तत्कालोत्पन्न देव मनुष्यलोकमा जवही आववा छे परंतु ते आवी शक्ता नथी तेनुं पहेछे क्षरण्य आ प्रभाषे छे—(अहुणोववर्ण देवे देवलोकसु दिव्ये हि कामभोगे हि मुच्छिण गिद्धे गदिए अज्जोववर्णे से माणुसे लोमे णो आढाइ नो परि जाणाइ) अधुनोपपन्नक देव देवलोकमा दिव्यकामभोगोमा मूर्च्छित थछे अथ छे, यद्द-विषयोपमान की अभिलाषाथी आकात थछे अथ छे, ग्रथित-विषयोमा आसक्त थछे अथ छे, अने अध्युपपन्न अने तेमा अतीव आसक्ति युक्त थछे अथ छे, अथी ते मनुष्यलोकमा शक्य वगेरे विषयोने सम्माननी दृष्टिअे जेतो नथी, तेनी ते अपेक्षा राधतो नथी अने तेना सम्भ्रमा ते कथपण्य लक्षुवानी पण्य छे अथ क्षरावतो नथी. (सेणं इच्छेज्जा माणुमं नो वेव णं सच्चाएइ ?) अथी ते देव अने क्षराय मनुष्यलोकमा आववानी छे अथ राधतो होय तो पण्य देवलोकानी आसक्ति ने दीधि ते अथी आववा छे अथ नथी. (अहुणोववर्ण देवे देवलोकसु दिव्ये हि कामभोगे हि मुच्छिण जाव अज्जोववर्णे) अधुनोपपन्न देव देवलोकमा दिव्य

व्युच्छिन्नं भवति । दयं प्रे- संक्रान्तं भवति । स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हृदयमागन्तुं नैव खलु शक्नोति २ । अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यात् मध्युपपन्नः, तस्य खलु एवं भवति । इदानीं गमिष्यामि मुहूर्तेन गमिष्यामि तस्मिन् काले इह अल्पायुषो नराः कालधर्मण संयुक्ता भवन्ति । स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हृदयमागन्तुं नैव खलु शक्नोति

में दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है यात्रा मध्युपपन्न हो जाता है सो (तस्मिन् मागुस्मे पे मे मूर्च्छिन्ने भवइ, दिव्ये पेस्मे संकंते भवइ) इसका मनुष्य-संबंधी प्रेम व्युच्छिन्न-टूट जाता है और देव-लोक संबंधी प्रेम उसके हृदय में संक्रान्त-पागल हो जाता है । (से गं इच्छेज्जा माणुसं लोग हृदयमागच्छत्तए नो चेव सचाएइ) अतः वह मनुष्यलोक में आनेका अभिप्राय होता हुआ भी आना नहीं चाहता है । (अहृणोवचन्ने देवे दिव्येहिं कामभोगेहिं मूर्च्छिए जाव अज्ज्ञोववणे, तस्मिन् एव भवइ, इयाणि गच्छं, मुहुतेणं गच्छं, तेणं कालेणं इदं अत्पाउयाणरा, कालधम्मणा सजुत्ता भवति, से गं इच्छेज्जा माणुस्सं लोग हृदयमागच्छत्तए णो चेव ण सचाएइ) अधुनोपपन्न देव देवलोक में दिव्य कामभोगों के द्वारा मूर्च्छित हो जाता है यात्रा मध्युपपन्न-आसक्त हो जाता है सो उसके मन में ऐसा होता है कि अब जाता हूँ, थोड़े काल पीछे जाऊंगा-उस काल में मर्त्यलोक में मनुष्य-माता, पिता, पुत्र, कलत्रादिक कि जिन की आयु समाप्त हो चुकी होती है, वे कालधर्म से संयुक्त हो जाते

कामभोगोभा मूर्च्छितं थं नथ छे यावत् अधुपपन्नं थं नथ छे ते । (तस्मिन् माणुस्से पेस्मे मूर्च्छिन्ने भवइ, दिव्ये पेस्मे संकंते भवइ) तेना मनुष्य संबंधी प्रेम व्युच्छिन्नं थं नथ छे अने स्वर्गलोकभा संबंधी प्रेम तेना हृदयभा संक्रान्तं प्रविष्टं-थं नथ छे । (से गं इच्छेज्जा माणुसं लोग हृदयमागच्छत्तए नो चेव सचाएइ) अथी ते मनुष्यलोकभा आववानी आविदाया राभते होय छतां पत्तु ते अही आववा छंभते नथी । (अहृणोवचन्ने देवे दिव्येहिं कामभोगेहिं मूर्च्छिए जाव अज्ज्ञोववणे, तस्मिन् एव भवइ, इयाणि गच्छं, मुहुतेणं गच्छंतेण कालेणं इदं अत्पाउयाणरा कालधम्मणा सजुत्ता भवति, से गं इच्छेज्जा माणुस्सं लोग हृदयमागच्छत्तए णो चेव णं सचाएइ) अधुनोपपन्न देव देवलोकभा दिव्य कामभोगो वडे मूर्च्छितं थं नथ छे यावत् अधुपपन्नं थं नथ छे, अने अवी परिस्थितिभा तेना भवता आ प्रमाप्तिं थय छे के हवे अर्थ, थोड़ा व्यथत पछी अर्थ । ते समये मर्त्यलोकभा मायुस माता, पिता, पुत्र कलत्र वगैरे अथा

३। अधुनापपन्नो देवो दिव्येषु यावत् अध्युपपन्नः, तस्य मानुष्यकः उदारः दुर्गन्धः प्रतिकूलः प्रतिलोमश्चापि भवति, ऊर्ध्वमपि च खलु यावच्चतुःपञ्च योजनशतम् अश्रुमो गन्धोऽभिसमागच्छति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोर्कं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति। इत्येतैः चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिनः ? अधु-

है, सो वह देव मनुष्यलोक में आने का अभिलाषी बना रहने पर भी यहाँ नहीं आ सकता है। (अहृणोवचन्ने देवे दिव्वेहिं जाव अज्ज्ञोवचण्णे. तस्स माणुस्सए उराले दुग्गघे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ) चौथा कारण यहाँ पर नहीं आसकने का ऐसा है कि-अधुनोपपन्न देव दिव्य कामभोगों में यावत् अध्युपपन्न हो जाता है, सो उसके लिये औदारिक क्षरोर संबंधी गोमृतककलेधरादि शशुत्पन्न दुर्गन्ध-प्राणेन्द्रिय के अनुकूल नहीं पड़ता है, प्रत्युत वह-उसे-प्रतिकूल-अनिष्ट कर प्रतीत होता है (उद्धं-पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए असुमे माणुस्सए गघे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं इव्वमार्गाच्छत्तए णो चेव णं संचाएइ) तथा वह मनुष्यलोक संबंधी अश्रुम गघ चारसौ या पांचसौ योजन तक ऊपर में सब तरफ फैल जाता-इ-अतः मनुष्यलोक में आने का अभिलाषी बना हुआ वह देव उम दुर्गन्ध के कारण यहाँ नहीं आ सकता है अर्थात् युगलियो के समय में चारसौ योजन और मनुष्य में पांचसौ योजन तक दुर्गन्ध जाता है (इष्वेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी। अहृणो

मृत्यु प्राप्त करी चूके छे अने आम ते देव मनुष्य लोकमा आववानी अभिलाषा शकतो होय छतांये अहीं आवी शकतो नथी. (अहृणोवचन्ने देवे दिव्वेहिं जाव अज्ज्ञोवचण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गघे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ) अहीं न आववानुं योथु-क्षरयु आ प्रभावे छे के अधुनोपपन्नके देव दिव्य दृकाम भोगोभा यावत् अध्युपपन्न धर्ष जय छे, तो तेना भाटे औदारिक शरीर संबंधी गोमृतक कलेधरादि शशुत्पन्न दुर्गन्ध प्राणेन्द्रियना भाटे अतकूल कही शकय नहि, पञ्च-अनेना विरुद्ध ते तेने प्रतिकूल अनिष्टकर लागे छे (उद्धं-पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए असुमे माणुस्सए गघे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं इव्वमार्गाच्छत्तए णो चेव णं संचाएइ) तेभए ते मनुष्य लोक संबंधी अश्रुम गघ चारसौ के पांचसौ योजन सुधी'ऊपर आकशमा आभेर प्रसरीने रहे छे अथी मनुष्यलोकमा आववानी अभिलाषा धरावतो होय छतांये ते देव ते दुर्गन्धने लीधे अहीं आवी शकतो नथी अटटे के युगलीअेना समथमा चारसौ योजनने मनुष्यमा पांचसौ योजन सुधी' दुर्गन्ध जय छे. (इष्वेएहिं

नोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव शक्नोति
हृव्यमागन्तुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! यथा-अन्यो जीवः अन्यत्
शरीरम्, नो तज्जीवः स शरीरम् २ ॥मू० १३४॥

टीका-‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि-ततः खलु केश कुमारश्रवणः
प्रदेशिराजम् एवम्-वक्ष्यमाणवचनमवादीत्-हे प्रदेशिन् ! यदि-चेत् खलु
त्वां स्नातं कृतस्नानं कृतबलिकर्माणं-कृतवापसादिनिमित्तान्नभागं कृतकौतुक-
मङ्गलप्रायश्चित्त-कृतमषीतिलकादि माङ्गलिकप्रायश्चित्तविधिम्. आर्द्रपटशाटकं-
जलसिक्वस्त्रशाटकयुक्तं भृङ्गारकटुच्छुद्धस्तगतं-दस्तगृहीतभृङ्गारदर्वीकम्, देव-
कुलं-यक्षायतनम् अनुप्रविशन्तम्-गच्छन्, कोऽपि-कश्चिदपि पुरुषो वर्चो-
गृहे विष्ठागृहे स्थित्वा एवम्, वदेत्-कथयेत् हे स्वामिन् ! गृयमिह तावद् एत
आगच्छत इह मुहूर्त्तं मुहूर्त्तमात्रसमयं यावत् आस्थवम् उपविशत, वा-
अथवा तिष्ठन् इहस्थिता भवन्, निपीदन्त-समुत्सृज्युपविशत, त्वग्वर्त्तयन्त-शयनं-
कुरुन्, अत्र वा शब्दो वाक्यालङ्कारे, तस्य पुरुषस्य खलु हे प्रदेशिन् !
त्वम् एतमर्थं किम् प्रतिशणुयाः-स्वीकुर्याः ? प्रदेशीमाह-

नायमर्थः समर्थः-अयमर्थः स्वीकारयोग्यो नास्ति किमर्थमित्याह हे-भदन्त !
तत्स्थानम्-अशुचि-अपवित्रम्, अशुचिस्मान्नाम्-स्वर्वातोऽशुचि युक्तम्, तस्मा-

वषण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लामं हृव्यमागच्छित्तए णो चेष
ण संचाएह हृव्यमागच्छित्तए, तं सद्दहाहि णं तुमं पप्सी ! जहा अन्नो
जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं) हे प्रदेशिन् ! ये चार कारण है जो
अधुनोपपन्न देव को मनुष्यलोक में आने की इच्छा करने पर भी उसे
यहां आने में बाधक होते हैं । इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम मेरे कहने
में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है जीव शरीररूप नहीं है
और शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थं-इमं सूत्रं का मूलार्थं के जैसा ही है ॥मू० १३४॥

चउहिं ठाणेहिं पप्सी ! अहुणोवषण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुसं
लोगं हृव्यमागच्छित्तए णो चेष णं संचाएह हृव्यमागच्छित्तए, तं सद्दहाहि
णं तुमं पप्सी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं)
हे प्रदेशिन् ! आ चार कारणे छे के जेथी अधुनोपपन्न देव मनुष्य लोकमा आव-
वानी इच्छा राखतो होय छताये ते अही आवी शकतो नथी जेटका भाटे छे
प्रदेशिन् ! तसे भारी बात पर श्रद्धा सजो के एव अन्य छे अने शरीर अन्य
छे, एव शरीर रूप नथी अने शरीर एव रूप नथी.

टीकार्थं-आ सूत्रेना टीकार्थं मूलार्थं प्रभाषे ज छे. ॥१३४॥

नोचितोऽयमर्थः इति बोध्यम्, केशीश्रमणः प्राह-हे प्रदेशिन् । एवमेव-
इत्यमेव तत्रापि आर्यिकाऽभवत् कुत्र साऽभवदित्यत्राऽऽह-इहैव श्वेतविकार्या
नगर्या धार्मिकी-यावत्-यावत्पदेन-धर्मानुगादिविशेषणविशिष्टा व्यहरत्,
सा-आर्यिका खलु मम वक्तव्यतया-मम मतेन सुबहुं यावत्-यावत्पदेन-
“पुण्योपचयं समज्यं कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया
उपपन्ना, तस्याः खलु आर्यिकायाः त्वं नष्टः-पौत्रोऽभवः, कीदृशः ?
इत्यत्राऽऽह-इष्टः यावत्-यावत्पदेन-इष्टकान्तादिविशेषणविशिष्टः उदुम्बर
पुष्पमिव दुर्लभः श्रवणतया, किमद्ग पुनर्दर्शनतया, एतादृशस्त्वमभूः । सा-
आर्यिका खलु मानुष्यलोकमागन्तुमिच्छति किन्तु नैव शक्नोति ।

कुतो न शक्नोति ? इति जिज्ञासायामाह-हे प्रदेशिन् । चतुर्भिः-
स्थानैः अधुनोपपन्नः-तत्कालोत्पन्नो देवः देवलोकेषु मानुष्य लोकं शीघ्र
मागन्तुमिच्छेद्-अभिलषेत् किन्तु नैव शक्नोति-तत्र प्रथमकारणमाह-
अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु कामभोगेषु मूर्च्छितः-मूर्च्छामधिगतः, गृद्धः-
विषयोपभोगाभिलाषग्रस्तः, ग्रथितः आसक्तः, अध्युपपन्नः-अत्यासक्तः स
खलु मानुष्यान्-मानुष्यलोकसम्बन्धिनः भोगान्-शब्दादीन् विषयान् नो
आद्रियते नापेक्षते, अतएव नो परिजानात-विज्ञातुं नेच्छति, स खलु देवः
कथञ्चित् मानुष्यं लोकमागन्तुमिच्छेदपि किन्तु देवभोगासक्त्या नैवागन्तु
शक्नोति-नेच्छतीत्यर्थः १। द्वितीयस्थानमाह-अधुनोपपन्न इत्यारभ्य
अध्युपपन्नः इति पर्यन्तानां विवरणं प्राग्वत्, तस्य-देवस्य मानुष्य-मनु
ष्यसम्बन्धि प्रेम व्युच्छिन्न मनुष्यलोकासुखापेक्षयाऽधिकदिव्यसुखेन प्रति-
हृतं भवति तथा-दिव्यं-स्वर्गलोकसम्बन्धि प्रेम संक्रान्तं-इष्टानुपविष्टं
भवति, तेन हेतुना स देव आगन्तुं न शक्नोति २।
अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितोऽव्यु
पपन्नो भवति, तस्य खलु देवस्य एवम्-अनुपदवक्ष्यमाणस्वरूपो मिलाषो
भवति तथाहि-इदानीम्-अधुना गमित्यामि, तथा गृह्णतेन घटिकाद्वया-
नन्तरं गमिष्यामि । तरिमन् काले इह-मर्त्यलोके नराः-मातापितृपुत्र-
कलत्रादयः अल्पायुषः अल्पजीविनः कालधर्मेण-मृत्युना मयुक्ताः भवन्ति,
सः देव आगन्तु न शक्नोति ३। अथ चतुर्थस्थानमाह-“अधुनोपपन्नो देवो
दिव्यभोगासक्तो भवति, तस्य देवस्य औदारिकः=औदारिकशरीरसम्बन्धी
गोमृतककलेचरादिसमुद्भूतो दुर्गन्धः प्रतिकूलः प्राणेन्द्रियान्नूरुलः, प्रतिलोमः-
घ्राणान्निष्टकरश्चापि भवति । तथा-अशुभः सः गन्ध ऊर्ध्वमाप उपरिप्रदेशेऽपि च

खलु यावच्चतुःपञ्चयोजनशतं-चत्वारि वा पञ्च वा योजनानां गतानि यावत्
 अमिममागच्छति-अमितः प्रसरति. स देवः मानुष्य लोकागन्तुम्, इच्छेत्
 परन्तु तर्हि-गन्धशादागन्तुं न शक्नोति ४। हे प्रदेशिन् । इत्येतेः चतुर्भिः
 स्थानैः-देवा आगन्तुं न शक्नुवन्तीति । तन् तस्मात्कारणान् हे प्रदेशिन् ।
 त्वं श्रेष्ठे-मद्वचने श्रद्धां कुरु यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः
 स शरीरम्, इति ॥श्रु० १३४॥

मूलम्—तएणं से पएसी राया केमिं कुमारसमणं एवं वयामी-
 अत्थिणं भंते ! एसा पण्णा उवमा, इमणं पुण कारणेण णो उवा-
 गच्छइ, एव खलु भंते ! अह अन्नया कयाइं वाहिरियाए उवट्ठण-
 सालाए अणेगणणायक-दंडणायग राईसर-तलवर-माडंबिय-केडुं-
 यि - इवभसेत्ति सेणावइ - सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-
 दोवारिय-अमच्चवेड-पीढमइ-नगर-निगम-दूय-सधिवालेहिं सांइ संप-
 रिबुडे विहरामि । तएणं मम णगरगुत्तिया ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं
 अवउडमबंधणबद्धं चोरं उवणेंति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवत
 चैव अउकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि,अएण
 य तउएण य आयावेमि, आयपच्चइएहिं पुरिसोइ रक्खावेमि, तए
 अहं अणया कयाइं जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि,
 उवागच्छित्ता त आउकुंभ उग्गलत्थावेमि, उग्गलत्थावित्ता तं
 पुरिसं सयमेव पासामि णो चैव णं तीसे अयकुंभीए केइ छिबुइ वा
 विवरेइ वा अंतरेइ वा राईवा जओ णं से जीवे अंतोहितो बहि
 णिग्गए, जइ णं भत्ते । तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिबु वा जाव
 राई वा जओ णं से जीवे अंतोहितो बहिया णग्गए, तां णं
 सदहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्न सरीर नो

जीवो त सरीर, जम्हा णं भते । तीसे अउकुभीए णत्थि केइ छिङ्गे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपइट्टिया मे पइण्णा जहा—तं जीवो त सरीर, नो अन्नो जीवो अन्न सरीरं ॥सू० १३५॥

छाया—ततःखलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत् अस्ति खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञा उपमा, अनेन पुनःकारणेन नो उपागच्छति, एवं खलु भदन्त ! अहमन्यदा कदाचित् बाह्यायाम् उपस्थानशालायाम् अनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवर-माडम्बिवा-कौटुम्बिकेभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्री-महामन्त्री गणक-दोवारिका-उमात्य-चेट-पीठमह-नगर-निगम-दूत-संघपालैः सार्द्धं संपरिवृतो विहरामि ।

‘तएणं से पएसी राया इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसकेवाद (पएसी राया केसिंकुमारसमण एवं वयासी) प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमण से ऐसा कह्वा—(अत्थि णं भते ! एसा पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेण णो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह जीव एव सरीर में मेदरूप बुद्धि केवल उपमामात्र है, जैसा कि अभी पकट किया गया है—कि इसर कारण से देव यहां नहीं आता है. (एवं खलु भते ! अह अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्टाणसालाए) हे भदन्त ! किसी एक समय मैं बाह्य उपस्थान शाला मे (अणेगगणणायक, दण्डणायक-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडु बिय-इवम-सेट्टि-सेणावह-सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेट-पीठमह-नगर-निगम-दूय-संघिगालेहिं सद्धिं संपरिवुडे विहरामि) अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजा,

सुत्रार्थ —(तए णं) त्थारपथी (पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने केशी कुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे कहु - (अत्थि णं भते ! एसा पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेण णो उवागच्छइ) हे भदन्त ! तमे देवने अही न आववा माटे जे कथं कहुथु छे तेना वडे तो एव अने शरीरमा वेदइय बुद्धि इहेत. उपमामात्र ज छे आम स्थण्ठपण्णे बाधित थाय छे. (एवं खलु भते ! अं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्टाणसालाए) हे भदन्त ! कथं जेक वपणे गाह्य उपस्थानशालाभां हुं (अणेगगणणायकदण्डणायक-राईसर-तलवर-माडंबिय कोडुंबिय-इवम-सेट्टि-सेणावह-सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेट-पीठमह-नगर-निगम-दूय-संघि-गालेहिं-सद्धिं संपरि-

ततः खलु मम नगरगुप्तिका' समक्ष महोद संप्रवेयकम् अरफारकवन्वचद्ध
चौरमुपनयन्ति, ततःखलु मह तं पुरुषं जीवन्मेव अयःकुम्भ्यां पक्षेऽयामि,
अयामयेन पिधानकेन पिधापयामि अयमा च त्रपुगा च आनापयामि,
आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः रक्षयामि ततोऽहमन्यदा कदाचित् यत्रैव मा अय

ईश्वर ऐश्वर्यसंपन्न, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति.
सार्थवाह, मन्त्री, महाभन्त्री, गणरु, दौवारिक, अमान्य, चेट, पीठमर्ह,
नगरनिवासीजन, व्यापारिगण, दूत मन्त्रिपार, इन सबके साथ बैठे हुआ
था. (तएणं मम नगरगुप्तिया समक्खं, सहोद, सगेवेज्जं, अवउडमवंध-
णवद्धं चोर उवणेति) इतने में नगर रक्षक मेरे समक्ष महोद-चुराई हुई
वस्तुओं सहित, सूर्यवेयक-गोत्रा मे जिसने चुराई हुई वस्तुओं को चाचा
है ऐसे चोर को अवकोटक-(मुसक्रिया) बंधन से बांधकर लाये (नगण
अहं तं पुरिसं जीवन्तं चैव अउकुमीए पक्खिवावेमि) मैं उस पुरुष को
जीवित्वावस्था में ही लोह की कोठी में बन्द करवा दिया-और (अउम-
एण पिहाणएणं पिहावेमि) उसके मुखको-कोठी के मुख को लोह के ढकन
से बन्द करवा दिया-ढकवा दिया. (अएण य तउएण य आयावेमि) बाद
में फिर मैंने उसे द्रवीभूत लोहे से और द्रवित राग से अङ्कित करा
दिया. (आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) यह सब करवाकर फिर मैंने
अपने विश्वासपात्र पुरुषों को उसकी रक्षा के निमित्त नियुक्त करवा दिया.

बुढे विहरामि) घण्टा गणुनाथको, इंडनाथको, राज, ईश्वर, अश्वर्य, संपन्न, तलवर
भाडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मन्त्री, महाभन्त्री, गणरु,
दौवारिक, अमान्य, चेट, पीठमर्ह, नगरनिवासीजन, बड़ेपारीयो, दूतो, संधिपालो,
आ अधानी साथे बैठे हुतो, (तएणं मम नगरगुप्तिया समक्खं सहोदं, सगेवे-
ज्जं, अवउडमवंधणवद्धं चोर उवणेति) येतलाभा नगररक्षक भारी साथे सहेडे
-चोरालेकी वस्तुओनी साथे, सूर्यवेयक-गेनी ठाकभा चोरालेकी वस्तुओ भांधवाभा
आवी छे जेवा चोरने अवकोटक-अन्ने हाथये बेगा भाधीने लाव्या. (तएणं अहं
तं पुरिसं जीवन्तं चैव अउकुमीए पक्खिवावेमि) मे ते पुरुषने लावने
अ दोभांडना नगामा अह करावी हीथा अने (अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)
ते नगाने दोभांडना दांडबुथी अध करावी हीथा (अएण य तउएण य आयावेमि)
त्यार पछी मे तेने द्रवीभूत दोभांड तेमअ द्रवित रागथी अङ्कित करावी हीथा
(आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) आ अधु करावने पछी मे तेना रक्षा

स्कृम्भो तत्रैव उपागच्छामि. उपागम्य तामयस्कृम्भोष्, उन्धेय्यापि उन्धेय्य
 तं पुरुष स्वयमेव पश्यामि नो च व खलु तस्या अयस्कृम्भ्यां किञ्चिद् छिद्रमिति
 वा विवामित वा अन्तरमिति वा राजिरिति वा यतः खलु स जीवः अन्त-
 राद् वह्निर्निर्गतः, यदि खलु भदन्त ! तस्यां अयस्कृम्भ्यां भवेत् किमपि छिद्र
 वा यावद् राजिर्वा यतः खलु स जीवः अन्तराद् वह्निर्निर्गतः, तदा खलु
 अहं श्रद्धया प्रनाया रोचयेयं यथा-अन्गो जीवः अन्यत्र शरीरं नो तज्जीव

(तए अहं अगत्या कयाइ जेगामेव सा अउकुंभो तेणामेव उवागच्छामि)
 एक दिन को घात है कि मैं उम अयःकुम्भी के-लोहेकी कोठी के पा
 गया (उवागच्छिता तं आउकुमि उगलत्थावेमि) वहां जाकर मैंने उप
 लोहे की कोठी का खुलवाया (उगलत्थाविस्सा तं पुरिसं सयमेव पासामि
 णो चैव णं तोसे अयकुंभीए केइ छिड्ढेइ वा विवरेइ वा, अतरेइ वा राइ वा
 जओण से जीवे अंतोहितो बहिया निग्गए) खुलवाकर मैंने स्वयं उस चोर
 को देखा तो वह वहां मरा पड़ा था, जब कि उस लोहे की कोठी में न कोई
 छिद्र था, न कोई विवर था, न अवकाश था, न कोई रेखा थी, कि
 जिससे होकर उस चोर पुरुष का जीव उस लोहे की कोठी के
 भीतर से बाहर निकल जाता (जइ णं भते ! तोसे अउकुंभीए- होजा
 केइ छिड्ढे वा जाव राइ वा जओ ण से जीवे अंतोहितो बहिया
 निग्गए) हा भदन्त ! यदि उस लोहे की कोठी में, कोई छिद्र वा यावत्
 रेखा होती तो उससे होकर वह चोर पुरुष का जाव भीतर से बाहर

भाटे (विश्रासपात्र पुश्धेनी निधुत्ति अरं ईधी (तए अहं अणया कयाइ जेगामेव
 सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि) अथ द्विसन्ता वान छे केहुं ते दोष उना
 नणा पासे गथे. (उवागच्छिता तं आउकुमि उगलत्थावेमि) त्या अधने भे
 छे दोष उना नणाने उधअथे. (उगलत्थाविस्सा तं पुरिसं सयमेव पासामि, णो
 चैव णं तोसे अयकुंभीए केइ छिड्ढेइ वा विवरेइ वा, अतरेइ वा, राइ-
 वा, जओ णं से जीवे अंतोहितो बहिया निग्गए) उधअवीने भं पोते ते चो-
 नेथे तो ते तेमा भूतावस्थाभा पडेवे इतो. अन्यारे ते दोष उना नणाभा न छिद्र
 इत्तु के न विवर इत्तुं के न अवकाश इतो के न रेखा इती के नेथी ते चोरने
 एव ते दोष उना नणाभाथी अहार नीकणी जतो रहे. (जइ णं भते ! तोसे अउकुं
 भीए होजा केइ छिड्ढे वा जाव राइ वा जओ ण से जीवे अंतोहितो
 बहिया निग्गए) हे भदन्त ! ने ते दोष उना नणाभा केछि छिद्र के यावत् रेखा
 हात तो तेमांथी यधने ते चोर पुश्धेनी एव अंहरथी अहार नीकणी शक्त. (तो ण

मशरारम्, यस्माद् भदन्त ! तस्या अयस्कुम्भ्याः नास्ति किञ्चित् छिद्रं वा यावत् निर्गतः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-सद्जीवः तत् शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् ॥ सू० १३५॥

टीका— तपणं से पएसी राया' इत्यादि-ततः-केशिकुमारवचन-श्रवणानन्तरं खलु स प्रदेशी राजा केशिन कुमारश्रमणम् एवम्-भवादिन्-हे भदन्त ! एषा-ज शरीरयो भेदरूपा प्रज्ञा=बुद्धिः उपमा=उपमायात्रम् अस्ति-विद्यते, यद् अनेन कारणेन देवो नो उपागच्छतीति । हे भदन्त ! एवं-पूर्वोक्तप्रकारेणान्यदपि वृत्तमस्ति यद् अहम्-अन्यदा-यदाचित्-अन्यस्मिन् कर्मिश्चित् समये-वाह्यायाम्-उपस्थानशालायाम् अनेकगणनायक-दण्डनायक-राजे-श्वर-तन्त्र'-माहम्बिक-कौटुम्बिके-भय-श्रेष्ठि-सेनापति-मार्थवाह-

निकलना (तो णं अहं सहदेवजा पत्तिएज्जा-रोएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो मैं आपको इस बात पर विश्वास कर लेना, प्रतीति कर लेता, उसे रुचि का विषय बना लेना कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है (जम्हा णं भंते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केह् छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपहट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) जिस कारण हे भदन्त ! उस लोहे की कोठी में कोह्. छिद्र अथवा यावत् रेखा नहीं थी कि जिससे उसका जीव बाहर निकल जाता. अतःछिद्रादि के अभाव से निकलने में अशक्त होने के कारण मेरा ही यह मन्तव्य ठीक है कि जो जीव है, वही शरीर है, जीव शरीर से भिन्न नहीं है और शरीर जीव से भिन्न नहीं है ।

अहं सहदेवजा पत्तिएज्जा राएज्जा जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) तो हु तमारी आ बात पर विश्वास करी लेत, प्रतीति करी लेत अने तेने भारी बुद्धिने विषय बनावी लेत है एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे, एव शरीररूप नहीं अने शरीर एवरूप नहीं. (जम्हा ण भंते ! तीसे अउकुंभीए णत्थि केह् छिद्धे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपहट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) नेने बोधे छे जडत । ते बोध उना नणाया केह् छिद्र के यावत् रेखा नहीं के नेथी तेने एव अहार नीकणी जतो. रहे भाटे छिद्र वगेरेना अभावमा अहार नीकणवामा अशक्त होवा अहल भारी ज आ जतनी मान्यता उचित होजे छे के ने एव छे तेज शरीर छे, एव शरीरधी भिन्न नहीं अने शरीर एवधी भिन्न नहीं.

મન્ત્રિ-મહામન્ત્રિ-ગણક-દૌવારિકા-ડમાત્ય-વેટ-પીઠમહા-નગર-નિગમ-
 વૃત-સન્ધિપાલૈઃ-અનેકે ચે ગણનાયકા દયઃ-તદ્ ગણનાયકાઃ-ગણસ્વામિનઃ,
 ઢ્ઢનાયકાઃ-ઢ્ઢવિધાયકાઃ, રાજાનઃ-પ્રસિદ્ધાઃ, ઈશ્વરા-દેશ્વર્યસમપન્નાઃ,
 તલવરાઃ-મન્તુષ્ટરાજદત્તપદ્ધવન્ધપરિભૂષિતરાજકલ્પાઃ, માઢમ્બિકાઃ-ગ્રામપચ્ચ-
 શત્તીપતયઃ, યદ્વા-સાર્દ્ધક્રોશ્ઢયપરિમિતમાન્તરૈર્વિચ્છિદ્ધ વિચ્છિદ્ધ મ્થિતાનાં
 ગ્રામાણામધિપતયઃ, કૌદુમ્બિકાઃ-વહુકુદુમ્બપ્રતિપાલકાઃ, ઇમ્યાઃ-ઇમો-ઇત્તી
 તત્પ્રમાણ દ્રવ્યમર્હન્તીત ઇમ્યાઃ, તે ચ જઘન્ય-મધ્યમોત્કૃષ્ટભેદાત્ પ્રિ-
 પ્રકારાઃ, ત્ત્ર હસ્તિપરિમિતમણિમુક્તા-પ્રવાલ-સુવર્ણ-રજતાદિદ્રવ્યરાશિ સ્વા-
 મિનો જઘન્યાઃ, હસ્તિપરિમિતવજ્રમણિમાણિક્યરાશિસ્વામિનો મધ્યમા..

ટીકાર્થ-સ્પષ્ટ છે-પરન્તુ જો હસમેં ગણનાયક આદિ પદ આવેહે उनकी व्याख्या
 હમ પ્રકાર સે છે-ગણ કે જો સ્વામી હોને છે, વે ગણનાયક છે ઢ્ઢ કા
 જો વિધાન કરતે છે. વે ઢ્ઢનાયક છે, રાજા પ્રસિદ્ધ છે, દેશ્વર્ય સે જો યુત્ત
 હોતે છે વે દેશ્વર છે. મન્તુષ્ટ હુણ રાજા દ્વારા જિને વિદોષ પોશાક
 વી જાતી છે એમે રાજતુલ્ય વ્યક્તિયોં કા નામ તલવર છે પાંચ સૌ ગ્રામ
 કે જો અધિપતિ હાતે છે વે માઢમ્બિક છે, અથવા ઢાઈ ઢાઈ કોસ કે
 અન્તર સે વસે હુણ ગ્રામો કે જો અધિપતિ હોતે છે વે માઢમ્બિક
 છે, વહુત કુદુમ્બ કા પાલન પોષણ કરનેવાળે જો હોતે છે કૌદુમ્બિક છે,
 હસ્તિપ્રમાણ દ્રવ્ય-મણિ-મુક્તા-પ્રવાલ-સુવર્ણ-રજત-આદિ દ્રવ્યરાશિ કે
 જો સ્વામી હોતે છે વે જઘન્ય ઇમ્ય છે તથા-હસ્તિપરિમિત વજ્ર, મણિ,
 માણિક્યરાશિ કે જો સ્વામી હોને છે વે મધ્યમ ઇમ્ય છે હસ્તિપરિમિત

ટીકાર્થ-ટીકાર્થ સ્પષ્ટ જ છે. પરન્તુ આ સુત્રમા ગણનાયક વગેરે જે પદો
 આવેલા છે તેમની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છે. ગણના જે સ્વામી હોય છે તે ગણ-
 નાયક છે. હહતુ જે વિધાન કરે છે તે હહનાયક છે. રાજા પ્રસિદ્ધ છે ઔશ્વર્યથી
 જે સ પન્ના હોય છે તે ઇશ્વર છે મતુષ્ટ થયેલા રાજા વરુ જેમને પહેરવાના વસ્ત્ર
 આપવામા આવે છે એવી રાજતુલ્ય વ્યક્તિઓ તલવર કહેવાય છે પાચસો ગ્રામના
 જે અધિપતિ હોય છે. તે માઢમ્બિક છે અથવા તેા અઢી અઢી કોસના અ તરે વસેલા
 ગ્રામોના જે અધિપતિ હોય છે તે માઢમ્બિક છે ઘણા કુદુમ્બોતુ પાલન-પોષણ કરનાર
 જે હોય છે તે કૌદુમ્બિક છે હસ્તિપ્રમાણ દ્રવ્ય-મણિ-મુક્તા-પ્રવાલ-સુવર્ણ-રજત
 વગેરે દ્રવ્યરાશિના જે સ્વામી હોય છે તે જઘન્ય ઇમ્ય છે તેમજ હસ્તિપરિમિત
 વજ્રમણિ, માણિક્ય રાશિના જે સ્વામી હોય છે તે મધ્યમ ઇમ્ય છે.

हस्तिपरिमितकेवलवज्ररागिस्वामिन उत्कृष्टाः, श्रेष्ठिनः-लक्ष्मीकृपाकटाक्ष
 प्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टमलङ्कृतमूर्धानो नगरप्रधान-
 व्यवहारकारिणः, सेनापतयः-चतुरङ्गसेनानायकाः सार्थवाहाः-गणिम-धरिम-
 मेघ-परिच्छेद्यरूप-क्रयविक्रेयवस्तुजानमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां
 सार्थं वाहयन्ति-योग-क्षेमाभ्यां परिपालयन्ति, दीनजनोपकाराय मूलधन दत्त्वा
 तान् स्वमर्द्धयन्तीति तथा, तत्र गणिमम्-एक-द्वि-त्रि-चतुरादि संख्याक्रमेण
 यद्दीयते, यथा-नारिकेल-पूगीफल-कदलीफलादिकम्, धारमम्-तुलासूत्रेणो-
 त्तोत्य यद्दीयते, यथा-त्रीहि-यत्र-लवण-सितादि, मेघं-शरावलघुमाण्डादिनो-
 त्तोत्य यद्दीयते, यथा-दुग्ध-धृत-तैल-प्रभृति, परिच्छेद्यं च-प्रत्यक्षतो निक-
 षादिपरीक्षया यद्दीयते, यथा-मणिमुक्ता-प्रवालाऽऽभरणादि, मन्त्री-रहस्य-
 कार्यकारी स एव महान् महामन्त्री, गणकाः ज्योतिषवेत्तारः, दौवारिकाः-द्वारि-
 नियुक्ताः द्वारपालाः, अमात्याः राज्याधिष्ठायकाः महवानिगजपुरुषविशेराः,
 घेटाः-चरणसेवकाः क्रिद्धराः, पीठ मर्हा-राजममीपन्थायनो राजायम्काः
 सेवकविशेषाः, नगरेति नागरा नगरनिवासिनो जनाः, निगमाः-व्यापारिगणः,

केवल वज्रराशि के जो स्वामी होते हैं वे उत्कृष्ट इन्ध हैं। लक्ष्मी की
 जिनपर पुरो रूपा है, और इसी कृपा के कारण जिनके लाखों के
 खजाने हों, तथा जिनके मस्तक पर उन्हीं को सूचित करनेवाला चान्दी
 का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो ऐसे नगर के प्रधानव्यापारी
 श्रेष्ठी कहलाते हैं। चतुरङ्गसेना के नायक जो होते हैं वे सेनापति हैं, जो
 गणिम-गिनकर खरीदने के चने योग्य नारियल, सुपारी केला आदि मेघ-शराव
 आदि से नापकर खरीदने के चने योग्य दूध, घी, तेल, आदि वस्तुओं को तथा
 परिच्छेद्य-कसाँटी आदि पर परीक्षा करके खरीदने के चने योग्य मणि,
 मोती, मूगा, गहना आदिवस्तुओं को लेकर लाभ के लिये देशान्तर में जाने

परिमित वज्रराशिना जे स्वामी होय छे ते उत्कृष्ट इन्ध छे. जेनी उपर लक्ष्मीनी
 पूर्वा कृपा छे अने ज्येथी जे जेमनी पासै लाजोना ल'उर बरेला छे तेमज्जेमना
 अस्तक पर तेमने जे सुखवतो चान्दीनी विलक्षण पट्ट शोभायमान यध रह्यो होय
 जेवा नगरना प्रधान व्यापारी श्रेष्ठी कहेवाय छे. जे चतुरंग सेनाना नायक होय
 छे ते सेनापति छे जे गणिम-गण्डीने वेपार करवा जेअ नारियेल, सोपाग कहेवा
 वगेरे वस्तुओने गणिम कहे छे मेघ-शरावा वगेरे नाना वासुवु वगेरेथी भापीने वेपार करवा
 जेअ दूध, घी, तेल वगेरे वस्तुओने मेघ कहेछे तेमज्जे परिच्छेद्य कसाँटी वगेरे पर परीक्षण
 करीने वेपार करवा जेअ मणि, मोती प्रवाल, आभूषणो वगेरे वस्तुओने साथै

मन्त्रि-महामन्त्रि-गणक-दौवारिका-ऽमात्य-चेष्ट-पीठमह-नगर-निगम-
 दूत-सन्धिपालैः-अनेके ये गणनायका दयः-तत्र गणनायकाः-गणमासिनः,
 दण्डनायकाः-दण्डविधायकाः, राजानः-प्रसिद्धाः, ईश्वरा-ऐश्वर्यसमपन्नाः,
 तलवराः-सन्तुष्टराजदत्तपट्टबन्धपरिभूषितराजकल्पाः, माडम्बिकाः-ग्रामपञ्च-
 शस्तीपतयः, यद्या-साद्ध-कोशद्वयपरिमितमान्तरैर्विच्छिद्य विच्छिद्य भित्तानां
 ग्रामाणामधिपतयः, कौटुम्बिकाः-बहुकुटुम्बप्रतिपालकाः, इभ्याः-इमो-इस्ती
 तत्प्रमाण द्रव्यमर्हन्तीति इभ्याः, ते च जघन्य-मध्यमोत्कृष्टभेदात् त्रि-
 प्रकाराः, तत्र हस्तिपरिमितमणिमुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजतादिद्रव्यराशि स्वा-
 मिनो जघन्याः, हस्तिपरिमितवज्रमणिमाणिक्यराशि स्वामिनो मध्यमा..

टीकार्थ-स्पष्ट है-परन्तु जो इसमें गणनायक आदि पद आये है उनकी व्याख्या
 इस प्रकार से है-गण के जो स्वामी होते हैं, वे गणनायक है दण्ड का
 जो विधान करते है. वे दण्डनायक है, राजा प्रसिद्ध है, ऐश्वर्य से जो युक्त
 होते है वे ईश्वर है. मन्तुष्ट हुए राजा द्वारा जिन्हे विशेष पोशाक
 दी जाती है ऐसे राजतुल्य व्यक्तियों का नाम तलवर है पाच सौ ग्राम
 के जो अधिपति होते है वे माडम्बिक है, अथवा ढाई ढाई कोस के
 अन्तर से बसे हुए ग्रामो के जो अधिपति होते है वे माडम्बिक
 है, बहुत कुटुम्ब का पालन पोषण करनेवाले जो होते है कौटुम्बिक है,
 हस्तिप्रमाण द्रव्य-मणि-मुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजत-आदि द्रव्यराशि के
 जो स्वामी होते है वे जघन्य इभ्य है तथा-हस्तिपरिमित वज्र, मणि,
 माणिक्यराशि के जो स्वामी होने है वे मध्यम इभ्य है हस्तिपरिमित

टीकार्थ-टीकार्थ स्पष्ट न छे. परन्तु आ सूत्रमा गणनायक वगेरे के पदो
 आवेस छे तेमनी व्याख्या आ प्रमाणे छे. गणना के स्वामी होय छे ते गण-
 नायक छे. दण्ड के विधान करे छे ते दण्डनायक छे. राजा प्रसिद्ध छे ऐश्वर्यशी
 के समपन्न होय छे ते ईश्वर छे सन्तुष्ट थयेसो राजा वरु केमने पहरेवाना वस्त्र
 आपवामा आवे छे ओवी राजतुल्य व्यक्तियो तलवर कहेवाय छे पाचसो ग्रामना
 के अधिपति होय छे ते माडम्बिक छे अथवा तो अढी अढी कोसना अ तरे वसेसो
 ग्रामना के अधिपति होय छे ते माडम्बिक छे धञ्जा कुटुम्बोतु पालन-पोषण करनार
 के होय छे ते कौटुम्बिक छे. हस्तिप्रमाण द्रव्य-मणि-मुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजत
 वगेरे द्रव्यराशिना के स्वामी होय छे ते जघन्य इभ्य छे तेमन हस्तिपरिमित
 वज्र, मणि, माणिक्य राशिना के स्वामी होय छे ते मध्यम इभ्य छे, ह-स्त-

हस्तिपरिमितकेवलवज्रागिस्वामिन उत्कृष्टाः, श्रेष्ठिनः-उक्षमोकृपाकटाक्ष
 मत्स्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टमलङ्कृतमूर्धानो नगरप्रधान-
 व्यवहारकारिणः, सेनापतयः-चतुरङ्गसेनानायकाः सार्थवाहाः-गणिम-धरिम-
 मेय-परिच्छेद्यरूप-क्रयविक्रेयवस्तुजानमादाय लामेच्छया देशान्तराणि व्रजतां
 सार्थं वाहयन्ति-योग-क्षेमाभ्यां परिपालयन्ति, दीनव्रतोऽकराय मूलधनं दत्त्वा
 तान् समद्धयन्तीति तथा, तत्र गणिमम्-एक-द्वि-त्रि-चतुरादि संख्याक्रमेण
 यद्दीयते, यथा-नारिकेल-पूगीफल-कदलीफलादिकम्, धरिमम्-तुलासूत्रेणो-
 त्तोल्य यद्दीयते, यथा-त्रीहि-यव-लवण-सिनादि, मेयं-शरावलघुमाण्डादिनो-
 त्तोल्य यद्दीयते, यथा-दुग्ध-धृत-तैल-प्रभृति, परिच्छेद्यं च-मत्स्यक्षतो निक-
 षादिपरीक्षणं यद्दीयते, यथा-मणिमुक्ता-प्रवालाऽऽभरणादि, मन्त्री-रहस्य-
 कार्यकारी स एव महान् महामन्त्री, गणकाः ज्यौतिषवेत्तारः, दौवारिकाः-द्वारि-
 नियुक्ताः द्वारपालाः, अमात्याः राज्याधिष्ठायकाः सहवासिगणपुरुषविशेराः,
 चेटाः-चरणसेवकाः किङ्कराः पीठमर्हा-राजसमीपस्थाऽनो राजस्यम्काः
 सेवकविशेषाः, नगरेति नागरा नगरनिवासिनो जनाः, निगमाः-व्यापारिगणः,

केवल वज्रराशि के जो स्वामी होते है वे उत्कृष्ट इन्ध हैं. लक्ष्मी की
 जिनपर पुरो रकृपा है, और इसी कृपा के कारण जिनके लाखों
 खजाने हों, तथा जिनके मस्तक पर उन्हीं को सूचित करनेवाला चान्दी
 का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो ऐसे नगर के प्रधानव्यापारी
 श्रेष्ठी कहलाते हैं । चतुरङ्गसेना के नायक जो होते हैं वे सेनापति हैं, जो
 गणिम-गिनकर खरीदने वे चने योग्य नारियल, सुपारी केला आदि मेय-शराब
 आदि से नापकर खरीदने वे चने योग्य दूध, घी, तेल, आदि वस्तुओं को तथा
 परिच्छेद्य-कसौटी आदि पर परीक्षा करके खरीदने वे चने योग्य मणि,
 मोती, मूंगा, गहना आदि वस्तुओं को लेकर लाम के लिये देशान्तर में जाने

परिमित वज्रराशिना जे स्वामी होय छे ते उत्कृष्ट धन्य छे. जेनी उपर लक्ष्मीनी
 पूर्व कृपा छे अने ओधी जे जेभनी पासे लाजोना बांउर बरेला छे तेभज जेभना
 मस्तक पर तेभने जे सुयवतो यादीनेो विलक्षण यह शोभायमान धध रधो होय
 जेवा नगरना प्रधान व्यापारी श्रेष्ठी कहेवाय छे. जे चतुरंग सेनाना नायक होय
 छे ते सेनापति छे जे गणिम-गण्डीने वेपार करवा योज्य नारियल, सोपागि देवा
 वगेरे वस्तुओने गण्डीम कहे छे मेय-शरावा वगेरे नाना वस्तु वगेरेधी भापीने वेपार करवा
 योज्य दूध, घी, तेल वगेरे वस्तुओने मेय कहेछे तेभज परिच्छेद्य कसौटी वगेरे पर परीक्षण
 करीने वेपार करवा योज्य मणि, मोती प्रवाल. आभूषणो वगेरे वस्तुओने साथे

કૂતા:-વાર્તાહારિણો જનાઃ, સન્ધિપાલાઃ-રાજ્યસન્ધિરક્ષકાઃ, एतैः अनेक
गणनायकादिभिः साद् संपरिवृतः-परिवेष्टितः विहरामि-तिष्ठामि । ततः-
तदनन्तरम् तस्मिन् काले नगरगुप्तिकाः-नगररक्षकाः, मम समक्ष सशोडं-
भोरितवस्तुसहितम् । सप्रैवेयकम्-ग्रीवाबद्धचोरितवस्तुकम् अवकोटकबन्धन-
बद्धम्-अवकोटकेन-ग्रीवायाः पश्चाद्भागे मोटनेन यत्तया सह हस्तयोर्बन्धनं,
तद्वकोटकबन्धनं, तेन बद्धं चौरम् उपनयन्ति-ममसमीपे आनयन्ति, ततः

વા સાર્ય કો છે જાતે હૈ', તથા યોગ નહીં વસ્તુકી પ્રાપ્તિ ઓર ક્ષેમ-પ્રાપ્તવસ્તુ કી
રક્ષા કે દ્વારા ઉનકા પાલન કરતે હૈ, અનાથ કી મલાઈ કે લિયે ઉન્હે પૂંજી વેકર
વ્યાપારદ્વારા ધનવાન બનાતે હૈ વહ સાર્યવાહ હૈ. રાજાકે લિયે ઉચિતમ ત્ર સલાહ
વેનેવાળે કા નામ મંત્રી હૈ ઇન મંત્રીયોં કે ઉપર જો મંત્રી હોતા હૈ વહ મહામંત્રી હૈ,
વ્યોત્તિ । કે વેસા કા નામ ગણક હૈ. દ્વાર પર રક્ષા કે નિમિસ્ત
નિયુક્ત હુપ વ્યક્તિ કા નામ દ્વારપાલ હૈ, રાજ્ય કે અધિષ્ઠાયક સહ-
વાસિરાજપુરુષવિશેષ કા નામ અમાત્ય હૈ. ચરણ સેવક કા નામ ચેટ
હૈ, રાજા કી ઉમર કે ચરાચર જો વ્યક્તિ રાજા કે હી પાસ રહતે હૈ
એસે સેવક વિશેષ કા નામ પીઠમર્દ હૈ, નગરનિવાસી જનતા કા નામ
નાગરિક હૈ. વ્યાપારિગણ કા નામ નિગમ હૈ. સન્દેશ ઇર કા નામ દૂત
હૈ. રાજ્યસન્ધિકે રક્ષક કા નામ સન્ધિપાલ હૈ. ગ્રીવા કે પશ્ચાદ્ભાગ મેં
મોટને સે જો ઉસી ગ્રીવા કે સાથ ઢોનોં હાથોં કા બંધના મિસ બંધન
મેં હોતા હૈ ઉસ બંધન કા નામ અવકોટક બંધન હૈ । પ્રદેશી રાજાં કે

હાથને હાથ માટે દેશાંતરમા જનાર સાર્યને હાથ જાય છે તેમજ યોગ-નવી વસ્તુની
પ્રાપ્તિ અને ક્ષેમ પ્રાપ્ત વસ્તુની રક્ષા વડે તેમજ પાલન કરે છે ગરીબ માણસોના હાથ
માટે તેમને દ્રવ્ય આપીને વેપારવડે તેમને ધનવાન બનાવે છે તે સાર્યવાહ કહેવાય
છે. રાજાને જે યોગ્ય મંત્ર-સલાહ આપે છે તે મંત્રી છે. આ મંત્રિઓની ઉપર જે
મંત્રી હોય છે તે મહામંત્રી છે. ન્યોતિષ્યાઅને બહુનાર ગણક કહેવાય છે. દ્વાર પર
રક્ષા માટે નિયુક્ત કરેલ માણસને દ્વારપાલ કહે છે. રાજ્યના અધિષ્ઠાપક સહવાસિ
રાજપુરુષ વિશેષજ્ઞ નામ અમાત્ય છે. ચરણ સેવકજ્ઞ નામ ચેટ છે. રાજાની ઉમરની
જ જે વ્યક્તિ રાજાની પાસે રહે છે એવી સેવક વિશેષ વ્યક્તિજ્ઞ નામ પીઠમર્દ
છે. નગર નિવાસી જનતા નાગરિક કહેવાય છે. વેપારી ગણજ્ઞ નામ નિગમ છે.
છે સંદેશકરજ્ઞ નામ દૂત છે. રાજ્યસંધિના રક્ષકજ્ઞ નામ સંધિપાલ છે શ્રીવાને
પાછળની તરફ વાળવાથી તે શ્રીવાની સાથે બન્ને હાથો જે બંધનથી બાંધવામા આવે
છે તે બંધનજ્ઞ નામ અવકોટક બંધન છે. પ્રદેશી રાજાજ્ઞ કહેવું આ પ્રમાણે છે

खलु अहं तं पुरुषं जीवन्तमेव अयस्कुम्भ्यां लोहकोष्ठिकायां पक्षेपयामि, तामयस्कुम्भीम् अयोमयेन-लोहमयेन पिधानेन-आच्छादनेन पिधापयामि-आच्छादयामि, तामयस्कुम्भीं च-पुनः अयसा-द्रवीभूतलोहेन च-पुनःप्रपुणा प्रपुद्रवेण अङ्कयामि-अङ्कितां करोमि-मुद्रितां करोमीत्यर्थः । तामयस्कुम्भीम्-आत्मप्रत्ययिकैः-निजविश्वासपात्रैः पुरुषैः रक्षयामि-रक्षितां कारयामि, ततः-तदनन्तरम्, अहम् अन्यदा कदाचित्-अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्काळे यत्रैव चोर-युक्ता अयस्कुम्भी तत्रैव-उपागच्छामि, उपागम्य-तामयस्कुम्भोम् 'उगल-स्थाबेमि' चि उत्क्षेपयामि उद्घाटयामि, अत्र-उत्पूर्वकम्य क्षिपूधातो गल-त्यादेशेन रूपसिद्धिर्बोध्याः । " हैम० । ८।४।१४३। " उत्क्षेप्य-उद्घाटय-तत्रस्थितं तं पुरुषं-चोरं स्वयमेव पश्यामि, नैव खलु तस्यां अयस् भ्यां किञ्चित्-किमपि छिद्रमिति वा विवरं-विलम् इति वा अन्तरम्-भवकाशः इति वा राजिः-लेखा इति वा आसीत्, यतः-यस्मात् छिद्रादितः स जीवः चोरपुरुषजीवः अन्तः-अयस्कुम्भ्या अन्तरप्रदेशात् बहिः-बहिः प्रदेशे निर्गतः निस्ततो भवितुमर्हेत्, हे मदन्त ! यदि-चेत् खलु तस्या अयस्कुम्भ्याः किञ्चित् छिद्रं यावत्-यावत्पदेन-"विवरम्, अन्तरम्, राजिः" इत्येषां सङ्गो बोध्यः एवं च छिद्रादि भवेत्-स्यात् यतः-यस्मात् छिद्रादितः ख-स जीवः अन्तः अयस्कुम्भीम-पात् बहिर्निर्गतः स्यात्, तदा-अयस्कुम्भीम-ध्यत-स्तचोरजीवनिस्सरणे सति खलु अहं श्रद्धया तत्र वचने विश्वस्याम्, पत्नीयां-विशेषतो विश्वस्याम्. रोचयेय रुचिचिपयं कृपाम्, यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् नो तत् जीवः स शरीरम् । यस्मात्-कारणात् खलु मदन्त ! तस्याः

कहने का अभिप्राय ऐसा है कि जब चोर को पूर्वोक्त रूप से बांधकर छोड़े की कोठी में बन्द कर दिया गया और छोड़े को गलाकर तथा राग को गलाकर उसके ढकन सहित मुख को इस तरह से बन्द कर दिया गया कि उसमें थोड़ा सा भी छिन्न आदि न रहा । तब ऐसी स्थिति में वह चोर उसमें मर गया. इस पर ऐसा विचार उस प्रदेशी राजा को हुआ कि यदि जीव और शरीर भिन्न २ हैं तो उस कोठी में छिन्न आदि के अभाव से उसका जीव उसमें से कहां से होकर निकला,

न्याये चारने पूर्वोक्त रीते आधीने दोष ठना नणाभा अंध ढरवाभा आन्धे अने दोष ठने पीगणाधीने तेभन शग्ने पीगणाधीने ते ढाक्या सद्धित भुपने ज्येवा प्रक्षारे अंध ढरवाभा आन्धुं छे तेमां नराज्ये छिद्र वगेरे रक्षु नदि. त्यारे ज्येवी परिस्थितिमा ते चार तेमां भरषु पाभ्ये. ज्येने सधने ते प्रदेशी राजने आ भावने

अवस्कम्भ्याः नास्त, काश्चन् छिद्र वा यान् राजेवो, यनः स जीवो-
 ऽन्तः-मध्याद् बहिर्निर्गतः स्यात् तस्मात् कारणात् छिद्रादिविरहेण निःसर्तु-
 मशक्तत्वात् मे-मम प्रतिज्ञा मन्तव्यरूपा सुप्रतिष्ठिता-सृष्टु समवस्थिता न
 तु स्वच्छिता यया तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् ॥सू. १३५॥

मूषम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएस्सि रायं एव वयासी-

नामए कूडागारसाला सिधा दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा
 णिव गंभीरा, अह णं केइ पुरिसे भेरि च दंडं च गहाय कूडागार-
 णि अंतो अंतो अणुप्पविसइ तीसे कूडागारसालाए सव्वओ
 मं घणणिचियनिरंतराणेच्छिद्धाइं दुवारवयणाइ पिहेइ, तीसे
 कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए ठिच्चातं भेरि दंडएणं महया
 या सदेणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सदे णं अंतोहितो बहिया
 णि च्छइ ? हंता णिग्गच्छइ, अत्थि णं पएसी ! तीसे कूडागार-
 णि केइ छिदे वा जाव राई वा जओ णं से सदे अतोहितो
 बहिया णिग्गए ? नो इणट्टे समट्टे, एवामेव पएसी ! जीवे वि
 पडिहयगई पुढवि भिच्चा सिलं भिच्चाअतोहि तो बहिया णिग्गच्छइ,
 तं णि णं तुमं पएसी अणो जीवो अणं सरीरं, नो तं
 जीवो तं सरीरं ३ ॥सू. १३६॥

अतः निकलने के अभाव यही प्रतीत होता है कि जीव शरीर से भिन्न
 २ नहीं है जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ॥सू. १३५॥

विचार थये के जे एव अनेशरीर जुहा जुहा ते होय तो नणाभा छिद्र वगेरे न
 होवाथी तेना एव तेमाथी कथां थएने नीकएथे ? नीकणी न शकवाने दीधे आ वात
 स्थित रीते ज्ञाय छे के एव शरीरथी भिन्न नथी. जे एव छे तेज शरीर छे
 अने जे शरीर छे तेज एव छे ॥ सू. १३५ ॥

ज्ञान—ततःखलु केशी कुमारश्रमणः प्रजापतं राजानमेवमवादीत् -
सा यथानामरु कूटाकारशाला स्यात् द्विधातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारा निवात-
गंभीरा, अथ खलु कश्चिन् पुरुषः भेरीं च दंढं च गृह्यत्वा कूटाऽऽकार-
शालायामन्तरन्तः अनुप्रविशति तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः सर्वतः समन्तात्
घननिचितनिरन्तरनिश्चिद्राशि द्वारवदनानि पिद्व्यति, तस्याः कूटाऽऽकार-

‘तएणं केशी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमार श्रमणने
(परसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कटा (से जहा नामए कूडागा-
रशाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता गुप्त दुवारा निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन
। जैसे कोई एक कूटाकारशाला हो पर्वत की शिखर जैसी आकृति-
वाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार
प्रदेशवालीहो, निवात गंभीर हो वायुहित होगी हुई गंभीर अन्तः प्रदेशवाली हो
(अहणं केशपुरिसे भेरिं च दंढं च गहाय कूडागारशालाए अतो अणुप्पविसइ)
अथ कोई पुरुष भेरी और दंढे को लेकर उस कूटाकारशालाके भीतर घुस
जाता है, (तीसेकूडागारशालाए सब्बओ समंता घणनिचियनिरंतरणिच्छिड्ड्ढाईं
दुवारवयणाइ पिहेइ) और घुसकर वह उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस
तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके किगाड आपस में बिलकुल सट
जाते हैं थोडा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है. छिद्र उनके घन्द हो जाते हैं,

‘तएणं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) त्याः पथी केशी कुमार श्रमणे
(परसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभाषे कथु (से जहा नामए
कूडागारशाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता-गुप्तदुवारा निवायगंभीरा)
हे प्रदेशिन । जेम केठं ज्येक कूटाकारशाला होय पर्वतना आकार जेपुं बनन होय
अने ते अहार अने अंदरना भागभा आच्छादित द्वार प्रदेशयुक्त होय, निवात
गंभीर होय—पवन रहित तेमज गंभीर अत प्रदेश युक्त होय, (अहणं केश
पुरिसे भेरिं च दंढं च गहाय कूडागारशालाए अतो अणुप्पविसइ) हुवे
केठं पुरुष भेरी अने दंढने लधने ते कूटाकार शालाभा पेसी लय छे (तीसे कूडा-
गारशालाए सब्बओ समंता घणनिचियनिरंतरणिच्छिड्ड्ढाईं दुवारवयणाइं
पिहेइ) अने पेसीने ते अथा दारनेने आ प्रभाषे अथ करी ले छे के ज्येथी तेमना
भावधाना कभाओ ज्येकहम अडीने अथ थरुं लय छे तेमनी वग्गे थोडुं पथु अना

शालायाः बहुमध्यदेशभागे स्थित्वा ता मेरीं दण्डकेन महता महता
 शब्देन ताडयेत्, अथ नूनं प्रदेशिन् । स शब्दः खलु अन्तः बहिर्निर्गच्छति ?
 इन्त निर्गच्छति । अस्ति खलु प्रदेशिन् ! तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः
 किञ्चित् छिद्रं वा यावत् राजिर्वा यतः खलु स शब्दोऽन्तर्बहिर्निर्गतः ?
 नाद्यमर्थः समर्थः, एवमेव प्रदेशिन् जीवोऽपि अप्रतिहृतगतिः पृथिवीं भित्त्वा
 शैलं भित्त्वा अन्तर्बहिर्निर्गच्छति तत् भ्रूद्वेदि खलु एव प्रदेशिन् ! अन्यो
 जीवः अन्यच्छरीरं, नो तज्जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३६ ॥

टीका—‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि—ततः खलु केशी
 कुमारश्रमणः एवमवादीत्—तद् यथा नामक=यथा दृष्टान्तम्=एतद्विषये
 दृष्टान्त प्रदर्शयति, काचित् कूटाऽऽकारशाला—पर्वतशिखराकृतिकमवनम् स्यात्
 भवेत्, सा च द्विधातः—अन्तर्बहिःप्रदेशयोः गुप्ता आच्छादिता, गुप्तद्वारा—
 आच्छादितद्वारप्रदेशा निवातगम्भीरा निवाता पवनरहिता सतो गम्भीरा-
 गम्भीरान्तःप्रदेशा स्यात् । अथ खलु तस्याः कूटाकारशालायाः अन्तरन्तः-

है, (तीसे कूडागारसालाए बहुमज्जदेसभाए ठिच्चा तं मेरिं दंडएणं महया
 २ सहेणं ताळेज्जा) इस तरह से करके अब उस कूटाकार शालाके बिछ-
 कुल मध्यभागमें खडा होकर उस मेरीं को जोर २ से उस डंडे से इस
 ढंग से बजाता है कि जिससे उसमें से बहुत ही अधिक जोर की उंची
 अ वाज निकले (सेणुणं पपसी से सहे अंतोहितो बहिया निग्गच्छइ) अब
 प्रदेशिन् ! यह कहो वह उसका शब्द जो कि दण्डाघात से उत्पन्न हुआ
 है उस कूटाकारशाला के मध्य प्रदेश से बाहर निकलता है या नहि ?
 (हता, णिग्गच्छइ) हा, अदन्त ! बाहर निकलता है । (अत्थिणं पपसी !
 तीसे कूडागारसालाए केइछिदेवा जाव राई वा जओणं से सद् अंतोहितो
 बहिया णिग्गए) तो हे प्रदेशिन् ! विचारो उस कूटाकारशालामें न

रहेती नथी तेभना अधा छिन्ट्रो अंठ थध नथ छे. (तीसे कूडागारसालाए बहु-
 मज्जदेसभाए ठिच्चा तं मेरीं दंडएणं मसया महया सहेणं ताळेज्जा)
 आ प्रभाण्णे करंने ते कूटाकारशालाना अेकहम मध्यभागमा ते उच्चो थधने ते वेरीने
 ते इअथी आ आ प्रभाण्णे वण्ठे छे के तेमाथी अहु अ भयकर शब्द नीकणे
 (से तेणं पपसी से सहे अंतोहितो बहिया निग्गच्छइ ?) इवे प्रदेशिन् ! तमे भने
 क्खो छे ते वेरीमाथी उत्पन्न थतो शब्द ते कूटाकार शालाना मध्य प्रदेशमाथी अहार नीकणे
 छे (हताणिग्गच्छइ) हे अह व अहार नीकणे छे (अत्थिणं पपसी) तीसे कूडागारसालाए
 केइछिदे वा जाव वा जओ णं सहे अंतो बहिया णिग्गए) ते हे प्रदेशिन् ! तमे विचार

अधन्तमध्यपदेशे कश्चिद् कोऽपि पुरुषः भेरीं च पुनः दण्डं गृहीत्वा अनुपवि-
 षति, स प्रविष्टः पुरुषः तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः-तत्कूटाकारशाला-
 सम्बन्धीनि घननिचितनिरन्तरनिश्चिद्राणि-घनानि निश्चिदानि निश्चितानि-अत्य-
 न्तमिच्छितानि अत एव निरन्तराणि-अन्तररहितानि च-पुनः निश्चिद्राणि-
 छिद्ररहितानि द्वारवद्वनानि-द्वारमुखानि सर्वतः-सर्वदिक्षु समन्तात्-
 सर्वं विदिक्षु पिश्याति-आच्छादयति, तस्याः पिहितायाः कूटाकारशालायाः बहु
 मध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यदेशभागे. स्थित्वा स पुरुषः ता भेरीं दण्डकेन
 महता महता शब्देन यथा अत्युच्चः शब्दः समुत्पद्येत तथेत्यर्थः ताडयेत्-अथः
 पूनं हे प्रदेशिन् ! सः-दण्डाघातजनितः शब्दः भेरीशब्दः अन्तः-मध्य
 पदेशात् बहिः-बहिःप्रदेशे निर्गच्छति ?-निस्सरति ? इति प्रश्नः । प्रदेशी माह
 -इन्त ! इति स्वीकारे हे भदन्त ! निर्गच्छति-केशीकुमारश्रमणः कथयति
 हे प्रदेशिन् ! तस्याः-कूटाऽऽकारशालाया किञ्चित् छिद्रं वा यावत् त्रिवरं वा
 अन्तरं वा राशिर्वा अस्ति यतः यस्मात् स शब्दः अन्तः कूटाकारशालाऽ
 भ्यन्तरप्रदेशाद् बहिर्निगतानिस्ततः स्यात् ? । इति केशिना पृष्टे प्रदेशी माह-
 नायमर्थः समर्थः छिद्रादि रूपोऽयंस्तत्र न युज्यते सर्वथाऽऽवृत्तत्वात् । पुनरपि
 केशीमाह-हे प्रदेशिन् ! एवमेव-एतद्दृष्टान्तनुसारेणैव अप्रतिहतगतिः-अंकु-
 षितगतितः जीवोऽपि पृथिवीं भिक्षां शिलां-प्रस्तरं भिक्षां पर्वतं भित्त्वा अन्तः
 मध्यपदेशात् बहिर्निर्गच्छति, तत्-तस्मात्-उक्तदृष्टान्तेन हे प्रदेशिन् !
 त्वं अदेहि-मद्वचने भद्रां कुरु अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो स जीवः
 तच्छरीरम् ॥ सू० १३६ ॥

कोई छिद्र है, यावत् न कोई रेखा है कि जिससे होकर वह शब्द उसमें
 से बाहर निकला हो ? (णो इण्डे समेटे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ
 नहीं . अर्थात् वहां पर कोई छिद्रादि नहीं है. (एवामेव परसी ! जीवै-
 पक्षिहयगई पुडियि भिक्षा, सीलं मिच्चा अतोहितो बहिया गिगच्छह)
 हे प्रकार हे प्रदेशिन् ! जीव भी अप्रतिहत गतिवाला है अतः वह पृथिवी
 को मेद करके, शिला को मेद करके उसके भीतर से होकर
 हर निकल जाता है। (तं सर्वदाहि णं तुमं परसी ! अणो

केशे हे ते कूटागार शालामा केध छिद्रं नथी यावत् केध रेखा (तराड) पथु नथी हे
 येभनथी ते शब्द तेमांथी अहार नीकणतो होय ? (णो इण्डे समेटे) हे भदन्त !
 आ अर्थ समर्थ नथी अेटवे हे तेमा केध छिद्रं वगेरे नथी. (एवामेव परसी
 ! जीवै वि अप्पडिहयगई, पुडियिमिच्चा, सीलं मिच्चा, अतोहितो बहिया
 गिगगच्छह) आ प्रमात्ते हे प्रदेशिन् ! एव पथु अप्रतिहत गति युक्त छे ज्येथी
 ते पृथिवीत् वेहन करीने, शिलात् वेहन करीने, तेनी अंहर थधने अहार नीकणी
 अथ छे. (तं सर्वदाहि णं तुमं परसी ! अणो जीवो अण्णं शरीरं णो तं जीवो

मूल—तए णं पएसी राया केसिकुभारसमणं एव वयासी अत्थिणं भत्ते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेणं णो उवागच्छइ, एवं खलु भंते । अहं अन्नया कयाइ वाहिरियाए उवट्टाणसालाए जाव विहरामि, तएणं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव उवणेति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेत्ता अउकुंभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि जाव आयपच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि, तएणं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा अउकुंभी, तेणेव उवागच्छामि, तं अउकुंभि उगलत्थावेमि, तं अउकुंभि किमिकुंभिपिव पासामि, णोचेवणं तीमे अउकुभीए केइछिड्डे वा जोव राईइ वा जओ णं ते जीवा वहिवाहितो अणुप्पविट्ठा, जइ णं तीसे अउकुभीए होज्जा केइ छिड्डेइ वा जोव अणुप्पविट्ठा, तो णं अह सइहेज्जा, जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं तीसे अउकुभीए नत्थि केइ छिड्डेइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुट्ठइट्ठिआ मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं तं चेव ॥ सू० १३७ ॥

छाया—ततःखलु प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणमेवमवादीत् अस्ति खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनःकारणेन नो उपागच्छति), जीवो अणं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं अतः हे प्रदेशिन ! तुम विद्दीस करो जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ को लेकर ही यह मूलार्थ लिखा है. भावार्थ इसका केवल यही है कि जिस प्रकार शब्द अप्रतिहतगतिवाला है उसी प्रकार से जीव भी अप्रतिहतगतिवाला है अतः वह किसी भी स्थितिमें प्रतिहतगति वाला नहीं हो सकता है ॥ सू० १३६ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशो राजाने (केसी तं सरीरं) अथी हे प्रदेशिन ! तमे विद्दीस करो हे एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे एव शरीर रूप नहीं अने शरीर एव रूप नहीं

टीकार्थ—ते लक्ष्यमा राणीने न आ भूषार्थं लभयामा आबो छे आनो भावार्थं आ प्रभाषे छे हे नेम शब्द अप्रतिहत गति युक्त होय छे अथी ते गमे ते स्थितिमा पक्ष प्रतिहत गतियुक्त थरुं शके नहि ॥ सू. १३६ ॥

‘त एणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्पार पछी (पएसी राया) देशी कुभार श्रमणने आ प्रभाषे

एवं खलु भदन्त ! अहमन्यदा कदाचित् बाह्यायाम् उपस्थानशालाया यावत्
 विहरामि, ततः खलु मम नगर गृप्तिकाः ममाक्षयं यावद् उपनयन्ति ततः
 खलु अहं तं पुरुषं जीविताद् व्यपरोपयामि, वरपरोप्य अगस्कृम्भ्यां प्रक्षे-
 पयापि अयोमयेन पिधानकेन पिधापामि यावत् आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः
 रक्षयामि, ततः खलु अहं अन्यदा कदाचिन् यत्रैव मा अगस्कृम्भी तत्रैव

मारसमणं एवं वयामी) केशीकुमारश्चमण से ऐ । कथा-(अस्थि णं
 मंते ! एसा पण्णाभो उवमा) हे भदन्त ! यह आपकू द्वारा कही गई
 उवमा-(दृष्टान्त) बुद्धिविशेष रूप है (इमेण पुण वारणेणं णो उ०) किन्तु इस
 वक्ष्यमाण कारण से मेरे मनमें जीव और शरीर का भेद नहीं आता
 है-युक्तयुक्त मत्तो नही होता है । इसी बात को अब प्रदेशी राजा प्रकट करता
 है -(एवं खलु मने ! अहं अननया कयाहं बाहिरियाए उवद्वाणसालाए जाव
 विहरामि) हे भदन्त ! मैं एक दिन बाहर की उपस्थान शाला में यावत् बैठा
 हुआ था (तएणं ममं णगरगुल्लिया मसक्खं जाव उवणेति) उम मेरे नगर
 रक्षकोंने साक्षिमहित यावत् एक चोर को उपस्थित किया (तएणं अहं
 तं पुरिसं जी व्वेगमा ववरोवेमि) मैंने उन चोर को प्राणरहित कर दिया
 (ववरोवेमा अउकुंभीए पक्खि ववावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)
 मागरहित करके फिर मैंने उसे अगस्कृंमी (नोहेती कोठी) में अपने पुरुषों
 से छुड़ा दिया (जाव आयपक्खइएहि पुरिसेहि रक्खवावेमि) यावत् फिर मैंने
 अपने आत्मरक्षक पुरुषों का वहां पहरा नियुक्त कर दिया. (तएणं अहं

अहं—(अस्थि णं मंते ! एसा पण्णाभो उवमा) हे भदन्त ! आ तमाश वडे
 प्रमुक्त उपमा (दृष्टान्त) बुद्धि विशेष रूप है. (इमेण पुण कारणेणं णो उ०)
 अनाथी भाश मनमां एव अने शरीरनी किन्ततानो विशार उपन्न थये नथी
 मने आ वात बुद्धितत्त पक्ख लागी नहि अत्र वात हुवे प्र थी राज आ प्रभावे
 प्रकट करे छ (एवं खलु मंते ! अहं अननया कयाहं बाहिरियाए उ-द्वाण
 सालाए जाव विहरामि) हे भदन्त ! हुं अत्र द्विच भद्राशनी उपस्थान शालाभं
 बैठे हुतो. (तए णं ममं णगरगुल्लिया मसक्खं जाव उवणेति) भास
 नगर रक्षकै अत्र साक्षित अहित यावत् अत्र धारने भारी स भे उपस्थित
 थ्यो (तए णं अहं तं पुरिसं जीवितामो ववरोवेमि) भे ते धारने भारी नाथ्यो.
 (ववरोवेमा अउकुंभीए पक्खि ववावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि)
 भारीने तेने भे दोषकना नयाभां पोताना भाष्यो नभावी वीधा (जाव
 आय इएहि पुरिसेहि रक्खवावेमि) यावत् पछी भे त्या आत्मरक्षक पुत्रुवेने

उपागच्छामि तामयस्कृम्भीमुत्क्षेपयामि, तामयस्कृम्भी कृमिकुर्मिभिव पश्यामि
 नैव खलु तस्याः कुम्भ्याः किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् राजिरिति वा यतः
 खलु ते जीवा बाह्याद अनुप्रविष्टाः, यदि खलु तस्याः अयस्कृम्भ्याः
 भवेत् किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः तदाऽहं श्रद्धयां यथा
 -अन्यो जीवः तदेव, यस्मात् खलु तस्या अयस्कृम्भ्याः नास्ति किमपि

अन्नया कयाहं जेणेव सा अउकु मी तेणेव उवागच्छामि) कुछ दिनों के
 बाद फिर मैं उस अयस्कृमी के पास गया (तं अयकुंमि उगगलत्थावेमि)
 उस अयस्कृमी को उधाडा (तं अउकुंमि किमिकुर्मिपिव पासामि, णो
 चैव णं तीसे अउकुंभीए केइ छिड्डेइ वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा
 बहियाहितो अणुप्पविट्ठा) उधाडते ही मैंने उसमें देखा कि वहां उस अय-
 स्कृमी में कृमिकुर्मों को देखा कि जिससे वह अयस्कृमी कीटमयी हो
 रही थी. अब विचारने की बात यहां ऐसी है कि जब उस अयस्कृमी
 में न कोई छिद्र था यावत् न कोई रेखा ही थी, कि जिससे होकर वे
 जीव उसमें बाहिर से आये (जइणं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डेइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा) यदि उसमें कोई छिन्द्रादि होता तो यह बात मान ली
 जाती कि वे उनमें होकर उसमें प्रविष्ट हो गये हैं (तो णं अहं
 सह हेउज्जा-जहा-अन्नो जीवो तं चैव, जण्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि
 केइ छिड्डेइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं जीवो

गोऽन्वी दीधाः (तए णं अहं अन्नया कयाहं जेणेव सा अउकु मी तेणेव
 उवागच्छामि) थोडा दिवसे आठ हु इरी ते बोअ'उना नणानी पासे गये
 (तं अयकुंमि उगगलत्थावेमि) ते बोअ'उना नणाने उधाडथे (तं
 अयकुंमि किमिकुर्मि पिव पासामि, णो चैव णं तीसे अउकुंभीए
 केइ छिड्डेइ वा, जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा बहियाहितो अणुप्पविट्ठा)
 उदधाटित करतनी साथे ज मे' ते बोअ'उना नणाभां कृमिकुर्मोने नेथा-ते नणे
 कीटयुक्त थथ गथे हुतो हुवे आ वात विचार करवा योग्य छे के न्यारे नणाभा
 केअ पषु छिन्द्र यावत् केअ पषु रेथा (तराड) नहोती के नेथी ते एवे अहास्थी
 तेभा प्रविष्ट थथ थके (जइण तीसे आउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डेइ वा जाव
 अणुप्पविट्ठा) ने तेभां छिद्र वजेरे होत तो आवी वात मानवामा पषु आवी
 थके तेभा थधने ते नणाभा कृमियो प्रविष्ट थथा छे. (तो णं अहं सहहेउज्जा-जहा
 -अन्नो जीवो तं चैव, जण्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिड्डेइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं सरिरं

छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा तद्वीर्यः स शरीरं तदेव ॥ सू० १३७ ॥

‘तए णं पपसी राया’ इत्यादि—

टीका—ततः खलु प्रदेशी राजा पुनः केशिकुमारश्रमणम् एव भवादीत् हे भदन्त ! एषा-भवदुक्ता उपमा=दृष्टान्तः प्रज्ञानः=बुद्धिविशेषात्, बुद्धिविशेषजन्या अस्ति, किन्तु अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन मे-मम मनसि जीवशरीरयो भेदः नोपागच्छति न संगच्छते युक्तियुक्तो नो प्रतिभातीत्यर्थः । तदेव दर्शयति-हे भदन्त ! एवम्-इत्थं खलु अहम् अन्यदा कदाचित्-अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्काले बाह्यायाम् उपस्थानशालायां यावत्-यावत्पदेन-अनेकगणनायकादिभिः सार्द्धं संपरिवृतो विहरामि, ततः तदा खलु मम नगरगुप्तिकाः-नगररक्षकाः-ससाक्षिकं-साक्षिसहितम्, यावत्-यावत्पदेन-सहोढादिविशेषणविशिष्टं चोरम् उपनयन्ति-उपस्थापयन्ति, ततः खलु अहं तं-पूर्वोक्तं चोरं जीवितात् व्यपरोपयामि-माणरहितं करोमि, व्यपरोप्य मारयित्वा अयस्कुम्भ्यां प्रक्षेपयामि-स्वपुरुषैर्निघापयामि, प्रक्षेपितचोरां तामयस्कुम्भीम् अयोमयेन-लोहमयेन पिधानेन पिधापयामि-आच्छादयामि, यावत् यावत्पदेन-अयसा च त्रपुणा च अङ्कयामि, आत्मप्रत्ययिकैः-स्ववित्तं शरीरं चैत्र) और इसी कारण मैं भी यह श्रद्धा करता हूँ कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । जिस कारण से उस अयस्कु भी मैं कोई छिद्र आदि नहीं थे. फिर भी उसमें जीव आ गये तो इस कारण से मैं तो यही विश्वास करता हूँ कि मेरा कथन कि जीव शरीर रूप है और शरीर जीवरूप है सुप्रतिष्ठित है ।

टीकार्थ इस मूलार्थ के जैसा ही है. यहां ‘उवट्टाणसालाप जाव’ के इस यावत् पद से पूर्वोक्त अनेक गणनायक आदिकों का ग्रहण हुआ है । तथा ‘ससक्खं जाव’ के इस यावत्पद से सहोढादिविशेषणों का ग्रहण

चैव) अने ओधी न भने पद्य आ वातमां करी श्रद्धा छे के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे. ने कारण्थी ते दोषउना नणाभां छिद्र वगेरे नहोता छतांओ तेमा एवो प्रवेश पाग्था ते कारण्थी भने तो ओ न लागे छे के एव शरीर रूप छे. अने शरीर एव रूप छे. ओ कथन पर भाशे सपूर्णपणे विश्वास सुप्रतिष्ठित छे.

आ सूत्रने टीकार्थ मूलार्थ प्रभाषे न छे. अही ‘उवट्टाणसालाप जाव’ ना आ ‘यावत्’ पदथी पूर्वोक्त अनेक गणनायक वगेरेहुं अरुथु थयुं छे. तथा ‘ससक्खं जाव’ ना आ यावत्पदथी सहोढादि विशेषणहुं अरुथु थयुं छे. ‘पिहा-

उपागच्छामि तामयस्कृम्भीघृत्क्षेपयामि, तामयस्कृम्भी कृमिकुम्भीमिव पश्यामि
 नैव खलु तस्याः कुम्भ्याः किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् राजिरिति वा यतः
 खलु ते जीवा बाह्याद् अनुप्रविष्टाः, यदि खलु तस्याः अयस्कृम्भ्याः
 भवेत् किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः तदाऽहं श्रद्धया यथा
 -अन्यो जीवः तदेव, यस्मात् खलु तस्या अयस्कृम्भ्याः नास्ति किमपि

अन्नया कयाहं जेणेव सा अउकुमी तेणेव उवागच्छामि) कुछ दिनों के
 बाद फिर मैं उस अयस्कृमी के पास गया (तं अयकुंमि उगलत्यावेमि)
 उस अयस्कृमी को उधाडा (तं अउकुंमि किमिकुंमिपिव पासामि, गो
 चैव णं तीसे अउकुंभीए केइ छिङ्केइ वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा
 बहियाहितो अणुप्पविट्ठा) उधाडते ही मैंने उसमें देखा कि वहां उस अय-
 स्कृमी में कृमिकुलों को देखा कि जिससे वह अयस्कृमी कीटमयी हो
 रही थी. अब विचारने की बात यहां ऐसी है कि जब उस अयस्कृमी
 में न कोई छिद्र था यावत् न कोई देखा ही थी, कि जिससे होकर वे
 जीव उसमें बाहिर से आये (जइणं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिङ्केइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा) यदि उसमें कोई छिद्रादि होता तो यह बात मान भी
 ली जाती कि वे उनमें होकर उसमें प्रविष्ट हो गये हैं (तो णं अहं
 सब हेवजा-जहा-अन्नो जीवो तं चैव, जम्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि
 केइ छिङ्केइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं जीवो

गोऽन्वी हीधा: (तए णं अहं अन्नया कयाहं जेणेव सा अउकुंमी तेणेव
 उवागच्छामि) थोडा दिवसेो भाइ हु इरी ते दोअंउना नणानी पासे गये।
 (तं अयकुंमि उगलत्यावेमि) ते दोअंउना नणाने उधाउये। (तं
 अयकुंमि किमिकुंमि पिव पासामि, गो चैव णं तीसे अउकुंभीए
 केइ छिङ्केइ वा, जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा बहियाहितो अणुप्पविट्ठा)
 उधाटित करतानी साथे ज से ते दोअंउना नणामा कृमिकुलोने जेया-ते नणे।
 शीटयुक्त थइ गये। उतो उवे आ वात विचार करवा योग्य छे के न्यारे नणामा
 केइ पखु छिद्र यावत् केइ पखु रेभा (तराउ) नहोती के जेथी ते लोवे भहारथी
 तेमा प्रविष्ट थइ थके (जइणं तीसे आउकुंभीए होज्जा केइ छिङ्केइ वा जाव
 अणुप्पविट्ठा) जे तेमा छिद्र वजेरे होत तो आवी वात मानवामा पखु आवी
 थके तेमा थधने ते नणामा कृमिओ प्रविष्ट थया छे. (तो णं अहं सबहेज्जा-जहा
 -अन्नो जीवो त चैव, जम्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिङ्केइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं सरिरं

छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा तदजीवः स शरीरं तदेव ॥ सू० १३७ ॥

‘तए णं पपसी राया’ इत्यादि—

टीका--ततः खलु प्रदेशी राजा पुनः केशिकुमारश्रमणम् एव भवादीत् हे भदन्त ! एषा-भवद्भक्ता उपमा=दृष्टान्तः प्रज्ञानः=बुद्धिविशेषात्, बुद्धिविशेषजन्या अस्ति, किन्तु अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन मे-मम मनसि जीवशरीरयो भेदः नोपागच्छति न संगच्छते युक्तियुक्तो नो प्रतिभातीत्यर्थः । तदेव दर्शयति-हे भदन्त ! एवम्-इत्थं खलु अहम् अन्यदा कदाचित्-अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्काले बाह्यायाम् उपस्थानशालायां यावत्-यावत्पदेन-अनेकगणनायकादिभिः सार्द्धं संपरिवृतो विहरामि, ततः तदा खलु मम नगरगुप्तिकाः-नगररक्षकाः-ससाक्षिकं-साक्षिसहितम्, यावत्-यावत्पदेन-सहोढादिविशेषणविशिष्टं चोरम् उपनयन्ति-उपस्थापयन्ति, ततः खलु अहं तं-पूर्वोक्त चोरं जीवितात् व्यपरोपयामि-प्राणरहितं करोमि, व्यपरोप्य मारयित्वा अयस्कुम्भ्यां प्रक्षेपयामि-स्वपुरुषैर्निधापयामि, प्रक्षेपितचोरां तामयस्कुम्भीम् अयोमयेन-लोहमयेन पिधानेन पिधापयामि-आच्छादयामि, यावत् यावत्पदेन-अयसा च त्रपुणा च अङ्कयामि, आत्मप्रत्ययिकैः-स्ववित्तं शरीरं चेत्य) और इसी कारण मैं भी यह श्रद्धा करता हूँ कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । जिस कारण से उस अयस्कु भी मैं कोई छिद्र आदि नहीं थे. फिर भी उसमें जीव आ गये तो इस कारण से मैं तो यही विश्वास करता हूँ कि मेरा कथन कि जीव शरीर रूप है और शरीर जीवरूप है सुप्रतिष्ठित है ।

टीकार्थ इस मूलार्थ के जैसा ही है. यहां ‘उवट्टाणसालाए जाव’ के इस यावत् पद से पूर्वोक्त अनेक गणनायक आदिकों का ग्रहण हुआ है । तथा ‘ससक्खं जाव’ के इस यावत्पद से सहोढादिविशेषणों का ग्रहण

चेत्) अने ओधी ज भने पद्य आ वातमां इरी श्रद्धा छे के एव अन्य छे अने. शरीर अन्य छे. जे कारण्यथी ते बोधउना नणाभा छिद्र वगेरे नहोता छतांओ तेमा एवो प्रवेश पाभ्या ते कारण्यथी भने तो ओ ज लागे छे के एव शरीर रूप छे. अने शरीर एव रूप छे. ओ कथन पर भारो स पूर्णपणे विश्वास सुप्रतिष्ठित छे.

आ सूत्रनो टीकार्थ मूलार्थ प्रभाषे ज छे. अही ‘उवट्टाणसालाए जाव’ ना आ ‘यावत्’ पदथी पूर्वोक्त अनेक गणनायक वगेरेहुं अहस्य थयु छे. तथा ‘ससक्खं जाव’ ना आ यावत्पदथी सहोढादि विशेषणहुं अहस्य थयुं छे ‘पिहा-

શ્વામપાત્રે: પુરુષ: રક્ષણમે: તમ: ત્વન્નુ અહમ્ અન્યદા કદાચિત્ત્વ યૌવ-યસ્મિન્નેવ
 સ્થાને સા-સુરક્ષિતા અયસ્કુમ્ભી તન્નેવ-તસ્મિન્નેવ સ્થાને ઉપાગચ્છ'મિ-
 તદન્તિકં ગચ્છામિ, ગત્વા તામ્ ઉપ્લેપયામિ-ઉદ્પાટયામિ । તામયસ્કુમ્ભો' કૃમિ-
 કુમ્ભીમિવ ક્ષીટમયીમેવ-કુમ્ભી પશ્યમિ નૈવ સ્વલુ તસ્યા:- સુરક્ષિભાયા:
 અયસ્મ્યા: કિશ્ચિત્-કિમપિ છિદ્રમિમિ વા યાચત-વિચરં અન્તરમ્ રાજિ-
 વીનાત્તિ યત:-યસ્માત્-છિદ્રાદે: તે કૃમિજીવા. ઘાહ્યાત-યાહ્યાપદેશાત્ અનુ-
 પ્રવિષ્ટા:-અન્યન્તરે પ્રવિષ્ટા ભવેયુ: । યદિ-ચેત્ સ્વલુ તસ્યા:-સુરક્ષિતાયા:,
 અયસ્કુમ્ભ્યા: ભવેત્-સ્પાત્ કિઠિચત્ છિદ્રમ્ યાવદ્ વિચરાદિકં ભવેત્, યતસ્તે
 જીવા: ઘાહ્યાપદેશા અનુપ્રવિષ્ટા: સ્યુ ત. । સ્વલુ અહં શ્રદ્ધયાં-તવ વચને
 વિશ્વસ્યામ્, અન્યો જીવ: તદેવ-પૂર્વોત્તમેવ અન્યો જીવ: અન્યચ્છરીરં નો તજ્જીવ:
 સ શરીરમ્ इति । યસ્માત્-કાગ્નાત્ સ્વલુ તસ્યા:-સુરક્ષિતાયા: અય-
 સ્કુમ્ભ્યા: નાન્તિ કિઠિચત્ મિમિ છિદ્રાદિકં યતસ્તે જીવા: ઘાહ્યાપદેશાત્
 અનુપ્રવિષ્ટા: સ્યુ: તસ્માત્ મે-મમ પ્રતજ્ઞા-સ્વીકાર: સુ તિષ્ઠિના-મિથરા
 યથા--તજ્જીવ: સ શરીરં તદ્દે-પૂર્વોત્તમેવ નો અન્યો જીવોડન્યચ્છરીરમ્
 इति ॥ સૂ. ૧૩૭ ॥

સૂત્રમ—તદ્દેશં કેલીકુમારસમણે પર્ણસિ રાયં એવં વયાસી !
 સ્થિણં તુમે પર્ણસી કયાઙ્ અપ્ધંતપુઠ્વે વા ધમાવિયપુઠ્વે વા ? હં
 સ્થિ,સે ણૂણં પર્ણસી ! અપ્ધતે સમાણે સઠ્વે અગણિપરિણપ્ ભવઙ્, ?
 હં ભવઙ્, અસ્થિણં પર્ણસી ! તસ્મ અયસ્સ કેઙ્ છિદ્દેઙ્ વા જેણં સે

હુવા છે. 'પિંડાવે મે જાર' મે આયે હુણ્ ઇમ યાત્તપદ સે 'દ્રવિત્ત લોહે સે
 ઔર દ્વિતરંગ સે મૈને ઉસે અરયન્ત કાવા દિયા' ઇસ પૂર્વેક ણઠ કા અ
 યા હૈ । ઇમ સૂત્ર કા ભાવાર્થેમા હૈ કિ જલ્બ કિ ઉમ અયસ્કુમ્ભી મેં કિમ્બો
 ણી પ્રકાર વા કાઈ માં છિદ્રાદિ નહીં યા તો ઉમમેં બાહર સે જીવ
 કેસે પ્રવિષ્ટ હો ગયે, ત્યાં તો કેવલ ચોર કા હી વહ મૃત શરીર પહા
 યા અતઃ જીવ ઔર શરીર મિન્ન ૨ નહીં હૈ યહી કથન સમુચ્ચિત્ત્વ હૈ । સૂ. ૧૩૭.

વેમિ જાત્' માં આવેલ યાવત્ પદ્ધતી દ્રવિત લોખંડથી અને દ્રવિત રાગાથી એ તેને
 અંકિત કરાવી દીધા' આ પાઠ્યું અહલ્ય થયું' છે આ સુત્રનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે
 છે કે જ્યારે તે લોખંડના નળામા કોઈપણ છિદ્ર વગેરે ન હોતા છતાંએ તેમાં
 બહારથી આવે કેવી રીતે પ્રવેશ પામ્યા. ત્યાં તો ક્ષત ચોરનું મૃત શરીર
 પશ્ય હવું એથી એવ અને શરીર મિન્ન નથી, આ વાત સમુચિત છે. । સૂ. ૧૩૭

जोई बहियाहिंतो अंतो अणुप्पविट्टे ? णो इणट्टे समट्टे एवामेव पएसी ! जीवोऽवि अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा सिलंभिच्चा वहि-
याहितो अणुप्पविसइ, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! तहेव ।सू० १३८।

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
अ त खलु त्वया प्रदेशिन् ! कदाचिद् अयोध्मात्पूर्व वा ध्मापितपूर्व
वा ? इन्त अस्ति, स नूनं प्रदेशिन् ! अयोध्मातं सत् सर्वं अभिपरिणतं
भवति ? इन्त भवति, अस्ति खलु प्रदेशिन् ! तस्य अयसः किञ्चित् छिद्र-
मिति वा येन तत् ज्योतिः बाह्यात् अन्तर्गुपविष्टम् नो अयमर्थः समर्थः,

‘तए णं केसीकुमार समणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयाप्पी) केशीकुमार श्रमण ने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा (अत्थि णं मंते ! पएसी ! कयाइ अर्घंतपुठ्वे वा ध्मावियपुठ्वे वा) हे प्रदेशिन् । तुम्हारे पास ऐसा कहा है कि जिसे तुमने पहिले कभी अग्नि में तपाया हो या किन्नी से तपनाया हो ? (इंता अत्थि) हां भदन्त ! है (से णूणं पएसी अर्घंते समणे सठ्वे अगणि परिणए मवइ) तो हे प्रदेशिन् मैं तुमसे ऐसा पूछता हूँ कि वह लोहा जब अग्निमें तपाया जाता है तब वह सम्पूर्णरूपसे अग्निरूप से परिणत हो जाता है न ? (इंता ? मवइ) प्रदेशीने कहा हां हो जाता है (अत्थि णं पएसी ! तस्स अयस्स केइ छिक्खेइ वा जेणं से जोई बहियाहिंतो अंतो अणुप्पविट्टे?)

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्पार पछी (केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयाप्पी) केशीकुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कइ—(अत्थि णं मंते ! पएसी ! कयाइ अर्घंतपुठ्वे वा ध्माविय पुठ्वे वा) हे प्रदेशिन् । तमारी पास ऐबुं पखु बोअड छे नेने पहिला गये त्यारे अग्निमा छिनु क्युं कशयु होय ? (इंता अत्थि) हाँ भदत । छे. (से णूणं पएसी अर्घंते समणे सठ्वे अगणि परिणए मवइ ?) तो हे प्रदेशिन् । हु तमने आम अश्र करुं छुं छे ते बोअड न्यारे अग्नि पर तपावनामा आवे छे त्यारे ते स पूखुं पखे अग्नि रुपमा परिणत थछ नय छे (इंता मवइ) प्रदेशीके उत्तरमां कइं हा, भदंत थछ नय छे. (अहियणं पएसी ! तस्स अयस्स केइ छिक्खेइ वा जेणं से जोई बहियाहिंतो अंतो अणुप्पविट्टे ?) तो थुं हे प्रदेशिन् । ते बोअडमां छिद्र होय छे छे नेथी

एवमेव प्रदेशिना जीवोऽपि अप्रतिहतगतिः पृथिवीं भिन्वा शैलं भिन्वा बाह्यात्
अनुप्रविशति, तत् अद्वेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! तथैव ४ ॥ सू० १३८ ॥

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिन् राजानम् एवम्-वक्ष्यमाणं
वचनम् अत्रादीत् हे प्रदेशिन् ! त्वया कदाचित्-कास्मश्चित्काले अयो=लोहं
ध्मात्पूर्वं पूर्वं ध्मात्प्र=अग्निना संयोजितम् ? वा अथवा ध्मापितपूर्वं=पूर्वं
केनचित्पुरुषेण ध्मापितम् अस्ति ? इति प्रश्नः, प्रदेशीप्राह-हन्त अस्ति । केशी
पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! तद्अयः लोहं नूनं निश्चितम् ध्मात् सत् सर्वं अग्नि
परिणतम्-अग्निस्वरूपतया परिणतं भवति ? प्रदेशीप्राह-हन्त भवति ! पुन
केशीपृच्छति हे प्रदेशिन् ! तस्य अयसः-लोहस्य, किञ्चित्-छिद्रमिति वा०
छिद्रादिकम् अस्ति ? येन-कारणेन तत् ज्योतिः-अग्निः बाह्यात् बहिः-

तो क्या हे प्रदेशिन् ! उस लोहे में कोई छिद्र होता है कि जिससे होकर
वह अग्नि बाहर से उस के भीतर घुस जाती है ? प्रदेशीने कहा-
(जो इण्ठे सम्ठे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उस लोहे
में कोई भी छिद्रादिक नहीं है । (एवामेव पएसी ! जीवोऽपि अप्पच्छि-
हयगई पुढविं भिच्चा, सिलं भिच्चा, बहियाहिंतो अणुप्पविसइ, त सहहा-
हि णं तुमं पएसी तहेव) इसी तरह से हे प्रदेशिन् ! जीव भी अप्रति-
हतगतिवाला है अतः वह पृथिवी को शिला को भेदकर बहिःप्रदेश से
भीतर में घुस जाता है इस कारण हे प्रदेशिन् ! तुम मेरे वचन पर विश्वास
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । ४।

टीकार्थ स्पष्ट है. इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि जिस प्रकार छिद्रा
दिसे रहित लोहे के गोले में अग्नि बाहर से उसके प्रत्येक प्रदेश में

ते अग्नि षडारथी तेमां प्रविण्ट थधं नय छे ? प्रदेशी अये कइल (जो इण्ठे सम्ठे)
हे भदन्त ! आ अर्थ समर्थ नहीं अटले के ते लोअ उमा केअ पखु छिद्र वगेरे नहीं.
(एवामेव पएसी ! जीवोऽपि अप्पच्छिहयगई पुढविं भिच्चा बहियाहिंतो
अणुप्पविसइ, तं सहहाहि णं तुम पएसी तहेव)आ प्रभाणु हे प्रदेशिन् एव
पखु अप्रतिहत गतियुक्त डोअ छे अथी ते पृथिवीने, शिलाने छहीने षडारना
प्रदेशथी अहरना प्रदेशमा पेसी नय छे आ अरखुथी हे प्रदेशिन् । तमे
भारी वात पर निश्वास करे के एव जीन्न छे अने शरीर निन्न छे. ॥ सू ४ ॥
टीकार्थ-स्पष्ट अ आ सूत्रने भावार्थ आ प्रभाणु छे के अमे छिद्र वगेरेथी
सहित लोअ उमां अग्नि षडारथी तेना हरेके हरेक प्रदेशमा प्रविण्ट थधं नय छे

प्रदेशात् अन्तः—अपसोऽभ्यन्तरप्रदेशे अनुप्रविष्टं स्यात् ? प्रदेशो कथयति नायमर्थः समर्थः नास्ति तत्र छिद्रादिकमित्यर्थः । केशीप्राह—हे प्रदेशिन् ! एव मेव—छिद्रादि विनाऽपि तज्ज्योतिषोऽथोऽभ्यन्तरेऽनुभवेशवदेव जीवोऽपि अप्रति-हृतगतिः अकुण्ठितगतिः पृथिवीं भित्त्वा शिला—मन्तरं भित्त्वा बाह्यात्—वृद्धिः प्रदेशात् अन्तरज्जुप्रविशति, तत्—तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् ! त्वं श्रद्धेहि मद्बचने विश्वसिहि तथैव पूर्वोक्तमेव 'अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स-शरीरम्' इति ॥ सू० १३८ ॥

मूलम्—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ, अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंच कंडगं निसिरित्तए ! हंत पम् ! जइ णं भते ! से चेव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे पम् होजा पंच कंडगं निसिरित्तए, तो णं अहं सद्दहेजा जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं भते ! से चेव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे णो पम् पंच कंडयं निसिरित्तए तम्हा सुप्पइट्ठियो मे पइण्णा जहा तं जीवो तं चेव ॥ सू० १३९ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणमेवमवादीत् अस्ति खलु

प्रविष्ट हो जाती है, और इस कारण वह अग्निमय बन जाता है. इसी प्रकार से उस छोटे की टंकी में भी छिद्रादिक के अभाव में भी बाहर से जीव प्रविष्ट हो जाते हैं क्यों कि जीव अकुण्ठित गतिवाला है. इसकी गति कहीं पर भी नहीं रुक सकती है ॥ सू० १३८ ॥

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी) तत्र प्रदेशी राजाने

अने आर्थी ते अग्निमय थयं भयं छे. तेभज्ज ते दोण्डना नणा (कोडी) मां छिद्र वगेरे न होवा छताये षड्दार्थी एवे प्रविष्ट थयं भयं छे डेमके एन अप्रतिहृत गतिवाणे छे अेटवे के एवनी गति डोध पयु नय्याओ शैकी शकती नथी. तेनी गति अंकुठित छे. ॥ सू० १३८ ॥

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी) त्यारे

भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनः ये कारणेन नो उवागच्छति, अस्ति खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः मधुः । पठच्च काण्डकं निस्रष्टुम् ? हन्त मधु ! यदि खलु भदन्त ! स एव पुरुषो बालः यावत् मन्दविज्ञानः प्रभुर्मवेत् पठच्चकाण्डकं निस्रष्टुम्, तदा खलु अहं अर्द्ध्यां यथा-अन्यो जीवः तदेव, यस्मात् खलु भदन्त ! स

केशीकुमार श्रमण से ऐसा कहा (अर्थात् पं मंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! यह जो आपने उपमा दी है वह केवल बुद्धिविशेष से जन्य होने के कारण वास्तविक नहीं है (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ, वयों कि जो कारण मै प्रदर्शित कर रहा हूँ उससे मेरे हृदय में जीव और शरीर का भेद जमता नहीं है । (अर्थात् पं मंते ! से जहा नामए केइ पुरसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंचकंडगं निसिरिस्सए) यह कारण ऐसा है-हे भदन्त ! जैसे कोई युवापुरुष हो यावत् वह निपुणशिल्पोपगत हो, तो वह पांचवाणों को एक ही साथ पांच लक्ष्योंको वेधने के लिये छोड़ने में समर्थ हो सकता है न ? (हंता पभू) केशीकुमार श्रमणने कहा—हां हो सकता है । (जइ पं मंते ! से चैव पुरिसे बाळे जाव मंदविन्नाणे पभू होज्जा पंच कंडगं निसिरिस्सए) अब यदि वही पुरुषबाल, यावत् मन्दविज्ञान वाला अपनी अवस्थापन्न हुआ पांचकाण्डकको-पांचवाणों को छोड़ने के लिये समर्थ हो जावे तो मैं आपके वचनों को अर्द्धा के विषयभूत बनाउं और यह मानलूँ कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर रूप नहीं

प्रदेशी बाल्ये केशीकुमारश्रमणने आ प्रभावे कथं (अर्थात् पं मंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! आ प्रभावे ने तमेवमे उपमा आपी छे, ते मात्र बुद्धिविशेष जन्य होवाधी वास्तविक नहीं । (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ) केभडे ने कश्चि दु भतावी रहो छु तेथे भारा हृदयमा एव अने शरीरानी विन्नातानी वात जम ही नहीं । (अर्थात् पं मंते ! से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंच कंडगं निसिरिस्सए ते कश्चि आ प्रभावे छे, हे भदन्त ! नेम केअ युवक होय यावत् ते निपुणशिल्पोपगत होय, तो ते पांच बाणोने केही साथे पांच लक्ष्योंतु वेधन करवाभा समर्थ थथ थकेछे ? (हंता पभू) केशीकुमार श्रमणने कथं कथं, थथ थथे छे । (जइ पं मंते ! से चैव पुरिसे बाळे जाव मंदविन्नाणे पभू होज्जा पंच कंडगं निसिरिस्सए) हवे ने ते युवक बाण, यावत् मंदविज्ञानवाणे पोटानी अवस्थापन्न थयेत पाचकाण्डकेने-पाच बाणोने छेकवाभां समर्थ थथ जय तो हूँ तभारा वचनोने अर्द्धा योग्य भानी थथु तेम छुं अने आ

एव पुरुषो बालः यावत् मन्दविज्ञानो नो प्रभुः पञ्चकाण्डकं त्रिचन्द्रम् तस्मात्
सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः तदेव ॥ मृ० १३९ ॥

टीकार्थ—'तएणं पएसी राया' इत्यादि ।

ततः-तदनन्तरं खलु प्रदेशी गजा केजिकुमारश्रमणम् एवम्-अनेन
प्रकारेण अवादीत्-हे भदन्त! एषा-इयम् उपमा-सादृश्यम् प्रज्ञातः=बुद्धि-
विशेषाद् अस्ति न तु वारतविक्री यतः अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन
जीवशरीरयोर्भेदो मे-मम हृदये नोपागच्छति-न संगच्छते न स्वीकार-
योग्यतामर्हति । तदेव दर्शयति-हे भदन्त ! अस्ति-मवेत् खलु स यथा
नामकः अनिर्दिष्टनामा कश्चित् पुरुषः कीदृशः ? इत्याह-तरुणः-युवा यावत्
-यावत्पदेन-"युगवान् बलवान् अल्पातङ्कः स्थिरसंहननः स्थिराग्रहस्तः प्रति-

है, और शरीर जीवरूप नहीं है। अतः हे भदन्त ! जिव कारण से वह
तरुणादि विशेषणों वाला पुरुष जब बाल यावत् मन्दविज्ञानवाला होता
है, तब पांच वाणों को छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण
से मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है, वही शरीर
है और जो शरीर है वही जीव है सुप्रतिष्ठित है।

टीकार्थ—बाद में प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमण से ऐसा कहा है
भदन्त ! आपने जो अमी उपमा देकर जीव और शरीर की पृथक्ता
प्रकट की है सो जब मैं अपनी इस बात का विचार करता हूँ तब यह
उनकी पृथक्ता मेरे चित्त में नहीं जमती है, वह बात इस प्रकार
से है-जैसे कोई एक तरुण पुरुष हो और यावत् वह निपुणशिल्पोपगत
हो यहाँ यावत् पद से 'युगवान् बलवान्, अल्पातङ्कः स्थिर संहननः स्थिरा-

वात् पर विश्वास करी लउं के एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे. एव शरीर
इप नथी अने शरीर एव इप नथी. ज्येथी हे भदत ! जे कारणेने लीधे ते तरुषु
वजेरे विशेषणोथी युक्त युवक ज्यारे भाण यावत् भदविज्ञानवाणे होय छे, त्यारे ते
पौय भाणोने छाठवामां समर्थ होतो नथी. आथी जे भारी एव अने शरीर ज्ये छे.
जे एव छे तेज शरीर छे अने जे शरीर छे ते जे एव छे आ प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित छे.

टीकार्थ—त्यार पछी प्रदेशी राजाजे केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे कछुं छे
भदन्त ! तमोअजे जे उमण्णा उपमा वडे एव शरीरनी पृथक्ता प्रकट करी छे ते बिषे
हुं ज्यारे भारा मनमा विचार करुं छुं त्यारे आ वात् भारा मनमां पराणर जानती
नथी केभके जेम केछे ज्येक तरुषु पुरुष थाय अने यावत् ते निपुषु शिल्पोपगत थाय
अही 'यावत्' पदथी 'युगवान्, बलवान्, अल्पातङ्कः, स्थिरसंहननः, स्थिरा-

भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनः ये कारणेन नो उवागच्छति, अस्ति खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः प्रभुः । पञ्च काण्डकं निस्रष्टुम् ? हन्त प्रभुः ! यदि खलु भदन्त ! स एव पुरुषो बालः यावत् मन्दविज्ञानः प्रभुर्मवेत् पञ्चकाण्डकं निस्रष्टुम्, तदा खलु अहं श्रद्धयां यथा-अन्यो जीवः तदेव, यस्मात् खलु भदन्त ! स

केशीकुमार श्रमण से ऐसा कहा (अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! यह जो आपने उपमा दी है वह केवल बुद्धिविशेष से जन्य होने के कारण वास्तविक नहीं है (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ वयो किं जो कारण मै प्रदर्शित कर रहा हूँ उससे मेरे हृदय में जीव और शरीर का भेद जमता नहीं है। (अत्थि णं भंते ! से जहा नामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंचकंडगं निसिरिस्सए) वह भागण ऐसा है-हे भदन्त ! जैसे कोई युवापुरुष हो यावत् वह निपुणशिल्पोपगत हो, तो वह पांचवाणों को एक ही साथ पांच लक्ष्योंको वेधने के लिये छोड़ने में समर्थ हो सकता है न ? (हंता पभू) केशीकुमार श्रमणने कहा—हां हो सकता है। (जइ णं भंते ! से चैव पुरिसे बाळे जाव मंदविन्नाणे पभू होजा पंच कंडगं निसिरिस्सए) अब यदि वही पुरुषबाल, यावत् मन्दविज्ञान वाला अपनी अवस्थापन्न हुआ पांचकाण्डकको-पांचवाणों को छोड़ने के लिये समर्थ हो जावे तो मैं आपके वचनों को श्रद्धा के विषयभूत बनाऊँ और यह मानूँ कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर रूप नहीं

अरेथी राज्ञे केशीकुमारभबलुने आ प्रभाञ्जे षड्धं (अत्थिणं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा) हे भदन्त ! आ प्रभाञ्जे जे तमेञ्जे उपमा आपी छे, ते मात्र बुद्धिविशेष जन्य होवाथी वास्तविक नहीं। (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ) केभके जे कश्चिद् हु अतावी रहो छु तेथी मारा इद्वयमां एव अने शरीरनी भिन्नतानी वात जम ही नहीं। (अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंच कंडगं निसिरिस्सए ते कश्चिद् आ प्रभाञ्जे छे, हे भदन्त ! जेभ केअं युवक होय यावत् ते निपुणशिल्पोपगत होय, तो ते पांच व्याघ्राने कोक्षी साथे पांच लक्ष्योंको वेधन करवाभां समर्थ थछु शकैथि (हंता पभू) केशीकुमार श्रमणे षड्धं डाल, थछु शकै छे। (जइ णं भंते ! से चैव पुरिसे बाळे जाव मंदविन्नाणे पभू होजा पंच कंडगं निसिरिस्सए) हवे जे ते युवक व्याघ्र, यावत् मंदविज्ञानवाणो पोतानी अवस्थापन्न थयेत पांचकाण्डको-पांच व्याघ्राने छोडवाभां समर्थ थछु लय तो हूँ तमारा वयनोने श्रद्धा योग्य भानी थछु तेभ छुँ अने आ

एव पुरुषो बालः यावत् मन्दविज्ञानो नो प्रभुः पञ्चरूपकं निवन्दुर् तस्मात्
सुप्रतिष्ठिता ये प्रतिज्ञा यथा—तज्जीवः तदेव ॥ मु० १३९ ॥

टीकार्थ—‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

ततः—तदनन्तरं खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणम् एवम्—अनेन
प्रकारेण अच्चादीत्—हे भदन्त! एषा—इयम् उपमा—सादृश्यम् प्रजातः=बुद्धि-
विशेषाद् अस्ति न तु चारतविकी यतः अनेन—वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन
जीवशरीरयोर्भेदो मे—मम हृदये नोपागच्छति—न संगच्छते न स्वीकार-
योग्यतामर्हति । तदेव दर्शयति—हे भदन्त ! अस्ति—भवेत् खलु स यथा
नामकः अनिर्दिष्टनामा कश्चित् पुरुषः कीदृशः? इत्याह—तरुणः—युवा यावत्
—यावत्पदेन—‘युगवान् बलवान् अल्पातङ्कः स्थिरसंहननः स्थिराग्रहस्तः प्रति-

है, और शरीर जीवरूप नहीं है। अतः हे भदन्त ! जिम कारण से वह
तरुणादि विशेषणों वाला पुरुष जब बाल यावत् मन्दविज्ञानवाला होता
है, तब पांच वाणों को छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण
से मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है, वही शरीर
है और जो शरीर है वही जीव है सुप्रतिष्ठित है ।

टीकार्थ—बाद में प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमण से ऐसा कहा है
भदन्त ! आपने जो अभी उपमा देकर जीव और शरीर की पृथक्ता
प्रकट की है सो जब मैं अपनी इस बात का विचार करता हूँ तब यह
उनकी पृथक्ता मेरे चित्त में नहीं जमती है, वह बात इस प्रकार
से है—जैसे कोई एक तरुण पुरुष हो और यावत् वह निपुणशिल्पोपगत
हो यहाँ यावत् पद से ‘युगवान् बलवान्, अल्पातङ्कः स्थिर संहननः स्थिरा-

यावत् पर विश्वास करी लड़के के लुव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे. लुव शरीर
इप नहीं अने शरीर लुव इप नहीं. अथी हे भदंत ! जे करखुने दीधे ते तरुखु
वगेरे विशेषखेथी युक्त युवक न्यारे भाण यावत् भदविज्ञानवाणे होय छे, त्यारे ते
पोथ भाखुने छोडवामा समर्थ होतो नहीं. आथी जे मारी लुव अने शरीर अेक छे.
जे लुव छे तेज शरीर छे अने जे शरीर छे ते जे लुव छे आ प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित छे.

टीकार्थ—त्यार पछी प्रदेशी राजाके केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाखे कछुं छे
भदंत ! तमेाके जे हुसखुा उपमा वडे लुव शरीरनी पृथक्ता प्रकट करी छे ते संके
हुं न्यारे मारा मनमा विचार करुं छुं त्यारे आ यावत् मारा मनमां अज्ञान भवती
नथी केभके जेम केछ अेक तरुखु पुरुष थाय अने यावत् ते निपुखु शिल्पोपगत थाय
अही ‘यावत्’ पदथी ‘युगवान्, बलवान्, अल्पातङ्कः, स्थिरसंहननः, स्थिरा-

पूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः चर्मैष्टकद्गु घण-
मुष्टिकसमाहतगात्रः उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगल-
बाहुः, लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेकः, दक्षः, पृष्ठः, कुशलः, मेधावी इत्येतेषां पदानां
सङ्ग्रहः, निपुणशिल्पोपगतः, एतद्व्याख्या सप्तमसूत्रतो बोध्या । एतादृशः
पुरुषः पञ्चकाण्डकं चाणपञ्चकं युगपत् पञ्चलक्ष्यवेधनाय निस्तुष्टं-प्रक्षेप्तु-
प्रभुः-समर्थो भवेत् ? इति प्रदेशिप्रश्नः केशीमाह-हे राजन् ! हन्त ! प्रभुः
पञ्चकाण्डक प्रक्षेप्तुं स समर्थो भवेत् ? प्रदेशो कथयति हे भदन्त ! यदि चेत् खलु

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः,
चर्मैष्टकद्गु घणमुष्टिकसमाहतः गात्रः, उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगल-
बाहुः, लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेकः, दक्षः, पृष्ठः, कुशलः, मेधावी”
इम पाठ का नंप्र ह्युपा है। इन पदों को व्याख्या सातवें सूत्रमें की
जा चुका है भा. वहाँ से इसे देखना चाहिये. ऐसा वह पुरुष पांच
वाणों को एक साथ पञ्चलक्ष्यों को वेधन करने के लिये हे भदन्त !
छोड़ने में समर्थ हो सकता है न ? केगीकुमार श्रमणने तब कहा है राजन् !
ऐसा पूर्वोक्त । शेरों वाला वह युवा पुरुष एक साथ पांचवाणों को
छोड़ने में समर्थ हो सकता है परन्तु हे भदन्त ! जब वही पुरुष बाछ
यावत् मन्दविज्ञानवाला होता है तब पांच वाणों को एक साथ पांचलक्ष्यों
को वेधन करने के लिये छोड़ने में समर्थ नहीं होता है. यदि वह ऐसा
करने में सन्तुष्ट होता तो मैं आपकी इस बातको कि जीव भिन्न है
और शरीर भिन्न है तथा जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं

ग्रहस्त, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः,
चर्मैष्टकद्गु घणमुष्टिकसमाहतगात्रः, उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगल-
बाहुः, लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः, छेकः, दक्षः, पृष्ठः, कुशलः
मेधावी” आ पाठने संश्लथे छे आ षष्ठा पठोनी व्याख्या सातमा सूत्रमां
करवाभा आवी छे अथी निशासुअो त्याथी लक्ष्मी देवा प्रथम करे. अेवा ते युवक
ने पाय आछोने अेकी साथे अेक्य लक्ष्यपर छडीने छे बहंत शुं ते लक्ष्यवे-
धनमा सक्षण थथे ? केशीकुमार श्रमणे आ सावणीने कलुं के राजन् अेवा ते
पूर्वोक्त विशेषअेथी युक्त ते युवक अेकी साथे पाय आछोने छडवाभा समर्थ थथ
अक्षे पथु छे बहंत । अ्यारे ते युवक आण यावत् भद विज्ञान सपन्त होथ छे.
त्यारे ते पाय आछो वडे अेकी साथे पाय लक्ष्येत्त वेधन करवाभां सक्षण थथे
नहि. अे ते अेवुं करी शकते होथ तो हु तमारी अ्य भिन्न छे अने शरीर
भिन्न छे तेअ अ्य शरीर रूप नथी अने शरीर अ्यरूप नथी,

स एव पुरुषः बालः-यावत् यावत्पदेन- 'अयुगवान्, अबलवान्, सातङ्कः अस्थिर-
संहननः, अस्थिराग्रहस्तः अमतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः अघन
निचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहृतगात्रः उरस्यबलाऽसम-
न्वागतः अतलयमलयुगलबाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थ अच्छेकः अद-
क्षः अपृष्ठः अकुशलः अमेघावी' इत्येषां संग्रहो बोध्यः, एषामपि व्याख्या
वैपरीत्येन सप्तमसूत्रतो बोध्या, मन्दविज्ञानः-अल्पकौशलः, एतावृशः स यदि
पञ्चकाण्डकं निस्त्रष्टुं-प्रक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थो भवेत् तदा खलु अहं अद्धधां-
तव वचनं श्रद्धाविषयीकुर्यात्, यथा-अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव-अन्यच्छ-
रीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति, । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात्
खलु यस्तरुणादिविशेषणविशिष्टः स एव यदा बाल' यावद् मन्द
विज्ञानो भवेत् तदा न पञ्चकाण्डकं निस्त्रष्टुं प्रभुः-समर्थो भवति तस्मात्
सुप्रनिष्ठिता-समुचिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः, तदेव-पूर्वोक्तमेव तच्छरीरम्
नो अन्यो जीवः अन्यःशरीरम् इति ॥ सू० १३९ ॥

है श्रद्धा का विषय कर लेता "बालः यावत्" में यावत् पद से "अयु-
गवान्, अबलवान्, सातङ्कः अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अमतिपूर्ण
पाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मैष्टकद्रुघण-
मुष्टिकसमन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः,
लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दना समर्थः अच्छेकः, अदक्षः, अपृष्ठ, अकुशलः, अमेघावी"
इनपदों का संग्रह हुआ है इसकी व्याख्या सातमें सूत्र से निषेधार्थपरक
रूप में करनी चाहिये. तात्पर्य कहने का इस सूत्र का यही है कि उस युवा
पुरुष का और बाल पुरुष का वही शरीर और वही जीव है उसमें कोई
भिन्नता नहीं है, भिन्नता केवल उपकरणों में है क्योंकि जो बालपुरुष

आ यात पर विश्वास ठरी लेत. 'बालः यावत्' भा 'यावत्' पदार्थी 'अयुगवान्,
अबलवान्, सातङ्कः, अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अमतिपूर्णपाणिपाद-
पृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवलितस्कन्धः अचर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिक-
समन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः, लङ्घन-
प्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः, अच्छेकः अदक्षः, अपृष्ठः अकुशलः, अमेघावी
"आ पदोऽनो संग्रहो यथेति. आ पदोऽनो व्याख्या सातभा सूत्रमांथी निषेधार्थः
इये करवी लोभये. मतलब आ प्रमाण्ये छे के ते युवा पुत्रपदो तेभज् भाव पुत्रपदो
तेज् एव छे. तेमां केछे सिन्नता नथी. सिन्नता तो छे इदं उपकरणेभां .

मूलम—तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी
 से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए णवएणं
 धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडग निसिरि-
 त्तए ? ता पभू ! सो चैव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए
 कोरल्लिएणं धणुणा कोरिल्लियाए जीवाए कोरिल्लिएणं इसुणा पभू
 पं 'डगं णिसिरित्तए? णो इणट्टे समट्टे । कम्हा ? भंते ! तस्स
 रिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति, एवामेव पएसी !
 नो चैव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपजत्तोवगरणे, णोपभू पंच-
 कंडयं निसिरित्तए, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो
 तं चैव ५ ॥ सू० १४० ॥

छात्रा—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
 स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः नवकेन
 धनुषा नविकया जीवया नवकेन इषुणा प्रभुः पठचकाण्डकं निस्रष्टुम् ?

या वही तो युवा हुआ है अतः उम जीव में और उसके शरीर में
 मिनता कैसे मानी जा सकती है ॥ सू० १३९ ॥

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) इसके
 बाद केशीकुमारश्रमणने (पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से इस
 प्रकार कहा (से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) है
 मदन्त ! जैसे कोई युवा पुरुष हो और वह यावत् निपुण शिल्पोपगत हो
 (णवएणं धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचक डग निसिरित्तए)

इसके बाद युवक हुआ तो तेज युवा थयो छ ओथी ते लवभा अने तेना शरीरभा
 सिन्नता केम करीने मानी शक्य ॥सू० १३९॥

‘त एणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं केसीकुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) त्थार
 पथी देशी कुमार श्रमण्णे (पएसिं राय एव वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे
 श्लुं (से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) के षडत्त ।
 तेम षडत्त युवा युष्म होय अने ते यावत् निपुण शिल्पोपगत होय, (णवएणं धणुणा
 नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकडग निसिरित्तए) ओथो ते

हन्त ! पशुः स एव खलु पुरुषः तरुणः ग्यात् निपुणशिल्पोपगतः जिर्णं
धनुवा जीर्णया जीवया जीर्णेन इपुगा पशुः, पठव काण्डकं निस्रष्टुम् ।
नायमर्थः सः मर्थः । कस्मात् मदन्त । तस्य पुरुषस्य अपर्याप्तानि उपकरणानि
भवन्ति, एवमेव प्रदेशिनः । स एव पुरुषः वालो यावत् मन्दविज्ञानः अपर्या-
प्तोपकरणः नो पशुः पठवकाण्डकं निस्रष्टुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ।
यथा अन्यो जीवस्तदेव ५ ॥ सू० १४० ॥

ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यश्चा से, नवीन वाण से पांच
बाणों को एक साथ पांच लक्ष्यों का वेधन करने लिये छोड़ने में समर्थ
है क्या ? (हंता पशु) तब प्रदेशीने कहा--हां, समर्थ होना है (सो चेवणं
पुरिसे तरुणे जाव निउणसिःपोवगए कोरिळिएणं धणुगा कोरिळिए जीवाए,
कोरिळिएणं इसुणा पशु पंचकंडगं निसिरित्तए) पुनः केशीने पूछा--हे
प्रदेशिन् ! यदि वही युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत बना हुआ जीर्ण
धनुष्य से, जीर्ण प्रत्यश्चासे जीर्ण वाण से पांच बाणों को छोड़ने के
लिये समर्थ हो सकता है क्या ? प्रदेशीने कहा--(णो इणट्टे समट्टे) हे
मदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । केशीने पूछा--(कम्हा) हे प्रदेशिन् !
इसमें क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है । (मंते । तस्स
पुरिसस्स अपज्जत्ताइ उवगरणाइ इवंति) प्रदेशी राजाने कहा
हे मदन्त ! उस पुरुषके उपकरण अपर्याप्त हैं (एवामेव पएसी ! सो चेव
पुरिसे थाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे, णो पशु पंचकंडयं निसि-
रित्तए, तं सइहाहि णं तुमं पएसी ! जहा-अन्नो जीवो तं चेव ५)

पुश्च शुं नवीन धनुष वडे, नवीन बाणु वडे पाच बाणुने ज्येडी साथे पाच लक्ष्यो
ना वेधन माटे छोडनामा समर्थ होय छे ? (हंता पशु) तारे प्रदेशिन् राजज्ये
कळु-डाए, समर्थ होय छे (सो चेव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिपोवगए
कोरिळिएणं धणुगा कोरिळिए जीवाए, कोरिळिएणं इसुणा पशु पंच
कंडग निसिरित्तए) इरी केशीज्ये प्रश्न क्यो के हे प्रदेशिन् । जे ते युवा पुरुष
यावत् निपुणशिल्पोपगत थडने लक्ष्यं धनुषथी, लक्ष्यं प्रत्यश्चाथी, लक्ष्यं बाणुथी पाच
बाणुने छोडनामा समर्थ थड थडे तेम छे ? प्रदेशीज्ये कळु (णो इणट्टे समट्टे)
हे मदन्त ! आ अर्थ समर्थ नथी. (मंते । तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइ उवग
रणाइ इवन्ति) प्रदेशी राजज्ये कळु हे मदन्त । ते पुश्चना उपज्जत्तो पथासि नथी.
(एवामेव पएसी ! सो चेव पुरिसे थाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे,
णो पशु पंच कंडयं निसिरित्तए, तं सइहाहि णं तुमं पएसी ! जहा-अन्नो
जीवो तं चेव ५) तारे केशीज्ये कळु-हे आ प्रभाषे व हे प्रदेशिन् । ते पुश्च

‘तएण केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—स यथानामकः कश्चित्-कोऽपि पुरुषः—तरुणः यावत्-यावत्पदेन—‘युगवान् अल्वान् अल्पपातङ्कः स्थिराग्रहस्तः प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरुपरिणतः घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः चर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहृतगात्रः उरस्थबलसमन्वागतः तल्पमलयुगलबाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेकः दक्षः

तब केशीने कहा—इसी तरह से प्रदेशिन । वही पुरुष जब बाल थावत् मन्दविज्ञानवाला होता है तब वह अपर्याप्त उपकरणवाला होता- है अतः पांच बाणों को प्रक्षिप्त करने के लिये समर्थ नहीं होता है । इस कारण हे प्रदेशिन ! तुम श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्. है जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं हैं । ५ ।

टीकार्थ—तब केशीकुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—जैसे अनिर्ज्ञात नामा कोई एक पुरुष हो, जो वह तरुण हो यावत्-युगवान् हो, बन्वान् हो, अल्प आतङ्कवाला हो, स्थिर अग्रहायवाला-हो, पाणि, पाद, पृष्ठान्तर एवं उरु ये सब जिसके प्रतिपूर्ण हो, और परिणत विवेकशील एवं वयस्क हो. कंधे दोनों जिसके खूब भरे हुए हों गोल हों, शरीर जिसका चर्मैष्टक आदि से समाहृत होने से विशेषरूप में पुष्ट शारीरिक बल एवं मानसिक बल जिसका बड़ा चढा हो, ताडवृक्ष के जैसे जिसके दोनों बाहू लम्बे हों, लांघने में, उछलने में, कूदने में दौडने

न्यारे बाण यावत् मंद विज्ञानवाणे होय छे त्यारे ते अपर्याप्त उपकरणवाणे होय छे अथी न ते पांच बाणोने प्रक्षिप्त करवामा समर्थ होतो नथी. आथी छे प्रदेशिन ! तये भारी वात पर विश्वास करे के एव सिन्न छे अने शरीर सिन्न छे एव शरीररूप नथी अने शरीर एवरूप नथी. ५।

टीकार्थ —त्यारे केशीकुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कहुं के-नेम कौं अनिर्ज्ञातनामा कौं अथे पुत्रुं होय, जे तरुण होय यावत्-युगवान् होय, बणवान् होय, अल्पपातङ्कवाणे, स्थिर अग्रहस्तवाणे होय, पाणि (हाथ) पाद (पग) पृष्ठान्तर अने उरु आ भधा जेना प्रतिपूर्ण होय अने परिणत-विवेक युक्त अने वयस्क होय, अने अभायो जेना पुष्ट होय, गोण होय, जेछे शरीर अर्मैष्टक वगेरथी समाहृत होवाथी विशेषरूपथी युक्त होय, जेनु शरीर तेमज मननी शक्ति वधारे परिपुष्ट शयेदी होय. ताडवृक्ष जेवा जेना अने हाथो दाया होय, बाणगवामा उल्लगवामा, कूडको

मूढः कुशलः मेघावी" इत्येषां पदानां समग्रः एषां व्याख्या सप्तमध्वजे कृता । निपुणशिल्पोपगतः-सम्यग्ज्ञानसमन्वितः एतादृशः पुरुषः नवकेन-नूतनेन धनुषा, नविकया-नूतनया जीवया-धनुर्गुणेन धनुर्देवक्रियेत्यर्थः नवकेन-नूतनेन इषुणा-बाणेन प्रभुः-समर्थः पञ्चकाण्डक-बाणपञ्चकं युगपत् पञ्चलक्ष्यवेधनाय निस्रष्टुं-पक्षेप्तुम् ? । प्रदेशीप्राह-हन्त ! प्रभुः समर्थः । केशी कथयति-यदि स एव खलु पुरुषस्तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः 'कोरिल्लणं' इति देशी शब्दो जीर्णार्थकस्तेन जीर्णेन-धुणखादितेन धनुषा चापेन जीर्ण्या-प्रत्यञ्चया धनुर्गुणेनेत्यर्थः जीर्णेन इषुणा-बाणेन पञ्चकाण्डक-काण्डकपञ्चकं निस्रष्टुं-प्रक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थः स्यात् ? इति केशिमश्रुः, प्रदेशी-उच्यति-नायमर्थः समर्थः, केशी कारणं पृच्छति-कस्मात्कारणात्

आदि क्रिया में जो बराबर समर्थ हो, छेक हो, दक्ष हो मूढ हो, कुशल हो मेघावी हो और निपुणशिल्पोपगत-सम्यग्ज्ञान समन्वित हो । इन युगवान् आदि पदों की व्याख्या सातवें सूत्र में की गई है । सो वहीं से जान लेना चाहिये । ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यञ्चा से-धनुषकी ढोरीसे एवं नवीन बाण से हे प्रदेशिन् क्या बाण पंचक को युगपत् पांच लक्ष्यों का वेधन करने के लिये छोड़ सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हां, भदन्त ! छोड़ सकता है । पुनः केशीने उससे पूछा-यदि वही पुरुष जो कि तरुणादि पूर्वोक्त विशेषणोंवाला प्रकट किया गया है, कोरिल्ल-जीर्ण-धुण खादित ऐसे धनुष से, जीवा-प्रत्यञ्चा से, तथा जीर्ण बाण से बाण पंचक को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह इस प्रकार से करने में समर्थ नहीं हो सकता है । इस

भारवामा, होडवामा वगैरे क्रियाभ्यामा ने बराबर समर्थ होय, छेक होय, दक्ष होय प्रभु होय, कुशल होय, मेघावी होय अने निपुण शिल्पोपगत-सम्यग्ज्ञानयुक्त होय आ युगवान् वगैरे पदोनी व्याख्या सातवां सूत्रमां करवामा आवी छे । निशासुभ्योभ्ये त्याथी नाषुवा प्रयत्न करवे जेधंभ्ये । ज्येवे ते पुरुष नवीन धनुषथी, नवीन प्रत्य-याथी, धनुषनी होरीथी अने नवीन नाषुथी हे प्रदेशिन् ! शुं नाषु पंचकने युगपत् पांच लक्ष्योना वेधन भाटे छोडी शकथे । त्यारे प्रदेशीभ्ये कष्टुं-हा बहत । छोडी शकथे । क्षरी केशीभ्ये तेने प्रश्न करता कष्टुं-जे तेज पुरुष-हे ने तरुषु वगैरे पूर्वो-क्त विशेषणोवाणो छे, 'कोरिल्ल'-लक्षुं-उधेध वडे अवयवैत धनुषथी 'जीवा'-प्रत्य-याथी तेभज लक्षुं नाषुथी नाषु पंचकने छोडवामा समर्थ थध शकं तेभ छे ? त्यारे प्रदेशीभ्ये कष्टुं-हे बहत । ज्येवी परिस्थितिमा ते आ प्रभाषे करवामां समर्थ थध शकथे नहि । आ प्रभाषे तेना असामर्थ्यं करषु शुं कथं थकं !

खलु सोऽर्थो न समर्थः ? प्रदेशो प्राह-भदन्त ! तस्य-पूर्वोक्तपुरुषस्य उपकरणानि-धनुरादि साधनानि अपर्याप्तानि जीर्णत्वादसमर्थानि भवन्ति, एवमेव-उक्तप्रकारेणैव हे प्रदेशिन् ! स एव पुरुषः बाल यावत्-यावत्पदेन अयुगवानित्यादीमामनन्तरसूत्रे संगृहीतानां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, तदर्थस्तु वैपरीत्येन सप्तमसूत्रे प्रतिपादित मन्तोऽवसेयः । मन्द्बुद्धिज्ञानः-अल्पविज्ञानयुक्तः अत एव अपर्याप्तो करणः-अपर्याप्तम्-असमर्थम्-उपकरणम् शरीरेन्द्रियबलबुद्ध्यादिरूपं साधन यस्य स तथा, एतादृशःपुरुषः पञ्चकाण्डकं निस्त्रष्टुं-प्रक्षेप्तुं नो प्रम्युः-समर्थो न भवति, तत्-तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् । त्वं श्रद्धेहि यथा अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव अन्यत् शरीरम् नो तज्जीव स शरीरम् ॥ सू० १४०॥

मूलम्—तएणं पण्सी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी-अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो

प्रकार की उनकी असमर्थता का क्या कारण है । तव प्रदेशीने उत्तर दिया भदन्त ! उस पूर्वोक्त विशेषण सम्पन्न पुरुषके उपकरण-धनुरादिसाधन जीर्ण होने के कारण अपर्याप्त-असमर्थ हैं । अब पुनः केशीश्रमण उससे पूछते हैं—हे प्रदेशिन् ! यदि तरुण पुरुष युगवान् आदि विशेषणों से रहित है अर्थात् बाल अयुगवान् आदि विशेषणों से विशिष्ट है और शरीर, इन्द्रिय, बल, बुद्धि आदि रूप साधन उसके अपर्याप्त हैं, तो क्या वह बाणपंचक को छोड़ने के लिये समर्थ हो सकता है? तब प्रदेशीने कहा- नहीं हो सकता है । तो हे प्रदेशिन् ! इससे तुम्हें यही मानना चाहिये शरीर भिन्न है और जीव भिन्न है शरीर जीवरूप नहीं है और जीव शरीररूप नहीं है ॥ सू० १४० ॥

त्यारे प्रदेशीअे ज्वाण आपता क्खु-हे सडत ! ते पुनोक्त विशेषण युक्त पुत्रना उपकरणो-धनुष वगेरे साधनो-एणुं डोवाथी लक्ष्यवेधनमां असमर्थं छे डवे डरी केशीश्रमण तेने प्रश्न करे छे क्खे प्रदेशिन् ! जे ते तइण पुत्र युगवान् वगेरे विशेषणोथी रहित अेटवे के णाण, अयुगवान् वगेरे विशेषणोथी युक्त डोय अने शरीर, इन्द्रिय, णण, बुद्धि वगेरे इय साधनो तेनी पासे अपर्याप्त डोय तो शुं ते पाय णाणो छीडीने लक्ष्यवेधन करी शकथे ? त्यारे प्रदेशीअे क्खु-के नडि, तो हे प्रदेशिन् ! अथी तमारे आ वा न मानी डेवी ज्जेधअे के शरीर भिन्न छे अने एव भिन्न छे, शरीर एवइय नथी अने एव शरीरइय नथी ॥ सू० १४० ॥

उवागच्छइ अत्थि णं भंते । से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव
 निउणसिप्पोवगए पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा
 सीसगभारगं वा परिवहत्तए ? हंता पभू । से चेव णं भंते ! पुरिसे
 जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलिअतया विणट्ठगत्ते दंडपरिग्गहियग्ग-
 हत्थे पविरलपरिसडियदतसेढी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले
 लुहापरिकिलते नो पभू एगं महं अयभारगं वा जाव परिवहत्तए
 जइणं भते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जाव परिकिलंते
 पभू एगं महं अयभाह वा जाव परिवहत्तए तो णं सद्दहेज्जा तहेव,
 जम्हा णं भंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलते नो पभू एगं
 महं अयभारं वा जाव परिवहत्तए, तम्हा सुपइट्टिया मे पइण्णा
 तहेव ॥ सू० १४१ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्चमणमेवमवादीत्—अस्ति
 खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन कारणेन नो उपागच्छति, अस्ति
 खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिखो-

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं पएसी राया) तत्र प्रदेशी राजाने (केसिकुमारसमणं
 एवं वयासी) केशीकुमारश्चमण से ऐसा कहा (अत्थि णं भंते ! एसा
 पण्णाओ उवमा इमेण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा प्रज्ञा-
 सेजन्य है अतः वागविकी नहीं है, क्यों कि जो कारण मैं प्रदर्शित कर
 रहा हूँ उस कारण से मेरे हृदय में जीव और शरीर की भेद नहीं जम

‘तए णं पएमी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं पएसी राया) त्वादे प्रदेशी राजान्ये (केसिकुमारसमणं
 एवं वयासी) केशीकुमारश्चमण्युने आ प्रभाञ्जे कश्चि—(अत्थि णं भंते ! एसा पण्णा
 ओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा
 प्रज्ञाथी जन्य छ ज्येथी वास्तविक नथी केमके के कारणेणं हुं अतावी रथेणं हुं त्थेथी
 भासा हृदयमा एव अने शरीरनी किन्वता भवती गथी (अत्थिणं भंते) से, जहा
 नामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए पभू एगं मं अयभारगं

पगतः प्रभुः एक महान्तमयोभारक वा त्रपुकभारक वा शीशकभारकं वा परिबोद्धुम् ? हन्त प्रभुः । स एव खलु भदन्त ! पुरुषः जीर्णः जराजर्जरित-
 देहः शिथिलवलितत्वचाविनष्टगात्रः दण्डपरिगृहीताग्रहस्तः प्रविरलपरिश-
 टितदन्तश्रेणिः आतुरः क्रुशः पिपासितः दुर्बलः क्षुधापरिवलान्तः नो मसुरेकं
 पाता है (अस्थिणं भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसि
 प्पोवगए पभू एगं महं अयभारग वा तउयभारगं वा सीसगभारगं वा
 परिवहिसए) वह कारण इस प्रकार से है—जैसे कोई एक पुरुष हो, और
 वह युवा यात्र निपुणशिष्योपगत हो, अर्थात् सम्पन्नज्ञान सम्पन्न हो तो
 ऐसा वह पुरुष विशाल लोहे के भार को, त्रपुक के भार को शीशा के
 भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है न ? तब केशीकुमारश्रमण
 ने उससे (इता, पभू) हां, प्रदेशिन् ! ऐसा वह पुरुष उस लोहे आदि
 के विशाल भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है। (से चेत्र णं
 भंते ! पुरिसे जुन्ने जराजजरियदेहे सिढिलवलिअतयाविणट्टगसे दंडपरिगग
 हियगगहत्थे) अथ प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से फिर ऐसा पूछा-
 है भदन्त ! वही पुरुष जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है और जरा
 से जर्जरित शरीर वाला होने के कारण शक्ति से शिथिल हो
 जाता है, त्वचा जिसकी झुर्रियों से युक्त हो जाती हैं और इसी से
 जिसको शारीरिक शक्ति प्रतिहत हो चुकी होती है, तथा दक्षिण हाथ
 में जो दण्डा छेकर चलने लगता है (पविरल परिसड्ढियदंतसेढी, आउरे,

वा तउयभारगं वा सीसगभारगं वा परिवहिसए) तो कारुण्य आ प्रभाण्णे छे जेम
 डोळ अक्क पुग्ग होय अने ते उवा यावत् निपुण्णु शिष्योपगत होय अट्ठे के
 सम्भक्क जान युक्त होय तो अवेो ते पुग्ग विशाण बोअ उना भारने त्रपुकना भारने
 शीशाना भारने वहन करवाभा शु समर्थं थं थक्के छे ? त्यारे केशीकुमार श्रमण्णे तेने
 (इता पभू) डाल्ठ, प्रदेशिन् अवेो ते पुग्ग ते बोअ उ वगेरेना विशाण भारने
 वहन करवाभा समर्थं थं थक्के छे (से चेत्र णं भंते ! पुरिसे जुन्ने जराजजरिय-
 देहे सिढिलवलिअतयाविणट्टगत्ते दंडपरिगगहियगगहत्थे) हवे केशी कुमारश्रमण्णे
 प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे प्रश्न कथे के डे भइत । ते ज पुग्ग न्यारे घरउो थं
 नय छे अने वृद्धावस्थाने दीधे जर्जरित शरीरवाणेो होवाथी अशक्त थं नय छे,
 यामडी जेनी करयदीअथी युक्त थं नय छे अने अथी जेनी शारीरिक
 शक्ति प्रतिहत थं नय छे तेमज्ज मण्णु डायभा जे लाकडी आदीने याववा लागे छे
 (पविरलपरिसड्ढियदंतसेढी, आउरे, फिसीए, पिवासिए दुब्बले लुहा
 परिकिल ते नो पभू एगं मह अयभारग वा जाव परिवहिसए) जेनी इत

महान्तमयोभारकं वा यावत् परिवोढुम्, यदि खलु भदन्त ! स एव पुरुषः
जीर्णः जराजर्जरितदेहः यावत् परिक्रान्तः प्रभु. एकं महान्तमयोभारकं वा
यावत् परिवोढुम्. तदा खलु श्रद्धायां तथैव, यस्मात् खलु भदन्त ! स
एव पुरुषः जीर्णो यान्त् क्लान्तः नो प्रभुरेकं महान्तमयोभारं वा यावत्
परिवोढुं तस्मात् सुप्रतिष्ठता मे प्रतिज्ञां तथैव ॥सू० १४१॥

फिसीए, पिवासिए, दुग्धले, छुहाफिलते पभू एगं महं अयभारगं वा
जाव परिवहित्तए) दांतों की पक्ति जिसकी बिरल हो जाती है. शक्ति
हो जाती है, तथा कास, श्वास आदि से जो सर्वदा पीडित बना रहता
है, और इसीसे जो कृश एवं अशक्त बन जाता है, उठ करके पानी पीने
तक भी शक्ति जिससे जाती रहती है, जो बिलकुल शक्ति रहित हो
जाता है, भूख से जो-पीडित बन जाता है ऐसा वह पुरुष एक विशाल
लोहे के भार को, त्रपुक के भार को या शीशा के भार को वहन करने
के लिये समर्थ नहीं रहता है। (जहणं भंते ! सच्चैव पुरिसे जुन्ने जरा-
जजरियदेहे जाव परिक्रान्ते पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए
तो णं सद्देज्जा तद्देव) यदि हे भदन्त ! वही पुरुष जीर्ण होने पर, जरा
से जर्जरित देह होने पर यावत् धा से परिक्रान्त होने पर एक विशाल
लोहभार को यावत् वहन करने के लिये समर्थ बना रहता तो मैं आपके इस
कथन पर कि जीव शरीर से भिन्न है और शरीर जीव से भिन्न है जीव
शरीररूप नहीं है, शरीर जीवरूप नहीं है निश्वास कर लेता (जम्हाणं

पक्ति विरत थं नय छे, शक्ति थं नय छे, तेभज्ज कास, श्वासं वगेरेथी जे
इभेशा पीडित रहे छे अने ज्येथी जे कृश अने दुर्बल थं नय छे, उभा थंने
पाष्ठी पीवानी पभू जेनामां ताकात होती नथी जे साव अशक्त थं नय छे, भूभथी
जे पीडित थं नय छे जेवे ते पुरुष जेक मोटा बोअउना भारने के शिशाना
भारने वहन करवामा समर्थ थं थकतो नथी. (जएणं भंते ! सच्चैव पुरिसे
जुन्ने जराजजरियदेहे जाव परिक्रान्ते पभू एगं महं अयभारं वा
जाव परिवहित्तए तो णं सद्देज्जा तद्देव) तो हे भदन्त ! जे ते पुरुष धरतु
होवा छता जे घडपधुथी जर्जरित शरीरवाणे होवा छता जे यावत् भूभथी परि-
कात होवा छताजे जेक भारे बोअउना भारने यावत् वहन करवामा समर्थ थं
शक्त तो हे तभारा एव शरीरथी भिन्न छे अने शरीर एवथी भिन्न छे, एव
शरीर रूप नथी अने शरीर एव रूप नथी आ कथर पर निश्वास करी देत.

टीका—“तए णं पएसी इत्यादि—ततःखलु प्रदेशी राजा केशिकुमार-
 श्रमणम् एवमवादीत्—एषा—इयम् उपमा प्रज्ञानः अस्ति अनेन वक्ष्यमाणेन
 पुन. कारणेन नो उपागच्छति—न संगच्छति, तदेवाऽऽह—एव खलु हे
 भदन्त ! स यथानामक कश्चित् पुरुषः तरुण. यावत्—यावत्पदेन—अनन्तर-
 सूत्रे संगृहीतानि युगवान् बलवानित्यादीनि पदानि संगृहीतव्यानि, तदर्थश्च
 सप्तमसूत्रतो बोध्य, निपुणशिल्पोपगतः—सम्यग्विज्ञानसम्पन्न, एतादृश पुरुषः
 एकं महान्त—विशालम् अयोमारकम्—लोहभारं त्रपुकराकरं—धातुविशेषभारं
 वा शीशकभारकं वा परिवोहु—नेतु प्रभुः—समर्थः स्यात् ? इति प्रदेशिप्रश्नः
 केशीश्रमणः कथयति—इन्त!—हे राजन् ! प्रभुः—समर्थः स्यात् । हे भदन्त !

मंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलंते नो पभू एगं महं अयभारं वा
 जाव परिवहिसए, तम्हा सुपइइट्टिया मे पइण्णा तहेव) जिस कारण से हे
 भदन्त ! वही पुरुष जीर्ण यावत् हो जाने पर एक विशाल लोहभारको
 यावत वहन करने के लिये समर्थ नहीं होता है—इस कारण से मेरा यह
 मन्तव्य जीव और शरीर के एक होने का सुप्रतिष्ठित है अर्थात् वही
 जीव और वही शरीर है, जीव भिन्न नहीं है और शरीर भिन्न नहीं
 है ऐसा मेरा मन्तव्य सत्य है।

टीकार्थ—इस मूलार्थ के जैसा ही है. ‘तरुणः यावत् निपुणशिल्पो-
 पगतः’ में जो यह यावत्पद आया है. उससे अनन्तर सूत्र में संगृहीत युग
 वान् बलवान् इत्यादि पद यहाँ गृहीत हुए हैं। इन पदों का अर्थ सप्तम
 सूत्रकी टीका में लिखा जा चुका है, अत वही से यह जानना चाहिये ‘अयमारग

(जम्हा णं मंते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलंते नो पभू एगं महं
 अयभारं वा जाव परिवहिसए, तम्हा सुपइइट्टिया मे पइण्णा तहेव) के अर
 बुधी के कहत ! तेज पुरुष लुब्धुं (घरडो) यावत् धरं जवाधी अेक विशाण लोभ-
 उना कारणे यावत् वहन करवाभा समर्थ धरं शकतो नथी ते का बुधी ज लव
 अने शरीर अेकज छे अेवी मारी धारणा सुप्रतिष्ठित ज छे अेटले के लव अने
 शरीर अन्ने अेकज छे लव भिन्न नथी अने शरीर भिन्न नथी आ मारी
 मान्यता योअ्यज छे.

टीकार्थ—आ सूत्रेना टीकार्थं भूलाक्षं जेवो ज छे ‘तरुणः यावत् निपुणशिल्पो
 पगतः’मा जे यावत् पद आवेल छे तेथी जीलु केअं जव्याअे संगृहीत युगवान्,
 अणवान् वगेरे पढे अहाँ संगृहीत थया छे. आ पढेने अर्थ सातभा सूत्रनी
 टीकाभा स्पष्ट करवाभा अ ज्ये छे. अेधी त्याधी ज लखुवा प्रथत्त करवे जेअंअे.

स एव भारवाहकः पुरुरो जीर्णः—दृष्ट्वा स्या प्राप्तः अत एव जराजर्जरितदेहः—
 दृष्ट्वावस्थामन्दशरीरशक्तिकः शिथिलवलितत्वचाविनष्टगात्रः—शिथिला अतएव
 वलिता—वलिपुक्ता त्वचा—चर्म तथा विनष्टगात्रः—प्रतिहतशरीर-
 सामर्थ्यः दण्डपरिग्रहीताग्रहस्त—अग्रहस्तेन—हस्ताग्रमागेन परिगृहीतः—
 धारितो दण्डो येन तथा, प्ररिलपरिग्रहितदन्तश्रेणिः—पविरला—अत्यन्ताल्पा
 शटना च दन्तश्रेणिः—दन्तपर्णिस्य स तथा, आतुरः कासश्वा-
 सादिपीडितः, कृशः—अशक्तः, पिपासितः उत्थाय जलं पातुमप्यसमर्थः,
 दुर्बलः बलहीनः क्षुधापरिक्लान्त—क्षुधापरिपीडितः, एतादृशः पुरुषः एकं
 महान्तमयोभारं वा यावत्—‘यावत्’ पदेन—प्रपुकभारक वा शीशकभारकं
 वा परिवोढुं नो प्रभुः—समर्थो न भवति. पुनः प्रदेशी प्राह—भदन्त ! यदि
 खलु स एव पुरुषो जीर्णः जराजर्जरितः यावत् क्षुधापरिक्लान्तः एतादृशः
 पुरुषः एकं महान्तमयोभारं वा यावत् शीशकभारं वा परिवोढुं प्रभुः
 स्यात् तदा खलु अहं श्रद्ध्यां तथैव—अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो
 तज्जीवः स शरीरम्, इति । अथ पुनः प्रदेशी प्राह—हे भदन्त ! यस्मात्
 कारणात् खलु स एव पुरुषः जीर्णः क्षुधापरिक्लान्तः एकं महान्तमयो-
 भारं वा यावत् शीशकभारं वा’ इत्येतत्कारणात् परिवोढुं नो प्रभुः—समर्थो
 न भवति, तस्मात् कारणात् मे—मम प्रतिज्ञा स्वीकारः, सुप्रतिष्ठिता—स्थिरा,
 तथैव—तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति ॥सू. १४१॥

मूलम्—तए णं केसी भारसमणे पर्णस रायं एवं वयासी—
 से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहं-

‘वा जाव परिवहितए’ में आये हुए यावत्पद से ‘तउग भारगं वा’ सीसग-
 भारगं वा इन पदों का संग्रह हुआ है। इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि
 युष्मादि विशेषणों वाला जो जीव है वही जीव अयुनादि विशेषणों वाला
 भी है अतः वह वही जीव है और वही उसका शरीर है ये दोनों भिन्न-
 नहीं हैं। यही बात प्रदेशीराजाने इस सूत्र से प्रमाणित की है ॥सू. १४१॥

‘अयभारगं वा जाव परिवहितए’ भा आवेक यावत् पदार्थी ‘तउगभारगं वा
 सीसगभारगं वा’ भा पदोनो स अरु थयो छि भा सूत्रनो भावार्थं भा प्रभावे
 छि के युवा वगेरथी युक्त विशेषणवाणो ने एव छि तेव एव अपुवा वगेरे विशे-
 षणोथी पणु संपन्न छि. अर्थो ते तेव एव छि अन्ये तेषुं शरीर पणु तेव छि
 अन्यो गन्ने एव एव नथी प्रदेशी रान्त्ये अन्ये वात भा सूत्रथी प्रभाषित
 कनी छे ॥सू. १४१॥

गियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहि पच्छियपिंडएहिं पहू एग मह
अयभार जाव परिवहित्तए ? हन्ता पभू । पएसी ? से चैव णं पुरिसे
तरुणे जाव सिप्पोवगए जुन्नियाए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विह-
गियाए जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं सिद्धिलतयापिणद्धएहिं
सिक्कएहिं जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू
एगं महं अयभारवा जाव परिवहित्तए ? णो इणट्टे समट्टे । कम्हा-
णं भंते! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइं उवगरणाइं भवंति । पएसी ? से
चैव पुरिसे जुन्ने जाव लुहाकिलंते जुन्नोवगरणे नो पभू एग मह
अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तं सदहाहि णं तुम पएसी जहा-
अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥सू० १४२॥

छाया-ततःखलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत-स
यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणो यावत् शिल्पोपगतः नविकया विहङ्गिकया
नवकाभ्या शिष्यकाभ्यां नवकाभ्या पक्षितपिटकाभ्यां प्रभुः एक महान्त-
मयोभारं यावत् परिवोढुम् ? हन्त ? प्रभुः प्रदेशिन् ! स एव खलु पुरुषः

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ- (तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) केशीकुमार
श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा- (से जहानामए केह पुरिसे तरुणे
जाव सिप्पोवगए णवियाए विह गियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहिं पच्छिय-
पिंडएहिं पहू एग मह अयभार जाव परिवहित्तए ?) जैसे कोई एक पुरुष
हो और वह तरुण यावत् शिल्पोपगत हो, ऐसा वह पुरुष नहीं विहंगिका

‘तएणं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सत्रार्थ- (तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी) त्थार
पछी केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजने आ प्रभाणे कल्ल- (से जहानामए केह
पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए णवएहिं सिक्कएहिं,
णवएहिं पच्छियपिंडएहिं पहू एगं महं अयभारं जाव परिवहित्तए ?) अथ
असे ते-केह पुरुष होय अने ते तरुण यावत् शिल्पोपगत होय, अथे ते पुरुष

तरुणा यावत् शिल्पोपगतः जीर्णया दुर्बलकया घुणखादिनया त्रिहृत्क्रिया जीर्णकाभ्यां दुर्बलकाभ्यां घुणखादिताभ्यां शिथिलत्वचापिनद्धकाभ्यां शिक्व काभ्यां जीर्णकाभ्यां दुर्बलकाभ्यां घुणखादिताभ्या पक्षितपिटकाभ्यां प्रभुः एकं महान्तमयोभार वा यावत् परिवोढुम् ? नो अयमर्थः समर्थः

से भारयष्टिका से (कावड से), नवीन सिक्वकाओं से नवीन पक्षितपिटकाओं से एक विशाल लोहभार को यावत् त्रपुभार को अथवा शीशकभार को वहन करने में समर्थ होता है न? तत्र प्रदेशी राजाने कहा—(हता, पभू) हां, भदन्त ! ऐसा वह पुरुष उसे वहन करने में समर्थ होता है। (पपसी ! से चैत्रणं पुरिसे तरुणे जात्र सिप्पोवगए दुव्वलियाए घुणक्खइयाए विहंगियाए जुण्णएहिं दुव्वलिणहिं, घुणक्खइएहिं, सिद्धिलतया पिणद्धएहिं, सिक्कएहिं दुव्वलिणहिं जुण्णेहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू एगं महं अयमारं वा जात्र परिवहित्तए) हे प्रदेशिन् ! अब मैं तुम से ऐसा पूछता हूँ कि वही तरुणपुरुष जो यावत् निपुणशिल्पोपगत है जीर्ण दुर्बल, घुन से खाई हुई भारयष्टि से, तथा जीर्ण, दुर्बल और घुन से खाई हुई तथा शिथिल त्वचा से पिनद्ध हुई ऐसी शिक्वकाओं से, एवं दुर्बल, घुण खादितऐयो पक्षितपिटकाओं से एक विशाल लोहभार को अथवा त्रपुभार को या शीशकभार को वहन करने में समर्थ हो सकता है? प्रदेशीने कहा—(णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ

नवीन विहंगियाथी भारयष्टिकाथी (कावडथी) नवीन सिक्वकाथी नवीन पक्षितपिटकाथी अथवा एक विशाल लोहभार उना भारने यावत् त्रपुभारने अथवा शीशक भारने वहन करवाभा शुं समर्थं थथं थके छे ? त्वारे प्रदेशी राजाने कथं—(हता, पभू) हां, भदन्त ! जेवो ते पुत्र तेने वहन करवाभां समर्थं थथं थके छे. (पपसी ! से चैत्रणं पुरिसे तरुणे जात्र सिप्पोवगए, जुन्नियाए, दुव्वलियाए घुणक्खइयाए विहंगियाए, जुण्णएहिं, दुव्वलिणहिं घुणक्खइएहिं, सिद्धिलतया पिणद्धएहिं, सिक्कएहिं जुण्णेहिं दुव्वलिणहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू एगं महं अयमारं वा जात्र परिवहित्तए) हे प्रदेशिन् ! जेवो तमने हुं आम प्रश्न करे छुं ते जे तत्रुण पुत्र जे यावत् निपुण शिल्पोपगत छे एषुं दुर्बल, उधेधं भाधेवी भारयष्टिकाथी (कावडथी) तेमज एषुं, दुर्बल उधेधवट भाधेव तेमज शिथिलत्वयायोथी पिनद्ध थयेव जेवी शिक्वकायोथी अने दुर्बलिक, उधेधं भाधेव जेवी पक्षितपिटकायोथी अथवा मोटा लोहभार उना भारने अथवा त्रपुभारने के शीशकभारने वहन करवाभा शुं समर्थं थथं थके छे ? प्रदेशीने कथं (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त !

गियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहि पच्छियपिंडएहिं पहू एग मह अयभार जाव परिवहित्तए ? हन्ता पशू । पएसी ? से चेव णं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए जुन्नियाए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विह-गियाए जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं सिढिलतयापिणद्धएहिं सिक्कएहिं जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पशू एगं महं अयभार वा जाव परिवहित्तए ? णो इणट्टे समट्टे । कम्हाणं भंते! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइं उवगरणाइं भवंति । पएसी ? से चेव पुरिसे जुन्ने जाव छुहाकिलंते जुन्नोवगरणे नो पशू एग महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तं सदहाहि णं तुम पएसी जहा-अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥सू० १४२॥

छाया-ततःखलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्-स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणो यावत् शिल्पोपगतः नविकया विहङ्गिकया नवकाभ्या शिक्यकाभ्या नवकाभ्या पक्षितपिटकाभ्यां प्रभुः एक महान्त-मयोभार यावत् परिचोद्धुम् ? इन्त ? प्रभुः प्रदेशिन् ! रा एव खलु पुरुषः

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ-‘(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एव वयासी) केशीकुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-(से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहिं पच्छिय-पिंडएहिं पहू एग मह अयभार जाव परिवहित्तए ?) जैसे कोई एक पुरुष हो और वह तरुण यावत् शिल्पोपगत हो, ऐसा वह पुरुष नवीन विहंगिका

‘तएणं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ-‘(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एव वयासी) त्थार यथी केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे षड्ढ-‘(से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए णवएहिं सिक्कएहिं, णवएहिं पच्छियपिंडएहिं पहू एगं मह अयभारं जाव परिवहित्तए ?) अथ गणे ते-कैथं पुरुष छेय अने ते तरुण यावत् शिल्पोपगत छेय, अथे ते पुरुष

तरुणा यावत् शिल्पोपगतः जीर्णया दुर्बलकया घुणखादितया विहङ्गिकया जीर्णकाभ्यां दुर्बलकाभ्यां घुणखादिताभ्यां शिथिलत्वचापिनद्धकाभ्यां शिक्ककाभ्यां जीर्णकाभ्यां दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिताभ्या पक्षितपिटकाभ्यां प्रभूः एकं महान्तमयोभारं वा यावत् परिवोहम् ? नो अयमर्थः समर्थः

से भारयष्टिका से (कावड से), नवीन सिक्ककाओं से नवीन पक्षितपिटकाओं से एक विशाल लोहभार को यावत् त्रपुभार को अथवा शीशकभार को वहन करने में समर्थ होता है न? तत्र प्रदेशी राजाने कहा—(हता, पभू) हां, भदन्त ! ऐसा वह पुरुष उसे वहन करने में समर्थ होता है। (पपसी ! से चेवणं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विहंगियाए जुणएहिं दुब्बलिएहिं, घुणक्खइएहिं, सिधिलतया पिणद्धएहिं, सिक्कएहिं दुब्बलिएहिं जुणोहिं घुणक्खएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू एगं महं अयमारं वा जाव परिवहितए) हे प्रदेशिन् ! अब मैं तुम से ऐसा पूछता हूँ कि वही तरुणपुरुष जो यावत् निपुणशिल्पोपगत है जीर्ण दुर्बल, घुण से खाई हुई भारयष्टिका से, तथा जीर्ण, दुर्बल और घुण से खाई हुई तथा शिथिल त्वचा से पिनद्ध हुई ऐसी शिक्ककाओं से, एवं दुर्बलिक, घुण खादितऐसी पक्षितपिटकाओं से एक विशाल लोहभार को अथवा त्रपुभार को या शीशकभार को वहन करने में समर्थ हो सकता है? प्रदेशीने कहा—(णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ

नवीन विहङ्गिकाथी भारयष्टिकाथी (कावडथी) नवीन सिक्ककाथी नवीन पक्षितपिटकाथी अथवा एक विशाल लोहभार को यावत् त्रपुभारने अथवा शीशकभारने वहन करवाभा शुं समर्थं थथं थके छे ? त्तारे प्रदेशी राजाने कहुं—(हता, पभू) हां, भदन्त ! अवे ते पुत्थ तेने वहन करवाभा समर्थं थथं थके छे. (पपसी ! से चेवणं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए, जुन्नियाए, दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विहंगियाए, जुणएहिं, दुब्बलिएहिं घुणक्खइएहिं, सिधिलतया पिणद्धएहिं, सिक्कएहिं जुणोहिं दुब्बलिएहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू एगं महं अयमारं वा जाव परिवहितए) हे प्रदेशिन् ! इवे तमने हुं आम प्रश्न करे छुं के ते न तत्थ पुत्थ ने यावत् निपुण शिल्पोपगत छे एत्थं दुर्बल, उधेध भाधेदी भारयष्टिकाथी (कावडथी) तेमए एत्थं, दुर्बल उधेधवट भाधेध तेमए शिथिल त्वचाथी पिनद्ध थयेध अवी शिक्ककाथी अने दुर्बलिक, उधेध भाधेध अवी पक्षितपिटकाथी अथवा मोटा लोहभारने अथवा त्रपुभारने के शीशकभारने वहन करवाभा शुं समर्थं थथं थके छे ? प्रदेशीने कहुं (णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त !

कस्मात् ? भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीर्णानि उपकरणानि भवन्ति, प्रदेगिन् ! स एव पुरुषः जीर्णो यावत् क्षुधापरिक्लान्तः जीर्णोपकरणः नो पशु, एक महान्तमयोभार वा यावत् परिवोढुम्, तत् श्रद्धेहि खलु त्व प्रदेगिन् ! यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् ६ । ॥मृ० १४२॥

नहीं है-अर्थात् वही युवादि विशेषणों वाला पुरुष जीर्णादि विशेषणोंवाली विहङ्गिकादि (कावड) द्वारा विशाल लोहभार को वहन नहीं कर सकता है। केशीकुमारश्रमणने पूछा-(कम्हा) वह ऐसा किस कारण से नहीं कर सकता है। तब प्रदेशीने कहा-(भंते ! तस्स पुरिसस्स जुष्णाइं उवगरणाइ भवन्ति) हे भदन्त ! लोह भार आदि को वहन करने के जो उसके साधन है-वे जीर्ण हैं ! (पपसी से चेव पुरिसे जुन्ने जाव छुहापरिकिलंते जुन्नोवगरणे पशू एगं महं अयमारं वा जाव परिवहित्तए-तं सहहाहि णं तुमं पपसी अन्नो जीवो अन्न सरीर) पुनः केशी ने प्रदेशी से पूछा-हे प्रदेशिन् ! यदि वही पुरुष जीर्ण, वृद्ध यावत् १४१वे सूत्र में कथितविशेषणोंवाला एवं क्षुधा परिवलान्त हो जाता है वह जीर्णोपकरण वाला होने से-शरीर बल बुद्धि आदि उपकरणों की जीर्णतावाला होने से-एक विशाल अयोभार को यावत् शीशक भार को वहन करने में समर्थ नहीं होता है युवावस्था और वृद्धावस्था में जीव की समानता होने पर भी उपकरण के अभाव से वृद्ध भार को वहन करने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण हे प्रदेशिन् !

आ अर्थं समर्थं नथी, अेटत्वे ङ तेज युवा वगेरे विशेषणोथी युक्त पुरुष लुष्णं वगेरे विशेषणोथी युक्त विहङ्गिक (कावड) वगेरे वट विशाल लोभ उना भारने वहन न करी शकं तेम छे केशीकुमार श्रमणो क्खुं, (कम्हा) ते आभ शा कारणुथी नहि करी शकं ? त्पारे प्रदेशीअे क्खुं, (भंते ! तस्स पुरिसस्स जुष्णाइं उवगरणाइं भवन्ति) हे भदन्त ! लोभ उना भार वगेरेने वहन करवाना के साधने छे ते लुष्णं छे (पपसी से चेव पुरिसे जुन्ने जाव छुहापरिकिलंते जुन्नोवगरणे नो पशू एगं महं अयमारं वा जाव परिवहित्तए-तं सहहाहि णं तुमं पपसी अन्नो जीवो अन्न सरीरं) करी केशीअे प्रदेशीने आ प्रमाणे प्रश्न करी के हे प्रदेशिन् ! ते ते ज पुरुष लुष्णं वृद्ध यावत् १४१ मा सूत्रमा आवेत्त विशेषणोथी स पन्न होय क्षुधा परिकेलात थं लय छे तो ते लुष्णोपकरणवाणे होवाथी-शरीर बल बुद्धि वगेरे उपकरणो लुष्णं होवाथी अेक विशाल लोभ उना भारने यावत् शीशकभारने वहन करवामा समर्थं थं शकं तेम नथी युवावस्थाभा अने वृद्धावस्थाभा लुपनी समानता होवा छता अे उपकरणुना अभावे वृद्ध भारने वहन करवामा समर्थं थं

टीका—“त ए ण केशी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशी कुमा-
रश्रमणः प्रदेशिनं राजामम्, एवमत्रादीत्—स यथानामकः कश्चित्—कोऽपि
पुरुषः तरुण यावत्—निपुणशिल्पोपगतः नविक्रिया—नूतनया विहङ्गिकया—भार-
यष्टिकया—शिक्यावलम्बनदण्डविशेषरूपया नवकाभ्यां—नवीनाभ्यां शिक्यकाभ्यां
नवकाभ्यां—नूतनाभ्यां पक्षितपिटकाभ्यां—वशवेत्रादिनिर्मितपात्रविशेषाभ्याम
एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीशकभारवा एतादृशमयो
भारादिकं परिबोहु प्रभुः—समर्थं स्यात् ? इति केशिप्रश्नः, प्रदेशी प्राह—
इन्त ! प्रभुः—समर्थः स्यात् ! केशीकथयति—प्रदेशिन ! स एव खलु पुरुषः
तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः, एतादृशः पुरुषः जीर्णया दुर्बलिकया-
निःसन्धया घुणखादितया—काष्ठकीटमक्षितया—विहङ्गिकया—भारयष्टया तथा-
जीर्णकाभ्यां—दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिताभ्यां शिथिलत्वचापिनद्धकाभ्यां-
शिथिलद्वरिकाषट्काभ्यां शिक्यकाभ्यां, तथा दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिता-
भ्यां पक्षितपिटकाभ्याम् एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीश-
कभारं वा परिबोहु प्रभुः—समर्थः स्यात् ? । प्रदेशी प्राह—नो अद्यमर्थः—
समर्थः—पूर्वोक्तसाधनैर्भारो बोहुं न शक्यत इत्यर्थः । केशी श्रमणो
हेतु पृच्छति—कस्मात्कारणात् ? । प्रदेशी कथयति—हे भदन्त ! तस्य पूर्वोक्त-
स्य तरुणताविशिष्टस्य पुरुषस्य उपकरणानि जीर्णानि भवन्ति सन्ति, उप-
करणानां जीर्णत्वादिकारणान्नायोभारादिपरिवहनयोग्यता, इतिभावः । केशी

तुम मेरे वचन में विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है,
वह जीवरूप नहीं है और न जीव शरीररूप है।

टीकार्थ—स्पष्ट है यहाँ जो ‘विहंगियाए. सिकएहिं, पच्छियपिंहएहिं’
ये शब्द आये हैं वे भार उठाने के अर्थ में आये हैं। वश, वेत्र आदिकों
से निर्मित पात्र विशेषका नाम पक्षितपिटक है, तात्पर्य इस सूत्र का ऐसा

शक्तो नथी. अथी हे प्रदेशिन ! तमे भारी वात पर विद्यास कसे के लव अन्य
छे, अने शरीर अन्य छे, शरीर लवइय नथी अने लव शरीर इय नथी.

टीकार्थ—स्पष्ट न छे. (‘विहंगियाए. सिकएहिं, पच्छियपिंहएहिं’) अ
शब्दो आवेल छे. ते भार वहन करवा भाटेना विशेष साधनोना अर्थभां प्रयुक्त
करवाभां आव्या छे. वश, वेत्र वगैरथी निर्मितपात्र विशेषणुछे नाम पक्षितपिटक
छे. आ सूत्रनो सक्षेपभा बावार्थ अा प्रमाणे छे के समर्थ पुत्र ले उपकरणो

माह-हे प्रदेशिन् ! स एव पुरुषो यदि जीर्णः-वृद्धः यावत् त्रिचत्वारिंशदधिकैकशततमसूत्रोक्त विशेषणविशिष्टः, पुनः क्षुधापरिक्लान्तःक्षुधाखिन्नः, एतदृशः पुरुषो, जीर्णोपकरणः शरीरबलबुद्ध्याद्युपकरणरहितो भवति तदा एकं महान्तमयोभारं वा यावत्-शीशकभारं वा परिवोहं न प्रभुः-न समर्थो भवति, ताम्रण्ये वार्धक्ये च जीवस्य समानत्वेऽपि उपकरणाभावान्न वृद्धो भारं वोहो समर्थो भवतीति भावः । तन्-तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् ! त्वं भ्रूदेहि-मद्वचने विश्वसिहि-यथा अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो तद्वज्जीवः स शरीरम्, इति ६ । ॥सू० १४२॥

मूलम--तए णं से पएसी केसिकुमारसमणं एवं वयासी-अत्थि णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ, एवं खलु भते ! जोव विहरामि, तएणं मम णगरगुत्तिया जाव चोरं उवणेंति, तएणं अहं तं पुरिस जीवंतगं चैव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेयं अकुठवमाणे जीवियाओ ववरोवेमि मयं तुलेमि णो चैव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलिय-वा मुयस्स वा तुलियस्स केइ आणात्ते वा नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा

हे कि समर्थ पुरुष उपकरणों की बलवत्ता में लोहे आदिरूप भार को उठा सकता है. तथा वही समर्थ पुरुष उपकरणों की असमीचीनता में लोहे आदिरूप भार को नहीं उठा सकता है, तथा वही पुरुष वृद्धावस्थापन्न होने पर भी अयोभार को नहीं उठा सकता है. अतः इससे यही प्रतीत होता है कि जीव की समानता होने पर भी उपकरणों की असमानता में भारबहन नहीं होता है- इससे यह मानना चाहिये कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है । ६ ॥ सू १४२ ॥

अशकं होय तो होअउ वगेरेना बारने वहन करी शकं छे. तथा तेज समर्थ पुरुष ने उपकरणे अशकत-असमीचीन-होय तो होअउ वगेरे इय बारने वहन करि शकं तेम नथी तेमज तेज पुरुष वृद्धावस्थापन्न होवाथी होअउना बारने वहन करी शकं तेम नथी अथी आ वात स्पष्ट थाय छे के एवनी समानता होवा छता अउ उपकरणे (साधने)नी असमानताने वीधे बारस्त वहन करी शकय तेम नथी अथी आ वात मानी लेवी नेधअे के एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे । ६ । १४२ ।

तुच्छते वा गुरुयते वा लहुयते वा, जइ णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स होज्जा केइ नाणत्ते वा-जाव लहुयते वा तो णं अहं सइहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा लियस्स नत्थि केइ नन्नत्ते वा जाव लहुयते वा तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं चेव ॥सू० १४३ ॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-अस्ति खलु भदन्त! यावत् नो उपागच्छति, एवं खलु भदन्त! यावद् विहरामि, ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं जीवितकमेव तोलयामि तोलयित्वा छविच्छेदम् अकुर्वाणः जीविताद् व्यपरोप-

‘तए णं से पपसी इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पपसी केशिकुमारसमणं एवं वयासी). इसके बाद उस प्रदेशीने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा बुद्धि जन्य है अतः वास्तविक नहीं है. मुझे इस वक्ष्यमाण कारण से जीव और शरीर का भेद पतीत नहीं होता है (एव खलु भंते ! जाव विहरामि) वह कारण इस प्रकार से है—एक दिन की बात है, मैं गणनायक आदिको के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा हुआ था. (तए णं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवणेंति) इतने में मेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं जीवितगं चेव तुलेमि)

‘तए णं से पपसी’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—तए णं से पपसी केशिकुमारसमणं एवं (सी) त्मार पधी, ते प्रदेशी राज्ञे केशी कुमार श्रमणुने आ प्रभाणु कहुं (अत्थि णं भंते! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा बुद्धि जन्य छ अथी वास्तविक नहीं. वक्ष्यमाण कारणुथी एव अने शरीरनी क्षिन्नता भारा मनमा जभती नथी. (एवं खलु भंते ! जाव विहरामि) ते कारण आ प्रभाणु छ-अेक द्विवसनी वात छे के हुं गणनायक वगेरेनी साथे भाह्य उपस्थानशाला (अहारनी क्षेत्री)मा जेठो छतो. (तए णं मम नगर-गुप्तिया जाव चोर उवणेंति) ते वपते भारा नगररक्षके साक्षियुक्त वगेरे विशेषणुथी संपन्न केछ अेक चोरने पकडी लाया. (तए णं अहं तं पुरिसं

माह-हे प्रदेशिन् ! स एव पुरुषो यदि जीर्णः-वृद्धः यावत् त्रिचत्वारिंशदधिकैकशततमसूत्रोक्त विशेषणविशिष्टः, पुनः क्षुधापरिक्लान्तःक्षुधाग्निन्ः, एतदृशः पुरुषो, जीर्णोपकरणः शरीरबलबुद्ध्याद्युपकरणरहितो भवति तदा एकं महान्तमयोभारं वा यावत्-शीशकभारं वा परिवोहुं न प्रभुः-न समर्थो भवति, तारुण्ये वार्धक्ये च जीवस्य समानत्वेऽपि उपकरणाभावान्न वृद्धो भारं बोहु समर्थो भवतीति भावः । तन्-तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् ! इव श्रद्धेहि-मद्वचने विश्वसिद्धि-यथा अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति ६ । ॥सू० १४२॥

मूलम--तए णं से पएसी केसिकुमारसमणं एवं वयासी-अतिथि णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! जाव विहरामि, तएणं मम णगरगुत्तिया जाव चोरं उवणेति, तएणं अहं तं पुरिस जीवतंगं चव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेयं अकुवमाणे जीवियाओ ववरोवेमि मयं तुलेमि णो चव णं तस्सं पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलिय-वा मुयस्स वा तुलियस्स केइ आणात्ते वा नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा

हे कि समर्थ पुरुष उपकरणों की बलवत्ता में छोड़े आदिरूप भार को उठा सकता है, तथा वही समर्थ पुरुष उपकरणों की असमीचीनता में छोड़े आदिरूप भार को नहीं उठा सकता है, तथा वही पुरुष वृद्धावस्थापन्न होने पर भी अयोभार को नहीं उठा सकता है, अतः इससे यही प्रतीत होता है कि जीव की समानता होने पर भी उपकरणों की असमानता में भारबहन नहीं होता है- इससे यह मानना चाहिये कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है । ६ ॥ सू १४२ ॥

अशक्यं होयि तो बोधो उ वगेरेना बारने वहन करीं शकं छे, तथा तेज समर्थं पुत्रं जे उपकरणे अशक्यो अशक्यो-असमीचीन-होयि तो बोधो उ वगेरे इप बारने वहन करिं शकं तेम नथी तेमज तेज पुत्रं वृद्धावस्थापन्न होवाथी बोधो उना बारने वहन करीं शकं तेम नथी, ओथी आ वात स्पष्ट थाय छे के लुवनी समानता होवा छता ओ उपकरणे (साधने)नी असमानताने दीधे बारने वहन करीं शक्य तेम नथी ओथी आ वात भानी बोधी जेधे के लुव बिन्न छे अने शरीर बिन्न छे । ६ ॥ सू १४२ ॥

तुच्छते वा गुरुयते वा लहुयते वा, जइ णं भते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लहुयते वा तो णं अहं सदहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्ते वा जाव लहुयते वा तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं चेव ॥सू० १४३ ॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-अस्ति खलु मदन्त! यावत् नो उपागच्छति, एवं खलु मदन्त! यावद् विहरामि, ततः खलु मम नगरशुप्तिकाः यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं त पुरुषं जीवित्कमेव तोलयामि तोलयित्वा छविच्छेदम् अकुर्वाणः जीविताद् व्यपरोप-

‘तएणं से पएसी इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एवं वयासी) इसके बाद उस प्रदेशोने केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ) हे मदन्त ! यह उपमा बुद्धि जन्य है अतः वास्तविक नहीं है. मुझे इस वक्ष्यमाण कारण से जीव और शरीर का भेद प्रतीत नहीं होता है (एव खलु भते ! जाव विहरामि) वह कारण इस प्रकार से है—एक दिन की बात है कि मैं गणनायक आदिकों के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा हुआ था. (तएणं मम नगरशुप्तिया जाव चोर उवणेंति) इतने में प्रेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं जीवित्तगं चेव तुळेमि)

‘तएणं से पएसी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एवं (सी) त्थार पडी, ते प्रदेशी राज्ञे देशी कुमार श्रमणुने आ प्रभाणु कइ (अत्थि-णं भंते! जाव नो उवागच्छइ) हे मदन्त ! आ उपमा बुद्धि जन्य छ अथी वास्तविक नहीं. वक्ष्यमाण कारणुथी एव अने शरीरनी भिन्नता भारा मनभा जभती नथी. (एवं खलु भंते ! जाव विहरामि) ते कारणु आ प्रभाणु छे—अेक दिवसनी वाल छे के हुं गणनायक वगेरानी साथे बाह्य उपस्थानशाला (पहारनी कचेरी)भा जेठो छतो. (तएणं मम नगरशुप्तिया जाव चोर उवणेंति) ते वधते भारा नगररक्षके साक्षियुक्त वगेर विशेषणुथी संपन्न केअ अेक चोरने पकडी लाया. (तए णं अहं तं पुरिसं

यामि मृत तोलयामि ने चैव खलु तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृत-
स्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं वा उन्मात्रत्व वा तुच्छत्व वा गुरुकत्वं
वा लघुकत्वं वा, यदि खलु भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य
मृतस्य वा तोलितस्य भवेत् किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुत्वं वा तदा
खलु अहं श्रद्धयां तदेव, यस्मात् खलु भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा

उसे मैंने जीवित ही तोला (तुलेत्ता छविच्छेय अकुञ्चमाणे जीवियाओ
वधरोवेमि. मयं तुलेमि) तोल कर फिर मैंने उसे अंग भंग किये बिना
जीवम से रहित कर दिया और फिर मरे हुए उसे तोला (गो चैव णं
तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स केह नाणसे
वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा गुरुयत्ते वा लघुयत्ते वा) तब जीविततुले हुए
मैं और मरे तुले हुए उसमें मुझे किसी भी तरह की न्यूनाधिकता
नहीं दिखाई दी. न उस में भार बढ़ा न वह उसका भार कम हुआ न उसमें गुरुता
आई न उसमें लघुता आई. (जइ णं मंते। तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स
मयस्स वा तुलियस्स वा होज्जा केह नाणसे वा जाव लघुयत्ते वा) हे भदन्त!
जीविततुले हुए और मरे तुले हुए उस पुरुष में यदि कोई न्यूनाधिकता
हो जाती यावत् लघुता हो जाती (तो णं अहं सहहेज्जा तं चैव) तो मैं श्रद्धा कर लेता
कि जीव अन्य है, और शरीर अन्य है वह जीव शरीर नहीं है. वह शरीर जीव नहीं है.

जीवितगं चैव तुलेमि) मे' अवितावस्थाभां न तेहं वणन म्थुं' (तुलेत्ता छविच्छेयं
अकुञ्चमाणे- जीवियाओ वधरोवेमि, मयं तुलेमि) तोलीने पछी मे' तेने
अंग भंग म्थां वगर न एवन रहित जनावी द्विधा अने मयां पछी
इरी तेहं मे वणन कराव्थु. (गो चैव णं तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलि-
यस्स मयस्स वा तुलियस्स केह नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा
गुरुयत्ते वा लघुयत्ते वा) त्तारे एवता वणन करायेत्ता तेमा अने म्थु पाभ्या
पछी वणन करायेत्ता तेमा अने केह पञ्च जतनी न्यूनाधिकता लागी नहीं, तेमा भार
वधारे पञ्च थयो नहीं, अने तेमाथी भार ओछी पञ्च थयो नहीं
तेमां शुत्ता आवी नहीं तेम तेमा लघुता पञ्च आवी नहीं.
(जइणं मंते ! तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स
वा होज्जा केह नाणसे वा जाव लघुयत्ते वा) हे भदन्त ! एवीतावस्थाभां
करेत्ता वणनमा अने मृतावस्थावामा करेत्ता ते चारना वणनमा जे केह पञ्च जतनी
न्यूनाधिकता थध जत यावत् लघुता थध जत. (तो णं अहं सहहेज्जा तं चैव)

तोलितस्य मृत्तरय वा तान्त्रितस्य नाम्नि । काञ्चत् नानात्प वा यावत् लघु
कत्वं वा । तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा—तज्जीवः तदेव ॥मृ० १४३॥

टीका—'तए णं से पएसी' इत्यादि ततः तदनन्तरं ग्वलु स प्रदेशी राजा केशि
कुमारश्रमणम्, एवमवादीत हे भदन्त! अस्ति ग्वलु यावत् यात्पदेन 'एषा प्रज्ञा
तउपमाअनेन पुनः वक्ष्यमाणेन कारणेन' इत्येवां पदानां मङ्गलः एतद्वि-वरणं पूर्वं
तर (१४०) चत्वारिंशदधिकैशशततममृत्रे क्वनम्, नो उपाग
च्छति—जीवशरीरयोः परस्परं भेदो मे-मम मनसि न संगच्छते । तदे-

जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतरस वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स
नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव लहुयत्ते वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा-
तं जीवो तं चेव) जिस कारण हे भदन्त ! जीते हुए तोले गये उस
पुरुष में और मरे हुए तोले गये उसी पुरुष में जब कोई भिन्नता—
न्यूनाधिकता यावत् लघुता मैं नहीं देखता हूँ—उस कारण से मेरा यह
मन्तव्य कि वही पूर्वोक्त जीव है और वही शरीर है, न अन्य जीव है,
और न अन्य शरीर है सुस्थिर है ।

टीकार्थ—केशीकुमार श्रमण का जीव शरीर भिन्नता-विषयक कथन
सुनकर प्रदेशी राजाने उनसे इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! आपने जो यह
उपमा जीव शरीर की भिन्नता प्रकट करने के लिये प्रकट की है वह
केवल उपमामात्र है—बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं है. अतः जो वात

तो 'हुं' आ वात पर श्रद्धा करी शकत के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे ते एव शरीर
नथी अने शरीर एव नथी. (जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीव-
तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव
लहुयत्ते वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा, तं जीवो तं चेव) अथी छे
बहंत ! एवीतावस्थाभा वणन करायेल ते पुइंषमा अने भुतावरथाभा वणन करायेल
तेण पुइंषमा न्यारे कोइ पञ्च जातानी भिन्नता-न्यूनताधिकता यावत् लघुता भारो
ध्यानमा आवती नथी तेथी भारी अेवी मान्यता छे के के एव छे तेण शरीर छे.
एव अन्य नथी तेमण शरीर पञ्च अन्य नथी.

टीकार्थ—केशी कुमारश्रमण एव शरीर भिन्नता संबंधी कथन सांख्यीने
प्रदेशी राजासे तेमने आ प्रमाणे कइ के छे बहंत ! तमे एव अने शरीरणी-
भिन्नता स्पष्ट करवा भाटे के उपमा आपी छे ते मात्र उपमा न छे. ते बुद्धि-

वाऽऽह-एवं खलु हे मदत ! यावत्-यावत्पदेन 'वाह्यायामुपरथानशाला यामनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिकेभ्य श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-चेट पीठमर्दननगरनिगमदूतसन्धिपालैः सार्धं संपरिवृतः' इत्येकां पदानां सङ्गो बोध्यः, एषा व्याख्या पट्टत्रिंशदधिकगतनमसूत्रे गता । विहरामि-निवृत्ति,

मैं कह रहा हूँ उससे इन दोनों की अभिन्नता ही प्रकट होती है, यह बात इस प्रकार से है-मैं एक दिन गणनायक आदिकों के साथ अपनी बाह्य उपस्थान शाला में बैठा हुआ था. नगर रक्षक एक चोर को पकड़कर मेरे समक्ष लाये-मैंने उसे पहिले तो जीवितावस्था में तोला, बाद में उसे मार कर तोला तोलने पर उसके भार में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं आई. अतः इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उस चोर का वही जीव है और वही शरीर है. न जीव अन्य है और न शरीर अन्य है. यहाँ 'जाव नो उवागच्छह' में जो यावत्पद आया है उससे 'एषा प्रज्ञात उपमा, अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' इस पाठका संग्रह हुआ है. इनका विवरण १३८वें सूत्र में किया जा चुका है. 'जाव विहरामि' में आये हुए यावत्पद से 'वाह्यायामुपरथानशालाया अनेक गणनायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर, माडम्बिकेभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिका मात्य-चेट-पीठमर्दन नगर निगम-दूतसन्धिपालैः सार्धं संपरिवृतः' इस पाठ का

अन्य होवाथी अवास्तविक न छे. अथी न वात हु कहुं छु तेथी अथी अन्नेनी अभिन्नता न प्रकट थाय छे अथी वात आ प्रभाष्ये छे. हुं अथी द्विस गणनायक, वगेरेनी साथे भारी बाह्य उपस्थानशालाभा भेडो हुतो त्या नगररक्षको अथी चोरने पकडीने भारी साथे लाव्या. मे' पडेला तेनु एवता न वजन कथुं. त्यार पछी तेने भारीने पछी तेनु वजन कथुं. तो तेना वजनभा कौड पक्ष जातनी न्यूनाधिकता नष्ठा नहि अथी हुं आ निष्कर्ष पर आव्यो छु के ते चोरनो एव छे शरीर छे अने शरीर छे तेन एव छे एव अन्य नथी अने शरीर अन्य नथी अर्धी 'जाव नो उवागच्छह' भा नो यावत् पद आवेल छे तेथी (एषा प्रज्ञात उपमा, अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' आ पाठनो स अह थयो छे. आहुं स्पष्टीकरण १३८ भा सूत्र कस्वाभा आव्युं छे (वाह्यायामुपरथानशालाया अनेकगण नायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर माडम्बिक, कौटुम्बिकेभ्य, श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-चेट पीठमर्दन

ततः—तदा खलु मम नगरगुप्तिकाः—नगररक्षकाः समाक्षयं—साक्षियुक्तं यथा तथा यावत्—सहोदादिविशेषणविशिष्टं चौरमुपयन्ति—मत्समीपे समानयन्ति, ततः खलु अहं तं चौरं पुरुषं जीवितकमेव तोलयामि, तोलयित्वा छविच्छेदम्—अङ्गादिभङ्गम् अकुर्वाणः अकुर्वन्नेव जीविताद् व्यपरोपयामि—मारयामि, मारयित्वा पुनस्त मृतं तोलयामि, नैव च खलु तस्य मारित चोरपुरुषस्य जीवतःमतः तोलितस्य वा—अथवा मृतस्य च तोलितम्यक्तिवित्—किमपि नानात्वं—न्यूनाधिकत्वं पश्यामि, नानात्वस्य रूपं दर्शयति—उन्मावत्वं—माराधिक्यं, वा—अथवा, तुच्छत्वं—भाराल्पत्वं वा गुरुकत्वं—गुरुता वा, लघुकत्वं—लघुता वा, यदि खलु हे भदंत ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं यावत् लघुकत्वं वा भवेत्, तदा खलु अहं अर्द्ध्यां तदेव—अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवः स शरीरम् इति । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात् खलु तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चिद् नानात्वं लघुकत्वं वा, तस्मात् मे सुप्रतिष्ठिता—सुस्थिरा प्रतिज्ञा यथा तज्जीवः, तदेव—पूर्वैकमेव—तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति ॥सू० १४३॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएस्स रायं एवं त्रयासी-अत्थि णं पएसी । तुमे कयाइ वत्थी धंतपुठ्वे वा धमावियपुठ्वे वा ? हंतो अत्थि । अत्थि णं पएसी । तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा जाव लघुयत्ते वा णो इणट्ठे समट्ठे एवामेव पएसी! जीयस्स अगुरुलहुयत्तं पढुच्च जीवं तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, तं सहहाहि णं तुमं पएसी! तं चेव ७ ॥ सू० १४४ ॥

संग्रह हुआ है इन पदों की व्याख्या १३५वे सूत्रमें की जा चुकी है। 'जाव चौरं उपणेत्ति' में संसाक्षी सहोदादि विशेषणोंका यावत् पदसे ग्रहण हुआ है ॥सू० १४३॥

—नगर—निगम कृतसंघिपालैः साधं संपरिवृतः" आ पाठेने संग्रह थये छे। आ पदोनी व्याख्या १३५ भा सूत्रभा करवाभा आवी छे 'जाव चौर उपणेत्ति' भा संसाक्षी-सहोदादि विशेषणोय यावत् पदथी संग्रह थयुं छे ॥सू० १४३॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
अस्ति खलु प्रदेशिन् । तव वदाच्चिद् अस्तिः ध्मात्पूर्वे ध्मापितपूर्वो वा ?
हन्त अस्ति । अस्ति खलु प्रदेशिन् ! तस्य वस्तेः पूर्णरय वा तोलितस्य
अपूर्णस्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुकत्व वा ? ।
नायमर्थः समर्थः । एवमेव प्रदेशिन् जीवस्यागुरुलघुकत्वं प्रतीय जीवतो

‘त एणं से केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ— त एणं से केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी)
इसके बाद उन केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—
(अत्थि ण पएसी ! तुमे कयाह वत्थी घंतपुण्वे वा धमावियपुण्वे वा ?)
हे प्रदेशिन् ! तुमने कभी भस्त्रिका को वायु से पूरित की है, या किसी
से करवाई है ? (हंता अत्थि) तब प्रदेशीने कहा—हां, भदन्त ! हाँ है और
कराई है। (अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपु-
ण्णस्स वा तुलियस्स केह नाणत्ते वा जाव लह्यत्ते वा) पुनः केशीकुमार-
श्रमणने उससे कहा—हे प्रदेशिन् ! जब तुमने उस भस्त्रिका को वायु से
पूरित करके तोला तब, और वायु से अपूरितावस्था में तोला तब उसमें तुम्हें
कुछ न्यूनाधिकता यावत् लघुता दृष्टिगत हुई ? प्रदेशीने कहा—(णो इण्हे
समहे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उसमें न्यूनाधिकता यावत्
लघुता कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुई है (एवामेव पएसी जीवस्स अगुरुलघु-

‘त एणं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) त्वार
पथी ते केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कल्लु—(अत्थि णं पएसी !
तुमे कयाह वत्थी घंतपुण्वे वा धमावियपुण्वे वा ?) हे प्रदेशिन् ! तमे कौण्ड
पथु द्विसे बाज्जिक (धमण्णु) मा डवा बरी छे के कौण्डनी पासेथी वरावडावी छे ?
(इ ता अत्थि) त्वारे प्रदेशी राजाने कल्लुं, डा बडत । डवा बरी छे अने बराव-
डावी छे (अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स
वा तुलियस्स केह नाणत्ते वा जाव लह्यत्ते वा) करी केशीकुमारश्रमणे तेने
कल्लुं—हे प्रदेशिन् ! त्वारे तमे ते धमण्णु डवा बरीने वज्जन कथं अने पथी डवा
बडार, कौण्डने तेनुं वज्जन कथुं त्वारे तमने मा कथं क न्यूनाधिकता यावत् लघुता
बड्याथ ? प्रदेशीने कल्लु (णो इण्हे समहे) हे बडत । आ अर्थ समर्थ नहीं-
ओटले के न्यूनाधिकता यावत् लघुता कथं पथु बड्याथ नहि (एवामेव पएसी

वा तोलिनस्य मृतस्य वा तोलिनस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुकृत्वं वा, तत्र श्रद्धेहि खन्द् न्वं प्रदेशिन् ' तदेव ७।सू० १४४।।

टीका—“तए णं केसी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केतीकुमार-
श्रमणः प्रदेशिनं राजानम् पत्रमवादीत्—हे प्रदेशिन ! तत्र कदाचित्—अग्नि-
धित्काले अग्निः—दृमिः—चर्मगुट्हामन्त्रिका ध्मान्पूर्वः—पूर्वः ध्मानः—वायुभिः
पूरितः, वा-अथवा ध्मापितपूर्वः पूर्वं केनापि ध्मापितः—वायुभिः पूर्णः कारितः
इति केशिप्रश्नः, तत्र प्रदेशी प्राह—इन्त ! अस्ति । पुनः केशी पृच्छति
हे प्रदेशिन ! तस्य चस्तेः पूर्णस्य वायुभृतस्य तोलितस्य, वा-अथवा अपू-
र्णस्य—वायुभरपूरितस्य वा तोलितस्य मतः किञ्चित् किमपि नानात्वं यावत्
लघुकृत्वं वा अस्ति ? इति केशिप्रश्नः प्रदेशी प्राह—नायमर्थः समर्थः—
नानात्वसद्भावरूपोऽर्थो न विद्यते । केशी कथयति—एवमेव हे प्रदेशिन !
जीवरय अगुरुलघुकृत्वं—गुरुत्वलघुत्वगहितत्वं प्रतीत्य—आश्रित्य जीवतो वा
नेलिनस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघु-
कृत्वं वा, नत् तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन ! त्वं श्रद्धेहि मद्बचने श्रद्धां कुरु,
तदेव—यथा—नो तज्जोवःस शरीरम्, अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति, सू. १४४।।

पत्तं पञ्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केह नाणंते
वा जाव लङ्खयसे वा, तं सद्दहाहि णं तुमं पपसी तं चेव ७) तो इस्सी ।।
से हे प्रदेशिन ! जीव के अगुरुलघुत्व रहितपने को प्रतीत करके जीवित
अवस्था में तोले गये बाद में मृत अवस्था में तोले गये उस चोर के
शरीर में कुछ भी नानात्व अथवा लघुत्व नहीं है। इस कारण हे प्रदेशिन !
तुम मेरे बचन में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० १४४ ॥

जीवस्स अगुरुलङ्खयसं पञ्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स
नत्थि केह नाणंते वा जाव लङ्खयसे वा, तं सद्दहाहि णं तुमं पपसी तं
चेव ७) तो आ प्रभाषे हे प्रदेशिन ! एवना अगुरुलघुत्व शुभेन—शुभेनलघुत्व
रहितावस्थाने सामे शभीने एवितावस्थां कशयेदा ते शेरना वञ्चनमां अने भूत-
वस्थां कशयेदा ते शेरना वञ्चनमां केषं पञ्च अतत्तुं नानात्व हे लघुत्व नथी
अथी हे प्रदेशिन ! तमे भारी आ वात. पर विक्षास कशी वेा हे एव अन्य छे
अने शरीर अन्य छे. आ सूत्रनो टीकार्थ स्पष्ट अ छे. ॥१४४॥

मूलम्—तए णं पएसा राया केसिं कुमारसमण एव वयासा
 -अत्थि णं भंते! एसा जाव नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते! अहं
 अन्नया जाव चोरं उवणेति, तएणं अहं तं पुरिसं सव्वओ समंता
 समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीव पासामि, तएणं अहं तं पुरिसं
 दुहा फालियं करेमि करित्तो सव्वओ समंता समभिलोएमि, नो
 चेव णं तत्थ जीवं पासामि, एवं तिहा चउहा संखेज्जहा फालियं
 करेमि, नो चेव णं तत्थ जीव पासामि, जइ णं भंते! अहं तंसि
 पुरिसंसि दुहावा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा फालियंसि जीव
 पासेज्जा, तो गे अहं सद्वहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते! अहं तंसि
 दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा फालियोसे जीव न पासामि
 तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा, जहा-त जीवो न सरोर त चेव । सू, १४५।

छाया--ततः खलु प्रदेशी राजा केसिनं कुमारश्रमणमेवमवादीव-
 अस्ति खलु भदन्त ! एसा यावद् नो उवागच्छति. एवं खलु भदन्त ।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी) इसके
 बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते ! एसा
 जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं
 है इस वक्ष्यमाण कारण से मुझे जीव और शरीर का भेद प्रतीत नहीं
 होता है. वह वक्ष्यमाण कारण (एवं भंते !) हे भदन्त ! इस प्रकार से है

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी)
 त्पार पछी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाषे क्वु. (अत्थि णं भंते !
 एसा जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ एपमा बुद्धि प्रेरित होवाथी वास्त-
 विक्र नथी. आ निम्न कश्चिथी भासा मनभां एव अने शरीरनी विन्नानी वात
 लभती नथी. (एवं भंते) हे भदन्त ! ते आ प्रभाषे छे. (अहं अन्नया जाव

अहमन्यदा यावत् चोःमुपनयान्त, ततः खलु अहं, त पुरुषं मन्त्रेत्. समन्तात्
समभिलोके नैव खलु तत्र जीवं पश्यामि, ततः खलु अहं तं पुरुषं द्विधा स्फा-
टितं करोमि, कृत्वा सर्वतः समन्तात् समभिलोके. न चैव खलु तत्र जीव
पश्यामि, एवं त्रिधा = तुर्या संख्येयथा स्फाटितं करोमि न चैव तत्र जीवं
पश्यामि, यदि खलु मदन्त ! अहं नस्मिन् पुरुषे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा

(अहं अन्त्या जात्र चोः उवर्णेति) मैं एक दिन १३५वें सूत्र में कथित
अनेक गणनायक आदिको के साथ टपस्थानशाला में बैठा हुआ था वहाँ
पर मेरे नगर रक्षक मृमक्रिया बन्धन से बांधकर एक चोर को लाया
(तएणं अहं तं पुरिसं मन्वओ समंता समभिलोएमि) मैंने उस पुरुष को
मन्त्रक से लेकर चरणवर्धन अच्छी तरह से देखा (नो चैव णं तत्थ जीवं
पासामि) परन्तु मुझे जहाँ पर जीव देखने में नहीं आया (तएणं अहं
तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) इसके बाद मैंने उस चोर के दो
टुकड़े कर दिये. (करिता मन्वओ समंता समभिलोएमि) दो टुकड़े करने
के बाद फिर मैंने उसका अच्छी तरह से सब ओर से निरीक्षण किया
(नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) परन्तु फिर भी वहाँ पर मुझे जीव
देखने में नहीं आया (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि-नो चैव णं
तत्थ जीवं पासामि) तदनन्तर मैंने उसके तीन टुकड़े किये, चार टुकड़े
किये, यावत् संख्यात् (सिंठे) टुकड़े किये परन्तु फिरभी वहाँ मुझे जीव
नहीं दिखा (जहं णं भंते ! अहं तंसि पुरिससि दुहा वा तिहा वा चउहा

चोरं उवर्णेति) हुं अेक दिवसे १३५ भा सूत्रभां कथित धरुा गधु नाथकेवगेरे-
नी साथे आद्य टपस्थान शालानां भेठो हते. त्या भारा नगररक्षके अेक चोरने
अुशेकटाट आधीने भारी साथे लाव्या. (तएणं अहं तं पुरिसं मन्वओ समंता
समभिलोएमि) भे ते पुरिधने भरतकथी भांझीने पञ्च अधी सारी रीते भेथे.
(नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) पधु भने तेभां एव देभाथे नही. (तएणं
अहं तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) त्यार पधी भे ते चोर पुरिधना वे ककड
करी नाय्या. (करिता मन्वओ समंता समभिलोएमि) वे ककडयो करीने पधी
भे तेहं सारी रीते निरीक्षधु कथुं. (नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) पधु भने
त्यां एव देभाथे नही. (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि-नो
चैव णं तत्थ जीवं पासामि) त्यार पधी भे तेना पधु ककडा कथां, त्यार ककड कथां
यावत् संख्यात् (सिंठे) ककड कथां पधु छतां अे त्यां भने एव देभाथे नही.

संख्येयधा वा स्फाटिते जीवं पशयेयं, तदा खलु अहं भ्रष्ट्यां तदेव,
यस्मात् खलु भदन्त ! अहं तस्मिन् द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्ये-
यधा वा स्फाटिते जीवं न पश्यामि, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-
तज्जीवः स शरीरं तदेव । ॥मू० १४५॥

टीका—‘तए गं पयसी राया’ इत्यादि-ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं
मारभ्रमणम्, एवमवादीत्-हे भदन्त ! अस्ति खलु एषा इयम् यावत्-याव-
त्पदेन-‘प्रज्ञात उपमा, अनेन पुनः कारणेन’ इत्येषां पदानां संग्रहः, प्रज्ञप्तः-
बुद्धि विशेषाद् उपमाऽस्ति, किन्तु अनेन वक्ष्यमाणेन कारणेन भवदुक्तो
जीवशरीरभेदो नो उपागच्छति,-न संगच्छते । तत्कारणं दर्शयितुमुपक-
मते-एवं खलु हे भदन्त ! एवं-वक्ष्यमाणशरीरयो अहम् अन्यदा-अन्यमि-
न काळे यावत्-यावत्पदेन-वाह्यायामुपस्थानशालायां षट्त्रिंशदधिकैकशतम-
सूत्रोक्तानेकगणनायकादिपदादारभ्य ‘अचकोटकबन्धनशङ्क’ इति पर्यन्त-
पाठोक्तविशेषणविशिष्टं चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं सर्वतः-
अोपाद्मस्नकं, ममन्तात् साङ्गोपाङ्गं समभिलोके सम्यग् आभिमुख्येन पश्या-
मि किन्तु तत्र-तस्मिन्-चोरे जीवं नैव पश्यामि, ततः खलु अहं त-चोरं
द्विधा-द्विखण्ड स्फाटित-विदारितं करोमि कृत्वा सर्वतः समन्तात् समभिलोके,

धा संखेज्जहा वा फालियंसि जीवं पासेज्जा तो गं अहं सद्देज्जा तं चेव)
अतः यदि भदन्त ! मुखे उस पुरुष कं दो, तीन चार, अथवा सख्यान
दुकहे करने पर उसका जीव दिखना तो मैं आरके इस कथन पर विश्वास
कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. जीव शरीररूप नहीं
है, शरीर जीवरूप नहीं है (जम्हा गं भंते ! अहं तेसिं दुहा वा तिहा वा
चउहा वा संखिज्जहा वा फालियंसि जीवं न पासामि-तम्हा सुपट्टिया मे
पइण्णा-जहा तं जीवो तं शरीरं तं चेव) जिस कारण से हे भदन्त ! मैंने

(जम्हा गं भंते ! अहं तंसि पुरिसंसि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा
'फालियंसि जीवं पासेज्जा तो गं अहं सद्देज्जा तं चेव) अथी ने कहत !
अने ते पुइण्णा मे त्रसु थीर अथवा स थ्यात कइअथो करवाथी ते ने लुव नेवाभा आव्योहात
तो हुं तभारा आ कथन पर विश्वास करी देत के लुव अन्य छे अने शरीर अन्य छे. लुव
शरीररूप नहीं अने शरीर-लुवरूप नहीं. (जम्हा गं भंते ! अहं तंसिं दुहा वा
तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा, फालियंसि जीवं न पासामि-तम्हा सुपट्ट
ट्टि मे पइण्णा जहा तं जीवो तं शरीरं तं चेव) ने कइथी के कहत ! मे

किन्तु तदा जात्र नैव खलु पश्यामि—अनेन प्रकारेण त्रिधा—त्रयखण्ड स्फाटितं, चतुर्धा—चतुःखण्डं स्फाटितं संख्येयधा—संख्यातखःडं स्फाटितं करोमि, किन्तु तत्र तस्मिन् द्वित्रचतुःसंख्येयधा स्फाटिते चोरे जीव नैव पश्यामि, हे भदन्त! यदि खलु अहं तस्मिन्—चोरपुरुषे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्येयधा वा स्फाटिते जीवं पश्येयं तदा—जीवदर्शने खलु अहं श्रद्धयां भवतोके विश्व-स्याम् तदेव—नो तज्जीवः स शरीरम् अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्. इति, यस्मात् खलु हे भदन्त! अहं तस्मिन् चोरे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्ये-यधा वा स्फाटिते जी। न पश्यामि, तस्मात्—जीवादर्शनकारणात् मे—मम प्रतिज्ञा—स्वीकारः, सुप्रतिष्ठिता—सुस्थिरा यथा—तज्जीवः स शरीरं तदेव—नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति । ॥ सू० १४५ ॥

मूलम्—तए णं केसि कुनारसमगे पएसि रोयं एवं वयासी—मूढतए णं तुमं पएसी ताओ कट्टुहाराओ, ! के णं भते कट्टुहारए ? पएसी! से जहाणामए केइपुरिसो वणत्थी वणोवजीवी वणगवेसणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्टाणं अडविं अणुपविट्ठा, तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए—किंचिदेसं अणुपत्ता समाणा षणं पुरिसं एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिया! कट्टाणं अडविं पविसामो, एत्तो णं तुमं जोइभायणाओ जोइं गहाय अम्ह असणं साहेज्जासि, अह तं जोइभायणे जोई विज्जवेज्जा एत्तो णं तुमं कट्टाओ जोइ गहाय

उसके दो तीन चार अथवा संख्यात टुकड़े कर देने पर भी जीव नहीं देखा उस कारण से मेरा मन्तव्य कि जीव शरीररूप है और शरीर जीवरूप है. जीव भिन्न नहीं है, शरीर भिन्न नहीं है सुस्थिर है.

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १४५ ॥

तेना ये त्रयु शार अथवा सभ्यात कडकाओ कयो पछी पछु लव जेथो नहि ते ते कारखुथी भारी लव शरीररूप छे अने शरीर लवरूप छे, लव भिन्न नथी अने शरीर भिन्न नथी जेवी भान्यता सुस्थिर छे.

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १४५ ॥

अहं असणं साहेजासित्ति कट्टु कट्टाणं अडविं अणुपविट्ठा । तए णं
 से पुरिसे तओ मुहुत्तंतराओ तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमित्ति कट्टु
 जेणेव जोइभायणे तेणेव उवागच्छइ जोइभायणे जोइं विज्जायमेव
 पाइ, तएणं मे पुरिसे जेणेव से कट्टे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 तं कट्टुं सव्वओ समंता समभिलोएइ नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ,
 तए णं से पुरिसे परियर बंधइ फरसुं गिण्हइ त कट्टु दुहा फालियं
 करेइ सव्वओ समंता समभिलोएइ नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ
 एवं जाव सखेज्जहा फालियं करेइ सव्वओ समंता समभिलोएइ
 नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ, तए णं से पुरिसे तसि दुहा फालिए
 वा जाव सखेज्जहा फालिए वा जोइं अपासमाणे भंते तंते परितंते
 निव्विण्णे समाणे फरसु एगते एडेइ, परियरं मुयइ एव वयासी-
 अहो! मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो हिएत्ति कट्टु ओहयमण-
 संकप्पे चता सोगसागरसंपविट्ठे करयलपल्लत्थमुहे अट्टज्जाणोवगए
 भमिगयदिट्ठिए झियायइ तए णं ते पुरिसा कट्टाइं छिंदति जेणेव से
 पुरिसे तेणेव उवागच्छंति, तं पुरिसं ओहमयणसंकप्प जाव झियायमाण
 पासंति एव वयासी-किं णं तुंमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पे जाव
 झियायसि? तए णं से पुरिसे वयासी-तुज्झं णं देवाणुप्पिया!
 कट्टु णं अडविं अणुपविस णा एवं वयासी-अहं णं देवाणु-
 प्पिया! कट्टाणं अडविं जाव अणुपविट्ठा, तए णं अहं तत्तो मुहुत्तंत-
 राओ तुज्झं असणं साहेमित्ति जेणेव जोइभायणे जाव झियामि, तए णं

तेसि पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए दक्खे पत्तट्टे जाव उवएसलद्धे ते पुरिसे
 एवं वयासी—गच्छह णं तुज्जे देवाण्पिया ! पहाया कयवलिकम्मा
 जाव हव्वमागच्छेह जा णं अहं असणं साहेमिति कट्टु परिअरं ववइ
 फरसुं गिण्हइ सरं करेइ सरेण अरणिं महइ जोइं पाडेइ जोइ संधु-
 वखेइ तेसि पुरिसाणं अमणं साहेइ, तए णं ते पुरिसा पहाया कय-
 बलिकम्मा जाव पोयच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति,
 तए णं से पुरिसे तेसि पुरिसाणं सुहासणवरगयाणं त विउलं अ-
 सणं पाणं खाइमं साइमं उवणेइ। तए णं ते पुरिसा तं विउलं असणं
 पाणं खाइमं ग्हाइमं आसाएमाणा वीसाएमाणा जाव विहरंति ।
 जिमियभुत्तरोगयावि य णं समाणा आयंता चोक्खा परममुइभूया
 त पुरिसं एवं वयासी—अहो ! णं तुमं देवाण्पिया जड्डु मूढे अपं-
 ढिए णिव्विण्णागे अणुवएसलद्धे जे णं तुमं इच्छसि कट्टुसि दुहा
 फालियसि वा जाव जोइ पासित्तए, से एएणट्टेणं पएसी ! एवं वुच्चइ
 मूढतराए ण तुमं पएसी ! ताओ कट्टुहाराओ ८ । सू० १४६ ।

छाया—ततः खलु केशिकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—
 मूढतरकः खलु त्वं प्रदेशिन् ! ततः काष्ठहारात्, कः खलु भदन्त ! काष्ठ

‘तए णं केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणे पएसि रायं एवं वयासो) इसके
 बाद केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा (मूढतराए णं
 तुमं पएसी । ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तुम उस काष्ठहर से भी

‘तएणं केसिकुमारसमणं’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणं पएसि रायं एवं वयासी) त्यार ग्याह,
 देशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने ग्या भग्गळे कट्टु (मूढतराए णं तुमं पएसी !
 ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तमे भने पेवा कट्टुहरे कस्तं, यच्च पधारे

हारकः ! प्रदेशिन् ! ते यथानामहाः क्वचित् पुरुषाः वनार्थिनः वनोपजीविनः वनगवेषणया ज्योतिश्च ज्यानिर्माजनं च गृहीत्वा काष्ठानामटवीमनुप-
विष्टाः, ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् किञ्चिद्देशम-
नुगताः सन्तः एक पुरुषमेवमादिषुः—वयं खलु तेऽनुप्रिय ! काष्ठाना-
मटवीं प्रविशामः, इतः खलु त्वं ज्योतिर्माजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकम-

मूर्ध्नि अधिकं मूर्ध्नि प्रतात होते हो (कणं मते ! कट्टहरण) हे मदन्त !
वह काष्ठहर कैसा था ? इस प्रकार जब प्रदेशीने कहा—तब (पएसी)
केशीकुमारश्रमणने कहा—हे प्रदेशिन् ! मुनो (से उहा नामए केइ पुरिसो
वणस्थी वणोवजीवी वणगवेषणयाए जोडं च जोइमायणं च गहाय कट्टाणं
अहर्विं अणुपविट्ठा) कितनेन वनार्थी और वनोपजीवी काष्ठहारक पुरुष ये।
वन की गवेषणा करतेर किसी एक अटवी में प्रविष्ट हो गये, साथ में
उन्होंने अग्नि — रखने का आधारभूत पात्र ले रखा था, उस अटवी
में इन्धन बहुत था, (तएण ते पुरिसा तीसे अग्रमियाए अटवीए
किञ्चि देसं अणुपत्ता समाणा) जब वे पुरुष उस ग्रामरहित अटवी में कुछ
दूर तक पहुँच चुके, तब (एगं पुरिसं एवं वयासी) उन्होंने एक पुरुष
से ऐसा कहा—(अग्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अहर्विं पविसामो) हे देवानु-
प्रिय ! हमलोग इस काष्ठप्रधान अटवी में आगे प्रविष्ट होते हैं (एत्तो-
णं तुम जोइमायणाओ जोडं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि) तबतक तुम

मूर्ध्नि जागे छे, (कणं मते ! कट्टहरण) हे अहं ते काष्ठहर केवे हतो ? आ
प्रभावे न्यारे प्रदेशी राज्ञे कथं—त्यारे (पएसी) केशीकुमारश्रमणे कथं के हे
प्रदेशिन् ! सावणे (से जहानामए केइ पुरिसा वणस्थी वणोवजीवी वणग-
वेषणयाए जोडं च जोइमायणं च गहाय कट्टाणं अहर्विं अणुपविट्ठा) केटवक
वनार्थी अने वनोपजीवी, काष्ठहारक पुरुषे हता, तेभ्यो वनमां शोधता शोधतां
केहं अटवीमा प्रविष्ट थं गया, तेभ्ये पोतानी साथे अग्नि तेभ्य अग्निने
भूकवाभा भाटे आधारभूत पात्र लध राख्या हता, ते अटवीमा एकदाओ पुक्कण
प्रभासुमा हता, (तएण ते पुरिसा तीसे अग्रमियाए अटवीए किञ्चिदेसं
अणुपत्ता समाणा) न्यारे ते अघाते अग्ररहित निजं अटवीमा थोडी दूरगया
त्यारे (एगं पुरिसं एवं वयासी) तेभ्ये अकं पुरुषने आ प्रभावे कथं, (अग्हे
ण देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अहर्विं पविसामो) हे देवानुप्रिय ! अने अघा काष्ठ
प्रधान अटवीमा वयु अणण प्रवेशीओ छीओ, (एत्तो णं तुमं जोइमायणाओ जोडं

शन सोधयेः इति कृत्वा काष्ठानामटत्रामनुप्रविष्टाः। ततः खलु स पुरुष
ततो मुहूर्तान्तरात् तेषां पुरुषाणामग्नं माधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योति-
र्भाजनं तत्रैव उपागच्छति, ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यातमेव पश्यति, ततः
खलु स पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्

यहीं पर रह कर अग्नि के इस पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के
लिये भोजन तैयार करलो (अहं तं जोहं भायणे जोई विज्जवेत्त) यदि
उस पात्र में अग्नि बुझ जावे (एणं तुमं कट्ठाओ जोइं गहाय अम्हं
असणं साहेज्जासि तिक्हुं कट्ठाणं अहविं अणुपविट्ठा) तो देखो जो यह
छकड़ी पड़ी है सो इसमें से अग्नि को उत्पन्न कर लेना और हम-
लोगों के लिये भोजन बना लेना इस प्रकार कह कर वे उस इन्धन
वाली अटवी में आगे प्रविष्ट हो गये (तएणं से पुरिसे तओ मुहुत्त-
तराओ तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमिस्सि कट्हुं जेणेव जोइमायणे तेणेव
उवागच्छइ) उनके चले जाने पर उस पुरुषने ऐसा विचार किया—कि
चलो जल्दी से उन लोगों के लिये भोजन तैयार करलूँ—ऐसा विचार
करके वह जहाँ पर वह अग्नि का पात्र रखा था वहाँ पर गया (जोइ-
मायणे जोइं विज्जायमेव पासइ) वहाँ जाकर उसने उस ज्योतिपात्र में
अग्नि को बुझा हुआ ही देखा. (तएणं से पुरिसे जेणेव से कट्हुं तेणेव

गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि) त्या सुधी तमे अहीं रक्षीने अग्निना आ
पात्रमाथी अग्निने एधं अमारा माटे बोअन तैयार करे. (अहं तं जोइमायणे
जोईं विज्जवेत्ता) ओ आ पात्रमा अग्नि ओणवाधं अय. (एसोणं तुमं कट्ठा
ओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि तिक्हुं कट्ठाणं अहविं
अणुपविट्ठा) तो बुझो, आ एधं पड्यु छ, तेगाथी अग्नि उत्पन्न करी देखे
अने अमारा माटे बोअन तैयार करले आ प्रभाळे अधी विगत समअवीने तेओ
ते पुक्कण एधंवाणी अटवीमां आगण प्रविष्ट थधं गयो. (तएणं से पुरिसे
तओ मुहुत्त तराओ तेसिं पुरिसाणं साहेमिस्सि कट्हुं जेणेव जोइमायणे
तेणेव उवागच्छइ) तेओ अधा न्यारे त्याथी अत्ता रक्का त्यारे तेखे आ प्रभाळे
विचार करी है—साइं अही तेओ अधा माटे अमवाहुं तैयार करी एधं. आअ
विचार करीने ते न्यां अग्नि पात्र इत्तु त्या गयो. (जोइमायणे जोइं विज्जाय-
मेव पासइ) त्या अघने तेखे ते अग्निपात्रमा अग्निने ओणवाधं अयेव अ नेथे.
तएणं से पुरिसे जेणेव से कट्हुं तेणेव उवागच्छइ) त्यार पछी ते पुक्क

काष्ठं सर्वतः समन्तात् समभिलोकते, नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः परिकरं बध्नानति, गृह्णाति, तत् काष्ठं द्विधा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, एवं यावत् संख्येयघा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटिते वा यावत् संख्येयघा स्फाटिते वा ज्योतिरपश्यन् श्रान्तः तान्तः परितान्तः निर्विण्णाः सम पर-

उवागच्छइ) इसके बाद वह पुरुष बहा गया जहाँ वह काष्ठ पड़ा हुआ था (उवागच्छित्ता तं कट्टं सव्वओ समंता समभिलोएइ) वहाँ जाकर के उसने उस काष्ठ को चारों ओर से अच्छी तरह से देखा (णो चैव णं जोइं पासैइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे परियरं बधइ) तब उस पुरुषने अपनी कमर बांधी (फरसु गिण्हइ) कुल्लाड़ी उठाई और (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये (सव्वओ समंता समभिलोएइ) फिर उसे चारों ओर से अच्छी तरह से उसने देखा (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) इसी प्रकार से फिर उसके यावत् संख्यात टुकड़े तक कर दिये (सव्वओ समंता समभिलोएइ) परन्तु सब तरफ से अच्छी तरह देखने पर भी (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) उसे उनमें अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे न सि कट्टसि दुहा फालिए वा जाव संखेज्जहाफालिए वा जोइं अपास

त्या गथे ७था पेडुं ६१७ (६१७) पडेडुं ६१७ (उवागच्छित्ता तं कट्टं सव्वओ समंता समभिलोएइ) त्यां ७धने तेड्ढे ते ६१७अने आरे भागुथी सारी रीते जेथुं (णो चैव णं जोइं पासैइ) पथु तेभा तेने अग्नि देभाथे नहिं. (तए णं से पुरिसे परियरं बधइ) त्यारे ते पुरुषे पोतानी डेडभांधी. (फरसु गिण्हइ) कुल्लाड़ी हाथमां लीधी अने (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) ते ६१७अना जे कडडा करी नाभ्या (सव्वओ समंता समभिलोएइ) पथी तेड्ढे आरे तन्कथी तेने जेथुं. (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) पथु तेभा तेने अग्नि जेवाभां आव्ये नहिं. (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) आ प्रभावे पथी तेड्ढे तेना यावत् से कडा कडआओ करी नाभ्या (सव्वओ समंता समभिलोएइ) पथु तेभने आरे तरइ सारी रीते जेवा छतांजे (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) तेने तेभनामा अग्नि देभाथे नहिं. (तए णं से पुरिसे तंमिं कट्टसि दुहा फालियं वा जाव संखेज्जहा फालिए

शुमेकान्ते एदति (मृञ्चति) परिकरं मृञ्चति एवमवादीत् अहो ! मया
तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति अपहन्मनःसंकल्पचिन्ताशोकमागरम-
पविष्टः करनलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः भूमिगतदृष्टिको ध्यायति ततः
खलु ते पुरुषाः काष्ठानि छिन्दन्ति, यत्रैव स पुरुषः तत्रैवापागच्छन्ति.

माणे संते परितंते निचिण्णे ममाणे परसु एगंते एदेह) इसके घाट जब
उम पुरुष को उस काष्ठ के दो टुकड़े यात्रन संख्यात टुकड़े करने पर
भी जब अग्नि दिखाइ नहीं नी, तब वह थक कर, क्लान्त होकर, परितान्त
होकर विशेष दुःखित हुआ और उमने उम कुहाड़ी को किसी एकान्त स्थान
में रख दिया (परियरं मुयइ) कमर का बंधन भी खोल दिया (एव
वयासी) इस प्रकार कहने लगा (अहो मए तेसिं पुरिमाण असणे नो
साहि एत्तिकहु ओहयमणसंकल्पे चिन्तासोगसागरसंपादित्ते करतलपलत्थमुहे
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! मैं उन पुरुषों के लिये
मोजन तैयार नहीं कर सका अब क्या करूं ! इस प्रकार विचार कर वह
बसा ही दुःखित हुआ उसकी गमन मानसिक अभिलाषाएँ नष्ट हो गई
और वह चिन्ता, एव शोक रूपी समुद्र में निमग्न हो गया. कपोल पर
हथेली रख कर आर्तध्यान करने लगा दृष्टि उसकी नीचे जमीन की ओर
हो गई -इस प्रकार वह चिन्ता में फंस गया (तएणं ते पुरिसा कट्टाइ
छिंदंति) अब उन पुरुषोंने जब लकड़ियों को काटलियां- तब वे (जेणेव

वा जोई अपासमाणे संते तंते निचिण्णे ममाणे परसु एगंते एदेह)
त्यार पछी बंधारे ते पुइधने ते काठना जे टुकडायो यावत्सं यात टुकडायो कथा
पछी पछु न्याउ अग्नि जेवारा आये नहि, त्यारे ते थकीने, क्लान्त थकीने,
परितान्त थकीने विशेष दुःखित थये अने तेणे ते कुहाडीने कोठयेकात स्थाने भूकी
दीधी (परियरं मुयइ) कमर छु बंधन पछु पोखी नाउथुं (एव वयासी) पछी
ते आ प्रभावे कहेवा बाये. (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहि ए
त्तिकहु ओहयमणसंकल्पे चिन्तासोगसागरसंपादित्ते करतलपलत्थमुहे
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! हुं ते भाषसे भाटे खोजन
पनावी थकये नहि हवे थुं कउ ? आ प्रभावे विचार करीने ते पूब जे हुंभी
थये तेनी पछी मानसिक छंछायो नष्ट थई गई, अने ते चिन्ता अने शोकरूपी
समुद्रमा निमज्ज थई गये कपाण पर हथेली भूकीने ते आर्तध्यान करवा बाये
तेनी नजर अभीन तरई नीचे थई गई, आभ ते चिन्तामां खूमी गये. (तएणं
ते पुरिसा कट्टाइ छिंदंति) हवे ते भाषसेयो वाकडायो कापी दीधा त्यारे तेयो

काष्ठ सर्वतः समन्तात् समभिलोकते, नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः परिकरं वध्नाति, गृह्णाति, तत् काष्ठं द्विधा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, एवं यावत् संख्येयघा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटिते वा यावत् संख्येयघा स्फाटिते वा ज्योतिरपश्यन् श्रान्तः तान्तः परितान्तः निर्विण्णाः सप्त पर-

उवागच्छइ इसके बाद वह पुरुष वहा गया जहां वह काष्ठ पडा हुआ था (उवागच्छिता तं कट्टं सन्वओ समंता समभिलोएइ) वहां जाकर के उसने उस काष्ठ को चारों ओर से अच्छी तरह से देखा (णो चैव णं जोइं पासेइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ) तब उस पुरुषने अपनी कमर बांधी (फरसु गिण्हइ) कुल्लाडी उठाई और (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये (सन्वओ समंता समभिलोएइ) फिर उसे चारों ओर से अच्छी तरह से उसने देखा (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) इसी प्रकार से फिर उसके यावत् संख्यात टुकड़े तक कर दिये (सन्वओ समंता समभिलोएइ) परन्तु सब तरफ से अच्छी तरह देखने पर भी (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) उसे उनमें अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे नसि कट्टसि दुहा फालिए वा जाव संखेज्जहाफालिए वा जोइं अपास

त्या गथे न्या पेधुं क्खं (दाडुं) पडेधुं इत्तुं (उवागच्छिता त कट्टं सन्वओ समंता समभिलोएइ) त्यां न्धने तेष्से ते दाडुंने आरे भागुथी सारी रीते न्धेयुं (णो चैव णं जोइं पासेइ) पथु तेभा तेने अग्नि देभाथे नहिं. (एणं से पुरिसे परियरं बंधइ) त्यारे ते पुरुषे पोतानी डेउभांधी. (फरसु गिण्हइ) कुल्लाडी हाथमा लीधी अने (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) ते दाडुंने आरे कडुं करी नाभ्या (सन्वओ समंता समभिलोएइ) पथी तेष्से आरे तन्धेथी तेने न्धेयुं. (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) पथु तेभा तेने अग्नि न्धेवाभां आव्थे नहिं. (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) आ प्रभात्ते पथी तेष्से तेना यावत् से कडे कडुंने करी नाभ्या (सन्वओ समंता समभिलोएइ) पथु तेभने आरे तरस्स सारी रीते न्धेवा अत्तात्ते (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) तेने तेभनाभा अग्नि देभाथे नहिं. (तएणं से पुरिसे तंति कट्टसि दुहा फालियं वा जाव संखेज्जहा फालिए

शुभेकान्ते एदति (मृच्छति) परिकरं मृच्छति एवमवादीत् अहो ! मया
तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति अपहन्मनःसंकल्पचिन्ताशोकसागरम-
पविष्टः करमलपर्यस्तमुग्धः आतर्ध्यानोपगतः भूमिगतदृष्टिको धार्यात ततः
खलु ते पुरुषाः काष्ठानि छिन्दन्ति, यत्रैव स पुरुषः तत्रैवापागच्छन्ति.

माणे संते परितंते निचिण्णे समाणे परसुं एगंते एदेहं) इसके घाट जब
उम पुरुष को उस काष्ठ के दो टुकड़े यावन संख्यात टुकड़े करने पर
भी जब अग्नि दिग्वाह नहीं नी, तब वह थक कर, क्लान्त होकर, परितान्त
होकर विशेष दुःखित हुआ और उमने उम कुल्हाड़ी को किसी एकान्त स्थान
में रख दिया (परियरं मुयइ) कमर का बंधन भी ज्वोल दिया (एव
वयासी) इस प्रकार कहने लगा (अहो मए तेसिं पुरिसाण असणे नो
साहिण्णं त्तिकहुं उोहयमणसंकल्पे चिंतासोगसागरसंपाद्वे करतलपल्लयमुहे
अट्टसाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! मैं उन पुरुषों के लिये
भोजन तैयार नहीं कर सका अब क्या करू ! इस प्रकार विचार कर वह
बड़ा ही दुःखित हुआ उमकी गमन मानसिक अभिलाषाएँ नष्ट हो गई
और वह चिन्ता, एव शोक रूपी समुद्र में निमग्न हो गया. कपोल पर
हथेली रख कर आतर्ध्यान करने लगा दृष्टि उसकी नीचे जमीन की ओर
हो गई -इस प्रकार वह चिन्ता में फंस गया (तएणं ते पुरिसा कट्टाइं
छिंदंति) अब उन पुरुषोंने जब लकड़ियों को काटलियां- तब वे (जेणेव

वा जोइ अपासमाणे संते तंते निचिण्णे समाणे परसुं एगंते एदेहं)
त्यार पछी ज्यारे ते पुइने ते काठना जे टुकडायो यावत्संख्यात टुकडायो कथां
पछी पछु ज्यारे अग्नि जेवामा आये नहि, त्यारे ते थकीने, क्लान्त थडने,
परितान्त थडने विशेष दुःखित थये अने तेजे ते कुल्हाडीने काठज्येकांत स्थाने भूकी
दीधी (परियरं मुयइ) कमरह बंधन पय जेदी नाशु (एव वयासी) पछी
ते आ प्रभाजे कडेवा बाये (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिण्णं
त्तिकहुं उोहयमणसंकल्पे चिंतासोगसागरसंपाद्वे करतलपल्लयमुहे
अट्टसाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! हुं ते भावसे भाटे बोजन
जनाची शक्यो नहि हवे थुं कड ? आ प्रभाजे विचार करीने ते थूज जे हुंभी
थये तेनी जधी मानसिक छंछायो नष्ट थध गध, अने ते चिंता अने शैकश्यी
समुद्रमां निमज्ज थध जये कथाण पर हथेली भूकीने ते आतर्ध्यान करवा बांधे
तेनी नजर जमीन तरक्ष नीचे थध गध, आम ते चिंतामां लुपी जये. (तएणं
ते पुरिसा कट्टाइं छिंदंति) हवे ते भावसेज्यो काठज्यो कापी दीधा त्यारे तेज्यो

तं पुरुषमपहतमनःसंकल्प यावत् ध्यायन्तं पश्यन्ति, एवमवादिषुः—किं खलु त्वं देवानुप्रिय ! अपहतमनःसंकल्पः यावत् ध्यायसि ? ततः खलु स पुरुष एवमवादीत्—यूय खलु देवानुप्रियाः ! कण्ठानामटवीमनुप्रविशन्तः मम एवमवादिषुः—वय खलु देवानुप्रिय ! कण्ठानामटवी यावत् अनुप्रविष्टाः,

स पुरिसे तेणेव उवागच्छति) जहा वह पुरुष था, वहाँ पर आये तं पुरिसं ओहयमणसंकल्प जाव सिंयायमाणं पामंति) वहाँ आकरके उन्होंने उम पुरुष को मानसिक अभिलाषाओं से रहित हुआ और शोक तथा चिन्तारूपों मागर में निमग्न हुआ, कपोल पर हथेली रख कर आतं ध्यान करता हुआ, एव नीचे दृष्टि किये हुए देवा, देखकर फिर उन्होंने (एव वयासी) उससे ऐसा कहा—(किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकल्पे जाव सिंयायसि) हे देवानुप्रिय ! तूम किस कारण से अपहतमनःसंकल्प वाले बने हुए हो और यावत् चिन्ता कर रहे हो (तएण से पुरिसे एव वयासी) तब उस पुरुषने उनसे ऐसा कहा—(तुज्जे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अहविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी) हे देवानुप्रियों ! आपलोग जब लकड़ी काटने के लिये बटही में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हुए थे—तब मुझसे ऐसा कहा था—(अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाण अहविं जाव अणुपविट्ठा) हे देवानुप्रिय हम लोग लकड़ो काटने के लिये इस जंगल में आगे जाते

(जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति) तथा ते पुंश्व इतो, त्या गया (तं पुरिसं ओहयमणसंकल्पं जाव सिंयायमाणं पामंति) त्या अर्धने तेमञ्जे ते पुंश्वने मानसिक धन्धलाओं जेनी नष्ट पामी छे जेवे अने शेक तेमञ्ज सिंता इपी समुद्रमा निमग्न थयेत कपोल पर हथेली भूझीने आतं ध्यान करतो अने नीची दृष्टि करेवो जेयो. जेधने पछी तेमञ्जे (एवं वयासी) तेने आ प्रभाञ्जे कट्टुं—(किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकल्पे जाव सिंयायसि) हे देवानुप्रिय ! तमे था कारवुथीअपहत मन संकल्पवाणा थर्र गया छि अने यावत् सिंता करी रह्या छि. (तएण से पुरिसे एव वयासी) तारे ते पुंश्वे तेमने आ प्रभाञ्जे कट्टुं (तुज्जे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अहविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी) हे देवानुप्रियो ! तमे सी अचारे लाकडाओं कापवा भाटे अटवीमा प्रविष्ट भवा तैयार थया इता तारे मने आ प्रभाञ्जे कट्टुं इतु—(अम्हेणं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अहविं जाव अणुपविट्ठा) हे देवानुप्रिय ! अमे अथा लाकडाओं कापवा भाटे आ अटवीमा आगण अर्धञ्जे छीञ्जे तो तमे त्या सुधी अग्नि पात्रमाथी अग्नि दधने

ततःखलु अहं ततो मुहुर्तान्नरात युष्माकमशन साधयामि' इति क्त्वा
यत्रैव ज्योतिर्माजन यावत् ज्योयामि, ततः खलु तेषां पुरुषाणामेकः पुष्पः

है-सो तुम तब तक अग्नि के पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के
लिये भोजन बनाना. यदि उस पात्र में अग्नि बुझ जावे तो तुम इस
काष्ठ से ज्योति-अग्नि को तैयार कर लेना और हम लोगों के लिये भोजन
बनाना, इस प्रकार कह कर आपलोग अटवी में प्रविष्ट हो गये, (तर्णं
अहं ततो मुहुस्ततराओ तुञ्जे अमण साहेमि त्तिकट्टु जेणेव जोइभायणे
जाव झियामि) इसके बाद मैंने ऐसा विचार किया कि बलो बहुत जल्दी
आप लोगों के लिये भोजन बनाद-ऐसा विचार कर ज्यो ही मैं जहां
वह ज्योति भाजन (अग्निपात्र) रखा था. वहां पर गया-तो क्या देखता हू कि
उसमें अग्नि बुझी पड़ी है. फिर मैं जहां वह काष्ठया-वहां पर गया. वहां
जाकर मैंने उस काष्ठ को अच्छी तरह से सब ओर से देखा, परन्तु मुझे वहां
अग्नि दिखाई नहीं दी, फिर मैंने अपनी कमर कसी और कुठार को
लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े किये फिर मैंने उसे सब ओर से अच्छी
तरह देखा परन्तु फिर भी मुझे वहां अग्नि के दर्शन नहीं हुए इस तरह
फिर मैंने उसके तीन चार यावत् सैकड़ों तक टुकड़े कर डाले और
उन सब को अच्छी तरह से चारों ओर में देगा. परन्तु वहां कहीं भी

अमारा भाटे खोजन तैयार करे ते पात्रमा अग्नि खोजवळ नथ तो तमे ते
काष्ठमाथी अग्नि उत्पन्न करी खेजे. अने अमारा भाटे खोजन तैयार करजे आम
कडीने तमे अथा अटवीमा प्रविष्ट थछ गया हता (त एणं अहं ततो मुहुस्त-
तराओ तुञ्जे अमण साहेमि त्तिकट्टु जेणेव जोइभायणे जाव झियामि)
त्यार पछी मे आ जाततो विचार कर्यो हे याखो, अहु न नखी तमारा भाटे
खोजन तैयार करी लळ आम विचार करीने हु ज्यारे अग्निपात्र जथा राख्यु
हत्तुं त्या गथे तो तेमा अने अग्नि खोजवळ गथेव हेभाथे त्यार पछी हुं जथां
वाकडुं हत्तुं त्या गथे. त्या जधने मे ते काष्ठने सारी रीते ज्येथु, यारे तरकू ज्येथुं
पथु अने तेमा अग्नि हेभाथे नहि पछी मे कुंभर आधी अने कुडाडी लधने ते
काष्ठ (काठडा)ना जे ककडाज्यो कथां पछी ते ककडाज्योने यारे तरकूथी सारी रीते
ज्येथे अने तेमा पथु अग्नि हेभाथे नहि. आम मे तेमा त्रथुयार त्रथुयार
ककडाज्यो करी नाथ्या अथा ककडाज्योने यारे तरकूथी सारी रीते ज्येथे पथु त्यां अने
ज्या पथु अग्नि हेभाथे नहि त्यारे हु थार्कने, तान्त, परितान्त थधने अने जेह

छेकः दक्षः प्राप्तार्थः यावत् उपदेशलब्धः तान् पुरुषान् एवमवादीत्—
गच्छत खलु यूय देवानुमियाः ! स्नाताः कृतबलिकर्मणः यावत् शीवमा-
गच्छत यावत् खलु अहमशनं साधयामीति कृत्वा परिकरं बध्नाति परशुं

मुझे अग्नि का नामतक भी नहीं पाया तब मैंने थककर तान्त, परि-
तान्त होकर और खेद विघ्न होकर कुल्हाड़ी को एकान्त में एक ओर
रख दिया और कमर को खोल दिया—फिर मैंने ऐसा विचार किया—मैं
अपहृतमनः सकल्पवाला बना हुआ शोक एव चिन्तारूपी समुद्र में डूबा
हूँ. कपोल पर हथेली रखकर बैठा हुआ हूँ, आर्तध्यान कर रहा हूँ
और लज्जा के मारे जमीन की ओर देख रहा हूँ (तएणं तेमिं पुरि
साण एगे पुरिसे छेए दक्खे, पत्तट्टे जाव उवगमलद्धे ते पुरिसे एव
वयासी) इस के बाद उन पुरुषों के बीच में एक पुरुष ऐसा था जो
छेक-अवसर का ज्ञाता था, दक्ष-कार्यकशल था, प्राप्तार्थ-अपनी कुशलता
से जिसने साध्यार्थ-को अधिगत कर लिया था, यावत् गुरूपदेश जिमने
प्राप्त किया था. उसने उन काष्ठहारक पुरुषों से ऐसा कहा—(गच्छह ण
तुवञ्जे देवानुप्पिया ! ण्हाया, कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा ण
अह असण साहेमि त्त कट्टुं परिकरं बध्द) हे देवानुमियाँ ! आप लोग
जाइये, स्नान कीजिये, बलिकर्म-काक आदि को अन्नाद का भाग देने

पिन्ना यधने कुहाडीने अेक तरक्क भूधी दीधी अने भाषेदी केठ भोली नाथी पछी
मे आ जतनेो विचार कर्यो. हुं ते भाषुसेो भाटे वेोजन जनवी शक्यो नहि
आ केवी दु.भ अने आश्रियंनी वात छं आ प्रभाषे विचार करीने हुं अपहृत
मन सद्वेषवाणेो यधने शोक अने चित्तारुपी समुद्रमा मन यधने, कपोल पर
हथेली भडीने जेठो छु, अने आर्तध्यान करी रह्यो छु शर्मथी भारी नजर नीच्यी
अमीन तरक्क वणी गछ छे (तएणं तेमिं पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए दक्खे,
पत्तट्टे जाव उवगम लद्धे ते पुरिसे एव वयासी) त्थार पछी ते भाषुसेोमा अेक भाषुस
अेवो पक्ष हुतो के ने छेक थोअ्य समयने पिछाअुनार, दक्ष-कार्यकुशल प्राप्तार्थ-
पोतानी कुशलताथी-जेणे साध्यार्थ प्राप्त करि दीघो छे, अेवो यावत् गुरूपदेश जेणे
प्राप्त कर्यो छे अेवो हुतो तेणे काष्ठहारक भाषुसेोने आ प्रभाषे कल्लु (गच्छह णं
तुवञ्जे देवानुप्पिया ! ण्हाया, कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा णं अहं
असण साहेमि त्त कट्टुं परिकरं बध्द) हे देवानुमियाँ (तमेवे) स्नान करो,
बलिकर्म-काक वगेरे अन्न वगेरेना भाग आपीने निश्चिन्त यधं जव. यावत्

गृह्णाति गृहीत्वा शरं कराति शरेण अरणं मथनाति ज्योतिः पातयतिः ज्योतिः संघुक्षते तेषां पुरुपाणामशनं साधयति ततः खलु ते पुरुपाः स्नाताः कृतबलिकर्माणः यावत् प्रायश्चित्ताः यत्रैव म पुरुषः तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः खलु म पुरुषः तेषां पुरुपाणां सुखासनवरगतानां तद् विपुलमशनं पानं खादितं

रूप कार्यं से निश्चिन्त हो जाइये, यावत् कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त कर लीजिये और फिर जल्दी आजाइये तबतक मैं आपलोगों के लिये भोजन तैयार करता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी आग (फरसु गिण्डह) कुचहाडी को उठाया (मरं करेइ, शरेण अरणं महेइ) उमसे पफिले उसने लहक्री को इतना छीला कि जिमसे वह वाण के जैसी गलाई के रूप में हो गई. फिर उससे उसने अणिकाष्ठ का मथन किया (जोइ पाहेइ) मथन करने से अग्नि उसमें प्रकट हो गई (जोइ संघुक्खे) प्रकट हुई उस अग्नि को उमने पवन वगैरह आदि साधनों से विशेष चैतन्य किया. अर्थात् धोंका (तेसि पुरिसाण असणं साहेइ) अग्नि के तैयार हो जाने पर फिर उसने उन सब ईरुषो का भोजन बना दिया (तएण ते पुरिसाणाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छह) इतने में वे पुरुष स्नान करके, बलिकर्म—काकआदि को अन्नादि का भाग दे करके यावत्—कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करके उस ध्यान पर आये-

कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करी लो. अने पछी जल्दी अही उपास्थित थछ जव आटलाभा हुं तभारा भाटे बोअन तैयार करे छु आभ कहीने तेबे पोतानी केइ आधी अने (फरसु गिण्डह) कुहाडी हाथमा लीधी (मरं करेइ शरेण अरणं महेइ) तेबे सो पहेला हाकडाने जेवी संते छैद्य के जेथीते आसु जेवी शलाका जेवु थयुं पछी तेनाथी तेबे अरबि हाथत मथन कथुं (जोइ पाहेइ) मथन करवाधी तेभाथी आअन प्रकट थछ गयो (जोइ संघुक्खे) प्रकट थयेत ते अग्निने पवन वगर साधनेथी तेने सविशेष प्रवक्षित कथे (तेसि पुरिसाण असणं साहेइ) अग्नि ज्यारे प्रवक्षित थछ गयो त्यारे तेबे ते अथा लोके भाटे बोअन तैयार कथुं (तएण ते पुरिसाणाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छह) आटलाभा ते अथा आसुसे स्नान करीने, अदिकभं—हाकड वगेरेने अन्न वगेरेनो भाग आपीने यावत् कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करीने ते ज्य्याजे आवी गया जया ते पुरेण हतो. तएण से पुरिसे तेसि पुरिसाणं सुहासनवरगयाणं तं विउलं असणं पाणं खादितं साइमं उवणेइ तएणं ते पुरिसा

स्वादिमम् उपनयति, ततः स्वलु ते पुरुषाः तद् विपुलमशनं पानं स्वादि मं
स्वादिमम् आस्वादयन्तो विस्वादयन्तो यावद् विहरन्ति, जिमितभुक्तो, स
रागता अपि च स्वलु मन्तः आचान्ताः चोक्षा. परम चिभूताः तं पुरुष-
मेवमवादिषुः—अहो ! ! स्वलु त्व देवानुमिय ! जहः मूढः अपण्डितः निर्विज्ञानः
अनुपदेशलब्धः यः स्वलु त्वामच्छमि काष्ठं द्विषा स्फाटिते वा यावत्

जहां कि वह पुरुष था. (तएण से पुरिसे नेभिं पुरिस्ताणं सुहासणवरगया णं
तं विउलं असणं पाणं स्वाइमं साइमं उवणेइ, तएणं ते पुरिमा तं विउलं असण
पाणं स्वाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा जाव विहरंति) वहां
आकरके वे सबके सब पुरुष अपनेर सुन्वासन पर बैठ गये. उनके बैठ
जाने पर फिर उस पुरुष ने उस प्रचुर खाद्य आदि सामग्री को लाकर
उनके समझ रख दिया और परोस दिया, उन सबने उस भोजन सामग्री
चारी प्रकार के आहार को—उसका स्वाद जानने के लिये पहिले तो
चखा रुचि से उसे खाया (जिमियसुत्तरागया त्रि य ण समाणा आयंता
चोक्खा परमसुहभूया तं पुरिसं एवं वयासी) स्वापीकर जब वे निश्चिन्त
हो गये—तब वहां से उठे, और उठकर आचमन किया, आचमन—कुछा
करने के बाद फिर उन्होंने अपने हाथ मुह आदि को अच्छे र
से धोकर साफ किया इस तरह परम शुचियुक्त होकर फिर उन्होंने
उस पहिले पुरुष से प्रेम कहा—(अहो णं तुम देवाणुप्पिया ! जह्णे, मूढे,
अपण्डिण निर्विज्जणाणे, अणुवएसलद्धे, जे ण तुम इच्छसि कट्ठंसि कुहा

तं विउल असणं पाण स्वाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा जाव
विहरंति) त्या अधने तेओ अधा पुइषे पोतपोताना स्थाने सुभासन पर भेसी
अया तेओ व्यारे भेसी गया त्यारे ते पुइषे ते प्रचुर भाध वगेरे सामग्गीने दावीने
तभनी सामे भूकी हीधी अने पीरसी हीधी तेओ अधाओ ते बोअन सामग्गीने
आरे प्रकरना आह(रने—तेना स्वाहने अलुवा भाटे पहेला तो तेने आओये पछी
भूल इच्छिपूर्वक तेने अया (जिमियसुत्तरागया त्रि य णं समाणा आयंता
चोक्खा परमसुहभूया तं पुरिसं एवं वयासी) आह—धीने अयारे तेओ निश्चिंत
अर्थ गया त्यारे तेओ त्वाथी उवा थया अने उवा थधने आचमन—कोगणा—करीने
पछी तेभजे पोताना हाथ ओ वगेरेने चारी शीते धाधने स्वच्छ कर्या. आ प्रभाजे
परम शुचियुक्त धधने पछी तेभजे ते पहेला पुरुषने आ प्रभाजे कथं. (अहो णं
तुमं देवाणुप्पिया ! जह्णे । मूढे अपण्डिण निर्विज्जणाणे, अणुवएसलद्धे, जे णं

ज्योतिर्द्वष्टुम्, तदेतेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते मूढतरक. खलु त्वं
प्रदेशिन् ! ततः काष्ठहारकात् ॥ मृ० १४६ ॥

टीका—'तए णं केसिकुमारसमणे' इत्यादि—ततः खलु केशिकुमारश्र-
मणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्—हे प्रदेशिन् ! ततः—तस्मात् काष्ठहारात्
पुरुषात् त्वं मूढतरकः—अतीव मूर्खः खलु प्रतिभासि ! तत्र प्रदेशी हेतुं
पृच्छति—हे मदन्त ! कः खलु असौ काष्ठहारकः ? केशी प्राह—हे प्रदेशिन् !

फालियंसि वा जाव जोइं पासित्तए) हे देवानुप्रिय ! तुम जह हो, अग्नि
की उत्पन्न करने के साधन से अनभिज्ञ हो, मूर्ख हो—विवेक रहित हो,
अपण्डित हो—प्रतिभा से युक्त नहीं हो, निर्विज्ञान—कुशलता तुम में नहीं
है, अनुपदेशलब्ध—तुम ने इस विषय में गुरु का उपदेश प्राप्त नहीं किया
है, अर्थात् अशिक्षित हो, इसीलिये लकड़ी में अग्नि को पाने के लिये
तुमने उसे फाड़ा है, दो टुकड़े किये है, तीन टुकड़े किये हैं, चार टुकड़े
किये हैं. यावत् संख्यात टुकड़े किये है, फिर भी तुम उसमें अग्नि
नहीं देख सके—अतः तुम सच्चेरूप में मूढत्वाद पूर्वोक्त विशेषणों से शून्य
नहीं हो. (से एणट्टेणं पएसी ! एवं बुद्ध मूढतराए णं तुमं पएसी !
ताओ कट्टहाराओ) इस प्रकार से मूढतरत्वसाधक दृष्टान्त का कथन कर
उपसंहार करते हुए अब केशी प्रदेशी से कहते है—हे प्रदेशिन् ! तुम
इस दृष्टान्तोक्त पुरुष की अपेक्षा भी अधिक मूर्ख हो जो तुम पुरुष के
शरीर को छिन्न भिन्न करके उसके जीव को देखने के लिये अभिलोषी बने हो ।

तुमं इच्छसि कट्टंसि दुहा फालियंसि वा जाव जोइं पासित्तए) हे देवानु-
प्रिय ! तमे जह हो, अग्नि उत्पन्न करवाना साधनથી अनभिज्ञ हो, मूर्ख हो,
विवेक रहित हो, अपण्डित हो, प्रतिभा रहित हो, निर्विज्ञान—कुशलता रहित हो,
अनुपदेशलब्ध—तमोअये आ भागतमा गुइंओ उपदेश प्राप्य कुर्यो नथी, ओटवे हे तमे
आशिक्षित हो, अथी ज लाकडीभांथी अग्नि भेजववा भाटे तमे तेना ककडा करी
नाअया हो. जे ककडा करी नाअया हो. त्रसु ककडा करी नाअया हो, चार ककडाअये करी
नाअया हो यावत् संख्यात ककडाअये करी नाअया हो. छतां अये तमने तेमां अग्नि
हेभाये नहि. अथी तमे अरेअर मूढत्व वगेरे पूर्वोक्त विशेषणोअथी रहित नथी.
(से एणट्टेणं पएसी ! एवं बुद्ध मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ कट्ट-
हाराओ) आ प्रभाअे मूढतरत्व साधक दृष्टात कडीने उपसंहार करता केशी प्रदेशीने
कहेवा लाअया हे हे प्रदेशिन ! तमे आ दृष्टान्तमां आवेल पुइण करतां पसु वधारे
मूर्ख हो हेमके तमे भाअुसना शरीरना ककडा करीने तेमना अवनो जेवा तत्पर थया हता,

ते यथानामकाः अनिर्दिष्टनामानः केचित् पुरुषाः वनार्थिनः-वनमेवार्थोऽ-
 स्त्येषामिति वनार्थिनः-वनप्रयोजनयुक्ताः वनोपजीविनः वनेन वन्यकाष्ठादिना
 उपजीविनः जीवननिर्वाहकारिणः काष्ठहारका इत्यर्थः, वनगवेषणया-वनजिज्ञा
 सया ज्योतिः-अग्निं च ज्योतिर्भाजनम्-अग्निपात्र च गृहीत्वा काष्ठानाम्-
 इन्धनानाम् स्थानभूताम् अटवीम् अनुप्रविष्टाः, ततः-तदनन्तरम् ते पुरुषाः
 तस्याः अग्न्यामिकायाः-जनवसतिरहितायाः, अटव्याः किञ्चिद्देश-स्वल्पदे-
 शम् अनुभाप्ताः-क्रमेण गताः सन्तः एक पुरुषम् एवमवादिषुः-हे देवान्प्रिय !
 वयं काष्ठानामटवीं प्रविशामः, इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात्-अग्निपात्रात्
 ज्योतिः अग्निं गृहीत्वा अस्माकमशनं साधयेः-निष्पादयेः, अथ-भोजन-
 निष्पादनसमये ज्योतिर्भाजने तत्-पूर्वतो रक्षितं ज्योतिः विध्यायेत्-
 शाम्येत् तदा इतः-एतस्मात् काष्ठात् खलु त्वं ज्योतिः-अग्निं गृहीत्वा
 अस्माकमशनं साधयेः इति कृत्वा-इत्याज्ञाप्य ते काष्ठहारकाः काष्ठाना
 मटवीमनुप्रविष्टाः, ततः-तेषां गमनानन्तरं खलु स पुरुषः तत-मुहूर्त्त-
 न्तरात्-किञ्चित्कालानन्तरम् तेषां-वनं प्रविष्टानां पुरुषाणाम् अशनं साध-
 यामीति कृत्वा-इत्यभिप्रेत्य यत्रैव-यस्मिन्नेव स्थाने ज्योतिर्भाजनमासीत्
 तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, परन्तु ज्योतिर्भाजने-अग्निपात्रे ज्योतिः-
 अग्निम् विध्यातमेव-प्रशान्तमेव पश्यति, ततः खलु सः-अशननिष्पादनार्थी
 पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य तत् काष्ठं सर्वत
 समन्तात् समभिलोकते नो चैव-नैव खलु तत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिं पश्यति,
 ततः-तदनन्तरम् स पुरुषः परिकरं कटिन्वनं ध्रान्तिं वरशु-कुठारं गृह्णाति तत्
 काष्ठं द्विधा स्फाटितं-विदारितं करोति-सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो
 चैव खलु तत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिं पश्यति, एषम्-अनेन प्रकारेण यावत्-
 यावत्पदेन 'त्रिधा स्फाटितं चतुर्धा स्फाटितम्' इत्येषां पदानां सङ्गो
 बोध्यः, संख्येयधा-संख्यातखण्डं स्फाटितं करोति कृत्वा सर्वतः सम-
 न्तात् समभिलोकते, नो चैव तत् ज्योतिः पश्यति, ततः-तदनन्तरम् खलु
 स पुरुषः तस्मिन्-कुठारमहारे काष्ठं द्विधा स्फाटितं यावत् संख्येयधा-
 संख्यातखण्डशः स्फाटितं वा ज्योतिः अपश्यन् भ्रान्तः-भ्रमं प्रासः, तान्तः
 -कलान्तः, परितान्तः-विशेषतःकलान्तः, निर्विणः-खिन्नः सन् परशु-कु-
 ठारम् एकान्ते-रहसि पृच्छति-देशीयोऽयमेवहातुर्मोचनार्थः, तेन 'मुञ्चति'
 इत्यर्थः, मुक्त्वा परिकरं-कटिन्वनं मुञ्चति, मुक्त्वा एवमवादीत्-अशो!!-

विस्मयोऽत्र यत् मया मन्दभाग्येन तेषां पुरुषाणामशन-भोजनं नो साधि-
तम्, इति कृत्वा-इति विचिन्त्य आहतमनःसंकल्पः-नष्टमनोऽभिलाषः,
चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः-चिन्ताशो रूपमुद्रनिपगन', करतलपर्यस्तमुखः-
कानरुनिहितकालः, मुखशब्दस्य मुत्रात्रयत्रकपोलपरत्वात्, आर्तध्यानो-
पगतः-आर्तध्यानयुक्तः, भूमिगनदृष्टिक-पृथिवीतलनिरीक्षणतत्परः-अधो-
मुखः, ध्यायति-चिन्तां करोति. तत इतश्च ते-अटवीमनुपविष्टाः पुरुषा
काष्ठानि छिन्दन्ति, छिन्त्वा यत्रैव सः अशननिष्पादनार्थी पुरुषः तत्रैव उपा
गच्छन्ति, उपागत्य तं पुरुषम् अपहतमनःसंकल्पं यावत्-यावत्पदेन
“चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः, करतलपर्यस्तमुखम्, आर्तध्यानोपगतः, भूमि
गतदृष्टिकम्” इत्येषां पदानां मङ्गलदो बोध्यः, ध्यायन्त-चिन्तां कुर्वन्तं

टीकार्थ स्पष्ट है-इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है-कि जिस प्रकार
प्रथम पुरुष को काष्ठ में अग्नि के दर्शन नहीं हुए और द्वितीय पुरुष
को हो गये. उसी प्रकार तुम्हें भी उस चोर पुरुषके शरीर में छिन्नभिन्न
करने पर भी उसको जीव के दर्शन नहीं हो सके एतावता यह कैसा
कहा जा सकता है कि जीव दिखाई नहीं देने से जीव नाम का कोई
स्वप्नपदार्थ नहीं है. इसलिये जीव और शरीर एक हैं ऐसी तुम अपनी मान्यता
का परित्याग कर यह मानो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. ये
दोनों एक नहीं हैं. यहाँ सूत्र में जो 'करतलपर्यस्तमुखः' ऐसा पद आया
है -उनमें मुखशब्द मुख के अवयवभूत कपोल अर्थ में आया है 'अपहत-
मनःसंकल्प जाव' में जो यह यावत् पद आया है-उससे 'चिन्ताशोक-
सागरसंप्रविष्टः, करतल पर्यस्तमुखः, आर्तध्यानोपगतः, एवं भूमिगनदृष्टिकः'

टीकार्थ आ सूत्रनी स्पष्ट न छे आ सूत्रनी भावार्थ आ प्रभाषे छे के
जेम पहेला भाष्यसने काष्ठमा अग्निना दर्शनं तथा नथी अने धीम भाष्यसने तथा
तेमन ते चोर पुष्पना शरीरना कडे कडे कडा कडा छताये तेना एवना
दर्शनं तमने तथा नथी अनाथी आ देवी रीते कही शक्य के एव देयाते नथी.
तेथी एव नामने काष्ठ स्वतत्र पदार्थ नथी अथी एव अने शरीर अेक न छे.
अेवी तमारी ने मान्यता छे तेने तजे छोडी हो अने आ वात स्वीकारी होके एव
भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे अेजे अने अेक नथी. अही सूत्रमां ने 'करतल
पर्यस्तमुखः' आ अतद्वं पद छे तेमा सुभ शब्द सुभना अवयवभूत कपोल
अर्थमां आवेद छे "अपहतमनः संकल्पं जाव"-मां ने यावत् पद आवेद छे,
तेथी 'चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः करतलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः एवं

पश्यन्ति, दृष्ट्वा एवम् अनुपद् नक्ष्यमाणं वचनम्, अवादिषुः—किं—
कारणं खलु ? हे देवानुमिय ! त्वम् अपहृतमनःसंकल्पः यावत्-ध्याय-
सि ?—चिन्तां करोषि ?, ततः—तदनन्तरम् खलु स पुरुषः एवमवादीत्—हे
देवानुमियाः ! यूयं खलु काष्ठानामटवीमनुपविशन्तः मम पत्रमवादिष्ट—कथं
त्वन्तः, किमित्याह—हे देवानुमिय ! वयं खलु काष्ठानामटवीं यावत्—यावत्
त्पदेन “प्रविशामः, इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं
साधये”, अथ तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत् इतः खलु त्वं काष्ठात् ज्यो-
तिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्” इत्येषां
पदानां सर्वत्रो बोध्यः, अनुपविष्टाः, ततः—तदनन्तरं खलु अहं ततो—गृह-
तन्तरात् युष्माकमशनं साधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योतिर्भाजनं यावत्—यावत्-
त्पदेन “तत्रैव उपागच्छामि ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यात्मेव पश्यामि, ततः
खलु अहं यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य तत् काष्ठं
सर्वतः समन्तात् समभिलोके नो चैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, ततः खलु अहं
परिकरं वज्रादि परशु गृह्णामि तत् काष्ठं द्विधा स्फाटितं करोमि कृत्वा
सर्वतः समन्तात् समभिलोके. नो चैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, एवं यावत्
त्रिधा चतुर्धा संख्येयथा स्फाटितं करोमि सर्वतः समन्तात् समभिलोके नो
चैव तत् ज्योतिः पश्यामि, तत् खलु अहं तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटिते
वा यावत् त्रिधा चतुर्धा संख्येयथा वा स्फाटिते ज्योतिरपश्यन् भ्रान्तः
तान्तः परितान्तः निर्विण्णः सन् परशुमेकान्ते (एवामिदे०) गृह्णामि सुवत्वा

इन पदों का ग्रहण हुआ है। ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ में आये हुए यावत्पद से
‘प्रविशामः. इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं साधये’,
अथ तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः खलु त्वं काष्ठात् ज्योतिर्गृहीत्वा
अस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्’ इस पाठ का संग्रह हुआ
है। ‘एवं यावत् संख्येयथा’ में आये हुए यावत्पद से त्रिधा स्फाटितं,
चतुर्धा स्फाटितम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है। ‘एहति’ यह शब्द देशीय

भूमिगतं दृष्टिक” आ. पदोक्तं अहं यत्तु छे. ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ भा. आवेक्ष
यावत् पदार्थी ‘प्रविशामः इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माक-
मशनं साधये’, अथ तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः खलु त्वं
काष्ठात् ज्योतिर्गृहीत्वा अस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीं’
आ. पाठोक्तो संश्लेषार्थो छे. ‘एवं यावत् संख्येयथा’ भा. आवेक्ष यावत् पदार्थी
‘त्रिधा स्फाटितं चतुर्धास्फाटितं’ आ. पदोक्तो संश्लेषार्थो छे. ‘एहति’ आ.

परिकरं मुञ्चामि एवमवादिपद्-अहो ! । मया तेषा पुरुषाणामशन ना साधितमिति कृत्वा अपहतमनः संरूपः चिन्नाशोकसागरसंपविष्टः वरनल पर्यस्तमुख आतर्ध्यानोपगतो भूमिगतर्हाटकः” इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्याऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्व कृता. ध्यायामि-चिन्तां करोमि, ततः-तदनन्तरं तेषां पुरुषाणां मध्याद् एकः कोऽपि पुरुषः क्लेशः-अवसरज्ञः, दक्षः-कार्य-कुशलः, प्राप्तार्थः-निजकौशलेनाधिगतसाध्यरूपार्थः, यावत्-यावत्पदेन-“बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः विज्ञानप्राप्तः” इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्या पूर्व गता, तथा उपदेशलक्षणः-प्राप्तगुरुपदेशः, शिक्षित इति यावत्, एतादृश एकः पुरुषः तान्-काष्ठहारकान् पुरुषान् एवमवा दौत्-हे देवानुमियाः । यूय गच्छत खलु स्नाताः-कृतरनानाः कृतवलि-कर्मणः-कृतवायसादिनिमित्तान्नदानाः, यावत्-प्रायश्चित्ताः-यावत्पदेन-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता ” इत्येतत्पदसङ्ग्रहो बोध्यः. एतादृशाः सन्तः शीघ्रमागच्छत, कियता कालेन ? इति जिज्ञासायामाह-यावत्-यावत्कालेन खलु अहम् अशनं-भोजन साधयामि-नष्पादयामि. इति कृत्वा-इत्युक्त्वा परिकरं बध्नाति-कटिबन्धनं करोति, परशु-कुठारं गृह्णाति, गृहीत्वा शर-बाणसदृशं प्रतनुकाण्ठं करोति तेन शरेण-तनुकृतकाण्ठेन अरणि-काण्ठ विशेषं मथ्नाति-संघर्षति, ज्योतिः-अग्निं पातयति-निष्काशयति, पातयित्वा जर्जातः-वह्निं संघुक्षते-संदीपयति, संदीप्य तेषां पुरुषाणामशनं साधयति, ततः-अशननिष्पादनानन्तरम् खलु ते पुरुषाःस्नाताः कृतवलिकर्मणः-यावत् प्रायश्चित्ताः-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः सन्तः यत्रैव स पुरुषं आसीत् तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः खलु स पुरुषः तेषां पुरुषाणाम्, सुखासनवरगतानां-

हे इसमें एक धातु मोचन अर्थ में है। 'अहो' शब्द वि. मयार्थक है। 'पत्तट्टे जाव' में जो यावत्पद आया है-उससे यहाँ 'बुद्धः, कुशलः, महामतिः, विनीतः, विज्ञानप्राप्तः' इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है। 'कयवलिकम्मा जाव' में आये हुए यावत् पद से 'कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः' इस पद का संग्रह हुआ है। 'दुहा फालियंसि

शब्द देशीय छे. आभा "एह" भातु "मोचन" अर्थम. छे. 'अहो' शब्द विस्मया-र्थक छे. 'पत्तट्टे जाव' भा ने यावत् पद आवेल छे. तेथी अही 'बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः, विज्ञानप्राप्तः,' आ पदोनी संग्रह थये छे. आ पदोनी आख्या पहिले करवाभा आवी छे. 'कयवलिकम्मा जाव' भा आवेल यावत् पदथी 'कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः' आ पदोनी संग्रह थये छे. 'दुहा फालियंसि

सुखदोत्तमासनोऽधिष्ठानाम्, सताम् पुरतः तत्-माधितं, विपुलं-पुष्कलम्, अशनं पानं खादिसं स्वादिसम् उपनयति-पविशेद्यति, ततः खलु ते पुरुषाः तद्विपुलमशनं पानं खादिसं स्वादिसम् आस्वादयन्तः-सामान्यतः स्वादयन्तः, विस्वादयन्तः-विशेषेण स्वादयन्तः, यावत्-यावत्पदेन-“परिमाजयन्तः परिभुञ्जानां” इत्यनयोःपदयोः सङ्गो बोध्यः, तत्र परिमाजयन्तः-परितो वष्टयन्तः, परिभुञ्जानां-परित-आतृप्तिं भुञ्जानां, विहरन्ति-तिष्ठन्ति । जिमितभुक्तोत्तरागता-जिमितं-चतुर्विधमशनं तस्य-रुच्यं-भोजनं तदुत्तरं-तदनन्तरं कालम् आगता-प्राप्ताः अपि च मन्तः आकाङ्क्षा-कृताऽऽचमनाः, चोक्षाः सामान्यतः शुद्धाः, परमशुचिभूताः-गण्डूषादिभिर्विशेषतः शुद्धाः, तम् पुरुषम्, एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वक्ष्यम अवादिषुः-अहो ! ! देवानुमिय ! न्य खलु जडः जडसदृशः-विशिष्टचेतनारहितत्वात्, मूढः-मूर्खः, अपण्डितः सदसक्षिवैरुत्रिकलत्वात्, निर्विज्ञानः-कौशल्यरहितः, अनुपदेशलक्ष्यः अप्राप्त-गुरुरूपदेशः-अशिक्षितश्चासि, यस्त्वम् खलु द्विधा स्फटिते काष्ठे यावत् त्रिधा चतुर्धा संख्येयथा वा स्फटिते काष्ठे ज्योतिर्वर्तिं द्रष्टुमिच्छसि. इति मूढतरत्नसाधकदृष्टान्तमुक्त्वोपसंहरति-हे प्रदेशिन् तदेतेन-अनन्तरोत्तेन अर्थेन-दृष्टान्तरूपेण, एवम्-इत्थम् उच्यते-वक्ष्यते यद् हे प्रदेशिन् ! तस्मात् अपाचकात् काष्ठहारात् मूढतरः-अतिमूर्खः असि ॥ सू० १४६॥

मूलम्--तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी-
नुत्तए णं भंते ! अइदक्खाणं बुद्धाणं सलाणं महामई ण विण-
याणं विण्णाणपत्ताणं उवएसलद्धाणं अह इमीसाए महइ महालयाए
परिसाए मज्जे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए, उच्चावयाहिं
उद्धसणाहिं उद्धसित्तए, एव उच्चावयाहिं निब्भल्लणाहिं निब्भ-
ल्लत्तए, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडित्तए ? ॥सू० १४७॥

वा जाव' मे यावत् पद से 'त्रिधा, चतुर्धा, संख्येयथा वा स्फटिते काष्ठे'
इन पदों का संग्रह हुआ है ॥ सू. १४६ ॥

वा जाव' भा आवेव यावत् पद्यी 'त्रिधा, चतुर्धा, संख्येयथा वा स्फटिते काष्ठे'
आ पदोने संग्रह थये छे ॥सू० १४६॥

टीका—“तए णं पएसी” इत्यादि—ततः खलु म प्रदेशी राजा केशि-
कुमारश्रमणमेवमवादीत्—हे भदन्त ! अनिच्छेकानाम्—अवसरज्ञानं, दक्षाणाम्—
चतुराणां, बुद्धानाम्—तत्त्वज्ञानां, कुशलानाम्—वर्तव्यावर्तव्यनिर्णायकानां,
महामतीनाम्—औत्पत्तिक्यादिवुद्धियुक्तानां विनीतानाम्—शिष्टानां, विद्वानप्राप्ता-
नाम्—मदमद्विवेकसम्पन्नानाम्, उपदेशलब्धानां प्राप्तगुरुरूपदेशानाम्, युष्माकम्
अभ्याः उपस्थितायाः, महाति महालयायाः अतिविशालायाः परिषदः सभाया मध्ये
उच्चावचैः—नानाविधैः, ओक्रोशैः—कठिनवचनरूपैः, आक्रोष्टुम्—संलपितुम्.
उच्चावचाभिः—नानाविधाभिः उदर्घषणाभिः—अनादर म्रचकवचनलक्षणाभिः,
उदर्घषयितुम्—वक्तुम्, उच्चावचाभिः—नानाविधाभिः, निर्मेर्त्सनाभिः—अवहे-
लनाभिः, निर्मेर्त्सयितुम् अवहेलद्वितुम्—उच्चावचाभिः—नानापकाराभिः निश्चोटना-
भिः—नीरसवचनवलीभिः, निश्चोटयितुम्—संभावितुम्, अह किं युक्तकः ?—
युक्तोऽस्मि—योग्योऽस्मि ? सभासमक्षमेतादृग्द्वचनरूपो व्यवहारो मत्कृते
भवाद्दशाना महापुरुषाणां नोचित इति भावः ॥ सू० १४७ ॥

मूलम्—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी-
जाणासि णं तुमं पएसी । कइ परिसाओ पणत्ताओ ? । जाणामि
चत्तारि परिसाओ पणत्ताओ, तं जहा—खत्तियपरिसा १, गाहावइ-
परिसा २, माहणपरिसा ३, इसिपरिसा ४ । जाणासि णं तुमं पएसी ।
एयासि चउण्ह परिसाणं कस्स का दडणीई पणत्ता ? हता । ।
जाग । म—जे णं खत्तियपरिसाए अवस्झइ से गं हत्थच्छिण्णए वा

निच्छोहणाहिं निच्छोहिसिए) नाना प्रकार की अवहेलनारूप निर्मेर्त्सनाओं
द्वारा मेरी निर्मेर्त्सना काना तथा नानाप्रकार की नीरसवचनरूप निश्चोटनाओं
द्वारा मुझ से बोलना क्या योग्य है ? अर्थात् आप जैसे महापुरुषों को सभा
के समक्ष ऐसा वचनरूप व्यवहार मेरे साथ करना उचित नहीं है।

टीकार्थ—स्पष्ट है ॥ सू० १४७ ॥

(एवं उच्चावयाहिं निग्मंछणाहिं निग्मंछित्तए, उच्चावयाहिं निच्छोहणाहिं निच्छो-
हिसिए) अनेक प्रकारना अवहेलनाइप निर्मेर्त्सनाओवठे भारी भर्त्सना करवी तेमअ अनेक
प्रकारनी नीरसवचनइप निश्चोटनाओ वठे मने मने तेम ओइवुं शु योअ्य छे ?
ओटवे के तभारा जेवा महापुरुषोने सभानी वच्ये आ जतना वचनोहं उच्यारवु
हाथत नहिं कहेवाय टीकार्थे स्पष्ट अ छे ॥ सू० १४७ ॥

पायच्छिण्णए वा सीसंच्छिण्णए वा सूलाइए वा एगाहच्चे कूडा-
हच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ ? । जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्जइ
से णं तएण वा वेढेण वा पलालेणं वा वेढित्ता अगणिकाएणं ज्ञामि-
ज्जइ २ । जे णं माहणपरिसाए अवरज्जइ मे णं अणिट्ठाहिं अकं-
ताहि जाव अमणामाहिं वग्गूहिं उवालंभित्ता कुंडियालंछणए वा
सुणगलंछणए वा कीरइ, निव्विसए वा आणविज्जइ ३ । जे णं
इसिपरिसाए अवरज्जइ से णं णाइअणिट्ठाहिं जाव णाइ अमणा-
माहिं वग्गूहिं उवालब्भइ ४ । एवं च ताव पएसी ! तुमं जाणासि
तहावि णं तुम ममं वाम वामेणं, दंडं दडेणं, पडिकूलं पडिकूलेणं,
पाडलोमं पडिलोमेणं, विवज्जासं विवज्जासेणं वट्टसि ? ॥सू० १४८॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्-
जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् । क्वनिपरिषदः प्रश्नताः ? । जानामि चतस्रः परि-
षदः प्रश्नताः । तद्यथा—क्षत्रियपरिषत् १, गायपतिपरिषत् २, ब्राह्मणपरिषत्

'तए णं केसीकुमारसमणे' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्र-
मणने (पएसिं राय एव वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(जाणासि णं
तुम पएसी ! कह परिसाओ पण्णासाओ ?) हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो-
कितनी परिषदाएँ कही गई हैं ? प्रश्नाने कहा—(जाणामि चत्वारि परिसाओ
पण्णासाओ) हाँ भदन्त ! जानता हूँ—चार परिषदा कही गई हैं। (तं जहा-

तएणं केसीकुमारसमणे' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) त्थार पथी (केसी कुमारसमणे) केशी कुमार श्रमणे
(पएसिं राय एव वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभाषे कथं । (जाणासि णं तुमं
पएसी ! कह परिसाओ पण्णासाओ ?) हे प्रदेशिन् ! तमे भाषे छे के परिषदा-
ओ केटवी कडेवाय छे ? प्रदेशीओ कथु (जाणामि चत्वारि परि साओ पण्णासाओ)
का ७, बाहत्तां हूं णाहुं छुं के थार आतनी परिषदाओ कडेवाभां आवी छे ।
(तं जहा, खत्तियपरिसा १, गाहावइपरिसा २, माहणपरिसा ३, इसि-
परिसा ४) ओ आ प्रभाषे छे—क्षत्रिय परिषदा, १ गायपति परिषदा २, ब्राह्मण

३, ऋषिपरिषत् ४। जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतासां चतसृणां परिषदां (मध्ये) कस्य का दण्डनीतिः प्रज्ञसाः ? हन्त ! ! जानामि-यः खलु क्षत्रिय-परिषदि अपराध्यति स खलु इस्तच्छिन्नको वा पादच्छिन्नको वा शीर्षच्छिन्नको वा शूलायितो वा एकाहृत्य कूटाहृत्य जीविताद् व्यपरोप्यते ? । यः खलु गायपतिपरिषदि अपराध्यति स खलु त्वचा वा वेष्टेन वा पलालेन वा वेष्टयित्वा अग्निकायेन ध्माप्यते २। यः खलु ब्राह्मणपरिषदि

स्वत्तियपरिसा १ गाहावइपरिसा २, माहणपरिसा ३, इमिर्पा सा ४) जो इस प्रकार से है। क्षत्रियपरिषदा १, गायपतिपरिषदा २, ब्राह्मणपरिषदा ३ और ऋषिपरिषदा ४, (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयामि चउण्ह परिसाण कस्स का दण्णीई पण्णात्ता) हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो-इन चार परिषदाओं के बीच में किस अपराधी के लिये किस प्रकार दण्डनीति कही गई है ? (इ ता, जानामि-जे णं स्वत्तियपरिसाए अवरज्जइ, से णं हृत्यच्छिण्णए वा पायच्छिण्णए वा, सीसच्छिण्णए वा मुलाइ वा एगाहन्चे, कूडाहन्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ) हा जानता हूँ-क्षत्रियपरिषदा में-क्षत्रिय वर्ग जो कई क्षत्रीय अपने वर्ग में जिस किसी का भी अपराध करता है उसका या तो हाथ काट दिया जाता है, अथवा पग काट दिया जाता है या शिर काट दिया जाता है, या शूली पर उसे चढ़ा दिया जाता है, या उसे एक ही घाव से या पर्वत ऊपर से गिरा देने से प्राणरहित कर दिया जाता है। (जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्जइ-से णं तएण वा वेढेण वा पलालेण वा वेहिसा अग्निक्काए णं ज्जामिज्जइ २) गायपति परिषदा में-गृहपतिवर्ग में जो कोई गायपति जिस किसी रु

परिषदा ३, अने ऋषि परिषदा ४, (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयामि चउण्ह परिसाणं कस्स का दण्णीई पण्णात्ता) हे प्रदेशिन् ! तमे नत्थो छि के आयां परिषदाओमा क्खं नतनी इउनीति क्खेवामा आवी छे ? (इ ता, जानामि-जे णं स्वत्तियपरिसाए अवरज्जइ सेण हृत्यच्छिण्णए वा पायच्छिण्णए वा सीसच्छिण्णए वा मुलाइवा, एगाहन्चे कूडाहन्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ) हाँ, नत्थुं छुं-क्षत्रिय परिषदांमा क्षत्रियवर्गंमा ने क्खं क्षत्रिय पोतानी नत्तिमा के परत्तनिमां जमे तेना अपराधे (अने) करे छे तो तेना का तो हाथ कापी नाथवा मा आवे छे, अथवा पग कापी नाथवामा आवे छे, के भाशुं कापी नाथवामा आवे छे के तेने अक्खे न धामा भारी नाथवामा आवे छे के पर्वत परथी तेने धकेलीने प्राणरहित करी नाथवामा आवे छे: (जे णं गाहावइ परिसाए अवरज्जइ-से णं तएण वा, वेढेण वा, पलालेण वा वेहिसा अग्निक्काए णं ज्जामिज्जइ २

अपराध्यति स खलु अनिष्टाभिः अक्रान्ताभिः यावत् अमनोऽमाभिः वाग्भिः
उपालभ्य कुण्डिलाच्छनको वा शुन्यलाच्छनको वा क्रियते, निर्विषयो वा
आह्लाप्यते ३ । य. खलु ऋषिपरिषदि अपराध्यति स खलु नात्यनिष्टाभिः
यावत्-नात्यमनआमाभिः वाग्भिः उपलभ्यते ४ । एवं च तावत् प्रदेशिन ।

भी अपराध करता है, वह वृक्षादि की छाल में अथवा तृणादिनिर्मित रस्सी
से, या पल्लव से परिवेष्टित किया जाकर अग्नि में जला दिया जाता है-
(जे ण माहणपरिसाए अवरज्जइ, से णं अणिट्टयाहिं अकंताहिं जाव अमणा-
माहिं वग्गुहिं उवालमिस्ता कुण्डियालच्छणए वा सुणगलंछणए वा कीरइ,
निव्विसए वा आणविज्जइ) ब्राह्मण परिषदा में जो ब्राह्मण जिस किसी का
भी अपराध करता है, वह अनिष्ट-सामान्यरूप से अनमिलपित, अक्रान्त-
विशेषरूप से अनमिलपित-अप्रिय-प्रभवर्जित, अमनोज्ञ असुन्दर एवं अमन
आम-मनः प्रतिकूल ऐसी वागियों से उपालंभ युक्त किया जाता है,
अथ तमलोहे के तक्रुये द्राग कमण्डलु के जैसे आकार वाले लांछन से
ललाट में चिह्नित किया जाता है, अथवा कुचे के पग के जैसे आकारवाले
चिह्न से लांछित किया जाता है, अथवा देश से बाहर निकाल दिया जाता है.
तुम हमारे देश से निकल जाओ ऐसी आज्ञा उसके लिये दी जाती है ३.
(जे ण इत्थिपरिसाए अवरज्जइ से णं णाइ अणिट्टयाहिं जाव णाइ अमणामाहिं
वग्गुहिं उवालमइ ४) तथा जो ऋषि परिषदा में-ऋषिवर्ग में-ऋषि

गाथापति परिषदाभा-गृहपति वर्गभा ने कौछ गाथापति गमे तेना अपराध करे
तो ते वृक्ष वगैरिणी छलथी अथवा तृषु वगैरिणी निर्मित होरी के पलावथी परि-
वेष्टित कराधने अजिनवडे सणगाववाभा आवे छे. (जे णं माहणपरिसाए अवर-
ज्जइ, से णं अणिट्टयाहिं अकंताहिं जाव अमणा माहिं वग्गुहिं उवालमिस्ता कुण्डिया
लंछणए वा सुणगलंछणए वा कीरइ निव्विसए वा आणविज्जइ) आक्षेप्य परि-
षदाभा ने आक्षेप्य गमे तेना अपराध करे छे तो ते अनिष्ट-सामान्य रूपथी अन-
मिलपित, अक्रान्त-विशेषरूपथी अनमिलपित, यावत् अप्रिय-प्रभवर्जित, अमनोज्ञ-
असुन्दर अने अमन आम मनःप्रतिकूल अथवा वाष्पिअथी छिपाव भयुक्त करवाभां
आवे छे तेमज तत्त थयेद दोअउना सणिया वडे कभउछु नेवा आक्षरथी युक्त
चिह्नथी ललाटभां चिह्नित करवाभा आवे छे अथवा कृताना पग नेवा आक्षरवाणा
चिह्नथी लांछित करवाभा आवे छे अथवा देश अहारा करवाभा आवे छे. तमे अमारा
देशथी जता रहे अथवा आज्ञा तेने आपवाभा आवे छे. ३, (जेणं इत्थिपरिसाए
अवरज्जइ से णं णाइ अणिट्टयाहिं जाव णाइ अ माहिं वग्गुहिं उवालमइ ४)

ત્વં જાનાસિ તથાપિ સ્વલુ ત્વં માં વામવામેન, દણ્ડદણ્ડેન. પ્રતિકૂલપ્રતિ-
કૂલેન, પ્રતિલોમ પ્રતિલોમેન, વિપર્યાસાવિપર્યાસેન વર્તસે ॥ મૃ ૧૪૮ ॥

ટીકા—“તણ્ ણં કેસી” ઇન્યાદિ—તતઃ તદનન્તરં સ્વલુ કેસી કુમાર-
શ્રમણઃ પ્રદેશિન રાજાનમ્ એવ—વશ્યમાણપ્રકારં વચનમ્ અથાદીત્—કથિત
વાન—હે પ્રદેશિન ! ત્વ જાનાસિ કિં પરિવદઃ—વર્ગાઃ કતિ—કતિસંગ્યકાઃ
પ્રહૃતાઃ ? । પ્રદેશી રાજા પ્રાહ—જાનામિ—પારિષદશ્ચત્સુ—ચતુઃસંગ્યકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ,
તદ્યથા—તા યથા—ક્ષત્રિયપરિષત્ ૧, ગાયાપતિપરિષત્ ૨, બ્રહ્મણપરિષત્ ૩,
ઋષિપરિષત્ ૪ । કેસી કુમારશ્રમણઃ પૃચ્છતિ—હે પ્રદેશિન ! જાનામિ સ્વલુ

જિસ કિસી કા ખી અપરાધ કરતા હૈ વહ ન અતિ અ નટ. યાવત્—ન
અતિ અકાંત, ન અતિ અપિય, ન અતિ અમનોજ્ઞ ઓર ન અતિ અમન
આમ એસી ઘાણિયોં દ્વારા ઉપાલંબયુક્ત ક્રિયા જાતા હૈ. (એવં તાઃ પપસી !
તુમં જાણાસિ—તદ્દા વિ ણં તુમં મમં વામં વામેણ. દંઢં દંઢેણં, પઢિકૂલ
પઢિકૂલેણ, પઢિલોમં પઢિલોમેણં, વિષજ્ઞાસં વિષજ્ઞાસેણં વદ્દસિ) હે પ્રદેશિન
તુમ ઇસ પૂર્વોક્ત પ્રકારવાલી નીતિ કો—દણ્ડ નીતિ કો—નિશ્ચય સે જાનતે
હો, ફિર ખી તુમ મેરે પ્રતિવામવામરુપ સે અતિ ચિરુદ્ધવ્યવહાર સે, દણ્ડ
દણ્ડરુપ સે—દણ્ડવત્ સ્તબ્ધરુપ વ્યવહાર સે—અતિ અહઙ્કાર યુક્ત વ્યવહાર
સે, પ્રતિકૂલ પ્રતિકૂલરુપ સે અતિ વિપક્ષી ભૂત વ્યવહાર સે, પ્રતિલોમપ્રતિ-
લોમ સે—અતિવિપરીતરુપ વ્યવહાર સે ઓર વિપર્યાસ વિપર્યાસ સે—સર્વથા
ચિરુદ્ધરુપ વ્યવહાર સે પ્રવૃત્ત હો રહે હો ।

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ હૈ ॥૧૪૮॥

તેમજ જે ઋષિ પરિષદામા—ઋષિવર્ગોમાં કોઈ પણ ઋષિ અપરાધ કરે છે તે ન અતિ
અનિષ્ટ યાવત્ ન અતિ એકાંત ન અતિ અમનોજ્ઞ અને ન અતિ અમન આમ એવી
વાણીઓ વડે ઉપાલંબયુક્ત કરવામા આવે છે. (એવં તાઃ પપસી ! તુમં જાણાસિ
—તદ્દા વિ ણં તુમં મમં વામં વામેણ દંઢ દંઢેણં પઢિકૂલં, પઢિકૂલેણ,
પઢિલોમં પઢિલોમેણ. વિષજ્ઞાસં વિષજ્ઞાસેણં વદ્દસિ) હે પ્રદેશિન ! તમે
આ પૂર્વોક્ત નીતિને—દંડનીતિને—સારી રીતે જાણો છો, છતાં એ તમે મારા પ્રતિ વામ
વામરૂપથી—અતિ વિરુદ્ધ વ્યવહારથી, દણ્ડ દણ્ડરૂપથી—દણ્ડવત્ સ્તબ્ધરૂપ વ્યવહારથી
અતિ અહંકારયુક્ત વ્યવહારથી, પ્રતિકૂલ, પ્રતિકૂલરૂપથી અતિ વિપક્ષી વ્યવહારથી
પ્રતિલોમ પ્રતિલોમથી—અતિ વિપરીતરૂપ વ્યવહારથી અને વિપર્યાસથી સર્વથા વિરુદ્ધરૂપ
વ્યવહારથી પ્રવૃત્ત થઈ રહ્યા છો. ટીકાર્થ સ્પષ્ટ જ છે ॥ સ. ૧૪૮ ॥

त्वं ? एतासां चतसृणां परिषदां मध्ये कस्य अपराधिनः का-र्विप्रकारा
दण्डनीतिः-दण्डविधानरूपा-ज्ञप्ता-कथिता ? । प्रदेशी प्राह-दन्त ! जानामि
तदेवाह-क्षत्रियपरिषदि-क्षत्रियवर्गे यः खलु कश्चित् क्षत्रियः स्ववर्गे परवर्गे-
वो म्य कस्यापि, अपराध्यति-अपराधं करोति स खलु हस्तच्छिन्नकः-
च्छिन्नहस्तः क्रियते, वा-अथवा पादच्छिन्नकः, अथवा शीर्षच्छिन्नकः, वा
अथवा शूलायितः-शूलारोपितः । वा-अथवा एकाहत्यम्-एकाघातेन, कूटाहत्य-
पर्वतपातेन जीवितात्-प्राणेभ्यः न्यपगोप्यते-पृथक् क्रियते । गाथापतिपरिषदि
गृहपतिवर्गे यः खलु कश्चिद् गाथापति र्यस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु
त्वषा-वृषादिच्छिन्ना वा अथवा वेष्टेन तृणादिनिर्मितरज्ज्वा, वा अथवा
पलाछेन-प्रसिद्धेन वेष्टयित्वा-परिवेष्टय अग्निकायेन-अग्निना ध्माप्यते-ज्वा-
स्यते २ । ब्राह्मणपरिषदि-ब्राह्मणवर्गे यः खलु कश्चिद् ब्राह्मणो यस्य कस्यापि
अपराध्यति स खलु अनिष्टाभिः-सामान्यतोऽनमिलपिताभिः अकान्ताभिः-
विशेषतोऽनमिलपिताभिः, यावच्छब्देन-“अप्रियाभि-प्रेमवर्जिताभिः-असु-
न्दरीभिः” इति स ग्राह्यम्, अमनोऽमाभिः मनप्रतिकूलाभिः वाग्भिः-
वाणीभिः उपालभ्य उपालम्भं दत्त्वा कुण्डिकालाठछनकः-कुण्डिका-कमण्डलुः
तदाकारकं लाठछनक-सप्तशलाकया ललाटे चिह्नं यस्य स तथाभूतः, वा
अथवा शुनकलाठछनकः-ललाटे नकपदाकारकं चिह्नं यस्य स तथाभूतः
क्रियते, वा-अथवा निर्विषयः-निर्वासितो यथा भवेत्तथा आज्ञाप्यते-‘त्वम-
म्मावेशान्निर्गच्छ’ इत्याद्या तस्मै दीयत इति भावः । ३ । ऋषपरिषदि-
ऋषिवर्गे यः खलु कश्चित् ऋषिर्यस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु नात्य
निष्ठाभि यावत्-यावच्छब्देन-नात्यकान्ताभिः नात्यप्रियाभिः, नात्यमन-
ज्ञाभिः” इति स ग्राह्यम्, नात्यमनोऽर्थाभिः वाग्भि-वाणीभिः उपलभ्यते-
तस्मै उपालम्भो दीयते इति भावः ४ । केशी मारश्रमणः कथयति-हे
प्रदेशिन एव-पूर्वोक्तप्रकारां दण्डनीतिं तावत्-निश्चयेन त्वं जानासि तथापि
त्वं मां प्रति वामेवायेन-अतिशयवामेन-अतिविरुद्धेन व्यवहारेण, एव दण्ड
दण्डेन-अतिदण्डरूपेण-दण्डवत्स्तम्बररूपेण-अत्यह्-रयुक्तनेत्यर्थः प्रतिकूलं
प्रतिकूलेन-अप्रतिकूलेन-विपक्षीभूतेनेत्यर्थः प्रतिलोमप्रतिलोमेन-अतिप्रतिलो-
मेन-अतिविपरीतेनेत्यर्थः विपर्यासविपर्यासेन अतिविपर्यासेन-सर्वथा विरु-
द्धेनेत्यर्थः, एतादृशेन व्यवहारेण वर्तसे ॥ सू० १४८ ॥

प्लुप्त—तए णं पएसी राया केसि कुभारसमणं एवं वयासी—
एवं खलु अहं देवाणुप्पिएहिं पढमिळ्ळिएणं चैव वागरणेणं संलत्ते
तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—जहा
जहा णं एयस्स पुरिसस्स वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं
वट्टिस्सामि तथा तथा णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणं च
चरणोवलंभं च दत्तणं च दत्तणोवलंभं च जीवं च जीवोवलंभं च
उवलभिस्सामि, त एएणं अहं कारणेणं देवाणुप्पियाणं वामं वामेणं
जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए ॥सू० १४९॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केसिन कुमारश्रमणमेघमवादीत्
एवं खलु अहं देवानुप्रियैः प्राथमिकेनैव व्याकरणेन संलपतः तदा खलु
मम अपमेः रूप आध्यात्मिकः यावत् संकल्पः समुदपद्यत, यथा यथा खलु

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने केसि
कुमारसमणं एवं वयासी) केसि कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(एवं खलु
अहं देवाणुप्पिएहिं पढमिळ्ळिएणं चैव वागरणेणं संलत्ते) हे मदन्त ! आप
देवानुप्रिय के द्वारा मैं सर्व प्रथम बोला गया हूँ अर्थात्—आप देवानु
प्रिय ! मुझ से सब से पहिले बोलें हैं—आप के साथ मेरी यह सब से
प्रथम भेट है, इसका पहिले हमारा आपका कोई मिलन नहीं हुआ है
(तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था) अतः जब

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थिएपली (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसि कुमार
समण एवं वयासी) केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाषे कथं—(एवं खलु अहं
देवाणुप्पिएहिं पढमिळ्ळिएणं चैव वागरणेणं संलत्ते) हे मदन्त ! आप देवा-
नुप्रियवटे हूँ साथी पहले बोलाथे छु भेटते है आप देवानुप्रिय ! भारी साथे
सौथी पहले बोलाथे छु आपनी साथे आ भारी पहले मुलाकात छु बोना पहले
आपनी भारी साथे भेट नहोती थछ (तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव
संकप्पे समुप्पज्जित्था) कोथी बोनारे तमे भारी साथे सर्व प्रथम आ प्रभाषे

एतस्य पुरुषस्य वामवामेन या तु विपर्यासविपर्यासेन वर्तिष्ये तथा नथ
खलु अहं ज्ञान च ज्ञानोपालम्भं च चरणं च चरणोपालम्भं च दर्शनं च
दर्शनोपालम्भं च जीवं च जीवोपालम्भं च उपलप्स्ये, तत एतेनाहं का-
णेन देवानुप्रियाणा वामवामेन यावद् विपर्यासविपर्यासेन वर्तिष्ये ॥मृ०१४०॥

टीका—'तए णं पएसी' इत्यादि-ततः खलु प्रदेर्ज्ञो राजा केशिन
कुमारश्रमणमेवमवादीत्-एवं खलु अहं देवानुप्रियैः-मवाङ्किः प्राथमिकेनै-
व्याकरणेन-संलापेन, संलपिनः-संभाषितः, तदा खलु मम अयमेन्द्रप-

आप मुझ से सर्व प्रथम इस प्रकार से बोलेतो मेरे मन में यह इस
प्रकार का यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि (जहा २ ण एयस्स पुरिसस्स
वाम वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २ ण अहं
नाणं च नाणोवल्लंमं च चरणोवल्लंमं च, दंसणं च दंसणोवल्लंमं च जीवं च
जीवोवल्लंमं च उवल्लमिस्स मि) मैं जैसा इस पुरुष के साथ वाम वामरूप से
यावत्-दण्ड दण्डरूप से, प्रतिकूल प्रतिकूलरूप से प्रतिलोम प्रतिलोमरूप
से एवं विपर्यास विपर्यासरूप से व्यवहार करूंगा, वैसा वैसा २ मैं ज्ञान
को-पदार्थ ज्ञान को ज्ञानोपालम्भको-ज्ञान की प्राप्ति को, चारित्र्य को, चारि-
त्रके लाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्तत्त्व को, दर्शनराम को जीव के
स्वरूप को, और जीव के स्वरूपकी प्राप्ति को पा जाऊंगा (तं एएण
अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए)
अतः इसी कारण से आप देवानुप्रिय के साथ मैं अतिविरुद्धरूपव्यवहार
से यावत् सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहार से प्रवर्तित हुआ हू ।

बोल्या तो भारी मनभा आ जातनी यावत् संकल्प उत्पन्न थयो ठे (जहा २ णं एयस्स
पुरिसस्स वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा २
णं अहं नाणं च नाणोवल्लंमं च चरणं च चरणोवल्लंमं च, दंसणं च दंसणो-
वल्लंमं च जीवं च, जीवोवल्लंमं च उवल्लमिस्सामि) हु जेम जेम आ पुइपनी
साथे वाम वामरूपथी यावत्-दण्ड दण्डरूपथी प्रतिकूलप्रतिकूलरूपथी, प्रतिलोम प्रतिलोम
रूपथी अने विपर्यास विपर्यासरूपथी व्यवहार करीश-आयत्तु करीश तेम तेम हु
ज्ञानने, पदार्थ ज्ञानने, ज्ञानोपालम्भने ज्ञानप्राप्तिने चारित्र्यने, चारित्र्य लाभने,
तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्तत्त्वने, दर्शनलाभने, जीवना स्वरूपने अने जीवना स्वरूपनी
प्राप्तिने जेणवीश (त एएणं अहं कारणेणं देवानुप्रियाणं वामं वामेणं जाव
विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए) जेट्ठा भाटे आप देवानुप्रियनी साथे मे' अति
विरुद्धरूप व दारथी यावत् सर्वथा विरुद्धरूप व्यवहारथी प्रवर्तित थयो हुं

वक्ष्यमाणप्रकारकः, आध्यात्मिकः—आत्मगतो विचारः यावत्—यावच्छब्देन—
 चिन्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः' इति संग्राह्यम्। संकरयः—विचार
 समुद्रपथन—संजातः, तदेवाह—यथा यथा खलु ग्रहम् एतस्य पुरुषस्य नाम-
 वामेन—प्रतिविरुद्धेन व्यवहारेण यावत्—यावच्छब्देन—दण्डदण्डेनः प्रतिकूल-
 प्रतिकूलेनः प्रतिलामप्रतिलोमेन' इति संग्राह्यम्, विपर्योसं—विपर्यामेन' एषा-
 मर्थोऽव्ययं हेतुपूर्वमुत्रे गतः, वर्तिष्ये तथा तथा खलु अहं ज्ञानं च—पदार्थ-
 ज्ञानं च ज्ञानोपालम्भं—ज्ञानप्राप्तिं च च—पुनः चरणं—चारित्र्यं चरणोपालम्भं
 चारित्र्यलाम च—पुनः दर्शनं—तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यक्त्वं दर्शनोपालम्भं—
 दर्शनलाम च—पुनः—जीवो—जीवस्वरूपं —जोबोपालम्भं—जीवस्वरूपः
 प्राप्तिम् उपलप्स्ये—प्राप्त्यामिः तद् एतेन खलु कारणेन अहं देवानु-
 प्रियाणां ममीये वानामेन—प्रतिविरुद्धेन व्यवहारेण यावत् विपर्याय-
 सेन—सर्वथाविरुद्धेन व्यवहारेण वर्तितः—अहं वामवामादिकं व्यवहार
 वर्तितवानिति भावः । ॥ सू० १४९ ॥

मूलम्—तए णं केसी मारसमणे पएसि रायं एवं वयासी-
 जाणासि णं । कइ व्यवहारगा पणत्ता ? हंता ! ! जाणामि चत्तारि
 व्यवहारगा पणत्ता, त जहा—देइ नामेगे णो सणवेइ १, सणवेइ
 नामेगे नो देइ २ । एगे देइ वि सणवेइवि ३ । एगे णो देइ णो

टीकार्थं स्पष्ट है इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि प्रदेशी राजाने
 केशी कुमार भ्रमण से अपने द्वारा किये गये प्रतिकूल व्यवहार के प्रति
 ऐसा कहा है भदन्त ! आप की और हमारी यह प्रथम मेट है. हममें
 जो आपने सुझसे संभाषण किया—उससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला
 कि मैं इनके प्रति जैसा २ टेहा खलूगा—विरुद्ध व्यवहारकरूंगा—वैसा २
 सूत्रे इनसे ज्ञान प्राप्ति होगा अतः मैंने आपके माथ इस प्रकार का
 व्यवहार किया है ॥ सू० १४९ ॥

टीकार्थं स्पष्ट ७ छ आ सूत्रेनो भावार्थ आ प्रभाषे छे के प्रदेशी राजाने
 केशीकुमार भ्रमणने पोताना वडे आचरेल प्रतिकूल व्यवहारने लधने आ प्रभाषे
 कहु छे के छे बढत । आपनी अने भारी आ पहेली बेट छे. आमा ने आपश्रीजे
 भारी साथे संभाषण क्युं' तेथी अने निष्कर्षे आ अंतनी प्रतीति अर्थ के छुं
 तभारा प्रति जेम जेम विरुद्ध गेलीश तेम तेम अने तभाराथी ज्ञान वगेरनी प्राप्ति
 थये. आ कारखुथी ७ मे' आपनी साथे आ अंतनुं आचरेण क्युं' छे. ॥सू० १४९॥

णवेइ ४। जाणासि णं तुमं पएसी ? एएसि चउण्हं पुरिसाणं

के व्यवहारी के अववहारी ? ! हंता ! ! जाणामि तत्थ णं जे से पुरिसे
 देइ णो सण्णवेइ सेणं पुरिसे व्यवहारी, तत्थ णं जे से पुरिसे
 णो देइ सण्णवेइ से णं पुरिसे व्यवहारी २, तत्थ णं जे से पुरिसे
 देइ वि णवेइ वि से पुरिसे व्यवहारी ३, तत्थ णं जे से पुरिसे
 णो देइ णो सण्णवेइ मे णं अववहारी ४। एवामेव तुमंपि व्यवहारी,
 णो चेव णं तुमं पएसी ! अववहारी ॥सू० १५०॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशीराजमेवमवादीत्—जा-
 नासि खलु त्वं प्रदेशिन् । कति व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः ? । इन्त ! ! जानामि—
 चत्वारो व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ददाति नामैकः नो संज्ञापयति १,
 संज्ञापयति नामैको नो ददाति २, एको ददाति अपि संज्ञायति अपि ३,

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुप्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणने
 (पएसि रायं एवं वयासी) प्रदेशी । से ऐसा कहा—(जाणासि णं
 पएसी ! कइ व्यवहारगा पण्णत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! व्यवहार कितने होते हैं—
 । तुम इस बात को जानते हो ? (हंता, जाणामि) हां, भदंत ! जानता
 हूं (च रि व्यवहारगा पण्णत्ता) व्यवहार चार कहे गये हैं । (तं जहा—देइ,
 नामेगे, णो सण्णवेइ ? सण्णवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सण्णवेइ

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुप्रार्थ—(तए णं) त्थार पंछी (केसीकुमारसमणे) केशी कुमार श्रमणे
 (पएसि रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभावे क्खं—(जाणासि णं तुमं
 पएसी ! कइ व्यवहारगा पण्णत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! तुं तमे आये छे के व्यवहार
 केद्वी आतना छेय छे ? (हता, जाणामि) हां, भदंत ! आये छे । (चत्वारिं वव-
 हारगा पण्णत्ता) व्यवहार चार छेवाय छे । (तं जहा देइ, नामेगे, णो सण्ण-
 वेइ १, सण्णवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सण्णवेइ वि ३, एगे

एक नो ददाति नो संज्ञापयति ४ । जानासि खलु त्व प्रदेशिन् ? एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां को व्यवहारी ? कोऽव्यवहारी ? हन्त ॥ जानामि । तत्र खलु यः स पुरुषो ददाति नो संज्ञापयति स खलु पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु यः स पुरुषो नो ददाति संज्ञापयति स खलु पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु यः स पुरुषो ददात्यपि संज्ञापयत्यपि स पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु

वि. २, एगे णो देह णो सण्णवेह ४, जो इस प्रकार से हैं—एक कोह पुरुष किसी वस्तु को किसी के लिये देता तो है, पर उसके साथ ब्रह्म मिष्ट भाषण द्वारा अच्छा संतोषप्रद व्यवहार नहीं करता है १, एक पुरुष मिष्ट भाषण द्वारा दूसरे के प्रति संतोषप्रद व्यवहार तो करता है, परन्तु देता कुछ भी नहीं है २, एक पुरुष देता भी है और लेने वाले के प्रति मिष्टवचनद्वारा संतोषप्रद व्यवहार भी करता है ३, एक पुरुष ऐसा होता है जो न देता है और न मिष्टवचन द्वारा संतोषप्रद व्यवहार ही करता है—४, (जाणासि णं तुमं पपसी ! एएसि चउण्हं पुरिसाणं के व्यवहारी के व्यवहारी ?) केशी ने प्रदेशी से पूछा—हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो इन चार व्यवहारी पुरुषों के बीच में कौन व्यवहारी है और कौन अव्यवहारी है? तब प्रदेशीने केशिकुमार श्रमण से कहा—(हंता, जाणामि—तत्थ णं जे से पुरिसे देह णो सण्णवेह से णं पुरिसे व्यवहारी?) हां, जानता हूँ, इनमें जो पुरुष देता है और सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न नहीं करता है, वह पुरुष व्यवहारी कहा जाता है (तत्थ णं जे से पुरिसो णो

णो देह णो सण्णवेह ४) ने आ प्रभाषे छे, ओक भाषुस डोअ पणु वस्तु डोअने आप्रो तो छे पणु तेनी साथे ते मिष्ट संवापणुवडे अओओ सतोषप्रद व्यवहार करतो नथी ? ओक भाषुस मिष्ट भाषणुवडे भीअनी साथे सतोषप्रद व्यवहार तो करेओ पणु आपतो कथं नथी २, ओक भाषुस आपे पणु छि अने लेनार भाषुसने मिष्ट वचनो वडे सतोष पणु आपे छे, ३, ओक भाषुस ओवो पणु होय छे क ने कथं पणु आपतो नथी अने मिष्ट वचनोथी सतोषअनक व्यवहार पणु करतो नथी (जाणासि तुमं पपसी ! एएसि चउण्हं पुरिसाणं के व्यवहारी के के अव्यवहारी ?) केशीओ प्रदेशीने प्रश्न कर्यो के हे प्रदेशिन् ! तमे आओओ छे के, आ चार व्यवहारी छे ? त्यारे प्रदेशीओ कहुं, (हंता, जाणामि, तत्थ णं जे से पुरिसे देह णो सण्णवेह से णं पुरिसे व्यवहारी ?) हां, आओओ छे, आभा ने भाषुस आपे छे अने सारा वचनोथी सतोष आपतो नथी ते पुरुष व्यवहारी कहेवाय छे, (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देह सण्णवेह से णं पुरिसे व्यवहारी २) ;

यः स पुरुषो नो ददाति नो संज्ञापयति स खलु अव्यवहारी । एवमेव
त्वमपि व्यवहारी, नो चैव खलु त्वं प्रदेशिन् ! अव्यवहारी ॥सू० १५०॥

टीका—“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः—अनन्तरोक्त-
प्रकारेण चत्तनानन्तरं खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजम् एवमवादीत्—

देहं सण्णवेह् से णं पुरिसे ववहारी२) तथा जो पुरुष देता नहीं है किन्तु
सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष व्यवहारी है।
(तत्थ णं जे से पुरिसे देह वि, सण्णवेह् वि, से पुरिसे ववहारी३) तथा जो
पुरुष देता भी है और सम्यक् आलाप द्वारा संतोष भी उत्पन्न करता
है वह पुरुष व्यवहारी है। (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देह णो सण्णवेह् से
पुरिसे से णं अववहारी) तथा जो पुरुष न देता है और न सम्यक् संभा-
षण द्वारा संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष अव्यवहारी है। (एवमेव
तुमं पि ववहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अववहारी) इसी तरह से अर्थात्
भग्नप्रयोक्त पुरुष, के बीच में एक भंग विशेष की तरह है प्रदेशिन् !
तुम भी व्यवहारी हो, चतुर्थ भग्नोक्त पुरुष की तरह तुम अव्यवहारी नहीं
हो—तात्पर्य कहने का यह है कि यद्यपि हे प्रदेशिन् ! तुमने सम्यक् आलाप
द्वारा सन्तुष्ट कर मुझसे व्यवहार नहीं किया है—फिर भी मेरे विषय में भक्ति
और बहुमान तो किया ही है—अतः तुम आद्यभग्नोक्त पुरुष की तरह
व्यवहारी ही हो—अव्यवहारी नहीं हो।

तेमञ्जे पुरेध आपतो नथी पखु सारा सभापखुथी सतोष उत्पन्न करे छे ते
व्यवहारी छे. (तत्थ णं जे से पुरिसे देह, वि, सण्णवेह् वि, से पुरिसे ववहारी.३)
तेमञ्जे पुरेध आपे पखु छे अने सम्यक आलापवडे सतोष पखु उत्पन्न करे
छे ते-पुरेध व्यवहारी छे. (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देह णो सण्णवेह् से पुरिसे णं
अववहारी) तेमञ्जे पुरेध आपतो नथी तेमञ्जे सम्यक आलाप पखु करतो नथी
अथेडे के सारा सभापखुथी सतोष उत्पन्न करतो नथी ते पुरुष अव्यवहारी छे
(एवमेव तुमं पि ववहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अववहारी) आ प्रभाञ्जे
हे प्रदेशिन् तमे पखु व्यवहारी छे.

चतुर्थे भगमां कइया सुज्ज तमे अव्यवहारी नथी. तात्पर्य आ प्रभाञ्जे छे के के
प्रदेशिन् ! तमेञ्जे सम्यक् आलापइय सारे व्यवहार मारी साथे कर्था नथी छत्तुञ्जे
भारा विषयमा भक्ति अने बहुमान तो तमे कर्था छे अथी तमे आद्यभग्नोक्त पुरेध-
नी जेमे व्यवहारी न छे. अव्यवहारी नथी.

हे प्रदेशिन् त्वं जानासि खलु यत् कति-कियन्तो व्यवहारकाः-व्यव-
 हाराः-प्रवृत्तयः प्रज्ञप्ताः ?" इति प्रश्नानन्तरं प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि,
 तत्र ज्ञायमानविषयं प्रकाशयति-चत्वारः-चतुः स ख्यकाः व्यवहाराः प्रज्ञप्ताः,
 तद्यथा-एकः-कश्चित् पुरुषः ददाति-किञ्चिद् वस्तु कस्मैचित् समर्पयति
 किन्तु न संज्ञापयति-सम्यग् आलापेन संतोषं नोत्पादयति १ । एकः सं-
 पयति किन्तु नो ददाति २ । एको ददात्यपि संज्ञापयत्यपि ३ । एको नो
 ददाति नो संज्ञापयति ४ । इति चत्वारो मङ्गाः । तत्र केशी प्रदेशे न पृच्छ-
 ति-हे प्रदेशिन् ! त्वं जानासि खलु एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां दान-तद-
 सं पन १-संज्ञापनाऽदान २-दानसंज्ञापनोभय ३-तदुभयराहित्यरूप ४-
 वृत्तिसम्पन्नानां मध्ये कः पुरुषो व्यवहारी ? इति जानासि ? इति प्रश्ने
 प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि-तदेव दर्शयति "तत्थ ण" इत्यादिना-तत्र-
 म तुष्ट्ये खलु यः सः-प्रथममङ्गोक्तः पुरुषः 'ददाति नो संज्ञापयति' सं-
 दान-तदसंज्ञापनसम् : खलु पुरुषः व्यवहारी कथयते ? । एवं तत्र खलु
 यः सः-द्वितीयमङ्गोक्तः, 'नो ददाति नो संज्ञापयति'-संज्ञापनाऽदानसम्-

टीकार्थ—जब केशिकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा पूछा कि हे
 प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि व्यवहार कितने प्रकार का होता है ? इस
 प्रश्न से पूछने का कारण यह हुआ कि प्रदेशी राजाने १४९९ वें सूत्र में
 अपने द्वारा कृतव्यवहार के विषय में सफाई उपस्थित की है. केशीकु-
 मारश्रमण के प्रश्न को सुनकर उसने कहा हाँ, भदन्त ! जानता हूँ व्यव-
 हार चार प्रकार का होता है. एक व्यवहार में देनेवाला पुरुष किसी के
 लिये कोई वस्तु देता है. परन्तु अपने सम्यक् आलाप से-बातचीत से
 वह उसके लिये संतोष उत्पन्न नहीं कराता है, दूसरे व्यवहार में देनेवाला

टीकार्थ—द्वितीय केशी कुमार श्रमणने प्रदेशी राजाने आ प्रभाष्ये प्रश्न कथं के
 हे प्रदेशिन् ! तमे ज्ञेयं छे के व्यवहार केटला प्रकारने होय छे ? आ प्रभाष्ये ने
 प्रश्न करवाभां आओ छे तेह करण्ये छे के प्रदेशी राजाने १४९९ भा सूत्रभां
 ने ज्ञेयं आशरण्य कथुं छे तेना संभयभा सपष्टीकरण करवाभा आओ छे. केशी
 कुमार श्रमणना प्रश्नने सांखणीने तेखे कहुं हां बहत । ज्ञेयं छे. व्यवहार आर
 प्रकारने होय छे. प्रथम व्यवहारभा दानकर्ता पुरुष कोछन भाटे कोछ वस्तु आपे
 छे, पण्ये पोताना सम्यक् आलापथी-सारी भीठी वातचीतथी ते साभेना भाष्यने
 संतोष आपतो नथी द्वितीय व्यवहारभा दानकर्ता पुरुष पोतानी भीठी वाष्यथी ज्ञेयने

नः सः खलु पुरुषो व्यवहारी २, एव तत्र यः सः तृतीयमङ्गोक्तः पुरुषः
ददात्यपि संज्ञापयत्यपि' सः-दान-तत्संज्ञापनसम्पन्नः पुरुषो व्यवहारी ३ ।

पुरुष अपनी मिष्ट भाषणरूप प्रवृत्ति से दूसरे को संतोष तो उत्पन्न करा देता है, परन्तु अपनी वस्तु उसे देता नहीं है। तृतीय व्यवहार में देने-वाला अपनी वस्तु दे भी देता है और अपनी मिष्ट भाषणरूप प्रवृत्ति से उसे संतोष भी उत्पन्न करदेता है, चतुर्थ व्यवहार में-कोई देता भी नहीं है और संतोष भी उत्पन्न नहीं कराता है। इस प्रकार ये चार भङ्ग हैं। इन में केशीकुमारश्रमण प्रदेशी राजा से पूछते हैं-हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इन चार-दान-तदसंज्ञापन, संज्ञापन दाने संज्ञापन उभय एवं तदुभय रहितरूप वृत्तिसंपन्न पुरुषों के मध्य में कौन पुरुष व्यवहारी है ? तब प्रदेशीने कहा हां, भदन्त ! जानता हूँ, इस भङ्गवस्तुष्टय में जो प्रथम मङ्गोक्त पुरुष है-देता तो है मिष्टभाषण द्वारा संतोष उत्पन्न नहीं

जाता है-वह दान तदसंज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी कहा जाता है अर्थात् जो 'ददाति नो संज्ञापयति' इस भङ्गवाला है वह व्यवहारी है इसी तरह जो द्वितीयभङ्ग में कहा गया है संज्ञापयति, नो ददाति' वह संज्ञापना अदान संपन्नपुरुष व्यवहारी है। इसी प्रकार जो तृतीय भङ्ग में कहा गया है 'ददात्यपि' संज्ञापयत्यपि' ऐसा वह दान तत्संज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी

संतोष आपी दे छ पक्षु पोतानी वस्तु सामेवाणा भाष्यसने आपतो नथी। तृतीय व्यवहारमा दानकर्ता पोतानी वस्तु आपी पक्षु दे छ अने पोतानी मधुर भाषणवृत्ति प्रवृत्तिथी ते सामेना भाष्यसने संतोष पक्षु करी दे छ। अतुर्थ व्यवहारमां ते कौण पक्षु वस्तु याचकने आपतो पक्षु नथी अने मधुर संज्ञापथी सामेना भाष्यसने संतोष पक्षु करतो नथी। आ प्रभाष्ये आ चार भङ्ग छे। जेना संज्ञापना देशी कुमारश्रमण प्रदेशी राजने प्रश्न करे छे ते छे प्रदेशिन् । तमे ज्ञेया छे ते आ चार-दान तदसंज्ञापन, संज्ञापन, दाने संज्ञापन उभय अने तदुभय रहितवृत्ति संज्ञापन पुरुषो व्यवहारी छे ? त्तारे प्रदेशीजे कहे-हां भदन्त ! ज्ञेया छुं। आ भगवतुष्टयमा जे प्रथम भङ्गोक्त पुरुष छे-ते आपे तो छे पक्षु मिष्ट भाषणवृत्ति संतोष उत्पन्न करतो नथी ते दान तदसंज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी कहेवाय छे। जेठे छे जे 'ददाति नो संज्ञापयति' आ भगवाणे छे ते व्यवहारी छे आ प्रभाष्ये जे द्वितीय भङ्ग कहेल छे 'संज्ञापयति, नो ददाति' ते संज्ञापना अदान संपन्न पुरुष व्यवहारी छे। आ प्रभाष्ये जे तृतीय भङ्गमां कहेल छे-ददात्यपि संज्ञापयत्यपि' जेवो ते दान तत्संज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी छे। पक्षु जे अतुर्थ

तत्र खलु यः सः—चतुर्थमङ्गोक्तः पुरुषः 'नो ददाति नो संज्ञापयति' सः—
 आदानासंज्ञापनोभयसम्पन्नः पुरुषः उभयविधव्यवहाररहिततया अव्य-
 वहारी । एवमेव—मङ्गव्योक्तपुरुषाणां मध्ये एकमङ्गविशेषवदेव हे प्रदेशिनः ।
 त्वं खलु अव्यवहारी चतुर्थमङ्गोक्तपुरुषवत् नो चैव—नैवासि । यद्यपि त्वं
 सम्यक्साक्षात्कारेण मां संतोष्य न वर्तसे, तथापि मम विषये भक्ति—बहुमानं
 च करोषि अतस्त्वमाद्यमङ्गोक्तपुरुषवद् व्यवहार्येव नत्वव्यवहारीति भावः ॥ सू. १५० ॥

मूलम्—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी
 —तुब्भे णं भंते । अइच्छेया दक्खा जाव उवएसलद्धा समत्था णं
 भंते ! ममं करयलसि वा आमलय जीवं सरीराओ अभिनिवडित्ता
 णं उवदंसित्तए ?

तेणं कालेणं तेणं समएणं पएसिस्स रण्णो अदूरसामंते वाउ-
 याए संवुत्ते, तणवणस्सइकाए ऐयइ वेयइ चलइ, फंदइ घट्टइ उंदी-
 रइ त तं भाव परिणमइ, तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं
 एवं वयासी—पाससि णं तुमं पएसिराया ! एयं तणवणस्सइ एयंत

हे. परन्तु जो चतुर्थ मङ्गोक्तपुरुष है 'नो ददाति नो संज्ञापयति' वह
 आदान असंज्ञापनारूप उभयवृत्ति सम्पन्न पुरुष उभयविधव्यवहार रहित होने
 के कारण अव्यवहारी है । उसी तरह से हे प्रदेशिन ! इन तीन मङ्गो
 में कहे गये पुरुषों के बीचमें एकमङ्गोक्त पुरुष विशेष की तरह तुम
 भी हो. चतुर्थ मङ्गोक्त पुरुष की तरह अव्यवहारी नहीं हो. यद्यपि तुमने
 सम्यक् आलाप द्वारा मुझे संतोष उत्पन्न कराकर प्रवृत्तिरूप व्यवहार नहीं
 किया है फिर भी मेरे विषय में भक्ति और बहुमान तो किया ही है, इसलिये तुम
 आद्यमङ्गोक्त पुरुष की तरह व्यवहारी ही हो, अव्यवहारी नहीं हो ॥ सू. १५० ॥

अ. गोकुल पुत्रो छे 'नो ददाति नो संज्ञापयति' ते आदान असांज्ञापना इय
 उभयवृत्ति सम्पन्न पुत्रो उभयविध व्यवहार रहित होवाथी अव्यवहारी छे आ.
 प्रभावे हे प्रदेशिन । आ. त्रयो अ. गोगा कहेल पुत्रोमा प्रथम अ. गोकुल पुत्रो विशेष-
 णनी जेम तमे पद्यो छे 'चतुर्थ' अ. गोकुल पुत्रोनी जेम तमे अव्यवहारी नथी तमे ।
 सम्यक् आलापद्वारा मने संतोष आपीने प्रवृत्तिइय व्यवहार कथी नथी छताये.
 आसा विषयमा अकित अने अहुमान तो तमेये कथां न छे ज्यथी तमे आद्य
 अ. गोकुल पुत्रोनी जेम व्यवहारी न छे, अव्यवहारी नथी. ॥ सू. १५० ॥

जाव त त भोव परिणमंत ? हंता ।। पासामि । जाणासि णं तुमं
 पएसी ! एयं तणवणस्सइं कायं । क देवो चालेइ असुरो वा चालेइ
 णागो चालेइ किंनरो वा चालेइ किंपुरिसो वा चालेइ महोरगो वा
 चालेइ गंधव्वो वा चालेइ ? हंता जाणामि—णो देवो चालेइ जाव गो
 गंधव्वो चालेइ । वाउकाए चालेइ पाससि णं तुम पएत्ती । एयस्स
 वाउकायस्स सरुविस्स सकम्मस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स
 स सरीरस्स रूव ? । णो इणट्ठे समट्ठे । जइ गं तुमं पएसिराया ! एयस्स
 वाउकायस्स सरुविस्स जाव स सरीरस्स रूवं न पाससि तं कह णं
 पएसी ! तव करयलंसि वा आमलग जीव उवदंसिस्सामि ? । एव खल्ल
 पएसी । दसट्ठाणाइं छउमत्थे मणुस्से सब्बभावेणं न जाणइ न पासइ,
 तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं
 असरीरवच्चं ४, परमाणुपोगलं ५, सइं ६, गंधं ७, वायं अयं जिणे भवि-
 स्सइं वा णो भविससइं ९, अय सब्बदुक्खाणं अंतं करिस्सइं वा नो
 वा करिस्सइं १० । एयाणि चैव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे
 केवली सब्बभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा
 करिस्सइं, तं सब्बहाहि ण तुम पएसी । जहा अन्नो जीवो तं चैव ? । सू १५१ ।

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—यूयं खलु
 भदन्त ! अतिच्छेकाः दक्षाः यावत् उपदेशलब्धाः समर्थाः खलु भदन्त !

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशीने (केशिकुमार-
 समणं एव वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(तुम्हे णं मंते ! अइच्छेया

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

(सुत्रार्थ—(तए णं) त्पार पष्ठी (पएसी राया) प्रदेशी शब्दभ्ये (केशिकुमार
 समणं एव वयासी) केशी कुमार श्रमण ने आ प्रभाष्ये क्खुं—(तुम्हे णं मंते !

मम करतले वा आमलकं जीव शरीराद् अभिनिवर्त्य खलु उपदर्शयितुम्?।
 तस्मिन् काले तस्मिन् समये प्रदेशिनो राज्ञः अदूरसामन्ते वायुकायः
 संवृत्तः, तृणवनस्पतिकायः एजते न्यजते चलति स्पन्दते घट्टते उदीर्ते तं तं
 भावं परिणमते । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-पश्यसि

दख्खा जाव उवएसलद्धा समत्था णं भंते ! ममं करयलसि वा आम-
 ल्यं जीव सरीराओ अभिनिवट्टित्ता णं उवदंसित्तए) हे भदन्त ! आप
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण है दक्ष है-कार्य के सम्पादन में कुशल
 हैं, यावत् उपदेशलब्ध है-गुरु के उपदेश को प्राप्त किये हुए है । इसलिये
 हे भदन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप हस्ततल में दि
 आंखले की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (तेणं कालेण तेण समएणं पए-
 सिस्स रणो अदूरसाम ते वाउयाए संबुत्ते) उस काल और उस समय
 में प्रदेशी राजा के नजदीक-न अतिदूर और न अतिपास स्थान पर
 वायुकायप्रवृत्त हुआ (तणवणस्सइकाए एयइ, वेयइ, चछेइ, फंदइ, घट्टइ,
 उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ) इससे तृणवनस्पतिकाय सा न्यतः एव
 विशेषतः कपित होने लगा, इधर से उधर रुकने लगा. परस्पर में संघर्षित होने
 लगा एवं कोईर जमीन ऊपर ही रुक गया. इस तरह तृणवनस्पति-
 काय एजनादिरूप भिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (तए णं

अइच्छेया दक्खा जाव उवएसलद्धा समत्था णं भंते ! ममं करयलसि
 वा आमलयं जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ता णं उवदंसित्तए) हे भदन्त ! आप
 अवसरने सरस शीते लक्ष्मणमा अति निपुण्णु छि, कार्यना संपादनमां कुशल छि,
 यावत् उपदेश लब्ध छि, गुणना उपदेशने प्राप्त करेस छि. अथी न हे भदन्त !
 शरीरमांथी एवने अहार कक्षाडीने शुं तने हस्तामलक्ष्वं भने अतावी शकै छि ?
 (ते णं कालेण तेणं समएणं पएसिस्स रणो अदूरसामंते वाउयाए संबुत्ते)
 ते क्षणे अने ते अमये प्रदेशी राजनी पासि न अति दूर अने न अति पासिना
 स्थान पर वायुकाय प्रवृत्त थयो. (तणवणस्सइकाए एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ,
 घट्टइ, उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ) अनाथी तृणवनस्पतिकाय सामान्यतः
 अने विशेषतः कपित थवा भाइयो. आभथी तेभ नभवा भाइयो, परस्पर संघर्षित
 थवा भाइयो, अने कौटुक जमीन पर न नमी गयो. आ अभाणु ते तृण वनस्पति
 काय अजनादिरूप भिन्न भिन्न अतना व्यापारमा परिणत थई गयो. (तए णं

खलु त्वं प्रदेशिराज ! एतं तृणवनस्पतिकायम् एजमानं यावत् तं तं भावं परिणममानम् ! हन्त ! पश्यामि । जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् । एतं तृणवनस्पतिकायं किं देवश्चालयति असुरो वा चालयति नागो वा चालयति किन्नरो वा चालयति किंपुरुषो वा चायति महोरगो वा चालयति गन्धर्वो वा चालयति ! हन्त ! जानामि-नो देवश्चालयति जाव नो गन्धर्वश्चालयति

केशीकुमारसमणे पपसिरायं एवं वयासी-पाससि णं तुमं पपसी राया ! एयं तृणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमतं) तव केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा-हे प्रदेशिन् ! तुम इस तृणवनस्पतिकाय को सामान्य विशेषरूप से कपित होते हुए यावत् एजनादिरूप भिन्नर प्रकार के व्यापार में परिणत होते हुए देख रहे होन? तव प्रदेशी राजाने कहा (हंता, पासामि) हां, मदन्त ! देख रहाहूँ (जाणासि णं तुमं पपसी ! एयं तृणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधवो वा चालेइ) तव केशीकुमारश्रमणने उससे कहा हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इस तृणवनस्पतिकाय को कौन चलाता है ? क्या देव चलाता है, या नाग चलाता है या किन्नर चलाता है, या किंपुरुष चलाता है, या महोरग चलाता है या गंधर्व चलाता है ? प्रदेशीने कहा-(हंता, जाणामि) हां, मदन्त ! जानता हूँ (णो देवो चालेइ जाव णो गंधवो चालेइ वावकाए

केशी कुमारसमणे पपसि रायं एवं वयासी-पाससि णं तुमं पपसि राया ! एयं तृणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमंति) त्वारे देशी कुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कञ्चु के हे प्रदेशिन् ! तमे आ तृणवनस्पतिकायने सामान्य विशेषरूपथी कपित थता यावत् एजनादिरूप भिन्न प्रकारना व्यापारभां परिणतं भुव्यो छे ? त्वारे प्रदेशी राजाने कञ्चु (हंता पासामि) हां मदन्त ! जेधं शब्दो छं (जाणासि णं तुमं पपसी ! एयं तृणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधवो वा चालेइ) त्वारे देशीकुमार श्रमणे तेने कञ्चु के हे प्रदेशिन् ! तमे आणो छे के आ तृणवनस्पतिकायने केषु यथावे छे ? शुं देव यथावे छे ? के असुर यथावे छे ? के नाग यथावे छे ? के किन्नर यथावे छे ? के किंपुरुष यथावे छे, के गंधर्व यथावे छे ? प्रदेशी राजाने कञ्चु-(हंता, जाणामि) हां मदन्त ! आणु छं (णो देवो चालेइ, जाव णो गंधवो चालेइ, वावकाए

वायुकायः चालयति । पश्यमि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतस्य वायुकायस्य सरूपिणः सकर्मणः सरागस्य समोहस्य सवेदस्य सलेश्यस्य रूपम् । नायमर्थः समर्थः । यदि खलु त्वं प्रदेशिराज एतस्य वायुकायस्य सरूपिणो यावत् सशरीरस्य रूपं न पश्यसि तत् कथं खलु प्रदेशिन् ! तव करतले इव आमलकं जीवमुपदर्शयिष्यामि । एव खलु प्रदेशिन् ! दश स्थानानि छद्मस्थो मनुष्यः सर्वभावेन न जानाति, न पश्यति, तद्यथा—धर्मास्तिकायम्^१, अधर्मास्तिकायम्^२, आकाश-

चालेइ) इसे न देव चलाता है, यावत् न गंधर्वं चलाता है । (पाससि णं तुमं पएसि ! एयस्स वाउकायस्स सरुविरस सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स ससरीरस्स रूव) केशीकुमारश्रमणने तव उससे कहा—हे प्रदेशिन् ! तुम इस सरूपी, सकर्मा, सराग, समोह, सवेद, सलेश्य, सशरीर वायुकाय के रूप को देखते हो ? (णो इणट्ठे समट्ठे) तव प्रदेशीने कहा—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वायुकाय के रूप को मैं नहीं देखता हूँ तब उससे केशीकुमारश्रमणने कहा—(जइ णं तुमं पएसि राया ! एयस्स वाउकायस्स सरुविस्स जाव ससरीरस्स रूव न पाससि त कइ णं पएसी ! तव करयळंसि वा आमलगं जीवं उवदसिस्सामि) हे प्रदेशिराजन् ! जब तुम इस सरूपी यावत् सशरीर वायुकाय के रूप को नहीं देख पा रहे हो—तो फिर मैं हे प्रदेशिन् ! कैसे तुम्हें करतलस्थित आमलके की तरह जीव दिग्वा सकता हूँ । (एव खलु पएसी ! दसट्ठाणं छउमत्थे मणुस्से

चालेइ) आने न देव चलावे छे, यावत् न गंधर्वं चलावे छे वायुकाय चलावे छे । (पाससि णं तुमं पएसि ! एयस्स वाउकायस्स सरुविस्स सकम्मस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स ससरीरस्स रूव) केशीकुमार श्रमणने तने तेने कहुं—हे प्रदेशिन् ! तमे आ सरूपी, सकर्मा, सराग, समोह, सवेद, सलेश्य सशरीर, वायुकायना इपने ज्ञेयो छे ? (णो इणट्ठे समट्ठे) त्वाइ प्रदेशीजे कहुं—हे भदन्त ! आ अर्थ समर्थ नहीं जेट्ठे हे वायुकायना इपने हूँ जेतो नर्थी । त्वाइ पछी केशी कुमार श्रमणने तेने कहुं । (जइ णं तुमं पएसि राया ! एयस्स वाउकायस्स सरुविस्स जाव ससरीरस्स रूवं न पाससि त कइ णं पएसी ! तव करयळंसि वा आमलगं जीवं उवदसिस्सामि) हे प्रदेशिराजन् ! ज्ञेयारे तमे आ सरूपी यावत् सशरीर वायुकायनाइपने ज्ञेय शक्ता नथी तो पछी हे प्रदेशिन् हूँ देवी रीते तमने करतल स्थित आमलानी जेम एवने देवादी शकुं छे । (एव खलु पएसी ! दसट्ठाणाइं छउमत्थे मणुस्से सज्वभावेण न जाणइ न पासइ) केभके हे प्रदेशिन् ! छद्मस्थ एव आ दश स्थानाने

स्तिकायं ३, जीवमशरीरबद्ध ४ परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गन्ध ७, वात ८, अयं जिनो भविष्यति वा नो भविष्यति ९, अयं सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति वा नो वा करिष्यति १०। एतानि चैव उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा-वर्मास्तिकायं यावत् नो वा करिष्यति, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेहिन्। यथा-अन्यो जीवः तदेव ९ ॥ सू० १५१ ॥

सर्वभावेणं न जाणइ, न पासइ) क्यों कि हे प्रदेशिन्। उच्चस्थ जीव इन इन दश स्थानों को सर्वभाव से नहीं जानता है और नहीं देखता है (त जहा) वे दशस्थान इस प्रकार से है (धम्मत्थिकाय १, अधम्मत्थिकाय २, आगासत्थिकाय ३, जीव असरीरबद्ध ४, परमाणुपुद्गल ५, सद् ६, गंध ७, वाय ८ अय जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सर्वदुक्खाणं अंतो करिस्सइ नो वा करिस्सइ १०) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर बद्ध जीव ४, परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८ यह जिन होगा, या नहीं होगा ९, और यह समस्त दुखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा १० (एयाणि चैव उत्पण्णनाणद सणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेण जाणइ पासइ) इन्हें तो उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारी धर्हन्त जिन केवली सर्वभाव से जानते है। (त जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा करिस्सइ-तं सहहाहि णं तुम पप्सी! जहा अन्नो जीवो तं चैव) अतः जब अर्हन्त जिन केवली धर्मास्तिकायादि १० स्थानों को जानते देखते हैं

सर्वभावथी ळुतो नथी अने जेतो नथी (त जहा) ते दशस्थानो आ प्रभाषे छे (धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीव असरीरबद्ध ४, परमाणुपुद्गल ५, सद् ६ गंध ७ वायं ८, अयं जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सर्वदुक्खाणं अतो करिस्सइ १०.) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर बद्ध जीव ४, परमाणु पुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८. आ जिन थसे के नहि थसे. ९. अने आ अमस्त दुःखो नो अन्त करे के नहि करे १०. (एयाणि चैव उत्पण्णनाणद सणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेणं जाणइ पासइ) अने तो उत्पन्न ज्ञान दर्शनधारी अहं तं जिन केवली सर्वभावथी ळुते छे अने ळुवे छे. (तं जहा धम्मत्थिकाय जाव नो वा करिस्सइ तं सहहाहि णं तुमं पप्सी! जहा अन्नो जीवो तं चैव) अथी न्यारे अहं तं जिन केवली धर्मास्तिकाय वगेरे १० स्थानो ने ळुते छे ळुवे छे अने छन्नरथ अने ळुता नथी तेमज्जे जेतो पथु नथी. तो हे प्रदेशिन्! तमे श्रद्धा करो के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे. धत्यादि.

ટીકા—‘તए ण पएसी राया’ इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशि-
मारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! यूय खलु अतिच्छेदाः—अवसरज्ञा-
नातिनिपुणाः, दक्षा—कार्यसम्पादनकुशलाः, यावत्—यावत्पदेन ‘प्राप्तार्थाः बुद्धाः
शलाः महामतयः विनीताः विज्ञानप्राप्ताः’ इत्येषां पदाना सङ्ग्रहः एषां
व्याख्या पूर्वं गता । उपदेशलब्धाः—प्राप्तगुरूपदेशाः, अतो हे भदन्त यूयं
शरीरात् जीवमभिनिवर्त्य—निष्काश्य करतले—हस्ततले स्थितम् आमलक-
मिव मम उपदर्शयितुं समर्थाः—शक्ताः ।

और छद्मस्थ इन्हे जानता देखता नहीं है तो हे प्रदेशिन ! तुम श्रद्धा
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. इत्यादि ।

टीकार्थ स्पष्ट है—‘दुक्खा जाव उपएसलद्धा’ में जो यावत् पद आया
है उससे यहां ‘प्राप्तार्थाः, बुद्धाः, कुशलाः, महामतयः, विनीताः, विज्ञान-
प्राप्ताः’ इन पदों का संग्रह हुआ है, इन पदों की व्याख्या पहिले की जा
चुकी है। उस काल और उस समय में का तात्पर्य है जब प्रदेशी राजाने
केशीकुमारश्रमण से शरीर से निकालकर जीव को हस्तामलकवत् दिखाने
की बात कही तब। ‘एयंतं जाव त त में जो यावत् पद आया है उससे
यहां ‘व्येजमानं, चलन्तं:स्पन्दमानं, घट्टमानम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है ।
इन पदोंकी व्याख्या इसी सूत्र में पहिले की जा चुकी है. इन पदों में वायुकाय एके-
न्द्रिय जीव है—अतः वह रूप युक्त है, कर्मसहित है, रागसहित है, मोहसहित
है, नपुंसकवेद सहित है, औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण इस चार

टीकार्थ स्पष्ट ७ છે ‘દુક્ખા જાવ ઉપસલદ્ધા’ મા જે યાવત્ પદ આવેલ
છે તેથી અહીં ‘પ્રાપ્તાર્થાઃ બુદ્ધાઃ, કુશલાઃ, મહામતયઃ, વિનીતાઃ, વિજ્ઞાન
પ્રાપ્તાઃ, આ પદોનો સંગ્રહ થયો છે. આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલા કરવામા આવી
છે. તે કાળે અને તે સમયે જે કહેવામા આવ્યું છે તેની સ્પષ્ટતા આ પ્રમાણે છે કે
ન્યારે પ્રદેશી રાજાએ કેશી કુમાર શ્રમણને શરીરમાથી બહાર કાઢીને જીવને હસ્તા-
મલકવત્ બતાવવાની વાત કહી ત્યારે (એયંતં જાવ ત ત) મા જે યાવત્ પદ છે
તેથી અહીં “વ્યેજમાન, ચલન્તં, સ્પન્દમાન, ઘટ્ટમાનમ્” આ પદોનો સંગ્રહ
થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા આ ૭ સૂત્રમા પહેલા કરવામા આવી છે. આ પદોમા
પ્રત્યયકૃત ૭ વિશેષતા છે ધાત્વર્થ કૃત વિશેષતા નથી વાયુકાય એકેન્દ્રિય જીવ છે
એથી તે રૂપયુક્ત જીવ છે કર્મસહિત છે, રાગસહિત છે, મોહસહિત છે, નપુસક
વેદ સહિત છે, ઔદારિક, વૈક્રિય, તૈજસ અને કાર્મણ આ ચાર શરીરવાળો છે. કૃષ્ણ

तस्मिन् काले-केशिकुमारश्रमण प्रति जीवस्य शरीरान्निष्काशनपूर्वकं कराऽऽमलकवद्गुपदर्शनमार्थनाकाले तस्मिन् समये-अवसरे प्रदेशिनो राक्षः अदूरसामन्ते नातिदूरे-नातिममीपे वायुकायः संहृत्तः-प्रवृत्तोऽभवत्, तेन तृणवनस्पतिकायः एजते-सामान्यतः कम्पते, ततो व्यजते-विशेषतः कम्पते, चलति-चपली भवति, स्पन्दते-ईपच्चलति, घट्टते-परस्परं संघर्षं प्राप्नोति, उदीर्ते-उत्कम्पते एवं तं भावम्-एजनादिरूपं व्यापारं परिणमते-प्राप्नोति, ततः-वायुकायसंवर्तनवशात् तृणवनस्पतिकायस्यैजनादिभावोपगमनानन्तरम् खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-हे प्रदेशिराज! त्वं पश्यसि-चक्षुर्गोचरं करोषि खलु एतम्-इमम् तृणवनस्पतिम्, एजमानं यावत्-यावत्पदेन-‘व्येजमानं चलन्तं स्पन्दमानं घट्टमानम् उदीराणम्’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः एषां व्याख्याऽत्रैव सूत्रे पूर्वं कृता, तत्र प्रत्ययकृतो विशेषः, घात्वर्थस्त्वविशेष एव द्रष्टव्यः। तं तं भावं परिणममानम् ?। इति केशिप्रश्ने प्रदेशी प्राह-हन्त ! पश्यामि। पुनः केशी कुमारश्रमण प्रदेशिराजं पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वं खलु जानासि एतं वनस्पतिकायं किं देवश्चालयति? किं वा असुरश्चालयति? किं वा नागः-नागदेवश्चालयति! किं वा किन्नरः-तदाख्यदेवविशेषश्चालयति! किं वा किंपुरुषश्चालयति! किं वा महोरगः-व्यन्तरविशेषो देवश्चालयति। किं वा गन्धर्वश्चालयति!। प्रदेशी प्राह-हन्त! जानामि-नो देवश्चालयति, यावत्-नो गन्धर्वश्चालयति, तर्हि कश्चालयति? इति जिज्ञासायामह-वायुकायश्चालति। केशी पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वमेतस्य स्वकीयेऽदूरसामन्ते संप्रवृत्तस्य वायुकायस्य रूपं पश्यसि, तस्य कीदृशस्येत्यत्राऽह सरूपिणः-रूपयुक्तस्य सकर्मणः-कर्मसहितस्य सरागस्य-गगसहितस्य सपोहस्य-मोहसहितस्य सवेदस्य-नपुंसक वेदसम्पन्नस्य सलेइयस्य-कृष्णनीलकापोतलेइयात्रययुक्तस्य सशरीरस्य-औदारिकवैक्रियतैजसकर्मण शरीरचतुष्टययुक्तस्य एतादृशस्य वायुकायस्य रूपं किं पश्यसि। इति पूर्वोपान्वयः। इति प्रश्ने प्रदेशी प्राह-नायमर्थः समर्थः-तादृशस्य वायुकायस्य दर्शनरूपोऽर्थः न समर्थः-न तस्य रूपं पश्यामीति भावः। केशीकुमार-

शरीरोंवाला है. कृष्ण, नील, एवं कापोत इन तीन लेइयाओंवाला है यही बात सरूपी आदि विशेषणों द्वारा वायुकाय में प्रकट की गई है। अब शिष्ट सूत्रस्थ पदों का अर्थ स्पष्ट है ॥ सू. १५१ ॥

नील आने कापोत आ त्रयु लेइयाओंवाला छे अरे न वात सङ्गी वगेरे विशेषणु वडे वायुकायभा प्रकट करवाभा आवी छे आक्षी खेला पहोने अर्थ स्पष्ट छे ॥१५१॥

टीका-‘तए णं पपसी राया’ इत्यादि-ततः खलु प्रदेशी राजा केशि-
मारश्रमणम् एवमवादीत्-हे भदन्त ! यूय खलु अतिच्छेकाः-अवसरज्ञा-
नात्तिनिपुणाः, दक्ष्णा-कार्यसम्पादनकुशलाः, यावत्-यावत्पदेन ‘प्राप्तार्थाः बुद्धाः
शलाः महामतयः विनीताः विज्ञानप्राप्ताः’ इत्येषां पदाना सङ्ग्रहः एषां
व्याख्या पूर्व गता । उपदेशलब्धाः-प्राप्तगुरूपदेशाः, अतो हे भदन्त यूयं
शरीरात् जीवमभिनिवर्त्य--निष्वाश्य करतले-हरततले स्थितम् आमलक-
मिव मम उपदर्शयितुं समर्थाः--शक्ताः ।

और छात्रस्य इन्हे जानता देखता नहीं है तो हे प्रदेशिन् ! तुम श्रद्धा
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. इत्यादि ।

टीकार्थ स्पष्ट है-‘दुक्खा जाव उपएसलद्धा’ में जो यावत् पद आया
है उससे यहां ‘प्राप्तार्थाः, बुद्धाः, कुशलाः, महामतयः, विनीताः, विज्ञान-
प्राप्ताः’ इन पदों का संग्रह हुआ है, इन पदों की व्याख्या पहिलेकी जा
चुकी है। उस काल और उस समय में का तात्पर्य है जब प्रदेशी राजाने
केशीकुमारश्रमण से शरीर से निकालकर जीव को हस्तामलकवत् दिखाने
की धान कही तब। ‘एयंत जाव त त में जो यावत् पद आया है उससे
यहां ‘व्येजमान, चलन्तः, स्पन्दमानं, घट्टमानम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है।
इन पदोंकी व्याख्या इसी सूत्र में पहिले की जा चुकी है. इन पदों में वायुकाय एके-
न्द्रिय जीव है-अतः वह रूप युक्त है, कर्मसहित है, रागसहित है, मोहसहित
है, नपुंसकवेद सहित है, औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कर्मण इस चार

टीकार्थ स्पष्ट ७ छे ‘दुक्खा जाव उपएसलद्धा’ मा ७े यावत् पद आवेद
छे तेथी अही ‘प्राप्तार्थाः बुद्धाः, कुशलाः, महामतयः, विनीताः, विज्ञान
प्राप्ताः, आ पदोने स अह थये छे. आ पदोनी व्याख्या पडेता करवाभा आवी
छे. ते ठाणे अने ते समये ७े कडेवाभा आ०युं छे तेनी स्पष्टता आ प्रभाषे छे ३
व्यापरे प्रदेशी राजाअे केशी कुमार श्रमणने शरीरभाथी अहार कादीने एवने इस्ता-
मलकवत् गताववानी वात कही त्तारे (एयंत जाव त त) मा ७े यावत् पद छे
तेथी अही “व्येजमान, चलन्तः, स्पन्दमान, घट्टमानम्” आ पदोने स अह
थये छे. आ पदोनी व्याख्या आ ७ सूत्रमा पडेता करवाभा आवी छे. आ पदोभा
प्रत्ययकृत ७ विशेषता छे धात्वर्थ कृत विशेषता नथी वायुकाय ऐकेन्द्रिय एव छे
अथी ते उपयुक्त एव छे कर्मसहित छे, रागसहित छे, मोहसहित छे, नपुंसक
वेद सहित छे, औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने कर्मण आ त्तार शरीरवाणे छे. कृष्यु

तस्मिन् काले-केशिकुमारश्रमण प्रति जीवस्य शरीरान्निष्काशनपूर्वकं करऽऽमलकवटुपदर्शनमार्थनाकाले तस्मिन् समये-अवगमरे प्रदेशिनो राक्षः अदूरसामन्ते नातिदूरे-नातिममीपे वायुकायः तद्वृत्तः-प्रवृत्तोऽभवत्, तेन तृणवनस्पतिकायः एजते-सामान्यतः कम्पते, ततो व्यजते-विशेषतः कम्पते, चलति-चपली भवति, स्पन्दते-ईपञ्चलति, घट्टते-परस्परं संघर्षं प्राप्नोति, उदीर्ते-उत्कम्पते एवं तां भावम्-एजनादिरूपं व्यापारं परिणमने-प्राप्नोति, ततः-वायुकायसवर्तनवशात् तृणवनस्पतिकायस्यैजनादिभावोपगमनानन्तरम् खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-हे प्रदेशिराज! त्वं पश्यसि-चक्षुर्गोचरं करोषि खलु एतम्-इमम् तृणवनस्पतिम्, एजमानं यावत्-यावत्पदेन-‘व्येजमानं चलन्तं स्पन्दमानं घट्टमानम् उदीराणम्’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः एषां व्याख्याऽत्रैव सूत्रे पूर्वं कृता, तत्र प्रत्ययकृतो विशेषः, धात्वर्थस्त्वविशेष एव द्रष्टव्यः। तां ता भावं परिणममानम्. ?। इति केशिप्रश्ने प्रदेशी प्राह-हन्त ! पश्यामि। पुनः केशी कुमारश्रमण प्रदेशिराजं पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वं न्वलु जानासि एतां वनस्पतिकायं किं देवश्चालयति? किं वा असुरश्चालयति? किं वा नागः-नागदेवश्चालयति! किं वा किन्नरः-तदाग्यदेवविशेषश्चालयति! किं वा किंपुरुषश्चालयति! किं वा महोरगः-व्यन्तरविशेषो देवश्चालयति। किं वा गन्धर्वश्चालयति!। प्रदेशी प्राह-हन्त!! जानामि-नो देवश्चालयति, यावत्-नो गन्धर्वश्चालयति, तर्हि ऋश्चालयति! इति जिज्ञासायामह-वायुकायश्चालति। केशी पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! त्वमेतस्य स्वकीयेऽदूरसामन्ते संप्रवृत्तस्य वायुकायस्य रूपं पश्यसि, तस्य कीदृशस्येहपत्राऽऽह सरुपिणः-रूपयुक्तस्य सकर्मणः-कर्मसहितस्य सरागस्य-रागसहितस्य समोहस्य-मोहसहितस्य सवेदस्य-नपुंसक वेदसम्पन्नस्य सलेश्यस्य-कृष्णनीलकापोतलेऽद्यात्रययुक्तस्य शरीरस्य-औदारिकवैक्रियतैजसकर्मण शरीरचतुष्टययुक्तस्य एतादृशस्य वायुकायस्य रूपं किं पश्यसि। इति पूर्वोक्तान्वयः। इति प्रश्ने प्रदेशी प्राह-नायमर्थः समर्थः-तादृशस्य वायुकायस्य दर्शनरूपोऽर्थः न समर्थः-न तस्य रूपं पश्यामीति भावः। केशीकुमार-

शरीरोवाला है। कृष्ण, नील, एवं कापोत इन तीन लेइयाओवाला है यही बात सरूपी आदि विशेषणों द्वारा वायुकाय में प्रकट की गई है। अब शिष्ट सूत्रस्थ पदों का अर्थ स्पष्ट है ॥ सू. १५१ ॥

नील अने कापोत आ त्रयु लेइयाओवाणे छे अने ए वात सङ्घी वगेरे विशेषणु वडे वायुकायमा प्रकट करवाभा आवी छे आकी रहेला पहोने अर्थ स्पष्ट छे ॥१५१॥

श्रमणो वायुकास्याशक्यदर्शनत्वे प्रदेशिनमाह—हे प्रदेशिराज । यदि त्वं खलु एतस्य वायुकायस्य सरूपिणः यावत्—सशरीरस्य रूपं न पश्यसि तत्—तदा कथं—केन प्रकारेण खलु करतले आमलक वा—इव जीवं तव उपदर्शयिष्यामि? वायुकायस्य तव जीवस्य च समानरूपत्वादेकस्या शक्यदर्शनत्वेऽपरस्यापि अशक्यदर्शनत्वात् । वक्ष्यमाणच्छाश्रमनुष्यस्य जीवादिस्थानानां सर्वभावेन ज्ञानदर्शनाऽयोग्यत्वात् कथं चक्षुर्गोचर कारयिष्यामीति भावः । तदेव दर्शयति—हे प्रदेशिन । एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण खलु छद्मस्थो मनुष्यः दशस्थानानि वक्ष्यमाणानि धर्मास्तिकाद्यादीनि सर्वभावेन सम्पूर्णतया न जानाति, न पश्यति । कानि तानीत्याह तद्यथा—धर्मास्तिकायम् १, अधर्मास्तिकायम् २, आकाशास्तिकायम् ३, जीवशरीरवद्धम्—शरीरतोऽसंस्पृष्टम् ४, परमाणुपुग्दलम् ५, शब्दम् ६, गन्धम् ७, वात—वायुम् ८, अयं जिनो भविष्यति वा—अथवा नो—न भविष्यतीति? ९, अयं सर्वदुःखानामन्त करिष्यति वा नो करिष्यतीति? १० । एतानि दशस्थानानि उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अहं जिनः केवली एव सर्वभावेप—साकल्येन जानाति तथा पश्यति, नद्यथा—धर्मास्तिकाय यावत्—नो वा करिष्यति तत्तस्मात्कारणात् हे प्रदेशिन । त्वं श्रद्धेहि, यथा—अन्यो जीवः तदेवपूर्वोक्तमेव—अन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवःस्स शरीरम् इति ॥ सू० १५१ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी से नूर्ण भंते । हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ? हंता पएसी हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे । से णूणं भंते । हत्थिउ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एवं अप्पाहारनीहारउस्सासनीसासइ ह्वयतराए अप्पजुइयतराए चेव, एवं कुंथुओ हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव जाव ? महज्जुइयतराए चेव । हत ? हत्थीओ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव तं चेव । कम्हा णं भंते । हत्थिस्स कुंथुस्स य समे चेव जीवे? पएसी से जहाणामए—कूडागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा, अह णं केइ पुरिसे जोइं च

पदी च गहाय तं कूडागारसाल अंतोर अणुपविसइ, तीसे कूडा-
 गारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतराइं णिच्छिड्डाइं दुवा-
 रवयणाइ पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं
 पलीवेज्जा, तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतोर ओभासइ उज्जो
 वेइ तावइ पभासइ, णो चेव णं बाहिं। अह णं से पुरिसे तं पईवं
 इड्डरणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे त इड्डरयं अंतोर ओभासेइ४,
 णो चेव णं इड्डरगस्स बाहिं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं। एवं
 गोकिलिंजेणं, पच्छियपिडएणं गंड मणियाए, आढएणं, अच्चाढएणं,
 पत्थएणं, अच्चपत्थएणं, कुलवेणं चाउब्भाइयाए, अट्टभाइयाए, सोल-
 सियाए, बत्तीसियाए, चउसट्टियाए, दीवचंपएण, तए णं से पईवे
 दीवचंपगस्स अंतोर ओभासेइ४, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं नो
 चेव णं चउसट्टियं नो चेव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो चेव णं कूडा-
 गारसालं णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं, एवामेव पएसी। जीवे
 वि जं जारिसय पुव्वकम्मनिबद्धं बोदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं
 जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ सुद्धियं वा महालिय वा, तं सइहाहिं
 णं तुम पएसी। जहा—अण्णो जीवो त चेव णं १०। ॥ सू. १५२ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्-
 स नून भदन्त ! हस्तिनः कुन्धोः वा सम एव जीवः ? हन्त ! ! प्रदेभिन् !

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए ण) इसके बाद (ते पएसी राया केशिं कुमारसमणं
 एव वयासी) उस प्रदेशी राजाने (केशिं कुमारसमणं एवं वयासी) केशी-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पछी (ते पएसी राया केशिं कुमारसमण एव
 वयासी) ते प्रदेशी राजाने केशी कुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे अद्ध (से नूनं

हस्तिनश्च कुन्धोश्च सम एव जीवः। अथ नून भदन्त ! हस्तिनः कुन्धुः अल्प
कर्मतर एव अल्पक्रियतर एव अल्पास्रवतर एव, एवम् अल्पाहारनीहारो
च्छ्वासनिः श्वासऋद्धिकतरः अल्पघृतिकतर एव, एवं च कुन्धुतः हस्ती
महाकर्मतर एव महाक्रियतर एव यावत् महाघृतिकतर एव ? हन्त ! प्रदेशिन !

कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(से पूणं मंते ! हस्तिस्स य कुंथुस्स य समे
चेव जीवे) हे भदन्त ! हाथी का जीव और कुन्धु का जीव क्या तुल्यप-
रिमाण वाला है या न्यूनाधिकपरिमाणवाला है ? तब केशीकुमारश्रमण
ने उससे कहा—(हता, पएसी ! हस्तिस्स य कुथुस्स य समे चेव जीवे)
हां प्रदेशिन ! हाथी का और कुंथुका जीव तुल्यपरिमाणवाला है, न्यूना-
धिक परिमाणवाला नहीं है। (से पूणं मंते ! हस्तीउ कुंथू अप्पकम्मतराए
चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव) हे भदन्त ! हस्ती की
अपेक्षा कुन्धु क्या अल्पकर्मवाला ही होता है ? अत्यल्प कायिकादि क्रिया
वाला ही होता है ? अत्यल्प आस्रव वाला ही होता है ? (एवं अप्पाहार
नीहारउस्सासनीसासह्ङ्गियतराए, अप्पजुइयतराए चेव) अल्पतर आहार-
वाला ही होता है ? अल्पतर नीहार वाला ही होता है ? अल्पतर उच्छ्वास
निश्वास वाला ही होता है ? अल्पतर ऋद्धिवाला ही होता है ? अल्पतर
घृति शरीर की कान्ति वाला ही होता है। (एवं कुंथुओ हत्थी महाकम्म
तराए चेव, महाकिरियतराए चेव जाव महज्जुइयतराए चेव) इसी प्रकार से

मंते ! हस्तिस्सय कुथुस्स य समे चेव जीवे) हे भदन्त ! हाथीने एव
कुंथुने एव शुं तुल्य परिमाण वाणे छे के न्यूनाधिक परिमाणवाणे छे ? त्थारे डेशी
कुमार श्रमणे तेने कहु—(हंता, पएसी ! हस्तिस्स य कुथुस्स य समे चेव
जीवे) हा प्रदेशिन ! हाथीने अने कुथुने एव तुल्य परिमाणवाणे छे न्यूना-
धिक परिमाणवाणे नथी. (से पूणं मंते ! हस्तिउ कुथु अप्पकम्मतराए चेव,
अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव) हे भदन्त ! हाथीनी अपे-
क्षाये शु कुथु अल्पकर्मवाणु न् होय छे ? अत्यल्पकायिक वगेरे क्रियावाणुं होय
छे ? अत्यल्प आस्रवयुक्त होय छे। (एवं अप्पाहारनीहारउस्सासनीसास-
ह्ङ्गियतराए, अप्पजुइयतराए चेव) अल्पतर आहारवाणुं न् होय छे। अल्प
तर नीहारवाणुं न् होय छे ; अल्पतर उच्छ्वास निश्वास युक्त होय छे। (एवं
कुथुओ हत्थी महाकम्मतराएचेव, महाकिरियतराए चेव जाव महज्जु
इयतराए चेव) आ प्रमाणे कुथुनी अपेक्षाये शु हाथी महाकर्मतर होय छे.

हस्तितः कुन्थुश्च अल्पकर्मतर एव, कुन्थुतो वा हत्वी महाकर्मतर एव तदेव ।
कस्मात् खलु भदन्त ! हस्तितश्च कुन्थोश्च सम एव जीवः । प्रदेशिन् ! तद्
यथानामकं कूटाऽऽकारशाला स्यात्, यावत् निर्वातगम्भीरा, अथ खलु कश्चित्
पुरुषः ज्योतिर्वा प्रदीपं वा गृहीत्वा तां कूटाऽऽकारशालाम् अन्तरन्तरनुप-

कुन्थु की अपेक्षा हाथी क्या महाकर्मतर ही होता है, महाक्रियातर ही होता है?
यावत् महाधृतितर ही होता है? इस प्रदेशी के प्रश्न के उत्तर में केशी
कुमारश्रमणने कहा—(हंत, पएसी । हत्थिओ कुथू अप्पकम्मतराए च्चैव,
कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए च्चैव महाकिरियतराए च्चैव—तं च्चैव) हां,
प्रदेशिन् ! ऐसी ही बात है—हाथी से कुन्थु अल्पतर कर्मवाला ही होता है,
इत्यादि इसी प्रकार कुन्थु की अपेक्षा से हाथी महाकर्मतरवाला ही होता
है, महाक्रियावाला ही होता है इत्यादि । (कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स य
कुंथुस्स य समे च्चैव जीवे) अब प्रदेशी इस प्रकार पूछता है कि—हे
भदन्त ! आपने जो हाथी और कुन्थु के जीव को समानपरिमाणवाला कहा
सो इसका क्या कारण है? केशीकुमारश्रमणने उससे कहा—(पएसी !
से जहा नामए कूटागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन् !
जैसे एक कूटाकारवाली पर्वत के शिखर के आकार जैसी शाला हो और यावत्
वह निर्वात-वायुप्रवेश रहित होने के कारण गभीर हो, (कहं णं केइ पुरिसं
जोई पदीवं च गहाय तं कूटागारसालं अतो अणुपविसइ) अब कोई

महाक्रियातर होय छे ? यावत् महाधृतितर न होय छे ? प्रदेशीना आ प्रश्नना
उत्तरमां देशी कुमार श्रमणे कथं—(हंता पएसी ! हत्थीओ कुंथू अप्प कम्म-
तराए च्चैव, कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए च्चैव महाकिरियतराए च्चैव
तंच्चैव) हां, प्रदेशिन् । बात ज्येवी न छे, हाथी करता कुन्थु अल्पतर कर्मकर्ता होय
छे, वगेरे, आ प्रभाणे कुन्थु करता हाथी महाकर्म कर्ता होय छे, महाक्रिया युक्त
होय छे वगेरे, (कम्हाणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे च्चैव जीवे) अब
प्रदेशी आ प्रभाणे प्रश्न करेछे के हे भदंत ! तमे ने हाथी अने कुंथुना एवने समान
परिमाणवाणे कयो छे तो ज्येह थुं करणु छे ? देशी कुमार श्रमणे तेने कथं—
(पएसी ! से जहानामए कूटागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा)
हे प्रदेशिन् ! जेभ के केह ज्येह कूटाकारवाणी-पर्वतना शिखरना आकृति, ज्येही-
शाला होय अने यावत् ते निर्वात-वायु प्रवेश रहित होवाथी गभीर होय, (अहं
णं केइ पुरिसे जोहं च पद्दवं च गहाय तं कूटागारसालं अतो २ अ -

विशति, तस्याः कूटाकारशालायाः सर्वतः समन्तात् घननिचितनिरन्तराणि निश्छिद्राणि द्वारवदनानि पिदधाति, तस्याः कूटाऽऽकारशालाया बहुमध्य-देशभागे तं प्रदीप प्रदीपयेत्, ततः खलु स प्रदीपः तां कूटाऽऽकारशालाम् अन्तरन्तः अवमासयति उद्घोतयति तापयति प्रभासयति, नो चैव खलु बहिः अथ खलु स पुरुषः तं प्रदीपम् इङ्करकेण पिदध्यात्, ततः खलु

पुरुष अग्नि और दीपक को लेकर उस कूटाकारशाल के भीतर घुसकर बिलकुल ठीक मध्यभाग में जाकर खड़ा हो जाता है (तीसे कूडागारशालाए सब्बओ समंता घणनिचियनिरंतराहं णिच्छिङ्गैइ दुवारवयणाइ पिहेइ) फिर वह उस कूटाकारशाला के चारों ओर के सब दरवाजों को इस तरह से बन्द कर देता है कि जिससे उनके आपस में किबाह इस प्रकार से सट जाते हैं कि उनमें जरासा भी छिद्र नहीं रहने पाता है, इस तरह से दरवाजों को अच्छी तरह से बन्द कर (तीसे कूडागारशालाए बहुमज्जदेसभाए तं पहुँवं पलीवेज्जा) फिर वह उस कूटाकारशाला के बहुमध्य देशभाग में उस प्रदीप को प्रज्वलित करता है, (तए णं से पहुँवे तं कूडागारशालं अंतो २ ओमासइ) इस तरह वह दीपक उस कूटाकारशाला के पूरे भागको ही प्रकाशित करता है (उज्जोवेइ, तावइ पभावइ) उधोतित करता है, तापित करता है एवं घटपटादि पदार्थों को दिखाने से उसे प्रभासित करता है (णो चेष णं वारिं) उस कूटाकारशाला के बाहिरी भाग को वह न प्रकाशित करता है, न उधोतित करता है, न तापित करता है और न घटपटादिकों को

प्रविशइ) इवे क्कालं पुरुष अग्नि तेभञ्ज दीपक बधने ते कूटाकारशालाना अहर प्रविध धने अक्कहम तेना मध्यभागमा बधने उक्को थधं अय छे, (तीसे कूडागारशालाए सब्बओ समंता घणनिचियनिरंतराहं णिच्छिङ्गैइ दुवारवयणाइ पिहेइ) पछी ते भाषुस ते कूटाकार शालाना आरे तरइना अधा द्वारेने अवी रीते अध करी हे छे तेना परस्पर अक्कहम अध थयेवा कमाडोमाथी नानु सरथु पथु कालु रइत्तं नथी, (तीसे कूडागारशालाए बहुमज्जदेसभाए तं पहुँवं पलीवेज्जा) पछी ते भाषुस ते कूटाकारशालाना बहुमध्य देशभागमां ते दीपकने चेठावे छे, (तए णं से पहुँवे तं कूडागारशाल अतो २ ओमासइ) आ प्रभाषु ते दीपक ते कूटाकार शालाना अहरना भागने न प्रकाशित करे छे, (उज्जोवेइ, तावइ पभावइ) उधोतित करे छे, तापित करे छे, अने घटपट वगेरे पदार्थाने अतावीने तेभने प्रतिभासित करे छे (णो चेष णं वारिं) ते कूटाकार शालाना अहरना भागने ते प्रकाशित करतो नथी, उधोतित करतो नथी, सतापित करतो नथी अने

स प्रदीपः तद् इड्डाकम् अन्तरन्तः अत्रभासयति४, नो चैव खलु इड्डरकस्य वहिः,
नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालायाः वहिः। एवं गोकिलिजेन. पक्षिपिट-
केन, गण्डमाणिकया. आढकेन, अर्धाढकेन, प्रस्थकेन, अर्धप्रस्थकेन, कुडवेन,
अर्धकुडवेन, चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया, षोडशिकया, द्वात्रिंशत्कया,

दिखाने से उसे प्रभासित करता है। (अह ण से पुरिसे तं पईवं इड्डरणं
पिहेज्जा, तएणं से पईवे तं इड्डरयं अतोरे ओमासेइ४) यदि वह पुरुष
उस दीपक जो किसी बड़े ढकन से ढक देता है—तो वह दीपक उस
बड़े ढकन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है यावत् उसे प्रभासित
करता है (णो चैव णं इड्डरगस्स बार्हिं णो चैव ण कूडागारसालाए बार्हिं)
उस बड़े ढकन के बाहिरी भाग को एवं कूटाकारशाला के बाह्यदेश को
प्रकाशित यावत् प्रभासित नहीं करता है। (एवं गोकिलिजेणं, पच्छि-
पिण्डएण, गण्डमणियाए, आढएण, अद्धाढएण, पत्थएण, अद्धपत्थएणं
कुलवेण, चाउव्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) इसी तरह उस दीप
को गोकिलिजे से—गाय को खाना जिसमें रखा जाता है ऐसी कुण्डिका
से, तथा पक्षी के आकरवाले वंशशलाका निर्मित पात्र विशेष से, गण्ड-
मणिका से—धान्य नापनिका से, आढक से, अर्धाढक से, प्रस्थक से,
अर्धप्रस्थक से, कुडवसे, अर्धकुडव से, न सष देश विशेष में प्रसिद्ध
धान्यमापक पात्र विशेषों से ढक देता है तथा चतुर्भागिका से, अष्टभागिका

घटपट वगेरे पहाथीने भतावीने तेमने प्रतिभासित पषु करतो नथी. (अहं णं से
पुरिसे तं पईवं इड्डरणं पिहेज्जा, तए ण से पईवे तं इड्डरयं अतोरे
ओमासेइ४) हुवे जे ते पुरुष ते दीपकने मोटा ढक्युथी ढकी दे तो ते दीपक
ते मोटा ढक्युथी अहरना भागने न प्रकाशित करे छे, यावत् तेने प्रतिभासित करे
छे. (णो चैव णं इड्डरगस्स बार्हिं णो चैव णं कूडागारसालाए बार्हिं)
ते मोटा ढक्युथी अहरना भागने तेमने ते कूटाकारशालाणा आढ्य प्रदेशने प्रकाशित
यावत् तेने प्रतिभासित करतो नथी. (एवं गोकिलिजेणं पच्छिपिण्डएणं, गण्ड-
मणियाए, आढएण, अद्धाढएण, पत्थएण, अद्धपत्थएणं, कुलवेण, चाउ-
व्माइयाए, अट्टमाइयाए, सोलसियाए) आ प्रभाषे ते भाषस ते दीपकने—गोकि-
लिन्थी—गायने जेमा भाषस मूकवाभा आवे छे. जेवी कुडीथी, तेमने पक्षीना
आकरवाणा वंश शलाका निर्मित पात्र विशेषथी, गड मख्जिठाथी—धान्य नापनिकाथी,
आढकथी, अर्धाढकथी, प्रस्थकथी, अर्धप्रस्थकथी, कुडवथी, अर्धकुडवथी, आ षष देश
विदेशमा प्रसिद्ध धान्यमापक पात्र विशेषथी तेने ढकी दे छे तेमने चतुर्भागिकाथी,

चतुष्पष्टया, दीपचम्पकेन, ततः खलु स प्रदीपः दीपचम्पकस्य अन्तरन्तः
 अवभासयति४, नो चैव खलु दीपचम्पकस्य वहिः नो चैव खलु चतुष्पष्टिका,
 नो चैव खलु चतुष्पष्टिकाया वहिः, नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालां, नो
 चैव खलु कूटाऽऽकारशालाया वहिः, एवमेव प्रदेशिन् । जीवोऽपि यां यादृशीं
 पूर्वकर्म निबद्धां बोद्धिं निर्वर्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तां करोति ध्रुविकां वा
 महतीं वा, तत् श्रद्धेहि खलु त्व प्रदेशिन् । यथा अन्यो जीवः तदेव खलु १० । सू. १५२ ।

से, षोडशभागिका से इन सब चतुर्भागिका से चतुष्पष्टिकापर्यन्त के
 मगधदेशप्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से हक देता है तथा दीप के ढँकने
 से ढँक देता है (तए णं से पहुँचे दीवचंपगस्स अतो २ ओमासेइ) तो
 वह प्रदीप निन २ से ढँका गया है उन्हीं २ के भीतरी को ही प्रका-
 शित करता है, उनके बाहिरी भाग को नहीं इसी तरह से वह दीपच-
 म्पक के ही भीतरी भाग को प्रकाशित करता है, (णो चैव णं दीवच-
 गस्स बाहिं नो चैव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो
 चैव णं कूडागारसालं. कूडागारसालाए बाहिं) दीपचम्पक के बाहिरी
 भाग को नहीं—या दीपक के बाहिर के प्रदेश को नहीं, चतुष्पष्टिका
 को नहीं, चतुष्पष्टिका के बाहिर के प्रदेश को नहीं, कूटाकारशाला को,
 और कूटाकारशाला के बाहर के प्रदेश को नहीं प्रकाशित करता है
 (एवामेव पएसी ! जीवे वि जे जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोद्धिं णिव्वत्तेइ)

अष्ट भागीकाथी, षोडश भागीकाथी (वस्तीसियाए, चउसट्टियाए, दीवचंपरणं)
 अन्तीसिकाथी, चतुष्पष्टिकाथी, आ अधी अतुर्भागिकाथीं चतुष्पष्टिका पर्यन्तना मगध
 देश प्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषोथी ढांकी डे छ तेमए दीपचंपकथी-दीपकना ढां-
 षुथी. ढांकी डे छ. (तए णं से पहुँचे दीवचंपगस्स अतो २ ओमासेइ)
 तो ते प्रदीप जे जे वस्तुथी ढांकावां आंथो छे ते ते वस्तुना अंहरना भागने
 जे प्रकाशित करे छे. तेमना अहारना भागने प्रकाशित करतो नथी. आ प्रभाषे ते
 दीपचंपकना अंहरना भागने जे प्रकाशित करे छे (णो चैव णं दीवचंपगस्स
 बाहिं, नो चैव णं चउसट्टिय, नो चैव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो चैव
 णं कूडागारसालं, णो चैव णं कूडागारसालाए बाहिं) दीपचंपकना
 अहारना भागने नही, डे दीपक चंपकना अहारना प्रदेशने नही, चतुष्पष्टिकाने नही,
 चतुष्पष्टिकाना अहारना प्रदेशने नही, कूटाकार शालाने नही, अने कूटाकारशालाना
 अहारना प्रदेशने प्रकाशित करतो नथी एवामेव—पएसी ! जीवे वि जे जारि-
 सयं. पुव्वकम्मनिबद्धं बोद्धिं णिव्वत्तेइ) आ प्रभाषे छे प्रदेशिन् एव पखु पूर्व-

टीका—'तए णं से पएसी राया' इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! स शरीराद्भिन्नः जीवः नूनं—निश्चयेन हस्तिनः कुन्थोः—त्रीन्द्रियक्षुद्रप्राणिविशेषस्य च समः—तुल्यपरिमाण एव न न्यूनाधिकपरिमाणः इति प्रश्नः। केशी प्राह—इन्त ! हे प्रदेशिन !

इसी तरह से हे प्रदेशिन ! जीव भी पूर्वभवोपार्जित कर्मद्वारा नियद्ध जैसे शरीर को उत्पन्न—प्राप्त करता है (तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सच्चित्तं करेइ खुद्धियं वा महालियं वा) चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसे अपने असंख्यात प्रदेशों से सच्चित्त—जीव युक्त कर लिया करता है. (तं सदहाहिणं तुमं पएसी ! जहा अणो जीवो तं चेव णं १०) इसलिये हे प्रदेशिन ! तुम इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है इत्यादि।

टीकार्थ—इस मूलार्थ के ही अनुरूप है—परन्तु जो विशेषता है—वह इस प्रकार से है—कुन्थु वह तीन इन्द्रियों वाला—ते इन्द्रिय जीव है. और हाथी पांच इन्द्रियों वाला—पंचेन्द्रिय जीव है. जबकेशीकुमार श्रमणने १५१ वे सूत्र में प्रदेशी से ऐसा कहा कि वायुकायिक जीव में और तुम्हारे जीव में समानता है—तो प्रदेशी के चित्त में ऐसी आशका का उठना स्वभाविक ही है कि कुन्थु के जीव में और हाथी के जीव में समानता है या असमानता है ? इसीलिये उसने ऐसा प्रश्न पूछा है. इसके समाधान में केशीने उससे ऐसा कहा कि हे प्रदेशिन ! जीव —चाहे वह

भवोपार्जित कर्मद्वारा नियद्ध शरीरने उत्पन्न—प्राप्त करे छ. (तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सच्चित्तं करेइ हिंय वा महालियं वा) पछी भवे ते पछी नाहं होय के भोटु—लघु होय के महान तेने पोताना असंख्यात प्रदेशेथी सच्चित्तं एवयुक्त करी वे छ. (तं सदहाहिणं तुमं पएसी ! जहा अणो जीवो तं चेव णं १०) ओटवा भाटे हे प्रदेशिन ! तमे भारी आ वात पर विश्वास करे के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे वगेरे !

टीकार्थ—आ सूत्रने टीकार्थ मूलार्थ प्रभाषे व छ. पद्य सविशेष स्पष्टता आ प्रभाषे छ—कुन्थु—ये त्रय इन्द्रियो युक्त—ते इन्द्रिय एव छ. अने हाथी पांच इन्द्रियो युक्त पंचेन्द्रिय एव छे अयारे केशी कुमार श्रमणे १५१ भा सूत्रमां प्रदेशीने आ प्रभाषे कहु के वायुकायिक एवमा अने तभारा एवमां समानता छे तो प्रदेशीने चित्तमा अेवी आशका उद्भवे के कुन्थुना एवमां अने हाथीना एवमां समानता छे के असमानता ? अे वात स्वाभाविक छे. ओटवा भाटे व तेणे आ जतने प्रश्न करी छे. अेना समाधानमा केशीने तेने आ प्रभाषे ~~...~~ के प्रदेशिन !

चतुष्पष्टया, दीपचम्पकेन, ततः खलु स प्रदीपः दीपचम्पकस्य अन्तरन्तः
 अवभासयति४, नो चैव खलु दीपचम्पकस्य वहिः नो चैव खलु चतुष्पष्टिका,
 नो चैव खलु चतुष्पष्टिकाया वहिः, नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालां, नो
 चैव खलु कूटाऽऽकारशालाया वहिः, एवमेव प्रदेशिन् । जीवोऽपि यां यादृशीं
 पूर्वकर्म निषद्धां बोद्धिं निर्वर्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तां करोति क्षुद्रिकां वा
 महतीं वा, तत् श्रद्धेहि खलु त्व प्रदेशिन् ! यथा अन्यो जीवः तदेव खलु १० । सू. १५२।

से, षोडशभागिका से इन सच चतुर्भागिका से चतुष्पष्टिकापर्यन्त के
 मगधदेशप्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से ढक देता है तथा दीप के ढकने
 से ढक देता है (तए ण से पर्ईवे दीपचंगस्स अंतो २ ओभासेइ) तो
 वह प्रदीप जिन २ से ढका गया है उन्हीं २ के भीतरी को ही प्रका-
 शित करता है, उनके बाहिरी भाग को नहीं इसी तरह से वह दीपच-
 म्पक के ही भीतरी भाग को प्रकाशित करता है, (णो चैव णं दीवचं-
 गस्सं बाहिं नो चैव णं चउसट्टियं, नो चैव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो
 चैव णं कूडागारसालं. कूडागारसालाए बाहिं) दीपचम्पक के बाहिरी
 भाग को नहीं—या दीपक के बाहिर के प्रदेश को नहीं, चतुष्पष्टि
 को नहीं, चतुष्पष्टिका के बाहिर के प्रदेश को नहीं, कूटाकारशाला को,
 और कूटाकारशाला के बाहर के प्रदेश को नहीं प्रकाशित करता है
 (एवामेव पएसी ! जीवे वि जे जारिसयं पुव्वकम्मनिषद्धं बोद्धिं णिव्वसेइ)

अष्ट आगीकाथी, षोडश आगीकाथी (षत्तीसियाए, चउसट्टियाए, दीवचंपरणं)
 अत्तीसिकाथी, चतुष्पष्टिकाथी, आ षथी चतुर्भागिकाथी चतुष्पष्टिका पर्यन्तना मगध
 देश प्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषोथी ढाकी डे छे तेमए दीपचंपकथी—दीपकना ढांक-
 थुथी. ढांकी डे छे. (तए णं से पर्ईवे दीवचंपगस्स अंतो २ ओभासेइ)
 तो तो प्रदीप जे जे वस्तुथी ढांकवामां आण्ये छे ते ते वस्तुना अहरना भागने
 जे प्रकाशित करे छे. तेमना अहारना भागने प्रकाशित करतो नथी आ प्रभाषे ते
 दीपचंपकना अ हरना भागने जे प्रकाशित करे छे (णो चैव णं दीवचंपगस्स
 बाहिं, नो चैव णं चउसट्टियं, नो चैव णं चउसट्टियाए बाहिं, णो चैव
 णं कूडागारसालं, णो चैव णं कूडागारसालाए बाहिं) दीपचंपकना
 अहारना भागने नहीं, डे दीपक चंपकना अहारना अदेशने नहीं, चतुष्पष्टिकाने नहीं,
 चतुष्पष्टिकाना अहारना अदेशने नहीं, कूटाकार शालाने नहीं, अने कूटाकारशालाना
 अहारना अदेशने प्रकाशित करतो नथी एवामेव—पएसी ! जीवे वि जे जारि-
 सयं पुव्वकम्मनिषद्धं बोद्धिं णिव्वसेइ) आ प्रभाषे छे प्रदेशिन् एव पक्ष पूर्व-

टीका—'तए णं से पएसी राया' इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा
 केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! स शरीराङ्गिन्नः जीवः नूनं-
 निश्चयेन हस्तिनः कुन्योः—त्रीन्द्रियक्षुद्रप्राणिविशेषस्य च समः—तुल्यपरिमाण
 एव न न्यूनाधिकपरिमाणः इति प्रश्नः। केशी माह—इन्त ! हे प्रदेशिन !

इसी तरह से हे प्रदेशिन ! जीव भी पूर्वभवोपार्जित कर्मद्वारा निबद्ध
 जैसे शरीर को उत्पन्न—प्राप्त करता है (तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सचित्तं
 करेइ खुद्धियं वा महालियं वा) चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसे अपने
 असंख्यात प्रदेशों से सचित्त—जीव युक्त कर लिया करता है. (तं सहहा
 णं तुमं पएसी ! जहा अण्णो जीवो तं चेव णं १०) इसलिये हे प्रदेशिन ! तुम
 इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है इत्यादि।

टीकार्थ—इस मूलार्थ के ही अनुरूप है—परन्तु जो विशेषता है—वह
 इस प्रकार से है—कुन्थु वह तीन इन्द्रियों वाला—ते इन्द्रिय जीव है. और
 हाथी पांच इन्द्रियों वाला—पंचेन्द्रिय जीव है. जबकेशीकुमार श्रमणने १५१वे
 सूत्र में प्रदेशी से ऐसा कहा कि वायुकायिक जीव में और तुम्हारे जीव
 में समानता है—तो प्रदेशी के चित्त में ऐसी आशंका का उठना स्वभाविक
 ही है कि कुन्थु के जीव में और हाथी के जीव में समानता
 है या असमानता है ? इसीलिये उसने ऐसा प्रश्न पूछा है. इसके समा-
 धान में केशीने उससे ऐसा कहा कि हे प्रदेशिन ! जीव —चाहे वह

भवोपार्जित कर्मद्वारा निबद्ध शरीरने उत्पन्न—प्राप्त करे छ. (तं असंखेज्जेहिं
 जीवपएसेहिं सचित्त करेइ हियं वा महालियं वा) पछी भवे ते पछी
 नाहं होय के मोट्टु—सधु होय के भडान तेने पोताना असंख्यात प्रदेशोथी सचित्त
 लवयुक्त करी वे छ. (तं सहहाहि ण तुम पएसी ! जहा अण्णो जीवो तं चेव
 णं १०) ओटला भाटे छे प्रदेशिन ! तमे भारी आ वात पर विश्वास करे के
 लव अन्य छे अने शरीर अन्य छे वगेरे ।

टीकार्थ—आ सूत्रने। टीकार्थ मूलार्थ प्रमाणे न छे. पछु सविशेष स्पष्टता
 आ प्रमाणे छे—कुन्थु—अने त्रयु इन्द्रियो युक्त—ते इन्द्रिय लव छे. अने हाथी पांच
 इन्द्रियो युक्त पंचेन्द्रिय लव छे. अन्धारे देशी कुमार श्रमण्णे १५१ मा सूत्रमां प्रदे-
 शीने आ प्रमाणे कहु के वायुकायिक लवमा अने तभारा लवमां समानता छे तो
 प्रदेशीने चित्तमा जेवी आशंका उद्भवे के कुन्थुना लवमां अने हाथीना लवमां
 समानता छे के असमानता ? अने वात स्वाभाविक छे. ओटला भाटे न तेणे आ
 जातने प्रश्न करी छे. जेना समाधानमा देशीअने तेने आ प्रमाणे कहु के छे प्रदेशिन !

हस्तिनः कुन्धोश्च जीवः सम एव । प्रदेशी कथयति-हे भदन्त ! तत्र-हस्ति-
 कुन्धोर्मध्ये हरिततः-हस्तिनमपेक्ष्य, अत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पठ्वमी कुन्धुः
 नून-निश्चयेनाल्पकर्मतर-अत्यल्पाऽऽयुगादिरूपकर्मवान् एव, अल्पक्रियतरः-
 अत्यल्पकार्यिकादिक्रियावान् एव, अल्पास्रवतरः-अन्यल्पप्राणातिपातादिरूपा
 स्रववान् एव, एवम्-अनेन प्रकारेण अल्पाऽऽहारनीहारोच्छ्वासनिःश्वासऋद्धि
 कतरः अल्पघृतिमतरः अल्पशब्दम्य सर्वत्र सम्बन्धान् अल्पोहारतर एव अल्प-
 नीहारतर एव अल्पोच्छ्वासतर एव अल्पऋद्धिकतर एव, अत्र ऋद्धिः परि-
 चारादिरूपा ग्राह्या, अल्पघृतिकतर एवेत्यर्थः, घृतिश्च-शरीरकान्तिरूपा ।
 एवं-यथा-हस्तिनमपेक्ष्य कुन्धुल्यतरकर्मत्वादिविशिष्ट उक्तस्तथा, कुन्धुतः-
 कुन्धुमपेक्ष्य हस्ती-महाकर्मतरः-अधिकायुरादिकल्पकर्मवान्, एव, महाक्रि-
 यतर याव यावत्-यावत्पदेन-महास्रवतर एव महानीहारतर एव महोच्छ्वा-
 सतर एव महर्द्धिकतर एव महाघृतिकतर एव इत्येर्पा सङ्ग्रहो बोध्यः । इति
 प्रश्ने केशी प्राह-हन्त ! प्रदेशिनः हस्तिनः कुन्धुरल्पकर्मतर एव कुन्धुतो
 वा हस्ती महाकर्मतर एव, तदेव-पूर्वोक्तमेव-कुन्धुपक्षे अल्पक्रियतर एव
 अल्पास्रवतरः उस्तिपक्षे-महाक्रियतर एव महास्रवतर एवेत्यादि बोध्यम् । इति
 हस्ति-कुन्धोः परस्पर कर्मादिभेदं श्रुत्वा प्रदेशी तयोर्जीवसाम्ये कारणं
 पृच्छति-कस्मात् खलु भदन्त ! इत्यादि-हे भदन्त ! कस्मात् कारणात् खलु
 हस्तिनः कुन्धोश्च जीवः सम एव !, केशी प्राह-हे प्रदेशिनः ! तद् यथाना-
 मक-यथादृष्टान्तम् ऋटाऽऽकारशाला-पर्वतशिखराकारा स्यात्, यावत्-याव-
 त्पदेन द्विषातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारेति पदाना सङ्ग्रहो बोध्यः, निर्वात-

कुन्धु का हो चाहे शीथी का हो सब में समानता है एक जीव में अस-
 रूपात प्रदेश होते है. इन प्रदेशों की अपेक्षा सब समान है कोई भी
 जीव ऐसा नहीं है कि जिसमें इन प्रदेशों की समानता न हो. पूर्वो-
 पार्जित शरीर नाम कर्म आदि के द्वारा जिस जीव को जैसा शरीर प्राप्त
 होता है वह जीव उसमें अपने प्रदेशों को सकोच विस्तारवाला बना लेता है.

अवभा-पछी कहे ते कुन्धु ना होय के डार्थिना समानता छ ओक अवभा अस-
 रूपात प्रदेशो होय छ आ प्रदेशोनी अपेक्षाये आपणे विचार करीये तो अथा
 अवो समान न छे ओछे पक्ष आवो नथी के नेमा आ प्रदेशोनी समानता होय
 नहि पूर्वोपार्जित शरीर नामकर्म वझे वडे के अवने नेवु शरीर प्राप्त थाय छ
 ते अव तेमा पोताना प्रदेशोने सकोच विस्तारयुक्त अतावी ले छे, हापका तरीके

गम्भीरा, अथ खलु कौऽपि पुरुषः 'ज्योतिः-अग्निं च दीपं च गृहीत्वा
 तां-कूटाकारशालाम्, अन्तरतः-अत्यन्ताभ्यन्तरे अनुप्रविशति । तस्याः कूटा
 कारशालायाः सर्तः-सर्गदिक्षु, समन्तात्-सर्वदिक्षु घननिचिनिरन्तराणि-
 घन-निविड यथा स्यात्तथा निचितानि-संघातितानि निरन्तराणि-अन्तर
 हितानि तानि तथा, अस्य 'द्वारवदनानी'-त्यनेन सम्बन्धः, पुनः निडिच्छद्राणि छिद्र-
 हितानि द्वारवदनानि-द्वारमुखानि, पिदधाति-आच्छादयति, तस्याः-कूटाऽऽ
 काटशालायाः बहुमध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यप्रदेशे तं प्रदीपं प्रदीपयेत्-प्रज्वाल
 लयेत्, ततः खलु स प्रदीपः ता कूटाकारशालाम् अन्तरन्तः-सर्वान्तर्भागे-
 सर्वान्तर्भागवच्छेदेनेति भावः । अवभासयति-प्रकाशयति, उद्द्योतयति-
 उत्कृष्टेण प्रकाशयति, तापयति-संतप्तां करोति प्रभासयति-घटपटादि
 दर्शनया प्रकर्षेण प्रकाशमानां करोति, किन्तु वहिः-कूटाकारशालायां वहि-
 भागं नो चैव-नैव अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रभासयति । अथ
 खलु स पुरुषः तं प्रदीपम् इडरकेण-महापिटकेन-आवरणविशेषेण पिद-
 ध्यात्-आच्छादयेच्चेत्, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः तत्-प्रदीपपिधानभू-
 तम् इडरकम् अन्तः आभ्यन्तरावच्छेदेन अवभासयति किन्तु इडरकस्य
 वहिः-वहिःप्रदेशं नो चैव-नैव खलु अवभासयति तथा कूटाकारशालायाः
 वहिः नो चैव अवभासयति, एवम्-अनेन प्रकारेण गोकिलिजेन-गोकिलि
 वृजं-गवां मक्ष्मस्यापनकृण्डिका, तेन, तथा पक्षिपिटकेन-पक्षिपिटक-पक्ष्या-
 कारो वंशशिलाकानिर्मितपात्रविशेषः, तेन, तथा गण्डमाणिकाया-गण्डमा-
 णिका-धान्यमापनिका, तथा, आढकेन, अर्धाढकेन, परथकेन, अर्धपरथकेन,
 कुडवेन, अर्धकुडवेन, आढकादारभ्यार्धकुडवपर्यन्तानि धान्यमापकानि देश
 विशेषप्रसिद्धानि पात्रविशेषाणि तैः प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः,
 तथा चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया षोडशिकया द्वात्रिंशत्कया चतुष्पष्टिकया-
 चतुर्भागिकादि चतुष्पष्टिकापर्यन्ता मगधदेशप्रसिद्धा एव रसमापकपात्र-
 विशेषास्तैः प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेणान्वयः, एवं-दोषचम्पकेन-दीपपिधा-
 नेन प्रदीपं पिदध्यादिति पूर्वेणान्वयः, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः दीप-

जैसे दीप का एक कोडे (एक घर) में रख दिया जावे तो वह उस कोडे
 भर को जहां तक उसका प्रकाश फैल सकता है प्रकाशित करता है और
 उसी दीपक को यदि मिट्टी के छोटे वर्तन के अन्दर बन्द कर रख दिया

दीपकेने कोड घरमा भूठवाभा आवे तो ते सपुष्पु घरने जथा सुधी तेना प्रकाश
 जध शके त्या सुधी प्रकाशित करे छे अने तेज दीपकेने जे माटीना नाना वासधुनी
 अ हर भूठवाभा आवे तो ते तेना अहरना भागने ज प्रकाशित करे छे. वगेरे वगेरे,

चम्पकस्य अन्तः—मध्यभागम् अथभासयति उद्घोतयति तापयति प्रभासयति नो
 चैव खलु दीपचम्पकस्य बहिः, नो चैव खलु चतुष्टिकां नो चैव खलु
 चतुष्पष्टिकाया बहिः, एवं दीपचम्पकाच्छादितो दीपः, नो चैव खलु द्वात्रिं-
 शिकां, नो चैव खलु द्वात्रिंशिकायाः बहिः, इत्यादि पश्चादानुपूर्वक्रमेण यावत्
 नो चैव कूटाकारशालाम्, नो चैव कूर्टाकारशालाया बहिः अवभासयति उद्-
 घोतयति तापयति प्रभासयति' इति योजना कार्या एवमेव—प्रदीपदृष्टान्तानु
 सारेणैव हे प्रदेक्षिन् ! जीवोऽपि यां काञ्चित्—यादृशीं—पूर्वकर्मनिबद्धां—पूर्व-
 मवोपार्जितकर्मनिबद्धां बोन्दि—तनुं निर्वर्तयति—उत्पादयति तां बोन्दिम्
 असंख्येयै असंख्यातैः जीवप्रदेशैः सञ्चिता—जीवयुक्तां करोति—सम्पादयति,
 तां बोन्दिं कीदृशीम् ! इति जिज्ञासायामाह क्षुद्रिकाम्—अतिलध्वीम्, महतीं
 —विशालाम् वा सचितां करोति' इति पूर्वेणान्वयः । तत्—तस्मात्—दीपदृष्टा-
 न्तेन जीवस्य पूर्वमवकृतकर्मनिबद्धातिलघुमहाशरीरानुप्रवेशनकारणात् हे
 प्रदेक्षिन् ! त्वं अदेहि—मद्वचने अर्द्धां कुरु, यथा—अन्यो जीवः तदेव—पूर्वोक्त-
 मेव अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति ॥ सू० १५२ ॥

मूलम्—तए णं पएसी राया केसिं मारसमणं एवं वयासी-एवं

भन्ते ! मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहातज्जीवो
 तं सरीरं, नो अ गो जीवो अन्नं सरीरं । तयाणंतरं च णं ममं
 पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं । तयाणंतरं च णं मम

जाता है तो वह उसके भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है. आदि
 तो जिस प्रकार से दीपक के प्रकाश में संकोच विस्तार करने का स्वभाव
 है. उसी प्रकार से जीव में भी अपने प्रदेशों को संकोच विस्तार करने
 का स्वभाव है. यही सब विषय इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है 'हत्थीउ
 कुंथू' इसका अर्थ है हस्ती की अपेक्षा करके । ऋद्धि शब्द से यहाँ
 परिवारादिरूप ऋद्धि गृहीत हुई हैं ॥ सू० १५२ ॥

ते. जेम दीपकना प्रकाशमा संकोच विस्तार करवानो स्वभाव छ तेमज्ज एवमा पद्य
 चोताना प्रदेशोने संकुञ्चित हे विस्तृत करवानो स्वभाव छ. आ मधी वातो आ
 सूत्रमां स्पष्ट करवाभा आवी छ. 'हत्थीउ कुंथू' जेना अर्थ 'हाथीनी अपेक्षाये'
 जेना छ, ऋद्धि शब्दधी अही परिवारादिरूप ऋद्धि अहस्य थयु छ. ॥सू० १५२॥

वि एसा सण्णा जाव समोसरणं, त नो खलु अह बहुपुरिस-
परपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि ॥ सू० १५३ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम्—एवमवादीत् एव
खलु मदन्त ! मम आर्यकस्य एषा संज्ञा यावत् समवसरणं यथा—तज्जीवस्तच्छ-
रीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा संज्ञा
यावत् समवसरणम् । तदनन्तरं ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसरणम्, तत् नो
खलु अहं बहुपुरुषपरम्परागतां कुलनिश्रितां दृष्टिं मोक्षामि ॥ सू० १५३ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके वाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसिं कुमार-
समणं एवं वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा (एवं खलु मंते ! मम अज्जगस्स
एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं)
हे मदन्त मेरे आर्यक—पितामह की यह संज्ञाथी, यावत् समवसरण था—कि
वही जीव है वही शरीर है—जीव शरीर से भिन्न नहीं है शरीर जीव से भिन्न
नहीं है (तयाणंतरंच णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं,) उनके वाद मेरे
पिताकी मी ऐसी ही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण रहा, (तयाणंतरं
च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिसपरपरागयं
कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) वाद में मेरी मी यही संज्ञा यावत् ऐसा ही
समवसरण है—अतः अनेक पुरुष परम्परा से चली आई हुई इस कुलाधीनमान्यता
को नहीं छोड़ुंगा, इसलिये जीव और शरीर एक ही है भिन्न २ नहीं है ।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्पारभाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसिं कुमार-
समणं एवं वयासी) केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाषे कद्धं—(एवं खलु मंते !
मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो
अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) हे मदन्त ! मारा आर्यक—पितामहनी आ सज्ञा
इती यावत् समवसरण इतु के तेज एव छे, तेज शरीर छे, एव शरीर करता
भिन्न नथी. (तयाणंतरं च णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं)
त्यार पछी मारा पितानी पधु ऐवी ज सज्ञा यावत् ऐतुं ज समवसाधु रहुं
(तयाणंतरं च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिस-
परपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) त्यार पछी मारी पधु ऐवी ज सज्ञा
यावत् समवसरण छे ऐट्ठा माटे अनेक पुत्र परपराथी थावी आवती आ कुला-
धीन मान्यता ने हुं त्यएथ नही ऐथी एव अने शरीर ऐकज छे भिन्नभिन्न नथी.

टीका—‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम्, एवमवादीत्—एवं खलु हे भदन्त ! मम आर्यकस्य—पिता-महस्य एषा संज्ञा यावत्—यावत्पदेन एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा हेतुः एष उपदेशः एषः संकल्पः एषा तुला एतद् मानम् एतत् प्रमाणम्” इत्येषां पदानां संग्रहो बोध्यः समवसरणमासीत् । एषां व्याख्या—एकत्रिंशदधिकैकशततमसूत्रतो विज्ञेया । यथा—तज्जीवः तच्छरीरम् नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति मम पितामहस्य मन्तव्य-मासीत् । तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा—अनन्तरोक्ता संज्ञा यावत् समव-सरणमासीत् । तदनन्तरं च खलु ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसरणमस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् खलु अहं बहुपुरुषपरम्परागतां—पितामहादिपरम्परासमागतां कुलनिश्रितां कुलनिश्रया समागतां दृष्टिम् नो मोक्ष्यामि—न त्यक्ष्यामि—अपि तु तज्जीवः स शरीरं नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति मतमेव स्वीकरिष्यामि ॥ सू० १५३ ॥

मूलम्—तए णं केसी कुमारसमणे पएसि रायं एवं वयासी—मा णं तुम पएसी । पच्छाणुताविए भवेज्जोसि, जहा व से पुरिसे अयहारए । के णं भंते ! से अयहारए ? । पएसी ! मे जहाणामए केई पुरिमा अत्थत्थिया अत्थगवेसिया अत्थलुद्धया अत्थकंखिया अत्थपिवासिया अत्थगवेसणयाए विउलं पणियभंडमायाए सुबहुं भत्तपाण पत्थयणं गहाय एगं महं अगामियं छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सन्ना जाव समोसरणं’ में जो यह यावत् पद आया है उस से यहाँ—एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा रुचिः, एष हेतुः, एषः उपदेशः, एषः संकल्पः, एषा तुला, एतद् मानम् एतत् प्रमाणम्) इन पदों का संग्रह हुआ है. इन सब पदों की व्याख्या तथा ‘समवसरणं’ इस पद की व्याख्या १३० वें सूत्र में की जा चुकी है । अतः मैं जीव शरीर की अमिन्नता को ही स्वीकार करूंगा, मिन्नता को नहीं ॥ सू० १५३ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सन्ना जाव समोसरणं’ भा ७ यावत् पद छे तेथी अही ‘एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एष उपदेशः एषः संकल्पः एषा तुला, एतत् मानम् एतत् प्रमाणम्” भा पढोने सअइ थये छे. भा सब पढोनी व्या-ख्या १३० भा सूत्रभां क्खवाभां आवी छे ओथी हुं एव तेमअ शरीरनी अमिन्नताने अ स्वीकारीथ मिन्नताने नहि ॥ सू० १५३ ॥

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए जाव कंचिदेसं अणुप्पत्ता
समाणा एगं महं अयागरं पासंति, असणं सब्बओ समंता आइण्णं
वित्थिणं सच्छडं उवच्छडं फुडं अणुगाढं पासंति, पासित्ता हट्ठा तुट्ठा
जाव हियया अन्नमन्नं सदावेत्ति, एव वयासी-एस णं देवाणुप्पिया !
अयागरे इहे कंते जाव मणामे, तं सेयं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हं
अयभारग बंधत्तएत्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेत्ति, अय-
भारं बंधंति अहाणुपुव्वीए संपत्थिया । तए णं से पुरिसा अगामि
याए जाव अडवीए किंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं तउआगरं
पासंति, तउएणं सब्बओ समंता आइण्णं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं
वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउआगरे इहे जाव मणामे, अप्पेणं
चेव तउएणं सुबहुं अए लब्भइ, तं सेयं खल्ल अम्हं देवाणुप्पिया
अयभारगं छुत्ता तउयभारग बंधित्तएत्तिकट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए
एयमट्टं पडिसुणेत्ति यभारं छुत्तेत्ति तउयभारं बंधंति । तत्थ
एगे पुरिसे णो संघाएइ अयभार छुत्तए तउयभार बंधित्तए, तए
णं ते पुरिसा त पुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउ-
आगरे जाव सुबहु अए लब्भइ, तं छुत्तेहि, णं देवाणुप्पिया ! अय-
भारग, तउयभारगं बंधाहि । तए णं से पुरिसे एवं वयासी-दूरा-
हडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए,
अइगाढबंधणबद्ध मए देवाणुप्पिया ! अए, असिढिलबंधणबद्धे मए
देवाणुप्पिया ! अए, धणियबंधणबद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए णो
संघाएमि अ णं छुत्ता तउयभारगं बंधित्तए । तए णं ते

पुरिसा त पुरिसं जाहे णो संचायंति बहूहिं आधवणाहिय पणव-
णाहिय परूवणाहिय अधवित्तए वा पणवित्तए वा परूवित्तए वा
तया अहाणुपुव्वीए संपत्थिया । एवं तवागरं रुपागर, सुवण्णागरं
रयणागर, वइरागर । तए णं ते पुरिसा जेणेव सथा जणवया जेणेव
साइ साइं नगराइ तेणेव उवागच्छंति, वयरविक्किणणं करे ति, सुबहु
दासीदासगोमहिसगवेलग गिण्हति, अट्टतलमूसिय पासायवडिंसगे,
कारावेति, पहायो कयबलिकम्मा कायकोउयमंगलपायच्छित्ता उट्पि
पासायवरगया फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वत्तीसइवद्धएहिं नाडएहिं
वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणा उवगिज्जमाणा उवलालिज्ज-
माणा इट्टे सइफरिसरसरूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्च-
णुभवमाणा विहरति । तए णं से पुरिसे अयभारेण जेणेव सए
नयरे तेणेव उवागच्छइ, अयभारगं गहाय अयविक्किणणं करेइ
तंसि अप्पमोहंसि निट्ठियंसि खीणपरिब्बए ते पुरिसे उट्पि पासाय-
वरगए जाव विहरमाणे पासइ, पासित्ता एवं वयासी-अहो! णं
अहं अधण्णो अपुन्नो अकयत्थो अकयलक्खणो हिरिसिरिवज्जिओ
हीणपुण्णचाउदंसे दुरंतपंतलक्खणे । जइ णं अहं मित्ताण वा णाईण,
वा नियगाण वा वयणं सुणे तओ तो णं अहंपि एवं चेव उट्पि
पासायवरगए जाव विहरे तओ । से तेणट्टेणं पएसी ! एवं बुच्चइ-
मा तुमं पएसी । पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहा व से पुरिसे
अयभारए ॥ सू० १५४ ॥

छाया-ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिं राजानमेवमवादी ३ मा खलु त्वं प्रदेशिन् ! पश्चादनुतापिको भवेः, यथा वा स पुरोऽयोहारकः । कः खलु भदन्त ! सोऽयो-
हारकः ? । प्रदेशिन् ! ते यथा नामकाः केचि । पुरुषा अर्थार्थिकाः अर्थगवेपकाः
अर्थलुब्धकाः अर्थकांक्षिनः अर्थपिपासिताः अर्थगवेपणार्थं विपुलं पणितभा उ-
मादाय सुबहुभक्तपानपथ्यदनं गृहीत्वा एका महतीम् अग्रामिकां छिन्नाऽऽपाता
दीर्घाध्वा ३ अश्वीमनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकाया याव ।

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (केशीकुमारसमणे) केशीकुमार श्रमणने (परसिं-
राय एवं वयासी) प्रदेशी राजा से एसा कहा (माणं तुमं परसी ! पच्छाणुता-
विए भवेज्जासि—जहा व से पुरिसे अप्पहारए) हे प्रदेशिन् ! तुम पश्चात्तापयुक्त
मत बनो जैसा कि वह अयोहारक—लोहवणिक—पश्चात्तापयुक्त बना,

अब प्रदेशी उससे परिचय को जानने के अभिप्राय से पूछता है (के णं
मंते ! से अयहारए) हे भदन्त ! वह अयोहारक कौन था ? इस पर
केशीकुमारश्रमण कहते हैं—(परसी ! से जहाणामए केई पुरिसा अत्यत्थिया
अत्यगवेसिया अत्यलुद्धया, अत्यकखिया, अत्यपिवासिया, अत्यगवेसणयाए विउलं
पणियमंडमायाए सुबहुं भक्तपाणपत्ययणं गहाय एणं महं अग्गामियं छिन्नावायं
दीहमद्धं अडाविं अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् । अनिर्दिष्ट नामवाले कितनेक पुरुष जो
कि धन के अर्थी थे, धन के गवेपक थे, धन के लोलुप थे, धनकी कांक्षा
से युक्त थे, धनकी प्यासवाले थे, धनकी गवेपणा के लिये विपुल क्रयाणक-

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्पार पछी (केशीकुमारसमणे) देशी - कुमारश्रमणे
(परसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कछु (माणं तुमं परसी !
पच्छाणुताविए भवेज्जासि—जहाव से पुरिसे अयमारए) हे प्रदेशिन् ! तमे
पेसा अयोहारक-दोह वखिन्नी नेम, पश्चात्ताप न करे। हवे प्रदेशी तेना स अ धमा
अधी विगत भाणुवा भाटे आ प्रभाणे पूछे छे—(कि णं मंते ! से अयहारए) हे
भदन्त ते अयोहारक दोषउने वेषारी केषु हतो ? तेना जवा ममा देशी
कुमार श्रमणु कछे छे—(परसी ! से जहाणामए केई पुरिसा अत्यत्थिया अत्य-
गवेसिया अत्यलुद्धया, अत्यकखिया, अत्यपिवासया, अत्यगवेसणयाए विउलं
पणियमंडमायाए सुबहुं भक्तपाणपत्ययणं गहाय एणं महं अग्गामियं
छिन्नावायं दीहमद्धं अडाविं अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् । अनिर्दिष्ट नामवाणा
केटवाक पुरो के नेआ धनाथी हता, धनना गवेपक हता, धनना लोलुप हता

अटव्याः कंचित् देशमनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तम् अयआकारं पश्यति, अयसा सर्वतः समन्ताद् आकीर्णं विस्तीर्णं सच्छटम् उपच्छटं स्फुटम् अनुगाढं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टाःतुष्टाः यावत् हृदयाः अन्योऽन्यं शब्दयन्ति, एवमवादिपुः—एष खलु देवानु-
प्रियाः ! अयआकरः इष्टः कान्तः यावत् मनआमः, तत्र श्रेयः खलु देवानुप्रियाः

वस्तु समूह को लेकर तथा साथ में पर्याप्त अशनपानरूप पाथेयलेकर एक विशाल अटवी में जो वसति से रहित थी, हिंसक जतुओं के मय से मनुष्यों का गमनागमनरूप संचार जिसमें विलकुल नहीं था और दीर्घमार्गयुक्त थी जा पहुँचे (तएणं से पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए कंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं अयागारं पासंति) इसके बाद वे पुरुष जब उस अग्रामिका, छिन्नापात-युक्ता एवं दीर्घाध्वावाली अटवी के और आगेके प्रदेश में आ चुके तब उन्होंने वहाँ पर एक लोहे की खान को देखा (अएणं सच्चओ समंता आहणं सच्छटं उवच्छटं फुटं अणुगाढं पासंति) यह खान सब तरफ से लोहेसे आकीर्ण बनी हुई थी. स्पष्टरूप में नहीं थी बहुत विस्तारवली थी समीचीन छटा—चाक-चिक्यवाली थी. छटायुक्त थी. स्पष्टरूप में नहीं थी. (पासित्ता हट्टतुट्टा जाव हियया अन्नमन्नं सहावेत्ति) इस लोहे की खान देखकर वे बहुत अधिक हृष्ट एव तुष्ट यावत् हृदयवाले हुए और फिर उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया (एवं वयासी) बुलाकर ऐसा कहा (एस णं देवाणुप्पिया ! अयागारे इठ्ठे कंते,

धननी कांक्षाथी युक्तं इत्ता, धननी तरसवाणा इत्ता, धननी गवेषणा भाटे विपुलं क्ख्यासकं वस्तु समूहने लधने तेभञ्च साथे पर्याप्तं अशनपानइप पाथेय लधने अेकं विशाणं अटवीमा—ठे ने अेकहमं निन्नं इत्ती, हिंसकं वस्तुओना बायथी भाषुओनी अवरणवर नेमा सदतरं पथ इत्ती अने दीर्घं मार्गं युक्तं इत्ती अथं पडोअ्या (त एणं ते पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए कंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं अयागारं पासंति) त्थार पथी ते भाषुओने अआ-मिका, छिन्नापात युक्तं अने दीर्घाध्वावाणी अटवीनी अहरं पूज्यं आगणं अत्ता रद्धं त्या तेभञ्चे लोअंअनी भोटी भाषु लोअं (अएणं सच्चओ समंता आहणं विस्तिण्णं सच्छटं उवच्छटं फुटं अणुगाढं पासंति) आ भाषु ओभेरं लोअं-अथी आकीर्णं इत्ती. अहुं अ विस्तारं युक्तं इत्ती समीचीनं छुटा अेटले के चाकचिक्य वाणी इत्ती, छटायुक्तं इत्ती. स्पष्टइपथी देभाती इत्ती— अने अेकं पुअं इपमा इत्ती छिन्नाशिनं इपमा न इत्ती. (पासित्ता हट्टतुट्टा जाव हियया अन्नमन्नं सहावेत्ति) ते लोअंअनी भाषुने लोअने अहुंअं वधारे हृष्टतुष्टं यावत् हृदयवाणा थया अने पथी तेभञ्चे परस्परं अेकथीअने ओदाअ्या (एवं वयासी) ओदावीने आ प्रभाषे कथं (एस णं देवाणुप्पिया ! अयागारे - अे, कंते, जाव

अस्माकम् अयोभारकं बद्धम्, इति कृत्वा अन्योऽन्यस्य एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, अयो-
भारं बध्नन्ति, यथाऽनुपूर्विं प्रस्थिताः । ततः खलु ते पुर्याः अग्रामिकाः यावत् अटव्याः
किञ्चिद्देशेऽनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं त्रषाकरं पश्यन्ति, त्रपुणा सर्वतः
समन्तात् आकीर्णं तदेव यावत् शब्दयित्वा एवमवादिपुः—एष खलु देवानुप्रियाः !
त्रषाकरः इष्टः यावत् मनओमः, अल्पेनैव त्रपुणा सुबहु अयो लभ्यते, तत्र श्रेयः

जाव मणामे] हे देवानुप्रियो ! यह लोहे की खान इष्ट है, यावत् मनोज्ञहै (तं सेयं खलु
देवाणुप्रिया । अहं अयमारगं बंधित्तए त्ति कड्डु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडि-मुणेत्ति) अतः
उचित है कि हम लोग इस लोहे के भार यहां से ले लेवे' इस प्रकार विचार
करके उन्होंने आपसके इस विचार को निश्चय का रूप दे दिया (अयमारं
बंधंति) और लोहे को वहां से ले लिया (अहाणुपुव्विए संपत्थिया) और लेकर
वहां से द्रमशः चल दिया (तए ण से पुरिसा अगामियाए जाव
अहवीए कंचिदेस अणुपत्ता समाणा एगं महं तउआगरं पासंति) इसके बाद
वे चलते २ जत्र और अधिक आगे निकल गये तब उन्होंने उस अग्रामिक
आदि विशेषणवाली अटवी में एक बहुत बड़ी त्रपु-रांगा की खान को देखा (तएणं
सच्चओ समंता आहणं तं चेव जाव सद्दावेत्ता एवं वयासी) संतुष्ट यावत् हृदय वाले
हुए बाद में उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया बुलाकर ऐसा कहा—
(एस णं देवानुप्रिया ! तउआगारे इष्टे जाव मणामे] हे देवानुप्रिया ! यह रांगा

ते दोष उनी भाषु ष्ट छे, कात यावत् मनोज्ञ छे. (तं सेयं खलु देवाणु-
प्रिया ! अहं अयमारगं बंधित्तए त्ति कड्डु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेत्ति)
येथी अभासा भाटे आ वात अराअर छे छे असे अधा आ दोष उनी भारने अहीथी
एधं नधंअे आ प्रभाषे विचार करीने तेमणे परअपर करेस आ विचारने निश्चया-
त्मकअप आ'धुं (अयमारं बंधंति) अने दोष उने त्याथी एधं एधुं. (अहाणु-
पुव्विए संपत्थिया) अने एधने त्याथी कभशः आगण आसता थया. (तए ण से
पुरिसा अगामियाए जाव अहवीए कंचिदेसं अणुपत्ता समाणा एगं महं
तउआगरं पासंति) त्थार पछी तेअो नता नता न्थारे भूअ इर नीकणी गया
त्थारे तेमणे अग्रामिका वगेरे विशेषणोथी शुकत अटवीमा अेक बहु विशाण त्रपु
रांगा (कथीरनी भाषुने नेध. (त एणं सच्चओ समंता आहणं तं चेव-
जाव सद्दावेत्ता एवं वयासी) ते रागानी भाषु येमेर रांगाथी आकीषुं रही, यावत्
अेक पुअ इपमा हवी. आ भाषुने नेधने तेअो सर्वे भूअअ हृष्ट अने संतुष्ट
यावत् हृष्टयाणा थया त्थार पछी तेमणे अेक धीअने षोसाअ्या अने षोसावीने
आ प्रभाषे कड्डु—(एस णं देवाणुप्रिया ! तउआगारे इष्टे जाव मणामे) इ देवा-

खलु देवानुप्रियाः ! अस्माकम् अयोमारकं मुक्त्वा त्रपुकमारकं बहुम्, इतिकृत्वा अन्योऽन्यस्य अन्तिके गतमर्थं प्रतिशृण्वान्ति, अयोमारं मुञ्चन्ति, त्रपुकमारं बध्नन्ति ! तत्र खलु एकः पुरुषो नो शक्नोति अयोमारं मुक्त्वा त्रपुकमारं बहुम् । ततः खलु ते पुरुषाः तं पुरुषमेवमवादिषुः—एष खलु देवानुप्रिय ! त्रपुकारः यावत् सुबहुअयो लभ्यते, तद् मुञ्च खलु देवानुप्रिय ! अयोमारकम्, त्रपुकमारकं बध्नान । ततः स पुरुषः एवमवादीत्—दूराऽऽहृत मया देवानुप्रियाः ! अयः चिराऽऽहृतं मया

खान इष्ट यावत् मन आम-अर्तिहर होने से मन गम्य है [अपे णं चैव त-उएण सुबहुं अप लब्भइ] थोडे से ही रांगा से बहुत अधिक लोहा हमें मिल सकता है (तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अयमारगं छहेत्ता तउयमारगं बधित्तए त्ति कहुं अन्नमन्नस्स अंतिए एयमइ पडिसुणेति) अतः हमारी मलाई अब इसी में है कि हम इस लोहे के भार को छोड़कर इस रांगा को यहां से बांध ले, इस प्रकार का विचार करके उन्होंने आपस के इस कृत विचार को निश्चय का स्थान दे दिया. (अयमारं छहेत्ति, तउयमारं बंधेत्ति) और लोहेके भार को छोड़कर रांगा के भार को बांध लिया (तत्थ ण एगे पुरिसे णो सचाएइ, अयमारं छहेत्तए, तउयमारं बंधित्तए) परन्तु इनमें एक पुरुष ऐसा भी था—जो लोहे के भार को छोड़ने में और रांगा के भार को ग्रहण करने में बांधने में असर्थथा, अर्थात् वह ऐसा करना नहीं चाहता था. (तएण ते पुरिसा

हृप्रिया । आ रागानी भाषु छेत् यावत् मन आम-अर्तिहर होवा गइल मनगम्य छे (अपे णं चैव तउएणं सुबहुं अप लब्भइ) थोडा रागाथी अभने धरुं लोभउ भणी शके छे. (तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अयमारगं, छहेत्ता तउय-मारगं बधित्तए त्ति कहुं अन्नमन्नस्स अंतिए एयमइ पडिसुणेति) ओषी अमार भाटे ओ न साइं छे के अभे लोभउना भारने त्यज्जने आ रागाने अडा थी जाधी लध्थे. आ प्रभाषे विचार करीने तेभे परस्पर कृत आ विचारने निश्चया-त्मकइय आपी छीधु. (अयमारं छहेत्ति, तउयमारं बंधति) अने लोभउना भारने मुडीने ताभाना भारने साथे लध् लीधो (तत्थ णं एगे पुरिसे णो सचाएइ, अयमारं छहेत्तए, तउयमार बंधित्तए) पक्ष तेअधामा ओक भाषुस ओत्रो पक्ष हुनो के न लोभउना भारने त्यज्जने रागाने अइधु करवानी वातने उच्चिन भानतो न हुतो (तएण ते पुरिसा त पुरिस एव वयासी) त्यारे ते पुरोधेअे तेने आ प्रभाषे कइ—(एस ण देवाणुप्पिया ! तउआगरे जाव सुबहु अप लब्भइ) हे देवाहृप्रिय ! आ रागानी भाषु छे, छेत् कात वगेरे विशेषेअधी युक्त छे. थोडा रागाथी पक्ष आपणे धरुं लोभउ भेजवी शकीअे तेभ छीअे (त छहेत्ति णं देवाणुप्पिया !

देवानुप्रियाः ! अयः, अतिगाढबन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अग्निथिल-
बन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अत्यन्तगाढबन्धनवद्धं देवानुप्रियाः ! अयः,
नो शक्नोमि अयोभारकं त्यक्त्वा त्रपुकभारकं बद्धुम् । ततः ग्लु ते पुरुषाः तं

तं पुरिसं एवं वयासी) तव उन पुरुषोने उस पुरुष से ऐसा कहा—(एम णं
देवाणुप्पिया ! तउ आगरे जाव सुवहुं अए लब्भइ) हे देवानुप्रिय ! यह रांगे की
खान है. इष्ट कान्त आदि विशेषणवाली है. थोड़े से रांगा से ही बहुत अधिक
लोहा प्राप्त किया जा सकता है । (तं छद्देहि ण देवाणुप्पिया ! अयमारगं,
तउयमारगं बंधाहि) इसलिये ! तुम हे देवानुप्रिय ! इस लोहे के भार को छोड़
दो और रांगा के भार को बांध लो—लेलो (तएणं से पुरिसे एवं वयासी) तव
उस पुरुषने ऐसा कहा (द्राहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए, देवा-
णुप्पिया ! अए अहगाढबन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिदिल्लव धणवद्धे
मए देवाणुप्पिया ! अए, धणियबन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि
अयमारगं छद्देत्ता तउयमारगं वधित्तए) हे देवानुप्रियो ! इसलोहके भारको मैं
बहुत दूर से लाया हू, बहुत समय से इसे लादे हुए हूँ, हे देवानुप्रियो !
मैंने इसे बहुत ही गाढ बंधन से बांधा है अर्थात् बहुत अधिक कसकर बांधा
हुआ है. अग्निथिल बंधन से—अब खुल सके ऐसे बन्धन से नहीं बांधा है
किन्तु हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को प्रचुर बंधन से बांधा है, अतः अब
मैं अयोभार को छोड़कर त्रपुक भारको ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ
अर्थात् लोहे के भार को छोड़ कर रांगा के भार को नहीं लूँ । (तएणं ते

अयमारगं, तउयमारगं बंधाहि) अटला भाटे तभे इ देवाणुप्रियो । आ लोभ'उना
भारने भूकी हो अने रागाना भारने भाधी लो. (त एण से पुरिसे एवं वयासी)
त्यारे ते पुरिसे आ प्रभाञ्जे कल्लु—(द्राहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए,
देवाणुप्पिया अए गाढबन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, धणिय-
बन्धनवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाएमि अयमारगं छद्देत्ता तउय-
मारगं वधित्तए) हे देवाणुप्रियो । आ लोभ'उना भारने हुं भहुं अ इरथी लाल्यो
छु, धणु समयधी मे' आने उपाडी राण्यो छे हे देवाणुप्रियो । आने मे' सभत
गाढ बंधन भाध्यो छे अटले के मे आने कसीने भाध्यो छे इवे जोली शक्य
अेवा भ धनथी भाध्यो नथी यणु हे देवाणुप्रियो । मे' आ लोभ'उना भारने प्रचुर
भ धनथी भाध्यो छे. अटला भाटे इवे हुं आ लोभ'उना भारने त्यलने त्रपुकभारने
अहलु करवाभा समर्थ नथी. अटले के लोभ'उना भारने भूकीने रागाना भारने इवे
हुं उपाडीय नही. (तए णं ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो संचाएति बह्वाह

पुरुषं यदा नो शक्नुवन्ति बहुभिः आख्यापनामिश्च प्रज्ञापनामिश्च प्ररूपणामिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा तदा यथाऽऽनुपूर्विं सप्रस्थिताः। एवं ताम्राऽऽकरं रूप्याऽऽकरं सुवर्णाऽऽकरं वज्राऽऽकर । ततः खलु ते पुरुषाः यत्रैव स्वानि स्वानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति, वज्रविक्रयण कुर्वन्ति, सुवहु

पुरिसा तं पुरिसं जाहे गो संचायंति बहूहि आघवणाहि य, पण्णवणाहि य, परुवणाहि य, आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा परुवित्तए वा तथा अहाणुपुञ्जीए संपत्थिया) तत्र उन पुरुषो ने जत्र कि उसे अनेक दृष्टान्तरूप आख्यापनाओं द्वारा, हेयोपादेय—प्रतिबो गक प्रज्ञापनाओं द्वारा, तथा यथार्थ स्वरूपनिरूपक प्ररूपणाओं द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहां से आगे क्रमशः प्रयाण करना श्रांभ कर दिया. (एवं तंबागरं, रूप्यागरं, सुवर्णागरं, वज्रागरं) ज्यों २ वे आगे चले उन्होंने वैसे २ ताम्र की खान को, रूप्य की खान को सुवर्ण की खान को, रत्न की खान को और हीरे की खान को देखा (तएणं ते पुरिसा जेणेव सया जणवया जेणेव साइ साइ नगराइं तेणेव उवागच्छति) वहां २ से अल्प मूल्य की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करते हुए और लोह भारग्रहण करने में ही आदर बुद्धिवाले बने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं के मरने के विषय में समझाने पर भी उसकी हठाग्राहिता को छुड़वाने में असमर्थ बने हुए वे सब पुरुष जहां अपने २ जनपद-देश थे और उनमें जहां २ अपने २ नगर थे वहां पर वज्रमणियों को लिये हुए आये (वहरविक्रिणणं करेति) वहां

आघ.णाहि य पण्णवणाहि य, परुणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा परुवित्तए वा, तथा अहाणुपुञ्जीए संपत्थिया) त्थार पछी ते पुरुषोच्चे धञ्जा दृष्टात् ३य आख्यापनाच्चे द्वारा, हेयोपादेय प्रतिबोधक प्रज्ञापनाच्चे द्वारा, तेभञ्ज यथार्थ स्वरूप निरूपक प्ररूपणोच्चे द्वारा समझाव्यो, पञ्च ते भाञ्जे नद्धि, त्याथी अधाञ्जेच्चे कभयः आलवा भाउद्धं. (एव तंबागरं, रूप्यागरं, सुवर्णागरं, वज्रागरं, वहरागरं) जेभ जेभ तेच्चे आगण वधता गया तेभ तेभ तेभञ्जे ताण्णानी भाञ्जेने, आहीनी भाञ्जेने, सुवर्णानी भाञ्जेने, रत्नानी भाञ्जेने अने हीराञ्जेनी भाञ्जेने जेध (तए ण ते पुरिसा जेणेव सया जणवया जेणेव साइ साइ नगराइ तेणेव उवागच्छति) त्याथी अल्पमूल्यनी ते ताम्रादि वस्तुञ्जेने भूञ्जेने अने लोहवार अल्प करवाभां ज प्रवृत्त थयेदा ते भाञ्जेने तेच्चे मूल्यवान वस्तुञ्जेने लेवा भाटे आशु क्यो छताच्चे तेना हठाग्राहिताने छिडाववाभा अते निष्कण गया अने आम तेच्चे अधा न्या पौतपौतानो जनपद-देश हतो अने तेभा पञ्च न्या पौतपौतात्त नगर हतु त्या वज्रमण्यो वगेशे दृष्ट पडोची गया. (वहरविक्रिणणं करेति)

दासीदासगोमहि-गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टतलोच्छ्रितप्रासादाद्यत मकान् कारयन्ति, स्नाताः कृतवलिकर्माणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटदम्भि-
मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्द्वकैर्नाटकैर्वरतरुणीसं प्रयुक्तैरुपनृत्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्य-
मानाः इष्टान् शब्द-स्पर्श-रसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष कान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो

आकरके उन्होंने वज्रमणियो का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-
गवेलकं गिह्णन्ति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिप तथा
गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अष्टतलमूसियपासायवडि-
सगे कारावेति) और आठ खण्डो से सुशोभित ऊचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का
निर्माण कराया (प्रायाकयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके वलि-
कर्म—वायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप वलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप
प्रायश्चित्त करके वे उन (उर्षि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (स्फुटमाणेहिं,
सुहंगमत्यएहिं, बत्तीसइबद्वएहिं नाडएहिं, वरतरुणी संपउत्तेहिं) और वही रहकर
वे अतिवेग से ताडित किये गये मृदङ्गां के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों
द्वारा अभिनीत किये गये बत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उप-
नृत्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते
हुए (इष्टे सद्दफरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए काममोगे पच्चणुभवमाणा विह-
रति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी काम-
मोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (तएणं से

त्या पड्ढेअग्घिने तेमञ्जे वण्मभञ्जिअोत्तं वेअाञ्जु इत्थं (सुबहुदासीदासगोमहिस-
गवेलकं गिह्णन्ति) अने जे द्रव्य मज्जुं तेनाथी धञ्जा दासी दास, गो, महिप
तेमञ्ज गवेलकोनी पारीदी करी. अष्टतले के अमनेना संग्रह कथी. (अष्टतलमूसिय-
पासायवडिसगे कारावेति) अने आठ भाणाओथी सुशोभित जिया जिया श्रेष्ठ
प्रासादोनु निर्माञ्जु कराञ्जु. (प्राया कयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता)
स्नान करीने, भल्लिकर्म-कागडा वगेरेने अन्न वगेरेना भाग आपीने अने कौतुक मंगल
इप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उर्षि पासायवरगया) प्रासादोनी उपर ज
रहेवा दाआ (स्फुटमाणेहिं, सुहंगमत्यएहिं, बत्तीसइबद्वएहिं नाडएहिं, वर
तरुणी संपउत्तेहिं) अने त्याञ्ज रहीने तेओ अतिवेगथी प्रताडित करेवा मृदङ्गोना
निनादोथी तेमञ्ज सुंदर सुंदर तइञ्जु करीओ द्वारा अभिनीत करायेवा पत्तीस प्रकारना
नाटकोथी (उवणच्चिज्जमाणा) उपनृत्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा)
उपगीयमान अने उपलाल्यमान यता (इष्टे सद्द फरिस-रस-रूव-गंधे पच्चविहे
माणुस्सए काममोगे पच्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप,
गंध आ पांच प्रकारना मनुष्य संबन्धी काममोगोना उपभोग करता आनंदपूर्वक

विहरन्ति । ततः स्वल् स पुरुषः अयोभारेण यत्रैव स्वं नगर तत्रैव उवागच्छन्ति, अयोभारकं गृहीत्वाःयोविक्रयणं करोति, तस्मिन् अल्पमूल्यनिष्ठिते क्षीण-परिव्ययः तान् पुर्यान् उपरि प्रासादवरगतान् यावद् विहरतः पश्यति, दृष्ट्वा

पुरिसे अयभारेण जेणेव सए नयरे तेणेव उवागच्छइ) अव वह पहिला पुरुष कि जिसने हित वचनों की अबहेलना की और लाह के भार को ही अच्छा समझा उस लोहभार के साथ ही अपने नगर में आया (अयभारगं गहाय अय-विक्रिणणं करेइ) वहां आकारके उसने उस लोहे के भार को लेकर वेचना प्रारंभ किया (तंसि अप्पमोल्लंसि, निट्टियंसि, हीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पिं पासाय-वरगए जाव विहरमाणे पासइ) जब वह पूरा बिक चुका—तो उससे जो उसे द्रव्य प्राप्त हुआ, वह बहुत थोड़ा सा प्राप्त हुआ—क्यो कि वह लोह उसका अल्पमूल्य में बिका अतः उससे प्राप्त द्रव्य आहार वस्त्र आदि के लाने में ही समाप्त हो गया. इस तरह क्षीणपरिव्ययवाले बने हुए उस पुरुष ने उन वज्र-विक्रीयी पुरुषो को जो कि अपने २ रम्य प्रासादों में रहकर यावत्—अतिवेग से ताडित (बजाते) हुए मृदङ्गों के निनादों से एवं ३२ प्रकार के सुन्दर २ तरुण युवतियों द्वारा अभिनीत किये गये नाटकों से उपनर्त्यमान थे और उपलाल्यमान थे—एवं इष्ट शब्द-स्पर्श रस, रूप, गंध, इनपांचप्रकार के मनुष्य-भव संबंधी काममोगो को भोगते हुए आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत

पोतानो सभय पसार करवा लाग्या. (तए ण से पुरिसे अयभारेण जेणेव सए नयरे तेणेव उवागच्छइ)इवे ते पेवो बोधो उना भारवाणे भाबुस के जेणे पीण बोधोना हित वचनो साभय्या नहि अने बोधो उना भारने उत्तम मान्यो हुतो -- नगरमा आव्यो (अयभारगं गहाय अयविक्रिणण करेइ) त्या आवीने तेणे ते बोधो उना भारने लधने वेयाधु प्रारंभ क्युं (तंसि अप्पमोल्लंसि निट्टियंसि हीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पिं पासायवरगए जाव विहरमाणे पासइ) आवरे ते बोधो उना भार वेयाधु गये तारे तेनाथी जे द्रव्य मलय हुतुं ने अत्यल्प हुतुं केभके ते बोधो उ अल्प मूल्यमा ज वेयाधु हुतु तेनाथी जे अल्पधन प्राप्त थयु हुतु ते तो आहार वस्त्र वगेरेनी पसीदीमा ज पइं थधु गयु हुतुं. आ प्रभाणे ते क्षीण चन्तिपावाणा ते पुइषा ते वज्र विक्रयीं पुइषोने के जेज्यो पोत-पोताना रम्य प्रासादोमा रहीने यावत् अतिवेगधी प्रताडित थयेव मृदङ्गोना निनादोधी अने उर प्रकारना सुंहर सुंहर तइषु श्रीज्यो द्वारा अभिनीत करयेवा नाटकोधी उप-नर्त्यमान हुता, उपगीयमान हुता, अने उपलाल्यमान हुता अने छोट, शुक, स्पशं रस, ३५. गंध, आ पाय नतना मनुष्य भव संबंधी काम मोगोनी उपलोग करतक आनन्दपूर्वक पोतानो सभय पसार करी रह्या हुता जेया (पासित्ता एव वयासी

एवमवादीत्-अहो !! खलु अहम् अधन्यः अपुण्यः अकृतार्थः अकृतलक्षणः हीश्री-
वर्जितः हीनपुण्यचानुर्दशो दुर्न्तप्रान्तलक्षणः । यदि खलु अह मित्राणां वा ज्ञातीना
वा निजकानां वा वचनप अश्रोणं तदा खलु अहमपि एवमेव उपरि प्रामादवर-
गतः यावद् व्यहरिष्यम् । तत् तेनार्थेन प्रदेगिन् ! एवमुच्यते-मा त्वं ! प्रदेगिन् !
पश्चादनुतापितो भवेः, यथा वा स पुर्योऽयोहारक । ॥ सू० १५४ ॥

कर रहे थे देखा(पासित्ता एवं वयासी-अहोणं अहं अधन्नो, अपुन्नो, अकयत्था।
अकयलकत्वणो हिरिसिरिवज्जिओ हीणपुण्णचाउद्दसे दुरंतपंतलकत्वणे) तो देखकर
इस प्रकार विचार किया-अरे ! मैं कितना अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, अकृतार्थ
हूं, शुभलक्षण रहित हूं लज्जा लक्ष्मी दोनों से वर्जित हूं, हीनपुण्यचातुर्दश हूं
अर्थात् हीनपु यवाला हूँ-सी लिये कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में जन्मा हूँ, दुर्न्त
प्रान्तलक्षणवालाहूँ-दुष्टावसानवाले अमनोज्ञ लक्षणों से युक्त हूँ (जह णं अहं मित्राण
वा णाईण वा णियगाण वा वयणं सुणेत्तओ तो णं अहं पि एवं चेव उप्पि
पासायवरगए जाव विहरेतओ) यदि मैं साथ गये हुए मित्रों के, अथवा पितृ-
व्यादि ज्ञानिजनों के वा अपने हितैपियों के वचनों को मान लेता, तो मैं भी
इन्हीं साथ के आये हुए वज्रविक्रेता पुरुषों की तरह ही प्रासादों में रहता
हुआ विविध सुख सम्पन्न बनकर अपने समय को आनन्दपूर्वक व्यतीत करता
(से तेजेट्टणं पएसी ! एवं बुच्चइ, मा तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि,
जहा व से पुरिसे अयमारए) इसी कारण हे प्रदेशिन् ! मैंने ऐसा कहा है कि

अहो णं अहं अधन्नो, अपुन्नो अकयत्थो, अकयलकत्वणो हिरिसिरिव-
ज्जिओ हीणपुण्णचाउद्दसे दुरतपंतलकत्वणे) तेभने नेधने आ प्रभाषे विचार
कर्यो के अरे । हे देहो अभागियो छुं अधन्य छु. पुण्यहीन छुं, अकृतार्थ
छु शुभलक्षण रहित छुं, लज्जा लक्ष्मी अन्नेथी वर्जित छु हीनपुण्यचातुर्दश
छुं, अटल के हीन पुण्यवाणो छु अथी न कृष्ण पक्षनी चतुर्दशीना दिवसे जन्म
पाथो छु, दुरत प्रान्त लक्षणवाणो छु, दुष्टावसाववाणा अमनोज्ञ लक्षणोथी युक्त छु
(जहण अह मित्राण वा णाईण वा णियगाण वा वयण सुणेत्तओ तो ण अहं
पि एव चेव उप्पि पासायवरगए जाव विहरेतओ) ने हूं साथवाणा मित्रेना
के पितृव्यादि ज्ञानिजनों के पोताना हितैप्योना वचने। मानी हेतो तो हूं
हूं पणु भारी साथे आवेल वज्रविक्रेता पुरोधनी नेम न प्रासादोभा रहिने विविध
सुख सम्पन्न अनीने पोताना समथने आनंद पूर्वक पसार करत. (से सेणट्टेणं
पएसी ! एवं बुच्चइ, मा तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहाव से
पुरिसे अयमारए) अथी न हे प्रदेशिन् ! मे' आ प्रभेभाकवु छे के नेम अथो-

टीका—“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-
श्रमणः प्रदेशिगजम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन् ! त्वं खलु पश्चादनुतापिकः—पश्चात्ता-
पयुक्तो मा भवेः, यथा—येन प्रकारेण सः—वक्ष्यमाणः अयोहारकः—लोहवणिकः
पश्चादनुतापिकोऽभूत् ।, प्रदेशी तत्परिचयं पृच्छति—कः खलु हे भदन्त ! सः
अयोहारकः ? इति प्रश्नः । केशीकुमारश्रमण आह—ते यथानामकाः—अनिर्दिष्ट-
नामानः केचित् पुरुषाः अर्थार्थिकाः—धनार्थिनः, अर्थगवेपिका—धनान्वेषिणः,
अर्थलुब्धकाः—धनलोलुपाः अर्थकाङ्क्षिताः—धनकाङ्क्षायुक्ताः, अर्थपिपासिताः—धन-
पिपासायुक्ताः, अर्थगवेपणायै—धनगवेपणार्थं विपुलं पणितमाण्डं—ऋयाणकवस्तुजातम्
आदाय तथा—सुबहु—पर्याप्तं भक्तपानपथ्यदनम् अशनपानरूपं पाथेयं गृहीत्वा एकां

जैसा यह अयोहारक पुरुष पश्चात्तापयुक्त हुआ है—इसी प्रकारसे तुम्हें न होना
पड़े—अतःतुम मेरे कहे हुए पर श्रद्धा करो और मानो किजीव और शरीर भिन्न
है इत्यादि ।

टीकार्थ—इसी मूलार्थ के जैसा है—परन्तु जहाँ पर विशेषता है—वह इस
प्रकार से है “हृद्दुत्तुडा जाव हियया” में जो यावत् पद आया है उससे—
“चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इन पदों का संग्रह हुआ
है. इन पदों की व्याख्या पूर्वोक्त जैसी ही है. “इहे, कंते जाव” में जो यह
यावत्-पद आया है—उससे यहाँ पर “प्रियः, मनोज्ञः” मन आमः” इन पदोंका
ग्रहण हुआ है. इष्ट शब्द का अर्थ—मनोरथ को पूरा करनेवाला है. कान्त शब्द
का अर्थ—सहायकारी होने से अमिलषणीय है, प्रिय शब्द का अर्थ—उपकारक
होने से प्रेम का उत्पादक है, तथा—मनोज्ञ शब्द का अर्थ—हितकारी होने से
मनोहर ऐसा है और मन आम शब्द का अर्थ आर्तिहर होने से मनोगम्य ऐसा

हा-क पुरुष पश्चात्ताप-युक्त थयो छे—तेम तमारी पणु स्थिति थाय नहि, ज्येथी
तमे भारी वात पर श्रद्धा राणे अने भारी वात भानी वेा के एव अने शरीर
भिन्न भिन्न छे इत्यादि.

टीकार्थ—आ मूलार्थं विशेषता छे ते आ प्रभाषे छे.
“हृद्दुत्तुडा जाव हियया” “चित्तानन्दिताः, परमसौ-
मनस्यिताः हर्षवशविसर्पद्” आ पदोने सग्रह थयो छे आ पदोनी व्याख्या पड़ेला
मुण्ण न छे “इहे, कंते जाव” मा ने यावत् पद छे तेथी अर्ही “प्रियः,
मनोज्ञः, मनः आम” आ पदोनु अग्रहण थयु छे. इष्ट शब्दोने अर्थ मनोरथ ने
पूरनार छे. कान्त शब्दोने अर्थ सहायकारी होवाथी अमिलषणीय छे, प्रिय शब्दोने
अर्थ—हितकारी होवाथी प्रेमने उत्पादक छे, तथा मनोज्ञ शब्दोने अर्थ—हितकारी
होवाथी मनोहर ज्येथे थाय छे मन. आम शब्दोने अर्थ आर्तिहर होवाथी मनो-

महती-विशालाम अग्रामिकाम्-वसतिगहिता, छिन्नाऽऽपाता-छिन्न-हिंसकजन्तु-
 मयेनोपहत आपात-मनुष्याणां गमनागमनं यत्र ताम् दीर्घाध्वां-दीर्घमार्गाम्, अट-
 वी । अनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् छिन्ना-
 ऽऽपातायाः दीर्घाध्वाया अटव्याः कञ्चिद्देशम्-अटवीविभागम्, अनुप्राप्ताः सन्तः
 तत्र एकम् अयआकरं-लोहखनिम्, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः, तमाकरम् अयसा-लोहेन
 सर्वत्र-सर्वदिक्षु. समन्ता-सर्वविदिक्षु आकीर्ण-व्याप्तं, विस्तीर्ण-विस्तारप्राप्तम्, सच्छटं-
 सती-समीचीना छटा-चाक्रचिक्चं यत्र तम्, उपच्छटं-छटायुक्तम्, स्फुटं-प्रकटम्,
 अनुगाढं-पुञ्जरूपं पश्यति-दृष्टवन्तः, दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट याव-यावत्पदेन “चित्तान-
 न्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इत्येतां सङ्गृह्यो बोध्यः, हर्षवशविस-
 र्पद्” इत्यस्य “हृदया” इत्यनेन योगाद् “हर्षवशविसर्पद्दया.” इति, एत-
 द्द्वयाख्या प्राग्बन्, एतादृशाः सन्तः अन्योन्यं-परस्परं, शब्दयन्ति-आह्वयन्ति,
 शब्दयित्वा एवमत्रादिषु-उक्तवन्तः-हे देवानुप्रियाः ! एषः-अयं खलु अयआकरः-
 लोहाऽऽकरः इष्टः कान्तः यावत् यावत्पदेन-“प्रियः, मनोज्ञः मनआम” इति
 पदानां संग्रहः, तत्र इष्टः-मनोरथपूरकः, कान्तः सहायकारित्वादभिलाषीयः, प्रियः-
 उपकारिकत्वेन प्रेमोत्पादकः, मनोज्ञः-हितकारित्वान्मनोहरः. मनआमः-आर्तिहर-
 त्वान्मनोगम्यः, अस्ति तत्र-तस्मान् कारणान हे देवानुप्रियाः । अस्माकम् अयो-
 मारं-लोहमारं वक्ष्ये ग्रहीतु श्रेयः-प्रशस्तम् इतिकृत्वा-इति निश्चित्य अन्योन्यस्य-
 परस्परस्य एतम्-अयोमारग्रहणरूपम् अर्थम्-प्रतिश्रुण्वन्ति-कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति.
 प्रतिश्रुत्य अयोमारं-लोहमारं वदन्ति, वदन्ती यथानुपूर्वि-यथाक्रमं संग्रस्थिताः-अग्रे
 गन्तु प्रवृत्ताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकायाः यावत्-“छिन्नाऽऽपातायाः
 दीर्घाध्वायाः अटव्या किञ्चिद्देश-किञ्चिद्देशम् अनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं
 त्रपाकरं-त्रपु-धातुविशेषरत्सः ऽऽकरं, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः तम् त्रपुकेण सर्वतः
 समन्ताद् आकीर्णं तदेव-पूर्वोक्तमेव “विस्तीर्णं, सच्छटम्, उपच्छटं स्फुटं गाढं
 पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः. चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः.

है । ‘अग्रामियाए जाव’ में जाये हुए इस यावत्पद से “छिन्नापातायाः” दीर्घा-
 ध्वायाः” इन पदों का संग्रह हुआ है. “त चेव” इस पाठ से “विस्तीर्णः
 सच्छटम् उपच्छटं स्फुटं गाढं पश्यन्तिः दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः, परम-
 सौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” इस पाठ का यहाँ ग्रहण

गम्य भवेत् शाय छे. ‘अग्रामियाए, जाव’ भा आवेत् आ यावत् पदं छिन्ना-
 पातायाः, दीर्घाध्वायाः, आ पदोने स अह थये छे ‘त चेव’ आ पाठ्ये ‘विस्तीर्णं
 सच्छटम्, उपच्छटम्, स्फुटं, गाढं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः,
 परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” आ पाठ अह थु

अन्योऽन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा. एवम् अत्रादिपुः-हे देवानुप्रियाः ! एष खलु
 त्रप्राकरः यावत्-यावत्पदेन "इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः" सग्राह्यम् मनआमः
 अल्पेनैव त्रपुकेण सुबहु-अतिप्रचुरम् अयः-लोहं लभ्यते-प्राप्यते, तत्-तस्मात्
 कारणात् हे देवानुप्रियाः ! अयोभारं मुक्त्वा-विहाय त्रपुकमारं बद्धुं श्रेयः. इति
 कृत्वा अन्योऽन्यस्य अन्तिके-सर्मापि एतम्-त्रपुमारग्रहणरूपम् अर्थम् प्रतिशृण्वन्ति
 कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य अयोभारं मुञ्चन्ति-त्यजन्ति त्रपुकमारं बध्नन्ति
 -गृह्णन्ति, तत्र-त्रपुमारग्रहणविषये खलु एकः-कश्चित् पुरुषः अयोभारं मोक्तुं-
 त्यक्तुं नो शक्नोति, तथा-त्रपुकमारं बद्धुं-ग्रहीतुं नो शक्नोति, ततः खलु ते
 पुरुषाः तम्-लोहमारवन्तं पुरुषम् एवमवादिपुः-हे देवानुप्रिय ! एष खलु त्रप्रा-
 करः. यावत्-यावत्पदेन-“इष्टः, कान्तः. प्रियः, मनोज्ञः, मनआमः, अल्पेनैव
 त्रपुकेण” इत्येषां स हो बोध्यः, सुबहु अतिप्रचुरम् अयः-लोहः, लभ्यते तत्-
 तस्मात् कारणात् हे देवानुप्रिय ! अयोभारकं-लोहमारं मुञ्च-त्यज तथा, त्रपु-
 कमारकं बधान-गृहाण, ततः खलु सः-लोहमारवाहकः पुरुषः एवमवादीन-हे
 देवानुप्रियाः-मया अयः-लोहः दूराऽऽहृतं-दूराः-दूरप्रदेशाद् आहृतम्-आनीतम्,
 हे देवानुप्रियाः ! मया अयः-चिराऽऽहृतम्-चिरान्-बहुकालाद् आहृतम्. उद्धम्, हे
 देवानुप्रियाः ! मया अयः अतिगाढ-बन्धनबद्धम्-अत्यन्तदृढबन्धनेन बद्धम् अत एव
 हे देवानुप्रियाः ! मया अयः अशिथिलबन्धनबद्धम्-अशिथिलबन्धनेन दृढबन्धनेन
 बद्धम् हे देवानुप्रियाः ! मया अयः प्रचुरबन्धनबद्धम्-“घणिय” इति प्रचुरार्थो
 देशीयः शब्दः, अतोऽहम् अयोभारं त्यक्त्वा त्रपुकमारकं बद्धुं-ग्रहीतुं नो चैव
 शक्नोमि । ततः खलु ते पुरुषाः तम्-लोहमारवाहकं पुरुषं यदा बहुभिः-बद्धीभिः
 आख्यापनाभिः-दृष्टान्तरूपामि” च पुनः प्रज्ञापनाभिः हेयोपादेयप्रतिबोधिकाभिश्च

किया गया है। “इष्टे जाव मणामे” में आये हुए यावत्पद से ‘इष्टः कान्तः
 प्रियः, मनोज्ञः’ इन पदों का संग्रह हुआ है। “तउ आगरे जाव” पद से मी
 इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन आम” इन पदों का संग्रह किया गया है।
 ‘घणिय’ यह शब्द देशीय है और प्रचुर अर्थ का वाचक है ॥ १५४ ॥

थये छ. “इष्टे जाव मणामे” भा आवेक यावत् पदथी ‘इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः
 आ पदोने अत्र अत्र थये छ. ‘तउआगरे जाव’ पदथी पक्ष ‘इष्ट, कान्त, प्रिय,
 मनोज्ञ, मन आम’ आ पदोत्तं अत्र थयुं छ. ‘घणिय’ आ शब्द देशीय छ अने
 प्रचुर अर्थोने वाचक छ. ॥स. १५४॥

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपनिरूपिकाभिश्च आग्न्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था नाभवन्, तदा यथानुपूर्वि—यथाक्रमम्, संप्रस्थिताः—
ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रभारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं,
रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरकखनि पश्यन्ति इत्यादि लोहत्रप्याकरदर्शनवदेव सर्व
वर्णन बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरपस्यानेकवथा. प्रबोधक-
वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाःसामर्थ्यान्तरं खलु ते अल्पमूल्यकपूर्वपूर्ववस्तुपरित्याग-
पूर्वकवहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्धाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव
स्वाः— स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्वानि स्वानि—निजानि निजानि नग-
राणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविद्रवण—वज्रमणिविक्रय कुर्वन्ति—कृतवन्तः ।
तद्विक्रयेण लब्धवहुद्रव्यैः सुबहुदासीदासगोमहिपगवेलकं—सुबहु—अतिप्रचुरं यद्
दासी—दास—गो महिप—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिपाः प्रसिद्धाः, गवे-
लकाः—मेपाश्चेत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णाति, अष्टतलोच्छ्रित प्रासादावन्तंस्रान
—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिभाः, ते च ते उच्छ्रिताः—उन्नताः
गगनचुम्बिनः प्रासादावतंस्रकाः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः
कृतस्नानाः, कृतबलिर्माणः—कृतवायसादिनिमित्तान्नविभागाः, कृतकौतुलमङ्गल-
प्राश्चिन्ताः दुःस्वप्नादिकफलविघाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः
उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवरगताः—मनोहर प्रासादस्थिताः विहरन्ती-
त्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्विः—अतिरमसा स्फालनात्
स्फुटद्विरिवः, मृदङ्गमस्तकैः मृदङ्गसुरवपुटैः, द्वात्रिंशद्भक्तैः— द्वात्रिंशत्प्रकारगचना
युक्तैः नाटकैः, तै कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वरतरुणीसंप्रयुक्तैः—विशिष्ट
स्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः,
उपलाल्यमानाः धिलास्यमानाः, इष्टान् अमिलषितान्, शब्दस्पर्शरसरूप-
गन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् काममोगान् प्रत्यनुभव तो विहरन्ति तिष्ठन्ति ।
ततः खलु इत्यथ सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण
सह यत्रैव स्व-निज नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा
अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये-स्वल्पद्रव्ये आहार-
वस्त्राधानयनेन निष्ठिते—समाप्ते सति स लोहवणिकः पुरुषः क्षीणपरिव्ययः—क्षीणः-
मन्दः परिव्ययः—परितो व्ययः—द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान्—वज्रविक्रयिण-
पुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वं भागे, प्रासादवरगतान्—रम्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान्
स्फुटद्विर्भृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्भक्तैः नाटकैः वरतरुणीसंप्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उप-
गीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् शब्द—स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् पञ्चविधान् मानु-

ष्यकान कामभोगान् प्र-नुभवन्तो विहरमाणान् पश्यन्ति । दृष्ट्वा एवम्-अनुपदं
 वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-अहो ! वित्तमः खलु अहम् अधन्यः-धन्यो न, अपुण्यः-
 पुण्यहीनः, अकृतार्थः अकृतेष्टसिद्धिकः, अकृतलक्षणः-शुभलक्षणहीनः, हीश्रीवर्जितः-
 लज्जालक्ष्मीहीनः, हीनपुण्यं चातुर्दशः-हानपुण्यः-क्षीणपुण्यः, अत एव चातुर्दशः-
 कृष्णचातुर्दश्यां जातः, दुरन्त-ान्त लक्षणः-दुरन्तं-दुष्टा-सानम् अत एव भ्रान्तम्
 अमनोज्ञं लक्षणं यस्य स तथा-कुलक्षणयुक्तः, अहममि । यदि-चेत् खलु
 अहं मित्राणां-सहगतानां वा-अथवा ज्ञातीनां-पितृव्यादीनां वा निजकानां-
 हितैषिणां वा वचनम् अश्रोष्य-श्रवणपथमानेष्वम् तदा-तर्हि खलु अहमपि एव-
 मेव-मत्सहागतवज्रमणिविद्राणि पुरुषवदेव, उरि-ऊर्ध्वभागे, मासादवरगतः-सुन्दर-
 मासादस्थितः वज्रमणिविक्रयिसदृशो भूत्वा यावत् व-हरिष्यम्-अस्थास्यम् विविध-
 सुखसम्पन्नोऽभविष्यम् । तत्-त-माद्वेतोः, तेन-अनन्तरोत्तेन अर्थेन-लोहवणिगूरूपेण
 दृष्टान्तेन, हे प्रदेशिन् ! एवम्-इत्यम्, उच्यते-कथ्यते यत् हे प्रदेशिन् ! त्वं
 पश्चादनुतापिको मा भवेः, यथा-येन प्रकारेण सः-अन्तरोक्तः, अशोहारकः पश्चा-
 दनुतापिकोऽभूत् । ॥सू० १५४॥

मूलम्-तए णं से पएसी राया संबुद्धे केसिकुमारसमणं वंदइ
 जाव एवं वयासी-णो खल्ल भंते । अहं पच्छाणुताविए भविस्सामि
 जहा चैव से पुरिमे अयभारए । त इच्छाम गं देवाणुप्पियाणं
 अतिए केवलपन्नत्त धम्मं निसामित्तए । अहासुह देवाणुप्पिया ।
 मा पडिबंध करेह । धम्मकहा, जहा चित्तस्स तहेव जाव गिहिधम्मं
 पडिवज्जइ, जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए । १५५॥

ञाया-ततः खलु स प्रदेशी राजा संबुद्धः केशिकुमारश्रमणं वन्दते यावत्
 एवमवादीत-नो खलु मदन्त ! अहं पश्चादनुतापिको भविष्यामि यथैव स पुरुषो

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ- (तएणं से पएसी राया संबुद्धे) इस तरह से बहुत समझाने
 पर वह प्रदेशी राजा बोध को प्राप्त हो गया (केसिकुमारसमणं जाव वंदइ

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ- (तएणं से पएसी राया संबुद्धे) या प्रभाषे अहुं न सम्भववाथी
 ते प्रदेशी राजने बोध प्राप्त थये । (केसि कुमारसमण जाव वंदइ एवं वयासी) यथी तेष्से

ज्योहारकः । तदिच्छामि खलु देवानुप्रि णामन्तिके केवलप्रज्ञान धर्म निगम-
यितुम् । यथासुखं देवानुप्रियाः ! मा प्रतियन्धं कुरुत धर्मकथा, यथा चित्रस्य
तथैव यावत् गृहिधर्म प्रतिपद्यते, तत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव प्राधारयद्
गमनाय ॥ सू० १५५ ॥

एवं वयासी) फिर उसने बंदना की यावत् केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(णो
खलु मंते) अहं पञ्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहाण्ण
हे भदंत ! मै उस अयोहारक-लोहवणिक पुरुष की तरह पश्चादनुतापित नहीं
होऊंगा (तं इच्छामि णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए)
अतः मैं आप देवानुप्रिय से केवलप्रज्ञान धर्म सुनने का अभिलाषी हो रहा
हूँ (अहा सुहं देवानुप्पिया ! मा पड्विघं करेह) तब केशिकुमारश्रमण ने उससे
कहा—हे देवानुप्रिय ! आप को जिससे सुख उपजे ऐसा करो परन्तु इस विषय
में विलम्ब करना उचित नहीं है । (धम्म कहा) प्रदेशी राजानो तब केशी-
कुमारश्रमण ने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म का उपदेश दिया. (जहा चित्तस्स तद्देव
गिहिधम्मं पड्विज्जइ) यहाँ वह धर्मकथा १११वें सूत्र में जैसी कही गई है
वैसी जाननी चाहिये. तब प्रदेशी राजाने द्वादशविधरूप गृहीधर्म स्वीकार कर-
लिया (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इस प्रकार गृहिधर्म
धारणकर वह प्रदेशी राजा जहाँ श्वेतांशिका नगरी थी उस ओर चलदिया—

केशी कुमारश्रमणने वदना करी यावत् केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे कल्लु—(णो खलु मंते !
अहं पञ्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहारए) हे भदंत !
हूँ ते अयोहारक लोहवणिक पुरुषनी जेम पश्चादनुतापिक थलंथ नडि. (तं इच्छामि
णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए) यथी हूँ आप देवा-
नुप्रिय यासेथी देवदि प्रज्ञान धर्मने सामणवानी अभिलाषा राणुं छु (अहासुहं
देवानुप्पिया ! मा पड्विघं करेइ) त्पारे केशीकुमार श्रमण्णे तेने कल्लु हे देवानुप्रिय !
तमने जेमा आनइ थाय तेम करे. पणु आ विषयमा विसय उचित नथी.
(धम्मकहा) प्रदेशी राजाने त्पारे केशी कुमार श्रमण्णे मुनिधर्म अने गृहस्थधर्मने
उपदेश आप्थे. (जहा चित्तस्स तद्देव गिहिधम्मं पड्विज्जइ) यही ते धर्मकथा
११ मा सूत्र प्रभाण्णे कहेवाभा आवी छे. त्पारे प्रदेशी राजान्णे द्वादश विधरूप
गृहीधर्मने स्वीकार कथे (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
आ प्रभाण्णे गृहीधर्म धारण करीने ते प्रदेशी राजा जहाँ श्वेतांशिका नगरी छती
ते तरफ रवाना थलं गथे.

टीका—‘तए ण से पएसी राया’ इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा संबुद्धः बोधं प्राप्तः, सन् केशिकुमारश्रमणम् वन्दते—स्तौति, यावत्—यावत्पदेन ‘नमस्यति सत्करोति सम्मानयति कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते’ इत्येषां पदानां सङ्गो बोध्यः । एषां व्याख्या गता । वन्दनाद्यनन्तरम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! अहं खलु पश्चादनुतापिको नो भविष्यामि, यथा येन प्रकारेण सः—अनन्तरोक्तः अयोहारकः—लोहवणिक, पुरुषः पश्चादनुतापिकोऽभवत्, तत् तस्मात् कारणाद् अहं खलु देवानुप्रियाणां भवताम् अन्तिके पार्श्वे केवलि-प्रह्वन्तं, धर्म भवसागरनिमज्जत्प्राणिगणोद्धरणधुरीणं श्रुतचरित्रलक्षणं निश्चमयितुं श्रोतुम्, इच्छामि अमिलयामि । केशी प्राऽऽह—हे देवानुप्रिय ! यथासुखं यथा-तुभ्यं रोचते तथा कुरु इति भावः. किन्तु प्रतिबन्धं विवल्भ मा कुरु । धर्मकथा अनगारागारधर्मकथा यथा चित्रस्य द्वादशाधिकैकशततममत्रप्रोक्ता तथैव तदनुसारिष्येव विज्ञेया । ततः प्रदेशी गृहधर्मं द्वादशविधं प्रतिपद्यते स्वीकरोति, प्रतिपद्य स यत्रैव श्वेतांबिका नगरी तत्रैव गमनाय प्राधारयत् मनसि निश्चितवान् । ॥६०१५५॥

मूलम्—तए णं केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-जाणासि णं तुमं पएसी । कइ आयरिया पन्नत्ता ?, हंता जाणामि,

टीकार्थ—स्पष्ट है “वंदइ जाव एवं वयासी” में जो-यावत्पद आया है. उससे—“नमस्यति-सत्करोति-सम्मानयति-कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते” इन पदों का संग्रह हुआ है, तात्पर्य—कहने का यह है कि—जब प्रदेशी राजा बोध को प्राप्त हो गया. तब उसने केशी कुमार श्रमण की स्तुति की, उन्हें नमस्कार किया उनका सत्कार किया सम्मान किया और-कल्याणरूप मङ्गलरूप एवं-देवस्वरूप उन चैत्य ज्ञान प्रदाता गुरुदेव की उसने पर्युपासना की, फिर उसने भवसागर में डूबते डूबते प्राणियों का उद्धार करने में समर्थ एसे श्रुत चारित्ररूप धर्म को सुनने की अपनी अमिलाषा प्रकट की ॥ सू. १५५ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है “वंदइ जाव एवं वयासी” भा जे यावत् पद आवेले छे. तेथी ‘नमस्यति-सत्करोति-सम्मानयति-कल्याणं-मङ्गलं-दैवतं-चैत्यं-पर्युपास्ते’ आ पदोने स संग्रह थयो छे. तात्पर्य आभ छे के ज्यारे प्रदेशी राजने बोध प्राप्त थय गयो. त्यारे तेथे केशी कुमार श्रमणुनी स्तुति करी तेभने नमस्कार कयो, तेभने सत्कार कयो, सम्मान कयो. अने कल्याणरूप, मङ्गलरूप अने देवस्वरूप ते चैत्यज्ञान प्रदाता गुरुदेवनी तेभणे पर्युपासना करी त्यार पछी तेभणे भवसागरमा डूबता प्राणीओना उद्धारमा समर्थ जेवा श्रुत चारित्ररूप धर्मने साधनवानी येतानी धर्मका प्रकट करी ॥ सू. १५५ ॥

तओ आयरिआ पणत्ता, तं जहा-कलायरिए१, सिप्पायरिए२.
धम्मायरिए३ । जाणासि ण तुम पएसी ! तेसिं तिण्ह आयरियाणं
कस्स का विणयपडिवत्ती पउंजियठ्वा ? । हंता ! जाणामि. कला-
यरियस्स िप्पायरियस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ
पुप्फाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउल जीवियारिहं
पीइदाणं दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेज्जा२ जत्थेव धम्मायरिय
पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा कल्लाणं मगलं
देवय चेइय पज्जुवासेज्जा फासुएसणिज्जेणं, असणपाणखाइमसाइमेणं
पडिलाभेज्जा पाडिहारिणं पीढफलगसिज्जासंथारणं उवनि
मत्ते३१३ । एवं जाणासि तहावि णं तुमं मम वामं वामेणं जात्र वट्टि-
त्ता ममं पयमट्टं अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहा
रत्थ गमणाए ॥ सू० १५६ ॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवम् अवादीन्-
जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! कति आचार्याः प्रब्रूताः १, इन्त ! जानामि त्रय

“तएणं केशी कुमारसमणे” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—“तएण” इसके बाद “केशी कुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणे
“पएसि” रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजा से ऐसा कहा “जाणासि णं तुमं
पएसी ? कह आयरिया पणत्ता-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो कितने
आचार्य कहे गये हैं-? प्रदेशीने कहा—“हंता ? जाणामि-तओ आ रिथा

‘तएणं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—‘तएणं’ त्यत्र पथी ‘केशी कुमारसमणे’ केशी कुमार श्रमणे ‘पएसि
रायं एवं वयासी’ प्रदेशी राजानेनैव अभ्याद्ये ऽद्यु ‘जाणासि णं तुमं पएसी ! कह
आयरिया पणत्ता’ हे प्रदेशिन् तमे ज्ञेयोः छि के आचार्योः केटवा प्रक्षारणा ऽद्ये-
वाय छे ? प्रदेशीञ्चि ऽद्यु-‘हंता ? जाणामि-तओ आयरिया पणत्ता’ इति वादत

आचार्याः प्रब्रह्मन्ताः, तद्यथा-कलाऽऽचार्यः १, शिल्पाऽऽचार्यः २, धर्माऽऽचार्यः ३ । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! तेषां त्रिणांमाचार्याणां कस्य का विनयप्रसिपत्तिः प्रयोक्तव्या ? हन्त ! जनामि-कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य उपलेपनं संमार्जनं वा कुर्यात्, पुरतः पुष्पाणि वा आनयेत् मार्जयेत् माडयेत् भोजयेत् वा विपुलं जीविताहं प्रीतिदानं दद्यात् पौत्रानुपुत्रिवीं वृत्तं वद्वयेत् २ । यत्रैव धर्माऽऽचार्यं पश्येत्

पण्यत्ता-” हां मदन्त-! जानता हू-तीन आचार्य कहे गये हैं । “तं जहा-कलायारिए-सिष्यायारिए-धम्मायारिए” जो इस प्रकार से हैं-कलाचार्य-१ शिल्पाचार्य-२ और तीसरा धर्माचार्य । ‘जानामि ण तुमं पएसी-” तेसिं तिण्हं आरियाण कस्स का विणयमडिवत्ती पउंजियव्वा-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो, इन तीन आचार्यों में किस आचार्यका कैसा विनय प्रचार करने को कहा गया है-! प्रदेशीने कहा-”हंता ? जानामि हां मदन्त ३ जानता हूं कलायारियस्स सिष्यायारियस्स उवलेवणं समज्जणं वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयाविज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयज्जा पुत्ताणुपुत्तियं विसिं कप्पेज्जा-” कलाचार्य और-शिल्पाचार्य के शरीर में तेल का मदन करना, उन्हें स्नान कराना, तथा-उनके समक्ष पुष्पोपलाला र मेटके रूप में रखना, पुष्पमाला आदिसे उन्हें अलङ्कृत करना भोजन कराना उनकी आजीविका के योग्य सहर्ष प्रीतिदान देना वस्त्रादि प्रदान कराना. एवं-पुत्र

बोले” छ-त्रय आचार्यों कहेवाय छ “तं जहा-कलायारिए सिष्यायारिए धम्मायारिए” ते आ प्रभाञ्जे छ-कलाचार्य, १ शिल्पाचार्य २ अने धर्माचार्य ३, “जानासि ण तुमं पएसी तेसिं तिण्हं आरियाण कस्स का विणयमडिवत्ता पउंजियव्वा” हे प्रदेशिन् तमे बोले छ हे आ त्रय आचार्योंका क्या आचार्योंने कछ नतने। विनय प्रकार करवा कहेवासा आये छ १ प्रदेशीये कहुं-“हं-? जानामि” हां, मदन्त ? बोले छ “कलायारियस्स सिष्यायारियस्स उवलेवणं समज्जणं वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयज्जा पुत्ताणुपुत्तियं विसिं कप्पेज्जा कलाचार्य अने शिल्पाचार्यना शरीरमा तेलनी भावीश करवी, तेमने स्नान कराववु तेमने तेमनी सामे पुष्पेनी बोट भुंवी, पुष्पभाणा वगेथी तेमने अलङ्कृत करवा बोजन कराववु, तेमनी आलविका भाटे येअ सहर्ष प्रीतिदान आपवु” अने पुत्र-पौत्र वगेथीना-अरु-पोषण येअ आलविकानी व्यवस्था

तत्रैव वन्देत नमस्येत सत्कुर्यात् सम्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं देवतं चेत्य पशुपा-
सीत्, प्रासुकैपणीयेन अशन पान खोदिमस्वादिमेन प्रतिलम्भयेत्, प्रातिहारिकेण
पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्, एवं च तावत् त्वं प्रदेगिन ! एव जानासि
तथापि खलु त्वं मम वामवामेन यावद् वर्तित्वा मम एतमर्थम् अध्यामि त्वा
यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयत् गमनाय । ॥ सू० १५६ ॥

पौत्रादि के निर्वाह योग्य आजीविका लगा देना. इस प्रकार से यह कलाचार्य
७२ —प्रकार की कलाओं को सिखानेवालों की, और—गिल्पाचार्य विज्ञान
सिखानेवालों का विनयप्रतिपत्ति है। “जत्थेव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्थेव
वंदेज्जा, णमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं—मंगलं—देवयं चेइयं पज्जुवासे
ज्जा—’ तथा—धर्माचार्य की विनय प्रतिपत्ति इस प्रकारसे है—जहाँ पर भी
धर्माचार्य को देखलिया जावे, वहाँ पर उनकी वन्दना करना, नमस्कार करना,
सत्कार करना, सम्मान करना. कल्याण—मङ्गल—देवस्वरूप उन चेत्य ज्ञानदायक की
पर्युपासना करना, तथा—“फासुएसणिज्जेणं असण—पाण—खाइम—साइमेण पडि-
लामेज्जा, पाडिहारिएण पीठ—कल्लग—सिज्जा संथारएण उवनिमंतेज्जा—” प्रासुक
एषणीय अशन पान खादिम स्वादिम रूप चारा प्रस्तारके आहार से उन्हें प्रति
लामित करना, पडिहारिपीठफलक शय्या संस्तारक को ग्रहण करने के लिये
उन्से प्रार्थना करना—इ इस प्रकार की यह धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति है—
“एव ताव तुम पएसी—? एव जाणासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण

करवी. आ प्रभाषे आ कलाचार्य के जे ७२ प्रकारनी कलाओंतु शिक्षण आपे छे
अने शिक्षणाचार्य विज्ञानतु शिक्षण आपनारनी विनयप्रतिपत्ति ‘जत्थेव धम्माय-
रियं पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, णमंसेज्जा सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाण
मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा’ तेमण धर्माचार्यनी विनयप्रतिपत्ति आ
प्रभाषे छे—तथा धर्माचार्य प्रभाष के तरतण त्या तेमने वन्दन करवा, नमस्कार करवा
सत्कार करवा, सम्मान करवा, कल्याण—मंगल देवस्वरूप ते ज्ञानदायकनी पर्युपासना
करवा ते— “फासुएसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलामेज्जा,
पाडिहारिएण पीठफलकसिज्जा संथारएण उवनिमंतेज्जा” प्रासुक अेषणीय अशन-
पान आदिम स्वादिम रूप चार प्रकारना आहारतु तेमने प्रतिबोधित करवा, सम्-
पर्षणीय पीठफलक, शय्यासंस्तार ने ग्रहण करवा भाटे तेमने विनती करवी उ, आ
वतनी आ धर्माचार्यनी विनय प्रतिपत्ति छे “एवं ताव तुम पएसी ? एव जा-
णासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण जाव वडित्ता मम एममह अवस्वामित्ता जेणेव
सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाइइ” हे प्रदेगिन ! क्यारे तमे आ प्रभाषे

आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कलाऽऽचार्यः १, शिल्पाऽऽचार्यः २, धर्माऽऽचार्यः ३ । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! तेषां त्रिणांमाचार्याणां कस्य का विनयप्रसिपत्तिः प्रयोक्तव्या ? हन्त ! जनामि-कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य उपलेपनं संमार्जनं वा कुर्यात्, पुरतः पुष्पाणि वा आनयेत् मार्जयेत् माडयेत् भोजयेत् वा विपुलं जीविताहं प्रीतिदानं दद्यात् पौत्रानुपुत्रिवी वृत्तं कल्पयेत् २ । यत्रैव धर्माऽऽचार्यं पश्येत्

पण्यत्ता-” हां भदन्त-! जानता हू-तीन आचार्य कहे गये हैं । “तं जहा-कलायरिए-सिप्यारिए-धम्मारिए” जो इस प्रकार से हैं-कलाचार्य-१ शिल्पाचार्य-२ और तीसरा धर्माचार्य । ‘जानामि ण तुमं पएसी-” तेसिं तिण्हं आयरिणाण कस्स का विणयपडिवत्ती पउंजियव्वा-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो, इन तीन आचार्यों में किस आचार्यका कैसा विनय प्रकार करने को कहा गया है-! प्रदेशीने कहा-”हंता ? जानामि हां भदन्त ३ जानता हूं कलायरियस्स सिप्यारियस्स, उवलेवणं समज्जण वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा मोयाविज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीडदाण दलयज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा-” कलाचार्य और-शिल्पाचार्य के शरीर में तेल का मदन करना, उन्हें स्नान कराना, तथा-उनके समक्ष पुष्पों का लाल रंग के रूप में रखना, पुष्पमाला आदिसे उन्हें अलंकृत करना भोजन कराना उनकी आजीविका के योग्य सहर्ष प्रीतिदान देना वस्त्रादि प्रदान करना. एवं-पुत्र

लक्ष्यं छु-त्रय आचार्यो कहेवाय छि “तं जहा-कलायरिए सिप्यारिए धम्मारिए” ते आ प्रभाञ्जे छि-कलाचार्यं, १ शिल्पाचार्यं २ अने धर्माचार्य ३, “जानासि ण तुमं पएसी तेसिं तिण्हं आयरिणाण कस्स का विणयपडिवत्ता पउंजियव्वा” हे प्रदेशिन्, तमे लक्ष्यो छि हे आ त्रय आचार्योभा कथा आचार्येने कथं नतने। विनय प्रकार करवा कहेवाभा आच्यो छि १ प्रदेशीये कल्यु-”हंता ? जानामि” छि, भदन्त ? लक्ष्यं छु “कलायरियस्स सिप्यारियस्स उवलेवणं समज्जणं वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा मोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीडदाणं दलयज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा” कलाचार्य अने शिल्पाचार्येना शरीरभा तेलनी माहीश करवी, तेभने स्नान कराववु तेभने तेभनी साभे पुष्पोनी लेट भूकवी, पुष्पमाणा वगेरेथी तेभने अलंकृत करवा बोधन कराववु, तेभनी आलुविका माटे थोअ्य सहर्षं प्रीतिदान आपवु” अने पुत्र-पौत्र वगेरेना बरषु-पोषण थोअ्य आलुविकानी व्यवस्था

तत्रैव वन्देत नमस्येत सत्कृर्गात् सम्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं देवतं चैत्य पशुपा-
सीत, प्रासुकैपणीयेन अशन पान खादिमस्वादिमेन प्रतिलम्भयेत्, प्रातिहारिकेण
पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्, एवं च तावत् त्वं प्रदंशिन ! एव जानासि
तथापि खलु त्व मम वाम वामेन यावद् वर्तित्वा मम एतमर्थम् अक्षामि त्वा
यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयत् गमनाय । ॥ सू० १५६ ॥

पौत्रादि के निर्वह योग्य आजीविका लगा देना. इस प्रकार से यह कलाचार्य
७२ —प्रकार की कलाओं को सिखानेवालों की, और—गिल्पाचार्य विज्ञान
सिखानेवालों का विनयप्रतिपत्ति है। “जत्येव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्येव
वंदेज्जा, णमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं—मंगलं—देवयं चेइयं पज्जुवासे
ज्जा—’ तथा—धर्माचार्य की विनय प्रतिपत्ति इस प्रकारसे है—जहाँ पर भी
धर्माचार्य को देखलिया जावे, वहाँ पर उनकी वन्दना करना, नमस्कार करना,
सत्कार करना, सम्मान करना. कल्याण—मङ्गल—देवस्वरूप उन चैत्य ज्ञानदायक की
पर्युपासना करना, तथा—“फासुएसणिज्जेण असण—पाण—खाइम—साइमेण पडि-
लामेज्जा, पाडिहारिणं पीठ—फलक—सिज्जा संथारएण उवनिमंतेज्जा—” प्रासुक
एषणीय अशन पान खादिम स्वादिम रूप चारा प्रकारके आहार से उन्हें प्रति
लामित करना, पाडिहारिपीठफलक शय्या संस्तारक को ग्रहण करने के लिये
उनसे प्रार्थना करना—३ इस प्रकार की यह धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति है—
“एव ताव तुम पएसी—? एव जाणासि तहावि ण तुमं मम वामं वामेण

करवी. आ प्रभाषे आ कलाचार्य के ७२ प्रकारकी कलाओंतु शिक्षण आपे छे
अने शिक्षणार्थ विज्ञानतु शिक्षण आपनारनी विनयप्रतिपत्ति “जत्येव धम्माय-
रियं पासिज्जा, तत्येव वंदेज्जा, णमंसेज्जा सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाण
मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा” तेमञ्च धर्माचार्यनी विनयप्रतिपत्ति आ
प्रभाषे १—अथा धर्माचार्यं प्रभाषे के तत्परत्वात् त्वा तेमने वन्दन करवा, नमस्कार करवा
सत्कार करवा, सम्मान करवा, कल्याण—मंगल देवस्वरूप ते ज्ञानदायकनी पर्युपासना
करवी ते— “फासुएसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलामेज्जा,
पाडिहारिणं पीठफलकसिज्जा संथारएण उवनिमंतेज्जा” प्रासुक अेषणीय अशन-
पान आदिम स्वादिम रूप चार प्रकारनी आहारार्थी तेमने प्रतिलामित करवा, सम्-
पर्षणीय पीठफलक, शय्यासंस्तार ने अर्पण करवा भाटे तेमने विनती करवी ३, आ
व्यतनी आ धर्माचार्यनी विनय प्रतिपत्ति, छे “एवं ताव तुम पएसी? एव जा-
णासि तहावि ण तुमं मम वामं वामेण जाव् वडित्ता मम एवमद्द अक्खामिचा जेणेव
सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए” छे प्रदेशित्वा अन्तरे तमे आ प्रभाषे

ટીકા—“તદ્ ગ્ ણં કેસીકુમારસમણે” ઇત્યાદિ—તતઃ સ્વલુ કેશાકુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિનં રાજાનમ્ એવમવાદીત્—હે પ્રદેશિન્ ! ત્વં જાનાસિ યત્ કતિ—કિયન્ત આચાર્યાઃ પ્રજ્ઞાતાઃ ? । ઇતિ પ્રશ્ને પ્રદેશા પ્રાહ હન્ત ! જાનામિ, યત્ ત્રયઃ—ત્રિસં-લ્ચકાઃ આચાર્યાઃ પ્રજ્ઞાતાઃ, તદ્થથા—કલાઽઽચાર્યઃ—દ્વાસપ્તતિ પ્રકારકલાશિક્ષકઃ ? , શિલ્પાઽઽચાર્યઃ—વિજ્ઞાનશિક્ષકઃ ૨, ધર્માઽઽચાર્યઃ—ધર્મોપદેશકઃ ૩ । પુનઃ કેશી પુચ્છતિ—હે પ્રદેશિન્ ! ત્વં જાનાસિ સ્વલુ યત્ તેષામ્—અનન્તરોક્તાનાં ત્રયાણામા-ચાર્યાણાં મધ્યે કસ્યાઽઽચાર્યસ્ય કા—કીદૃશી ? વિનયપ્રતિપત્તિઃ—વિનયપ્રકારઃ પ્રયોક્તવ્યા કર્તવ્યા ? । હન્ત ! જાનામિ, તત્ર કલાઽઽચાર્યસ્ય શિલ્પાઽઽચાર્યસ્ય ચ ઉપલેપનં તૈલામ્બ્યઙ્ગઃ, તથા—સંમઙ્ગનં—સ્નપનં કુર્યાત્—સ્નપયે દિત્યર્થઃ, તથા પુરતઃ—તયોસ્ત્રે, પુષ્પાણિ વા સમાનયેત્, મષ્ઢયેત્—પુષ્પમાલ્યાદિનાઽલ્કુર્યાત્, મોજયેત્—મોજનં કારયેત્, વિપુલં—બહુ જીવિતાર્હ—જીવનયોગ્યં પ્રીતિદાન સહર્ષ વસ્ત્રાદિદાનં દદ્યાત્, તથા પુત્રાનુપૌત્રિકી—પુત્રપૌત્રાદિ નિર્વાહયોગ્યાં ઘૃત્સિં જીવિકાં કલ્પ-યેત્—સમ્પાદયેત્ ૨ । ઇતિ કલાઽઽચાર્ય—શિલ્પાઽઽચાર્યયોર્વિનયપ્રતિપત્તિમુક્ત્વા ધર્માઽઽચાર્યસ્ય તાં કથયિતું પ્રક્રમતે—યત્રૈવ—યસ્મિન્નેવ સ્થલે ધર્માઽઽચાર્ય પચ્ચેત્

જાવ વહિત્તા મમ ઇયમઠં અક્સ્વામિત્તા જેણેવ સેયવિયા ણયરી તેણેવ પહારેત્થ ગમણા—” હે પ્રદેશિન્ ૩ જબ તુમ ઇસ પ્રકાર સે વિનયપ્રતિપત્તિ કા જાનતે હો તબ મી તુમને મેરે પ્રતિ પ્રતિકૂલરૂપ વ્યવહાર સે યાવત્ પ્રવૃત્તિ કરકે ઉસ પ્રતિકૂલ વ્યવહાર જનિત અપેરાઘ કો ક્ષમા કરાયે વિના જહાંશ્વેતવિકા નગરીથી વહી પર જાનેકા નિશ્ચય કિયા ॥ સૂ૦ ૧૫૬ ॥

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ હૈ, “કલ્લાણં—મંગલં—દેવયં—વેદ્યં પઙ્ગુવાસેઽજા—” ઇન પદોં કી વ્યાખ્યા ચતુર્થ સૂત્રમં કી જા ચુકી હૈ । “વામં વામેણ—” ઇસ યાવત્ પદસે— “દૃષ્ઢ દૃષ્ઢેન—પ્રતિકૂલ પ્રતિકૂલેન—પ્રતિલોમ પ્રતિલોમેન—વિપર્યાસં વિપર્યાસેન” ઇન પદોં કા સંગ્રહ હુવા હૈ, ઇન્ પદોંકી વ્યાખ્યા પીછે કી જા ચુકી હૈ. ॥સૂ૦ ૧૫૬ ॥

વિનય પ્રતિપત્તિ ને બાહ્યો છે છતા એ તમે એ મારા પ્રત્યે પ્રતિકૂલ રૂપ વ્યવહારથી યાવત્ પ્રવૃત્તિ કરીને પ્રતિકૂલ વ્યવહાર જનિત અપરાધને ક્ષમા કરાવ્યા વગર વ્યાજ્ઞેતાબિકા નગરી છે ત્યા જવાને તમે નિશ્ચય કર્યો. ॥ સૂ. ૧૫૬ ॥

ટીકાર્થ—સ્પષ્ટ છે “કલ્લાણ મંગલં દેવયં વેદ્યં પઙ્ગુવાસેઽજા” આ પદોની વ્યાખ્યા એથા સુત્રમા આવી છે “વામં વામેણ” માં આવેલ યાવત્ પદથી “દૃષ્ઢ દૃષ્ઢેન પ્રતિકૂલપ્રતિકૂલેન પ્રતિલોમ પ્રતિલોમેન વિપર્યાસં વિપર્યાસેન” આ પદોને સંગ્રહ થયો છે આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલા કરવામા આવી છે ॥ ૧૫૬ ॥

तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थले वन्देत नमस्येत सत्कुर्यात् सन्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं देवतं
 चैत्यं पर्युपासीत' एतेषां व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या, तथा तं धर्मान्चार्यं प्राप्तुकं
 णीयेन-अचित्तकल्पनीयेन अशन-पान-न्वादिम-खादिमेन-अशनादि चतुर्विंशधाहारेण
 प्रतिलभ्येत्-चतुर्विंशधाहारं तस्मै दद्यादिति भावः, तथा तं प्रातिहारिकेण-पुनः
 समर्पणीयेन पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्-तद्ग्रहणे प्रार्थयेत् ३ । एवं
 तावत् प्रथमं प्रदेशिन् ! त मेवम्-अनन्तरोक्तप्रकारां विनयरूपां प्रतिपत्तिं जानासि,
 तथाऽपि खलु त्वं मम वामवामेन-प्रतिकूलतरेण व्यवहारेण यावत्-यावत्पदेन
 "दण्डदण्डेन, प्रतिकूलप्रतिकूलेन, प्रतिलोम-प्रतिलोमेन विपर्यासविपर्यासेन"
 इत्येतां पदानां सङ्गो बोध्यः, व्याख्याऽपि तत्रैव विलोकनीया, वर्तिता-उक्तव्य-
 वहारेण युक्तो भूत्वा मम एत-मया सह प्रतिकूलव्यवहारजनितम् अर्थम-
 अपराधम् अक्षामयित्वा यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय प्राधारयत्-
 निश्चय कृतवान् । ॥ सू० १५६ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी
 एवं खलु भंते । मम एयारूवे अज्झतिथए जाव समुप्पज्जित्था-
 एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वामं वामेणं जाव वट्ठिए तं सेयं
 खलु मे कल्लं पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलिय-
 म्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगकिंसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-रागसरिसे
 कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे
 तेयसा जलंते अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदि-
 त्तए नमंसित्तए एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामित्तएत्ति
 कट्ठु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं से पएसी राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव
 तेयसा जलंते हट्टुट्टु जाव हियए जहेव कूणिए । तहेव निग्गच्छइ,
 अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे पच्चविहेणं अभिगमेणं वंदइ नमं-
 सइ, एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं मेइ ॥सू० १५७॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केचिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्—ए।
खलु भदन्त ! मम एतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् समुदपघत—एवं खलु अहं देवा-
नुप्रियाणां वामवामेन यावत् वर्तितः, तत्र श्रेयः खलु मे कलः प्रादुर्भ्रमातायां
रजन्यां फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते अथाऽऽपाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोक-किंशुक-
शुकमुख-गुज्जार्द्धरागसदृशे कमलाकरनलिनीपण्ड-बोधके उत्थिते सरे सहस्ररश्मी
दिनकरे तेजसा ज्वलति अन्तःपुरपरिवारैः सार्द्धं संपरिवृतो देवानुप्रियान् वन्दि-

मूलार्थ—“तएण से पएसी राया—” इत्यादि

“तएण से पएसी राया केसिं कुमारसमण एवं वयासी—” ३५९

इसके बाद—प्रदेशी राजाने केशी कुमारसमण से सा कहा—“एवं खलु मंते !—
मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” हे भदन्त—३ मुझे एसा
आध्यात्मिक यावत् संरल्प उत्पन्न हुवा, “एवं खलु अहं देवानुप्रियाणं वामं
वामेण जाव वट्टिए. तं सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पमायाए रयणीए फुल्लुत्पलकमल-
कोमलुम्मिलियम्मि अहा पाण्डुरे पमायाए रत्ता सागं सुय—सुयसुह गुज्जराग-
सरिसे, कमलागरनलिणिसंहबोहए—” मैंने आप देवानुप्रिय के साथ प्रति-
कूल रूप से यावत् व्यवहार किया है, अतः—मुझे यही श्रेयस्कर है कि—मैं
कल जब रजनी प्रमातयुक्त हो जावेगी, अर्थात्—रात्रि समाप्त हो जावेगी.
और कमल तथा—हरिणविशेषके नेत्र ये दोनों विकसित हो जावेगे, अर्थात्
कमल जब खिल जावेगा. और—हरिणविशेष की आंखे शयन करलेने के बाद
खुल जावेगी. तथा—प्रमातका रङ्ग जब पीत धवल हो जावेगा. रक्ताशोक-किंशुक-

‘तएणं से पएसी गया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—‘तएणं से पएसी गया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी ॥१५७॥
त्यार पछी प्रदेशी राजाके केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाते कहुं ‘एव खलु मंते !
मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था’ हे भदन्त ! जेवो आध्यात्मिक
यावत् संकल्प उत्पन्न थयो. “एव खलु अहं देवानुप्रियाण वामं वामेण जाव
वट्टिए तं सेयं खलु मे कल्ल पाउप्पमाया ए रयणीए फुल्लुत्पलकमलकोम-
लुम्मिलियम्मि अहापाण्डुरे पमाए रक्तासोगकिंसुयसुहगुज्जरागसरिसे
कमलागार नलिणिसंहबोह ए” मे आप देवानुप्रियनी साथे प्रतिश्रुण्डपथी यावत्
व्यवहार क्यो छे तेथी मारा भाटे जेव वात शयस्कथ छे के हु आवती काले
ज्यादे रात्रि प्रभात युक्त थथे जथे, ज्येठे के रात्रि पूरी थथे जथे, अने कमण
तथा हरिणु विशेषना नेत्रे विकसित थथे जथे, ज्येठे के कमण ज्यादे विकसित
थथे जथे अने हरिणु विशेषनी आपो निद्रा त्याग क्यो भाठ उठथी, जथे तेमज
प्रभातने रंग ज्यादे पीत धवल (पीणो अने सङ्केत) थथे जथे, रक्ताशोक, किंशु!

त्वा नमस्यित्वा एतमर्थं भूयो भूयः सयगु विनयेन क्षामयितुम्, इति कृत्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतः, तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततःखलु स प्रदेशी राजा कल्य प्रादुप्रभाताया रजन्यां यावत् तेजसा जलति हृष्टतुष्ट यावद् हृदयः ग्रथैव कृणिकः तथैव निर्गच्छति अन्तःपुरपरि-

पलाश-शुकपुत्र एवं-गुञ्जा-रत्ती के अघस्तन का अर्धभाग जैसा लाल. तथा-सगे-वरो में कमलिनी कुल का विकाशक, "उद्वियम्मि सरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते—" ऐसा सहस्र किरणोवाला एवं-दिनकर्ता सूर्य जब अपने तेज से प्रज्वलित होता हुआ आकाश में उदित हो जावेगा, तब-"अते उर परियाल-सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमंसित्तए एयमट्ट भुज्जो-२ सम्मं विण-एणं-स्वामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिसिं पाउब्भूए. तामेव दिसिं पडिगए" में अन्तःपुर परिवार से युक्त होकर आप देवानुग्रिय की वन्दना-नमस्कार और-पूर्वोक्त अपराध रूप अर्थ को विनय के साथ प्रशस्त नम्र भावसे चार-२ क्षमापना के लिये आऊगा. इस प्रकार केशी स्वामी से निवेदन कर वह जिस दिशा से आया था-उसी दिशा की ओर चला गया. "तएणं से पएसी राया कल्लं पाउप्प-मायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते-" इसके बाद दूसरे दिन जब रजनी रात्री प्रभातप्राय-समाप्त हो चुकी और-१ मात हो गया यावत् सूर्य अपने तेज से देदीप्यमान हो उठा-तब वह-"हृष्ट तुष्ट जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छइ-" हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर कृणिक नरेश की तरह अपने स्थान से निकला

पलाश, शुकपुत्र अने गुञ्जाना नीचिना अर्धा भाग जेवो दास तेभज सरोवरोभा कमलीनी कुलने। वीनाशक 'उद्वियम्मि सरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते' जेवा सहस्र कीरणोवाणो अने दिनकर्ता सूर्य ज्यारे पोताना तेजथी प्रज्वलीत थतो आकाशभा उदय पाभशे, त्यारे अंतोउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमं सित्तए एयमट्ट भुज्जो २ सम्मं विणएण स्वामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए" त्यारे अतःपुर परिवारनी साथे आप देवानु-ग्रियने वदन अने नमस्कार करवा भाटे अने पूर्वोक्त अपराधरूप अर्थने सचिनय प्रशस्त नम्र भावथी चार वार क्षमापना भाटे आधीश. आ प्रभाण्णे केशीकुमारने विनंती करीने ते जे दिशा तरक्षथी आच्ये। इतो तेज दिशा तरक्ष जतो रक्षो. "तएण से पएसी राया कल्ल पाउप्पमायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते" त्यारभणी पीज दिवसे ज्यारे रात्रि पूरी थथ अने प्रभात थयुं यावत् सूर्य पोताना तेजथी प्रकाशित थथ गथे। त्यारे ते " हृ-जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छइ". हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाणो थथने कुञ्चिक राजनी जेभ पोताना स्थानथी

वारैः सार्द्धं संपरिवृतः पञ्चविधेन अभिगमेन वन्दते नमस्यति, एतमर्थं भूयोभूयः
सम्यग् विनयेन क्षामयति ॥ सू० १५७ ॥

टीका—“तए णं पएसी राया” इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं
कुमारश्रमणम्, एवमवादात्—हे मदन्त ! ए। खलु मम एतद्रूपः—अनुपदं वक्ष-माण-
स्वरूपः आध्यात्मिकः—आत्मगतः क्षमापनारूपोर्थोर्कुर इव, यावत्-या-त्यदेन “चि-
न्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः, सकल्पः” इत्येषां पदानां सङ्गं हो बोध्यः, तत्र
“अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेण वंदइ-नमंसइ—” निकल
ते ही वह अन्तःपुर परिवार से परिवेष्टित हो गया. इस तरह से प्रदेशी राजाने
पांच प्रकारके अभिगम से केशीकुमार श्रमण की वन्दनाकी-उनकी स्तुति की.
“एयमहं भुज्जो भुज्जो-सम्मं विणएणं खामेइ—” स्तुति नमस्कार करके फिर उसने
अपने प्रतिकूल आचरण से जनित अपराध की बार-बार अच्छी तरह से विनम्र
भावसे युक्त हो कर क्षमा कराई, अर्थात्-क्षमा मांगी—

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से इस प्रकार कहा-हे मदन्त !
अब मुझे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ. कि-मैं अपने
प्रतिकूल आचरण से जनित अपराध की आप से बार-बार क्षमा करावे, यहविचार
आत्मगत होने से पहले तो अर्कुर की तरह उत्पन्न हुआ. अतः—उसे आध्या-
त्मिक रूपसे प्रकट किया गया है. वाद में यावत् पदसे चिन्तितः-कल्पितः—
प्रार्थितः-मनोगतः इन विशेषणों वाला हुआ है कि—वह विचार स्मरणरूप बन

नीकण्ये. “अ तेउरपरियालसाद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेणं वंदइ-
नमंसइ” नीकणता अ ते पोताना अत-पुर परिवारथी वी टणाछ गये. आ
प्रभाणे तैथार थयेला प्रदेशी राजान्ये केशी कुमारश्रमणुनी पासे जधने पाच प्रकारना
अभिगमथी केशी कुमारश्रमणुनी वन्दना करी तेमनी स्तुति करी, नमस्कार कथी.
“एयमहं भुज्जो र सम्म विणएण खामेइ” स्तुति तेमज नमस्कार करीने पछी
तेणे पोताना प्रतिकूल आचरणुथी थयेल अपराधनी बारवार सारी रीते विनम्र
भावथी युक्त थधने क्षमा भागी.

टीकार्थ—प्रदेशी राजान्ये केशीकुमारश्रमणुने आ प्रभाणे कहुं—हे मदन्त ! हुवे
मने आ नतने आध्यात्मिक विचार उत्पन्न थये छे के हुं मारा प्रतिकूल आचर-
णुथी थयेल अपराध महल आपथी पासैथी बारवार क्षमा माणुं. आ विचार
आत्मगत होवाथी पछेला तो अर्कुरनी जेभ उत्पन्न थये ज्येथी तेने आध्यात्मिक
रूपे प्रकट करवाभा आण्ये छे त्यार-पछी यावत् पछी “चिन्तितः, कल्पितः,
प्रार्थितः मनोगतः, आ विशेषणुथी युक्त थये छे, विचारने जे चिन्तित-पछी

चिन्तितः-पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारो द्विपत्रित इव, ततः कल्पितः स एव व्यवस्थायुक्तः 'क्षामयेगम्' इति परिणतो विचारः पल्लवित इव, स एव प्रार्थित-इष्टरूपेण स्वीकृतः पुष्पित इव, मनोगतः मसि दृढरूपेण निश्चयः 'इत्थमेव मया कर्तव्यम्' इति विचारः फलित इव समुदपद्यत-समुत्पन्नः-एवं खलु अहं देवानुप्रियाणां-भवता वामत्रामेन यावत्-गान्पदेन "दण्डदण्डेन प्रतिकूलप्रतिकूलेन प्रल्लोम प्रतिलोमेन-परिष्यासत्रिपर्यासेन' इत्येषां सङ्गो बोध्यः, एषां व्याख्यानं पूर्वं गता, वर्तितः-प्रवृत्तः तत्-तस्मात्कारणात् मे मम श्रेयः-प्रशस्तं यत्

गया. अर्थात्-मुझे अपने अपराध की आपसे क्षमा कराना है. ऐसी स्मृति मुझे बार-बार आने लगी. इसलिये-यह विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह प्रथम अवस्था की अपेक्षा कुछ विशेष पुष्ट होने से चिन्तित प्रकट किया गया है। तथा वही विचार जब व्यवस्थायुक्त हो गया, कि मुझे अवश्य ही इस रूपसे क्षमा कराना है तो द्वितीय अवस्थाकी अपेक्षा और-अधिक पुष्ट हो जाने के कारण यह पल्लवित हुवे अङ्कुर की तरह कल्पित पद से विशेषित किया गया है. तथा जब वही विचार इष्ट रूप से स्वीकृत कर लिया गया. तो वह पुष्पित हुवे अङ्कुर की तरह हो गया. और जब वही विचार मनमें दृढ रूपसे निश्चय की स्थिति में परिणत हो गया के ऐसा ही मुझे करना है. तो फलित हुवे अङ्कुर की तरह वह हो गया. क्या विचार उत्पन्न हुआ इसी बात को वह अत्र प्रकट करता है कि हे भदन्त-! मैंने आप देवानुप्रिय के साथ बहुत अधिक प्रतिकूलरूपसे. यावत् दण्ड दण्डरूपसे. अतिशय प्रतिकूलरूपसे व्यवहार किया है.

विशेषित करवाना आये छ तेह कारण आ छ के ते विचार स्मरणरूप थछ गये। हतो अटवे के मने मारा अपराधनी आपश्रीना पासेथी क्षमा करावनी छ, ऐसी स्मृति बार-बार आववा लागी, ऐसी आ विचार द्वि पत्रित अङ्कुरनी जेम प्रथम अवस्था करता क'छक विशेष पुष्ट होवाथी चिन्तित रूपमा प्रकट करवाना आये छ. तथा तेज विचार न्यारे व्यवस्थायुक्त थछ गये-के मारे शोकस आविने क्षमा याचना करवी छ तो द्वितीय अवस्था करता वधारे ते विचार पुष्ट थछ नवाथी अे पल्लवित थयेला अङ्कुरनी जेम कल्पित पदथी विशेषित करवाना आये छ. तेमज न्यारे ते ज विचार पुष्ट रूपथी स्वीकृत थछ गये तो ते पुष्पित थयेल अङ्कुरनी जेम थछ गये अने न्यारे ते विचार मनमा दृढरूपथी (निश्चयनी स्थितिमा परिष्कृत थछ गये) के अेवुं ज मारे करवु छे तो इतिथ थयेल अङ्कुरनी जेम ते थछ गये. शेा विचार उत्पन्न थये ? अेज वातने हवे स्पष्ट करता कहे छ के-हे भदन्त ! मे आप देवानुप्रियनी साथे बहुत प्रतिकूल रूपसे यावत् इ'उ इ'उ रूपथी-अतिशय प्रतिकूलरूपथी अतिशय प्रतिकूलरूपथी अने अतिशय-विपरीत रूपथी व्यवहार कर्यो छ, ऐसी मारा

कल्प-श्चः प्रादुष्यमानायां प्रकाशप्रकाशितायाम्, रजन्वां रात्रौ फुल्लोत्पलकमलकोम-
लोन्मीलिते-फुल्ल विकसितं यद् उत्पलं-कमलं, तच्च कमलं च हरिणविशेषश्चेति
फुल्लोत्पलकमलौ, तयोर्यत् कोमलं मृदु उन्मीलनं तत्र फुल्लोत्पलपत्राणां विकसनं
हरिणनयनयोः शानन्तरं पुटमोचनम् च यस्मिन् तत् फुल्लोत्पलकमलकोमलो-
न्मीलितं तस्मिन्, अथ प्रमानानन्तरम् आ-समन्तात् पाप्हुरे पीनधवले प्रमाते
प्रातःकाले रक्ताशोककिंशुकं शुक्रमुखं गुज्जार्द्धरागसदृशे तत्र रक्तांशोकः रक्तवर्णो
शोकः, किंशुकः पलाशः, शुक्रमुखं, गुज्जार्द्धरागः गुज्जायाअधस्तनार्द्धरागः, एतै-
रक्तवर्णैः सदृशे तुल्ये, अस्य "सूत्रे" इति परेण सम्बन्धः, एतन्प्रमानानामपि,
कमलाकरनलिनीषण्डबोधके सरोवरगाङ्गमलिनीकुलत्रिकाशके सूत्रे सूत्रे' उल्लिखिते

इसलिये मेरा कल्याण अब इसी में है कि मैं दूसरे दिन जबकि रात्रि प्रमात के
रूप में परिणत हो जावे। अर्थात् प्रातःकाल हा जाय, और इसमें कमल उत्पल
एवं हरिण विशेष की आंखे निद्राविगम के बाद प्रफुल्लित हो जाय कमल
विकसित हो जाय एवं-हरिणों के नेत्र अच्छी तरह से खुल जाय तथा वह
प्रमात समन्तात् पीत धवल प्रकाशवाला हो जावे, एवं सहस्रकिरणों से सम्पन्न
तथा दिवसविधायक सूर्य का कि कमलाकर सरोवर में नलिनी कुलकाबोधक वि-
काश करनेवाला होता है जब रक्ताशोक किशुक शुक्रमुख और गुज्जार्द्ध गुज्जा के सदृश
उदित हो जावे तथा उसका प्रकाश अच्छी तरह से फैल जावे तब मैं अन्तःपुर
परिचरनों से परिचुम्ब होकर आप देवानुप्रिय, की वन्दना के लिये नमस्कार के
लिये आज और अपने पूर्वोक्त अपराधरूप अर्थकी आपसे वार २ विनम्र माग
युक्त हो कर क्षमा मांगू, इस प्रकार से वह प्रदेशी राजा केशीश्रमणकुमार के प्रति
निवेदन कर अपने स्थान पर गया। दूसरे दिन जब पूर्वोक्तरूप से प्रमान

गाटे हुवे ओज श्रेयस्कर छे के हु आवती काले ज्यारे रात्रे प्रमातमा परिशुत थरु
जय ओटके के सवार थरु जय, कमण उत्पल अने हरिषु विशेषेनी अ.पो निद्रा
रहित थरुने प्रकृदिलत थरु जय कमणो विकसित थरु जय अने हरिषुाना नेत्रो
सारी रीते उघडी जय तथा प्रमात समतात् पीतधवल प्रकाशयुक्त थरु जय
अने सहस्र किरणोथी सपन्न तेमज दिवस विधायक सूर्य के जे कमलाकर सरोवर
मा नलिनी कुलने विकसित करनार छे. रक्ताशोक, किशुक, शुक्र मुख अने गुजार्धनी
सदृश ते उदित थरु जय तेमज तेना प्रकाश सारी रीते प्रसरी जय, त्यारे हु
अत पुर परिचरनोथी परीवृत्त थरुने आप देवानुप्रियने वदन तेमज नमस्कार करवा
भाटे अर्द्धी आवु. अने पूर्वोक्त अपराध बहल आपथी पासेथी विनम्र थरुने वार वार
क्षमा याचना करे. आ प्रमाणे ते प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणने विनती करीने स्वस्थाने
जथे श्रीज दिवसे ज्यारे पूर्वोक्तप्रथी प्रमात पुष्पे विकसित थरु गथु त्यारे त

उदिते सति, पुनः कीदृशे तस्मिन् ? महसरम्भौ-किरणमहस्रमम्पन्ने दिनकरे-
दिवसकरणशीले तेजसा-दीप्या ज्वलति-दंटीप्यमाने सति, अन्तःपुरपरिवारैः
राज्ञीपरिवारैः संपरिवृतः-युक्तः मन अहं देवानुप्रियान वन्दितुं नमस्यितुम्.
एतमर्थ-पूर्वोक्तापराधरूपमथ भूयोभूयः-पुनः पुनः सम्यग् चिन्तयेन-प्रशस्तनम्रभावेन
क्षामयितुम् । "इतिकृत्वा-केशिस्वामिने इति निवेद्य यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः
तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्पं-श्वः प्रादुप्रभातायो रजण्यां यावत्-
यावत्पदेन अनन्तरप्रोक्तोऽरितनपदानां फुल्लोत्पलादीनां सङ्गो हो बोध्यः, तदर्थत्र
तत्रैव ज्ञेयः । तेजसा ज्वलति दृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन चित्तानन्दितः, परम-
सौम स्थितः, हर्षवश विसर्पद्भृदः । इत्येतत्पदसङ्गो हो बोध्यः । यथा-येन प्रकारेण
कृष्णिकः-तन्नामा श्रेणिकराजपुत्र औपपातिकसूत्रे वर्णितो निर्गतः, तथैव-तेनैव
प्रकारेण निर्गच्छति-स्वभवान्निःसरति, तन्निर्गमनवर्णनमौपपातिकसूत्रतो
बोध्यमिति तात्पर्यम् । निर्गत्य अन्तःपुरपरिवारैः संपरिवृतः-वेष्टितः पञ्चविधेन-
पञ्चप्रकारेण सूचितानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन १, अचित्तानां द्रव्याणामव्युत्सर्जनेन २,

काल का सूर्य उदित हो गया. तब वह दृष्टतुष्ट यावत् चित्तानन्दित हुआ. परमसौम-
यिन हुआ हर्षवश विसर्पत हृदयवाला (पद्म आनन्दयुक्त हुआ) औपपातिकसूत्र में वर्णित
श्रेणिक राजपुत्र कृष्णिक नरेशकी तरह अपने भवन से निकला. कृष्णिक नरेश के निक-
लने का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । निकलते ही वह अन्तःपुर परि-
वार जनों से परिवेष्टित कर लिया गया. और पांच प्रकार के अभिगम से
युक्त हो कर वह प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणकी वन्दना आदि करने के
लिये चल दिया. वहाँ पहुँचकर उसने उनका वन्दना की नमस्कार किया. और
सकृत् तिक्रल आचरणजनित अपराधों की बड़े विनम्रभावयुक्त होकर क्षमा
मांगी. । पांच प्रकारके अभिगम इस प्रकारसे ? सचित्तद्रव्योंका परित्यागकर

दृष्ट तुष्ट यावत् चित्तानन्दित थयो, परमसौमनाम्बित थयो, इधं विसर्पत हृदयवाणो
थयो औपपातिकसूत्रमा वस्रितं श्रेष्ठिक राजपुत्र कृष्णिक नरेशना जेभ योताना भवनथी
ते नीकथ्यो. कृष्णिक नरेशना नीकणवास्तुं वस्रुन औपपातिक सूत्रमा करवाभा आच्यु
छे अहार नीकणता ज ते अन्त-पुर परिवार जनोथी वी टणाछ गयो-धेराछ गयो अने
पाच प्रकारना अभिगमथी युक्त थधने ते प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमणनी वदना
वगेरे करवाभा माटे नीकणी पडयो त्या पछोच्यीने तेखे तेभने वदन अने नमस्कार
क्या अने स्वकृत प्रतिक्रुण अन्तराश्रुज जनित अपराधा अदल तेखे विनम्रभाव युक्त
थधने क्षमा मागी पाच प्रकारना अभिगमो आ प्रभाखे छे १, संचित्त द्रव्योने

एकशाटिकोत्तरासङ्गकरणेन३, चक्षुःस्पर्शे अञ्जलिकरणेन४, मनस एकत्वकरणेन५, चेत्येव रूपेण अभिगमेन-विनयविधिविशेषेण, वन्दते-स्तौति. नमस्यति-नमस्करोति वन्दित्वा नमस्यत्वा च एतमर्थं-प्रतिकूलाचरणजनितापराधरूपं भूयोभूयः-चार-वारम् सम्यग् विनयेन-प्रशस्ततरविनम्रभावेन क्षामयति-क्षमां कारयति । ॥सू.१५७॥

मूलम्—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिस्स रणो सूरिकं-तप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्म परिकहेइ । तए णं से पएसी राया धम्म मोच्चा निसम्म उट्टाए उट्टेइ केसिकुमारसमणं वदइ नमंसइ जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १५८ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनो राज्ञः सूर्यकान्ता-प्रमुखानां देवीनां तस्यां च महाऽतिमहालायां परिषदि चातुर्यामं धर्मं परिकथयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मं श्रुत्वा निश्चय उत्सृज्य उत्तिष्ठति केशिकुमार-श्रमणं वन्दते नमस्यति यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ॥सू.१५८॥
देना, ण अचेत्त द्रव्या का पदित्याग नहीं करना, २ एक शाटिका उत्तरा-यङ्ग करना-विना सीये वस्त्रसे उत्तरासङ्ग करना, है-देखने ही हाथ जोड़ लेना, और-५. मनकी एकाग्रता करना. ॥सू. १५७॥

सूत्र-“तए ण केसीकुमारसमणे-” इत्यादि-॥१५८॥

मूलार्थ-“तएण” इसकेबाद “केसीकुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने “पएसिस्स रणोसूरिकंतप्पमुहाणं देवीणं तीसेय. महइ महालायाए परिसाए-” प्रदेशी राजा के समक्ष एवं उसकी सूर्यकान्ता आदि प्रमुख गविया के समक्ष उस विशाल परिषदा में “चाउज्जाम धम्मं” अहिंसा-सत्य-अस्तेय, एवं-अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्मका उपदेश दिया. “तएण से पएसी राया धम्म सोच्चा

परित्याग करवे, २, अचित्त द्रव्योने परित्याग नहि करवे, ३ अेक शाटिका उत्तरासङ्ग करवे, ४ वगर सीवेदा वस्त्रोथे उत्तरासङ्ग करवे जेतानी साथे ७ हाथ जोडी लेवा अने ५, मननी अेकाग्रता करवी ॥ सू १५७ ॥

सुत्रार्थ-“तए ण केसीकुमारसमणे इत्यादि”

मूलार्थ-“तए ण” त्थार पछी। “केसी कुमारसमणे” केशी कुमार श्रमणे “पएसिस्स रणो सूरिकं प्प मुहाण देवीण तीसेय महइ महालायाए परिसाए” प्रदेशी राजनी साथे तेमज तेनी सुधंक्षान्ता वगेशे प्रमुख राष्ठीयोनी साथे ते विशाण परिषदाभां ‘चाउज्जाम धम्म’ अहिंसा, सत्य, अस्तेय अने अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्मने उपदेश आये। “तएण से पएसी राया धम्म सोच्चा निसम्म

टीका—“तए णं केशिकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशिकुमार-
श्रमणः प्रदेशिने राज्ञः सूर्यकान्ता प्रमुखानां देवीनां तस्यां तत्र स्थितायां च
महाऽतिमहालयायाम् अतिबृहत्याम्, परिपटि चातुर्यामम्—अहिंसा-सत्या ऽमृत्येया-
ऽपरिग्रहैर्विभक्तचतुर्मेहाव्रतरुपं धर्मं परिकथयति—प्ररूपयति । उपलक्षणाद् द्वादश-
विधं गृह्णि धर्मं परिकथयति ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मम्-अनगारागारधर्मं श्रुत्वा
सामान्यतः श्रवणगोचरं कृत्वा निशम्य-विशेषतो हृद्यवधार्य उत्थया-उत्थान-
प्रयासेन उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिकुमारश्रमणं वन्दते—स्तौति, नमस्यति-नम-
स्करोति, वन्दित्वा नमस्विःत्वा च यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय
पाधारथन्—निश्रितवान् । ॥सू. १५८ ॥

मूलम्—तएणं केशी कुमारसमणे पएसिराय एवं वयासी—मा
णं तुसं पएसी । पुठ्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवि-
ज्जासि, जहा से वणसंडेइ वा णट्टसालाइ वा इक्खुवाडएइ वा
खलवाडएइ वा । कइं णं भंते । वणसंडे पुठ्वि रमणिज्जे भवि-
त्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ ? पएसी । जहा णं वणसंडे पत्तिए

निसम्म उट्ठाए उठेइ—” इसके बाद प्रदेशी राजा धर्म सुन कर और उसे हृदय में
धारणकर अपने आप वहां से उठा—“केशीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ—” उठकर
उसने केशीकुमार श्रमण की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया, “जेणेव सेयंविद्या
नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए—” वन्दना-नमस्कार कर फिर वह अपनी नगरी
की ओर चलदिया । टीकार्थ—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्म के उपदेश
और—साथ-साथ १२ प्रकाररूप गृहस्थ धर्म का भी उपदेश दिया, ऐसा कथन
उपलक्षण से जान लेना चाहिये ॥ सू. १५८ ॥

उट्ठाए उठेइ” त्थार पछी प्रदेशी राजा धर्म सामणिने अने तेने हृदयमा धारण
करीने पोतानी जेणे ज् त्थाधी उठो थथो “केशीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ
उत्था थधने तेजे केशी कुमारश्रमणुनी वंदना करी तेभने नमस्कार कथां, “जेणेव
सेयंविद्या नयरी तेत्रैव पहारेत्थ गमणाए” वंदना तेभज् नमस्कार करीने पछी
ते पोतानी नगरी तरक्खुवाना थध गये।

टीकार्थ—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्मने उपदेश अने तेनी साथे
साथे १२ प्रकाररूप गृहस्थधर्मने पण्णु उपदेश आदेशो हतो, जेवु कथन उ
भाषी हेवुं लोभजे. ॥ सू. १५८ ॥

एकशाटिकोत्तरासङ्करणेन३, चक्षुःस्पर्शे अञ्जलिकरणेन४, मनस एकत्वकरणेन५, चेत्येव रूपेण अभिगमेन—विनयविधिविशेषेण, वन्दते—स्तौति. नमस्यति—नमस्करोति वन्दित्वा नमस्यित्वा च एतमर्थं—प्रतिकूलाचरणजनितापराधरूपं भूयोभूयः—वार-वारम् सम्यग् विनयेन—प्रशस्ततरविनम्रभावेन क्षामयति—क्षमां कारयति । ॥सू. १५७॥

मूलम्—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिस्स रण्णो सूरिकं-तप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्म परिकहेइ । तए णं से पएसी राया धम्म मोच्चा निसम्म उट्ठाए उट्ठेइ केसिकुमारसमणं वदइ नमंसइ जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १५८ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनो राज्ञः स्वर्कान्ता-प्रमुखानां देवीनां तस्यां च महाऽतिमहालयां परिगदि चातुर्यामं धर्मं परिकथयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मं श्रुत्वा निश्चय्य उत्तया उत्तिष्ठति केशिकुमार-श्रमणं वन्दते नमस्यति यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ॥सू. १५८॥

देना, ण अचेत्त द्रव्या का पदित्याग नही करना, २ एक शाटिका उत्तरा-यङ्ग करना—विना सीधे वस्त्रसे उत्तरासग करना, है—देखने ही हाथ जोड़ लेना, और—५. मनकी एकाग्रता करना. ॥सू. १५७॥

सूत्र—“तए ण केसीकुमारसमणे—” इत्यादि—॥१५८॥

मूलार्थ—“तए ण” इसकेबाद “केसीकुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने “पएसिस्स रण्णोसूरिकंतप्पमुहाणं देवीणं तीसेय. महइ महालयाए परिसाए—” प्रदेशी राजा के समक्ष एवं उसकी स्वर्कान्ता आदि प्रमुख गविया के समक्ष उस विशाल परिषदा में “चाउज्जाम धम्मं” अहिंसा—सत्य—अस्तेय, एवं—अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्मका उपदेय दिया. “तए ण से पएसी राया धम्म सोच्चा

परित्याग करवे, २, अचित्त द्रव्येनो परित्याग नहि करवे, ३ अेक शाटिका उत्तरासङ्ग करवे, ४ वगर सीधेला वस्त्रोथो उत्तरासङ्ग करवे जेतानी साथे ७ हाथ जोडी लेवा अने ५, मननी अेकग्रता करवी ॥ सू १५७ ॥

सुत्रार्थ—“तए णं केसीकुमारसमणे इत्यादि”

मूलार्थ—“तए ण” त्थार पछी “केसी कुमारसमणे” केशी कुमार श्रमणे “पएसिस्स रण्णो सूरिकंतप्प मुहाण देवीण तीसेय महइ महालयए परिसाए” प्रदेशी राजनी साथे तेभज तेनी स्वर्कान्ता वगेरे प्रमुख राक्षीओनी साथे ते विशाल परिषदाभा “चाउज्जाम धम्म” अहिंसा, सत्य, अस्तेय अने अपरिग्रहइय चातुर्याम धर्मने उपदेश आथी. “तए णं से पएसी राया धम्मं सोच्चा निसम्म

टीका—“तए णं केशिकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशिकुमार-
श्रमणः प्रदेशिनो राजः सूर्यकान्ता प्रमुग्वानां देवीनां तस्यां तत्र स्थितायां च
महाऽतिमहालयायाम् अतिवृहत्याम्, परिपदि चातुर्यामम्—अहिंसा-सत्या ऽमृत्येया-
ऽपरिग्रहैर्विमक्तचतुर्मुहाव्रतरूपं धर्मं परिकथयति—प्ररूपयति । उपलक्षणाद् द्वादश-
विधं गृह्णधर्मं परिकथयति ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मम्-अनगारागाग्ध्रमं श्रुत्वा
सामान्तः श्रवणगोचरं कृत्वा निश्चिन्ध-विशेषतो हृद्यवधार्य उत्थया-उत्थान-
प्रयासेन उचिष्टति, उत्थाय केशिकुमारश्रमणं वन्दते—स्तौति, नमस्यति-नम-
स्करोति, वन्दित्वा नमस्यित्वा च यत्रैव श्वेताविका नगरी तत्रैव गमनाय
पाधारयत्—निश्चतवान् । ॥ स. १५८ ॥

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिराय एवं वयासी—मा
णं तुमं पएसी ! पुड्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवि-
ज्जासि, जहा से वणसंढेइ वा णट्टसालाइ वा इक्खुवाडएइ वा
खलवाडएइ वा । कइं णं भंते । वणसंढे पुड्वि रमणिज्जे भवि-
त्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ ? पएसी । जहा णं वणसंढे पत्तिए

निसम्म उट्टाए उट्टेइ—” इसके बाद प्रदेशी राजा धर्म सुन कर और उसे हृदय में
धारणकर अपने आप वहां से उठा—“केसीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ—” उठकर
उसने केशीकुमार श्रमण की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया. “जेणेव सेयंविद्या
नयरी तेणेव पहारेत्य गमणाए—” वन्दना-नमस्कार कर फिर वह अपनी नगरी
की ओर चलदिया । टीकार्थ—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्म के उपदेश
और—साथ-साथ १२ प्रकाररूप गृहस्थ धर्म का भी उपदेश दिया. ऐसा कथन
उपलक्षण से जान लेना चाहिये ॥ स. १५८ ॥

उट्टाए उट्टेइ” त्थार पछी प्रदेशी राजा धर्म सावणानि अने तेने हृदयमा धारण
करीने पोतानी जेणे अ त्यांथी उठो थयो “केसीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ
उठो थधने तेजे केशी कुमारश्रमणुनी वदना करी तेभने नमस्कार कया “जेणेव
सेयंविद्या नयरी तेत्रैव पहारेत्य गमणाए” वदना तेभअ नमस्कार करीने पछी
ते पोतानी नगरी तरइ रवाना थध गये

टीकार्थ—स्पष्ट छेकेशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्मने उपदेश अने तेनी साथे
साथे १२ प्रकाररूप गृहस्थधर्मने पञ्च-उपदेश आये उठो, जेवु कथन उपलक्षणी
वाणी वेवु जेधजे. ॥ स. १५८ ॥

पुष्पिष्ण फलिष्ण हरिष्ण हरियगरेरिज्जमाणे सिरीष्ण अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ, तथा णं वणसंढे रमणिज्जे भवइ, जया णं वणसंढे नो पत्तिष्ण नो पुष्पिष्ण नो फलिष्ण नो हरिष्ण नो हरियगरेरिज्जमाणे णो सिरीष्ण अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ जया णं जुन्ने झ्ण्डे परिसडिय-पङ्कुपत्ते सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ तथा णं वणसंढे अर-मणिज्जे भवइ १। जया णं णट्टसाला वि गिज्जइ वाइज्जइ नच्चि-ज्जइ हांसज्जइ रमिज्जइ तथा णं णट्टसाला रमणिज्जा भवइ, जया णं नट्टसाला णो गिज्जइ जाव णो रमिज्जइ, तथा णं णट्टसाला अरमणि-ज्जा भवइ २। जया णं इक्खुवाडे छिज्जइ भिज्जइ पीलिज्जइ खज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तथा णं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं इक्खु-वाडे णो छिज्जइ जाव तथा इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ३, जया णं खलवाडे उच्छुब्भइ मलिज्जइ खज्जइ दिज्जइ तथा णं खलवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं खलवाडे नो इच्छुब्भइ जाव अरमणिज्जे भवइ ४। से तेण्ह्णं पएसी! एवं वुच्चइ मा णं तुम पएसी! पुण्णिव रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवित्तासि जहा वणसंढेइ वा जाव खलवाडेइ वा ॥ सू० १५९ ॥

छाया-ततः खलु केशिकुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-मा खलु त्वं प्रदेशिन्! पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चाद् अरमणीयो भवेः, यथा स वनषण्ड इति

“तए णं केसीकुमारसमणे-” इत्यादि-॥ सू. १५९ ॥

मूलार्थ-“तए णं-” इसके बाद “केसी कुमारसमणे-” केशी कुमारश्रमणने पएसी रायं एवं वधासी-” प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-“मा ण तुमं पएसी ?

सुत्रार्थ-“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि ॥ सू. १५९ ॥

भूवार्थ-“तए णं” त्थार पछी “केसीकुमारसमणे” देशी कुमार श्रमणे “पएसी रायं एवं वधासी” प्रदेशी राजाने आ प्रभावे कथं-“मा ण तुमं पएसी ! पुण्णिव

वा नाट्यशाला इति वा इक्षुवाटकम् इति वा खलवाटकम् इति वा कथं खलु मदन्द ! वनपण्डः पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चाद् अरमणीयो भवति ? । प्रदेशिन् ! यथा खलु वनपण्डः । पत्रितः पुष्पितः फलितः हरितः हरितकराराज्यमानः श्रिया अतीव उपशोभमानः तिष्ठति, तदा खलु वनपण्डो रमणीयो भवति, यदा खलु

पुत्रिं रमणीयं भवित्ता पच्छा-अरमणिज्जे भविज्जासि—” हे प्रदेशिन्—! तुम पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय मत बनना. अर्थात्—धार्मिक होकर अधार्मिक मत बन जाना “जहा से वणसंडेइवा-णट्टसालाइवा-इक्खुवाडएइवा-खलवाडएइवा—” जैसे पूर्व में रमणीय होकर वनपण्ड अरमणीय बन जाता है, अथवा नाट्यशाला, या इक्षु पीढन स्थान या—खलवाटक पूर्व में रमणीय होकर अरमणीय बनजाते हैं. अब प्रदेशी पूछता है—“कहं णं भंते ? वणसंडे पुत्रिं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ—” हे भदन्त ! वनपण्ड पूर्व में रमणीय होकर बाद में अरमणीय किस प्रकार से हो जाता है—३ “उत्तर में प्रभु कहते हैं—“पएसी जहा णं वणसंडे पत्तिए-पुष्फिए-फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अईव उवसोमेमाणे—तथाणं वणसंडे रमणिज्जे भवइ—” हैं प्रदेशिन् ? वनपण्ड जब पत्रां से युक्त होता है—पुष्प सम्पन्न होता है—फलित फलों से सहित होता है, हरियाली से युक्त होता है. हरे हरे पत्ते आदि से अतिशय सुहावना होता है तब वनपण्ड अपनी शोभासे सुशोभित होता हुआ रमणीय होता है,

रमणीय भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि” हे प्रदेशिन् ! तबे पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय बनशे नहि, अेटवे के धार्मिक थधने अधार्मिक बनशे नहि, “जहा से वणसंडे वा णट्टसरलाइवा इक्खुवाडएइवा खल गडइवा” नेम पड़ेला रमणीय थधने वनपंड पछी अरमणीय थध लय छे अथवा नाट्यशाला के इक्षु-पीढनस्थान के इक्षुनाटक पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थध लय छे. इवे प्रदेशी प्रश्न करे छे “कहणं भंते ! वणसंडे पुत्रिं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ” हे भदंत ! वनपंड पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय कथं रीते थध लय छे उ, उत्तरमा कहे छे “पएसी जहाणं वणसंडे पत्तिए पुष्फिए फलिए हरिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अईव उवसोमेमाणे तथाणं वणसंडे रमणिज्जे भवइ” हे प्रदेशिन् वनपंड न्यारे पत्रेथी युक्त होय छे, पुष्प सम्पन्न होय छे, कृष्ण युक्त होय छे. दृशतिमाथी युक्त होय छे तेमज्ज वीवा पाद-अण्णे वगेरथी आ अतिशय सोहाभण्णे होय छे, त्यारे ते वनपंड पोतानी शोभाथी सुशोभित थतो रमणीय होय छे. अेटवे के आ प्रमाणे वनपंड रमणीय कहेवाय छे.

वनषण्डा नो पत्रितो नो पुष्पितो नो फलितो नो हरितः नो हरितः पराराज्यमाना नो त्रिया अतीव उपशोभमानः तिष्ठति, यदा खलु जीर्णः शन्नः परिशदित पाण्डुपत्रः शुष्कवृक्ष इव म्लायन तिष्ठति तदा खलु वनषण्डा नो खलु रमणीयो भवति ।

यदा खलु नाट्यशालाऽपि गीयते वाद्यते नर्त्यते हस्यते रम्यते तदा खलु नाट्यशाला रमणीया भवति, यदा खलु नाट्यशाला नो गीयते वाद्यत् नो रम्यते तदा खलु नाट्यशाला अरमणीया भवति ।

अर्थात्—इस प्रकार से वनपण्ड रमणीय कहा जाता है. जयागं वणसंडे नो पत्तिए—नो पुष्पिए—नो फलिए नो हरिए—नो हरियगरेरिज्जमाणे, णा सिरीए अईव उव सोममाणे चिट्ठइ—परन्तु—जब वही वनपण्ड पत्रित (पत्रवाला) नहीं रहता है. पुष्पित (पुष्पवाला) नहीं रहता है—फलित नहीं रहता है—हरा नहीं रहता है, एवं—हरे २ पत्ता आदिसे अतिशय सुहावना नहीं रहता है, तब अपनी शोभा से रहित हो जाता है, तथा—“जयाणं जुन्ने झडे पडिसडियपंडुपत्ते सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ—” जब वही वन जीर्ण पत्रादिकों से रहित हो जाता है, पत्ते आदि सब जब झर जाते हैं, विकृत पाण्डुवर्णवाले पत्र जब उसमें हो जाते हैं, तथा—शुष्क वृक्ष की तरह जब वह म्लान हो जाता है. “तयाण वणसंडे अरमणिज्जे भवई—” तब वह वनपण्ड अरमणीय बन जाता है—? “जयाणं णडुसाला विगिज्जइ—वाइज्जइ—नच्चिज्जइ—हसिज्जइ—रमिज्जइ—तयाणं णडुसाला रमणिज्जा भवइ—” इसी तरहसे—हे प्रदेशिन्—? जब तक नाट्य शाला गानयुक्त होती रहती है, वादित्रों की ध्वनि से वाचालित होती है,

“जयाणं वणसंडे नो पत्तिए—नो पुष्पिए—नो फलिए नो हरिए—नो हरियगरेरिज्जमाणे, णो सिरीए अईव उवसोममाणे चिट्ठइ” पण्यु तेव वनषण्डं अथारे पत्रित रहतो नथी, पुष्पित रहतो नथी, इक्षित रहतो नथी, वीक्षी रहतो नथी अने वीक्षा वीक्षा पाण्डुपत्रो वगेरेथी अतिशय शोभायमान रहतो नथी त्यारे ते पोतानी शोभाथी रहित थं अथ छे तथा “जयाणं जुन्ने झडे पडिसडियपंडुपत्त सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ” अथारे ते वन लुब्धुपत्र इडोथो युक्त थं अथ छे, पाण्डुपत्रो वगेरे अथा अरी पडे पडे छे, तेमा पाण्डुपत्रो विकृत तेमव पाण्डुवर्णवाणा थं अथ छे तेमव शुष्क वृक्षनी जेभ अथारे ते म्लान थं अथ छे “तयाण वणसंडे अरमणिज्जे भवई” त्यारे ते वनषण्डं अरमणीय थं अथ छे. “जयाणं णडुसाला विगिज्जइ वाइज्जइ नच्चिज्जइ हसिज्जइ रमिज्जइ तयाणं णडुसाला रमणिज्जा भवई” आ “भाष्ये छे प्रदेशिन्, अथा नाट्यशालाभा सगीत आद्यत्” रहे छे, तेमा वादित्रो वागता रहे छे, तेमा नाथ थत्त रहे छे, पात्रोना हास्थथा अथा सुधी ते सुभासतथती रहे छे अने विावध

यदा खलु इक्षुवाटकं छिद्यते मिद्यते पीडयते स्वाद्यसे पीयते दीयते तदा खलु इक्षुवाटः रमणीयं भवति, यदा खलु इक्षुवाटकं नो छिद्यते यावत् तदा इक्षुवाटकम् अग्रणीयं भवति ।

यदा खलु खलवाटःम् अवक्षिप्यते मद्यते उद्गायते स्वाद्यते दीयते तदा खलु खलवाटकं रमणीयं भवति तत् तेनार्थेन प्रदेगिन ! एवमुच्यते मा खलु त्व

उसमें नाच होता रहता है. पात्रों की हस्सी से जत्र नम वह खिल खिलती रहती है, एवं विविध प्रकार की क्रीडाओं की क्रीडाम्बला बनी रहती है. तब तक वह नाट्यशाला सुहावनी लगती है. "जयाणं णट्टसाला णा गिज्जइ, जाव णो रमिज्जइ तथाणं णट्टसाला अर-गिज्जा भवइ-२" और-जत्र वह नाट्य-शाला गीतों से रहित हो जाती है, वादित्तों की तुणुल ध्वनि से विहीन हो जाती है, यावत्-विविध प्रकार की क्रीडाओं से वह ग्रन्थ हो जाती है, तब वही नाट्यशाला अरमणीक हो जाती है-२ । "जयाणं इक्खुवाडे छिज्जइ-मिज्जइ-पीलिज्जइ-खज्जइ-पिज्जइ-दिज्जइ तथाणं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जयाणं इक्खुवाडे णो-छिज्जइ-जाव तथा इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ-३' इसी तरह जब त. हे प्रदेगिन् ? इक्षु-सेलडी क्षेत्रमें इक्षु कटते रहते हैं पत्ते आदि उनसे दूर किये जाते रहते हैं उन्हें यन्त्रद्वारा पीडित कर उनका रस निकाला जाता रहता है बना हुआ गुड वहां चखा जाता रहता है लोग वहां निकाले हुये रस पीते रहते हैं, तथा-मिलने जुलने वालों को इक्षु दिया जाता रहता है. तब तक तो-वह इक्षुवाट रमणीय बना रहता है और जत्र तक इक्षु-प्रकारनी क्रीडाओंनी ते क्रीडा स्थली रहे छे. त्या सुधी ते नाट्यशाणा सोहाभणी लागे छे "जयाणं णट्टसाला णो गिज्जइ, जाव णो रमिज्जइ तथाणं णट्टसाला अरमणि-ज्जा भवइ २" अने ज्यारे नाट्यशाणा गीतरङ्गीत थध जाय छे, वादित्तोंनी तुणुल तुणुल ध्वनि रहित थध जाय छे यावत् विविध प्रकारनी क्रीडाओंथी शून्य थध जाय छे, त्यारे ते न नाट्यशाणा अरमणीक थध जाय छे २ "जयाणं इक्खुवाडे छि-ज्जइ मिज्जइ, पीलिज्जइ खज्जइ पिज्जइ, दिज्जइ, तथाणं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जयाणं इक्खुवाडे णो छिज्जइ जाव तथा इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ३" आ प्रभावे हे प्रदेगिन् ! ज्या सुधी इक्षु शेरडीना प्पेतरमा शेरडी कथाती रहे छे, पाट्ट-डाओ वगेरेनी साइसुई थती रहे छे, यत्रमा नाथीने तेमाथी रस नीकणतो रहे छे, तैयार थथेल गेण त्या बोडो वडे थथातो रहे छे, त्याथी पसार थता बोडो शेरडी-माथी नीकणतो रस पीता रहे छे, तथा भणवा भाटे आवनाराओने शेरडी थथाती रहे छे त्यासुधी तो ते इक्षुवाट रमणीय रहे छे अने ज्यारे ते इक्षुवाटयां पुरोक्त

પ્રદેશિન્ ! પૂર્વં રમણીયો ભૂત્વા પશ્ચાદ્ અરમણીયી ભવેઃ યથા વનપ્થઃ ઇતિ વા
યાવત્ સ્વલવાટમ્ ઇતિ વા ॥મ્. ૧૫૯ ॥

ટીકા—“તદ્ ગ્ ગ ક્વેસી કુમારસમણે” ઇત્યાદિ—તતઃ સ્વલુ ક્વેસી કુમારશ્રમણઃ
પ્રદેશિરાતમ્ એવમવાદીત—મા સ્વલુ પ્રદેશિન્ ! ત્વ પૂર્વમ્—આદૌ રમણીયઃ—ધાર્મિકો
ભૂત્વા પશ્ચાદ્ અરમણીયઃ—અધાર્મિકો મા ભવેઃ, યથા—એવ પ્રકારેણ વન-
પ્થઃ ઇતિ વા નાટ્યશાલા—નાટ્યમવનમ્ ઇતિ વા ઇન્દુવાટકમ્—ઇન્દુષીલનસ્થાનમ્

વાટમ્ એ પૂર્વોક્ત સર્વ કામ વન્દ કર દિયે જાતે છે, —અર્થાત—ઇન્ કાર્યોં સે
વહ રહિત વન જાતા છે. તવ વહી ઇન્દુવાટ અરમણીય લગને લગતા છે “જયાણં
સ્વલવાઢે ઉચ્ચુબ્મહ—મલિજ્જહ ઉઙ્ઙિજ્જહ સ્વજ્જહ-દિજ્જહ, તયાગ સ્વલાઢે રમણિજ્જે
મવહ, જયાણં સ્વલવાઢે ણો ઉચ્ચુબ્મહ, જાવ—અરમણિજ્જે મવહ ધ’ ઇસી પ્રકાર સે
હે પ્રદેશિન્—? સ્વલિહાન જવતક ધાન્ય કે ઢેર લગે રહતે છે. દાય કણ મર્દન
હોતી રહતી છે, ઉઢાવની હોતી રહતી છે, વહીં પર ઉસકી સ્ધાર્થ સ્ધક કે
નિમિત્ત લાયા હુવા મોજન ઓયા જા ા રહ ા છે. દૂસરેં કી રહીં પર જવ તક
અનાજ વગેં હ દિયા જા ા રહતા છે. તવતક તો વહ સ્વલિહાન રમણીય લગતા
રહતા છે, ઓર—જવ યહ સર્વ કામ હોના ઉમમ્ વન્દ હો જાતા છે તવ વહ
અરમણીય લગને લગતા છે—ધ ‘સે તેગ્ઢેણં પરસી—? એવં વુચ્ચહ—મા ણં તુમં
પર—સી? પુલ્લિ રમણિજ્જે મવિત્તા પચ્છા—અરમણિજ્જે મવિજ્જાસિ જહા વગસંઢે વા
જાવ સ્વલવાઢેહ વા—” ઇસી લિયે હે પ્રદેશિન્—? મૈને પેસા કહા છે કિ—તુમ
પહેલે રમણીય હોકર અરમણીય મત વન જાવો, જૈસે—કિ વનપ્થ યાવત્ સ્વલ-
વાટ હો જતે છે—

અધી (ક્યાઓ) ય ધ ય ધ નય છે ત્યારે તે ઇન્દુવાટ અરમણીય લાગવા માટે છે.
“જયાણં સ્વલવાઢે ઉચ્ચુબ્મહ—મલિજ્જહ, ઉઙ્ઙિજ્જહ, સ્વજ્જહ, દિજ્જહ, તયાગ સ્વલ-
વાઢે રમણિજ્જે મવહ, જયાણં સ્વલવાઢે ણો ઉચ્ચુબ્મહ, જાવ—અરમણિજ્જે મવહ ધ’
આ પ્રમાણે હે પ્રદેશિન્ ! ધનામા ન્યા સુધી ધાન્યાના ઢગલાઓ રહે છે, કષ્ટસલાં
પ્રદીને અનાજ કઢાતુ રહે છે અનાજ ઉપસાતુ રહે છે, ત્યાના રખેવાળ માટે ત્યા
પહેલાયારેલુ લોજન જમાતુ રહે છે, ધીનઓને ત્યા ન્યા લગી અનાજ વગેરે અપાતા
રહે છે ત્યા સુધી તે યજ્ઞ રમણીય લાગે છે અને ત્યારે આ યજ્ઞ કામ ય ધ ય ધ
નય છે, ત્યારે તે અરમણીય લાગવા માટે છે ધ “સે તેગ્ઢેણં પરસી ! એવં
વુચ્ચહ—મા ણં તુમં પરસી ! પુલ્લિ રમણિજ્જે મવિત્તા પચ્છા—અરમણિજ્જે મવિજ્જાસિ
જહા વગસંઢેહ વા જાવ સ્વલવાઢેહ વા” એટલા માટે હે પ્રદેશિન્ ! નેં આમ કહ્યું
છે કે તમે પહેલા રમણીય થઈને પછી અરમણીય બનશો નહિ. જેવી રીતે વનપ ડ યાવત
યજ્ઞ થઈ નય છે.

इति वा खलवाटकम् इति वा पूर्वं रमणीयं भूत्वा पश्चादरमणीयं भवतीति ! तत्र प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! कथं—क्रेन प्रकारेण वनपण्डः पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भवति ? । एवं नाटयशालेक्षुवाट—खलवाटविषयेऽपि प्रत्यये जना कर्तव्या । तत्र क्रमेण तेषां रमणीयत्वारमणीयत्वे प्रदर्शयितुं केशी प्राह—‘पएमी’ इत्यादि—हे प्रदेशिन् ! यथा वनपण्डः पत्रितः—पत्रसम्पन्नः, पुष्पितः—पुष्पसम्पन्नः फलितः—फलसम्पन्नः, हरितः—हरितत्वसम्पन्नः हरितकरागज्यमानः—हरितवर्णं पत्रपल्लवादिमिरतिशयेन शोभमानः, अत एव श्रिया—शोभया, अतीव—अत्यन्तम् उपशोभमानः—शोभां प्राप्नुवन् यदा तिष्ठति—वर्तते, तदा—तस्मिन् काले च स वनपण्डो नो पत्रितः नो पुष्पितः नो फलितः नो हरितः नो हरितक । ज्यमानः अत एव नो श्रियाऽतीवोपशोभमानो भवति, यदा च जीर्णः—जीर्णपत्र पल्लवादियुक्तः शन्नः—प्रपतितपत्रादिकः, अत्र शब्दो झडादेशः, परिशतितपाण्डुपत्रः—विकृतपाण्डुवर्णपत्रयुक्तः शुष्कवृक्ष इव म्लायन्—म्लानतां गच्छन् सम तिष्ठते, तदा खलु वनपण्डो नो रमणीयो भवति ? । प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! नाटयशाला कथं रमणीया भूत्वा चारमणीया भवति ? केशी प्राह—हे प्रदेशिन् ! यदा खलु नाटयशालाऽपि गीयते—गानयुक्ता भवति वाद्यते—वाद्यवादनयुक्ता भवति नृत्यते—नृत्ययुक्ता भवति, हस्यते—हास्ययुक्ता भवति, रम्यते—रङ्गीडनयुक्ता भवति, तदा खलु सा रमणीया भवति, यदा खलु नो गीयते—यावत् नो वाद्यते ना नर्त्यते नो हस्यते नो रम्यते, तदा खलु सा अरमणीया भवति २ ।

अथेक्षुवाटविषयकप्रश्ने केशी प्राह—हे प्रदेशिन् ! यदा खलु इक्षुवाटम् इक्षुक्षेत्रे इक्षुः छिद्यते—द्विधा क्रियते, मिद्यते—विदार्यते, पीड्यते—यन्त्रेण रसो निःसार्यते, खाद्यते—गुहादिकम्, पीयते—रसः, दीयते—इक्षुवादिकं, तदा खलु इक्षुवाटं रमणीयं भवति । यदा खलु इक्षुवाटं नो छिद्यते यावत् नो पीड्यते नो खाद्यते नो पीयते नो दीयते, तदा इक्षुवाटम् अरमणीयं भवति । ३ ।

टीकार्थ—स्पष्ट है, “झडे” यहाँपर शब्द के स्थान में झड आदेश हुआ है. संस्कृत में इस की छाया “शन्नः” ऐसी होती है । केशीने—इस सूत्र द्वारा प्रदेशी राजा को पहिले रमणीय होकर अरमणीय बन जाने वाले वनपण्ड आदि-चार को दृष्टांतरूप में रखकर यह समझाया है कि—तुम ऐसे मत बन जाना. ॥१५९॥

टीकार्थ—स्पष्ट है ‘झड’ अर्थात् ‘शब्द’ना स्थाने ‘झड’ आदेश थये छ संस्कृत भा ज्येनी छाया ‘शन्नः’ होय छ. केशीजे आ सूत्र वडे प्रदेशी राजाने पढेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थधे जनारा वनपण्ड वगेरेने दृष्टात रूपभा आपीने आ समझववाभा आयु छ के तजे जेवा थशे नहि. ॥सू. १५९॥

अथ खलवाटविषयप्रश्ने केशी प्राह—हे प्रदेशिन ! यदा खलु खलवाटं सस्यकणमर्दनपरिंकरणस्थानम् तत्र धान्यम्—अवक्षिप्यते—पुञ्जीक्रियते, मर्द्यते—वली-वर्द्दीदिमिः, उद्गाय्यते—पद्मे नू ते, खाद्यते, दीयते तदा खलु खलवाटं रमणीयं भवति । यदा खलु नो अवक्षिप्यते यावत् नो मर्द्यते नो उद्गाय्यते, नो खाद्यते नो दीयते तदा अरमणीयं भवति ४ । तत् हे प्रदेशिन ! तेन—वनषण्डादि दृष्टान्तरूपेण अर्थेन एवम् उच्यते—कथ्यते—यत् हे प्रदेशिन ! त्वं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो मा भवेः, यथा वनषण्ड इति वा यावत्—नाट शालेति वा इक्षुवाटम् इति वा खलवाटम् इति वा ॥घृ. १५९॥

मूलम्—तए णं पएसी केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—णो खलु भंते । अहं पुठ्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणीज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेइ वा, अहं सेयविया नयरीपमुक्खाइं सत्त गामसहस्ताइं चत्तारि भागे करिस्सामि, एगं भागं वलवाहणस्स दलइस्सामि, एग भागं कुट्टोगारे लुभिस्सामि, एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महइमहालयं कूडागारसालं करिस्सामि, तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभइभत्त-वेयणेहिं विउलं असणं पाणं खाइमं उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहणभिव्खुयागं पंथियवहियाणं परिभाएमाणे बहूहिं सीलव्वयगुण-व्वयवेरमणव्वयपच्चक्खाणपोसहोव्वामेहिं अप्पाणं भावेमाणे वि-हरिस्सामित्ति कट्टुं जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए । ॥ सू० १६० ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—नो खलु मदन्त ! अहं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भविष्यामि, [यथा वनषण्ड इति वा यावत् खलवाटमिति वा, अहं खलु श्वेतविकानगरी प्रमुस्त्रानि सप्त ग्रामसहस्राणि चतुरो भागान् करिष्यामि, एकं भागं वलवाहनस्य दास्यामि, एकं भागं कोष्ठागारे क्षेप्यामि, एकं भागमन्तःपुराय दास्यामि, एकेन भागेन महा-उत्तिमहालयां कूटाऽऽकारशालां करिष्यामि, तत्र खलु बहुमिः पुरुषैः दत्तमृतिभक्त-

“तए ण पएसी के-सि” इत्यादि ॥१६० सूत्र॥

सूत्रार्थ—‘तएणं’ इसके बाद ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने—“केसिं कुमाग्गसमणं एवं वयासी—” केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—“णो खलु भंते? अहं पुच्चि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव-खलवाडेट वा—” हे भदन्त! मैं पहले रमणीय होकर अब वनपण्ड, अथवा यावत् खलवाट सेलडीका खेत की तरह अरमणीय नहीं बनेंगा. “अहं सेयविया नयरी पमुक्खाइ सत्त गामसहस्साइं चत्तारिभागे करिस्सामि—” मैं श्वेताविका नगरी प्रमुख सातहजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करूंगा. “एकं भागं वलवाहणस्स दल-इस्सामि—” इन में से एक भाग तो बल-और वाहन के लिये दूंगा. “एगे भागे क्खुट्ठागारे छुमिस्सामि—” दूसरा भाग क्खुट्ठागार में प्रजापालन के लिये रखूंगा. “एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि—” एक भाग को तीसरेको मैं अन्तःपुर रक्षा के लिये दूंगा. “एगेणं-भागेणं महइमहालयं क्खुट्ठागारसालं करि-स्सामि—” एक भाग से चौथे से मैं एक बहुत ही विशाल क्खुट्ठागारशाला बनवाऊंगा —“तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्मइमत्तचेयणेहिं विउल असण पाणं स्वाइमं साइमं उवक्खवावेत्ता बहूणं समण-मारहण-भिकखुयाणं पंथिय पहियाण परिमाएमाणे—” उसमें जनेक पुरुषों को सवेतनिक रूपमें रखूंगा.

“तए ण पएसी केसिं ” इत्यादि ॥१६०॥

सूत्रार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने ‘केसिं कुमाग्गसमणं एवं वयासी’ देशी कुमार श्रमणने आ प्रभाषे क्खुं “णो खलु भंते! अहं पुच्चि रमणिज्ज भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेट वा” हे भदन्त! हुं पछेला रमणीय थधने हुवे वनपण्ड के यावत् भणानी जेभ अरमणीय थधथ नहि “अहं सेयविया नयरी पमुक्खाइं सत्तगामसह-स्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि” हुं श्वेतविका नगरी प्रमुख सात हजार गाभोने त्थार भागोभा विभाजित करीथ, “एकं भागं वलवाहणस्स दलइस्सामि” आभाथी जेक भाग बल (सेना) अने वाहन माटे आपीथ. “एगे भागे क्खुट्ठागारे छुमिस्सामि” धीजे भाग क्खुट्ठागारभा प्रज्ज पालन माटे लुट्ठो रापीथ. “एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि” त्रीज्ज जेक भागने हुं अन्तःपुरनी रक्षा माटे आपीथ. “एगेणं भागेणं महइमहालयं क्खुट्ठागारसालं करिस्सामि” जेथा जेक भागथी हुं जेक विशाल क्खुट्ठागार थाजा भनावडावीथ “तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्मइमत्त-चेयणेहिं विउलं असणं पाणं स्वाइमं साइमं उवक्खवावेत्ता बहूणं समणमारहण-भिकखुयाणं पंथियपहियाणं परिमाएमाणे” तेभा धरुवा पुरोधेनेहुं पगार आपीने नीभीथ. तेज्जो त्थान् जभसे. ते भाषुसे पासेथी हुं विपुल मात्राभां अशन-पान-

वेतनैः विपुलम् अशनं पान खादिमं स्वादिमम् उपस्कार्य बहुम्यः श्रमण ब्राह्मण-
मिक्षुकैर्म्यः पथिकप्राघुणैर्म्यः परिभाजयन् बहुमिः शीलव्रतगुणव्रतविरमणव्रत-
प्रत्याख्यानपौषधोपवासैः आत्मानं भावयमानो विहरिष्यामि, इति कृत्वा यामेव
दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ॥सू. १६०॥

टीका—“तए णं पएसी” इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं
कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भद्रन्त ! अहं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो
नो भविष्यामि यथा—येन प्रकारेण वनषण्ड इति वा यावत् नाट्यशालेतित्वा इक्षु-
वाटमिति वा खलवाटमिति वा, वनषण्डादिवत् पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादर-
मणीयो नो भविष्यामीति, तदेव स्पष्टयति अहं खलु श्वेतां विकानगरी प्रमुखानि
सप्त ग्रामसहस्राणि—सप्त सहस्रपरिमितग्रामान् चतुर्गे भागान्—चतुर्धा विभक्तान्

वही वे भोजन करेंगे. उनसे मैं विपुल मात्रा में अशन-पान-खादिम स्वादिम रूप चारों
प्रकारके आहार को तैयार कराऊंगा फिर—अनेक श्रमण माहण मिक्षुकों के लिये.
तथा पथिकरूप प्राघुर्णिकों के (अतिथिविशेष) लिये उस आहार को देता
हुवा, एवं—‘बहूहिं शीलव्ययगुणव्यवेरमणव्ययपच्चत्रखाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं
भावेमाणे विहरिस्सामि त्ति कड्डुं जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पड्डिगए—’
अनेकशीलव्रतों से गुणव्रतों से प्रत्याख्यान और पौषधोपवासों से आत्मा को मैं वासित
करता हूँ. इस प्रकार कह कर वह प्रदेशी राजा जिस दिशा से आया था—
उसी दिशा को चला गया.

टीकार्थ—स्पष्ट है प्रदेशी राजाने जो इस सूत्र द्वारा अपना अभिप्राय
प्रकटित किया है वह मैं वनषण्डादि कों की तरह पूर्वमें रमणीय होकर अरम-
णीय नहीं होने की पुष्टि के निमित्त प्रगट किया है इसी बात की पुष्टि अपने
सात हजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करने की है. इसमें एक—२

आदिम—स्वादीभइय आरे प्रकारना आहारो तैयार करावडावीश पछी धण्डा श्रमण
माहण मिक्षुको भाटे तेमअ पथिकइय प्राघुर्णिकोने ते आहार आपतो एवं बहूहिं
शीलव्ययगुणव्यवेरमणव्ययपच्चत्रखाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे
विहरिस्सामि त्ति कड्डुं जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पड्डिगए” धण्डा शील-
व्रतोथी शुण्डव्रतोथी प्रत्याख्यान अने पौषधोपवासोथी आत्माने हुं वासित करतो
रहोथ आ प्रमाणे कड्डोने प्रदेशी राजा ने दिशा तरइथी अ न्यो हुतो ते दिशा-
अथी अ नतो रहो

टीकार्थ—स्पष्ट अ छे प्रदेशी राजाअये आ सूत्रवडे ने पोतानो अभिप्राय प्रकट
कथो छे ते वनषण्ड अने पड्डेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थध नथ छे तेम
ते थशे नहिं अ वातने स्पष्ट कश्वाभा आवी छे पोताना सात हुण्डर गाभोने आर
भागोभा ने राजाअये विभाजित कया छे ते पण्ड अ वातने अ पुष्ट करे छे अभा

करिष्यामि, तत्र भागान् इत्यत्र 'भज्यन्त इति भागाः' इति कर्मव्युत्पत्तिर्वोघ्या, भावव्युत्पत्त्या तु कर्मणि पठ्यापत्तिः स्यात् । तेषु चतुर्षु भागेषु एकं भागं पादोनसहस्रद्वयरूपं बलवाहनाय-तत्र बलाय-सैन्याय-वाहनाय-हस्त्यश्वाद्यर्थं दास्यामि १, एकं-द्वितीयं भागं कोष्ठागारे-प्रजापालनाय कोशे क्षेप्यामि २, मूले क्षिपे ऋमादेशः, एकं-तृतीयं भागम् अन्तः पुराय-अन्तःपुररक्षणाय दास्यामि ३, चतुर्थेन भागेन महातिमहालयाम्-अतिमहती-परमविशालाम्, कूटाऽऽकारशालां करिष्यामि, तत्र कूटाऽऽकारशालायां बहुभिः-बहुसंख्यैः पुरुषैः, कीदृशैः ? दत्त-भृतिमक्तवेतनैः-दत्ताः भृतयो-जीविकाः, भक्तानि-आहाराः, वेतनानि-मासिक वृत्तयश्च येम्यस्ते दत्तभृतिमक्तवेतनास्तैः पुरुषैरिति सम्बन्धः, त्रिपुलं-प्रचुरम् अशनं पानं खादिभं स्वादिभम् इति चतुर्विधाऽऽहारम् उपस्कार्य-सम्पादय बहुम्यः श्रमण-ब्राह्मणमिक्षुकेभ्यः, तथा-पथिकप्राघुणेभ्यः-पथिकरूपाः प्राघुणाः पथिकप्राघुणाः, न तु सम्बन्धमाश्रित्य प्राघुणाः, तेभ्यः, परिभाजयन्-ददत्, बहुभिः शीलव्रत-गुणव्रत-विरमणव्रत-प्रत्याख्यान पोषधोपवासैः आत्मानं भावयमानो विहरिष्यामि, इति कृत्वा-इति कथयित्वा यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः । ॥सू० १६०॥

भाग में पोते दो-दो हजार ग्राम आते हैं । सैन्यका नाम-बल, और हस्ती अश्व आदिका नाम वाहन है । प्रजाओं की अच्छी तरह से पालन हो इस अमिप्राय से उसने एक भाग कोश-मण्डार में रखदिया "छुमिस्सामि" की संस्कृत छाया "क्षेप्यामि" है क्षिप् के प्राकृत में छुमादेश हुआ है. भृति शब्द का अर्थ जीविका. भक्त शब्द का अर्थ आहार एव-वेतन शब्द का अर्थ पगार है । पथिक प्रघूर्ण से पथिकरूप से प्राघुण लिये गये हैं नकि-सम्बन्ध को आश्रित करके प्राघूर्ण लिये गये हैं ॥सू० १६०॥

दरेके दरेके विभागमा पोष्या जे-जे हजार गाम छे सैन्यतुं नाम जल अने हाथी घोडा वगेरेतु नाम वाहन छे. प्रजातुं सारी रीते पालन थध शके तेटका भाटे तेबु अेक भाग कोश-मण्डारमा भूकथे छे "छुमिस्सामि" नी संस्कृत छाया "क्षेप्यामि" छे. क्षिप् ने प्राकृतमा छुमादेश थथे छे भृति शब्दनेो अर्थ जीविका भक्त शब्दनेो अर्थ आहार अने वेतन शब्दनेो अर्थ पगार छे पथिक प्राघूर्ण- (अतिथिइप भडेमान)थी पथिकइपथी प्राघूर्ण (भडेमान) देवामा आव्या छे संभधने आश्रित करीने प्राघूर्ण देवामा आव्यां नथी. ॥सू. १६०॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया कळं जाव तेयसा जलंते सेयावि पामोक्खाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारि भाए कीरइ, एगं भागं बल-वाहणस्स दलयइ जाव कूडागारसालं करेइ, तत्थ णं बहू हिं पुरिसे हिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूणं समण० जाव परिभाएमाणे विहरइ ।

तए णं से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगयजीवा-जीवे जाव विहरइ, जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्टु च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्टा-गारं च पुर च अत्तेउरं च जणवय च अणाढायमाणे यावि विहरइ । ॥ सू० १६१ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्यं यावत् तेजसा ज्वलति श्वेतां-विकाप्रमुखानि सप्त ग्रामसहस्राणि चतुरो भागान् करोति, एकं भागं बलवाहनाय ददाति यावत् कूटाऽऽकारशालां करोति, तत्र खलु बहुभिः पुरुषैः यावत् उप-स्कार्यं बहुभ्यः श्रमण० यावत् परिमाजयन् विहरति ।

“तए ण पएसी राया—” इत्यादि ।

सूत्रार्थ—“तएणं” इसके बाद “पएसी राया कळं” प्रदेशी राजाने दूसरे ही दिन “जाव तेयसा जलंते-” यावत् तेजसे सूर्य प्रकाशित होजाने पर “सेयंविद्या पामोक्खाइ सत्तगामसहस्साइ चत्तारि भाए कीरइ—” श्वेतांविका प्रमुख सातहजार ग्रामों को चार विभागों में विभाजित कर दिया. “एगे भागे बलवाहणस्स दलयइ” इनमें एक भाग बल वाहन के लिये वितरण करदिया. “जाव-कूडागार सालं करेइ-” यावत् चतुर्भाग कूटागारशाला को बनवाने के निमित्त दे दिया. “तत्थ णं बहूहिं पुरिसे हिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूण समण० जाव परिभाए माणे विहरइ—” जब

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि

सूत्रार्थ—‘तएणं’ त्पार षाठ (पएसी राया कळं) प्रदेशी राजाने भीजा द्विसे जाव तेयसा जलं ते यावत् तेजसी न्यारे सूर्य प्रकाशित थई गये। त्पारे “सेयंविद्या पामोक्खाइं सत्तगामसहस्साइं चत्तारि भाए कीरइ” श्वेतांविका प्रमुख सात हजार गांभाने चार भागोंमा वडेयी नाथ्या “एगे भागे बलवाहण स्स दलयइ” आभा ओक भाग-बल-वाहन भाटे आंथे। “जाव कूडागारसालं करेइ” यावत् चोथो भाग कूटागारशाला बनानेवा भाटे आंथे। “तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूण समण० जाव परिभाएमाणे विहरइ”

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः अभिगत-जीवाजीवः यावद् विहरति, यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, तत्प्रभृति च खलु राज्य च राष्ट्रं च बलं च वाहन च कोशं च कोष्ठागारं च अन्तःपुरं च जनपदं च अनाद्रिमाणश्चापि विहरति । ॥सू० १६१॥

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि-ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्प यावत् एकोनपट्यधिककशततम १५९ सूत्रोक्तपाठानुसारेण सूर्ये तेजमा-दीप्त्या ज्वलति-काशमाने सति श्वेतांशविकाम्मुखानि सप्त ग्रामसद्वस्त्राणि-ग्रामाणां मत्त

कूटागारं शाला वनकरं तैयारं हो गई तव उसमें उमने अनेक पुरुषों द्वारा यावत् चारों प्रकार का अशन-आहार निष्पन्न कर कर उससे अनेक श्रमणादि जनोको प्रतिलामित करता था याने देता था “तएण से पएसी गया समणोवासए जाए अभिगत-जीवाजीवे जात्र विहरइ—” इसके बाद वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया. जीव तत्रा और-अजी। तत्त्व के स्वरूप का मलीभांति से ज्ञाता बन गया. इत्यादि. जप्पमिइ च णं पएसी गया समणोवासए जाए तप्पमियं च णं रज्जं च रट्टं च बलं च वाहणं च-कोसं च-कोष्ठागारं च-पुरं च अंतोउरं च जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ—” अब वह प्रदेशी राजा जिस दिन से श्रमणोपासक बना. उसी दिन से अपने राज्य के प्रति. राष्ट्र के प्रति बल के प्रति. वाहन के प्रति, कोष के प्रति, कोष्ठागार के प्रति अंतःपुर के प्रति और जनपद के प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लिया. इस सूत्र का टीकार्थ—स्पष्ट है. यहां यावत्पद से— “कल्लं जाव” के इस यावत् पदसे १५९ वें सूत्र है जो पाठ इसके विषय में

न्याये कूटागारशाणा तैयारं थं गं त्थारे तेमा तेष्से धष्सा पुइधो वडे थावत् थारे जातने अशन आह रणनाव १०या अने तेनाथी धष्सा श्रमणु वगेणे प्रतिवामितं कथा “तए णं से पएसी राजा समणोवास ए जाव अभिगतजीवाजीवे जाव विहरइ” त्थार पछी ते प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थं गथे. एवत्तव अने अएवत्तवना स्वइपने सारी रीते ज्ञाता थं गथे वगेर. “जप्पमिइ च णं पएसी गया समणो-वासए जाए तप्पमियं च णं रज्जं च रट्टं च, बलं च वाहणं च, कोसं च, कोष्ठागारं च, पुरं अंतोउरं च, जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ” हवे ते प्रदेशी राजाये जे द्विवसथी श्रमणोपासक थये, तेज द्विवसथी चोताना राजथ वरक, राष्ट्र वरक, सेना वरक, वाहन वरक, बडार (कोष) वरक कोष्ठागार प्रति, अंतःपुर प्रति अने जनपद प्रति उपेक्षा भाव धारण करी दीधो.

टीकार्थ-आ सूत्रनो स्पष्ट न छे. अर्था यावत् पदथी “कल्लं जाव” ना आ यावत् पदथी १५६ भा सूत्रमा जे पाठ येना विषे गृहीत थये छे तं वाक्ष्येवो.

सहस्राणि चतुरो भागान्—चतुर्धा विभक्तानि करोति, कृत्वा तेषु चतुर्षु भागेषु एकं-प्रथम भागं बलवाहनाय ददाति, द्विषष्ट्यधिकशततम-सूत्रोक्तानुसारेण कूटा-SSकारशालां करोति । तत्र खलु बहुभिः पुरुषैः यावत् उपस्कार्यं बहुभ्यः श्रमण० यावत् द्विषष्ट्यधिकैकशततमसूत्रोक्तानुसारेण श्रमणब्राह्मणभिक्षुकैभ्यः पथिक-प्राधुणेभ्यः परिभाज्यन् विहरति ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणोपासकः—श्रावको जातः कीदृशः ? इत्याह—अभिगतजीवाजीवः चतुर्दशोत्तरशततमसूत्रोक्तविशेषणविशिष्टो भूत्वा विहरति । यत्प्रभृति च—यद्दिनादारभ्य खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, तत्प्रभृति—तद्दिनादारभ्य च खलु राज्यं—राष्ट्रं, बलं, वाहनं, कोशं, कोष्ठागारम् पुरम् जनपदं च अनाद्रियमाणः—उपेक्षमाणः चापि विहरति ॥६०॥ १६१॥

मूलम्—तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झ-त्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं पएसी राया समणो-वासए जाए तप्पभिइं च ण रज्ज च रट्ट च जाव अत्ते उर च ममं च जणवयं च अणाढायमाणे विहरइ, त सेयं खलु मे पएसिरायं केणवि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा संतप्पओगेण वा विस-प्पओगेण वा उद्वेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्ज ठवित्ता सयमेव रज्ज-सिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तएत्ति कट्टे एवं सपेहेइ, संपे-हित्ता सूरियकंतं कुमारं सहावेइ सहावित्ता एव वयासी—जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्ज च जाव अंतेउर च जणवय च माणुस्सए च कामभोगे अणाढायमाणे विह-

कहा गया है वह गृहीत किया गया है “जाव कूडागारसालं—” में आगत यावत् पद से १६२ सूत्र में जो पाठ कहा गया है वह यहां गृहीत किया गया है । इसी तरह से “पुरिसेहिं जाव—” में आगत यावत् पद से भी ३६२ ये सूत्र में कथित इस विषय का पाठ ग्रहण किया गया है ॥१६१॥

‘जाव कूडागारसालं’ मा आवेल यावत् पढथी १६२ मा सूत्रमा ने पाठ छि तेहुं अहंषु करवाभा आणु छु. आ प्रभाणु “पुरिसेहिं जाव” मा आवेल यावत् पढथी १६२मा सूत्रमा कथित आ विषे ना पाठु अहंषु थयु छि. ॥१६१॥

रह त सेय खल्ल तव पुत्ता । पएसिं रायं केणइ सत्थप्पओगे ॥
 वा जाव उद्वित्ता सयमेव रज्जसिंरिं कारेमाणस्स पालेमाणस्स
 विहरित्तए । तए णं सूरियकते कुमारे सूरियकताए देवीए एव
 बुत्ते समाणे सूरियकताए देवीए एयमठ्ठं णो आढाइ णो परियाणाइ
 तुसिणीए संचिट्ठइ, तए णं तीए सूरियकताए देवीए इमेयारूवे
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—मा णं सूरियकते कुमारे पएसिस्स
 रण्णो रहस्सभेयं करिस्सइत्ति कट्ठु पएसिस्स रण्णो छिद्दाणि य
 मम्माणि य रहस्साणिय य त्रिवराणिय अंतराणि य पडिजागरमाणी
 पडिजागरमाणी विहरइ ॥ सू० १६२॥

छाया—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्याःअयमेतद्रूप आध्यात्मिकः
 यावत् समुदपद्यत—पत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातस्तत्प्रभृति
 च खलु राष्ट्रिय च राष्ट्रं च यावत् अन्तःपुरं च मां च जनपद च अनाद्रियमाणो
 विहरति, तच्छ्रेयः खलु मे प्रदेशिन राजान केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा अग्निप्रयो-

“तएणं तीसे सूरियकताए देवीए” इत्यादि ॥

मूलार्थ—‘तए णं—’ इसके बाद ‘तीसे सूरियकताए देवीए—’ उस
 सूर्यकान्ता देवी को ‘इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—’ यह इस
 प्रकार का आध्यात्मिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ—‘जप्पमिइ च ण पएसिं राया
 समणोवासए जाए—’ जिस दिन से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुवे है ‘तप्प-
 मियं च ण रज्ज च—’ उसी दिन से उन्होंने राज्य के प्रति, राष्ट्र के प्रति,
 यावत् अन्तःपुर के प्रति, तथा—मेरे प्रति, और-जनपद देश के प्रति उपेक्षा

“तएण तीसे सूरियकताए देवीए” इत्यादि ।

भूषार्थ—“तए णं” त्थार पछी “तीसे सूरियकताए देवीए” ते सूर्यकान्ता
 देवीने “इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” आ जातने आध्यात्मिक यावत्
 विचार उत्पन्न थये. “जप्पमियं च णं पएसिं राया समणोवासए जाए” जे द्विवस
 थी प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थया छे, “तप्पमियं च णं रज्जं च” ते जे द्विवसथी
 तेभण्णे राज्य प्रति, राष्ट्रना प्रति, यावत् अंतपुर प्रति तेभण्ण भारा प्रति अने
 जनपद-देशना प्रति उपेक्षा धारण करी छी छी छे “तं सेयं खलु मे पएसिं रायं

गेण वा मन्त्रप्रयोगेण वा विपप्रयोगेण वा उपद्रूत्य सूर्यकान्तं कुमारं राज्ये स्थापयित्वा स्वयमेव राज्यश्रियं कारयन्त्याः पालयन्त्या विहर्तुम्, इतिकृत्वा एव संप्रेक्षते. संप्रेक्ष्य सूर्यकान्तं कुमारं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, तत्प्रभृति च खलु राज्यं च यावत् अन्तःपुरं च खलु जनपदं च मानुष्यकांश्च काममोगान् अनाद्रियमाणो विहरति

धारणं कर रक्खा है “तं मेयं खलु मे पएसिं रायं वेणवि सत्यप्पओगेण वा—अग्गिप्पओगेण वा—मंतप्पओगेण वा—दिसप्पओरेण वा—उद्वेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता—” अतः—अब मुझे यही उचित है कि मैं प्रदेशी राजा को किसी अस्त्र के प्रयोग से अथवा—अग्नि के प्रयोग से, मारकर सूर्यकान्त पुत्र को राज्य में स्थापित करके “सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तए त्ति कहुं एवं संपेहेइ—” अपने आप स्वयं ही राज्य लक्ष्मी का भोग करती हुई, उसका पालन करती हुई, आनन्द से रहें—? इस प्रकार का उसने विचार किया—“संपेहित्ता सूरियकंतं कुमारं सदावेइ—” ऐसा विचार करके फिर उसने अपने सूर्यकान्त पुत्रको बुलाया. “सदावित्ता एव वयासी—” बुलाकर उससे ऐसा कहा—“जप्पमिइं च ण पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमिइं च णं रज्जं च जाव अंतैउरं च जणवयं च मणुस्सए च काममोगे अणाढायमाणे विहरइ—जिस दिन से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक बने है उस दिन से उन्होने राय की ओर—यावत् अन्तःपुर की ओर और जनपद की ओर, एवं—मनुष्य मव-

केण वि सत्यप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा—मंतप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा उद्वेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता” अर्थात् मार. भाटे ६वे अंके ७वियं ७ के ६ हु प्रदेशी राजाने ६७ शस्त्रना प्रयोगथी के अग्निना प्रयोगथी के मंत्रना प्रयोगथी के विषना प्रयोगथी मारी नाभीने सूर्यकान्त पुत्रने राजपालने भेसाडीने ‘सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तए त्ति कहुं एवं संपेहेइ’ योतेअ राज्य लक्ष्मीने उपभोग करीने तेतुं रक्षयु करता आनन्दपूर्वक समय पसार कर आ प्रभावे तेवे विचार कर्यो “संपेहित्ता सूरियकंतं कुमारं सदावेइ” आ नतने विचार करीने पथी तेवे योताना सूर्यकान्त पुत्रने भोलाव्यो. “सदावित्ता एवं वयासी” भोलावीने तेने आ प्रभावे कहु “जप्पमिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमिइं च णं रज्जं च जाव अंतैउरं च जणवयं च माणुस्सए च काममोगे अणाढायमाणे विहरइ” ये द्विसथी प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थया छे ते द्विसथी तेमवे राज्य तरक, यावत् अंतःपुर तरक जनपद तरक, मनुष्यसव सणधी दामभोगो तरक ध्यान आपु पंथ कथुं छे.

तच्छ्रेयः खलु तव पुत्र ! प्रदेशिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत् उप-
 ष्ट्य स्वयमेव राज्यश्रिय कारयतः पालयतो विहर्तुम् । ततः खलु सूर्यकान्तः
 कुमारः सूर्यकान्तया देव्या एवमुक्तः सन् सूर्यकान्ताया देव्या एतमर्थं नो आद्रि-
 यते नो परिजानाति तूष्णीकः संतीष्ठते । ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः
 देव्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—मा खलु सूर्यकान्तः कुमारः

सम्बन्धी कामभोग की ओर लक्ष्य देना वन्द करदिया है, अर्थात्—इन सब
 बातों को अब वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं “त सेय खलु वि
 पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता सयमेव रज्जसिंरिं
 कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्तए—” अतः—हे पुत्र—अब यही योग्य है कि
 तुम प्रदेशी राजा को किसी भी शस्त्र के प्रयोग से अथवा अग्निप्रयोग से—यावत्
 विषयके प्रयोग से मारकर स्वयं राज्यश्री का भोग करो उसका पालन करो
 ‘तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए
 एयमहं णो आढाइ, णो परियाणाइ तुसिणीए संचिद्धइ—” इस प्रकार सूर्य
 कान्ता देवी द्वारा कहे गये सूर्यकान्तकुमारने उसकी इस बात को आदर
 की दृष्टि से नहीं देखा. और—न तो उसकी उसने अनुमोदना ही की, किन्तु
 इस बात को सुनकर वह केवल चुपचाप ही रहा—“तएणं तीए सूरियकंताए
 इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—” इसके बाद उस सूर्यकान्ता देवी
 को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—“मा णं

अट्ठे के तेओ उवे आ भधी वस्तुओने आहरणी इष्टिओ जेता नथी. “तं सेयं
 खलु वि पुत्ता ? एसिं राय केणइ सन्थप्पओगेण वा जाव उद्वित्ता स-
 मेव रज्जसिंरिं कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्तए” अथी उ पुत्र ! उवे ओए
 उचित्त ओच्छाथ उ के तमे प्रदेशी राजने केअ पच्च शस्त्रना प्रयोगथी के यावत् विष
 प्रयोगथी भादी नाओ अने पोते राजबलक्ष्मीने उपबोण करे, तेणु रक्षणु करे.
 “तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवंवुत्ते समाणे सूरिय-
 कंताए देवीए एयमहं णो आढाइ, णो परियाणाइ, तुसिणीए संचिद्धइ”
 आ प्रभाणे सूर्यकान्ता देवी वडे कहेवायेअ सूर्यकान्त कुमारे तेनी वात प्रत्ये आहर
 भताओ नहि अने तेनी वातनी तेणे अनुमोदना पच्च करी नहि पच्च ते तेनी
 सामे भूगे। यधने उओ ए रथी “तए णं तीए सूरियकंताए इमेयारूवे
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” त्याए पछी ते सूर्यकान्ता देवीने आ भतने
 आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न थये के “माणं सूरियकंते कुमारे-

प्रदेशिनो राज्ञः इमं रहस्यमेद करिष्यति, इति कृत्वा प्रदेशिनो राज्ञः छिद्राणि च मर्माणि च रहस्यानि च विवराणि च अन्तराणि च प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती विहगति ॥ सू० १६२ ॥

टीका—“तए णं तीसे” इत्यादि—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्या प्रदेशिराजस्य पट्टराश्या अयमेतरूपः—वक्ष्यमाणप्रकारकः आध्यात्मिकः—आत्मगतो विचारः यावत्—यावत्पदेन “चिन्तितः कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः” इति संग्राह्यम्, अर्थस्तु पूर्वसूत्रे गतः, समुदपद्यत—संजातः, तदेव दर्शयति—यत्प्रभृते—तद्दिनादाभ्य च खलु प्रवेशी राजा श्रमणोपासकः—श्रावको जातः, तत्प्रभृते तद्दिनादारभ्य च खलु राज्यं—स्वाम्यमातः—सुदृत्—कोप—राष्ट्र—दुर्ग—स्वरिकंते कुमारे पणसि स रणो रहस्यमेयं करिस्सइ ति कट्टु पणसि स रणो छिद्राणिय-मम्मणिय-रहसाणिय-विवराणिय-अंतराणिय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ—” सूर्यकान्तकुमार प्रदेशी राजा के पास, अर्थात्—प्रदेशी राजा से मेरी इस मन्त्रणा को प्रकाशित न करे ? अतः—वह इस विचार से प्रदेशी राजा के छिद्रो को, दोषों को, मर्मों को, कुकृत्यरूप लक्षणों को—रहस्यों को एकान्तस्थान में सेवित निषिद्ध आचरणों को, विवरों को, निर्जनस्थानों को, और—अवकाश लक्षणरूप अन्तरों को बड़ी सावधानी के साथ बार-बार देखने लगी—अर्थात्—उन सब पर वह कड़ी दृष्टि रखने लगी ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है. “अज्झस्थिए जाव” में आगत इस यावत् पदसे—चिन्तित कल्पित प्रार्थित मनोगत संकल्प, इन पदों का संग्रह हुआ है। इन विचार के विशेषणों का अर्थ पहले प्रकट किया जा चुका है। “गज्ज च जाव अंतेउर च—” में आगत यावत् पद से—“वलं वाहनं कोष कोष्ठागार

पणसि स रणो रहस्यमेयं करि स्सइ ति कट्टु पणसि स रणो छिद्राणिय मम्मणिय रहसाणिय, विवराणिय अंतराणिय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ” अर्थात् कुमार प्रदेशी राज्यानी पास—ओटले के प्रदेशी राजाने भारी आवात कही दे नहि ओथी ते प्रदेशी राजाना छिद्रोने, दोषोने, भर्मोने, कुकृत्यरूप लक्षणोने, रहस्योने, ओकान्त स्थानमा सेवित निषिद्ध आचरणोने, विवराने, निर्जन स्थानोने अने अवकाश लक्षणरूप अन्तराने अहुं सावधानीपूर्वक बार बार जेवा लागी ओटले के भधी द्रिदयाल पर दृष्टि राखवा भाडी

टीकार्थ—स्पष्ट है “अज्झस्थिए जाव” भा आवेदा यावत् पदथी “चिन्तितः, कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः” भा पदोने संग्रह थयो छे, आ पदोने अर्थ पडेला स्पष्ट करवाभा आव्यो छे. “गज्ज च जाव अंतेउरं च” भा आवेदा यावत् पदथी

बलरूपेण सप्ताङ्गम् राष्ट्रं-देशं यावत्-यावच्छब्देन "बलं-नीयं, वाहनं-गथादि-
कम्, कोपं-रत्नादभाषाङ्गारम्, 'कोष्ठागारं-वा यथापनगृहम्, पुरं-नगरम्"
इति संग्राह्यम्, अन्तःपुरम्-अन्तःपुर-थपरिवारम् च पुनः मां च-तथा
जनपदं-विजितदेशं च अन्तःद्वयमागः-तच्चिन्तामकुर्वाणा विहरति-तिष्ठति, तत्
तर्हि मे-मम श्रेय-समीचीनं त्रु प्रदेशिनं राजनं केनापि सख्ययोगेण-तद्वा-
दिययोगेण, वा-अथवा अग्निप्रयोगेण-अग्निना दाहनरूपेण, -मन्त्र-योगेण-मन्त्र-
जापरूपेण, वा-अथवा, द्विप्रयोगेण-विषदानरूपेण, उपद्रुत्य-मार्ग्ये वा सूर्यकान्त
सूर्यकान्तनामकं, कुमारं-मम पुत्रं राज्ये स्थापयेत्वा मन्त्रिणा स्वयमेव-अहं स्वयं
राज्यश्रियं-राज्यलक्ष्मीं वागन्त्याः-बलवाहनादिभिः सार्धयन्त्याः. पालयत्याः-
रक्षयन्त्याः विहर्तुं-स्थातुम् । इतिकृत्वा-इते वितर्क्य एतं-पूर्वोक्तातु-
सारेण संप्रक्षते-निर्धारयति, निर्धार्य सूर्यकान्तं कुमार शब्दयति आह्वयति,
शब्दयित्वा एवमवादीत्-य प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जात-

पुर-” इन पदों का संग्रह हुवा है । अन्तःपुर शब्द से अन्तःपुरस्थ परिवार
का ग्रहण किया गया है । तत्र-जनपद से विजित देश लिया गया है, इस
सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि-जब सूर्यकान्ता देवीने यह जान लिया कि प्रदेशी
राजा श्रमणोपासक बन चुका है, और-अपने बल-वाहन आदि की संभाल
करने आदि की ओर उसका जैसा ध्यान होना चाहिये अब बँसा नहीं रहा
है, और न वह मेरी मी अब कुछ चाहना करता है, तब उसके मनमें इस
को दूर करने के लिये ऐसा विचार उठाकि-जैसे मी बने, चाहे-अग्नि-
प्रयोग से हो, या शस्त्रादि से हो, अवश्य ही इस प्रदेशी राजा का विनाश
कर देना चाहिये, तथा-सके स्थान पर सूर्यकान्त पुत्र को स्थापित कर
देना चाहिये. इसी में अब मलाई है । ऐसा विचार कर उसने पुत्र को बुलाया

“बल वाहन कोप कोष्ठागारं पुरं” आ पदोने स अह थयो अन्तःपुर शब्दधी
अन्तःपुरस्थ परिवारतु अहं थयु छे तेमञ्ज नरपदधी (वजित (एतेवा)देशने अर्थ
लेवाभा आन्व्ये छे आ सूत्रने भावार्थ आ प्रभाषे छे छे ज्यारे सूर्यकान्त देवीञ्जे
आ वात बाष्पी सीधी छे प्रदेशी राज श्रमणोपासक थयं गथे छे अने पोताना बल-
वाहन वगेरेनी सहाय राभते नथी अने भारी तरङ्ग पेषु तेतु ध्यान नथी गत्यारे
तेना मनभा ते कारेने हूर कश्चानो विचार उदयन्त थयो छे जमे तेरीते अग्नि-
प्रयोगधी, छे शस्त्रादि प्रयोगधी आ राजने भारी नाथपो नोदञ्जे तथा तेनी पाली
पठेवी ज्योपर सूर्यकान्त पुत्रने गादीञ्जे भेसाहयो नोदञ्जे. आभा ज हवे राज्यनी
सहाय छे, आभ विचार करीने तेबु पुत्रने पोतान्ये अने पोताना आ आतना

स्तत्प्रवृत्ति च खलु राज्यं च यावत् अन्तःपुरं च जनपदं च तथा मानुष्यकान्-
 मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान्-अनाद्रियमाणः-अनादरदृष्ट्या पश्यन् विहरति,
 तच्छ्रेयः खलु तव हे पुत्र ! प्रदेशिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत्
 अम्यादिप्रयोगेण वा उपद्रुत्य-मारयित्वा स्वयमेव राज्यश्रियं कारयतः पालतो
 विहर्तुम् । ततः खलु स सूर्यकान्तः कुमारः सूर्यकान्ताया देव्याः स्वमातुः एत-
 मर्थं नो आद्रियते-कामपि स्वीकृतिचेष्टां न दर्शयति, नो परिजानाति-नानु-
 मोदयति । तर्हि किं करोति ? इत्याह-तूष्णीकः-किञ्चिदप्यवदन्नेव स तिष्ठते ।
 ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः देव्या अयमेतद्रूपः वक्ष्यमाणप्रकारकः आधा-
 त्मिकः-आमगतो विचारः यावत् चिन्तितः कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः स क-
 ल्पः समुदपद्यत-समुत्पन्नः, तदेवाऽऽह-सूर्यकान्तः खलु कुमारः प्रदेशिनो राज्ञः
 समीपे इमं मत्कथितं रहस्यमेतद्रूपः-गुप्तमन्त्रणाप्रकाशनं मा करिष्यति-मा कुर्यात्,
 इति कृत्वा-इति विचार्य प्रदेशिनो राज्ञः छिद्राणि-दूषणानि, मर्माणि-कुकृत्य-
 लक्षणानि, एकान्तस्थानसेवितनिषिद्धाचरणानि, द्विवराणि-निर्जनस्थानरूपाणि,
 अन्तराणि-अःकाशलक्षणानि प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती-अन्वेषयन्ती २ विहरति-
 तिष्ठति ॥सू० १६२॥

मूलम्—तए णं सा सूरियकंता देवी अन्नया कयाइं पणसिस्स
 रणणो अतरं जाणइ असण-पाण-खाइम-साइम-सव्ववत्थगंधमल्ला-
 लं रेसु विसप्पओगं पउजइ । पणसिस्स रणणो ण्हायस्स जाव
 सुहासणवरगयस्स ते विससंजुत्ते असण-पाण-खाइम-साइम-सव्व-
 वत्थगंधमल्लालंकारे निसिरेइ । तए णं तस्स पणसिस्स रणणो तं
 विससंजुत्तं असणं-पाणं-खाइमं-साइमं आहारेमाणस्स स णस्स

और-अपने इस प्रकार के विचारों को उसे सुनाया, पर उस विचारको पुत्रने
 अच्छा नहीं समझा. तब-सूर्यकान्ता के हृदय को उस विचारने आलोडित करदिया
 की-कही ऐसा न हो कि मेरे इस विचार को सूर्यकान्त, प्रदेशी राजा से प्रकट
 कर दे, अतः-वह प्रदेशी राजा के छिद्रादिकों को देखने की ताकमें रहनेलगी. ॥३६२

विचारो तेनी साभे स्पष्ट कथां. पणु पुत्रे आ वातने सारी मानी. नहि त्थारे सूर्य-
 कान्ताना मनमां आ णतने। विचार थये हे भारी आ वात ये प्रदेशी राजा साभे
 प्रकट करी हेथे तो शु थये ? ज्येठला भाटे ते हवे प्रदेशी राजाना छिद्रो वगेरे
 नेवा लागी. ॥सू. १६२॥

सरीरंसि वेयणा पाउव्भूया उज्जला त्रिउला पगाढा कक्कसा कडुया
फरुसा निर्हुरा चंडा तिक्वा दुक्खा दुग्गा दुरहियासा पित्तज्जरपरिगय-
सरीरे दाहवक्कते यावि विहरइ ॥ सू० १६३ ॥

छाया—ततः खलु सा सूर्यकान्ता देवी अन्धदा कदाचित् प्रदेशिनो राज्ञः
अन्तर जानाति अशन-पान-खादिम-स्वादिम- सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेषु विष
प्रयोगं प्रयुनक्ति, प्रदेशिने राज्ञे स्नाताय यावत् सुखासनवरगताय तान् विषसंयुक्तान्
अशन-पान-खादिम-स्वादिम-सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारान् निसृजति । ततः खलु तस्य

“तएणं सूरियकंतादेवी” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तएणं’ इसके बाद ‘सूरियकंतादेवी’ सूर्यकान्तादेवीने ‘अन्त-
कयाइ” किसी एकदिन ‘पएसिस्स रन्नो’ प्रदेशी राजाके ‘अंतरंजाणइ’ पष्ठ-
पारणा के अक्षररूप अन्तर को जान लिया और असण-पाणखाइम-साइम
सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेसु विसप्पओगं पउज्जइ—’ अशन-पान खाद्यरूप आहारों
में, तथा—वस्त्र-गन्ध-माला अलङ्कारों में विष का संप्रयोग करदिया. पएसिस्स
रणो प्हए जाव सुहासणवरगयस्स ते विससंजुत्ते असण पाण खाइमसाइमसव्व-
वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारे निसिरेइ—’ प्रदेशी राजा जब स्नान करके यावत् सुखदरूप
श्रेष्ठ आसनपर आसीन था, तब उसके लिये उसने—उन विषसंप्रयुक्त अशन
पान-खाद्य-स्वाद्यरूप आहार को परोसा. तथा-पहिरने के लिये वस्त्र-गन्ध-माला,
एवं-अलङ्कारों को दिया. ‘तए णं तस्स पएसि-स रणो ते विससंजुत्तं असण-

“तए णं सूरियकंता देवी” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएणं” त्थार पछी “सूरियकंता देवी” सूर्यकान्ता देवीके-
“अन्नया करइ” ठोड अेक दिवसे “पएसिस्स रन्नो” प्रदेशी राजाने “अंतरं जाणइ”
पष्ठ पारणानो अवसर इप अंतर (तक) लक्ष्मी दीधी अने “असणपाणखाइम-
साइमसव्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेसु विसप्पओग पउज्जइ” अशन, पान, भाद्य
अने स्वाद्यइप आहारोभा तेमज्ज वस्त्र गन्ध माला अलङ्कारोभा विष संप्रयोग करी दीधी
“पएसिस्स रणो प्हएयस्स जाव सुहासणवरगयस्स ते विससंजुत्ते असणपाण-
खाइमसाइमसव्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारे निसिरेइ” प्रदेशी राजा ल्थारे स्नान
करीने यावत् सुखदरूप श्रेष्ठ आसन पर आसीन हुता त्थारे तेमना भाटे तेसु ते
विषसंप्रयुक्त अशन, पान, भाद्य, स्वाद्यइप आहार पीरस्थुं, तेमज्ज पहरेवा भाटे
वस्त्र-गन्ध-माला अने अलङ्कारो भात्था “तए णं तस्स पएसिस्स रणो ते विस-

प्रदेशिनो राज्ञः तद्विषमंयुक्तम् अशनं पानं ग्वादिमं स्वादिमम् आहरतः सतः
शरीरे वेदना प्रादुर्भूता-उज्ज्वला विपुला प्रगाढा कर्कशा कटुका परुषा निष्ठुरा
चण्डा तीव्रा दुःखा दुर्गा दुरध्यासा पित्तज्वरपरिगतशरीरो दाहव्युत्क्रान्तश्चापि
विहरति ॥ सू० १६३ ॥

पाणं-स्त्राइमं-साइमं-आहारेण पाणस समाणरस सरीरं-सि वे रणा पाउब्धू -। उज्जला-
विउला-पगाढा-ककस-कटुया-फरुस-निठुरा-चंडा-त्वा दुस्त्रा दुग्गा-दु-
हियासा-पित्तज्वरपरिग सरीरे-दाह कंते यावि विह-इ-” इसके बाद उस
प्रदेशी राजा के शरीर में उस विषमप्रयुक्त अहार के करने से वेदना उत्पन्न
हो गई । यह वेदना उज्ज्वलयी दुःखद ई होने से सुख लेश से रहित थी-विपु-
लयी, सकल शरीर में व्याप्त होने से विरतीर्ण थी, अत्यंत गहरी थी, बर्कश-
कठोर थी । जैसे-कर्कश पाण या मधुर्ष शरीर की सन्धियों को तंड देता
है, उसी प्रकार इसे बर्कश कहा गया है, अप्रीति जनक होने से यह कटुक
थी, मन में अति रूक्षता की जनक होने से दुर्मेघ थी, चण्ड-गौद्र थी तीव्र-
तीक्ष्ण थी, दुःखद स्वरूप होने से दुःख थी, चिकित्सा से भी दुर्गम्य होने
के कारणे दुर्गम्य थी, दुग्ध होने से दुग्ध था । इस प्रकार की वेदना उत्पन्न
होने के कारण वह राज पित्तजार से अद्रान्त शरीराला हो गया और सम-
स्त शरीर में उसको दाह पडने लगी । टीकार्थ-स्पष्ट है-॥१६३॥

संयुक्तं अण पाणं स्त्राइमं साइमं आहाग्माणस समाणरस सरीरं-सि वे रणा पाउब्धू ।
उज्जला विउला पगाढा ककस-कटुया-परुसा-निठुरा-चंडा निवा-दुस्त्रा-
दुग्गा-दु हियासा-पित्तज्वरपरिग सरीरे दाहवकंते यावि विह-इ-” त्वा-
पछी ते प्रदेशी राजना शरीरमा ते विषमप्रयुक्त आहार कर्वाथी वेदना उत्पन्न
थई गई, आ वेदना उज्ज्वलयी होती, दुःखद होवाथी सुख रहित होती, विपुल होती,
समस्त शरीरमा व्याप्त होवाथी विस्तीर्ण होती, प्रगाढ होती, बर्कश-
कठोर होती जेम कठोर पथरनी रंग शरीरमा संधि बागोने तोडी नाये छे, तेम
ते वेदना पञ्च आत्म प्रदेशोने तोडती होती जेथी जे जेने कर्कश कहेवाभा आवी
छे अप्रीतिजनक होवाथी जे कटुक होती, मनमा अति रूक्षताजनक होवाथी पश्य
हती, र निष्ठुर होती, अशक्य होती, यड रौद्र तीव्र तीक्ष्ण होती, दुग्ध स्वरूप
होवाथी दुग्ध होती, चिकित्साथी पञ्च दुर्गम्य होती जेथी ते दुर्ग होती, ईरुसह
होवाथी ईरुध्यास होती, आ अतनी वेदना उत्पन्न थई होवाथी ते राज पित्तज्वर-
क्रान्त शरीरवाणो थई गये अने तेना आभा शरीरमा अणतरा थवा भाडी।

टीकार्थ-स्पष्ट जे छे ॥ सू १६३ ॥

टीका—“तए णं सा” इत्यादि—ततः खलु सा मूर्धकान्ता देवी अन्यदा कदाचित्—कमिंश्चित् काले प्रदेशिनो राज्ञः अंतरम्—अवशाश—पृष्ठापरणावसर-मित्त्वर्थः, जानाति, अशन-पान-खादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारेषु—अशनादिसर्व-वस्तुषु विषयप्रयंगं—विषयप्रयंगं, प्रयुनक्ति—करोति एवं कृत्वा स्नाताय—कृतस्ना-नाय, यावत्—सुखाम्नवरगताय—सुखदरूपश्रृष्टासनोपविष्टाय प्रदेशिने राज्ञे तान् विषययुक्तान् अशनपान-खादिम-स्वादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्या-लङ्कारान् निसृ-जति-ददाति । ततः तदन्तरं खलु तस्य प्रदेशिनो राज्ञः तं विषययुक्तम् अशन-पान-खादिम-स्वादिममिति चतुर्विधाऽऽहारम् आहरतः शुद्धतः सतः शरीरे वेदना प्रादुर्भूता—समुपन्ना, सा कीदृशी ? इ याह—उज्वला—दुःखदतयां आ सुखलेश-रहितेत्यर्थः, विपुला—प्रबलशरीरव्यापकत्वाद् विस्तीर्णा, अतएव प्रगाढा-अतिश-यिता, कर्कशा कठोरा, यथा कर्कशपापाणसंघर्षः शरीरसन्धीस्त्रोटयति तथैवात्म-प्रदेशांस्तोटयन्ती या वेदना जायते साः कर्कशेत्युच्यते, बहुका—अप्रीतिजनिका, पक्षा मनोऽतीव रुक्षत्वोत्पादिना निष्ठुरा—अशक्याप्रतीकारत्वेन दुर्मेघा, अत एव चण्डा—रौद्रा, तीव्रा—तीक्ष्णा दुःखा-दुःसदस्वल्पा, दुर्गा—चिकित्सादुर्गम्या, दु-रध्यासा-दुःसहा, एवम्भूता वेदना समुद्भूता, तेन कारणेन स राजा पित्तज्वर परिगतशरीरः—पित्तज्वरेण परिगतम्—आक्रान्त शरीरं यस्य स तथा, अत एव दाहव्युत्क्रान्तः—दाहव्याप्तः सन् चापि विह-ति—तिष्ठति । ॥ ख० १६३ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अज्ञाणं संपलञ्चं जाणित्ता सूरियकंताए देवीए मणसावि अप्पदुस्समाणे जे-णेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, पोसहसालं पमज्जेइ, उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ दब्भसंथारग संथरेइ, दब्भसंथारगं दुरुहइ, पुरत्थाभिमुहे संपालयंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं मिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी—नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संप-त्ताणं नमोत्थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मो-वदेसगस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं-त्तिकट्टु वंदइ नमसइ, पुब्बिपि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए थूलपाणाइवाए पच्चक्खाए जाव थूल-

परिग्गहे पच्चक्व ।ए तं इयाणिं पि णं तस्मेव भगवओ अंतिए सठवं
पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव सठवं परिग्गहं पच्चक्खामि सठव
कोहं जाव मिच्च दंसणसह्ले पच्चक्खामि अकरणिज्जं जोगं पच्च-
क्खामि, सठवं असणं० चउब्बिहंपि आहार जावजीवाए पच्च-
क्खामि, जंपि य मे सरीरं इट्ठ जाव फुसंतुत्ति एवंपि य णं चरि-
मेहिं ऊसासनीसासेहिं वोसिरामि-त्ति कट्ठू आलोइयपडिक्कंते सभा-
हिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सेहस्मे कप्पे सूरियाभे वि णे
उववायसभाए देवत्ताए उववन्ने । ॥सू० १६४॥

इति पएसिरायंस वण्णणं समत्तं ।

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा सूर्यकान्ताया देव्या आत्मानं संप्रलब्धं ज्ञात्वा
सूर्यकान्ताया देव्या मनमाऽपि अप्रद्विषन् यत्रैव पोषधशाला तत्रैव उपागच्छति
पोषधशालां प्रमार्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्ममस्तारकं स वृ-
णति, दर्मसंस्तारकम् दूरोहति पौरस्त्याभिमुखः संपल्यंङ्कनिषण्णः करत्तलपरिगृहीतं

“तए णं से पएसी राया” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद “से पएसी राया—” वह प्रदेशी राजा
“सूरिकंताए-देवीए अत्ताणं सपलद्धं, जाणित्ता—” सूर्यकान्ता देवी की यह
उत्पात (करामत) है इस प्रकार जान कर भी—“सूरिकंताए देवीए मणसा
वि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ—” उम सूर्यकान्ता देवी
के प्रति मनसे भी द्वेषभाव नहीं करता हुआ जहां पौषधशाला थी वहां पर
गया—“पोसहसाला पमज्जेइ—” वहां जा करके उसने पोषधशाला की प्रमार्ज की
“उच्चारषासवणभूमिं पडिलेहेइ—” उच्चारप्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना

“तए णं से पएसी राया” इत्यादि

मूलार्थ—‘तएणं’ त्थार पछी ‘से पएसी राया’ ते प्रदेशी राजा ‘सूरिकंताए
देवीए अत्ताण सपलद्धं जाणित्ता’ सूर्यकान्ता देवीके आ पधु कधुं छ आभ
लक्षणा छताके “सूरिकंताए देवीए सा वि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसह-
साला तेणेव उवागच्छइ” ते सूर्य कान्ता देवी प्रत्ये मनथां पधु द्वेषभाव न करता
न्या पौषधशाला छती त्या गथे. (पोसहसालं पमज्जेइ) त्या लक्षणे तेणे पोषध-
शालानी प्रमार्जना करी. “उच्चारषासवण भूमिं पडिलेहेइ” उच्चार-प्रस्रवण भूमिनी

शिर आवर्त मस्तके अञ्जलि कृत्वा गवमवादीत्-नमोऽतु खलु अर्हद्भ्यः यावत्
संप्राप्तेभ्यः नमोऽतु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माऽऽचार्याय धर्मोपदेश-
णाय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतम् इहगतः, पश्यतु मां भगवान् तत्रगतः इह
गतम्" इति कृत्वा वन्दते नमस्यन्ति, पूर्णमपि खलु मया केशिनः कुमारश्रमण
स्यान्निके शूलपाणानिपातः पत्याख्यातः यावत् शूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः,

की-"द्वम्संथारगं संथरेइ-" और फिर दर्भ का संथारा विछाया
"द्वम्संथारगं दुरूहइ-" उसे विछा कर वह उम पर बैठ गया. "पुर-
स्थासिमुहे संपलियंकनिसन्ने-" वहां आरूढ होकर वह पूर्व दिशा की ओर
मुह करके पर्यङ्कासन से बैठ गया. "करयलपरिगग्रहियं सिरसावत्तं मथए अजलि
कहुँ एवं वयासी-" और दोनों हाथों की अंजली बनाकर एवं-उसे मस्तक
पर छुमाकर इस प्रकार से कहने लगा. "नमो थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं,
नमो थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स-" अर्हन्त
भगवन्तों के लिये नमस्कार हो, मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमण
के लिये नमस्कार हो, "वंदामि णं भगवन्तं तथ य इहगए-" यहां रहा हुआ
मैं वहां पर रहे हुवे भगवान् को वन्दना करता हूँ, "-पासउ मे भगवं
तत्थगए इहगय त्ति कहुँ वंदइ नमंसइ-" वहां पर रहे हुवे वे भगवान् यहां
रहे हुवे मुझे देखे-इस प्रकार कह कर उस प्रदेशी राजाने उनकी वन्दना की
नमस्कार किया. 'पुत्वि पि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूल-
पाणाइवाए पच्चवखाए, जाव थूलपरिगगहे पच्चवखाए" पहलेमी मैने केशी

प्रतिक्रियना करी "द्वम्संथारगं संथरेइ" अने पछी दर्भतु आसन त्या पाथरुं.
"द्वम्संथारगं दुरूहइ" तेने पाथरीने ते तेना पर उल्लेख थई गये. "पुरस्था-
सिमुहे संपलियंकनिसन्ने" त्या आइठ थईने ते पूर्व दिशा तरफ मुण्ठ करीने
पर्यङ्कासनथे भेसी गये. 'करयलपरिगग्रहियं सिरसावत्तं मथए अजलि कहुँ एवं
वयासी' अने अन्ने हाथोनी अञ्जलि बनावीने अने तेने मस्तक पर झेरवी ते
आ प्रभाञ्जे कहेवा लाञ्छे. "नमोथुणं अरहंता ण जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं
केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स" अर्हन्त भग-
वतने मारा नमस्कार छे, मारा धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने मारा
नमस्कार छे "वंदामि णं भगवन्तं तत्थगए इहगए" अर्ही रहीने हुँ त्या वर्तमान
भगवानने वन्दन करै छुं. "पासउ मे भगवं तत्थगए इहगय त्ति कहुँ वंदइ,
नमंसइ" त्यां रहैता भगवान भने अर्ही लुञ्जे आ प्रभाञ्जे कहीने ते प्रदेशी
राजाने तेभने वन्दन कर्या, नमस्कार कर्या "पुत्वि पि णं मए केसिस्स कुमारसम-
णस्स अंतिए थूलपाणाइवाए पच्चवखाए, जाव थूल परिगगहे पच्चवखाए"

तद् इदानीमपि खलु तस्यैव भगवतः अन्तिके सर्वं प्राणानिपातं प्रत्याख्यामि यावत् सर्वं परिग्रहम् प्रत्याख्यामि, सर्वं क्रोध यावत् मिथ्यादर्शनश्लथं प्रत्याख्यामि अकरणीयं योगं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनं चतुर्विधमपि आहार यावज्जीवं प्रत्याख्यामि, यदपि च मे शरीरम् इष्टं यावत् स्पृशन्तु इति एतदपि च खलु चरमैः उर्ध्वीसनःश्वासैः व्युत्सुजांम, इति कृत्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधि-

कुमारश्रमण के पास स्थूल प्राणातिपातका यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया है—‘तं इयाणि पि णं तस्सेव भगवओ अंतिए सच्चं पाणाइवाय प च्चक्खामि—’ अब भी मैं उन्हीं भगवान् के पास उसी सब प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, ‘जाव सच्चं परिग्रहं पच्चक्खामि—’ यावत् समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। सच्चं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं प च्चक्खामि—’ समस्त क्रोध का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादर्शन श्लथ का प्रत्याख्यान करता हूँ। ‘अकरणीयं योगे पच्चक्खामि—’ अकरणीय योग (अशुभ योग) का प्रत्याख्यान करता हूँ, ‘सच्चं असणं चउच्चिहं वि आहारं जाव ज्जीवाए पच्चक्खामि—’ उशन-पान आदिरूपचार। प्रकार के आहार का यावज्जीव त्यागकरता हूँ ‘जं पिय मे सरिरं इहं जाव फुसंतु त्ति एवं पिय णं चरिमेहिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कहुं—’ मैंने पहले जिस इष्टादि विशेषण विशिष्ट शरीर की रक्षा की इस अभिप्राय से कि—इसे शीत उष्ण आदि परिग्रह तथा-सर्पादिकृत उपसर्ग आदिकी बाधा न पहुंचाये-जब मैं उसी शरीर का अन्तिम उर्ध्वीस-निश्वासो तक परि या करता हूँ, इस प्रकार विचार करके—‘आलो-

पहेला पद्य मे उशीकुमारश्रमणनी पासे स्थूल प्राणातिपातका यावत् स्थूल परिग्रहत् प्रत्याख्यान कर्तुं छु ‘तं इयाणि पि णं तस्सेव भगवओ अंतिए सच्चं पाणा-इवाय पच्चक्खामि’ छुवे पद्य छु ते न भगवाननी पासे तेन समस्त प्राणपाति छु प्रत्याख्यान करे छु ‘जाव सच्चं परिग्रहं पच्चक्खामि’ यावत् समस्त परिग्रहत् प्रत्याख्यान करे छु ‘सच्चं वं हं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि’ समस्त क्रोधत् प्रत्याख्यान करे छु यावत् मिथ्यादर्शन श्लथत् प्रत्याख्यान करे छु ‘अकरणीयं योगे पच्चक्खामि’ अकरणीय योगत् प्रत्याख्यान करे छु ‘सच्चं असणं चउच्चिहं वि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि’ उशन-पान वगेरे रूप चार प्रकारना आहारना यावत् छवन त्याग करे छु ‘जं पिय मे सरिरं इहं जाव फुसंतु त्ति एवं पिय णं चरिमेहिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कहुं’ मे पहेला न्ने छु वगेरे विशेषण विशिष्ट शरीरनी रक्षा करी ते आ प्रथेनथी के आने शीतउष्ण वगेरे परीपहे। तथा सर्पादिकृत उपसर्ग वगेरे बाधा पहेलाये नहिं छुवे छु ते न शरीरना आत्म छुवासा निश्वासो सुधी परित्याग करे छु आ

प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने उपपातसभायः
देवतया उपपन्नः ॥ सू० १६४ ॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं समाप्तम् ।

टीका—“तए णं से पर्यासी” इत्यादि—ततःत्रलु स प्रदेशी राजा सूर्य-
कान्ताया देव्या-स्वराज्या आत्मानं-व संप्रलब्धं—विषप्रदानेन वञ्चितं सूर्यकान्तया
मा णार्थं महाविषं दत्तमिति ज्ञात्वा सूर्यकान्ताया देव्या मनसाऽपि—मनोमात्रे-
णापि अप्रद्विपन्—द्वेषमकुर्वन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, पौषधशालां प्रमा-
र्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्भसं-तारकं सस्त्रणाति दर्भसंस्तारकं
दूरोहति—अधिरोहति दर्भसंस्तारकोपर्युपविशतीत्यर्थः, पौरस्त्यामिमुखः—पूर्वदिगभि-

इ पडिकंते समाहिते कालमासे कालं कृत्वा सोहम्मे रूपे सूर्याभे
विमाणे उववाय माए देवत्ताए उववन्ने—” उसने पहले गुरु को सम्मुख करके
जिन अतिचारों का प्रयाख्यान किया था अब उन्हें पुनः अकरण विषय से
अतिक्रान्त करके, अर्थात्—आलो-नापूर्वक मिथ्यादुष्कृत देकरके चित्त की
समाधि प्राप्त करता हू. और—उसी स्थिति में वह कालमाप में काल करके
सूर्याभविमान में उपात समा में देव पर्याय से उपपन्न हो गया. ॥

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब जाना कि मेरी रानी सूर्यकान्ताने ही मुझे
मारने के लिये विष प्रदान कर इस स्थिति पर पहुँचाने का निमित्त उपस्थित
किया है तो वह इस हालत में भी उसके प्रति द्वेषभाव से रहित बना रह-
कर जहाँ पौषधशाला थी वहाँ पर चला गया. वहाँ जाकर उसने पौषध-
शाला की प्रमार्जना की उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की. और—दर्भ
का संस्तारक विछाया. विछाकर फिर वह उसपर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके

प्रमाणे विचार कराने ‘आलोइयपडिकंते समाहिते कालमासे कालं कृत्वा
सोहम्मे रूपे सूर्याभे विमाणे उववायसमाए देवत्ताए उववन्ने’ तेषु पहिला
शुद्धी साभे जे अतिचारेनु प्रत्याख्यान कर्युं छतु छवे तेभने करी अकरखु विषयथी
अतिकात करीने—जेटले के ‘आलोअयनापूर्वक मिथ्या दुष्कृत आधिने चित्तनी समाधि
प्राप्त करे छु’ अने आवी स्थितिमा ते कालमासमा काल करीने सूर्याभविमानमा
उपपात सभासा देव पर्यायथी जन्म पाये.

टीकार्थ—प्रदेशी राजाजे ज्यारे आ वात बल्यी के भारी राखी सूर्यकान्ताजे
अने मारवा माटे विष आण्यु छे अने भारी आ दशा करी छे. तो ते परिस्थिति
मा पखु सूर्यकान्ता प्रत्ये अद्वेषभावथी व्यवहार करीने ज्यो पौषधशाला छती त्यां
गयो. त्या कथने तेषु पौषधशालानी प्रमार्जना करी उच्चारप्रस्रवण भूमिनी प्रति
लेखना करी अने दर्भसंस्तारक पाथयी त्यारबली ते तेनी उपर पूर्व दिशा तरक

मुखः सपत्यङ्ग निपणः—पर्यङ्कासनेन समुपविष्टः सन करतलपरिगृहीतं शिरआवर्त
 मगतकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत—नमोऽस्तु खलु अर्हञ्जयः यावत् स प्राप्तेभ्यः ।
 अत्र यादृशं न नमोऽस्तु णं” पाठः सर्वोपि वाच्यः । तथा नमोऽस्तु खलु
 केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माचार्याय धर्मोपदेशकाय, इन्द्रे खलु भगवतः तत्र
 गतम् इह गतः—अत्र स्थितोऽहम्, पश्यतु मे—मम मामित्यर्थः, भगवान् केशि-
 कुमारश्रमणस्तत्रगत इहगतम्, इति कृत्वा वन्दते नम यति, कथयति—पूर्वमपि स्वल्
 मया केशिनः कुमारश्रमण य अन्तिवे—समीपे शूलप्राणातिपातः प्रत्याख्यानः ?
 यावत्—यावच्छब्देन “स्थूलसृषावादः प्रत्याख्यातः २ शूलादत्ताऽऽदानं प्रत्याख्यातम्
 ३, इति स ग्राह्यम्, स्थूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः ४, तद् इदानीमपि खलु तस्यैव

पर्यङ्कासन से बैठ ग । दोनो हाथो जोड़ा और—आवर्तकर इ प्र । उहने
 लगा. अर्हन्तो नो नमस्कार हो. यहाँ—यावत् शब्द से “नमोऽस्तुणं ” पाठ
 पूरा उसने पढा : ह मझ लेना चाहिये । इम प्रफा. कहते कहते उदने
 ऐसा भी कहा कि—मुझे धर्म का उदेश देने वाले जो मेरे धर्माचार्य केशी
 कुमा.श्रमण हैं—उहें भी मेरा नमस्कार हो, वे धरि— हां पर मेरे पास
 वर्तमान में नहीं हैं अत जहाँ पर भी वे विराजमान हों मैं
 यहाँ रहा हुवा उहें नमस्कार करता हूं. वहाँ रहे हुवे वे म वात्
 केशीकुमा श्रमण यहाँ रहे हुवे मुझे देखे इ प्र । कहकर उसमें न को
 वन्दना की—नमस्कार किया, वन्दना—नमस्कार कर फिर वह इस प्रकार से
 कहने लगा मैंने पहले भी केशीकुमा श्रमण के समीप स्थूल प्राणातिपात ।
 प्रत्याख्यान किया है—यावत् स्थूल सृषावाद का प्रत्याख्यान किया है. स्थूल
 अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया है. औ—स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया

मुख करीने पर्यङ्कासननी सुद्राभा जेनी गया त्यार आठ तेजे अन्ने ढाथोनी अञ्जलि
 पनादी अने तेने मस्तक पर हेरवीने आ प्रभाजे कहेवा लायेो अहं तोने नमस्कार
 छे, अहीं यावत् पहरी “नमोऽस्तुणं” पूरापाठ ते जाहयेो अे वात् समजवी जेधअे
 आ प्रभाजे कहेता कहेता तेजे आ प्रभाजे कहुं के भने धर्मोपदेश आपनार मारा
 धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने मारा नमस्कार छे तेजो अहीं इमअा वधमान
 नहीं छताअे तेजोश्री ज्या विराजता होय हुं अहीं रहनी तेमने नमस्कार कर
 छु त्या रहेता ते भगवान केशीकुमारश्रमण अहीं रहेला भने जुवे. आ प्रभाजे
 कहींने तेजे तेमने वदन करी नमस्कार कर्या वदन तेमज नमस्कार करीने ते आभ
 कहेवा लायेो के मे यहेला पशु केशीकुमारश्रमणनी पासो स्थूल प्राणातिपातत् प्रत्या-
 ख्यान कर्युं छे यावत् स्थूल सृषावादत् प्रत्याख्यान कर्युं छे, स्थूल अदत्तादानत्
 प्रत्याख्यान कर्युं छे अने स्थूल परिग्रहत् प्रत्याख्यान कर्युं छे छवे हु तेज केशी

भगव :- केशिकुमारश्रमणैव अन्तिके तदाज्ञावतित्वेन तस्मिन् भगव त विद्यमाने सति समीपे इव समीपे सम्प्रति मयं प्राणातिपां प्रत्याख्यामि यावत्-यावच्छब्देन . वं मृषावादं प्रत्याख्यामि, सर्वमदत्तादानं प्रत्याख्यामि, इति सग्राह्यम्, सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि तथा क्रोधं यावत् यावच्छब्देन-मान-माया लोभं रागं द्वेषं कलहमभ्याख्यानं पैशु य परपरिवादं गत्यती माया-मृषा इति सग्राह्यम्, मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनमिति-अशन खाद्यं स्वाद्यं चतुर्विधमाहारं यावज्जीवं-प्राणधारणपर्यन्तं प्रत्याख्यामि यद्पि च मे शरीरम् इदं यावत् पृथु तु अत्र यावच्छब्देन का तत्त्वादि विशेषणविशिष्टं शरीरं शीतोष्णादयः परीषदाः सर्पादिकृता उपर्गाः कर्कशकठोरादयः स्पर्शाश्च मा स्पृश तु इत्यन्तं संग्रा-

है. अब मैं उसी केशीकुमारश्रमण के पास उनकी आज्ञा के बशवर्ती होने के कारण उन्हें अपने समीप रहा हुआ जैसा मानकर समस्त प्राणातिपात वा प्रत्याख्यान करता हूँ. समस्त मृषावाद वा प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त अदत्तादान वा प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त परिग्रह वा प्रत्याख्यान करता हूँ । तथा क्रोधो यावत् मान माया लोभका राग-द्वेष, कलह का प्रत्याख्यान पैशु-य परिवाद अर्थात् माया मृषा का, एवं-मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। तथा-समस्त अशनका पानका खाद्यका स्वाद्यका, यावज्जीव-प्राणधारण पर्यन्त परित्याग करता हूँ, तथा-का-तत्त्वादे विशेषणों से युक्त जिस शरीर की मैंने शीतोष्ण आदिपरीषहों से सर्पादिकृत उपसर्गों से एवं-कर्कश कठोर आदि स्पर्शों से ये सब इसे स्पर्शन करे इस ख्याल से रक्षा की इसका भी मैं अब अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक यावज्जीव तक परित्याग करता हूँ । तात्पर्य इसका इस प्रकार से है-मैंने इस शरीर

कुमारश्रमणनी पास तेमनी आज्ञाने वश होवाने लीधे तेज्यो भारी पास जे छे ज्येभ भानीने समस्त प्राणुपितततु प्रत्याख्यान करे छे. समस्त मृषावादतु प्रत्याख्यान करे छे समस्त अदत्तादाननु प्रत्याख्यान करे छे अने समस्त परिग्रहतु प्रत्याख्यान करे छे तेमज क्रोधनु यावत् मान माया लोभ राग द्वेष कलहतु प्रत्याख्यान करे छे पैशु-य परिवाद अर्थात् माया मृषा अने मिथ्यादर्शनशल्यतु प्रत्याख्यान करे छे. तेमज समस्त अशनतु पानतु, खाद्यतु, स्वाद्यतु, यावत् जीवन प्राणु धारण पर्यन्त विसर्जन करे छे तेमज का-त-तत्त्वादि विशेषणुथी युक्त जे शरीरनी से शीतोष्ण वगेरे परीषदोथी सर्पादिकृत उपसर्गोथी अने कर्कश कठोर वगेरे स्पर्शोथी-ज्येज्यो आ शरीरने स्पर्शे नहि ज्ये छेछाज्ये रक्षा करी आने पणु छे छे अन्तिम श्वासोच्छ्वास सुधी परित्याग करे छे तात्पर्य आ प्रमाणे छे

क्षम, तथाहि—का तं, प्रियं मनोज्ञं, मनआमं, धैर्यं—धैर्यस्वरूपं वैश्वसिकं विश्वास योग्यं, संमतम्, अनुमतं बहुमतं, भाण्डकरण्डकसमानं, रत्नकण्डकभूतमिदं शरीर मा खलु शीतं मा खलु उष्णं, मा खलु क्षुधा मा खलु पिपासा, मा खलु व्यालाः—सर्पाः, मा खलु चोराः, मा खलु दंशाः, मा खलु मशकाः, मा खलु नातिकः—वातसम्बन्धी रोगातङ्काः एवं पैत्तिकः श्लैष्मिकः सान्निपातिकः इत्यादि का विविधा रोगातङ्काः, तत्र रोगाः—ज्वरदयः, आतङ्काः—सद्योघातिशूलादयः, तथा परीषदाः—क्षुधादयः, उपसर्गाः सर्पादिकृता उपद्रवाः, स्पर्शाः—कर्कशकठोर दयः. मा स्पृशन्तु—मे शरीरे मा संलग्ना भवतु इति—इति बुद्ध्या सरक्षितम् एतदपि च खलु शरीरं चर्मैः—अतिर्मैः उच्छ्वांसनिःश्वासैः व्युत्सृजामि—त्यजामि,

को कान्त प्रिय-मनोज्ञ मन आम, धैर्यस्वरूप विश्वासयोग्य, संमत-अनुमान, तथा—बहु-मत माना एवं-रत्न रखने के पिटारे के जैसा बहुमूल्य माना। अतः—इस की तरह से मैंने संमाल रखी इसे शीत से वाधा न हो जावे, उष्णसे संताप न हो जावे, क्षुधा से कष्ट न हो जावे पिपासासे यह आकुलित न हो जावे. सर्पादि कृत उपद्रवों से यह पीड़ित न हो जावे. चोरों द्वारा इसे आपत्ति में पडना न पड़े, दंश-मशक इसे काट न लेवे. वात सम्बन्धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगों सद्योघाति शूलादिकों से यह दुःखित न हो जावे पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिक रोगातङ्क इसे मलिन न करदे कर्कश-कठोर आदि स्पर्श करके इसके सौन्दर्य या अपहरण न करे, इस प्रकार से मैंने इसकी हरतरह के खूब रक्षाकीथी, परन्तु—अब मैं ऐसे प्रिय इस शरीर के साथ अपना सम्बन्ध जीवन के अन्तिमक्षण तक यावज्जीव तक बिच्छेद

के मे आ शरीरने कात, प्रिय, मनोज्ञ, मन आम, धैर्यस्वरूप, विश्वास योग्य, संमत-अनुमत तेभ्य षड्भूत बाधयो अने रत्न भुक्त्वानी पीटीनी जेम षड्भूत्वान मान्यु अथी न आनी मे अथी रीते सबाण राणी आने ठडीथी पीडा न थाय, उष्णताथी संताप न थाय, क्षुधाथी कष्ट न थाय, तरसथी व्याकुल न थाय सर्पादिकृत उपद्रवोथी आ पीडित न थाय चोरो वडे आ आकृतमा न कसाठ पडे, दंश-मशक आने कष्ट न आपे वात सभन्धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगो, सद्योघाति शूलादिकोथी आ शरीर दुःखित न थाय, पैत्तिक श्लैष्मिक, सान्निपातिक रोगातङ्क आ शरीरने मलिन न करे, कर्कश कठोर वगेरेना स्पर्शथी अना सौन्दर्यं तु अपहरण न करे अ प्रभाषे मे अथी रीते आ शरीरनी भूम रक्षा करी हती पशु हुवे हु आ अेवा प्रिय शरीरनी साथे पोताने। अथ अण्वनना अतिम क्षण सुधी छोडी हउ छु आम विचार करीने ते प्रदेशी

इति कृवा—इत्यालोच्य स प्रदेशी राजा आलोचितप्रतिक्रान्तः—आलोचिताः—पूर्व
गुरुमिमिसुखीकृत्य प्रकाशिताः अतिचाः। ते पश्चात् प्रतिक्रान्ताः—पुनरक्षणविपयी-
कृता येनासौ तथा—आलोचनापूर्वकप्रदत्तमिभ्यादुष्कृत इत्यर्थः समाधि-प्राप्तचित्त
समाधिकः सन् कालमासे—कालावसरे कालं कृत्वा—मृत्यु प्राप्य मर्यामे विमानं
उपपातसमायां देवतया—देवत्वेन उपपन्नः—र मृत्युपन्नः । ॥सू० १६४॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं मातृम् ॥

अथ प्रदेशिराजजीवस्य मर्यामदेव याऽऽगामिभववर्णनमाह—

मूलम्—तए पां सुरियामे देवे अहुणोववन्नमए चैव समाणे पंच-
विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए सरीर-
पज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भासमणपज्जत्तीए, तं
एव खल्ल भो । सुरियामेपां देवेपां दिव्वा देविट्ठी दिव्वा देवजुई
दिव्वा देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए । ॥सू० १६५॥

कृवा—ततः खल्ल स मर्यामो देवः अधुन पपन्नक एव सन् पञ्चविधया पर्याप्ति
मावं गच्छति, तद्यथा आहारपर्याप्त्या१, शरीरपर्याप्त्या२, इन्द्रियपर्याप्त्या३, आन

करता हू. इस तरह विचार कर वह प्रदेशी राजा आलोचित प्रतिक्रान्त होकर
समाधि में तल्लीन हो गया. और—काल मास में मरण प्राप्त कर मर्यामविमान
में—उपपात समा में देव पर्याम से उत्पन्न हो गया. ॥सू० १६४॥

(प्रदेशी राजा वर्णनसमाप्त.)

“प्रदेशी राजा के जीव-मर्याम देव के आगामी भवका वर्णन

“तए पां सुरियामे देवे अहुणोववन्नमए—” इत्यादि

मूलार्थ—“तए पां सुरियामे देवे—” इसके बाद तत्काल उपपन्न हुआ ही
वह मर्यामदेव पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त हो गया. “तं जहा—आहार

राजा आलोचित प्रतिक्रान्त भवने समाधिमा तल्लीन भव गये। अने काल मासमां
मच्छु पाभीने सुखाभविमानमा उपपात समाया देव पर्याप्त्या उत्पन्न भयो ॥सू० १६४॥
प्रदेशी राजात् वधुन समाप्त.

“प्रदेशी राजाना एव—सुखाभदेवत्वं आगामी भवत्तु वधुन—”

“तए पां सुरियामे देवे अहुणोववन्नमए” इत्यादि.

मूलार्थ—“तए पां सुरियामे देवे” त्पार पछी उत्पन्न भयो जे सुखाभदेव
पाय प्रकारनी पर्याप्तियोंकी प्रकृत भव गये. “तं जहा—आहारपज्जत्तीए, सरीर

प्राणपर्याप्त्याऽ, मापाननःपर्याप्त्याऽ, तद् एवं खलु मो ? सूर्यामेन देवेन दिव्या देवर्द्धिः, दिव्या देवद्युतिः दिव्यो देवानुभावः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः ॥ सू० १६५॥

टीका—“तए णं से सूरियामे देवे” इत्यादि—ततः खलु स सूर्याभो देवः अधुनोपपन्नक एव—तत्कालोत्पन्नक एव सन् पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तिभाव गच्छति. पर्याप्तिपञ्चकार्थः पूर्वं व्यशीतितमसूत्रे गतः । एवम अनेन कारणेन प्रदेशीराजभवं आसि. कभावपूर्वकश्रावकधर्मापराधनरूपेण आलोचितप्रतिलोचि-त्समाधिभरणादिरूपेण च कारणेन मो—हे गौतम ! सूर्यामदेवेन इयं दिव्या देवर्द्धि—विमानादिरूपा दिव्या देवद्युतिः—शरीराभरणादिकान्तिः, दिव्यो देवानुभावः—देवप्रभावः, लब्धः—उपार्जितः, प्राप्तः—स्वात्कीभूतः अभिसमन्वागतः—योग्यत्वेन सम् गमिमुखमागतः ॥सू० १६५॥

पञ्चत्तीए, सरीरपञ्चत्तीए, इंदि पञ्चत्तीए, आण-णपञ्चत्तीए, भासमणपञ्चत्तीए—” वे पांच पर्याप्ति । इस प्रकार से है—आहारपर्याप्ति-शरीरपर्याप्त-इन्द्र-पर्याप्ति-स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और-भाषा मनःपर्याप्ति, “तं एव खलु मो ? सूरियामेणं देवेणं दिव्या देवर्द्धि—दिव्या देवजुई-दिव्ये देवानुभावे-लद्धे पत्ते अभिसमन्वागत—” इस तरह से इस सूर्यामदेवने प्रदेशी राजा के भवमें अन्तिम भवपूर्वक श्रावक धर्म की आराधना की थी. फिर-आलोचिन प्रतिक्रान्त होकर यह समाधि प्राप्त हुआ था. इन्ही सब कारणों से इसने सूर्यामदेव के पर्याप्त में यह दिव्यदेवर्द्धि-विमानादि-दिव्य देवद्युत-शरीराभरणादि कान्ति और दिव्यदेवानुभाव-देवप्रभाव उपार्जित किया है प्राप्त किया है. अनेन अधीन किया है. और उसे योग्यरूप होने के कारण अच्छी तरह से उसे मोगा है—

टीकार्थ—स्पष्ट है. पांच प्रकार की पर्याप्तियों का स्वरूप पहिले ८३-वें सूत्रमें प्रगट किया गया है ॥सू० १६५॥

पञ्चत्तीए, इंदियपञ्चत्तीए, आगपाण पञ्चत्तीए, भासमणपञ्चत्तीए” ते पाच पर्याप्तिभ्यो आ प्रभाषे छे—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति अने भाषा मनः पर्याप्ति “तं एवं खलु मो ! सूरियामेणं देवेणं दिव्या देवर्द्धि—दिव्या देवजुई-दिव्ये देवानुभावे-लद्धे पत्ते अभिसमन्वागत—” आ प्रभाषे ते सूर्यामदेवे प्रदेशी राजना भवमा आस्तिक भावपूर्वक श्रावक धर्मनी आराधना करी हती अने पछी आलोचित प्रतिक्रान्त भवने ते समाधि प्राप्त थयो हती आ अथा कारणेणथी तेस्ये सूर्यामदेवना पर्याप्तमा दिव्य देवर्द्धि विमानादि दिव्यदेवद्युति शरीराभरणादि कान्ति अने दिव्य देवानुभाव देवप्रभाव उपार्जित कर्था छे, अनेणथी छे स्वाधीन अनाच्या छे अने तेने योग्यरूप होवाथी सारी राते तेना उपयोग कथी छे. टीकार्थ स्पष्ट छे पाच प्रकारनी पर्याप्तियोंत स्वयं पहेला ८३ भा सूत्रमा प्रकट करवाभा आच्छु छे ॥१६५॥

प्रलम्—सूरियाभस्स णं भंते । देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा । चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता । से णं भंते । सूरियाभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उववज्जिहिइ ? गोयमा । महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवन्ति तं जहा—अड्ढाइ दित्ताइ विउलाइ वित्थिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइं बहुधणवहुजायरुवरययाइ आओगपओगसंपउत्ताइ विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइ बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूयाइ बहुजणस्स अपरिभूयाइ, तत्थ अन्नयरम्मि कुलम्मि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ॥ सू० १६६ ॥

छाया—सूर्याभस्स खलु मदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । स खलु मदन्त ! सूर्याभो देव तस्मादेवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं त्वक्त्वा कुत्र

सूरियामस्स णं भंते-? देवस्स केव यं कालं ठिई पणत्ता—” इत्यादि

मूलार्थ—प्रश्न—“सूरियामस्स णं भंते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” हे मदन्त-? सूर्याभदेव की स्थिति कितनी कही गई है—३ उत्तर—“गोयमा-? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम-? चार पल्योपम की सूर्याभदेव की स्थिति कही गई है । प्रश्न—“से णं भंते-? सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे मदन्त-? वह सूर्याभ देव उस देवलोकसे आयु क्षय-

“सूरियामस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” इत्यादि.

मूलार्थ—प्रश्न “सूरियामस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” हे मदन्त ! सूर्याभदेवनी स्थिति कितनी कही गई है ? उत्तर—“गोयमा ? चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम ! सूर्याभदेवनी स्थिति चारपल्योपमनेटकी कहेवासा आवी छे प्रश्न—“से णं भंते ! सूरियामे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ कहि उववज्जिहिइ—” हे मदन्त ! ते सूर्याभदेव ते देवलोकसे आयुक्षय-भवक्षय

गमिष्यन्ति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? महाविदेहे वर्षं यानि इमानि कुलानि भवन्त
 तद्यथा-आढ्यानि दीप्तानि विपुलानि विस्तीर्णविपुलभवनगणनासनयानवाहनानि
 बहुधन-बहुजातरूपरजतानि आयोगप्रयोगसंयुक्तानि विच्छिद्यितप्रचुरभक्तपानानि
 बहुदासीदासगोमहिषगवेलकप्रभृतानि बहुजनस्य अपरिभृतानि, तत्र अयं मस्मिन्
 कुले पुत्राय यास्यति ॥ स० १६६ ॥

मक्षय, एवं-विश्वितिक्षय के बाद अनन्तर देव शरीर को छोड़कर उहाँ जावे
 गा-३ कहां उत्पन्न होवेगा-३ उत्तर-“गोयमा-? महाविदेहे वासे जाणि इमाणि
 कुलानि भवन्ति, तं जहा-अह्नां दिक्षां विउलाहिं वित्थिन्नविउलमद्यणसय-
 णामणजाणवाहणां बहुधनबहुजातरूपस्ययाइ-” है गौतम-? महाविदेह
 क्षेत्र में जो ये कुल हैं, कि जो-आढ्य हैं-दीप्त हैं-विपुल हैं, विस्तीर्ण-
 विपुल भवनवाले हैं विस्तीर्ण विपुलशयनासन ले हैं विस्तीर्ण विपुल यान-
 वाहनवाले हैं, बहुधनवाले हैं बहुतर जातरूप ले हैं बहुरजतवाले हैं ‘अ-
 ओगप्रयोगसंपत्ताइ विच्छिद्यियपउरभक्तपानां, बहु दासीदास गो महिस
 गवेलगप्पभूयाइ’, बहुजनस्य अपरिभूयाइ-” आयोग प्रयोग जिन से वाप्य
 होते रहते हैं, दीनजनो के लिये उहा से प्रचुर मात्रा में भक्तपान प्राप्त होता
 है, जिन के पास दासी-दास अनेक संख्या में सेवा करने के लिये उपस्थित
 रहना है, प्रचुर मात्रा में जहां गो-महिष, एवं-अजा भेष अदि पशु कायम
 बने रहते हैं, तथा-कोईमी जन जिनका तिग्स्का नहीं कर सकना है,
 “तत्थ अन्नयरं सि कुलस्मि पुत्तताए पच्चायाइरसइ-” उन कुलों में से किसी
 एक कुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा ॥

अने विश्वितिक्षय पछी देव शरीरने त्यल्लने क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? उत्तर-
 ‘गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलानि भवन्ति, तं जहा-अह्नां दिक्षां
 विउलाहिं वित्थिन्न विउलमद्यणसयणासणजाणवाहणां बहुधन बहुजातरूपस्ययाइ’
 है गौतम ! महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो छे-जे आढ्य छे, दीप्त छे, विपुल छे, विस्तीर्ण
 भवनवाला छे, विस्तीर्ण विपुल शयनासनवाणाओ छे, विस्तीर्ण विपुल यान-वाहन
 वाजाओ छे, बहुधन संपन्न छे, बहुतर जातरूपवाणा छे, बहुरजतवाणा छे
 ‘आओगप्रयोगसंपत्ताइ’ विच्छिद्यियपउरभक्तपानां, बहुदासीदासगो
 महिसगवेलगप्पभूयाइ, बहुजनस्य अपरिभूयाइ” तेमनाथी आयोग प्रयोग
 व्यापृत थतो रहे छे, दीनजनो माटे जयाथी प्रचुर मात्रामा भक्त-पान प्राप्त थता
 रहे छे, जेभनी पास दासीदास धक्षी सप्यामा सेवा-याकरी करवा उपस्थित रहे
 छे, जया पुष्कण मात्रामा गाय महिष अने अन्य, भेष वजरे पशुओ विद्यमान रहे
 छे, तेमज कांठ पक्ष भाक्ष्यस जेभनो अनाहर करी थकतो नथी. “तत्थ अन्नयरं सि
 कुलस्मि पुत्तताए पच्चायाइरसइ” ते कुलोमाथी ते कांठ पक्ष ओके कुलमा पुत्ररूपे उत्पन्न थशे.

टीका—“सुर्याभिमानी” इत्यादि—गौतमस्वामी पृच्छन्ति—हे भद्रन्त !
 सूर्याभिमानी खलु देवस्य स्थितिः क्व स्थितिः प्रज्ञता ? । भगवानाह—हे गौतम !
 सूर्याभिमानी देवस्य सौधर्मदेवलोकं चत्वारि पल्योपमानि—चतुःपल्योपमपरिमिता
 स्थितिः प्रज्ञता । गौतमस्वामी ज्ञाह—हे भद्रन्त ! स खलु सूर्याभिमानी देवस्य
 देवलोकान् आयुःक्षयेण—देवस्य वृद्ध्यायुः कर्मदलिकनिर्जरणेन, भवक्षयेण देवस्य-
 गत्यादिकर्मनिर्जरणेन स्थितिः क्षयेण—सौधर्मे इत्ये गत्यादे विमाने देवानां या दश-
 सागरोपमस्थितिः प्रोक्ता तत्क्षयेण, अनन्तरं—त पश्चात् चतुःपल्योपमस्य
 क्व वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवानाह—हे गौतम ! सूर्याभिमानी जीवः
 सौधर्मदेवलोकान् गच्छ्यत्वा महाविदेहं वर्षे यानि इमानि—वक्ष्यमाणानि कुलानि
 भवन्ति, तद्यथा तान्येव दर्शयति आढयानि—समृद्धानि, दीप्तानि—प्रशंसनीयानि वादुज्ज्व-

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रश्न से ऐसा पूछा है कि हे भद्रन्त-? सूर्या-
 भिमानी की कितने काल की स्थिति कही गई है—३ इसके उत्तर ने प्रश्नने उन
 से वह—गौतम-? सूर्याभिमानी का पल्योपम की स्थिति सौधर्म देवलोक में
 कही गई है । उसके बाद गौतमने पुनः प्रश्न से ऐसा पूछा है कि हे भद्रन्त-?
 जब सूर्याभिमानी के देव सम्बन्धी आयुष्य के दलिकों की निर्जरा हो जावेगी,
 देव मरूप गत्यदि कर्म की निर्जरा हो जावेगी, तथा स्थितिक्षय-सौधर्म
 कल्प में सूर्याभिमानी में कितनेक देवों की चार पल्योपम की स्थिति कहा
 गई है, उनमें—सूर्याभिमानी भी चार पल्योपम की स्थिति वह भी जब क्षयित
 हो जावेगी तब वह देव शरीर से चकर कहां जावेगा—३ कहां उत्पन्न होगा
 —३ इसके उत्तर में प्रश्नने कहा—हे गौतम ? सूर्याभिमानी जीव सौधर्म देवलोक
 से चकर महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल हैं कि जो—आढय—समृद्ध है, दीप्त

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रश्नने आगतने प्रश्न कथो क्व हे भद्रन्त ! सूर्याभिमानी
 देवनी स्थिति क्व स्थिति क्वे वा ? अना उत्तरमा प्रश्नने कथु—गौतम ! सौ-
 धर्म देवलोकमा सूर्याभिमानी स्थिति चार पल्योपम जेटली कहेवामा आयी छे,
 त्पारपछी गौतमे इरी प्रश्नने प्रश्न कथो क्व हे भद्रन्त ! न्यारे सूर्याभिमानी देव
 सम्बन्धी आयुष्य के दलिकों की निर्जरा थछ जशे भवक्षय-देवस्य वृद्ध्यायुः कर्मद-
 लिकनिर्जरा थछ जशे, तेमन् स्थितिक्षय सौधर्म कल्पमा सूर्याभिमानीमा केटली देवानी
 चारपल्योपम जेटली स्थितिमा कहेवाय छे, तेमा सूर्याभिमानी पञ्च चारपल्योपम
 जेटली स्थिति कहेवाय छे ते पञ्च न्यारे क्षयित थछ जशे, त्पारे ते देव शरीर त्पञ्चने
 क्वा जशे ? क्वा उत्पन्न थशे ? अना जवाणमा प्रश्नने कथु हे गौतम ! सूर्याभिमानी
 एव सो धर्म देव लोकानी यवीने महाविदेह क्षेत्रमा जेटली आढय—समृद्ध छे,

लानि, विपुलानि परिवागादिना विशालानि, तथा विस्तीर्णविपुलमवनशयनाऽऽसन-
यानवाहनानि, तत्र विस्तीर्णानिक्षेत्रेण महान्ति, विपुलानि-संख्यया प्रचुराणि
मवनानि-गृहाणि शयनानि-शयनीयानि, आसनानि-पीठफलकादीनि, यानानि-रथ-
शकटादीनि, वाहनानि गजाश्वादीनि येषु (कुलेषु) तानि, तथा बहुधनवहुजात
रूपरजतानि-तत्र-बहूनि-प्रचुराणि धनानि-गरिम धरिम-मेय-परिच्छेद्यरूपाणि,
बहूनि-प्रचुराणि जातरूपाणि-सुवर्णानि रजतानि-रूप्याणि येषु तानि, तथा-
आयोगप्रयोगसंप्रयुक्तानि, तत्र आयोगस्य-अर्थलाभय प्रयोगाः उपायाः, संयुक्ता-
व्यापृता ये स्तानि, तथा-विच्छर्दिप्रचुरमक्तपानानि विच्छर्दिानि-उदारबुद्ध्या
बहुपाचनेनावशिष्टानि, अथवा-विच्छर्दिानि-त्यक्तानि दीनेभ्यो दत्तानि प्रचुराणि
बहूनि मक्तपानानि-येस्तानि, तथा-बहुदासीदासगोमहिषगवलेकप्रभूानि-तत्र
बहवो दासी-दासाः प्रसिद्धाः, प्रभू-ः-प्रचुराः गोमहिषगवलेकाः-तत्र गो-
महिषः प्रसिद्धाः गवलेका-अजा मेपाश्च येषां तानि, तथा-बहुजनत्य अपरिभू-
तानि-अपरिमवनीयानि एतादृशानि तानि कुलानि सन्ति तत्र-तेषां कुलेषु मध्ये

प्रशंसनीय होने से उज्ज्वल है, † पुल-परिवार आदि जनां की अपेक्षा विशाल
है. क्षेत्र की अपेक्षा विस्तीर्ण, एव संख्या की अपेक्षा प्रचुर गृहो वाले है,
विस्तीर्ण विपुल शयन शय्या-एवं-आसनो वाले है, पीठ-फलक दि वाले है, रथ-
शकट-आदिरूप यानो वाले हैं-एव-गज अश्वादिरूप वाहनो वाले हैं, तथा-प्रचुर
गरिम धरिम मेय परिच्छेद्यरूप धनवाले हैं, प्रचुर जातरूप-सुवर्णवाले है, प्रचुर
रजत-चान्दीवाले हैं, तथा-अर्थ के लाभरूप प्रयोग जिनसे व्यापृत हुवे हैं. उदार
बुद्धि से जिनमें बहुतसा अन्न पान बनवाया जाता है, और-स्नाने के बाद
अवशिष्ट वचता है। अर्थात्-दीनों को देने के लिये जिनमें प्रचुर अन्न-पान
तैयार किया जाता है, जिस में बहुत दासी-दास है, बहुतही गो-महिष-और

दीस प्रशंसनीय होवाथी उज्ज्वल छे, विपुल-परिवार वगेरेना होकेनी दृष्टिसे विशाल
छे क्षेत्रनी अपेक्षासे विस्तीर्ण छे, सख्यानी दृष्टिसे प्रचुर अडोवाणा छे, विस्तर्ण
विपुल शयन शय्या अने आसनो वाणा छे पीठ फलक वगेरेवाणा छे, गज अश्व
वगेरे रथ वाहनो वाणा छे, तेमज प्रचुर गरिम धरिम मेय परिच्छेद्यरूप धनवा
छे, प्रचुर जातरूप-सुवर्णवाणा छे, प्रचुर रजत-चान्दीवाणा छे, तथा अर्थलाभरूप
प्रयोग जेमनाथी व्यापृत थयेले छे, उदार बुद्धिथी जेसे पुठण अन्नपान अनाव-
डावे छे अने जस्या पछी पद्य त्या अवशिष्ट रहे छे ओटले के गर्जोने
आपवा भाटे जेसे प्रचुर अन्नपान तैयार करावडावे छे जेमनी पास

अन्यतमग्निन्—कस्मिंश्चिदेकस्मिन् कुले पुत्रनया—पुत्रत्वेन पुत्रो भूत्वेत्यर्थः प्रत्या
या-यति प्रत्यागामिष्यति पुनर्मानुषं भवे जन्म ग्रहीष्यतीत्यर्थः ॥सू० १६६॥

मूलम्—तए णं तसि दारगंसि गन्मगयसि चैव समाणंसि
अम्मापिउणं धम्मं दढा पइण्णा भविस्सइ। तए णं तस्स दारगस्स
माया नवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइंदियाणं वि-
इक्कंताणं सुकुमालपाणियाय अहीणपडिपुण्णपच्चिदियसरीर लवख-
णवंजणगुणोववेयं माएम्माणप्पमाणर्पाडपुण्णसुजायसुव्वगसुदरंग
सत्तिसोम्माकारं कत पियदंरुण रुखुवं दारय पयाहास ॥सू०१६७॥

छाया—ततः खलु तस्मिन् दारके गर्गगते एव सति अम्मा पित्रोः धर्मं
दढो प्रतिज्ञा भविसि त। ततः खलु तस्य दारकस्य माता नवसु मासेषु बहुप्रति-
पूणेषु अर्धाष्टमेषु रात्रिन्दिवेषु व्यतिद्रा तेषु सुकुमालपाणिपादम् अतीनप्रतिपूर्णा-
गवेलक अजा-मेप है, एवं-जो अनेक जनो द्वारा मी अपरिभूत हैं ऐसे कुलो
में से किसी एक कुल में पुत्ररूप से-उप-न होगा। ॥सू० १६६॥

“तएणं तंसि दारगंसि गन्मगयंसि चैव समाणंसि” इत्यादि

मूलार्थ—“तएणं तंसि दारगंसि गन्मगयंसि चैव समाणंसि-” जब वह
दारक गर्भ में आवेगा-तब इस को गर्भ में आते ही-“अम्मापिउणं धम्मं दढा
पइण्णा भविस्सइ-” माता-पिताको-धर्म में दढ प्रतिज्ञा होगी “तएण तस्स
दारगस माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइंदियाणं विइ-
क्कंताणं सुकुमालपाणियायं-” नौ मास साढे सात दिन जब पूरा हो जावेगे
तब उस दारक की माता सुकुमार हाथ-रग वाले-“अहीणपडिपुण्णपच्चिदिय-

हासे छे, धञ्जी गाथे तेमञ् भडिध, गवेसक अन्न, मेप छे अने ने धञ्जा भाञ्जेसे।
वडे पञ्च अपरिभूतछे अवेवा कुलोभाथी ते डेअञ्जेक कुणभा पुत्रइये जन्म पाभथे ॥सू०१६६॥

“त एणं तंसि दारगंसि गन्मगयसि चैव समाणंसि इत्यादि।

मूलार्थ—“त एणं तंसि दारगंसि गन्मगयसि चैव समाणंसि” अन्वये ते
दारक गर्भाभा आवथे-त्यारे तेने गर्भाभा आवता ज “अम्मापिउणं धम्मं दढा
पइण्णा भाविसइ” मातापिताने धर्माभा दढ प्रतिज्ञा थथे “तएणं तस्स दारग-
स माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइं दियाण विइक्कंताण
सुकुमालपाणियायं” नव मास अने साढे सात दिवसे अन्वये पूरा थथ जथे
त्यारे ते दारकनी माता सुकुमार हाथरगवाणा “अहीणपडिपुण्णपच्चिदिय सरीर”

पञ्चेन्द्रियशरीरं लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेतं मानोन्मानप्रमाणप्रतिपूर्णां सुजातसर्वाङ्ग
सुन्दराङ्ग शशिसौम्याऽऽकारं कान्तं प्रियदर्शनं सुरूप दारकं अञ्जनिव्यते ॥सू० १६७॥

टीका—“तए णं तंसि दारगंसि” इत्यादि-व्याख्या निगदसिद्धा । सू० १६७।

मूलम्—तए णं तस्स दारगस्स अम्मो-पियरो पढमे दिवसे
ठिइवडियं करेहिति, तइयदिवसे चंदसूरदंसावणियं करिस्सति, छट्टे
दिवसे जागरियं जागरिस्संति, एक्कारसमे दिवसे वीइकंते संपत्ते
वारसाहे दिवसे णिवित्ते असुइजायकम्मकरणे चोक्खे समज्जिओव-
लित्ते विउलं असणपाणग्वाइमसाइम उवक्खडाविस्संति, मित्त-
णाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं आमंतेत्ता तओ पच्छा णहाया
कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं
वत्थाइ पवरपरिहिया अप्पमहाग्धाभरणाळंक्रियमरीरा भोयणमंडवंसि
सुहासणवरगया तेणं मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणेणं सद्धि
विउल असणं पाणं खाइसं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परि-
भुजेमाणा परिभाएमाणा एवं चेव णं विहरिस्संति, जिमियभुत्तत्त-

सरीर-” अहीन परिपूर्ण पांचा इन्द्रियो से युक्त शरीर-वाले-“लक्ष्मणवञ्जण
गुणोववेय, माणुग्माणप्पमाणपडिपुष्णसुजायसव्वगसुंदरगं ससिसोमाकार-
कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि-” लक्षणव्यञ्जन गुणो वाले, मानोन्मान
प्रमाण प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीरवाले, चन्द्रमा के जैसे सौम्य आभार-
वाले, कान्त-प्रियदर्शनयुक्त, एव-सुरूप सम्पन्न ऐसे, पुत्र को जन्म देगी.
टीकार्थ-स्पष्ट है. ॥सू० १६७॥

अहीन परिपूर्ण पांचे इन्द्रियोधी युक्त शरीर वाणा “लक्ष्मणवञ्जणगुणोववेयं,
माणुग्माणप्पमाणपडिपुष्णसुजायसव्वगसुंदरगं ससिसोमाकार कंतं
पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि” लक्ष्मण व्यञ्जन शुष्णोवणा, मानोन्मान
प्रमाण प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीरवाणा अद्भुत जेवा सौम्य आकाशवाणा,
कान्त-प्रियदर्शन युक्त अने सुख संपन्न जेवा पुत्रने जन्म आपये.

टीकार्थ स्पष्ट छे ॥सू० १६७॥

रागयात्रि य णं समाणा आयता चोत्रस्वा परमसुइभूयात मित्तणाड-
 गियगसयणसंबधिपरिजणं विउलेणं वत्थगंधमह्वालंकारेणं सक्का-
 रिसंति, सम्माणिससंति, तस्सेव मित्तणाड गियगसयणसंबधिपरि-
 जणस्स पुरओ एव वइस्सति-जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्ह इमं
 सि दारगंसि गब्भगयंसि धम्ममे द्वा पइण्णा जाया त होउ णं
 अम्हं एस दारए दढपइण्णे णामेणं। तए णं तस्स
 दारगस्स अम्भा पियरो नामधेज करिसंसंति-दढपइ-
 ण्णेति । तए णं तस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेण ठिइवडियं च १,
 चंदसूरियदंसणावणियं च २, धम्मजागरियं च ३, नामधिज्जकरणं
 च ४, परंगमणं च ५, पचंक्रमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमं-
 णगं च ८, परिवच्चावणगं च ९ पजं पावणगं च १०, कन्नवेहण
 च ११, सवच्छरपाडलेहणेग घ १२ चूडावयायणं च १३, उवणयण
 च १४, अन्नाणि व वहुणि गब्भाहाण जम्मणाइयाइ कोउगाइं
 महया इहिसक्कारसमुदएणं करिसंसंति ॥ सू० १६८ ॥

छाया-ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे स्थिति-
 पतितां करिष्यतः, तृतीयदिवसे चन्द्रस्वरदर्शनिकां करिष्यतः, षष्ठे दिवसे

‘तएण तस्स दारगस्स अम्मापियरो-’ इत्यादि

मूलार्थ-“तएणं-” इसके बाद “तस्स दारगस्स-” उस दारकके, “अम्मापियरो-”
 मातापिता-“पढमे दिवसे-” प्रथम दिवस “ठिइवडिय-” कुलपरम्परा से
 आगत पुत्र जन्मोत्सव रूप क्रिया-“करेहिति-” करेगे-तइयदिवसे “तृतीय
 दिवस-“चंदस्वर दसणावणिय करिसंसंति-” चन्द्रदर्शनरूप एवं-सूर्यदर्शनरूपक्रिया

‘तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो’ इत्यादि ।

मूलार्थ-“तए णं” त्थार पछी “तस्स दारगस्स” ते दारकना “अम्मापियरो”
 मातापिता “पढमे दिवसे” प्रथम दिवसे “ठिइवडिय” कुल पर परागत पुत्र-
 जन्मोत्सव रूप विधिओ “करेहिति” करथे. “तइयदिवसे” त्रीण दिवसे “चंदस्वर
 दसणावणिय करिसंसंति” चन्द्रदर्शन रूप अने सूर्यदर्शनरूप क्रियाओ के के

जागरिकां जागरिष्यतः, एकादशे दिवसे = तिक्रान्ते, संप्राप्ते द्वादशाहे दिवसे, निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे चौक्षे संमार्जितोपलिप्ते (गृहे) विपुलम् अशनपान-खाद्यस्वाद्यम् उपस्कारयिष्यतः, मित्रज्ञानिजकस्वजन भन्धिपरिजनम् आमन्व्य

जो कि-पुत्र जन्मोत्सव पर की जाती है-करेंगे, "छठे दिवसे जागरिय जागरि संति-" छठे दिन रात्रि जागरणरूप क्रिया करेंगे। "एकारसमे दिवसे वीडकसे संपत्ते वारसाहे दिवसे णिव्विते असुइ जायकम्मकरणे-" ग्यारहवां दिन जब व्यतीत हो जावेगा. और-१२-वः दिन जब प्रारम्भ होगा तब उस दिन जन्म सम्बन्धी अशुचिता की निवृत्ति हो चुकने के बाद-"चौक्खे समज्जि ओवलित्ते विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खवाविस्संति-" गृह को शुद्धि क्रिया करेंगे। पहले उस वे सम्मार्जनी-बुहारी से कूड़ा-कचरा निकाल कर साफ करेंगे और-फिर उसे गोमय-आदि से लीपे-पोते करेंगे। इस प्रकार शुद्धिक्रिया हो जाने पर फिर वे अशन-पान-खाद्य, एवं-स्वाद्यरूप चार प्रकार के आहार को पकावेगे-"मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं आमंतेत्ता, तओ पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता-" इसके बाद वे मित्रजनो को-ज्ञाति के जनो को-मातापिता आदिकों को, अपने पुत्रादिकों को, पितृव्यादिक स्वजनों को स्वशुर-पुत्र-शुर आदिको दासी-दास आदिक परिजनों को आमन्त्रित करेंगे, फिर-स्नानकर वलिकर्म-काक आदि को अन्न

पुत्र जन्मोत्सव समये करवाना आवे छे करये. "छठे दिवसे जागरिय जागरि-संति" छठे दिवसे रात्रि जागरण करये "एकारसमे दिवसे वीडकसे संपत्ते वार हे दिवसे णिव्विते असुइ जायकम्म करणे" ग्यारहो दिवस ग्यारे पूरा थये अने ग्यारहो दिवस प्रारंभ थये त्यारे ते दिवसे जन्म सम्बन्धी अशुचितानी निवृत्ति थय थये ते पछी "चौक्खे समज्जिओवलित्ते विउलअसणपाणखाइम साइम उवक्खवा विस्संति" धरने शुद्ध करवाना कार्ये करये. पहिला तेओ सम्मार्जनी-सावरी-थी करये साइ करये अने पछी तेने गोमय वगेरेथी लीपीने स्वच्छ बनावये आ प्रभावे शुद्धि क्रिया थय जवा भाइ पछी ते अशन, पान, पाद्य अने स्वाद्यरूप चार प्रकारना आहारोने बनावरावये. मित्तणाइ पियग सयण संबंधि परिजणं आमंतेत्ता, तओ पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कय कोउय मंगल पायच्छित्ता" तार पछी तेओ मित्रजनोने ज्ञातिजनोने, मातापिता वगेरेने, पोताना पुत्रादिकोने, पितृव्यादिक स्वजनोने, स्वशुर-पुत्र-शुर वगेरेने, दासी दास वगेरे परिजनोने आमन्त्रित करये. पछी स्नान करीने बलिकर्म-कागडा वगेरे पक्षीओने अन्न वगेरेने, भाग आपये ठौतुक मंगल प्रायश्चित्त करये सुद्धपावेसाइ

म्बन्धिपरिजनस्य पुरत एवं वदिप्यतः—यस्मात् खलु देवानुप्रियाः ! आवयोः
अग्निन् दारके गर्भगते एवं सति धर्मे दृढा प्रतिज्ञा जाता तद् भवतु खलु
आवयोः एष दारको दृढप्रतिज्ञो नाम्ना । ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बा-
पितरौ नामधेयं करिष्यतः दृढप्रतिज्ञ इति । ततः खलु तस्य अम्बापितरौ अनु-
पूर्वेण स्थितिपतिता च १, चन्द्रसूर्यदर्शनिकां च २, धर्मजागरिकां च ३, नाम

संमाणिसंति—” भोजन कर चुकने के अनन्तर फिर वे अपने-अपने उपवेशन
(बैठने के) स्थानपर बैठ कर शुद्ध जल से आचमन कर चौखे होंगे, इस तरह
परमशुचिभूत हुवे वे—मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन, सम्बन्धि परिजनों को विपुल
वस्त्र गन्ध माल्य अलङ्कारों से सत्कृत करेंगे । एवं—मानपूर्वक उनका आदर
करेंगे—“त सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजनस पुरओ एवं वइस्सति—”
फिर वे-उन्ही मित्र-ज्ञात-निजक-स्वजन सम्बन्धी परिजनो के समक्ष इस प्रकार
कहेंगे—“जम्हाण देवाणुप्पिया ? अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि चैव समाणसि
धम्मं दृढा पइष्णा जाया—” हे देवानुप्रियों ! जिस कारण से इस दारक के गर्भ में
आते ही हम लोगों की धर्म में दृढ प्रतिज्ञा हुवी, “ते होऊण अम्हं एस दारए
दढपइष्णेण णामेणं—” इस कारण यह हमारा दारक दृढप्रतिज्ञ इस नामवाला
हो—“तएणं तस्स दारगंस अम्मा पियरो नामधेज्जं करिस्संति दढपइष्णेत्ति—”
इस तरह उम दारक के मानापिता उसका दृढ प्रतिज्ञ ऐसा नाम करेंगे ।
“तएणं तस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं टिइवड्डियं च-१ चंदसरियदंसणावणियं च

संमाणिरस ति” भोजन बाद तेजो पोतपोताना उपवेशन स्थानपर बैसीने शुद्ध
जलसे आचमन करीने पवित्र थये आ प्रभाषे परमशुचिभूत—थयेला—ते मित्र-
ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी परिजनोने विपुल वस्त्र, गन्ध, माल्य अलङ्कारो
सत्कृत करीने अने सम्मानपूर्वक तेमनो आदर करीये “तस्सेव मित्तणाइणियग
सयणसंबंधिपरिजनस पुरओ एवं वइस्संति” पछी तेजो ते मित्र-ज्ञाति निजक
स्वजन-संबंधी परिजनोनी, साथे आ प्रभाषे कहेशे—“जम्हाण देवाणुप्पिया !
अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि चैव समाणसि धम्मं दृढा पइष्णा जाया.”
हे देवानुप्रियो ! आ दारक न्यारथी अमारा गणमा आव्यो छे त्यारपछी अमारी
मनसा धर्म प्रत्ये दृढ प्रतिज्ञा करी छे “तं होऊणं अम्हं एस दारए दढ-
पइष्णेण णामेणं” आथी अमारे आ दारक दृढ प्रतिज्ञ आ नामवालो थाय “तएणं
तस्स दारगंस अम्मापियरो नामधेज्जं करिस्संति दढपइष्णेत्ति” आ प्रभाषे
ते दारकना मातापिता तेजुं दृढप्रतिज्ञ ओवु नाम रापथे. “तएणं तस्स अम्मा-
पियरो अणुपुव्वेणं टिइवड्डियं च १ चंदसरियदसणावणियं च २”

धेयकरणं च ४, परगमनं च (पर्यङ्गनं च) ५ प्रचक्रमणकं च ६ प्रत्याख्यानकं च ७ जेमनकं च ८ प्रतिवर्धापनकं च ९ प्रजल्पनकं च १० कर्णवेधनं च ११ संवत्सरप्रतिलेखनकं १२ चूडापनयनं च १३ उपनयनं च १४ अन्यानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिकानि कौतुकानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन करिष्यतः ॥ सू० १६८ ॥

टीका—“तए णं तस्स” इत्यादि—ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे-जन्मदिने स्थितिपतितां—स्थित्या-कुलमर्यादया पतिता-समागता

—२ धम्मजागरियं च—३ नामधिज्जकरणं च—४ परंगमणं च—५ पंचकमणं च—६ पच्चक्खाणयं च—७ जेमणगं च—८ पडिचद्धावणं च—९ पजंपावणगं च—१० कन्नवेहणं च—११ संवच्छरपडिलेहणं च—१२” क्रमशः—जव वे स्थितिपतिज्ज—१३ चंद्रसूर्यदर्शन—२ धर्मजागरण—३ नामकरण—४ इन उत्सवों को कर चुकेगे—तब इनके बाद—परंगमन—५ प्रचक्रमण—६ प्रत्याख्यान—७ अन्नप्राशन—८ प्रतिवर्धापन—९ प्रजल्पनक—१० कर्णवेधन—११ संवत्सर प्रतिलेखनक—१२ “चूडावणयणं—१३ उचणयणं च—१४” अन्नाणिय बहूणि गम्माहाणजम्मणाइयाइ कोउगाइं महया इहिं सक्कारसमुदएणं करिस्संति—” चूडानपयन, और—१४ उपनयन इन अवशिष्ट उत्सवों को करेंगे. तथा—इनके अतिरिक्त और भी बहुत से गर्भाधानादि सम्बन्धी अपनी ऋद्धि के अनुरूप सत्कार करने आदिरूप से करेंगे।
टीकार्थ—उस दारक के बालक मातापिता प्रथम जन्मदिवस के समय कुल मर्यादासे चली आई पुत्रजन्मोत्सव क्रिया करेंगे, इसी के निमित्त तीसरे दिन वे

च ३ नामधिज्जकरणं च ४, परंगमणं च ५, पंचकमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमणगं च ८, पडिचद्धावणं च ९, पजंपावणगं च १०, कन्नवेहणं च ११, संवच्छरपडिलेहणं च १२, अतुक्के अथरे तेओ स्थिति प्रतिज्ञ १ यन्त्र सूर्यदर्शन २, धर्मजागरण ३, नामकरण ४, आ उत्सवो उचयी देशे त्थार ५ परंगमन ५, प्रयउकमण ६, प्रत्याख्यान ७, अन्न प्राशन ८, प्रतिवर्धापन ९, प्रजल्पनक १० कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक १२, “चूडावणयणं १३, उचणयणं च १४, अन्नाणिय बहूणि गम्माहाण जम्मणाइयाइं कोउगाइं महया इहिं सक्कारसमुदएणं करिस्संति” चूडापनयन अने १४ उपनयन आ अवशिष्ट उत्सवो उचयशे तेमळ भीळ पळु धष्ठा गर्भाधान सगधी सत्कार कर्वाइपु काथो पोतानी ऋद्धि अतुसार करेशे.

टीकार्थः—ते दारकना मातापिता जन्मने पडेले दिवसे कुलपर समागत पुत्र जन्मोत्सव क्रियाओ करेशे. ओ निमित्तो ज त्रीळ दिवसे तेओ यन्त्र-सूर्यदर्शन करेशे.

सन्तौ आचान्तौ- शुद्धोदकयोगेन कृताऽऽचमनौ चोद्धौ-लेपसिक्थाद्यपनयनेन स्वच्छौ,
 अत एव परमशुचिभूतौ अतीव पवित्रौ, तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरि
 जनं विपुलेन प्रचुरेण, वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण-तत्र वस्त्राणि-शौ मक-कार्पासिक-
 दुक्कलरूपाणि, गन्धाः- पु-पनिर्यासामोदपरिमलरूपाणि सुगन्धद्रव्याणि, माल्यानि-
 पुष्पमालाः, अलङ्काराणि-कटककुण्डलाद्याभरणानि तेषां समाहारः, तेन सत्करिष्यतः-
 तत्प्रदानेन सत्कार करिष्यतः, सम्मान यष्यतः-मानपूर्वकमादरिष्येते, ततः तस्मैच
 मित्रज्ञातिनिजकरवजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुरतः-अग्रे, एवं-उद्दमणप्रका-
 रेण वदिष्यतः-कथयितः, तदेवाह-हे देवानुप्रियाः ! मित्रादयः ! यस्मात्
 खलु कारणात् अस्मिन् नवजगते दारके शिशौ गर्भगते एवसति-गर्भगते सति
 आवयोः धर्मे-जिनप्ररूपिते धर्मे प्रतिज्ञा-मतिः दृढा-निश्चला जाता, तद्-उस्मात्
 कारणात् आवयोः एष दारको नाम्ना दृढप्रतिज्ञो भवतु । ततः-तदन्तर खलु तस्य
 दृढप्रतिज्ञ य दारकस्य अम्बा पितरौ अनुपूर्वेण-अनुक्रमेण स्थितिपतितां?, चन्द्र-

से आचमन कर, परमशुचि बने हुवे वे अपने मित्रजनों का, ज्ञातेजनों का,
 निजकजनों का, स्वजनों का, सम्बन्धिजनों का, और-परिजनों का विपुल-
 प्रचुर वस्त्रसे, रेशमी-एवं-सूतीवस्त्रोंसे गन्धसे, पुष्परस के आमोद परिमल से,
 पुष्पमालाओं से, कटककुण्डल आदिरूप अलङ्कारों से सत्कारकरेगे एवं मान-
 पूर्वक उनका आदर करेगे । फिर वे-उन्हीं मित्र-ज्ञाति-निजक-वजन-सम्बन्धी
 परिजनों के, समक्ष पेसा कहेंगे-हे, देवानुप्रिय ? मित्रादिको ? जिस कारण से
 यह दारक जब गर्भ में आया था तब से हमलोगों की धर्ममें-जिन प्ररूपित
 मार्ग में मैं ही दृढ-निश्चल हो गई थी, इस कारण हमलोगों का यह-पुत्र नाम
 से 'दृढप्रतिज्ञ हो' ऐसा कहकर वे ल उसका-"दृढ प्रतिज्ञ"- नाम रखेंगे
 उस दृढप्रतिज्ञ बालक के मातापिता क्रमशः-स्थिति पतिता-? चन्द्र-सूय

इत्थी आचमन करीने परमशुचि थयेला तेज्यो पोताना मित्रजनोना, (निजजनोना
 स्वजनोना, सधधीजनोना अने परिजनोना विपुल-प्रचुर वस्त्रोथी, रेशमी अने
 सूती वस्त्रोथी, पुष्परसना आमोद परिमलथी, पुष्पमालाज्योथी, कटक कुण्डल
 आदिको सत्कार करथे अने, सम्मानपूर्वक तेभनो आदर करथे. पछी तेज्यो पोताना
 मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सधधी परिजनोना सामे आ प्रभाषे करथे के हे देवा-
 प्रिये । मित्रवरो । न्यायो आ दारक गर्भमा आये छे त्पारथी अमारी धर्ममा-
 जिन प्ररूपित मार्गमा मति दृढ निश्चल थय गय छे आथी अमारो आ पुत्र दृढ
 प्रतिज्ञ नामथी संशोधित थाय आमा कहीने तेज्यो 'दृढप्रतिज्ञ' अे प्रभाषे तेह नाम
 राभथे ते दृढ प्रतिज्ञदारकना मातापिता अलुकरे (स्थिति पतिता १, चन्द्रसूय) इति शंका २

स्यदर्शनिकां२, धर्मजागरिकां३, नामधेयकरणं४, 'परगमणं इत्यस्य परगमनं पर्यङ्गनं चेतिच्छाया, तत्र परगमनं-वगृहाद् बहिर्गमनम्, पर्यङ्गनम्, अङ्गुलिग्रहण-पूर्वकं भवनाङ्गणे आमणं ५, प्रचन्द्रमणं-स्वतोभ्रमणम् ६, प्रत्याख्यानकम्-आरोग्यार्थाद्यर्थं व्रतादिकरणम् ७, जेमनकम्-अन्नप्राशनम्८, प्रतिवर्धापनकम्-आशीर्वाद-दायकेभ्यो द्रव्यादिदानम्९ प्रजल्पनकं-माता, पिता इत्यादिशब्दपाठनम्१०-कर्णवेधनम्११- संवत्सरप्रतिलेखनकम् जन्मदिनोत्सवम्१२, चूडापनयनं-मुण्डनोत्सवम्१३, उपनयनम्-अध्ययनार्थं कलाचार्यममीपे नयनम्१४, एताश्चतुर्दशोत्सवान् परिष्यतः अन्धानि च बह्विनि गर्भाधानजन्मादिगानि गर्भाधानादिसम्बन्धीनि कौतुकानि-उत्सवजातानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदायेन-ऋद्धिः वस्त्रसुवर्णादिसम्पत् तत् सत्कारः-जनसत्कार करणं, तस्य समुदायः-समूहः, तेन करिष्यतः । म० १६८।

मूलम्—तएषां से दृढपहण्णे दारगे पंचधाईपरिक्खित्ते, तं जहा खीरधारईए१, मज्जणंधाईए२, मडणंधाईए३, अकंधाईए४, किला-

दर्शनिका-२ धर्म जागरिका-३ नामकरण-४ परंगमण-५ परगृहगमन-अने धरसे वाहर निकलने रूप परगमन, अथवा-अङ्गुलिग्रहणपूर्वक भवनाङ्गणमें फिरने रूप पर्यङ्गमन, प्रचंद्रमण-स्वतःभ्रमण-६ प्रत्याख्यान-आरोग्य आदिके लिये व्रतादिकरण-७ जेमनक-अन्नप्राशन-८ प्रतिवर्धापनक-आशीर्वाददायकां के लिये द्रव्यादि देना-९ प्रजल्पनक-मातापिता-इत्यादि शब्दों का उच्चारण करानां-१० कर्णवेधन-११ संवत्सर प्रतिलेखनक-जन्म दिनोत्सव-वर्षगाठ, १२ चूडा पनयन-मुण्डनोत्सव-१३ और-उपनयन, अध्ययनार्थ कलाचार्य के पास ले जाना १४ इन चौदह प्रकारके उत्सवों को, तथा-इनसेभिन्न और भी अनेक गर्भा-धानादि सम्बन्धी-कौतुकों को-उत्सवों को, ऋद्धि सत्कार समुदायसे करेगे । म० १६८।

धर्मजागरिका ३, नामकरण ४, परंगमण ५, परगमन-पर्यङ्गन-पोताना धरथी पीला घर जपु ते परगमन, अथवा अङ्गुलि ग्रहणपूर्वक भवनां गणुमा ज क्षुपु ते पर्यङ्गमन, प्रचंद्रमण-स्वतःभ्रमण ६, प्रत्याख्यान आरोग्य वगेरे कटे व्रतादिकरण ७, जेमनक अन्नप्राशन ८, प्रतिवर्धापनक आशीर्वाद आपनारब्धोने द्रव्य वगेरे आपु ६, प्रजल्पनक-मातापिता वगेरे शब्दोत्तु इत्यारब्धु करपुं. १०, कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक जन्म दिपोत्सव-वर्षगाठ, चूडापनयन, मुण्डनोत्सव १३ अने उपनयन अध्ययन कलाचार्य पास ले जपु ते १४, आ चौदह प्रकारना उत्सवोने तेमज्जण ओभनाथी किन्न पीला पणु धणु गलाधान संभधी कौतुकेने उत्सवोने ऋद्धि सत्कार समुदायपूर्वक करथे. ॥स० १६८॥

सन्तौ आचान्तौ-शुद्धोदकयोगेन कृताऽऽचमनौ चोक्षौ—लेपसिक्थाद्यपनयनेन स्वच्छौ, अत एव परमशुचिभूतौ अतीव पवित्रौ, तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं विपुलेन प्रचुरेण, वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण—उत्र वस्त्राणि-क्षौ मक-कार्पासिक-दुकूलरूपाणि, गन्धाः-पुष्पनिर्यासामोदपरिमलरूपाणि सुगन्धद्रव्याणि, माल्यानि-पुष्पमालाः, अलङ्काराणि-कटककुण्डलाद्याभरणानि तेषां समाहारः, तेन सत्करिष्यतः-तत्प्रदानेन सत्कार करिष्यतः, सम्मान यष्यतः—मानपूर्वकमादरिष्येते, ततः तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुरतः—अग्रे, एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण वदिष्यतः—कथं यतः, तद्देवाह—हे देवानुप्रियाः ! मित्रादयः ! यस्मात् खलु कारणात् अस्मिन् नवज्जाते दारके शिशौ गर्भगते एवसति—गर्भगते सति आवयोः धर्मे-जिनप्ररूपिते धर्मे प्रतिज्ञा-मतिः दृढा-निश्चला जाता, तद्-गस्मात् कारणात् आवयोः एष दारको नाम्ना दृढप्रतिज्ञो भवतु । ततः—तदन्तरं खलु तस्य दृढप्रतिज्ञं य दारकस्य अम्बा पितरौ अनुपूर्वेण-अनुक्रमेण स्थितिपतितां?, चन्द्र-

से आचमन कर, परमशुचि बने हुवे वे अपने मित्रजनों का, ज्ञातेजनों का, निजकजनों का, स्वजनों का, सम्बन्धिजनों का, और परिजनो का विपुल-प्रचुर वस्त्रसे, रेशमी-एवं-सूतीवस्त्रोंसे गन्धसे, पुष्परस के आमोद, परिमल से, पुष्पमालाओं से, कटककुण्डल आदिरूप अलङ्कारो से सत्कारकरेगे एवं मान-पूर्वक उनका आदर करेगे । फिर वे—उन्हीं मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धी परिजनों के समक्ष ऐसा कहेंगे—हे देवानुप्रिय ? मित्रादिको ? जिस कारण से यह दारक जब गर्भ में आया था तब से हमलोगों की धर्ममें-जिन प्ररूपित मार्ग में मैं म न दृढ-निश्चल हो गई थी, इस कारण हमलोगों का यह-पुत्र नाम से दृढप्रतिज्ञ हो' ऐसा कहकर वे ल उसका—“दृढ प्रतिज्ञ—” नाम रखेंगे उस दृढप्रतिज्ञ बालक के मातापिता क्रमशः—स्थिति पतिता—? चन्द्र-सूच्य

दृढथी आचमन करीने परमशुचि थयेदा तेजो पोताना मित्रजनोने, (निजकजनोंने) स्वजनोने, सौधीजनोने अने परिजनोने विपुल-प्रचुर वस्त्रोथी, रेशमी अने सूती वस्त्रोथी, पुष्परसना आभोद परिमलथी, पुष्पमालाओथी, कटक कुण्डलरूप अलङ्कारोथी सत्कार करथे अने सम्मानपूर्वक तेमने आदर करथे पछी तेजो पोताना मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सौधी परिजनोनी साथे आ प्रभाषे कहेथे हे देवानुप्रियो ! मित्रवरो ! न्यारथो आ दारको गर्भमा आयेथे छे त्यारथी अमारी धर्ममान्जिन प्ररूपित मार्गमा मति दृढ निश्चल यध गध छे आथी अमारी आ पुत्र दृढ प्रतिज्ञ नामथी संशोधित थाय आम् कहीने ते लोको 'दृढप्रतिज्ञ'ओ प्रभाषे तेतु नाम राभथे ते दृढ प्रतिज्ञदारकना मातापिता अतुकमे स्थिति पतिता १, चन्द्रसूच्य दृष्टान्तका २

स्य दशनिर्कां२, धर्मजागरिकां३, नामधेयकरणं४, परगमणं इत्यस्य परगमनं पर्यङ्गनं चैतच्छाया, तत्र परगमनं-वगृहाद् वहिर्गमनम्, पर्यङ्गनम्, अशुलिग्रहण-पूर्वकं मन्नाङ्गणे आमणं ५, प्रचन्द्रमण-स्वतोभ्रमणम् ६, प्रत्याख्यानकम्-आरोग्याद्यर्थं व्रतादिकरणम् ७, जेमनकम्-अन्नप्राशनम् ८, प्रतिवर्धापनकम्-आशीर्वाद-दायकेभ्यो द्रव्यादिदानम् ९ प्रजल्पनकं-माता, पिता इत्यादिशब्दपाठनम् १०, कर्णवेधनम् ११, संवत्सरप्रतिलेखनकम्-जन्मदिनोत्सवम् १२, चूडापनयनं-मुण्डनोत्सवम् १३, उपनयनम्-अध्ययनार्थं कलाचार्यमभीषे नयनम् १४, एताश्चतुर्दशोत्सवान् परिष्यतः अग्नानि च बह्वनि गर्माधानजन्मादिगानि गर्माधानादिसम्बन्धीनि कौतुकानि-उल्लवजातानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदायेन-ऋद्धिः वस्त्रसुवर्णादिसम्पत्तौ सत्कारः-जन्मसत्कारं करणं, तस्य समुदायः-समूहः, तेन करिष्यतः । सू० १६८ ।

मूलम्—तएषां से दृढपङ्कणे दारणे पंचधाईपरिक्खत्ते, तं जहा खीरधारईए१, मज्जणं धाईए२, मडणं धाईए३, अंक धाईए४. किला-

दर्शिका-२ धर्म जागरिका-३ नामकरण-४ परंगमण-५ परगृहगमन-अग्ने धरसे वाहर निकलने रूप परगमन, अथवा-अशुलिग्रहणपूर्वकं भवनाङ्गणमें फिरने रूप पर्यङ्गमन, प्रचंद्रमण-स्वतःभ्रमण-६ प्रत्याख्यान-आरोग्य आदिके लिये व्रतादिकरण-७ जेमनक-अन्नप्राशन-८ प्रतिवर्धापनक-आशीर्वाददायकां के लिये द्रव्यादि देना-९ प्रजल्पनक-मातापिता-इत्यादि शब्दों का उच्चारण कराना-१० कर्णवेधन-११ संवत्सर प्रतिलेखनक-जन्म दिनोत्सव-वर्षगांठ, १२ चूडा पनयन-मुण्डनोत्सव-१३ और-उपनयन, अध्ययनार्थं कलाचार्य के पास ले जाना १४ इन चौदह प्रकारके उत्सवों को, तथा-इनसेमिन्न और भी अनेक गर्माधानादि सम्बन्धी-कौतुकों को-उत्सवों को, ऋद्धि सत्कार समुदायसे करे गे । सू० १६८ ।

धर्मजागरिका ३, नामकरण ४, परंगमण ५, परगमन-पर्यङ्गन-पोताना धरथी भीष्म धेर जपु ते परगमन, अथवा अशुलिग्रहणपूर्वकं भवनाङ्गणमा ज हरपु ते पर्यङ्गमन, प्रचन्द्रमण-स्वतोभ्रमण ६, प्रत्याख्यान आरोग्य वगेरे माटे मतादिकरण ७, जेमनक अन्नप्राशन ८, प्रतिवर्धापनक आशीर्वाद आपनाराज्योने द्रव्य वगेरे आपुं ९, प्रजल्पनक-मातापिता वगेरे शब्दोत्तु उच्चारण करपुं. १०, कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक जन्म दिपोत्सव-वर्षगांठ, चूडापनयन, मुण्डनोत्सव १३ अने उपनयन अध्ययन कलाचार्य पास ले जपु ते १४, आ चौद प्रकारना उत्सवोने तेमज्जणेमनाथी मिन्न भीष्म पणु धणु गताधान संबन्धी कौतुकोने उत्सवोने ऋद्धि सत्कार समुदायपूर्वकं करे. ॥ सू० १६८ ॥

अन्यामिश्च बहुमिः कुब्जाभिश्चिला तिकाभिःर्वांसिनिकाभिः १, वटमिकाभिः२,
 बर्बरी भेः३, बकुशिका मः ४, यौनिकाभिः५, पल्हविकाभिः६, इसिनिकाभिः७,
 वासिनिकाभिः लासिकाभिः ९, लकुशिकाभिः १० द्राविडीभिः
 ११, सिंहलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कणीभिः १४, वहलीभिः
 १५, मुरुण्डीभिः १६, श्वरीभिः १७, पारसीभिः १८, नानादेशीयाभिः विदेश-
 परिमण्डिताभिः स्वदेशनेपथ्यगृहीतवेयाभिः इङ्गितचिन्तितप्रार्थित विज्ञायिकाभिः

माता से, मण्डन घाय माता से—मपीतिलक आदि द्वारा मण्डन 'अलङ्कृत' करानेवाली
 उपमाता से अङ्कधात्री माता से—उत्सङ्ग—गोद में लेकर खिलाने वाली—उप-
 माता से, क्रीडनधात्री माता से—विविध प्रकार की क्रीडाएं करानेवाली उप
 माता से. इन पांच प्रकार की धात्रियों से युक्त हुवा—“अन्नाहिय बहृहिं सुज्जाहिं
 चिलाइयाहिं वामणियाहिं बडमियाहिं बच्चराहिं वाउसयाहिं जोण्हियाहिं पल्ह-
 वियाहिं ईसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं—” तथा—इन से अतिरिक्त
 और भी अनेक र की वक्रपृष्ठवाली—एवं अनार्यदेशोत्पन्न तुमकी—हृन्-
 शरीरवाली—१ वटमिका—२ हीन एकपार्श्व भागवाली बर्बरा—३ बर्बरदेशोत्पन्ना
 बकुशिका—४ यौनिका—५ पल्हविका—६—ईसिनिका—७ वासिनिका—८ लासिका—९
 “लउसियाहिं” लकुशिका १० “दविडीहिं—” द्राविडी—११ “सिंहलीहिं आर-
 वीहिं—पक्कणीहिं—वहलीहिं—मुरुडीहिं—सव्वरीहिं—” पारसीहिं सिंहली—१३ आरवी,
 पक्कणी—१४ वहली—१५ मुरुण्डी—१६ श्वरी—१७ पारसी—१८ ‘णाणादेसीहिं—’
 अपने—अपने नामानुरूप देशों में उत्पन्न हुवी—तथा—“विदेसपरिमंडियाहिं—”

मपीतिलक वगेरे द्वारा मण्डन करानेवाली उपमाताथी, अङ्कधात्री माताथी, उत्सङ्ग
 जोणाभा भेसाडीने रमाडनार उपमाताथी युक्त थयेले “अन्नाहिय बहृहिं सुज्जा
 हिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं बडमियाहिं बच्चराहिं वाउसियाहिं-
 जोण्हियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं” तेम
 पीछे पद्य अनेक प्रकारनी वक्रपृष्ठवाणी अने अनार्यदेशोत्पन्न 'डी' गण्ठी १, वटमिका
 २, हीन अेक पार्श्वभागवाणी, बर्बरा ३—बर्बर देशोत्पन्ना, बकुशिका, ४ यौनिका
 ५, पल्हविका ६, इसिनिका ७, वासिनिका ८, लासिका ९ “लउसियाहिं” लकुशिका
 १०, “दविडीहिं” द्राविडी ११, “सिंहलीहिं आरवीहिं पक्कणीहिं—वहलीहिं-
 मुरुण्डीहिं सव्वरीहिं पारसीहिं—” सिंहली १३. आरवी पक्कणी १४. वहली १५
 भाउडी १६—श्वरी १७. पारसी १८. “णाणादेसीहिं” पोतपोताना, देशोभा
 उत्पन्न थयेली. तथा ‘विदेसपरिमंडियाहिं’ वीदेशी देशभूषाभा सुसज्ज “सदेस-
 नेवत्यगाहियवेसाहिं, इंगियचितियपंथियवियाणियाहिं, निउणकुसलाहिं,

निपुणकुशलामिः विनीतामिः चैटिकाचक्रवालतरुणीवृन्दपरिवार—परिवृतः वर्ष-
ध कञ्चुकिमहत्तरकवृन्दपरिक्षिप्तः हस्ताद् हस्तं संहिद्यमाणाः २ अङ्गाद् अङ्ग
परिमोज्यमानः २ उपनृत्यमानः २ उपगीयमानः २ उपलाल्यमानः २ उपगूह्यमानः
२ श्लिष्यमाणः २ परिवन्धमानः २ परिचुम्ब्यमानः २ रम्येषु मणिकुट्टिमतलेषु
पर्यङ्ग्यमाणः २ गिरिकन्दरालीन इव चम्पकवरपादपः निर्व्याघाते सुखसुखेन
परिबर्धिष्यते ॥ सू० १६९ ॥

विदेश के वेष से सजी हुवी, 'सदेसनेव-थगहियवेसाहि, इ गिय
चित्तिपथियवि-णिगियाहि निउणकुसलाहि, णिणीयाहि—' और अपने देश
में वस्त्राभूषणों को जिस तरह से पहिना जाता है, उस तरह से वेष को
धारण करनेवाली, तथा—इङ्गित-चिन्तित-प्रार्थित को अच्छी तरह से समझ
लेने वाली, नारियों के बीच कुशल, विनय सम्पन्न, स्त्रियों से, तथा—'वेडिया
चक्कवालतरुणीवन्दपरियालपरिवुडे, वरिसघरकंचुइज्जमहत्तरगवन्दपरिविक्ख-
त्ते—' और मी दासियों के समूह से एवं युवतियों के समूह से परिवेष्टित
हुवा, तथा वर्षधर, कञ्चुकी, और महत्तरक इन के समूह से परिवेष्टित हुवा,
एवम्—'हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे-२ उपलालिज्जमाणे-२ उवगूहिज्जमाणे-२
अवयासिज्जमाणे-परियंदिज्जमाणे २ परिचुंविज्जमाणे-२ रम्मेसु मणिकुट्टिमतलेसु
परंगिज्जमाणे २" एक हाथ से दूसरे हाथों में बारंबार-जाता हुवा, एक
गोदी से दूसरी गोदी में बारबार नृत्य क्रिया दिखाने से संतुष्ट किया गया.
बारबार-मधुर वचनादि द्वारा लाड लड़ाया गया, बारबार-२ दृष्टि दोष को दूर
करने के लिये वस्त्रादिकों द्वारा ढांका गया, बारबार हृदय से लगाकर आलि-

विणीयाहि' अने चोतपोताना देशभा वस्त्राभूषणो जे रीते पहरेथ छ ते रीते
वेषधारण करनारी तथा छ गित चित्त अने प्रार्थित ने सारी रीते लक्षनारी स्त्री
वर्गभा कुशल विनय सम्पन्न स्त्रीओथी तेमज 'वेडियाचक्कवालतरुणीवन्द
परियालपरिवुडे, वरिसघरकंचुइज्जमहत्तरगवन्दपरिविक्खत्ते' नील पथु हासी-
ओना समूहथी अने युवतीओना समूहथी परिवेष्टित थयेली तेमज वर्षधर कञ्चुकी
अने महत्तरक ओमना समूहथी परिवेष्टित थयेली अने 'हत्थाओ हत्थं साहरि-
ज्जमाणे २ उपलालिज्जमाणे २, उवगूहिज्जमाणे २, अवयासिज्जमाणे २, परि-
यंदिज्जमाणे २ परिचुंविज्जमाणे २, रम्मेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे-२"
ओके हाथेथी नील हाथभा बारबार जतो ओकेना जोणोमेथी, नीलना जोणोभा
बारबार लछ जवातो, बारबार नृत्य क्रिया अवापीने संतुष्ट करयेली, वा-वार-मधुर
वचनेो वडे लाड करीने, बारबार दृष्टि दोषने दूर करवा' माटे वस्त्रादिकोथी हाडेली,

टीकाः—“तए णं से दृढपङ्णे” इत्यादि—ततः खलु म दृढप्रतिज्ञो दारकः पञ्चधात्रीभिः—बालस्य स्तन्यपानादिकारिकाभिः पञ्चमिर्धात्रीभिः रिक्षितः—परिधृतः, मूले “पञ्चधाईपरिक्खत्ते” इत्यत्र ‘पञ्चधाई’ इति लुप्तवृत्तीन्तं पञ्, तेन ‘पञ्चधात्रीभिः’ इतिच्छाया, तद्यथा—क्षीरधात्र्या—स्तन्यपायिकया १, मज्जनधात्र्या—स्नपनकारिकया २, मण्डनधात्र्या—मपीतिलकादिभिर्मण्डनकारिकया ३, अङ्गधात्र्या उत्सङ्गस्थापिकया ४, क्रीडनधात्र्या—क्रीडनकारिकया ५ । एवं प्रकाराभिः पञ्चमिर्धात्रीभिः परिधृतः—युक्तः। तथा—अन्याभिः—अतदतिरिक्ताभिरपि बहुभिः—बहुप्रकाराभिः, कुञ्जाभिः—वक्रगुष्ठाभिः, चिलातिगाभिः—अनार्यदेशोत्पन्नाभिः, कामिः ? इत्याह—शामनिकाभिः—इस्वकायाभिः १, वटमिकाभिः—मडहकोष्ठाभिः—हीनैकपार्श्वभागाभिरित्यर्थः २, बवंरीभिः—बवंदेशोद्भवाभिः ३, वकुशिकाभिः ४, यौनिकाभिः ५, पल्लविकाभिः ६, इसिनिकाभिः ७, वासिनिकाभिः ८, लासिकाभिः ९, लङ्कुशिकाभिः १०, द्राविडीभिः ११, सिंहिलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कीभिः १४, बहलीभिः १५, मुण्ण्डीभिः १६, श्वरीभिः १७, पारसीभिः १८, एवमेताभिः तत्तन्नामानुरूपनानादेशीयाभिः—अनेरदेशोद्भवाभिः विदेशपरिमण्डि-

न किया गया. “चिरकाल तक जीवित रहो—” इस तरह के शुभाशीर्वादो से बधाया गया, बारवार चुम्बन किया गया—“रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे-२ गिरिकंदरमल्लीणे विव चपगवरपायवे निच्चाघायंसि, सुह सुहेणं परिविह्वैस्सइ—” तथा रम्य—रमणीय मणिकुट्टिमतलों में रत्न जड़ित-अङ्गणों में बार-२ चलता हुआ. गिरिगुहा में स्थित चपकवृक्ष की तरह निराबाध स्थान में सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करेगा.

टीकार्थ—मूलार्थ जैसा ही है, पान्तु फिर भी जो विशेषता है वह ऐसी है—“पञ्चधाई परिक्खत्ते-” यहाँ-पञ्चधाई पद लुप्त वृत्तीयाचिमक्ति वाला है, अतः—इसकी छाया-पञ्च धात्रीभिः ऐसी करनी चाहिये। “विदेशपरिमण्डि-

बार बार लुद्धने चांपीने आदिगन करेवे। “धल्लु लुवे” आ नतना शुभाशीर्वादोथी वधाभष्ठी आपेवे। बार बार युमित करेवे। “रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे २ गिरिकंदरमल्लीणे विव-चपगवरपायवे निच्चाघायंसि सुहसुहेणं परिविह्वैस्सइ” तेभं रम्य-रमणीय भस्त्रिकुट्टिमतलोभा, रत्नजड़ित आगच्छाओभा बार बार आसतो, गिरिगुहाभा स्थित चपक वृक्षनी नेभ सुखपूर्वक मोटो थतो गये।
टीकार्थ—मूलार्थ प्रभावे च छ. पक्ष छत्ताये ने विशेषता न्बुधय छ ते आ प्रभावे छ “पञ्चधाई परिक्खत्ते” अही “पञ्चधाई” पद लुप्तवृत्तीया विभक्तिधुक्त छ. अथी “पञ्चधात्रीभिः” अथी छाया करवी नेछ्छे. “विदेशपरिमण्डिताभिः”

ताभिः—विदेश इति विदेशवेषः, तेन परिमण्डिताभिः विभूषिताभिः, स्वदेश-
 नेपथ्यगृहीतवेषाभिः—स्वदेशे निजदेशे यन्नेपथ्यवस्त्राऽऽभूषणानां परिधानादिरचना
 तद्वद् गृहीतो वेषो यामिःतागतथा, ताभिः. इति तच्चिन्तितप्रार्थितविज्ञायिकाभिः
 तत्र इङ्कितं निपुणमतिगम्यं अभिप्रायरूपं प्रवृत्तिनिवृत्तिसूचकमीषद्भूशिरःकम्पादिकं,
 चिन्तितं-हृदयगतं, प्रार्थितम्-अभिलषितं च विजानन्ति यास्तागतथा ताभिः, निपुण-
 कुशलाभिःनिपुणानां चतुरनारीणां मध्ये याः कुशलाः-दक्षारताभिः, विनीताभिः-विनय-
 सम्पन्नाभिः परिक्षिप्त' इति पूर्वेण सम्बन्धः । पुनश्च चेटिकाचक्रवालतरुणीवृन्द-
 परिवारपरिवृतः-चेटिकाचक्रवालः दासीममूहः, तरुणीवृन्दं युवति मूहः, तस्य
 परिवारेण परिवृतः परिवेष्टितः, पुन वर्षधरकञ्चुकिमहत्तरकवृन्दपरिक्षिप्तः, तत्र
 वर्षधराः अन्तःपुरकार्यकारिणो नपुंसकाः, कञ्चुकिनः अन्तःपुरप्रयोजननिवेदकाः
 अन्तःपुरप्रतीहारा वा, महत्तरकाः अन्तःपुरकार्यचिन्तकाः, तेषां वृन्देन—समूहेन
 परिक्षिप्तः परिवृतः स ह ताद् हस्तम् एकं हस्ताद् अन्यहस्तं संद्वियमाण २=वारं
 वारं नीयमानः अत्र विप्सायां द्वित्वम्, एवमग्रेऽपि, एवम् अङ्गाद् अङ्गम् एतस्या
 उत्सङ्गाद् अन्य या उत्सङ्गं परिमोज्यमानः—पाल्यमानः, उपनृत्यमानः, नर्तन
 दर्शनेन परितोष्यमाणः, उपगीयमानः गानं श्राव्यमानः, उलाल्यमानः ललित
 मधुरवचनादिना लाल्यमानः उपगूह्यमानः दृष्टिदोषादिनिवारणार्थं वस्त्रादिभिरा-
 न्तःपुरमानः, श्लिष्यमाणः हृदयसंलग्नेन आलिङ्ग्यमानः परिविन्द्यमानः “चिरं
 जीव्याद्” इत्याद्याशीर्वचनैः स्तूयमानः, परचुम्ब्यमानः, परिचुम्ब्यमानः, रम्येषु

ताभिः” में जो विदेश शब्द आया है वह “विदेश वेष अर्थ” में है, इङ्कित वह
 चेष्टा विशेष है जो निपुणमतिद्वारा ही जाना जाता है, यह प्रवृत्ति निवृत्ति
 का सूचक होता है, तथा इस में थोड़े से रूपमें शिरकम्पाना द किया जाता
 है। हृदयगत अभिप्राय का नाम चिन्तित है, तथा-अभिलषित का नाम-
 प्रार्थित है। अन्तःपुर में जो कार्य करने के लिये नियुक्त किये जाते हैं, एवं
 जो नपुंसक होते हैं-इनका नाम वर्षधर है। अन्तःपुर सम्बन्धी प्रयोजनों का
 निवेदक होते हैं, अथवा-अन्तःपुर में जो प्रतिहारका काम करते हैं वे-कञ्चुकी-
 मा ने विदेश शब्द आवेक छ ते 'विदेश वेष' अर्थमा वपरायेक छ. छ गित-ने-
 ते चेष्टा विशेष छ. ने निपुणमति वडे ने अन्तःपुर शक्य छ आर प्रवृत्ति-
 सूचक होय छ. तथा अन्तःपुरीषी शिरकम्पनादि करवाभा आवे छ, हृदयगत
 अभिप्राय ने चिन्तित छे छ. तथा अभिलषितने प्रार्थित-छे छ अतः पुरमा-
 काम करे छ अने ने नपुंसक होय छ ते वर्षधर छ अन्तःपुर स अपी प्रयोजनो-
 ने ने निवेदक होय छ, अथवा अन्तःपुरमा ने प्रतिहारक काम करे छ ते कञ्चुकी

रमणियेषु मणिकुट्टीमनलेषु स्तनजटिताङ्गणेषु पद्मङ्गमाणः२=पुनः पुनश्चद्वन्द्वभ्यमाणः,
 सन् गिरीन्दगालीनः गिरिगुहास्थितः चम्पवर इव इव श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष इव
 नीर्व्याधाते नीरावाये स्थाने सुखपूर्वकं पत्रिर्धिष्यते वृद्धिं प्राप यति ॥सू० १६९॥

मूलम्—तए णं त दृढपङ्कणं दारगं अम्मापियरो साङ्गरेग अट्ट-
 वासजायगं जाणित्ता सोभणांसि तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तत्ति ण्हायं
 कयबलिकम्मं कयक्रोउयसंगलपायच्छत्तं सव्वालकारविभूसियं करेत्ता
 महया इहि ड्ढुस्कारसमुदणं कलायरियस्स उवणेहिति । तए णं से
 कलायरिए तं दृढपण्णं दारग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-
 रुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ
 यकरणओ य सिक्खावेहिइ य, सेहावेहिइ य तं जहा—लेहं १ गणियं २
 रूवं ३ = दृ ४ गीय ५ वाइय ६ सरगयं ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं
 १० जणवा ११ पासग १२ अट्टा यं १३ पोरेवच्च १४ दगमट्टियं
 १५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहिं १९
 सयणविहिं २० अज्ज २१ पहेलियं २२ मागहिं २३ णिदाइय २४
 गाहं २५ गीइय २६ सिलोगं २७ हिरण्णजुत्तिं २८ सुवण्णजुत्तिं २९
 आभरणविहिं ३० तरुणीपडिकम्म ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरसल-
 क्खण ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ कुडलक्खणं ३६ छत्त-
 लक्खणं ३७ चकलक्खणं ३८ डलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४०
 मणिलक्खणं ४१ कोगणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ णगरमाणं ४४

कहलाते हैं, अमः-पुर में क्या क्या कार्य होता है, इति आदिकां चिन्तन करने वाले होते हैं. वे-महत्तरक हैं ॥ सू० १६९ ॥

४४वाय छ. अंत पुरमा शुं शु काम ध्वत्तं छ, तेनी विचारुषु ४२वाश भद्रतरक
 ४४वाय छ ॥ सू० १६९ ॥

खंधावारमाणं ४५ चारं ४६ पंडिचारं ४७ वूह ४८ चक्रवूहं ४९
 गरुलवूह ५० सगडवूह ५१ जुद्धं ५२ नियुद्धं ५३ जुद्धजुद्धं ५४
 अट्टिजुद्ध ५५ मुट्टिजुद्धं ५६ वाहुजुद्धं ५७ लयाजुद्ध ५८ ईसत्थं
 ५९ छरुपवाय ६० धणुवेयं ६१ हिरणपागं ६२ सुवणपागं ६३
 मणिपागं ६४ धाउपागं ६५ सुत्तखेड ६६ वद्धखेड ६७ णालियाखेड
 ६८ पत्तच्छेजं ६९ कडगज्छेजं ७० सजीवनिज्जीव ७१ सउणरुय
 ७२ इति । ॥सू० १७० ॥

छाया-ततः खलु तं ददप्रतिज्ञं दा कम् अम्मापितरौ सातिरे, षष्ठवर्षं जातकं
 ज्ञात्वा शोभनं तिथिहरणनक्षत्रमुहूर्ते स्नातं कृतबलिकर्माणं कृतकौतुकमंलप्राय
 श्रित्त सर्वालङ्कारविभूषितं कृत्वा महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन कलाचारस्य उप-

“तए णं तं ददपइण्णं” इत्यादि

मूलार्थ—“तए णं” इसके बाद—“ददपइण्णं—” दद प्रतिज्ञ “दारगं” दारक
 वालक को—“अम्मापियरो” मातापिता “साइरेगअट्टवासजायगं जाणित्ता—’
 आठ वर्ष से कुछ अधिक का हुवा जानकर—“सोमणंसि तिहिकरणक्वत्त-
 मुहुत्तंसि ण्हायं” शोभनतिथि नक्षत्र मुहूर्त में उसे स्नान कराकर—‘कयबलिकम्मं
 कयकोउयमंगलपायच्छित्तं, सव्वालंकारविभूसिय करेत्ता—” उससे बलि कर्म
 काकआदि को अन्नादि का माग देकर, कौतुकमङ्गलरुष प्रायश्चित्तका कर,
 एवं—उसे समस्त अलङ्कारों से विभूषितकर—“महया इहं ईसकारसमुदएणं कला-
 यरियस्स उपणेहिंति—” अपनी विशाल ऋद्धि के अनुरूप सत्कारपूर्वक कला-

“तए णं तं ददपइण्णं” इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘ददपइण्णं’ ददप्रतिज्ञ ‘दारगं’ दारक-भाण्डने
 ‘अम्मा पियरो’ मातापिताओंके “साइरेगअट्टवासजायगं जाणित्ता’ आठ वर्ष
 करता थोडा थोडा थथेद नक्षत्रेने ‘सोमणंसि तिहिकरणक्वत्तमुहुत्तंसि ण्हाय’
 शोभनतिथि नक्षत्र मुहूर्तमें तेने स्नान करावथे, ‘कयबलिकम्मं, कयकोउयमंगल-
 पायच्छित्तं, सव्वालंकारविभूसिय करेत्ता’ तेना वडे अलिकर्म—अंगडा वगेरेने
 अन्न वगेरेने भाग अथावधवीने, कौतुक मंगलरुष प्रायश्चित्त करावीने अने तेने
 समस्त अलंकारेशी-विभूषित करीने ‘महया इहं ईसकारसमुदएणं कलायरियस्स
 उपणेहिंति’ पोतानी विशाल ऋद्धिना अनुरूप सत्कारपूर्वक कलाचारस्ये,

नेष : । ताः खत्र स कलाऽऽचाः तं ददप्रनिज्ञ द्वाकं लेखादिमा गणि-
प्रधानाः शुकुररुतार्यवसानाः द्वासप्तति कलाः सूत्रतश्च अर्थतश्च क गतश्च शिक्ष-
यिष्यति च साधयिष्यति च, तद्यथा-लेखं १, गणितं २ रूपं ३ नाटयं ४,
गीतं ५, नादितं ६, स्वरगतं ७ पुष्करगतं ८, समतालं ९, द्यूत १०, जनवादं
११, पाशकम् १२, अष्टापदं १३, पौरकृत्य १४, टकमृत्तिकाम् १५, अन्न-
विधि १६, पानविधि १७, वस्त्रविधि १८ विलेपनविधि १९, शयनविधिम्
२०, आर्या २१, प्रहेलिकाः २२, मागधिकां २३, निद्रायिका २४, गाथां २५,

चार्य के पास मेजेगे। “तए ण से कला रिए तं ददपडणं दारग लेहाड आओ
गणिः हाणाओ सउणरुग ज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य
गथओ य ऋणओ य सिक्खावेहि इय सेहावेहि इय-” वह कलाचार्य उस
ददप्रनिज्ञ दा क को लेखादिरु गणित प्रधा कलासे लेकर शुकुररु। तरु
की ७२ कलाओ को सूत्र-अर्थ और-दुभय, एवं-कणरूप सिक्खावेगा, एवं
इन्हें सिद्ध मी करावेगा, “तं जहा-लेहं १ गणि २ । वं ३ नइं ४ गीयं-
५-वाययं-६ सरगयं-७ पुक्खरगयं-८ समतालं-९-” वे वहत्त कला इस प्रकार
से हैं लेखन-१ गणित-२ रूप-३ नाटय-४ गीत-५ नादित-६ स्वरगत-७
पुष्करगत-८ समताल-९ “ज्यं-” द्यूत-१० “जणवाय-” जन १३-११
“पासगं” पायक-“अट्टावय-” अष्टापद-“पोरेकञ्चं-” पौरकृत्य-“दंगमद्विय-”
टकमृत्तिका-“अन्नविहिं” अन्नविधि- पाणविहिं- पानविधि-वत्थविहिं वस्त्रविधि
‘विलेपणविहिं-’ विलेपनविधि-‘सय विहिं-’ शयनविधि-‘अज्जं-’ आर्या-‘पहेलिसं-’
प्रहेलिका-‘मागहियं-’ मागधिका-‘णिदाइयं-’ निद्रायिका-‘गाहं-’ गाथा-‘गीइयं-’

‘तए ण से कलाया ए त ददपडणं दा ग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-
रुयपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओय अत्थओय गथओय ऋणओय
सिक्खावे हइय सेहावेहिइय’ ते कलाचार्य ते ददप्रतिज्ञाकरने वेणादिक- गञ्जित
प्रधा प्रधाथी भाडीने शुकुररुत सुधीनी ७२ कलाओने, सूत्र अर्थ अने तदुभय अने
कस्सुइपथी शीषवसे अने अयेमने सिद्ध पणु करावसे त जहा लेहं १, गणिय
२, रूपं ३, नइं ४ गीय ५, वाइय ६, सरगय ७, पुक्खरगय ८, समतालं ९,
ते ७२ कलाओ आ प्रभावे छे-वेपन १, गञ्जित २, रूप ३, नाटय ४, गीत ५,
नादित ६, स्वरगत ७, पुष्करगत ८, समताल ९, ‘ज्यं-’ द्यूत १० ‘जणवायं’
जनवाद ११, ‘पासगं’ पायक, ‘अट्टावयं’ अष्टापद ‘पोरेकञ्चं’ पौरकृत्य ‘दंगमद्वियं’
टकमृत्तिका, ‘अन्नविहिं’ अन्नविधि, ‘पाणविहिं’ पानविधि ‘वत्थविहिं’ वस्त्रविधि,
‘विलेपणविहिं’ विलेपनविधि, ‘सयणविहिं’ शयनविधि, ‘अज्जं आर्या, ‘पहेलियं’
प्रहेलिका, ‘मागहियं’ मागधिका, ‘णिदाइयं’ निद्रायिका, ‘गाहं’ गाथा, ‘गीइयं’ गीतिका,

घातुपाकं ६५ सूत्रखेलं ६६ वर्तखेलं ६७ नालिकाखेलं ६८ पत्रच्छेद्य ६९,
कटकच्छेद्यं ७० सजीवनिर्जीव ७१ शकुनरुतम् ७२, इति ॥ सू० १७० ॥

टीका—'तए णं त ददपइण्णं' इत्यादि—ततः खलु तं

ददप्रतिज्ञ दारकम् अम्बा-पितरौ-तन्माता-पितरौ, सातिरे षाष्टवर्षं जातकं-
संजातकिञ्चिदधि षाष्टवर्षं क ज्ञा वा-परिभाव्य शोभने तिथिकरण-
नक्षत्रमुहूर्ते—तिथिश्च करणं च नक्षत्रं च मुहूर्तं चेत्येतेषां समाहारः तिथिकरण-
नक्षत्रमुहूर्तं, तत्र शोभनशब्दस्य सर्वत्र सम्बन्धात् शोभनायां तिथौ—नन्दा जया
पूर्णारूपायां, शोभने करणे—स्थिरसंज्ञके, शोभने नक्षत्रे—विद्याऽध्ययनयोग्ये ज्ञान-
वृद्धिकारके मृगशीर्षाऽऽर्द्राऽपुष्यः—अ० लेपा-मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद,
हस्त-चित्रा-रूपे नक्षत्रदशकेऽन्यतमे-शोभने मुहूर्ते-शुभायां वेलायां स्नातं—कृत
स्नानं कृतबलिकर्माणं—क्राकादिभ्यः कृतान्नमार्गं कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तं—कृता-
नि—म्पादितानि कौतुकानि—मपीतिलकादीनि मङ्गलानि—मङ्गलविधायकानि दध्य-
क्षतादीनि तान्येव प्रायश्चित्तानि—दुःस्वप्नादि विधातार्थमवश्यकरणीयत्वात् प्रा-

सुवर्णपाक-प्रणिपाद-घातुपाक-सूत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेल-पत्रच्छेद्य, 'कडग
च्छेज्जं-सजीवनिर्जीवं-सउणरुयं-७२-त्ति' कटकच्छेद्य सजीवनिर्जीव-और शकुनरुत. ७२।

टीकार्थ—जब ददप्रतिज्ञ दारक आठ वर्ष से अधिक बच का हो
जावेगा—तब उसके मातापिता उसे शुभ तिथि में—नन्दा—जया—पूर्णरूप तिथि
में, शुभकरण में—स्थिरनामके शुभकरण में, तथा—विद्याध्ययनयोग्य—ज्ञानवृद्धिकारक
मृगशीर्षा—आर्द्रा—पुष्य—अ० लेपा—मूल—फाल्गुनी—पूर्वाषाढा—पूर्वाभाद्रपद—हस्त—और चित्रा
रूप नक्षत्र दशकमें, और शुभवेलामें कलाचार्य के पास ले जावेगे।
इसके पहले वे उस बालक को स्नान करावेंगे, वायस—क्राक आदिकों को देने
के लिये उससे अन्न का विभाग कराकर वितरित करावेगे. वह मपी तिलक
आदि रूप कौतुक को तथा—दुःस्वप्न आदिरूप अमंगल के विधातक—होने से
अवश्य करणीय ऐसे दध्यक्षतादिरूप प्रायश्चित्तको करेगा. और फिर वह समस्त

येष नासिका येष पत्रच्छेद्य "कडगच्छेज्जं सजीवनिर्जीवं सउणरुयं ७२ ति
कटकच्छेद्य. सजीवनिर्जीवं अने शकुन इति ७२.

टीकार्थ—अन्धारे ददप्रतिज्ञदारक आठ वर्ष कृता भोटे थछ जशे त्थारे तेना
मातापिता तेने शुभतिथिमा नदा जया पूर्णारूप तिथिमा, शुभकरणमा, स्थिर नामना
शुभकरणमा, तथा विद्याध्ययन योग्य ज्ञानवृद्धिकारक मृगशीर्षा आर्द्रा पुष्य अश्वीढा
मूल-पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपद हस्त अने चित्रा ये नक्षत्रदशकमा अने
शुभवेलामा कलाचार्यनी पास ले जशे. अने पहिला तेओ ते आणकने
स्नान करावशे, वायस वगेरेने आपवा भोटे तेनी पासथी अन्नविभाग करावीने
वितरित करशे ते मपीतिलक वगेरे इय कौतुकने तेमज्ज दुःस्वप्न वगेरे इय अम-
गलना विधातक होवाथी अवश्यकरणिय ओवा दध्यक्षतादि इय प्रायश्चित्तने करशे अने

श्चित्करूपाणि येन स तम्, सर्वालङ्कारविभूषितं—परिधृतकटककुण्डलाद्याभरणम् सर्वे—समस्ताः हस्तचणकण्ठादिषमस्तावयवयोग्या अलङ्काराः—वस्त्राभरणरूपाः तैः विभूषितं-सज्जितं परिहितशुद्धप्रवेश्यवस्त्र परिधृतकटककुण्डलाद्याभरणं च, एतादृशं सुसज्जितं दृढप्रतिज्ञ दारकं कृत्वा महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन-ऋद्धिः वस्त्रसुवर्णादिसम्पत् तया सत्कारः सत्कारयुक्तः समुदयः—समागतजनसमुदायो यत्र स तेग-महोत्सवपूर्वकमित्यर्थः कलाचार्यस्य—कलाशिक्षकस्य समीपे उपनेष्यतः । ततः खलु स कलाऽऽचार्यः त दृढप्रतिज्ञ दारकं लेखादिकाः गणितप्रधानाः शकुनिस्त पर्यवमानाः द्वासप्ततिं कलाः सूत्रतः—मूलतः अर्थतः—अर्थोपदर्शनतः. ग्रन्थतः—ग्रन्थरूपेण तासां लेखनतः करणतः—प्रयोगतश्च शिक्षयिष्यते—अध्यापयिष्यति साभयिष्यति साध्याः कारयिष्यतिश्च । तद्यथा—ताः कला यथा-लेखम् लेखः-अक्षरविन्यासः तद्विषया कलाविज्ञानं लेखएवोच्यते तं लेखम्-लेखविज्ञानम् कला-

अलङ्कारों से कटक-कुण्डलादिरूप आमरणों से अपने को सुसज्जित करेगा. तत् पश्चात्—वह समा में प्रवेश योग्य शुद्ध वस्त्रों को धारण करेगा. इस प्रकार से सुसज्जित हुवे उस दृढप्रतिज्ञ कुमार को वे मातापिता अपनी ऋद्धि के अनुसार वस्त्र सुवर्णादि सम्पत्ति के अनुरूप समागत जन-समुदाय के साथ सत्कारपूर्वक-महोत्सव पूर्वक उसे कलाचार्य के पास ले जावेंगे । तब वह-कलाशिक्षक उस दृढप्रतिज्ञ दारक को गणितप्रधान लेखादिक कलाओं को शकुनिस्तान्त (षक्षिके शकुन देखने तककी) कलातक यथावत् सिखावेगा. ये सब कलाएँ ७२-होती हैं । सूत्र से तथा अर्थोपदर्शन से, एवं तदुभय से—अर्थात् सूत्र और अर्थ दोनों प्रकार से और—प्रयोगरूप से वह इन सब कलाओं के । उसे पढावेगा. पढाकर वह इन कलाओं में क्रियात्मकरूप से उसे निपुण भी करदेगा. । उन ७२ कलाओं के नाम इस प्रकार से हैं—लेखअक्षरविन्यास, इस विषय का

पछी ते सभस्त अलङ्कारोथी कटक कुण्डलादि रूप आकारबोथी पोताना शरीरने सुसज्जित करथे त्पार पछी ते शुद्ध वस्त्रो धारण करथे आ प्रभाबु सुराज्जित थयेता ते दृढप्रतिज्ञ कुभारने तेना मातापिता पोतानी ऋद्धि सुवर्ण वस्त्रसुवर्ण वगेरे संपत्तिना अतुत्तुप आवेल जनसमुदायनी साथे सत्कारपूर्वक, महोत्सवपूर्वक तेने कलाचार्य पासै लख जथे त्पारे ते कलाशिक्षक ते दृढप्रतिज्ञदारकने गञ्जित प्रधान वेभादिक कलाओथी शकुनिस्तान्त सुधीनी सभस्त कलाओने यथावत् शीभवाउथे. आ पछी कलाओ ७२ छे सूत्ररूपे, अर्थोपदर्शनरूपे, ग्रन्थरूपे अने प्रयोगरूपे ते कलाचार्य तेने सभस्त कलाओने अभ्यास करावथे. अभ्यास करावीने ते तेने क्रियात्मक रूपमा पञ्च निपुण्य भनावथे. ते ७२ कलाओना नाम आ प्रभाबु छे. वेण-अक्षरविन्यास आ विषयतु जे विज्ञान होय छे ते पञ्च 'वेण' ज छे आ 'वेण'मा अक्षर वगेरे लख-

ऽऽचार्यः शिक्षयिष्यतीति सम्बन्धः एवमग्रेऽपि संयोजना कर्तव्या । लेखो लिपि विषयमेदाद् द्विविधः तत्र लिपिः त्रा-म्यादिमेदेनाष्टादशविधा. सा च समवा-याङ्गसूत्रगताऽष्टादशसमवायोक्ता बोध्या । अथवा लाटादिदेशभेदतोऽनेकविधा भवति । पुनश्च बल्कलकाष्ठदन्तलोहताम्ररजतपाषाणाद्याधारेषु लेखनोक्तिरुपस्यूत-व्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसंक्रान्तितोऽक्षरविन्यासरूपा लिपिरनेकविधा भवति । विषय-माश्रित्य स्वामिभृत्यपितापुत्र-कलत्रपतिगुरुशिष्यशत्रुमित्रादिविषया कार्थ्यं स्थौल्यं-वैषम्यपि चक्रत्वपदच्छेदादिभेदभिन्ना चानेकविधा भवति १. गणितम्-पट्टिकादि प्रसिद्धमेकद्वयादि संकलनगुणभागादिरूपम् २. रूपम् लेप्यशिला-सुवर्णरजतमणिवस्त्रचित्रादिलक्षणम् ३ । नाट्यम्-सामिनयनिरभिनयभेदभिन्नं

जो विज्ञान हो जाता है वह मी लेख ही है, इस लेख में अक्षरादिके लिखने में निपुण हो जाना यह-लेखकला है, यह लेख-लिपि, एवं-विषय भेदसे दो प्रकार का है. इनमें-ब्राह्मी आदि के भेद से लिपि १८-प्रकार की है. यह-विषय "समवायाङ्गसूत्र" में १८-वें समवान में कहा गया है । अथवा-लाटादि के भेद से लिपि अनेक प्रकार मी होती है, पुनः-बल्कल-काष्ठदन्त-लोह-ताम्र-रजत-पाषाण-आदि आधारों के ऊपर अक्षरों का लिखना, उन पर अक्षरों का टांकी आदि से अङ्कित-(उकेरना) इत्यादिरूप से अक्षरविन्यास-रूप लिपि अनेक प्रकार की है । विषय की अपेक्षा मी स्वामी-भृत्य-पिता-पुत्र-कलत्र-पति-गुरु-शिष्य-शत्रु और-मित्रादि को विशय बनने वाली जो लिपि है वहमी कृशता स्थूलता आदिरूप से विन्यास की अपेक्षा अनेक प्रकार होती है १ । गणितरूप कला गुणा-भाग, बीजगणित-रेखागणित आदि होती है २ । रूप-कला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत-आदि के ऊपर चित्र को उतारनेरूप या-

वामां कुशला भेणवती ते लेखकला छ आ लेख-लिपि अने विषयभेदथी के प्रका-रने छ आमा ब्राह्मी वगेरेना भेदथी १८ प्रकारनी लिपि छ आ विषय 'समवायाङ्ग' सूत्रमा १८ भा समवायमा आवेल छ अथवा लाटादिना भेदथी लिपिना घञ्जा प्रकारे छ. अने वक्षल, काष्ठ, इत, लोह, ताम्र, रजत, पाषाण वगेरे आधारे पर अक्षरे। लभवा, तेमनी उपर टांकथी टांकवु वगेरे रूपमा अक्षर विन्यास लिपि घञ्जा प्रका-रनी छ. विषयनी अपेक्षाअे पञ्च स्वामी, भृत्य, पिता, पुत्र, दलत्र, पति, शत्रु, शिष्य, शत्रु अने मित्र वगेरेने विशय करनारी के लिपि छ ते पञ्च कृशता स्थूलता वगेरे रूपथी विन्यासनी अपेक्षाअे अनेके प्रकारनी होय छ १, गञ्जितकला शुष्ण-भाग-पीठ गञ्जित, रूप गञ्जित वगेरे प्रकारनी होय छ. २, रूपकला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत, वगेरेनी उपर चित्रने उतारवा रूप के लेखन रूप होय छ ३ नाट्यकला अभिनय सङ्कित, वगर

नर्तनम् ४ । गीतम्—गन्धर्वमालाज्ञानविज्ञानरूपम् ५ । वादितम्—उतविततादि
 मेदभिन्न वाद्यम् ६ । स्वरगतम्—पद्मजऋषभादिस्वरज्ञानम् ७ । पुष्करगतम्—मृद-
 ङ्गमुरजादिमेदयुक्तं विज्ञानम्, अस्य वाद्यान्तर्गतत्वेऽपि यत्पृथक्कथनं तत् परम-
 मङ्गीताङ्ग-व्याप-नार्थम् ८ । समतालम्—तमः-अन्यूनाधिकमात्रः तालः-गीतादि-
 मानकालो यत्र तत् समतालविज्ञानमित्यर्थः ९ । द्यूत—प्रसिद्धम् १० । जन
 वादं—द्यूतविशेषः ११ । पाशाङ्गम्—पाशैः खेलरूपं द्यूतम् १२ । अष्टापदम्—सारि-
 फलद्यूतमेव १३ । पौरकृत्यम्—पुराण कृतिः—निर्माणं तद्विषयं विज्ञानं पौरकृत्यं-
 पुराणनिर्माण-लेत्यर्थः, तत् अत्र त्रिविधः पाठ उपभ्रम्यते तथाहि—‘पोरेकञ्च’
 ‘पोरेकञ्चं’ इति । प्रत्येस्य छायापि तदनुसारेणैव भवति—‘पोरेकृत्यम्’ पौरपत्यम्
 ‘पुर काव्यम्’ इति । तत्र ‘पोरेकञ्च’ इत्यस्य व्याख्याऽत्र कृत्वा ‘पोरेकञ्चं’ पौरपत्यम्—
 नगररक्षककला, ‘पोरेकञ्चं’ पुरःकाव्यम्—पुरतःपुरतः काव्यरूपवाणी निस्सारणं
 शीघ्रकवित्वमित्यर्थः । १४ । दकमृत्तिकम्—उदरसंयुक्तमृत्तिका विवेकद्रव्यप्रयोग-

लिखने रूप होती है, ३ । नाट्यकला-अभिनयसहित, बिना अभिनय के मेद से
 दो प्रकार की होती है ४ । गीतकला—गाने आदि में निपुणता प्राप्त करनेरूप
 होती है, ५ । वादिकला—तत, वितत आदिरूप वादित्रों के बजाने रूप होती है ६ ।
 स्वरकला—पद्मज, ऋषभ—आदि के ज्ञान करानेरूप होती है ७ । पुष्करगतकला—मृदङ्ग,
 मुरज आदि के बजानेरूप होती है । यद्यपि—यह कला वादिकला में अन्तर्भूत हो
 जाती है, फिर भी—इसे जो स्वतन्त्ररूप से अलग कला कही गई है सो—यह सङ्गीतकला-
 में उसका उत्कृष्ट अङ्ग है, इस बात को प्रकट करने के लिये कहा गया है ८ ।
 गीतादिकों का मान काल जहाँ होता है, उसका नाम ताल है, इस ताल
 का जो विज्ञान है वह समताल विज्ञान है ९ । जूआ खेलने की चतुराई का नाम
 द्यूतकला है १० । जनवाद—यह भी एक प्रकार का विशेष जूआ है, ११ । पाशों से द्यूत
 खेलने की विशेषनिपुणता का नाम पाशकला है, १२ । सारिफल द्यूतरूप अष्टा-
 पद कला होती है १३ । नगर के निर्माण करने की कला का नाम पौरकृत्यकला-

अभिनय आभ के प्रकारनी होय छे गीतकला—सगीत वगेरेमा निपुणता प्राप्त
 करवी ते छे ५ वादिकला तत, वितत वगेरे वाजित्रोने वगाडवा ते छे ६ स्वरकला—पद्मज,
 ऋषभ वगेरेसु ज्ञान भेजववु ते छे ७ पुष्करगत कला—मृदङ्ग, मुरज वगाडवा ते छे,
 जे के आ कला वाजित्रकलानी अन्तर्भूत थछे अथ छे पञ्च छताये आने जे स्वतन्त्र
 रूपमा लुकी कला गच्छी छे तेसु कारण आ छे के आ कलासु सगीत कलामा अतीव
 महत्त्वपूर्ण स्थान छे ८ गीत वगेरेने जे मानकाल होय छे तेसु नाम ताल छे, आ
 तालसु जे विज्ञान छे तेसमताल विज्ञान छे ९ जुगार रभवानी कुशलतासु नाम द्यूत-
 कला छे १० जनवाद पञ्च ज्येष्ठ अतनेा विशेष जुगार छे ११ पासाज्याथी जुगार रभवामा
 विशेष निपुणता भेजववासु नाम ‘पाशकला’ छे १२ सारिकल द्यूतरूप अष्टापदकला
 होय छे १३ नगरनी निर्माकला पौरकृत्यकल छे १४, छेक (पाथी)मा भणेली भाटीने जे

पूर्विंश त पृथक्करणकलाऽप्युपचाराद् दकमृत्तिका ताम् १५ । अन्नविधिम्—अन्न
पाककलाम् १६ । पान विधि—जलोत्पादनकलां तत्संगोयनकलां वा १७ । वस्त्र-
विधिम्—वस्त्रोत्पादनकलां तद्धारणकलां वा १८ । विलेपनविधि—शरीरिणोपरिचन्दना-
दिलेपकलां यत्र कर्दमादिलेप परिज्ञानम् १९ । शयनविधिम् शयन-शय्या पल्यङ्गादि-
तद्विषया कला ताम् २० । आर्याम्—मात्राच्छन्दो विशेषनिर्माणकलाम् २१ ।
प्रहेलिका—गूढाशयपद्यरूपाम् २२ । मागधिकाम्—भाषाच्छन्दोविशेषाम् २३ ।

है. १४। उदक में मिली हुई मिट्टी को दूर करनेवाले द्रव्य का ज्ञान होना, और-
उसका सम्बन्ध कराकर पानी और मिट्टी को दूर कर देना यह—दकमृत्तिका
कला है जैसे—निर्मली—फिटकिडी डारकर गन्दे पानी को निर्मल करदिया
जाता है. १५। भोजन बनाने की चतुराई का नाम अन्नविधि कला है, १६। भूमि का
देखकर यहां जलनिकलेगा इस प्रकारके विज्ञान का नाम पानविधि कला है. १७।
वस्त्रों का निर्माण करने की चतुराई का नाम, या—वस्त्रों को सुन्दर ढग से
पहनने की चतुराई का नाम वस्त्रविधि कला है. १८। शरीर के ऊपर चन्दनादि
का लेप करने की चतुराई का नाम—विलेपनविधि है, १९। पल्यङ्ग आदि विषयक
ज्ञान होना—अर्थात् इस प्रकारका पल्यङ्ग शुभ होता है—इस प्रकार का पल्यङ्ग
शुभ नहीं होता है, ऐसा ज्ञान होना इसका नाम—शयनविधि कला है २०।
मात्रावाले छन्दों का निर्माण करना. यह—आर्या कला है, २१। गूढ आशयवाले
पद्यों की निर्माणकला प्रहेलिका कला है. २२। भाषाछन्द विशेष का नाम—मागधिका
है, इसके निर्माण की चतुराई का नाम मागधिकाकला है, २३। निद्रा लाने की विद्या

द्रव्यशी लुब्धी पाटी शक्य तेह ज्ञान थु अने तेना सभंध करानीने पाष्ठी अने
भाटीने लुब्धा लुब्धा करवा आ दकमृत्तिका कला छ जेभके निर्मली—फिटकिडी नापीने
गडा पाष्ठीने साक्ष करवासा आवे छ १५ बोजन तोयार करवानी कुशणताहू नाम अन्न-
विधि कला छ १६ जमीनने जेधने अहीशी पाष्ठी नीकणशे आ जतना विज्ञानहू नाम
'पानविधि कला' छ १७ वस्त्रोना निर्माष्ठीनी कुशणताहू नाम अथवा तो वस्त्रोने सुहर
ढंगशी पहरेरवानी कणालु नाम वस्त्रविधि कला छ १८ शरीरनी उपर चन्दन वगेरेने लेप
करवानी कुशणताहू नाम विलेपनविधि छ १९ पल्यङ्गादि विषयकज्ञान थु ज्येठे के
आ जतने पल्यङ्ग शुभ होय छ, आ जतने पल्यङ्ग शुभ नहीं होतो आवु ज्ञान
थु, आहू नाम शयनविधि कला छ २० मात्रावाणा छ होहू निर्माष्ठी करवुं ते आर्याकला छ २१
गूढ आशययुक्त पद्योनी निर्माष्ठीणा 'प्रहेलिका—कला' छ २२ भाषा छन्द विशेषहू नाम
मागधिका छ. जेनी निर्माष्ठी कुशणता मागधिका कला छ. २३ निद्रा आववानी विद्याहू

निद्रायिकाम्—अबस्वापनी विद्यारूपां क्लाम् २४ । गाथागीतिका चेति कलाद्वय-
 मार्यामेदरूपाम् २५ २६ । श्लोकम्—श्लोकरचनाकलाम् कवित्वकलामित्यर्थः २७ ।
 हिरण्ययुक्तिम्—हिरण्यस्य—रजतस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २८ । सुवर्ण
 युक्तिम् सुवर्णस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २९ । आमरणविधिम्—
 भूषणनिर्माणकलाम् ३० । तरुणीपरिकर्म—स्त्रीणां वर्णादिवृद्धिरूपाम् ३१ । स्त्री-
 लक्षणम्, पुरुषलक्षणम्, एतद्वयं सामुद्रिकशास्त्रप्रसिद्धं विज्ञानम् ३२—३३ । हय-
 गज—कुक्कुट—छत्र—चक्र—दण्डानां प्रसिद्धानां सप्तानां तत्तल्लक्षणज्ञानकलाः ३४—४० ।
 मणिलक्षणम्—रत्नादि—परीक्षणम् ४१ । काकिणीलक्षणम्—काकिणी—चक्रवर्तिनो

का ज्ञान होना उसका नाम—निद्रायिका कला है, इस कलावाला दूसरे को
 इस कला के प्रभाव से निद्रा में मग्न कर देता है २४ । गाथा-और गीतिका
 ये दोनों कलाएँ आर्या का ही मेदरूप होती है, २५-२६ श्लोकरचना करने की
 चतुराई का नाम—श्लोककला है, इसका दूसरा नाम—कवित्वकला भी है २७ । हिरण्य
 युक्ति—चान्दी बनाने की कला २८ सुवर्णयुक्ति—सोना बनाने की कला २९ भूषणों के
 निर्माण की विधि का जानना, आमरणविधि कला है, ३० स्त्रियों के वर्णादिक में
 विधान का जानना, तरुणीपरिकर्मकला है, ३१ स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को
 जानना, स्त्रीलक्षणकला है, ३२ पुरुषलक्षणों का जानना यह पुरुष लक्षणकला-
 है, ३३ । दोनों कलाएँ सामुद्रिकशास्त्र से सम्बन्धित हैं । घोडा—हाथी—कुक्कुट—छत्र—
 चक्र—दण्ड असि (तखवार) इन सातों के शुभाशुभ लक्षणों को जानना इसका
 नाम उस उस नाम की कला है ३४—४० । रत्नादिकों की परीक्षा करना इसका नाम
 मणिलक्षण कला है, ४१ । काकिनी कला में—चक्रवर्ती के रत्न विशेष की परीक्षा

ज्ञान यद्युं ते 'निद्रायिका कला छे आ कलाने लक्षुनारने श्रीजने आ कलाना प्रभाव-
 थी निद्राभंग करे छे २४. गाथा अने गीतिका आ भन्ने कलाओ आर्यानां लक्षेत्परमा
 छे २५-२६. श्लोक रचनामा कुशणताहं नाम श्लोक कला छे. आहं धील्लु नाम
 कवित्वकला यद्यु छे २७ हिरण्य युक्ति आही भनाववानी कला, २८ सुवर्णने युक्ति—सोहं
 भनाववानी कला २९ आभरणविधि—आभूषणोने भनाववानी विधीने लक्षुयी
 ते आभरणविधि कला छे ३० स्त्रीओना वर्णादिकमा वृद्धिविधान लक्षुयु ते
 तत्रुषी परिकर्म कला छे ३१ स्त्रीओना शुभाशुभ लक्षुओ लक्षुवा ते स्त्रीलक्षु कला छे ३२. पुरुष
 लक्षुओ लक्षुवा ओ पुरुष लक्षु कला छे ३३ ओ भन्ने कलाओ सामुद्रिकशास्त्रनी साथे
 स भ ध रा पे छे घोडा—हाथी—कुक्कुट—छत्र—चक्र—दण्ड—असि—(तखवार) ओ सहितना शुभा-
 शुभ लक्षुओ लक्षुवा तेना नामो ते ते कला विशिष्ट सम्भवा ३४—४० रत्नादिकोनी परीक्षा ते
 भणिलक्षु कला छे ४१ काकिनी कला मा—चक्रवर्तीना रत्नविशेषनी परीक्षा तेना लक्षुओना

रत्नविशेषस्तस्य लक्षणम् ४२ । वास्तुविद्या—गृहभूमेर्गुणदोषज्ञानरूपाम् ४३ ।
 नगरमानन्—नगररूप दश योजनाऽऽयाम्-नवयोजनव्यासार्द्ध-प्रमाणज्ञानम् ४४ ।
 स्कन्धावारमानम्-सेनानिवेशप्रमाणज्ञानम् ४५ । चारम्-चारो-ज्योतिश्चारः, तद्वि-
 ज्ञानम् ४६ । प्रतिचारम्—प्रतिचरण प्रतिचार—रोगिणः प्रतीकारकरणं, तद्विषयक-
 ज्ञानम् ४७ । व्यूहम्—सामान्यतः सैन्यरचनं, तद्विषयज्ञानम् ४८ । चक्रव्यूहम्—चक्रा-
 ऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ४९ । गरुडव्यूहम्—गरुडाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५० । शकट-
 व्यूहम्—शकटाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५१ । युद्धम्—युद्धकलाम् ५२ । नियुद्धम्—
 मल्लयुद्धकरणकलाम् ५३ । युद्धयुद्धम्—खड्गादिप्रक्षेपणपूर्वकमहायुद्धकलाम् ५४ ।
 अस्थियुद्धम्—अस्थिभिः—क्षूर्पादिभिः प्रहरणं, तत्कलाम् । यद्वा 'दृष्टियुद्धम्' इति

करने के लक्षणों को जानना ४२ । गृहभूमि के गुण दोषों का ज्ञान होना
 इसका नाम वास्तु विद्या कला है, ४३ नगरभी दशयोजन लम्बाई और नौ योजन
 चौड़ाई आदि प्रमाण का ज्ञान होना यह नगरमान कला है ४४ । सेनानिवेश
 के प्रमाण का होना—स्कन्धावार मानकला है ४५ । नक्षत्रादिक ज्योतिष्कों की
 चाल का ज्ञान होना चारककला है, ४६ । रोगों के प्रतिकार करने के उपायों का
 ज्ञान होना प्रतिचारकला है, ४७ । सामान्यरूप में सैन्यरचना का ज्ञान होना, यह
 व्यूह कला है, ४८ । चक्राकाररूप में सैन्य की रचना करना चक्रव्यूहकला है, ४९ ।
 गरुड के आकार में सैन्य की रचना करना यह गरुड व्यूहकला है, ५० । शकट
 के रूप में सैन्य की रचना करने का ज्ञान होना यह शकटव्यूहकला है ५१ । युद्ध
 करने का ज्ञान होना यह युद्धकला है, ५२ । मल्लयुद्ध करने का ज्ञान होता यह
 मल्लयुद्ध या नियुद्धकला है ५३ । तलवार आदि चलाते हुवे घमासान युद्ध करना
 यह युद्धयुद्धकला है, ५४ । अस्थि—टोहनी आदि से प्रहार करने की चतुराई का

आधारे करवाभा आवे छे ४२ गृहभूमिना शुभदोषात् ज्ञानं यत् ते वास्तुविद्याकला छे ४३
 नगरेनी दश योजन लम्बाई अने नवयोजन पछोणाई विगैरे प्रमाणत्वं ज्ञानं यत् ते
 'नगरमान कला' छे ४४ सेनानिवेशना प्रमाणत्वं ज्ञानं यत् ते स्कन्धावारमान कला छे, ४५
 नक्षत्रादिक ज्योतिष्कानि गतित्त ज्ञानं यत् ते चार कला छे ४६ रोगाने मटाडवाना
 उपायोत्त ज्ञानं ते प्रतिचार कला छे ४७ सामान्य रूपेणी सैन्यरचनान्त ज्ञानं यत् ते चक्र
 व्यूह कला छे ४८ चक्राकाररूपेण सैन्यरचना करवी चक्रव्यूह कला छे ४९ गरुडना
 आकारेणी सैन्यनी रचना करवी तेत्तं नाम गरुडव्यूह कला छे, ५० शकटना रूपेण
 सैन्यनी रचना करवात्त ज्ञानं यत् ते शकटव्यूह कला छे ५१ युद्ध करवात्त ज्ञानं यत्
 ते युद्ध कला छे पर मल्लयुद्ध करवात्त ज्ञानं यत् ते मल्लयुद्ध छे नियुद्धकला छे पर
 तलवार वगेरे हेरवता कथ कर युद्ध करैतु ते युद्ध युद्ध कला छे ५४ अस्थि—टोहनी वगेरेणी
 प्रहार करवानी कुशलतात्तं नाम अस्थियुद्ध कला छे अथवा 'दृष्टि युद्ध' आ ५४मा

पाठः प्रतिद्वन्द्विनोश्चक्षुषो निर्निमेपावस्थानं, तत्कलाम् ५५ । मृष्टियुद्धम्—मृष्टिभिः प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम् बाहुभिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतावृक्षमिव शत्रुं गाढं परिवेष्य प्रहरणम् ५८ । इष्वस्त्रम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपणम् ५९ । त्सरुः-वादम्—त्सरुः—खड्गमृष्टिः, अवयवे समुदायोपचागात् त्सरुशब्देनात्र खड्गो गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत् त्सरुप्रवादं-खड्गशिक्षाशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वेदम्-धनुःशिक्षणशास्त्रम् ६१ । हिरण्यपाक-सुवर्णपाकौ—रजत-सुवर्णयो रसायन क्रिया तद्व्ययकः लाहयम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । धातुपाकम्—रजत ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५ । द्धत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेलाः लोकतः प्रत्येतव्याः ६६-६८ । पत्रच्छेद्यम्-अनेकपत्रेषु विवक्षित पत्रच्छेदनकलाम् ६९ । षटक-

नाम अस्थियुद्धकला है। अथवा 'दृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आँखों को अपनी चितवन से निमेषपरहित कर देना सो दृष्टियुद्ध है। ५५ । मृष्टियों से प्रहार करना। इसका नाम मृष्टियुद्धकला है ५६ । बाहुओं से प्रहार करना। इसका नाम-बाहु युद्धकला है। ५७ । लता जैसे वृक्षा को लपेट लेती है। इसी प्रकार से शत्रु को घेरे में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना। लतायुद्ध है। ५८ । नागवाण आदि दिव्यरत्नों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम-इष्वस्त्रकला है। ५९ । त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है यहाँ अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से खड्ग का ग्रहण किया गया है—इस खड्ग—तलवार को चलाने में निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६० । धनुष चलाने की क्रिया में निपुणता प्राप्त करना यह—धनुर्वेद कला है, ६१ । रजत और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आंभोने पोतानी दृष्टिथी निमेष रहित करवी ते दृष्टियुद्ध छे ५५. मुष्टिकाञ्चोथी प्रहार करीने लड्डु ते मुष्टि युद्ध कला छे ५६ बाहुञ्चोथी लड्डु ते बाहु युद्ध कला छे ५७ लता जेभ वृक्षोने परिवेष्टित करी छे छे तेमञ्च शत्रुने आरे तत् घेरीने गाढरूपथी ५८ इष्वस्त्रोने नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपण करीने कला छे ५९ त्सरुशब्दोने तलवार की मूठ छे यहाँ अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से खड्ग का ग्रहण किया गया है—इस खड्ग—तलवार को चलाने में निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६० । धनुष चलाने की क्रिया में निपुणता प्राप्त करना यह—धनुर्वेद कला है, ६१ । रजत और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

च्छेद्यम् शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीवि-सजीव मृतधात्वादानां सजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदस्य मूर्च्छाप्रापणं वा ७१ । शकुनस्तम्-पक्षिशब्दम्, पक्षिशब्दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२ । इति आसां हासप्रतिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽती यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह-धातुपाक कला है, ६५ [नटों की तरह सूत्रपर-वर्त्तपर, और-नालिका पर चढ़ कर खेलना-ये तत्-तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८] अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है. ६९। शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है. ७०। भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा-एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा-पारे को मूर्च्छित करना-अर्थात्-अजीर्णत्व-नपुंसकत्व आदि अद्वारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है. ७१। पक्षियों की बोली को पहिचान लेना. अर्थात्-वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह-शकुनस्त कला है ७२ । इन बहत्तर कलाओं का क्रम और वहीं कहीं उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की मिन्नसा से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध-प्राप्त

वर्त्तपर अने नास्तीकापर यदीने रभषु अे तत्-तत् नामवाणी कृणाञ्चो छ. ६६-६८ अनेक पत्रोभाथी कौं आस पत्रसुं छेदन करवुं पत्रच्छेद्यकला छ ६६ यत्रुनी सेनामारहीने पछी कौं विशेष याने न मारवु कटकच्छेद्य कलाछ. ७० भस्मभूयमा परिश्रुत थयेला सुवर्णुं ह धातुञ्चोने निरुत्थ भस्म होवाथी पड़ेला प्रयोजन विशेषने लीधि इरी भस्म ने सुवर्णु वगेरे अनाववुं तेमञ्च अेक राज्यभाथी भीज राज्यभा सुवर्णुने लथ जवानो राज-कीय प्रतिबन्ध होवा छतां अे ते वाछनीय सुवर्णादि धातुञ्चोने प्रयोग विषयथी मारवां के पाराने मूर्च्छित करवे अेटवे के अलक्षुत्व वगेरे अद्वार दोषाने पारामांथी कौंवा आ सलष निश्चकला छ ७१ पक्षीञ्चोनी जौलीने समञ्च लेवी अेटवे के वस तराञ्च वगेरे कृत शकुनशास्त्रनी दृष्टिअे जधा पक्षीञ्चोनी जौलीने समञ्च ली सुभाशुभ जलषुवु ते शकुनस्त कला छ. ७२ आ जौतेर कलाञ्चोने कभ अने तेना नाम निर्देश

पाठः प्रतिद्वन्द्विनोश्चक्षुषो निर्निमेपावस्थानं, तत्कलाम् ५५ । मृष्टियुद्धम्—मृष्टिमिः
 प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम् बाहुमिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतावृक्षमिव शत्रुं
 गाढं परिवेष्य प्रहरणम् ५८ । इष्वस्त्रम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपणम् ५९ ।
 त्सरुःवादम्—त्सरुः—खड्गमृष्टिः, अवयवे समुदायोपचारात् त्सरुशब्देनात्र खड्गो
 गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत् त्सरुप्रवादं—खड्गशिखाशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वे-
 दम्—धनुःशिक्षणशास्त्रम् ६१ । हिरण्यपाक-सुवर्णपाकौ—रजत-सुवर्णयो रसायन क्रिया
 त द्विपयक-लाह्वयम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । धातुपाकम्—
 रजत ताम्रादिधातुनिर्माण-कलाम् ६५ । सूत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेलाः लोकतः प्रत्येत-
 व्याः ६६-६८ । पत्रच्छेद्यम्—अनेकपत्रेषु विवक्षित पत्रच्छेदनकलाम् ६९ । षट्क-

नाम अस्थियुद्धकला है। अथवा 'दृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आंखों
 को अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो दृष्टियुद्ध है, ५५ । मृष्टियों से प्रहार
 करना, इसका नाम मृष्टियुद्धकला है ५६ । बाहुओं से प्रहार करना, इसका नाम-बाहु
 युद्धकला है, ५७ । लता जैसे वृक्षा को लपेट लेती है, इसी प्रकार से शत्रु को घेरे
 में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना, लतायुद्ध है, ५८ ।
 नागवाण आदि दिव्यरत्नों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम-इष्वस्त्रकला है, ५९।
 त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है यहां अवयव में समुदाय के उपचार से
 त्सरुशब्द से खड्ग का ग्रहण किया गया है—इस खड्ग—तलवार को चलाने में
 निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६०। धनुष चलाने की क्रिया में
 निपुणता प्राप्त करना यह—धनुवेद कला है, ६१। रजत-और सोना को रसायन क्रिया
 जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को
 जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आपोने पातानी दृष्टिथी निमेष रहित करवी ते दृष्टियुद्ध छे यप, मृष्टिक्रमोथी
 प्रहार करीने लडवु ते मृष्टि युद्ध कला छे यद बाहुओथी लडवु ते बाहु युद्ध कला छे य७
 लता जेभ वृक्षोने परिवेष्टित करी ले छे तेमज शत्रुने आरे तरङ्ग घेरीने गाढरूपथी
 तेने वन्धे लधने तेनापर हुमझो करवो ते लतायुद्ध छे य८ नागबाणु वगेरे दिव्यरत्नोतु
 प्रक्षेपणु करवु तेनु नाम इष्वस्त्रकला छे य९ त्सरु शब्दने अर्थ तलवारनी मूठ छे,
 अही अवयवमा समुदायना उपचारथी त्सरु शब्दथी अङ्गुलं अङ्गुलु कथं छे, अङ्गुने
 यथाववामा कुशणता मेणववी तेनु नाम त्सरुप्रवाद छे ६० धनुष यथाववामा निपुणता
 मेणववी ते धनुवेद कला छे ६१ रजत अने सुवर्णना रसायणुनी क्रियानुष्ठीने रजत अने
 हिरण्य पाक कला छे ६२ ६३ मणियोना निर्माणुनी कलानुष्ठीने ते मणि निर्माणुकला छे ६४ अथवा
 रजत ताम्र वगेरे धातुओतु निर्माणुकरवु आ धातुपाककला छे ६५ नटोनी जेभ सूत्रपर-

च्छेद्यम् शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीव-सजीव मृतधात्वादीनां सजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदस्य मूर्च्छांप्रापणं वा ७१। शकुनस्तम्-पक्षिशब्दम्; पक्षिशब्दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२। इति आसां द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽतो यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह-धातुपाक कला है, ६५। नटों की तरह सूत्रपर-वर्चपर, और-नालिका पर चढ़ कर खेलना-ये तत्-तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८। अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है. ६९। शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है. ७०। मस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ मस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस मस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा-एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा-पारे को मूर्च्छित करना-अर्थात्-अजीर्णत्व-नपुंसकत्व आदि अद्वारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है. ७१। पक्षियों की बोली को पहिचान लेना. अर्थात्-वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह-शकुनस्त कला है ७२। इन बहत्तर कलाओं का क्रम और वहीं कहीं उनका नाम निर्देश मी संग्रह समय की भिन्नता से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध-प्राप्त

वर्चपर अने नासीकापर यहीने रमबु अे तत्-तत् नामवाणी कलाओे छे. ६६-६८ अनेक पत्रोभाथी डोड भास पत्रतुं छेहन करवुं पत्रच्छेद्यकला छे. ६९ शत्रुनी सेनाभारुहीने पछी डोड विशेष शत्रुने न भारतु कटकच्छेद्य कलाछे. ७० भारतुपमा परिषुत थयेला सुवर्णोद धातुओेने निरुत्थ मस्म होवाथी पहेला प्रयोजन विशेषने लीधे इरी भारतुने सुवर्ण वगेरे भनावु तेमन अेक राज्यभाथी जीन राज्यभां सुवर्णुने लधे नवानो राज्-कीय प्रतिबध होवा छतां अे ते वाछनीय सुवर्णादि धातुओेने प्रयोग विषयथी भारतु के पाराने मूर्च्छित करवे. अेटले के अलक्षुत्व वगेरे अद्वार दोषाने पारभाथी कडवा आ सलव निरुच्छकला छे ७१ पक्षीओानी जोलीने समज लेनी अेटले के वस तराज वगेरे कृत शकुनशास्त्रनी दृष्टिओे भधा पक्षीओानी जोलीने समजवी शुवाशुभ लक्षुतुं ते शकुनस्त कला छे ७२ आ जोतेर कलाओेनो क्रम अने तेना नाम निर्देश

तद्रूपेण व्याख्या विधेयेति तच्चम् । पूर्वोक्तप्रकारा द्वासप्ततिकलाः कलाचार्यो
दृढप्रतिज्ञ शिक्षयिष्यतीति भावः । ॥ सू० १७० ॥

मूलम्—तए णं से कलायरिए तं दृढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ
गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ
य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मा-
पिऊणं उवणेहिइ । तए णं तस्स दृढपइण्णस्स दारयस्स अम्मापि-
यरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंध-
मल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति, सम्भाणिस्संति, विउलं जीवियारिहं
पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविज्जेहिंति ॥ सू० १७१ ॥

छाया—ततः खलु स कलाचार्यस्तं दृढप्रतिज्ञ दारकं लेखादिकाः गणित-
प्रधानाः शकुनरुतपर्यसानाः द्वासप्ततिं कला सूत्रतश्च अर्थतश्च ग्रन्थतश्च करणतश्च
शिक्षयित्वा साधयित्वा अम्बा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य

होता है इसलिये जहाँ जहाँ जिस जिस रूप से पाठ मिले वहाँ । उस उस रूपसे
व्याख्या समजनी चाहिए ॥ सू० १७० ॥

“तए णं से दृढपइण्णे—”दारए इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए णं’ इसके बाद ‘कलायरिय—’ कलाचार्यने ‘तं दृढपइण्णं—’
उस दृढप्रतिज्ञकुमार को ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ—’ गणित प्रधान लेखा-
दिक कलाएं—‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथ-
ओ य करणओ य—सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ—’ पहली लेह कला
से लेकर अन्तिम शकुनरुत कलातक जिन की संख्या ७२—प्रगट की जा चुकी है.

यस्य स्रंभू सभयना निन्नपञ्चाथी लुहालुहाइपे भास थाय छे नेधी न्या न्या ने
ने इपथी पाठ भणेत छे त्या त्या ते ते इपथी तेनी व्याख्या सभज्जी ॥सू०१७०॥

“तएणं से कलायरिए—इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्सार पथी ‘कलायरिए’ कलाचार्ये ‘तं दृढपइण्णं’ ते दृढ
प्रतिज्ञ कुमारने ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ’ गणित प्रधान वेधादिक कलाओ
‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथओ य करणओ
य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ” अन्तिम शकुनरुत कला सुधीनी
सभस्त ७२ कलाओने सौथी पहेला सूत्र इपमा, त्सारपथी अर्थइपमा अथइपमा

दारकस्य अम्बा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्कारयिष्यतः, सम्मानयिष्यतः, विपुलं जीवितार्हं प्रीतिदानं दास्यतः दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू० १७१ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि—ततः खलु स कलाचार्यः तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः—लेखः—अक्षरविन्धासः आदौ—प्राथम्ये यासां ताः—लेखप्रथमा इत्यर्थः, तथा—गणि-प्रधानाः—गणिनं प्रधानं यासु ता-गणितमुख्या इत्यर्थः. तथा शकुन-रूपपर्यवसानाः—शकुनरुनं-पक्षिशब्दः पर्यवसाने-अन्ते यासां तास्तथा—पक्षिशब्द-परिज्ञानान्ताः, द्वासप्तति-द्वासप्ततीसंख्यकाः पूर्वोक्ताः कला मुत्रत शब्दनश्च, अर्थनश्च ग्रन्थनः ग्रन्थरूपेण तासां लेखनश्च, करणतः प्रयोगनश्च शिक्षयित्वा-अध्याप्य, साधयित्वा साध्याः कारयित्वा तस्य दृढप्रतिज्ञस्य, अम्बापित्रोः(न्तिके उपनेष्यति प्रापयिष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन प्रचुरेण अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धः माल्यालङ्कारेण च सत्कारयिष्यतः सम्मानयिष्यतः, विपुलं प्रचुरं जिवितार्हं यावज्जीवं जीवितयोग्यं प्रीतिदानम् उपहारं, दास्यतः, दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥सू.१७१॥

प्रथमतः सूत्र रूप से—बाद में अर्थ रूप से—ग्रन्थरूप से, एवं—तदुभय-सूत्र और अर्थ दोनों रूप से सिखलाकर, एवं—उन्हें पहले उन्हीं के हाथ से सिद्ध कराकर उसके मातापिता के पास उसको ले आवेगा—‘तए णं तरस ददपइणस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं बत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सत्कारिस्संति-’ तब उस दृढप्रतिज्ञ कुमार के मातापिता उस कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खादिम, एवं—स्वादिमरूप चार प्रकार के आहार से, तथा—वस्त्र-गन्ध-माला और—अलङ्कारों से सत्कार करेंगे—‘सम्माणे-स्संति-’ विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति-’

अने कश्चिद्भयमा प्रयोगश्चमां शीघ्रवी अने ते कदाच्येने पहेला तेना न् हाथवडे प्रयोगश्चमा सिद्ध कश्चिने पछी तेने तेना मातापितानी पासो लध न्शे. ‘तए णं तस्स ददपइणस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं बत्थगंधमल्लालंकारेणं सत्कारिस्संति’ त्थारआइ ते ददप्रतिज्ञ कुमारना मातापिता ते कदाचार्यने विपुल अशन-पान-खादिम-अने स्वादिमश्च चार प्रकारना आहारथी तेमन् वस्त्र गन्ध माला अने अलङ्कारथी स तदृत्त कश्चे “सम्माणे-स्संति विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति-’

तद्रूपेण व्याख्या विधेयेति तच्चम् । पूर्वोक्तप्रकारा द्वासप्ततिकलाः षड्विंशतिः शिक्षयिष्यतीति भावः । ॥ सू० १७० ॥

मूलम्—तए णं से कलायरिणं तं दृढपङ्कणं दारणं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ । तए णं तस्स दृढपङ्कणस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति, सम्भाणिस्संति, विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविज्जेहिइति ॥ सू० १७१ ॥

छाया—ततः खलु स कलाचार्यस्तं दृढप्रतिज्ञ दारकं लेखादिनाः गणित-प्रधानाः शकुनस्तपर्यसानाः द्वासप्ततिं षड्वा सूत्रतश्च अर्थतश्च ग्रन्थतश्च करणतश्च शिक्षयित्वा साधयित्वा अम्वा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य

होता है इसलिये जहाँ जहाँ जिस जिस रूप से पाठ मिले वहाँ । उस उस रूपसे व्याख्या समजनी चाहिए ॥ सू० १७० ॥

“तए णं से दृढपङ्कणे—”दारण इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए णं’ इसके बाद ‘कलायरिय—’ कलाचार्यने ‘तं दृढपङ्कणं—’ उस दृढप्रतिज्ञकुमार को ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ—’ गणित प्रधान लेखादिक कलापं—‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथओ य करणओ य—सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ—’ पहली लेह कला से लेकर अन्तिम शकुनस्त कलातक जिन की संख्या ७२—प्रगट की जा चुकी है.

पञ्च संश्रद्ध समयना भिन्नपञ्चाथी लुहालुहाइये आस थाय छे, जेथी जया जया जे जे इपथी पाठ भणेल छे त्या त्या ते ते इपथी तेनी व्याख्या समजनी ॥सू०१७०॥

“तएणं से कलायरिणं—इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘कलायरिणं’ कलाचार्ये ‘तं दृढपङ्कणं’ ते दृढ प्रतिज्ञ कुमारने ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ’ गणित प्रधान वैभाषिक कलाओ ‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ’ अन्तिम शकुनस्त कला सुधीनी समस्त ७२ कलाओने सौथी पहिला सूत्र इपमा, त्थारपछी अर्थइपमा अथइपमा

दारकस्य अम्बा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्कारयिष्यतः, सम्मानयिष्यतः, विपुलं जीविकार्हं प्रीतिदानं दास्यतः दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू० १७१ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि—ततः खलु स कलाचार्यः तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः—लेखः—अक्षरविन्धासः आदौ—प्राथम्ये यासां ताः—लेखप्रथमा इत्यर्थः, तथा—गणि-प्रधानाः—गणितं प्रधानं यासु ता-गणितमुख्या इत्यर्थः. तथा शकुनरूपपर्यवसानाः—शकुनरूपं—पक्षिशब्दः पर्यवसाने-अन्ते यासां तास्तथा—पक्षिशब्द-परिज्ञानान्ताः, द्वासप्तति-द्वासप्ततीसंख्यकाः पूर्वोक्ताः कला सूत्रतः शब्दतश्च, अर्थतश्च ग्रन्थतः ग्रन्थरूपेण तासां लेखनतश्च, करणतः प्रयोगतश्च शिक्षित्वा-अध्याप्य, साधयित्वा साध्याः कारयित्वा तस्य दृढप्रतिज्ञस्य, अम्बापित्रोः (न्तिके उपनेष्यति प्रापयिष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन प्रचुरेण अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धः माल्यालङ्कारेण च सत्कारयिष्यतः सम्मानयिष्यतः, विपुलं प्रचुरं जिवितार्हं यावज्जीवं जीवितयोग्यं प्रीतिदानम् उपहारं, दाम्यतः, दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ मृ. १७१ ॥

प्रथमतः सूत्र रूप से—बाद में अर्थ रूप से—ग्रन्थरूप से, एवं—तदुभय-सूत्र और अर्थ दोनों रूप से सिखलाकर, एवं—उन्हें पहले उन्हीं के हाथ से सिद्ध कराकर उसके मातापिता के पास उसको ले आवेगा—‘तए णं तरस ददपइष्णास्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति—’ तब उस दृढप्रतिज्ञ कुमार के मानापिता उस कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खादिम, एवं—स्वादिमरूप चार प्रकार के आहार से, तथा—वस्त्र-गन्ध-माला और—अलङ्कारों से सत्कार करेंगे—‘सम्माणे-स्संति—’ विउलं जीवियारिहं, पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति—’

अने कश्चिद्भूमा प्रयोगभूमा शीघ्रवी अने ते कदाच्येने पडेता तेना न् हाथवडे प्रयोगभूमा सिद्ध कशवीने पछी तेने तेना मातापितानी पासै लध न्शे. ‘तए णं तस्स ददपइष्णास्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाण-खाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति’ त्थारभाइ ते दृढप्रतिज्ञ कुमारना मातापिता ते कलाचार्यने विपुल अशन-पान-आदिम-अने स्वादिमभूमा चार प्रकारना आहारथी तेमन् वस्त्र गन्ध माला अने अलंकारथी सतकृत कश्चे “सम्माणे-स्संति विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति”

मूलम—तए णं से ददपइण्णे दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णा-
यपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपंडि-
बोहए अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गायरई गंधव्वणट्टकुत्तले
सिंगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचेट्टियविलासलंलावुद्धाव-
निउणजुत्तोवयारकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहु-
प्पमदी अलंभोगसमत्थे साहस्सिए वियल्लयारी यावि भविस्सइ।सू. १७२।

छाया—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारक उन्मुक्तबालभावो विज्ञानतपरिणत-
मात्रो यौवनकमनुप्राप्तो द्वासप्ततिकलापण्डितो नवाङ्गसुसप्रतिबोधकः अष्टादश-

सत्सम्मान करे गे, फिर-विपुल प्रीतिदान जो कि-उनको जीवनभर के लिये
जीविका वा योग्य हो सकेगा-देंगे, यह सब कुछ करके, फिर वे उस कला
चार्य को विसर्जित कर दे गे, । टीकाथ—ःपष्ट हैं ॥ सू० १७१ ॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए—इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे—” इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ कुमार जिसका
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते—” बालभाव व्यतीत हो चला है, और
—विज्ञान जिसका शीघ्रता से परिपक्व अवस्था में पहुँच गया है. “जोव्वण-
गमणुपत्ते—” यौवनावस्थाशाली हुआ. “बावत्तरि कलापंडिए—णवंगसुत्तपण्डिबोहए—
अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए—” ७२—कलाओं में विशेषरूपसे
निष्णात हुआ. सुप्त अपने नवाङ्गों को दो कान-दो नेत्र-दो नासिकाछिद्र—एक जीम

सम्भानीत करथे पछी तेमनी लविका भाटे पर्याप्त धाय तेट्ठुं प्रीतिदान तेमने
आश्रित्तां आं अयुं करीने पछी तेओ तेमने विसर्जित करथे.

टीकाथं स्पष्ट छे=॥सू० १७१॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे” त्थार पछी ते दृढप्रतिज्ञ कुमार-के जेमत्तं
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते” भाणपत्थ पसार थध गयुं छे अने जेमत्तं
विज्ञान ओकदथ परिपक्ववावस्था सुधी पडोअी गयुं छे “जोव्वणगमणुपत्ते” युवावस्था
सपन्न थथे. “बावत्तरि, कलापंडिए णवंगसुत्तपण्डिबोहए—अट्टारसविहदेसिप्प-
गारभासाविसारए” ७२ क्लृप्पेभां विशेषपथी निष्णात थथेवे ते पोटाना सुप्त
नवाङ्गोने-वे कान, वे नेत्र, वे नासिकाछिद्र, ओक लव, ओक स्पर्शन धर्मिय, अने

विषदेशीप्रधारमापाविशारदो गीतरतिः गान्धर्वनाटयकुशलः शृङ्गारागारचारुवेपः
संगतगतहसितमणितचेष्टितविलाससंलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुशलो हययोधी स्थयोधी।
बाहुयोधी बाहुप्रमदी अलंभोगसमर्थः साहसिको विकालचारी चापि भविष्यति । ॥०१७२

एक रर्षिन, एवं-एक मन-इनको व्यक्त-जागृत करता हुवा, अड्डारह प्रकारकी
भाषाओं में विशरद, हुवा. "गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले-सिगागारागारचारुवेसे-
संगयगयहसियमणियचेष्टियविलाससंलापुल्लावनिउणजुतोवयारकुसले-" गीत-
एवं-रति में अचुरागयुक्त हुवा, गान्धर्व गान में-एवं नाटय क्रिया मे
पाररुत हुवा, तथा-शृङ्गारके गृह की तरह सुन्दर वेप से युक्त हुवा, समुचित गम-
नमें-समुचितहास में-समुचित बोलने में-वातघीत करने में-समुचित चेष्टा मे
समुचित विलास में-नेत्र जनिन विकार में-समुचित संलाप में-एवं समुचित
काकुषापण में-दक्ष हुवा, तथा-समुचित व्यवहारो में कुशल हुवा, तथा-"हय
जोही गयजोही-रहजोही-बाहुजोही-बाहुप्पमदी-अलं भोगसमर्थे-साहसिए-वियाल-
गारी यात्रि मविस्सइ-" हययुद्ध करने में कुशल हुवा गजयुद्ध करने में कुशल
हुवा, स्थयोधी हुवा, बाहुप्रयोधी हुवा, बाहुप्रमदी हुवा, बाहु से कठिन मी
वस्तु को चूर-र करने में समर्थ हुवा, भोग में समर्थ हुवा. अकेलाही
सहस्र संख्यक भटों के साथ युद्ध करने में समर्थ हुवा, अथवा-साहसिक-
अधिक साहस से युक्त हुवा, मध्यरात्रि में मी विचरण करनेवाला होगा. ।

अक्षभेद-व्यक्त जागृत करते अड्डार प्रकारनी देशीय भाषाओमा विशारद थये.
"गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले सिगागारागारचारुवेसे संगयगयहसियमणियचेष्टिय
विलाससंलापुल्लावनिउणजुतोवयारकुसले" गीत अने रतिमा अचुरागयुक्त थयेदो,
गान्धर्वगानमें "अने" नाटयक्रियामा पारगत थयेदो तेमज शृंगार गृहनी
जेम सुहर वेपथी सुसज्ज थयेदो ते द्दप्रतिज्ञ समुचित गमनमा, समुचित हासमा
समुचित ओल्लापमा वातघीत क्रवाभां, समुचित चेष्टामा, समुचित विलासमा-नेत्र-
जनितविकारमा, समुचित संलापमा अने समुचित काकु-भाषणमा पक्ष दक्ष थय जशे
आ प्रभाषे ते समुचित व्यवहारोमा कुशल थये. तेमज "हयजोही-गयजोही-रह-
जोही-बाहुजोही-बाहुप्पमदी-अलंभोगसमर्थे-साहसिए विगालगारी पावि मनि-
स्सइ" हययुद्ध करवामा गज युद्ध करवामा कुशल थये. ते स्थयोधी थये, बाहुयोधी
थये, बाहुमदी थये, बाहुथी अति कठोर वस्तुने चूर्ण विचूर्ण करवामां समर्थ थये.
भोगमा समर्थ थये. अकेलो ज ते सहस्र सख्यक भटोनी साथे युद्ध करवामा
समर्थ थये. अथवा साहसिक-अधिक साहसयुक्त थये. आम ते मध्यरात्रिमा पक्ष
विचरषु करनार थये.

मूलम—तए णं से ददपइण्णे दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णा-
यपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडि-
बोहए अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गायरई गंधव्वणइकुत्तले
सिंगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचेट्टियविलाससंलावुह्वाव-
निउणजुत्तोवयारकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुंजोही बाहु-
प्पमही अलंभोगसमत्थे साहस्सिए वियालयारी यावि भविस्सइ।सू.१७२।

छाया—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारक उन्मुक्तवालभावो विज्ञातपरिणत-
मात्रो यौवनकमनुप्राप्तो द्वासप्ततिकलापण्डितो नवाङ्गसुप्तप्रतिबोचकः अष्टादश-

सत्सम्मान करे गे, फिर-विपुल प्रीतिदान जो कि-उनको जीवनभर के लिये
जीविका वा योग्य हो सकेगा-देगे, यह सब कुछ करके, फिर वे उस कला
चार्य को विसर्जित कर देगे, । टीकार्थ—स्पष्ट है ॥ सू० १७१ ॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए—इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे—” इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ कुमार जिसका
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते—” वालभाव व्यतीत हो चला है, और
-विज्ञान जिसका शीघ्रता से परिपक्व अवस्था में पहुँच गया है, “जोव्वण-
गमणुपत्ते—” यौवनावस्थाशाली हुआ, “बावत्तरि कलापंडिए—णवंगसुत्तपडिबोहए-
अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए—” ७२-कलाओं में विशेषरूपसे
निष्णात हुआ, सुप्त अपने नवाङ्गों को दो कान-दो नेत्र-दो नासिकाछिद्र—एक जीम

सम्मानित करके पछी तेमनी लुचिका भाटे पर्याप्त धाय तेत्थुं प्रतिदान तेमने
आश्रित आ अधुं करीने पछी तेमो तेमने विसर्जित करके.

टीकार्थ स्पष्ट छे=॥सू० १७१॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे” त्थार पछी ते दृढप्रतिज्ञ कुमार-के जेमह
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते” भाणपथु पसार थध गथु छे अने जेमह
विज्ञान ओकहम् परिपक्ववावस्था सुधी पडोअयी गथु छे “जोव्वणगमणुपत्ते” युवावस्था
सपन्न थथे “बावत्तरि, कलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहए-अट्टारसविहदेसिप्प-
गारभासाविसारए” ७२ कलाओंमा विशेषरूपसे निष्णात थथेके ते पोताना सुप्त
नवाङ्गोने-जे कान, जे नेत्र, जे नासिकाछिद्र, ओक लस, ओक स्पशन धर्मिय, अने

विषदेशीप्रभारभापाविशारदो गीतरतिः गान्धर्वनाटयकुशलः शृङ्गारागारचारुवेषः
संगतगतहसितमणितचेष्टितविलाससंलापोल्लावनिपुणयुक्तोपचारकुशलो हययोधी रथयोधी।
बाहुयोधी बाहुप्रमदी अलंभोगसमर्थः साहसिको विकालचारी चापि भविष्यति । १७० १७२

एक रपर्शन, एवं-एक मन-इनको व्यक्त-जागृत करता हुआ, अट्टारह प्रकारकी
भापाओं में विशारद, हुआ. "गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले-सिंगारागारचारुवेषे-
संगयगयहसियमणियचेष्टियविलाससंलापोल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले-" गीत-
एवं-रति में अनुरागयुक्त हुआ, गान्धर्व गान में-एवं नाटय क्रिया मे
पारगत-हुवा, तथा-शृङ्गारके गृह की तरह सुन्दर वेष से युक्त हुआ, समुचित गम-
नमें-समुचितहास में-समुचित बोलने में-वातचीत करने में-समुचित चेष्टा मे
समुचित विलास में-नेत्र जनिन विकार में-समुचित संलाप में-एवं समुचित
काकुषावण में-दक्ष हुवा, तथा-समुचित व्यवहारों में कुशल हुआ, तथा-"हय
जोही गयजोही-रहजोही-बाहुजोही-बाहुप्पमदी-अलं भोगसमर्थे-साहसिए-वियात्-
यारी यात्रि मविस्सइ-" हययुद्ध करने में कुशल हुआ गजयुद्ध करने में कुशल
हुवा, रथयोधी हुवा, बाहुप्रयोधी हुवा, बाहुप्रमदी हुवा, बाहु से कठिन मी
वस्तु को चूर-र करने में समर्थ हुवा, भोग में समर्थ हुवा. । अकेलाही
सहस्र संख्यक भटो के साथ युद्ध करने में समर्थ हुवा, । अथवा-साहसिक-
अधिक साहस से युक्त हुआ, मध्यरात्रि में भी विचरण करनेवाला होगा. ।

येकभंत-व्यक्त जागृत करतो अट्टार प्रकारनी देशीय भापाओभा विशारद थशे.
"गीयरई-गंधव्वणट्टकुसले सिंगारागारचारुवेषे संगयगयहसियमणियचेष्टिय
विलाससंलापोल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले" गीत अने रतिमा अनुरागयुक्त थथेवो,
गान्धर्वगानमा "अने" नाटयक्रियामा पारगत थथेवो तेमज शृंगार गृहनी
जेम सुंदर वेषधी सुसज्ज थथेवो ते हठप्रतिज्ञ समुचित गमनमा, समुचित हासमा
समुचित चेष्टावामा वातचीत करवामा, समुचित चेष्टामा, समुचित विलासमा-नेत्र-
जनितविकारमा, समुचित संलापमा अने समुचित हाकु-बाषणमा पणु हस थथे
अथ प्रमाणे ते समुचित व्यवहारोमा कुशल थथे. तेमज "हयजोही-गयजोही-रह-
जोही-बाहुजोही-बाहुप्पमदी-अलंभोगसमर्थे-साहसिए विपालयारी चापि मनि-
स्सइ" हययुद्ध करवामा गज युद्ध करवामा कुशल थथे. ते रथयोधी थथे, बाहुयोधी
थथे, बाहुप्रमदी थथे, बाहुयोधी अति कठोर वस्तुने चूर्ण विचूर्ण करवामा समर्थ थथे
भोगमा समर्थ थथे. येकवो ज ते सहस्र संख्यक भटोनी साथे युद्ध करवामा
समर्थ थथे अथवा साहसिक-अधिक साहसयुक्त थथे. आभ ते मध्यरात्रिमा पणु
विचरण करमार थथे.

टीका—“तए णं से’ इत्यादि-ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो नाम दारकः उन्मुक्त-
बालभावः-व्यतिक्रान्तबाल्यावस्थो विज्ञातपरिणतमात्रः-विज्ञातं-विज्ञानं परिणत-
मात्रं-सद्यः परिपक्व यस्य स तथा-परिपक्वविज्ञान इत्यर्थः, यौवनकम्-युवावस्थाम्
अनुप्राप्तः-अनुगतो द्वासप्ततिकलापण्डितः-पूर्वोक्तद्वीसप्ततिकलाऽभिज्ञो नवाङ्ग
सुप्तप्रतिबोधकः-द्वि श्रोत्रे, द्वे नेत्रे, द्वे, नासिके, एका जिह्वा एका त्वग् एकं
मनः’ इत्येतेषां नवानां-नवसंख्यकानाम्-अङ्गानाम्-अवयावानां सुप्तानां बाल्या-
दव्यक्तचेतनावच्छात् सुप्तसदृशानां प्रतिबोधकः यौवनाऽऽगमेन व्यक्तं चैतन्यं यस्य
स तथा=स्व स्व विषयग्रहणसमर्थं नवाङ्गयुक्त इत्यर्थः, तथा-अष्टादशविध देशीप्रकार-
भाषाविशारदः-अष्टादशविधायाम्-अष्टादशमेदायां देशीप्रकारायां-देशीस्वरूपायां
भाषाया विशारदः-निष्णातः-अष्टादशभाषाऽभिज्ञ इत्यर्थः, तथा-गीतरतिः गीते गाने
रतिः अनुरागो यस्य स तथा=गीतानुरागयुक्त इत्यर्थः, तथा गान्धर्वनाटकुशलः-
गान्धर्वे-गान्धर्वस्येदं गा धर्वं तस्मिन्-गाने, नाटके-नटकर्मणि च कुशलः-गान्धर्व-
विद्यायां च पारङ्गत इत्यर्थः, तथा-शृङ्गारागारचारुवेषः-शृङ्गारः-अलङ्कारादिकृता
शोभा तस्य अगारमिव-गृहमिव चारुवेषः-रुचिरवेषो यस्य स तथा-सविच्छिन्न्य-
लङ्कारालङ्कृतशरीर इत्यर्थः, तथा-संगतगतहसितमणितचेष्टितविलाससंलापोच्छ्रा-
पनिपुण्युक्तोपचारकुशलः-संगतेषु-तत्र गतं गमनं हसितं-हासः मणितम्-उक्तिः
चेष्टितं-चेष्टा, विलासः-नेत्रजन्यो विकारः, तदुक्तं-“विलासो नेत्रजो ह्येयः”
इ त, संलापः-परस्परभाषणम्, उक्तं च-“संलापो भाषणं मिथः” इति, उच्छ्रापः-
काका भाषणम्, उक्तं च-“उच्छ्रापः काकुभाषणम्” इति, एतेषामितरेतरयोगश्चन्द्रः,

टीकार्थ-उसका स्पष्ट है. “नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधक-” का-मतलब ऐसा है
कि बाल्यावस्था में जो-श्रोत्र-आदि अङ्ग अव्यक्त चेतनावाले होने से सुप्त जैसे
रहते हैं, वेही-यौवन अवस्था में व्यक्त चेतनावाले हो जाने से जागृत जैसे
हो जाते हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि यौवनावस्था में अपने अपने विषय
को ग्रहण करने में ये समर्थ हो जाते हैं। “विलासो नेत्र जो ह्येयः-संलापो
भाषणं मिथः-” इस कथन के अनुसार नेत्र विकार का नाम विलास, और-
भाषण का नाम संलाप है। “उच्छ्रापः काकुभाषणम्” के अनुसार काकुभाषण

टीकार्थ-आ सूत्रनेो अर्थ स्पष्ट छे “नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकः”नो अर्थ आ
छे छे भाषणपञ्चमा श्रोत्र (कान) वगेरे अगो सुप्त जेवा डोय छे तेज युवावस्थाभा
अगृत जेवा थरु नय छे तात्पर्य आ छे छे युवावस्थाभा अे अगो पोतपोताना
विषयने अहस्य करवाभा समर्थ थरु नय छे ‘विलासो नेत्रजो ह्येयः संलापो भाषणं
मिथः’ आ कथन मुख्य नेत्र विकारतु नाम विलास अने भाषणतु नाम संलाप छे
“उच्छ्रापः काकुभाषणम्” मुख्य काकुभाषण सारभरित व्यंग्यपुष्टि के छे

तेषु निपुणः—दक्षः, तथा-युक्तोपचारकुशलः—युक्तेषु-समुचितेषु उपचारेषु-व्यवहारेषु कुशलः—चतुरः, पदद्वय कर्मधारयः, तथा-हययोधी-हयेन युध्यते इत्येवंशीलः-हययुद्धकलाकुशल इत्यर्थः, एवं गजयोधी-रथयोधी बाहुयोधी—इतिपदत्रयमुन्नेयम्, तथा-बाहुप्रमर्दी—बाहुभ्यां प्रमर्दतीत्येवंशीलः—बाह्याघातेन कठिनस्यापि वस्तुन शर्णाकरणशील इत्यर्थः, तथा-अम्मोगसमयः—अत्यर्थं भोगानुभवार्थः साहसिक-सहस्रेण युध्यते इति-सहस्रसंख्यकभटैः सह एकाकषेव युद्धकर्ता, 'साहसिकः इतिच्छायापक्षेत् अतिसाहसयुक्तः, तथा-विकाचचारी-विकालेऽपि मध्यरात्रेऽपि चरतीत्येवं शीलः अतिसाहसवत्त्वाद् मध्यरात्रेऽपि विचरणशीलश्चापि भविष्यतीति । सू० १७२।

मूलम्—तए णं तं ददपइणं दारगं अम्मापियरो उम्मूक्क-वालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहिं य पाणभोगेहिं य लयणभोगेहिं य वत्थभोगेहिं य सयणभोगेहिं य उवनिमंतिहिंति । ॥ सू० १७३ ॥

छाया—ततः खलु तं ददप्रतिज्ञां दारकम् अम्बापितरौ उन्मुक्तवालभावं यावद् विकालचारिणं च विज्ञाय विपुलैः अन्नभोगैश्च पानभोगैश्च लयनभोगैश्च वत्थभोगैश्च शयनभोगैश्च उपनिमन्त्रयिष्यतः । ॥ सू० १७३ ॥

सारगर्भितं वृत्रञ्चन को कहते हैं, या-बच्चों के द्वार का-का, क-कु आदि तोतली बेली को भी काक भाषण कहते हैं । ॥ सू० १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं—” इत्यादि—

मूलार्थं—“तए णं—” इसके बाद “तं ददपइणं दारगं—” उस दृढ प्रतिज्ञा दारक को “अम्मापियरो—” मातापिता “उम्मूक्कवालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता—” उन्मुक्तवालभाववाला यावत्-विकालचारी जानकर—“विउलेहिं अन्नभोगेहिं-पाणभोगेहिं—” विपुल अन्न भोगों से विपुल पानभोगों से—“लयणभोगेहिं य वत्थभोगेहिं य सयणभोगेहिं य उवनिमंतिहिंति—” विपुल लयन-

छे अथवा भाणके वडे छे-छे-कु-कु-वगेरे ने तोतडी जालीने पथु छेकु शापथु कहे छे सू ॥ १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं” इत्यादि ।

मूलार्थं—“तए णं” त्वार पछी “तं ददपइणं दारगं” ते ददप्रतिज्ञा दारकने “अम्मापियरो” माता पिता “उम्मूक्कवालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता” उन्मुक्तवालभाव युक्त यावत् विकालचारी जालीने “विउलेहिं अन्नभोगेहिं य पाणभोगेहिं

टीका—“तए जं” इत्यादि—ततः खलु तं दृढप्रतिज्ञं दारकं अन्वा-पितरौ-माता-पितरौ उन्मुक्तबालमावं-व्यतिक्रान्तबाल्यावस्थं यावत्—यावत्पदेन ‘विज्ञातपरिणत-मात्र यौवनकमनुप्राप्तं द्वादशप्रतिकलापण्डितं—नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकम् अष्टादशविध-देशीप्रकारभाषाविशारदं गीतरतिं गान्धर्वनाटयकुशलं शृङ्गारागारचारुवेषं संगतगत-हसितमणितचेष्टितविलाससंलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुशलं हययोधिनं गजयोधिनं रथयोधिनं बाहुयोधिनं बाहुप्रमर्दिनम् अलम्भोगसमर्थं साहसिकम्’ इत्येतानि पदा-नि संग्राह्याणि, तथा विकालचारिणं च विज्ञाय विपुलैः—प्रचुरैः अन्नमोगैः-अन्न-रूपमोग्यपदार्थैः, पानमोगैः—पेयरूपमोग्यपदार्थैः, लयनमोगैः—प्रासादरूपमोग्य पदार्थैः, वस्त्रमोगैः—वसनरूपमोग्यपदार्थैः शयनमोगैः—शयनरूपमोग्यपदार्थैश्च उप-निम्नत्रियिष्यत इति । दृढप्रतिज्ञं दारकं यौवनोन्मुखं दृष्ट्वा तन्मातापितरौ अन्ना-दिमोगानुमोक्तुं प्रेरियिष्यत इति सूत्राशय इति । ॥सू० १७३॥

तनुमोगों से विपुलवस्त्ररूप मोग्य पदार्थों से उपनिम्नत्रित करेगे ।, अर्थात् उसे अब अन्नादि मोग्य विषय के लिये स्वान्त्रता देगे ।

टीका—स्पष्ट है, “उन्मुक्तबालमाव जाव—” में जो यह यावत् पद आया है, उससे—“विज्ञातपरिणतमात्रं, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादश प्रतिकला पण्डितम्, नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकम्, अष्टादशविधदेशी प्रकार भाषाविशारद गीतरति, गान्धर्वनाटय कुशलम्, शृङ्गारागारचारुवेषं, संगतगतहसितमणित-चेष्टितविलाससंलापोल्लाप निपुण युक्तोपचार कुशलं, हययोधिनम्, गजयोधिनम् रथयोधिन, बाहुयोधिन, बाहुप्रमर्दिनम् अलमोगसमर्थम्, साहसिकम् साह-सिकम्, इन् पीछे के पाठों का ग्रहण हुवा है । ॥ सू० १७३ ॥

विधुल अन्न भोगोधी, विपुल पान भोगोधी ‘लयनमोगैर्हि य वत्थमोगैर्हि य सयणमोगैर्हि य उवनिमंतिर्हिति’ विपुल लयन तद्युवोगोधी, विपुल वस्त्ररूप भोग्य पदार्थोधी उपनिम्नत्रित करेगे अष्टके के तेने अन्न वगेरे भोग्य विषयके पदार्थोने भोगवानी छूट आपसे.

टीका—स्पष्ट है ‘उन्मुक्तबालमावं जाव’ भा ने यावत् पद आवेक है तथी “विज्ञातपरिणतमात्रं, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादशप्रतिकलापण्डितम् नवाङ्गसुप्त-प्रतिबोधकम्, अष्टादशविध देशी प्रकार भाषा विशारद, गीतरति, गान्धर्व नाटय कुशलम् शृङ्गारागार चारुवेष, संगतगतहसित मणित चेष्टित विलास संलापोल्लाप निपुण युक्तोपचारकुशल, हययोधिनम्, गजयोधिनम्, रथयोधिनम्, बाहुयोधिनम्, बाहुप्रमर्दिनम्, अलमोगसमर्थम्, साहसिकम्, साहसिकम् आ पाछपाठ अहं-थय है ॥ १७३ ॥

मूळम्—तए णं दृढपइण्णे दारए तेहि विउलेहिं अन्नभोएहिं
जाव सयणभोएहिं णो सज्जिहिइ णा गिज्झिहिइ णो मुच्छिहिइ णो
अज्झोववज्जिहिइ । से जहा णामए पउमुप्पलेइ वा पउमंइ वा जाव
सयसहस्सपत्तेइ वा पके जाए जले संबुद्धे णोवलिप्पइ पंकरणं, णो-
वलिप्पइ जलरणं, एवामेव दृढपइण्णे वि दारए कामेहि जाए
भोगेहि संबुद्धे णोवलिप्पिहिइ कामरणं, णोवलिप्पिहिइ भोग-
रणं, णोवलिप्पिहिइ मित्तणाइणियगसयणसंवधिपरिजणेणं । से
णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवल वोहिं बुज्झिहिइ, मुंढे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पवइस्सइ । से णं अणगारे भविस्सइ-ईरिया
समिए जाव सुदुयदुयासणो इव तेयसा जलते । तस्स णं भगवओ
अणुत्तरेणं णाणेणं, एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्ज-
वेणं मद्दवेणं लाघदेणं खंतीए गुत्तीए अणुत्तरेणं सब्बसंजमसुचरिय
तवफलणिब्बाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे कसिणे
पडिपुण्णे निरावरणे णिब्बाघाए, केवलवरणाणदंसणे समुपज्जिहिइ ।
तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ, सदेवमणुयासुरस्स
लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा—आगइं गइं ठिइ चवणं उव-
वायं तक्कं कड मणोमाणसिय खइयं भुत्तं पडिसेविय आवीकम्मं
रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं कालं मणवयकायजोगे वट्टमा-
णाणं सब्बलोए सब्बजीवाणं सब्बभावे जाणमाणे पासमाणे
विहरिस्सइ । ॥ सू० १७४ ॥

छाया—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारक स्तेषु विपुलेषु अन्नभोगेषु यावच्छ-
यनभोगेषु नो सदृक्ष्यति, नो गर्त्रिष्यति, नो मूर्च्छिष्यति, नो अद्युपपत्स्यते ।
तद्यथानाम-पद्मोत्पलमिति वा पद्ममिति वा यावत् शतसहस्रपत्रमिति वा पद्मे
जातं जले बृद्धं नोपलिप्यते पद्मरजसा, नोपलिप्यते जलरजसा, एवमेव दृढ
प्रतिज्ञोऽपि दारकः कामैर्जातो भोगैः संवर्द्धितो नोपलेभ्यते कामरजसा, नो-
पलेभ्यते भोगरजसा, नोपलेभ्यते प्रियव्रातिनिजक वजनसम्बन्धिपरिजनेन ।

“तए णं दढपइण्णे दारए—” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए णं’ उसके बाद— ‘दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्नभोगेहिं
जाव सयणभोगेहिं—’ वह दढप्रतिज्ञ दारक उन विपुल अन्नरूप भोग्य पदार्थों
में यावत्-शयनरूप भोग्य पदार्थों में—‘णो सज्जिहिइ, णो गिज्झिहिइ, णो
मुच्छिहिइ, णो अज्झोववज्जिहिइ—’आसक्ति नहीं करेगा, गृद्धिभावको प्राप्त
नहीं होगा, मूर्च्छाभाव को प्राप्त नहीं होगा, उनमें—एक मनवाला नहीं बनेगा ।
‘से जहाणामए पउमुप्पलेइ वा, पउमेइ वा, जाव सयसहससपत्तेइ वा पंके जाए
जले संवुद्धे णोवलिप्पइ पंकरयेणं णोवलिप्पइ जलरएणं—’ जैसे-पद्म, अथवा—
उत्पल, यावत्-शत सहस्रपत्रोंवाला कमल पद्म में पैदा होता है, जल में बढ़ता
है, परन्तु—वह कीचड़ से जरा भी अंश में लिप्त नहीं होता है, पानीसे लिप्त
नहीं होता है, “एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं संवुद्धे, णो-
वलिप्पिहिइ—कामरणं, णोवलिप्पिहिइ भोगरणं, णोवलिप्पिहिइ मित्तणाइ
णियगसयणसंबंधिपरिजणेणं—” इसी तरह से वह दढप्रतिज्ञ दारक भी काम-

“तए ण दढपइण्णे दारए” इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ पक्ष “दढपइण्णे दारए ते हिं विउलेहिं अन्नभोगेहिं जाव
सयणभोगेहिं” ते दढप्रतिज्ञ दारक ते विपुल अन्नरूप भोग्य पदार्थोंभा यावत् शय
नरूप भोग्य पदार्थोंभा “णो सज्जिहिइ, णो गिज्झिहिइ, णो मुच्छिहिइ, णो अज्झोव-
वज्जिहिइ” आसक्ति भवावशे नहिं, गृद्धभाव प्राप्त करे नहिं, मूर्च्छाभाव प्राप्त
करे नहिं, तेभा तस्वीन थशे नहिं -‘से जहाणामए पउमुप्पलेइवा, पउमेइवा
जाव सयसहससपत्तेइवा पंके जाए जले संवुद्धे णोवलिप्पइ पंकरयेणं णोवलिप्पइ
जलरएणं” जेभ पद्म के उत्पल, यावत् शत सहस्रपत्र कमल पद्म (काठव)भा उत्पन्न
छाय छे, पाष्ठीभा वृद्धि प्राप्त करे छे, पक्ष ते सडेअ पक्ष काठवथी
दिस थत्तं नथे “एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं
संवुद्धे, णोवलिप्पिहिइ कामरणं, णोवलिप्पिहिइ भोगरणं णोवलिप्पिहिइ, मित्त
णाइ—णियगसयणसंबंधिपरिजणेणं” आ प्रभाषे ते दढप्रतिज्ञ दारकपक्ष काठवथी

स खलु तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके केवलां बोधिं भवत्यते, गुण्डो भूत्वा आगारात् अगारितां प्रव्रजिष्यति । स खलु अनगारो भविष्यति ईर्ष्या-मितां यावत् सुदुतहुताशन इव तेजसा ज्वलन् । तस्य खलु भगवतोऽनुत्तरेण ज्ञानेन, एवं दर्शनेन चरित्रेण आलयेन विहारेण. आर्जवेन मार्दवेन लाघवेन क्षान्त्या गुप्त्या मुक्त्या अनुत्तरेण सर्वं संयमसुचरिततपः फलनिर्वाणमार्गेण आमानं भाव-

से उत्पन्न होगा—भोगों से वर्धित होगा, फिर भी वह काम से लिप्त नहीं होगा, भोगों से लिप्त नहीं होगा, मित्र-ज्ञाति-निजक-सम्बन्धि जन, और-परि-जनो में लिप्त नहीं होगा । “से णं तहारूपाणं थेराणं अंतिए केवलं बोधिं बुज्झिहिइ मुंढे भवित्ता अगाओ अणगारियं पव्वइस्सइ-” वह तो केवल तथारूपवाले स्थविरों के पास केवल बोधि को प्राप्त होगा “से णं अणगारे भविस्सई ईरियासमिए जाव सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंते-” इम अगारावस्था में ब्रह्म ईर्यासमिति आदि पांच समिति का पालन करेगा, यावत् अच्छी तरह जलती हुयी अग्नि की तरह वह अपने तेज से चमकेगा “तस्स णं भगवओ अणुत्तणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं महवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजम सुचरियतवफलणिज्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स—” अनुत्तरज्ञान से-अनुत्तरदर्शन से-अनुत्तरचारित्र से-अप्रतिबद्ध विहार से-आजं वसे—मार्दव से-लाघव से-क्षमा से-गुप्ति से-त्यागसे-अनुत्तर सर्वं सयम से सुचरित्र से-तप से फल से-एवं निर्वाण मार्ग से आत्मा को

उत्पन्न थये, भोगाथी वर्द्धित थये, छता अे कामथी लिप्त थये नहि, भोगाथी लिप्त थये नहि, मित्र ज्ञाति, निजक सम्बंधिजन अने परिजनोभां लिप्त थये नहि” “से णं तहारूपाणं थेराणं अंतिए-केवलं बोधिं बुज्झिहिइ-मुंढे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ” ते तो इकत तथारूप स्थानिरेणी पासे केवल बोधिने प्राप्त करथे. सुदुत थये अेटले के अगारावस्थाभाथी अनगारावस्था प्राप्त करथे से णं अणगारे भविस्सइ ईरिया समिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते” आ अणुगारावस्थाभा ते ध्यांसमिति वगेरे पाय समित्तुं पालन करथे यावत् सारी रीते प्रभवदित अग्निनी जेभ ते पोताना तेज्जथी चमकथे. “तस्स णं भगवओ-अणुत्तरेणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं महवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरिय तव फल णिज्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स” अनुत्तर ज्ञानथी, अनुत्तर दर्शनथी, अनुत्तर चारित्रथी, अप्रतिबद्ध विहारथी, आर्जवथी, मार्दवथी, लाघवथी, क्षमाथी, गुप्तिथी त्यागथी, अनुत्तर सर्वं सयमथी, सुचरित्रथी, तपथी, इणथी, अने निर्भाव्य मार्गथी

यमानस्य अनन्तम् अनुत्तरं कृत्स्नं प्रतिपूर्णे निरावरणं निर्व्याघातं केवलवरज्ञान-
दर्शनं समुत्पत्स्यते । ततः खलु म भगवान् अर्हन् जिनः केवली भविष्यति,
सदेवमनुजा-सुरस्य लोकस्य पर्यायं ज्ञारयति, तद्यथा आगतिं गतिं स्थितिं च्यवनम्
उपपातं तर्कं कृतं मनोमानसिकं खादितं भुक्तं प्रतिसेवितम् आविष्कर्म रहःकर्म
अरहा अरहस्य भागी तस्मिन्स्मिन् काले मनोप्राकाययोगे वर्तमानानां सर्वलोके
सर्वजीवानां सर्वभावान् जानन् पश्यन् विहरिष्यति । ॥सू० १७४॥

भावित करते हुवे उस भगवान् दृढकुमार के “अगते अणुत्तरे कस्मिणे पडिपुण्णे
निरावरणे णिव्वाधाए केवलवरनाणदंसणेण समुत्पज्जिहिइ—” अनन्त-अनुत्तर-कृत्स्न-
प्रतिपूर्णे-निरावरण-निर्व्याघात ऐसे केवल ज्ञान, और केवलदर्शन उत्पन्न होंगे- ‘तए णं
से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ-’ तब ये-दृढकुमार भगवान् अर्हन्त जिन
केवली हो जावेगे । “सदेवमाणयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा
आगइं, गइं, ठिइं चवणं, उववायं, तक्कं, कइं मणोमाणसियं खाइयं-भुत्त-पडि
सेवियं—” मनुज-देव असुर सहित लोका की पर्याय को जान लेंगे, जैसे—आगतिक
को-गति को- स्थिति को-च्यवन को-उपपात को तर्क को कृतको मनोमा सिक
को-खादित को-भुक्त को प्रतिसेवित को-प्रत्यक्ष में कृत को एकान्त में कृत
को, इस तरह से मनुज, देव, असुर सहित लोका की पर्याय को, वे जानेंगे, ।
“अरहा अरहस्स भागी तं तं काल मणवयणकायजोगे वट्टमाणणं सव्व-
लोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ-” इस तरह वे
अनगार कि जिन को अप्रत्यक्ष कोई भी वस्तु नहीं रहेगी साध्याचार से

आत्माने भावित करता ते भगवान् दृढकुमारने “अण ते अणुत्तरे कस्मिणे पडिपुण्णे
निरावरणे णिव्वाधाए केवलवरनाणदंसणे समुत्पज्जिहिइ’ अनन्त अनुत्तर
कृत्स्न प्रतिपूर्णे निरावरण निर्व्याघात अथा केवलज्ञान अने केवलदर्शन उत्पन्न थये
‘तए ण से भगवं अरहा जिणे केवली भविरसइ’ त्वारे ते दृढकुमार भगवान् अर्हन्त
जिन केवली थथ अथे सदेवमाणयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा
आगइं, गइं, ठिइं, चवणं, उववायं, तक्कं, कइं, मणोमाणसियं खाइयं
भुत्तं पडिसेवियं” मनुज, देव, असुर सहित लोकनी पर्यायने लक्ष्णी देखे, अटके
के आगतिये, गतिये, स्थितिये, च्यवनने, उपपातने, तर्कने, कृतने, मनोमानसिकने
खादितने, भुक्तने, प्रतिसेवितने प्रत्यक्षमा कृतने, एकान्तकृतने, आभ ते मनुज
देव, असुर सहित लोकनी पर्यायने लक्ष्णथे “अरहा अरहस्स भागी तं तं काल
मणवयणकायजोगे वट्टमाणणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे
पासमाणे विहरिस्सइ” आ प्रभावे ते अनगार के जेभना माटे प्रत्यक्ष अथी केध

टीका तए णं से” इत्यादि—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः तेषु पूर्वोक्तेषु विपु-
लेषु—प्रचुरेषु अन्नभोगेषु ‘यावत्’—यावत्पटेन-पानभोगेषु लयनभोगेषु वस्त्रभोगेषु
इति समृद्धते, तथा-शयनभोगेषु च नो समृद्धि-आसक्ति न करिष्यति नो
गर्धिष्यति-गृद्धिमान् न भविष्यति, नोमूर्च्छिष्यति—मूर्च्छाभाव नो करिष्यति ना
अध्युपपत्स्यते—तदेकमना नो भविष्यति । अमुमेवार्थं स दृष्टान् माह—“से जहा
णामए” इ-यादि—यथा-येन प्रकारेण उत्पलं लोहप्रसिद्धं ‘नामकं’ इति वाक्पाल-
कारे, पद्मोत्पलमिति वा, पद्ममिति वा-‘यावत्’—यावत्पटेन—‘कुसुममिति वा
नलिनमिति वा सुमगमिति वा सुगन्धमिति वा पुण्डरीकमिति वा महापुण्डरीक-
मिति वा शतपत्रमिति वा सहस्रपत्रमिति वा’ इति समृद्धते, तथा-शासहरत्र-
मिति वा—अत्र इतिशब्दः स्वरूपनिर्देशे, वा शब्दो विकल्पे, पङ्क—रुदमे जातं-

वर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकल आचारत्राले होते हुवे उम उम काल
में मन-वचन-काय-योग में वर्तमान इस लोक के समस्त जीवों के समस्त
भावों को जानते हुवे, और-देखते हुवे भूमण्डल में विहार करेगे ।

टीकार्थ—स्पष्ट है, परन्तु—इस में जो विशेषता है, वह इस प्रकार से
है-वे दृढप्रतिज्ञदारक उन पूर्वोक्त विपुल अन्नभोगों में यावत्—पानभोगों
में, तथा-लयनयोगों में वस्त्रभोगों में आसक्ति नहीं करेगे, गृद्धियुक्त नहीं
बनेगे, मूर्च्छाभाव को नहीं धारण करेगे, और-न उन में तल्लीन मन
वाले होंगे, इस बात को दृष्टान्त द्वारा यों समझाया गया है—जैसे-पद्मोत्पल
अथवा-पद्म, यावत् कुसुम, अथवा-नलिन या-सुमग, या-सुगन्ध, या-पुण्डरीक, या
-महापुण्डरीक, या-शतपत्र, या-सहस्रपत्र, ये सब कमलजाति के भेदरूप कमल

वस्तु यात्री रहेशे नहीं सावधान्यारथी वर्जित होवा वहल सुस्पष्ट सकल आचारगणा
थधने ते ते कालमा मनवचन, काय, योगमा वर्तमान आ लोकना समस्त लुवेने
समस्त भावेने बल्यता अने जेता भूमंडलमा विहार करेशे

टीकार्थ स्पष्ट छे पञ्च आमा जे विशेषता छे ते आ प्रभाञ्छे छे ते दृढप्रतिज्ञ
दारक ते विपुल अन्नभोगोमा यावत् पानभोगोमा, लयनभोगोमा, वस्त्रभोगोमा तेभज
शयनभोगोमा आसक्त थशे नहि, गृद्धियुक्त मनशे नहि, मूर्च्छाभावयुक्त थशे नहि
अने तेमा तल्लीन पञ्च थशे नहि. ज्येज वातने दृष्टात वडे आ प्रभाञ्छे समन्त-
ववामा आवी छे के जेभ पद्मोत्पल अथवा पद्म यावत् कुसुम, अथवा नलिन के
सुमग, के सुगन्ध, के पुण्डरीक, के महापुण्डरीक, के शतपत्र, के सहस्रपत्र आ भधा
कमल जतिना कमणो कर्म (कहव)मा उत्पन्न होथ छे, पाणीमा दृद्धि पासे छे,

समुत्पन्न, जले संगृह्य-वृद्धिं गतमपि नोपलिप्यते-नोपलिप्तं भवति, पङ्करजसा, नोपलिप्यते जलरजसा, इत्थं दृष्टान्तमुक्त्वा दाष्टान्तिकमाह-‘एवमेव’ इत्यादि । एवमेव-अनेन प्रभारेणैव दृढप्रतिज्ञोऽपि दारकः कामैः जातोऽपि भोगैः संवृद्धो वृद्धिं गतोऽपि कामरजसा नोपलेप्यते-उपलिप्तो न भविष्यति, भोगरजसा नोपलेप्यते-उपलिप्तो न भविष्यति, तथा मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धि परिजनेन-तत्र मित्राणि-सुहृदः, जातयः माता-पिता-भ्रात्रादयः निजकाः-स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः-पितृव्यादयः सम्बन्धिनः-स्वश्वशुरपुत्रश्वशुरादयः, परिजनाः-दासीदामादयः एतेषां समाहारस्तेन सह नोपलेप्यते-उपलिप्तो नो भविष्यति । अपितु स खलु दृढप्रतिज्ञः अनगारो भविष्यति, कीदृशोऽनगारो भविष्यति? ईरियासमिह इत्यादि । ईर्यासमिह ईर्यासमिहे-युक्तः, ‘यावत् यावत्पदेन-मासाममिह एवणा नमिह आयणमंडमत्तनिकखेवणाममिह उच्चारपासवणखेलसिंधाणजल्लपरिष्ठापनिसमिह मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिदिह गुत्तव भयारी अममे अकिचणे छिण्णगधे

यद्यपि-कीचह से उत्पन्न होते हैं, जल में वृद्धि पाते हैं, परन्तु-फिर भी कीचह रजसे लिपन नहीं होते हैं । जलरजसे सम्बन्धित नहीं होते हैं, इसी प्रकार से-दृढप्रतिज्ञ भी दारक कामसे उत्पन्न हुआ है भोगोंसे संवर्धित हुआ है, फिर भी वह कामजसे उरलित नहीं बनेगा, मित्रजनोंसे ज्ञातिजनोंसे माता पिता, भ्राता आदि वंशसे निजजनोसे पुत्रादिकोंसे स्वजनोंसे पितृव्यादिकोंसे सम्बन्धित जनोंसे श्वशुर पुत्रश्वशुर आदिसे, एवं परिजनोंसे दासीदास आदि कोंसे सम्बद्ध नहीं होगा । किन्तु वह दृढप्रतिज्ञ अनगार होगा । ईर्यासमिति का पालन करेगा, यावत् भाषा समिति का एषणा समिति का, अदानमण्डमात्र निक्षेपणसमिति का उच्चारणसवण खेल सिंधाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति का पालन करेगा, मनोगुप्ति का वचन गुप्ति का कायगुप्ति का पालन करेगा यहाँ ऐसा समझना चाहिये । हित मितप्रिय वचन बोलना इसका नाम भाषासमिति है । इस

पक्ष छता ये दाहवथी विप्त थता नथी आभते दढप्रतिज्ञ दारक पक्ष कामथी उत्पन्न थथे भोगेथी संवर्धित थथे छताये ते कामरजथी उपलिप्त नहि थथे, मित्रजनोथी पुत्रादिथी स्वजनोथी पितृव्यादिथी संबन्धीजनोथी श्वशुर, पुत्रश्वशुर वगेरेथी अने परिजनोथी, दासीदास वगेरेथी सम्बद्ध थथे नहि. पक्ष ते दढप्रतिज्ञ अनगार थथे. धर्मासमितितु पालन करथे, यावत् भाषा समितितु, एषणा समितितु, अदान मण्डमात्र निक्षेपणसमितितु उच्चारणसवण-खेल, सिंधाण खेल-परिष्ठापनिका समितितु पालन करथे मनोगुप्ति, कायगुप्ति, वचनगुप्ति पालन करथे. आभ अही सम्बन्धुं नेधये, हित-मित प्रियवचन बोलवु तेहु नार

छिष्णसोए निरुवलेवे कंसप ईव मुक्तोए संखे इव निरंजणे जीवे विव अप्पडि-
हयगई जच्चणग पिव जाग्रह्वे आदरिसफलगे इव पगडमावे कुम्मे इव
गुत्तिदिए, पुक्करपत्तं व निरुवलेवे, गगणमिव णिरालंबणे, अणिला इव निरालए,
चंदोइव सोमलेसे, सरो इव दित्तेए, सागरो इव गभीरे, विहग इव व्वआ
विष्णुक्क, मंदरो इव अप्पकंपे, सारगग लिलं इव सुद्धहियए, ग्वग्गिविसां इव
एगजाए. मारंण्डपक्षीप अप्पमत्ते, कुंजरो इव शोडीरो, वसभो इव जायत्थामे, सीहो
इव दुद्धरिसे, वसुन्धरा इव सव्वफासविसहे' इति संग्राह्यम् । एतच्छाया च—भाषा-
समित एषणासमित आदानमाण्डमात्रनिक्षेपणासमितः उच्चारप्रमवणवे-
शिक्षणजल्लपरिष्ठापनिकासमितो मनोगुप्तो वचोगुप्तः कायगुप्तो गुप्तो गुप्ते-
न्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी अममः अकिञ्चनः, छिन्नग्रन्थः, छिन्नस्रोताः, निरुपलेपः,
कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः, शृङ्ग इव निरञ्जनः, जीव इव अप्रतिहतगतिः, जात-
कनकमिव जातरूपः, आदर्शफलक इव प्रकटभावः, कर्म इव गुप्तेन्द्रियः पुष्कर-
पत्रमिव निरुपलेपः गगनमिव निरालम्बनः अनिल इव निरालयः. चन्द्र इव सोम-
लेख्यः, सूर इव दीप्ततेजाः, सागर इव गम्भीरः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः,
मन्दर इव अप्रकम्पः शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः, खड्गविषाणमिव एकजातः,
मारण्डपक्षीव अप्रमत्तः, कुञ्जर इव शोडीर', वृषभ इव जातरथामा, सिंह इव
दुर्द्धर्षः, वसुन्धरेव स्वस्पर्शविषहः-इति । तत्र भाषासमित—भाषासमितियुक्तः,
एषणासमितः-एषणायाम्-भक्ताद्येषणायाम् उद्गमादिदोषवर्जनपूर्वकं समितः—समिति
युक्तः, विशुद्धाहारादिग्रहणान्वेषणोपयोगयुक्त इत्यर्थः । तथा आदानमाण्डमात्रनिक्षे-
पणासमितः—आदाने ग्रहणे—अस्य माण्डमात्रयोरित्थनेन सम्बन्धः, प्रथासत्तिन्या-
यात् साहचर्यात् देहली दीपन्यायाद् वा, माण्डस्य—पात्रस्य मात्रस्य—वस्त्राद्युप-
करणस्य च निक्षेपणायाम्—अवस्थापने समितः—प्रतिलेखनप्रमार्जनपूर्वकं प्रवृत्ति-

समिति से युक्त होना इसका नाम भाषासमिति युक्त है । मत्त आदिकी
एषणा में उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक जो समित हेन । इसका नाम एषणा-
समिति है, अर्थात् विशुद्ध आहार आदि का ग्रहण करने और अन्वेषण करने में
उपयोगयुक्त होना, उसका नाम—एषणासमित है । माण्ड—पात्र—मात्र वस्त्रादि
उपकरण का निक्षेपण रखने में एवं—अवस्थापन में समित होना । इसका

भक्त वगेरेनी ओषध्यामा उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वकं समित थये, तेनु नाम ओषध्या
समिति छे ओटले के विशुद्ध आहार वगेरे अहृष्य करवा अने अन्वेषण करवामा
उपयोग युक्त थुं तेनु नाम ओषध्या समिति छे. बाउ-पात्र-मात्र-वस्त्रादि उपकरणमा
निक्षेपणमा अने अवस्थानमा समिति युक्त थु तेनु नाम आदानभाउमात्र निक्षेपणमा

युक्त इत्थं, तथा—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकाममितः—तत्र उच्चारः—पुरीष, प्रस्रवण—मूत्र, खेलः—श्लेष्मा—उपलक्षणत्वान्निष्ठीवनस्यापि धूकइति मायाप्रसिद्धस्यापि ग्रहणम् शिङ्घाण नासिकामलं, जल्लः—वेदजमलम्, एतेषां परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्यागः, सैव परिष्ठापनिका, तस्या ममितः—मम-गुपयुक्तः, तथा—मनोगुप्तः—मनोगुप्तस्त्रिधा—तत्र आर्तरौद्र-ध्यानानुबन्धि कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, शास्त्रानुसारिणी पर-लोकसाधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिर्द्वितीया २, मनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधावस्थाभाविनी आत्मरमणरूपा तृतीया ३, तदुक्त योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तर्ज्जं मनोगुप्तिरुदाहृता । १।” इति ।

नाम-आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति है, अर्थात्-प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक प्रवृत्ति से युक्त होना. इसका नाम आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति है। उच्चार नाम-पुरीषका है, प्रस्रवण नाम-मूत्र का है, खेल नाम श्लेष्मा का है, उपलक्षण से धूक का भी यहां ग्रहण किया गया है। शिङ्घाणनाम से यहां नासिका का मल गृहीत होता है, (नासामलं तु सिंघाणं इति अमरः)। स्वेदज मल वा नाम—जल्ल है. इनकी परिष्ठापनिका में त्यागमें समित होना, उसका नाम—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनसमिति है। मनोगुप्ति—तीन प्रकार की हैं, इनमें—आर्तरौद्र ध्यानानुबन्धी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१ शास्त्रानुसारिणी-परलोक साधिका-धर्मध्यानानुबन्धिनी. एवं माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोवृत्ति के निरोध से योग निरोधकरनेवाली भाविनी जो-आत्मरमणरूप गुप्ति है. वह तृतीय मनोगुप्ति है। योगशास्त्र में कहा है—

समिति छ अटले छ प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक, प्रवृत्तियुक्त थवु ते आदान-भांड मात्र निक्षेपणा समिति छ पुरीषतुं नाम उच्चार मूत्रतु नाम प्रस्रवण, श्लेश्मातु नाम खेल छ उपलक्षणधु धूकतु यच्च अही अहलु करवाभा आ०यु छ शिंघाणु नाम अही नासिका मल माटे प्रयुक्त थथे छ (शिंघाण काचपात्रे च लेह-नासिक्येर्मले इति. मेदिनी कोषः) स्वेदजमलतुं नाम जल्ल छ, अमनी परीष्ठापनिकाभा-त्यागभा समित थवु तेतु नाम उच्चार प्रस्रवणु खेल शिंघाणु जल्ल परिष्ठापन समित छ मनोगुप्ति त्रषु प्रकारनी छ आभा आर्तरौद्रध्यानानुबन्धी कल्पनाजालो परित्याग करवा ते प्रथम मनोगुप्ति छ शास्त्रानुसारिणी परलोक साधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी अने माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति छ. २, मनोवृत्ति ना निरोधावस्थाभाविनी अ आत्मरमणरूप गुप्ति छ ते तृतीय मनोगुप्ति छ योगशास्त्रमा

एवंविधया त्रिविधयाऽपि मनोगुप्त्या युक्त इत्यर्थः, तथा—वचोगुप्तः=वचन-
गुप्तियुक्तः, वचनगुप्तिश्चतुर्विधा. तथाहि- सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३,
असत्यामृषा चेति। उक्तं च—

‘सच्चा तहेव मोसा य, सच्चा-मोसा तहेव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा । (उत्त० २४ २२ गा०)इति,

छाया—“सत्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।

चतुर्थ्यसत्यमृषा च, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा । इति ।

तथा-कायगुप्तः कायगुप्तियुक्तः, कायगुप्तिस्तु गमनागमनप्रचलनादि
क्रियाणां गोपनश्च, सा द्विविधा— चेष्टानिवृत्तिरूपं १, यथागमं

जिसमें—रूपना जाल विमुक्त हों, और—समत्व में जो सुप्रतिष्ठित हो—ऐसा
मन आत्माराम है—आत्मारूपी उद्यान (वाग) है. इसमें—रमण करना मनोगुप्ति
है.। इस प्रकार की तीन गुप्तियों से मनका युक्त होना इसका नाम
मनोगुप्ति से गुप्त होना है.। इसी प्रकार से वचनगुप्ति से युक्त
होना सो—वचनगुप्ति से गुप्त होना है, वचनगुप्ति चार प्रकार की है,—सत्या-
वचोगुप्ति—१ मृषावचोगुप्ति—२ सत्यामृषावचोगुप्ति—३ और—असत्यामृषावचो-
गुप्ति है—४ उक्तञ्च—“सच्चा तहेव मोसाय सच्चामोसा तहेवय. ।

चउत्थी असच्च मोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा—॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा-) कायगुप्ति से युक्त होना इसका नाम—काय गुप्त है—१
गमनाऽऽगमनादिरूप प्रचलनादि क्रियाओं का गोपन करना कायगुप्ति है—२
यह कायगुप्ति चेष्टानिवृत्तिरूप. एवं—यथागम चेष्टा नियमनरूप से दो प्रकार की

कष्टु छे के नेमा कथ्यनाजल विमुक्त होय अने समत्वभा ने सुप्रतिष्ठित होय येपुं
मन आत्माराम छे आत्मारूपी उद्यान छे आमा रमण करुं ते मनोगुप्ति छे.

“विमुक्तकल्पनाजल समत्वे सुप्रतिष्ठितम् । आत्मारामं मनरतज्जर्मनेगुप्ति-
रुदाहृता ॥१॥ आ नतनी त्रषु गुप्तिथी मनयुक्त थपु तेतु नाम मनोगुप्तिथी
गुप्त थपु छे आ प्रभाणे वचनगुप्तिथी युक्त थपु ते वचनगुप्तिथी गुप्त थपुं छे.
वचनगुप्ति चार प्रकारनी छे सत्यामने गुप्ति १, मृषा मनोगुप्ति २, सत्यामृषामने-
गुप्ति ३, अने असत्यामृषामने गुप्ति ४

कष्टु छे,—“सच्चा तहेव मोसाय सच्चामोसा तहेव य ।

चउत्थी असच्चमोसाय वय गुत्तीचउच्चिहा ॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा) कायगुप्तिथी युक्त थपुं तेतुं नाम कायगुप्त छे १, गमना-
गमन-वगेरे इय प्रयत्न विगेरे क्रियायेतु गोपन करुं कायगुप्ति छे २ आ
काय-गुप्ति चेष्टा निवृत्तिइय अने यथागम चेष्टा नियमनइयथी के प्रकारनी होय छे

युक्त इत्थं, तथा—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकाममितः—तत्र उच्चारः—पुरीष, प्रस्रवण—मूत्र, खेलः—श्लेष्मा—उपलक्षणत्वान्निष्ठीवनस्यापि धृक्इति भाषाप्रसिद्धस्यापि ग्रहणम् शिङ्घाणं नासिकामलं, जल्लः—स्वेदजमलम्, एतेषां परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्यागः, सैव परिष्ठापनिका, तस्या ममितः—मम-गुपयुक्तः, तथा—मनोगुप्तः—मनोगुप्तस्त्रिधा—तत्र आर्तरौद्र-ध्यानानुबन्धि कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, शास्त्रानुसारिणी पर-लोकसाधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिर्द्वितीया २, मनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधवस्थाभाविनी आत्मरमणरूपा तृतीया ३, तदुक्त योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तर्ज्वं मनोगुप्तिरुदाहृता ॥१॥” इति ।

नाम-आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति है, अर्थात्-प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक प्रवृत्ति से युक्त होना. इसका नाम आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति है। उच्चार नाम-पुरीषका है, प्रस्रवण नाम-मूत्र का है, खेल नाम श्लेष्मा का है, उपलक्षण से धृक् का भी यहाँ ग्रहण किया गया है। शिङ्घाणनाम से यहाँ नासिका का मल गृहीत होता है, (नासामलं तु सिङ्घाणं इति अमरः)। स्वेदज मल का नाम—जल्ल है. इनकी परिष्ठापनिका में त्यागमें समित होना, उसका नाम—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनसमिति है। मनोगुप्ति—तीन प्रकार की है, इनमें-आर्त रौद्र ध्यानानु-बन्धी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१ शास्त्रानुसारिणी-परलोक साधिका-धर्मध्यानानुबन्धिनी. एवं माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोवृत्ति के निरोध से योग निरोधकरनेवाली भाविनी जो-आत्मरमणरूप गुप्ति है. वह तृतीय मनोगुप्ति है। योगशास्त्र में कहा है—

समितं छे अटवे छे प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक, प्रवृत्तियुक्तं यत् ते आदान-बाड मात्र निक्षेपण्य समिति छे. पुरीषतुं नाम उच्चार मूत्रतुं नाम प्रस्रवण, श्लेश्मातुं नाम खेल छे उपलक्षण्युथी धृक्तुं पण्य अडी अल्लु करवाभा आण्यु छे शिङ्घाणु नाम अडी नासिका मल माटे प्रयुक्तं यथेव छे (शिङ्घाण काचपात्रे च छेह-नासिक्येर्मले इति मेदिनी कोपः) स्वेदजमलतुं नाम जल्ल छे, अमनी परीष्ठापनिकाभा-त्यागभा समितं यत् तेतुं नाम उच्चार प्रस्रवण्य खेल शिङ्घाण्य जल्ल परिष्ठापन समितं छे मनोगुप्ति त्रय प्रकारनी छे आभा आर्तरौद्रध्यानानुबन्धी कल्पनाजालो परित्याग करवा ते प्रथम मनोगुप्ति छे शास्त्रानुसारिणी परलोक साधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी अने माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति छे. २, मनोवृत्ति ना निरोधवस्थाभाविनी जे आत्मरमण्य गुप्ति छे ते तृतीय मनोगुप्ति छे योगशास्त्रभा

एवंविधया त्रिविधयाऽपि मनोगुप्त्या युक्त इत्यर्थः, तथा—वचोगुप्तः=वचन-
गुप्तियुक्तः, वचनगुप्तिश्चतुर्विधा तथाहि- सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३,
असत्यामृषा चेति। उक्त च—

‘सच्चा तद्देव मोसा य, सच्चा-मोसा तद्देव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा। (उत्त० २४ २२ गा०)इति,

छाया—“सत्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।

चतुर्थ्यसत्यमृषा च, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा। इति।

तथा-कायगुप्तः कायगुप्तियुक्तः, कायगुप्तिस्तु गमनागमनप्रचलनादि
क्रियाणां गोपनम्, सा द्विविधा— चेष्टानिष्ठस्तिरूपं १, यथागमं

जिसमें—रूपना जाल विमुक्त हों, और—समत्व में जो सुप्रतिष्ठित हो—ऐसा
मन आत्माराम है—आत्मारूपी उद्यान (वाग) है, इसमें—रमण करना मनोगुप्ति
है। इस प्रकार की तीन गुप्तियों से मनका युक्त होना इसका नाम
मनोगुप्ति से गुप्त होना है। इसी प्रकार से वचनगुप्ति से युक्त
होना सो—वचनगुप्ति से गुप्त होना है, वचनगुप्ति चार प्रकार की है,—सत्या-
वचोगुप्ति—१ मृषावचोगुप्ति—२ सत्यामृषावचोगुप्ति—३ और—असत्यामृषावचो-
गुप्ति है—४ उक्तञ्च—“सच्चा तद्देव मोसाय सच्चा-मोसा तद्देवय।

चउत्थी असच्च मोसा-य वयगुत्ती चउच्चिहा—॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा-) कायगुप्ति से युक्त होना इसका नाम—काय गुप्त है—१
गमनाऽऽगमनादिरूप प्रचलनादि क्रियाओं का गोपन करना कायगुप्ति है—२
यह कायगुप्ति चेष्टानिष्ठस्तिरूप. एवं—यथागम चेष्टा नियमनरूप से दो प्रकार की

कछु छे के जेभा कल्पनाजाल विमुक्त होय अने समत्वभा जे सुप्रतिष्ठित होय जेवुं
मन आत्माराम छे आत्मारूपी उद्यान छे आभा रमण करवुं ते मनोगुप्ति छे.

“विमुक्तकल्पनाजाल समत्वे सुप्रतिष्ठितम्। आत्मारामं मनरतज्जर्मनेनैगुप्ति-
रुदाहृता ॥१॥ आ जलनी त्रषु गुप्तिओधी मनयुक्त थवुं तेह नाम मनोगुप्तिथी
गुप्त थवु छे आ प्रभाजे वचनगुप्तिथी युक्त थवु ते वचनगुप्तिथी गुप्त थवुं छे.
वचनगुप्ति थार प्रकारनी छे सत्यामनो गुप्ति १, मृषा मनोगुप्ति २, सत्यामृषामनो-
गुप्ति ३, अने असत्यामृषामनो गुप्ति ४

कछु छे,—“सच्चा तद्देव मोसाय सच्चा-मोसा तद्देव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्तीचउच्चिहा ॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा) कायगुप्तिथी युक्त थवुं तेह नाम कायगुप्त छे १, गमना-
गमन-वगेरे इप प्रचलन विगेरे क्रियाओह गौपन करवु कायगुप्ति छे. २. आ
काय-गुप्ति जेष्टा निवृत्तिइप अने यथागम जेष्टा नियमनइपथी जे प्रकारनी होय छे

चेष्टानियमरूपा च २ । तत्र परीपहोपसर्गादि संभवेऽपि यत्कायोत्सर्गादि-
करणादिना कायस्य निश्चलताकरणम् सर्वयोगनिरोधावस्थायां वा सर्वथा यत्
कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा । गुरुमापृच्छथ शरीरसंस्तारकभूम्यादिप्रतिद्वेषना
प्रमाजनादिसमयोक्तक्रियाकलापपुरस्सरशयनासनादिविधेयम्, ततः शयनासन-
निक्षेपादानादिषु इच्छया चेष्टापरिहारेण नियता—शास्त्रनियमानुसारिणी या
कायचेष्टा सा द्वितीयेति । उक्तं च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते । १ ॥

शयनाऽऽसननिक्षेपाऽऽदानसङ्क्रमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु सा परा । २ । इति,

होती है । इनमें परीपह—और उपसर्ग के आने पर भी कायोत्सर्गकरणरूप
क्रिया से शरीर को निश्चल कर देना होता है, अथवा—सर्वयोग निरोधावस्था में
सर्वथा जो काय की चेष्टा का निरोध किया जाता है वह चेष्टा निवृत्तिरूप
प्रथम कायगुप्ति है । गुरु को पूछ कर शरीर, संस्तारक, भूमि आदि की
प्रतिलेखना प्रमाजना आदि के समय में उक्त क्रियाकलाप पुरस्सर जो—शयन-
आसन आदि करना होते हैं—सो उन शयनासनादिकों के निक्षेपन रखने में, एवं—
आदान आदि कों में अपनी इच्छा से चेष्टा के परिहार से नियत(रखने में) अर्थात्
गुरु को पूछकर के शयनआदि करना—शास्त्रनियमानुसारिणी जो काय चेष्टा है
वह—यथागमचेष्टा नियमनरूप द्वितीयकायगुप्ति है । २

उक्त भी है—“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि” इत्यादि

अर्थात्—“उपसर्ग आने पर कायोत्सर्ग में मनको

स्थिर रखना यह कायगुप्ति है । तथा.

आमा परीपह अने उपसर्गानी स्थितिमा पद्य कायोत्सर्गकरणरूप क्रियाथी शरीरने
निश्चल करवाभा आवे छे अथवा सर्वयोग निरोधावस्थाभा ने सर्वथा कायचेष्टाने
निरोध करवाभा आवे छे अथवा सर्वयोग निरोधावस्थाभा ने सर्वथा कायचेष्टाने
निरोध करवाभा आवे छे ते चेष्टा निवृत्तिरूप प्रथम कायगुप्ति छे १, गुरुनी आज्ञा
मेणवीने शरीर संस्तारक, भूमि वगेरेनी प्रतिद्वेषना, प्रमाजना वगेरेना समये
उपयुक्त क्रियाकलाप पुरस्सर ने शयन आसन वगेरे विधेय होय छे तो ते शय
नासनादिकोना निक्षेपभा अने आदान आदिकोभा पोतानी इच्छाथी चेष्टाना परिहारथी
नितता-शास्त्रनियमानुसारिणी ने कायचेष्टा छे ते द्वितीय यथागम चेष्टा नियमनरूप
द्वितीय कायगुप्ति छे, २.

अथ छे—उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

तथा—गुप्तः—अशुभयोगनिग्रहरूपगुप्त्या युक्तः, गुप्तब्रह्मचारी—गुप्तं नवभिर्ब्रह्म-
चर्यगुप्तिमी रक्षितं ब्रह्म—मैथुनविरमणं चरति तच्छीलः, अममः—ममत्वरहितः,
अकिञ्चनः—धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुरहितः, छिन्नग्रन्थः—ग्रन्थाति—वध्नाति आत्मानं
कर्मणेति ग्रन्थः, स द्विविधो द्रव्यभावमेदात् द्रव्यतो—हिरण्यदि, भावतो मिथ्या-
त्वादिः, स द्विविधो ग्रन्थश्छिन्नो येन स तथा, छिन्नस्रोताः—छिन्नसंसार-
प्रवाहः, निरूपलेपः—कर्मबन्धहेतुरूपलेपो रागादिस्तेन रहितः. निरूपलेपत्वमेव
सदृष्टान्तमाह—कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—मुक्तं—त्यक्त तोयमिव तोयं संसारबन्ध-

शयनासन इत्यादि—शयन में, आसन में, लेने में रखने में, चलने में

काय को यतना पूर्वक रखना यह कायगुप्ति है

इस प्रकार से वे दृढप्रतिज्ञ अनगार इन पूर्वोक्त समितियों का तथा—गुप्तियों
का पालन करनेवाले होंगे। तथा—वे गुप्त होंगे, अशुभ योगनिग्रहरूप गुप्ति
से युक्त बनेंगे, गुप्तब्रह्मचारी होंगे, नौ वाटिका (वाड) द्वारा मैथुन विरमणरूप
ब्रह्म की रक्षा करेगे उत्तम-ममत्व रहित होंगे, वे-अकिञ्चन होंगे, धर्मोपकरण से
अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से विहीन होंगे। जो आत्मा को कर्म के साथ
वान्वता है, वह ग्रन्थ है, यह—ग्रन्थ द्रव्य-ग्रन्थ, और-भावग्रन्थ के मेद से दो
प्रकार का है। हिरण्य-सुवर्ण आदि वाङ्मय-ग्रन्थ है, एवं-मिथ्यात्व आदि भावग्रन्थ
है। इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से वे रहित होंगे। संसारप्रवाह जिनका नष्ट
हो चुका है, ऐसे होंगे, निरूपलेप होंगे, कर्मबन्धन का हेतु जो रागादिक
उपलेप हैं उससे रहित होंगे। इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तद्वारा पुष्ट करते

शयनासननिक्षेपादाऽऽनसकर्मणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टा नियमः कायगुप्तिस्तु सऽपरा ॥२॥

आ प्रभाष्ये ते दृढप्रतिज्ञ अनगार आ पूर्वोक्त समित्योऽपि तथा गुप्तिभ्योऽपि
पालन करे। तेभ्यः तेभ्यो गुप्त भवे। अशुभयोग निग्रहरूप गुप्तिथी युक्त भवन्ते।
गुप्त ब्रह्मचारी भवे, नव वाटिकाद्वारा मैथुन विरमणरूप ब्रह्मनी रक्षा क-रे उत्तम
ममत्वरहित भवे, ते अकिञ्चन हवे। धर्मोपकरणतिरिक्त वस्तुभ्योऽपि रहित भवे जे
आत्माने कर्मनी साथे जाधे छे ते ग्रन्थ छे। आ अथ द्रव्यग्रन्थ अने भावग्रन्थना
रूपमा जे प्रकारना छे हिरण्य-सुवर्ण वगेरे जाधे ग्रन्थ छे अने मिथ्यात्व वगेरे
भावग्रन्थ छे। आ अने प्रकारना अथोऽपि ते रहित भवे जेभेना संसारप्रवाह
नाश पाभ्ये छे जेवा तेभ्यो भवे निरूपलेप भवे। कर्मबन्धनना हेतुरूप रागादिक
उपलेपोऽपि तेभ्यो रहित भवे जेवा वातने सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा पुष्ट करे छे हे

हेतुत्वात् स्नेहो येन स तथा । यथा-कांस्यपात्र्यां पतितमपि जलं लिप्तं न भवति तथा संसारबन्धहेतुस्तस्मिन्नुपलिप्तो न भविष्यतीत्यर्थः, शङ्ख इव निरञ्जनः—अञ्जनमिवाञ्जनं-द्वेषादिकं तस्मान्निर्गतः—तद्रहितः, यथा—शङ्खे किमपि कज्जलादिद्रव्यं स्थितिं न लभते तथैव तस्मिन्ननगारे द्वेषादिकं न ग्राह्यतीत्यर्थः, जीव इा अप्रतिहतगतिः—जीवो यथा अव्याहतगत्या सर्वत्र याति, तथाऽसौ देशनगरादिषु अप्रतिबन्धविहारित्वेन वादादिषु कुतीर्थिकमतनिराकरणसामर्थ्योपेतत्वेन च अस्खलितगतिर्भविष्यतीति । जात्यकनकमिव जातरूपः—तपःसंयमादि-समुद्भूतनैर्मल्यः यथा शोधितं सुवर्णं निर्मलं भवति तथैवासौ रागादिरहितत्वेन निर्मलो भविष्यतीति, आदर्शफलक इव प्रकटमाणः—आदर्शफलको यथा प्रतिबिम्बितान् मूखाद्यवयवान् यथाऽवस्थितं प्रकटी करोति, तथा तत्कृतधर्मदेश-

है—‘कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—’ कांसे के पात्र में पड़ा हुआ पानी जिस प्रकार पात्र में लिप्त नहीं होता है—उसी प्रकार से संसार बन्धन का हेतु राग-द्वेष इनमें—उपलिप्त नहीं होंगे । शङ्ख की तरह वे निरञ्जन होंगे, जैसे—शङ्खमें कज्जलादि द्रव्य ठहर नहीं सकता है, उसी प्रकार से इनमें राग द्वेषादिक नहीं ठहरेंगे जीव की तरह ये अप्रतिहतगतिवाले होंगे, जीव जिस प्रकार अपनी अव्याहतगतिद्वारा सर्वत्र चला जाता है, उसी प्रकार से—देश नगरादिकों में अप्रतिबन्धविहारी होने से, एवं-वादादिकों में कुतीर्थिक मत निराकरण करने की सामर्थ्य से युक्त होने से अस्खलित गतिवाले होंगे । वे जातिमान् कनक के प्रकार होंगे, जिस प्रकार जात्यकनक-श्रेष्ठ सुवर्ण निर्मल होता है—उसी प्रकार से ये तपः संयमादि से समुत्पन्न निर्मलतावाले होंगे, । आदर्श-दर्पण जिस प्रकार अपने में प्रतिबिम्बित हुवे मूखादि अवयवों को यथाऽवस्थित प्रकट करता

“कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः” कांस्यानां पात्रमा पडेखु पाष्ठी जेम तेमा लिप्तं यत् नथी । तेमञ् ससारं बन्धनं हेतुं रागद्वेषमा तेभ्यो उपलिप्तं यथा नथी शंखनी जेम तेभ्यो निरञ्जनं यथे जेम शंखमा कज्जलं वगेरे द्रव्ये स्थिरं यथा नथी तेमञ् तेभ्यो मां रागद्वेषादिकं स्थिरं यथे नहि लुवनी जेम तेभ्यो अप्रतिहतं गतिवाणां यथे लुव जेम पोतानी अव्याहतं गतिद्वारा सर्वत्र गतिशीलं होय छे, तेमञ् देशनगरादिकेभ्यो अप्रतिबन्धं विहारी होवाथी अने वादादिकेभ्यो कुतीर्थिकमत निराकरणमा सामर्थ्ययुक्तं होवाथी तेभ्यो अस्खलितं गतिवाणां यथे । तेभ्यो जात्यकनकं जेम यथे । जेम जात्यकनकं-श्रेष्ठं सुवर्णं-निर्मलं होय छे, तेम तेभ्यो तपः संयमं वगेरेथी समुत्पन्नं निर्मलं-तायुक्तं यथे आदर्शं-दर्पणं जेम स्वप्रतिबिम्बितं मुखादि अवयवो ते यथावस्थितं प्रकटं करे छे तेम तेभ्यो श्रीनी धर्मदेशनाथी महत्प्रयत्नतः दर्पणमा लुवालुवादि

नया जनानां चित्तदर्पणे जीवाजीवादिसकलपदार्थाः प्रकाशिष्यन्ते, इत्यर्थः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः—कूर्मः—कच्छपः. यथा कूर्मो भयकारणे समुपपागते संवृतसर्वेन्द्रियो भवति, तथैवासौ संसारभ्रमणभयाद् विषयकपायसंरक्षितसकलेन्द्रियो भविष्यतीति । पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः—यथा कमलपत्रं जलसंयोगेऽपि जलेन लिप्तं न भवति, तथैवासौ जलतुल्यस्वजनविषये वसन्नपि तत्सम्बन्धरहितो भविष्यतीति, गगनमिव निरालम्बनः—यथाऽऽकाशो निरवलम्बस्तिष्ठति तथैवासौ कुलप्रामनगराद्यालम्बनवर्जितो भविष्यतीति, अनिल इव निरालयः पवनइव गृहरहितः, अप्रतिबन्धविहारित्वात्, चन्द्र इव सौम्यलेश्यः—अनुपतापरिणामसम्पन्नः. सूर इव दीप्ततेजः द्रव्यतः शरीरदीप्त्या, भावतस्तपःप्रभृतिना देदीप्यमानः, सागर इव गम्भीर—

है. उसी प्रकार उनकी धर्मदेशना से मनुष्यों के चित्तरूप दर्पण में जीवा जीवादिरूप सकलपदार्थ प्रकाशित होंगे, । कूर्म—कच्छप जिस प्रकार भयकारणों के उपस्थित होने पर अपनी इन्द्रियों को गुप्त कर लेता है, उसी प्रकार से यह भी संसारपरिभ्रमणभयसे—विषय तापों से अपनी इन्द्रियों की रक्षा करने वाले होंगे. । जैसे—कमलपत्र जल के संयोग में भी उस से लिप्त नहीं होता है.उसी प्रकार से ये जल तुल्य स्वजनों के बीच में रहते हुवे भी उनके विषय में सम्बन्ध विहीन होंगे. । गगन की तरह ये निरालम्ब होंगे. । अनिल—वायु की तरह ये निरालय होंगे, अनिल को जैसे कोई गृह नहीं होता है, उसी प्रकार से अप्रतिबन्धविहारी होंगे. । चन्द्र के समान ये सौम्यलेश्यावाले होंगे सूर्य की तरह दीप्ततेज होंगे तेज द्रव्य—और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है. इनमें शरीरादि की दीप्तिरूप द्रव्य तेज. और तप—आदि से होनेवाला तेज भावतेज है. । सागर की तरह ये गम्भीर होंगे, हर्ष—शोक

इष सकल पदार्थ प्रकाशित थये. कूर्म—कच्छप जेभ भय उपस्थित थाय त्यारे पोताना अंगाने स केअथी वे छ तेम तेअ्यो पषु ससार—परिभ्रमण भयथी विषयतापोथी पोतानी छन्द्रिये नी रक्षा करनार थये जेभ कमलपत्र पाष्पीनी संयोगावस्थामा पषु तेथी क्षिप्त थतु नथी तेम तेअ्यो पाष्पीनी जेभ स्वजनोनी वअ्ये रहेवा छतांअ्ये तेमना विषयमा संघ ध विहीन थये गगननी जेभ तेअ्यो निरालय थये आकाश जेभ अवलम्बन वगर छ तेम तेअ्यो कुल, ग्राम नगर वगैरे अवलम्बथी रहित थये. अनिलवायुनी जेभ तेअ्यो निरालय थये अनिलने जेभ हे छ धर नथी तेम तेअ्यो पषु अप्रतिबन्ध विहारी थये चन्द्रनी जेभ अ्येअ्यो सौम्य देश्यायुक्त थये सूर्यनी जेभ तेअ्यो दीप्त तेजवाणा थये तेज द्रव्य अने भावनी अपेक्षाअ्ये जे प्रकारनु छ आमा शरीरादिनी दीप्तिरूप द्रव्यतेज अने तप प्रभृतिथी भावमान तेज भावतेज छ.

हर्षशोकादिकारणसंयोगेऽपि निर्विकारचित्तः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः—
पक्षिवत्सङ्गरहितः, परिवारपरित्यागात् नियतवासरहितत्वाच्च, मन्दर इव अप्र-
कम्पः—मेरुवत् परिपहोपसर्गपवनैरविचलितः, शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः—यथा
शरदृतौ जलं निर्मलं भवति तथा रागद्वेषरहितत्वान्निर्मलचित्तो भविष्यतीति,
खङ्गीविषाणमिव एकजातः खड्गी—आरण्यजीवः तस्य विषाणं—शृङ्गं तद्वद्
एकजातः—एकाकी रागादिसहायरहितः । तथा—भारण्डपक्षी—भारण्डश्चासौ
पक्षी च भारण्डपक्षी, अयं द्विजीवकस्त्रिचरणवान् द्वाभ्यां ग्रीवाभ्यां द्वाभ्यां मुख-
भ्यां च युक्तः, द्वयोजिवियोरेकमेवोदरं भवति, स चाप्रमत्त एव विहरति, तद्वत्

आदि कारणों के मिलने पर भी इनके चित्त में कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं हो
सकेगा. निर्विकार चित्तवाले होंगे । पक्षी की तरह सर्वतः विप्रमुक्त होंगे,
सर्वसङ्ग से रहित रहेगे, परिवार आदि के परित्याग से और—नियत आवास
से रहित होने से इनका ममत्वरूप सम्बन्ध किसी के साथ नहीं रहेगा. ।
मेरु—मन्दर की तरह ये अप्रकम्प होंगे, अर्थात् परीपह—उपसर्गरूप पवन इन्हें
विचलित नहीं कर सकेगा, शारद सलिल की तरह शुद्ध होंगे—जिस प्रकार
शारदऋतु में जल निर्मल रहता है उसी प्रकार राग-द्वेष रहित से ये निर्मल
चित्त रहेंगे. खङ्गी विषाण—गडोकाशृङ्ग की समान ये एकजात होंगे रागादिरूप
सहायकों से रहित होने के कारण एकाकी रहेंगे, । तथा—भारण्ड पक्षी की
तरह अप्रमत्त होंगे, भारण्डपक्षी दो जीववाला होता है, इसके चरण तीन
होते हैं—दो ग्रीवाओं से—दो मुखों से यह युक्त होता है, इन दो
जीवों का पेट एक होता है. यह अप्रमत्त होकर विचरणशील होता है, इसी

सागरनी जेम तेज्यो गशीर थशे इषं शोक्ष वगेरे कारण्यो होवा छता जे तेमना
चित्तमा डोअधु णततो विकार उत्पन्न थशे नहि तेज्यो निर्विकार चित्तवाणा थशे,
विहगानी जेम तेज्यो सर्वत विप्रमुक्त थशे तेज्यो सर्वसंगथी रहित थशे परिवार
वगेरेना त्यागथी अने नियत आवासथी रहित होवाथी तेज्यो ममत्वरूप सभंध
डोअधनी साथे भाधशे नहि मेइ—मंदरनी जेम तेज्यो अप्रकंप थशे ओटले के परी-
पह उपसर्गरूप पवन तेमने नियतित करी थकथे नहि शारद सलीलनी जेम तेज्यो शुद्ध
थशे. जेम शरदऋतुमा पाण्णी निर्माण रहे छ तेम तेज्यो पण्ण रागद्वेष रहित होवाथी
निर्माण चित्तवाणा थशे अङ्गी विषाणु—गोअज्योना शीगडानी जेम तेज्यो ओक णत
थशे रागादिरूप सहायकोथी रहित होवा अहल ओकाकी रहेथे तेमज बारड पक्षीनी
जेम अप्रमत्त थशे, भारण्डपक्षी जे एवयुक्त होय छ तेने त्रणु पग होय छ, जी
ग्रीवाज्यो, जे सुणोथी ते युक्त होय छ आ अने एवोदरं पेट ओकज होय छ,

अप्रमत्तः-तपःसंयमादिधर्मरक्षणो प्रमादरहितः । कुञ्जर इव शौण्डीरः-हस्तीव
 शूरः-व पायादिरिपुमञ्जन शीलः । वृषभ इव जातस्थामा-उपभवत् संजातपराक्रमः।
 सिंह इव दुर्धर्षः-सिंहवत् परीपहाद मृगैर्दुरतिक्रमः । वसुन्धरेव सर्वस्पर्शविपहः-
 वसुन्धरा-पृथ्वी यथा सर्वं सद्यमसद्य वा स्पर्शं सहते तथैवायम् अनुकूलप्रति-
 कूलपरीपहोपसर्गसहनशीलः । तथा-सुहृतहुताशन इव तेजसा ज्वलन्-यथा
 घृताद्याहुतिभिरग्निः प्रदीप्तो भवति तथैवायमपि तपःसंग्रमतेजसा ज्वलन्-दीप्य-
 मानोऽनगारो भविष्यतीति पूर्वेण सम्वन्ध , तस्य-पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टाय खलु
 भगवतोऽनगारस्य अनुत्तरेण-सर्वोत्कृष्टेन ज्ञानेन, एवम्-अनेन प्रकारेण-अनुत्तर-
 त्तविशिष्टेन दर्शनेन 'अनुत्तर' शब्दस्य चारित्रादौ प्रत्येकत्र सम्वन्धः, ततश्च अनु-

प्रकार ये भी तपसंयम आदिके संरक्षण में प्रमाद रहित होंगे । कुञ्जर-हाथी
 के समान ये शूर होंगे, अर्थात्-ईप आदि रिपुपुञ्जो का मञ्जन शील होंगे ।
 वृषभ की तरह ये जात स्थामा होंगे-उत्पन्न पराक्रमवाले होंगे, सिंह की
 तरह दुर्धर्ष परीपहादिमृगो द्वारा दुर्धर्ष होंगे, पृथ्वी की तरह सर्व स्पर्श
 सह होंगे-पृथ्वी जिस प्रकार सर्वसहा एवं-असद्य स्पर्श को भी सहन
 करती है-उसी प्रकार से अनुकूल-प्रतिकूल परीपह एवं-उपसर्ग का ये सहन
 कर्ता होंगे । सुहृत हुताशन की तरह ये तेज से सदा जाज्वल्यमान रहेंगे ।
 जिस प्रकार घृतादिक आहुति से अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित हो जाती है,
 उसी प्रकार ये भी तप-संयम के तेज से देदीप्यमान अनगार होंगे, इस
 प्रकार से इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट हुवे उन अनगार भगवान् दृढप्रतिज्ञ
 के सर्वोत्कृष्ट ज्ञानसे-सर्वोत्कृष्ट दर्शन से सर्वोत्कृष्ट चारित्र से-सर्वोत्कृष्ट

या अप्रमत्त यधने विररक्षुशील होय छे तेम तेज्यो पद्य तप संयम वगेरेहुं रक्षषु
 करवामा प्रमाद रहित थये, कुञ्जर-हाथी नी जेम तेज्यो शूर हथे. ज्येद्वे छे
 क्षाय वगेरे रिपुज्योने नष्ट करवामा समर्थ थये. वृषभानी
 जेम तेज्यो जातस्थामा थये उत्पन्न पराक्रमवाणा थये.
 सिंहनी जेम दुर्धर्ष-परीपहादिमृगो वठे दुर्धर्ष हथे वसुधरानी जेम सर्वस्पर्श
 सह थये, पृथ्वी जेम सर्वे सह-असद्य स्पर्शने पद्य सहन करे छे तेम अत्युत्कृष्ट-
 प्रतिकूल परीपह अने उपसर्गने तेज्यो सहन करता थये सुहृत हुताशननी जेम तेज्यो
 तेज्यो सद्य जाज्वल्यमान रहथे जेम घृत वगेरेनी आहुतिथी अग्नि वधारे अने
 वधारे प्रज्वलित थध नय छे तेम तेज्यो पद्य तप संयमना तेज्यो दृढप्रतिज्ञ
 अनगार थये या प्रमाद्ये या पूर्वोक्त विशेषण्योथी विशिष्ट थयेया ते भगवान् अन
 गार दृढप्रतिज्ञ सर्वोत्कृष्ट ज्ञानथी, सर्वोत्कृष्ट दर्शनथी, सर्वोत्कृष्ट चारित्रथी सर्वोत्कृष्ट

त्तरेण चारित्रेण अनुसरेण आलयेन—स्त्रीपशुपण्डकादिरहितवसतिसेवनेन, अनु-
त्तरेण विहारेण—विचरणेन, अनुत्तरेण आर्जवेन—सारल्येन, अनुत्तरेण मार्दवेन—मृदु-
त्वेन, अनुत्तरेण—लाघवेन द्रव्यतोऽल्पोपकरणरूपेण, भावतः—ऋषायतनुत्वरूपेण,
अनुत्तरया क्षान्त्या—क्षमागुणेन, अनुत्तरया गुप्त्या—मनोवाक्कायगुप्त्या अनुत्तरया
मुक्तिर्नानिलोमनया, अनुत्तरेण सर्वसंयमसुचरिततपः फलनिर्वाणमार्गेण—सर्वसंयम-
स्य सर्वथा मनोवाक्कायानां निरोधस्य, तथा सुचरितस्य—आशंसादिदोषरहितस्य
तपसो यत्फलं निर्वाणं—निर्वाणरूप फलं तस्य मार्गेण आत्मानं भावयमानस्य
अनन्तम्—निरवसानम् अनुत्तरम्—सर्वोत्कृष्टं कृत्स्नं—सकलं, प्रतिपूर्णं—निश्शेषं, निरा-
चरणम्—आवरणवर्जितम्, निर्व्याधानम्—अव्याहृतम् केवलव ज्ञानदर्शनं—केवलं—सर्वो-
त्कृष्टत्वात् सहायवर्जितम् अतएव वरं—श्रेष्ठं यद् ज्ञानदर्शनं तत्—केवलज्ञानं केवल
दर्शनं च समुपत्स्यते । ततः खलु स भगवान् अर्हन् जिनः केवली भविष्यति, तथा सोऽ-
नगारः सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य पर्यायं ज्ञास्यति, तद्यथा—आगतिं—देवल्लोका

निरवद्य स्थान से—पशु पण्डकादि वर्जित वसति के सेवन से—अनुत्तर विहार से
अनुत्तर आर्जव से—सरलता से—अनुत्तर अल्पोपकरणरूप द्रव्य से, एवं—ऋषाय
तनूकरणरूप भाव से—अनुत्तरक्षमागुण से—अनुत्तरगुप्ति से
अनुत्तर निलोमतारूप मुक्ति से अनुत्तर सर्वसंयम के—मन वचन काय के-
विरोध के तथा—सुचरित—आशंसादि दोष रहित तप के निर्वाणरूप फलके
मार्ग से आत्मा को भावित करने से अनन्त निर्जरा से उभयलोक की भावना
रहित मोक्षामार्ग से आत्मा को भावित करने से अनुत्तर, सर्वोत्कृष्ट,
कृत्स्न—सकल, प्रतिपूर्ण, आचरण वर्जित और—अव्याहृत ऐसा सर्वोत्कृष्ट
होने से सहायवर्जित, अतएव—श्रेष्ठ केवलज्ञान और—केवलदर्शन को प्राप्त करेंगे,
तब—वे भगवान् अर्हन् जिन केवली हो जावेगे, तथा सदेव मनुजासुर लोककी
पर्याय का ज्ञाता हो जावेगे, तथा वे आगति को—देवल्लोकादि से मनुष्य गति

आलापथी, पशुप उकादि वर्जित वसतिक्षाना सेवनथी, अनुत्तर विहारथी, अनुत्तर
आलवथी, सरलताथी अनुत्तर अल्पोपकरणरूप द्रव्यथी अने ऋषाय तनूकरणरूप
भावथी अनुत्तर क्षमागुणथी अनुत्तर गुप्तिथी अनुत्तर निलोमतारूप मुक्तिथी, अनुत्तर
सर्व संयमथी, मन वचन कायना विरोधना तेमन् सुचरित—आशंसादि दोषरहित
तेमना निर्वाणरूप क्षान्ता मार्गथी आत्माने बाधित कश्चाथी अनन्त निरवसान,
अनुत्तर, सर्वोत्कृष्ट, कृत्स्न सकल प्रतिपूर्ण आवरणवर्जित अने अव्याहृत अथवा
सर्वोत्कृष्ट होवाथी सहाय वर्जित अथवा श्रेष्ठ केवलज्ञान अने केवलदर्शनने प्राप्त
करथे, त्परे ते भगवान् अर्हन् जिन केवली बन्ध बन्धे, तथा सदेव मनु अर्होऽकनी

दिस्यो मनुजगतावागमनं, गतिं-मनुष्यलोकाद् देवादिगतिषु गमनम्, स्थिति-
 देवलोकादिष्ववस्थितिम्, च्यवनं-देवलोकादायुःक्षयेण पतनम्, उपपातं-देवनार-
 कयोर्जन्म. तर्क-विचारम्, कृतं विहितं, मनोमानसिकम्-मनस्येव व्यवस्थितं
 मानसिकं-मनोगतं विचारं, क्षयितं-क्षयं प्राप्तं, श्रुतं-खादितं. प्रतिसेवितं-
 भोग्यवस्तुजातसेवनम्, आविष्कर्म-प्रत्यक्षे कृतम्, रहःकर्म-एकान्ते कृतम् । एवं
 स सदेवासुरमनुजस्य सर्वान् पर्यायान् ज्ञास्यतीति । अत एव सोऽनगारः अरहा-
 नास्ति रहः-अप्रत्यक्षं किमपि यस्य स तथा-सर्वज्ञः, तथा अरहस्यभागी-सा-
 वधाचरणवर्जितत्वेन न रहस्यम्-एकान्तं भजते यः स तथा=सुस्पष्टसालाचारश्च
 सन् तस्मिन्स्मिन् काले मनोवाक्यायोगवर्तमानानां सर्वलोके स्थितानां सर्व
 जीवानां सर्वभाषान्-समस्तान् भाषान् जानन् पश्यंश्च विहरिष्यति-विहारं
 करिष्यतीति । ॥सू० १७४॥

में आगमन को. गति को-मनुष्य लोक से देवादिगतियों में गमन को, स्थिति
 को-देवलोकादिकां में अवस्थिति को च्यवन को-देवलोक से आयुःक्षय के
 बाद चवन को, उपपात को-देवनारकों के जन्म को, तर्क को-विचार को कृत-
 किये हुवे को, मनोमानसिक को, मन में व्यवस्थित विचारधारा को, क्षयित को
 क्षयप्राप्त को, श्रुत को-खादित को, प्रतिसेवित को-भोग्यवस्तु जात के सेवन
 को, आविष्कर्म को-प्रत्यक्ष में किये हुवे को, रहःकर्म को-एकान्त में किये गये
 को-इस तरह से वे देव-मनुजाऽसुर सहित लोक की सब पर्यायों को जानेगे ।
 अतएव-वे अनगार अरहाजिन की दृष्टि में अप्रत्यक्ष कुछ भी नहीं रहेगा.
 सर्वज्ञ अरहस्यभागी-सावधाचरणवर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकलाचार के
 पालक बने हुवे, उस उम काल में मनोवाक्याय यग में वर्तमान इसलोक
 सम्बन्धी सर्वजनों के सर्व भाषों को जानते हुवे और-देखते हुवे विहार करेंगे।सू० १७४।

पर्यायना ज्ञाता यथे त्यारे ते आगतिने-देव लोकादिथी मनुष्य गतिमा आगमनने
 मनुष्य लोकाभाथी देवदि गतिथोमा गमनने स्थितिने-देवलोकपुदकोमा अवस्थितिने
 च्यवनने देवलोकथी आयुक्षय पथी पतनने उपपातने-देवनारकोना जन्मने-तर्कने-
 विचारने कृत- कहेलाथोने. मनोमानसिकने मनमा व्यवस्थित विचारधाराने
 क्षयितने-क्षय प्राप्तने श्रुतने-खादितने प्रतिसेवितने-भोग्यवस्तु भतना
 सेवनने आविष्कर्मने-प्रत्यक्षमां करेला कर्माने. रहःकर्मने, एकान्तमा आचरेला
 कर्माने आ प्रमाणे ते देव मनुज असुर सहित लोकनी सर्व पर्याये ते ज्ञाथे
 तेथी ते अनगार अरहाजिननी दृष्टिमा अप्रत्यक्ष जेवु कथं रहेशे नहि
 तेभने सर्व-प्रत्यक्ष थथं जथे सर्वज्ञ अरहस्यभागी सावधाचरणवर्जित होवाथी
 सुस्पष्ट सकलाचाराना पालक थथेला कारणमा मनोवाक्याय योगमा वर्तमानं कहेला
 सम्बन्धी सर्वजनोंना सर्वभाषाने ज्ञाथता अने जेता विहार करेशे. ॥१७४॥

मूलम्—तए णं ददपइन्ने केवली एयारूवेणं विहारेणं विहर-
माणे बहूइं वासाइं केवलिपरियायं पाउणिता अप्पणो आउसेसं
आभोएत्ता बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाए
छेइस्सइ—जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावेकेसलोए वंभचेरवासे अप्पहाणं
अदंतवणं अणुवहाणं भूमिमेज्जाओ फलहसेज्जाओ परघरपवेसो
लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिस-
णाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावथा विरूवरूवा बावी-
सपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति तमइ आराहिस्सइ,
चरिमेहिं उसासनीसासेहिं सिज्झहिइ, बुज्झहिइ, मुच्चिहिइ परि-
निव्वाहिइ सब्बदुक्खणमंतं करेहिइ । ॥ सू० १७५ ॥

छाया—ततः खलु ददप्रतिज्ञः केवली एतद्रूपेण विहारेण निहगन् बहूनि
वर्षाणि केवलिपरियायं पालयित्वा आत्मन आयुश्शेषम् आशुज्य बहूनि भक्तानि
प्रत्याख्यायति बहूनि भक्तानि अनशनेन छेतस्यति, यायार्थाय क्रियते नग्न-

“तए णं ददपइण्णे केवली—” इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं” इसके बाद—“ददपइन्ने केवली—” वे ददप्रतिज्ञ केवली—
“एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे—” इस प्रकार के विहार से विहार करते हुवे—
“बहूइं वासाइं केवलिपरियायं—” अनेक वर्षों तक केवलीपरियाय को—
“पाउणिता—” पालर के—“अप्पणो आउसेसं आभोएत्ता—” एवं अपने आयु
के अन्त को जान करके—“बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ—” अपने अनेक भक्तों
का प्रत्याख्यान करेंगे—“बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ—” अनेक भक्तों

“तए णं ददपइण्णे केवली” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएणं” त्थार पछी “ददपइन्ने केवली” ते ददप्रतिज्ञ केवली
‘एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे’ आ प्रभावे विहार करता “बहूइं वासाइं केवलि
परियायं” धष्ठा वर्षे सुधी केवली परियायत्त “पाउणिता” पालन करेथे “अप्पणो
आउसेसं आभोएत्ता” अने पोताना आशुप्थना अत समयने लक्ष्णिने “बहूइं
भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ” पोताना धष्ठा अकतोत्तु प्रत्याख्यानकरेथे बहूइं भत्ताइं अण-

मात्रः केशलोचो ब्रह्मचर्यवासः अस्नानकम् अदन्तर्णः अनुपानक्तम् भूमिशय्याः फलकशय्याः परगृहप्रवेशः लब्धापलब्धानि मानापमानाः परेषांहीलनाः निन्दनाः खिसनां तजनाः ताडनाः गर्हणाः उच्चावचाः विरूपरूपाः द्वाविंशतिः परीपहा उपसर्गाः ग्रामकण्टकाः अधिसह्यन्ते, तमर्थम् आराधयिष्यति, चरमेरुच्छ्वांसनिः श्वासैः सेत्स्यति मोक्षयते मोक्षयते परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति। १७५।

का अनशन द्वारा छेदन करेगे-अर्थात् सधारा करेगे "जसट्टाए कीरइ, णग्गमावे केसलोए वंभचेरवासे-" इस प्रकार भक्तो वा प्रत्याख्यान करके, और-अनशन द्वारा उनका छेदन करके वे दृढप्रतिज्ञ केवली जिस अर्थ को सिद्ध करने के लिये साधुजनों द्वारा नग्नभाव-अचेष्टत्व-परिमित-वस्त्रधारणत्व-केशलुञ्चन ब्रह्मचर्य-वास-" "अण्हाणगं, अदंतवणं-अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ, फलहसेज्जाओ, परघरपवेसो, लद्धावलद्धाई, माणावमाणाई-" स्नान नहीं करना-दन्तधावन करने का त्याग करना-पग में पगरखां मोझा आदि को नहीं पहनना-भूमिपर शयन करना-प्रस गवश पाट पर सोना-भिक्षादिके निमित्त पर घर में प्रवेश करना-लामाज्जाम-मानाऽपमान-"परेसिंहीलणाओ -निंदणाओ - खिसणाओ - तज्जणाओ - ताडणाओ - गरहणाओ-उच्चावचा - विरूपरूपा-" दसगैद्वाराकृत हीलना-निन्दना-खिसना-तर्जना-ताडना-गर्हणा-अनु-कूल प्रतिकूल नाना प्रकार के -"वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहिया सिज्जंति-" वाइस परीषह, तथा-उपसर्ग एवं-इन्द्रियों के प्रतिकूल कटक के समान शब्दादिक सहन किये जाते हैं-" तमह आराहिस्सइ, चरमेहिं जसासनीसासेहिं

सणाए छेइस्सइ" धरुा भठतोहं अनशनो वडे छेहन करेये. "जस्सट्टाए कीरइ णग्गमावे केसलोए, वेयचेरवासे" आ प्रभावे भठतोहं प्रत्याख्यान करीने अने अनशन द्वारा तेमह छेहन करीने ते दृढप्रतिज्ञ केवली ने अर्थनी सिद्धि भाटे साधुजनों वडे नग्नभाव अचेष्टत्व परिमित वस्त्र धारणत्व, केशलुञ्चन, ब्रह्मचर्यवास, "अण्हाणगं अदंतवणं अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ, परघरपवेसो, लद्धावलद्धाई, माणावमाणाई-" स्नान रहित रहेवु, दन्तधावननो त्याग करेवो, पगरखाओ पहरेवा नहिं, भूमिपर शयन करवुं इत्थं पर सुवुं भिक्षादि भाटे पर धरमा जवु दाव अदाव, मान अपमान-"परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावचा विरूपरूपा" धीमओ वडे करयेव हीलना-निन्दना, खिसना, तजना, ताडना. गहंषु अहंइए प्रतिकूल अनेक जतनी "वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति" वावीस परीषहो तेमह उपसर्ग अने इन्द्रियोना प्रतिकूल शब्द वगेरे सहन करेवामा आवे छे, 'तमह' आराहिस्सइ, चरमेहिं, जसासनीसासेहिं सिज्जिहिइ, बुज्जिहिइ, मुच्चिहिइ,

टीका—“तए णं” इत्यादि-ततः खलु दृढप्रतिज्ञः केवली एतद्रूपेण-पूर्वोक्तविधेन विहारेण विहरन्-विचरन् बहूनि वर्षाणि केवलिपर्यायं पालयि वा आमनः-स्वयं, आयुश्शेषम्-आयुषोर वसानम् आभुज्य-परिज्ञाय बहूनि भक्तानि प्रत्याख्यायति, ततो बहूनि भक्तानि अनशनेन छेद्यति । इत्थं भक्तानि प्रत्याख्याय अनशनेन छित्त्वा च स दृढप्रतिज्ञः केवली, यस्पर्याय-यन्मोक्ष-निमित्तं क्रियते साधुभिः-नग्नभावः-अचेलत्वं-परिमितवस्त्रधारित्वं केशलोचः-स्वपरहस्तेन केशोत्पाटनं, ब्रह्मचर्यवासः-ब्रह्मचर्यधारित्वम्, अस्नानम्-स्नानामाश्रः अदन्तवर्णः-दन्तोच्चरलीकरणाभावः, अनुपानकम्-उपानत्परिधानाभावः,

सिद्धिहि, बुद्धिहि, मुच्चिहि, परिनिव्वाहि, सच्चदुक्खाणमंतं करेहि—” - मोक्षरूपी अर्थ की आराधना करेगे. और-आराधना करके अन्तिमश्वासोच्छ्वास से सिद्ध हो जावेंगे, बुद्ध हो जावेंगे, मुक्त हो जावेंगे, परिनिर्वात शिथिलीभूत हो जावेंगे, एवं-समस्त दुःखों का अन्त करेगे ।

टीकार्थ-इस प्रकार के विहार से विचरते हुवे वे दृढप्रतिज्ञ केवली अनेक वर्षों तक केवली पर्याय में विराजमान रहेंगे । जब-उनके आयुकर्मका पूर्णरूप से अन्त होने का समय आ जावेगा, तब-वे इस बात को जानकर अनेक भक्तों का प्रत्याख्यान करदेंगे, अनशन द्वारा अनेक भक्तों का छेदन कर देंगे । इस प्रकार भक्त प्रत्याख्यान करके-एवं-अनशन द्वारा उसका छेदन करके, वे दृढप्रतिज्ञ केवली जिसके लिये साधुजन नग्नभाव धारण करते हैं । अर्थात्-परिमित वस्त्रों को रखते हैं-अपने हाथों से केशों का लुठचन करते हैं पूर्णरूप से ब्रह्मचर्यावस्था में रहते हैं मनवचनकाय से स्नान करने का परित्याग करते हैं-दन्तघावन का सर्वथा परिहार करते हैं, पगरखे-मोजा का पहिरना

परिनिव्वाहि, सच्चदुक्खाणमंतं करेहि” ते अर्थनी आराधना करीने अन्तिम श्वासोच्छ्वासथी सिद्ध थई जशे पुद्ध थई जशे मुक्त थई जशे परिनिर्वाताशथली-भूत थई जशे अने समस्तदु ज्योने अत करशे

टीकार्थ-आ प्रभाञ्जे विहरता दृढप्रतिज्ञ केवली धव्या वर्षो सुधी केवली पर्यायमा विश्रम्भान रहशे ज्यारे तेमना आधुथनी समाप्तिनो-समय आवशेत्यारे तेज्यो आ वात लक्ष्मीने अनेक भक्तोनुं प्रत्याख्यान करशे अनशन वडे धव्या भक्तोनुं छेदन करशे आ प्रभाञ्जे भक्तप्रत्याख्यान करीने अने अनशन वडे तेमनु छेदन करीने ते दृढप्रतिज्ञ केवली जेना भाटे साधुजन नग्नभाव धारण करे छे अटले के परिमित वस्त्रो राञ्जे छे, पोताना हाथो वडे केशलुचन करे छे पूष्युंइथी ब्रह्मचर्यावस्थामा रहे छे मन वचन. हाथथी स्नान करवानो परित्याग करे छे. दन्तघावननो सर्वथा

उपलक्षणात् शकटाश्वादि वाहनराहित्यम्, भूमिगण्याः—भूमौ शयनानि, फलकशण्याः—
फलकेषु शयनानि, आहाराद्यर्थं परगृहप्रवेशश्च । 'भूमिगण्याः—फलकशण्याः' इति
पदद्वये 'क्रियते' इति बहुत्वेन विपरिणामस्य समन्वेतव्यमिति । तथा—तैः साधुभिः
लब्धापलब्धानि-लामालामाः. मानापमानाः—स्मानतिरस्काराः. तथा-परंपाम्-अन्ये
षाम् परकृता इत्यर्थः, हीलनाः-मर्मोद्घाटनानि, निन्दनाः—निन्दाः—जुगुप्साभाषण-
रूपाः, खिसना—धिकं त्वां मुण्ड !' इत्यादिरूपाः, तर्जनाः— अर्मुलि-प्रदर्शन-
पूर्वकं 'ज्ञायसि रे जाल्म !' इत्यादिवचनरूपाः, गर्हणाः—'चौरौज्यं लम्पटो-
ज्यम्' इत्यादिवचनरूपाः—तथा—उच्चावचा—अनुकूलप्रतिकूलाः, विरूपरूपाः—नाना
प्रकाराः, द्वाविंशतिः—द्वाविंशतिसंख्यकाः परीपद्वाः-क्षुधादिरूपाः, उपसर्गाः—

छोड देते हैं । उपलक्षण से गाड़ी की सवारी करना, घोड़े आदि वाहन पर
बैठना आदि-आदि को छोड देते हैं, भूमि पर शयन करते हैं, अथवा
काठ के पत्तियो-तकथा आदिपर शयन करते हैं, आहार आदि
प्रयोजन से परघर प्रवेश करते हैं, लामाज्लाम में जो समान भाव रखते हैं,
मानाऽपमान की जो थोड़ी सी भी अपेक्षा नहीं रखते हैं । तथा दूसरो द्वाग
कृत हीलनाओ को—मर्मोद्घाटन वचनों को—निन्दाओ को जुगुप्सा भाषणरूप
वचनों को—खिसनाओ को—“हे मुण्ड-? तुझे धिकार” इत्यादिरूप वचनों को
तर्जनाओं को, अर्मुली प्रदर्शनपूर्वक “हे जाल्म ? तुझे खबर पढेगी—” इत्यादि
रूप वचनों को—गर्हणाओं को, “यह चोर है, यह—लम्पट है—” इत्यादिरूप
वचनों को तथा—अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकार के क्षुधादिरूप २२ वाईस—परीपद्वाँ
को, तथा देवादिकृत उपसर्गों को, एवं-ग्रामकण्टकों को-ग्रामों को-इन्द्रिय समूह

त्याग करे छे पगरभा मोल पड़ेरता नथी उपलक्षयुथी गाडीनी सवारी करवी घोडा
वगेरे वाहन पर भेसवु वगेरेने त्यल डे छे. भूमि पर शयन करे छे. दाकडाना
पाटिया वगेरे पर सूवे छे आहार आदि प्रयोजनोने लीधे ज परघरभा प्रवेश
करे छे दाब अलाशमा. समानभाव राणे छे मान अपमाननी जे दाकडे इस्कार
रायता नथी तेमज भीलज्यो द्वारा करयेल डालनाज्योने. मर्मोद्घाटक वचनोने.
निहाज्योने जुगुप्सा भाषणरूप वचनोने खिसनाज्योने डे मुण्ड तने धिकार छे ।”
वगेरे रूप वचनोने तर्जनाज्योने अशुली प्रदर्शनपूर्वक डे जाल्म । पछी तने थभर
थभर पड्ये” वगेरे रूप वचनोने. गर्हणाज्योने “आ चोर छे आ लपट छे”
इत्यादिरूप वचनोने तेमज अकूल प्रतिकूल नाना प्रकारनी क्षुधादिरूप २२ प्रकारना परि-
पद्वाने तथा देवादिकृत उपसर्गोने अने ग्रामकण्टकोने आभोने इन्द्रियसमूहने इ.भोत्पादक

देवादिकृतोपद्रवाः, ग्रामकण्टकाः—ग्रामः इंद्रियसमूहस्तस्य कण्टका इव कण्टकाः-
इन्द्रियप्रतिकूलशब्दादयः. दु खं त्यादकत्वाद्भुक्तिमार्गे विघ्नहेतुत्वादेपां कण्टकत्वम्
क्षुद्रजनरूक्षाऽऽलापा वा यस्य कुते अधिसहते, तं-मोक्षरूपम् अर्थम्-आराधयि-
ष्यति, आराध्य चरमैः अन्तैः उच्छ्वासनिश्वासैः सेत्स्यति, मन्त्रकार्यकारितया
सिद्धौ भविष्यति, मोक्षयते—विमलकेवलाऽऽलोकेन सकललोकालोकं ज्ञायति.
मोक्षयते—पर्वकर्मो मुक्तो भविष्यति-परिनिर्वात्यति समस्त कर्मकृतावकारहितत्वेन
स्वस्थो भविष्यति. सर्वदुःखानां—शरीरमनःसम्बन्धिसमस्तकलेशानाम् अन्तं नाशं
करिष्यति-अव्यावाधिसुखमागु भविष्यतीत्यर्थः । ॥सू० १७५॥

शास्त्रमुपस ह्नेन ग्राह-

मूलम—सेवं भते । सेवं भंते ! भगवं गोयमे समणं भगवं
महावीरं षडङ्ग नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तपसा अत्पाणं
भावेमाणे विहरइ । ॥सू० १७६॥

छाया—नदेवं भदन्त ! तदेवं भदना ! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं
महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा सयमेन तपसा आत्मानं
मावयमानो विहरति ॥सू० १७६॥

का- दुःखोत्पादक होने से एवं-भुक्तिमार्ग में विघ्न के हेतुभूत होने से कण्टक-
रूप प्रतिकूल शब्दादिकों को, अथवा-क्षुद्रजनों के रूक्षालापों को, जिसके
निमित्त सहते हैं उस मोक्षरूप अर्थ की आराधना करके फिर वे-अन्तिम
श्वासोच्छ्वास से सकल कार्य को कर चुकने से-कृतकृत्य हो जाने से सिद्ध
हो जावेगे, विमल केवल ज्ञानालोक से सकल लोकालोक का ज्ञाता बन
जावेगे, समस्त कर्मों से छूट जावेगे, स्वस्थ हो जावेगे, और-शरीरसम्बन्धी
एव-मन सम्बन्धी समस्त कलेशों का नाश करेगे, अर्थात्—अव्यावाधिसुख का
भोक्ता बनेगे. ॥ सू० १७५ ॥

होवाथी अने सुकितभागभा विघ्नना हेतुभूत होवाथी अने कटकइय प्रतिकूल शब्दा-
दिकोने अथवा क्षुद्रजनोना इक्ष आलापोने जेना भाटे सहन करे छे ते मोक्षइय
अर्थनी आराधना करथे आराधना करीने यही तेजो अन्तिम श्वासोच्छ्वासाथी सकल
कामोने करी होवाथी कृतकृत्य थध जवाथी सिद्ध थध जथे. विमल केवलज्ञानाहोइथी
सकल लोकालोकना ज्ञाता थध जथे समस्त कर्मोथी सुकत थध जथे. स्वस्थ थध जथे
अने शरीर संधी अने मनसंधी असुस्त कलेशोना नाश करथे अटके के तेजो
अव्यावाधिसुख बोधता थध जथे. ॥सू० १७५॥

टीका—“सेव मंते” इत्यादि—हे भदन्त । यद् भवञ्जित्तं तत् एवम्-
इत्यम्, वास्तविकमिति यावत्, तदेवं भदन्त ? इति विप्सा भगवद्वचने श्रद्धा-
तिशयं प्रकटयति, इति—अनेन प्रकारेण उक्त्वा भगवान् गौतमः श्रमणं
भगवन्तं महावीरं वन्दते नमःयति, वन्दित्वा नमस्स्वित्वा संजमेन तपसा
आत्मानं भावयमानो विहरतीति ॥सू० १७६॥

श्री

अथ राजप्रश्नीयसूत्रं यं प्रशस्तिः—

गुर्जराभिषदेशेऽस्मिन् पुरं वीरमगामकम् ।

आरण-श्रावणश्रेणिसौधमण्डितवीथिकम् ॥ १ ॥

ग्रामाद् ग्रामा-तरं पङ्क्तिः साधुभिर्विहरन्निह ।

निर्वोढुं सांघर्मीं यात्रां परद्वैशाख आगमम् ॥ २ ॥

‘सेवं मंते-? सेवं मंते-?’ भगव योगमे—‘इत्यादि—

मूलार्थ—‘सेव मंते-? सेव मंते-?’ हे भदन्त-? जैसा आपने कहा है
वह वैसा ही है, अर्थात्—आपने जो अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया
है वह वास्तविक ही है—सर्वथा सत्य ही है—। इस प्रकार कहकर—“भगव
योगमे—” भगवान् गौतमने ‘समणं भगव वदइ नमंसइ—’ श्रमण भगवान्
को वन्दना भी गुणतुति की, और—उन्हें नमस्कार किया—“वन्दित्वा नमंसित्वा
संजमेणं तपसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ—” वन्दना नमस्कार कर फिर—वे
संयम से और—तप से आत्मा को भावित करते हुवे अपने स्थान पर
विराजमान हो गये ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सेव मंते-? सेव मंते-?’ ऐसा जो दो बार कहा
गया है वह भगवद्वचन में श्रद्धातिशय प्रकट करने के लिये कहा गया है। सू० १७६

‘सेवं मंते ? सेवं मंते ? भगवं गौयमे इत्यादि ।

मूलार्थ—“सेवं मंते ! सेवं मंते !” हे भदन्त ! जे प्रमाणे आपश्रीजे कहु
छ ते तेभजे छ जेट्ठे के आपश्रीजे पोतानी दिव्यध्वनिद्वारा जे कहुं कहुं छ ते
वास्तविक जे छ सर्वथा सत्य छे आ प्रमाणे कहीने “भगव गौयमे” भगवान गौतमे
समणं भगवं वदइ नमंसइ” श्रमण भगवानने वदना करी, गुण स्तुति करी अने
तेभने नमस्कार कर्था “वन्दित्वा नमंसित्वा संजमेणं तपसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ”
वदना तेभजे नमस्कार करीने तेज्जे संयम अने तपश्री आत्माने भावित करता
पोताना स्थाने विराजमान थछ गया

टीकार्थ स्पष्ट छे “सेव मंते ! सेवं मंते !” आम जे जे वचन कहेवाभा
आओ छे ते भगवद् वचनभा अति श्रद्धा प्रकट करवा भाटे छे ॥ १७६ ॥

पुरे वी.मगामेऽस्मिन् सङ्घमर्थनया व्ययाम् ।
 राजप्रक्षीयध्वजव्य टीकामेनां सुबोधिनीम् ॥ ३ ॥
 वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां गुरोर्दिने ।
 त्रयोदशाधिके वर्षे छिसहस्रे च वैक्रमे ॥ ४ ॥
 अत्रत्यः स्वयो मिलत्समुदयः श्री जैनसङ्घो मिथः—
 प्रेमाऽमक्तहृदः स्वदा निजकृतौ धर्मे च बद्धाऽऽदरः ॥
 शुद्धस्थानकवासिधर्ममहिमप्रोद्भावकः श्रावका—
 ऽऽचारैः ख्यातिमृपागतो विजयते सम्यक्त्वसंशोभितः ॥५॥

“ प्रशस्ति का अर्थ ”

गुजरात प्रात में वीरमगाम नामका शहर है, यहां के मांग दूकानों एवं श्रावकजनों के सुन्दर-सुन्दर घरों से युक्त हैं । एक गाम से दूसरे गाम में विहार करते हुवे छह मुनियों के साथ—यहां संयम यात्रा का निर्वाह करने के लिये गन्वर्ष के वैशाख मास में अर्थात् वि.सवत् २०१२ के वैशाखमें आये । यहां के श्रीसंघ की यहीं पर विराजने की विनन्ती से यहां मैने राजप्रक्षीय ध्वज की इस सुबोधिनी टीका को सम्पूर्ण किया । यह समय वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया शुक्लवार विक्रम संवत् २०१३ का था । यहां का जैन श्रीसंघ शुद्ध स्थानकवासी धर्म में तत्पर है, धर्म के प्रति इसके हृदय से बहुत अधिक आदर्शभाव है, और—यह श्री संघ प्रेमालु है, तथा शुद्ध स्थानकवासी धर्म का दिपाने वाला है हृदय में इसके अति अधिक दयामाव बना रहता है । श्रावक सम्बन्धी आचार विचार से यह प्रसिद्धि को प्राप्त कर लिया है, जैनधर्म के प्रति अधिक

प्रशस्तिने अर्थः—

गुजरात प्रातमा वीरमगाम नामक एक नगर ए आ नगरनी शेरीओ अने दुकानो श्रावकजनोना लव्य भकानोथी युक्त छे एक गामथी थीजे गाम विहार करता करता छ मुनियोनी साथे वैशाख मासमा अही संयमयात्राना निर्वाह माटे आव्या अहीना “श्रीसंघे” आयश्रीने अहीजे विराजवानी विनती करी तो ते समयमा जे ते त्या रहीने राजप्रक्षीय ध्वजनी आ सुबोधिनी टीका संपूर्ण करी आ समय वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया त्रिक्रम संवत् २०१३ शुक्लवारने छतो अहीने जैन श्रीसंघ’ शुद्ध स्थानकवासी छे, धर्म प्रत्ये जेना हृदयमा प्रबल आदरभाव छे आ श्रीसंघ’ प्रेमण छे तेमज शुद्ध स्थानकवासी धर्मने दीपावनार छे जेना हृदय मा अत्यधिक इयासव निवास करे छे श्रावक संघधी आधारविचारोथी जे जगतमा प्रसिद्ध छे जैनधर्म प्रत्ये अधिकाधिक अतुरागी होवा गइल सम्यक् वधी सुशोभित

देवाधिदेवे भुवनैकनाथे तीर्थङ्करे तत्कथिते च धर्मे ।
 श्रद्धां दधानं प्रतिवेश्म भाति सुश्राविवाश्रावकवृन्दमत्र ॥६॥
 आचारपूताः समदृष्टिभूता जैनागमाऽऽचारनिदर्शरूपाः ॥
 अस्मिन् पुरे सन्ति मृदुस्वाभावा जैनाः समस्ता गुरुभक्तिभाजः॥७॥

इतिश्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
 कलापालाप रु-प्रविशुद्गद्यपद्यनैरुग्रन्थ-निर्माप रु-त्रादिमानमर्दक श्री शाह
 छत्रपति-कोल्हापुरराजपदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुर-
 राजगुरु - बालब्रह्मचारि - जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
 घासीलालव्रतिविरचितायां सुबोधिन्याख्यायां व्याख्यायां
 "राजप्रश्रीयसूत्रम्" सम्पूर्णम्

अनुरागी होने के कारण यह सम्पत्त्व से सुशोभित है । भुवनैकनाथ देवाधि-
 देव तीर्थंकर के ऊपर, एवं तीर्थङ्कर प्रतिपादित धर्म के ऊपर श्रद्धाशील श्रावक-
 एवं-श्राविश्राप हरएक घर में यहां हैं । इन सर्वा का आचार-विचार जन-
 मर्यादा के अनुरूप है दूसरों के लिये ये-इस विषय में सर्वथा अनुकरणीय हैं ।
 इनका स्वभाव मृदु है, यहां के श्रावको काचित्त गुरु की धर्मभक्ति में सदा
 प्रेमयुक्त बना रहता है, इन्ही सब कारणों से ये समदृष्टि हैं ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत
 राजप्रश्रीयसूत्र की 'सुबोधिनी' व्याख्या समाप्त ॥
 ॥ राजप्रश्रीयसूत्र समाप्त ॥

छे भुवनैकनाथ-देवाधिदेव तीर्थंकर पर अने तीर्थंकर प्रतिपादित धर्म पर श्रद्धाशील
 श्रावक अने श्राविकाओं अही इरेकेइरेक घरमा निवास करे छे आ सर्वांनां आचार-
 विचारो जैन मर्यादासुत्र छे भीलओना भाटे ओओ आ भावतमा संपूर्णपणे अतु-
 करणीय छे ओभनो स्वभाव मृदु छे अहीना श्रावकोनु चित्त गुडनी धर्मभक्तिमा
 सदा प्रेमयुक्त जनी रहे छे आ जधा करओथी ओ जधा समदृष्टि छे "

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत
 राजप्रश्रीयसूत्रनी सुबोधिनी व्याख्या समाप्त

परुषैशाखो इति गतवर्षवैशाखे इत्यर्थः